॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

छन्दः—पक्षपातको चूर धूर करि, गुरु कबीरने परखाया ॥
छौ दर्शन पाखण्ड छान्नब्वे, ताकी कसर बतलाया ॥
खानि औ वाणि जाल परखाके, चेतन पारख ठहराया ॥
"रामस्वरूप" धन्य कबीर गुरु !, धोखा सबहिं हटाया ॥१॥
भास अध्यास अनुमान हटाकर, कल्पित धोखा टाला है ॥
श्रीगुरु पूरण साहेब पारख, विस्तृत बोध उजाला है ॥
पारख ज्ञानकि शोर सुनै जब, गुरुवा खसकी चाला है ॥
"रामस्वरूप" धन्य गुरु पूरण !, अमृत बोध रसाला है ॥२॥
मतमतान्त्रकी कसर दिखाकर, सत्यज्ञान परकाश किये ॥
द्वैत अद्वैत कि धोख हटाकर, सत्यन्याय दिखलाय दिये ॥
पक्षपात सब ध्वंसहि करिके, मुक्ती पथ बतलाय दिये ॥
"रामस्वरूप" धन्य गुरु काशी !, निर्पक्षग्रन्थ बनाय दिये ॥३॥

॥ ❀ ॥ प्रस्तुत सद्ग्रन्थ की महत्त्व वर्णन ॥ शब्द ॥ ❀ ॥

सब धोखको हटावै, निर्पक्ष ज्ञान दर्शन ॥
सब पक्षको नशावै, निर्पक्ष ज्ञान दर्शन ॥ टेक ॥
वाणि—खानिकी धार कठिन हैं, ये हैं बन्धन रूप ॥
वामें जगके जीव बन्धे हैं, गुरुवा काल स्वरूप ॥
सो बन्ध सब हटावै, निर्पक्ष ज्ञान दर्शन ॥ १ ॥
पक्षपाति बने सब गुरुवा, धोखा दैके फँसावै हैं ॥
जीव विचारा लालच कारण, कष्ट अनेक सहावै हैं ॥
सो जाल सब हटावै, निर्पक्ष ज्ञान दर्शन ॥ २ ॥
वेद पुराण कुरान षटदर्शन, कल्पितमें अरुझावै रे ॥
छौ शास्त्रन सिद्धान्त विविध विधि, जाल पखण्ड दृढ़ावैरे ॥
सो कल्पना छुड़ावै, निर्पक्ष ज्ञान दर्शन ॥ ३ ॥

श्रीगुरु काशी साहेब पारखि, सत्यासत्य दिखाये हैं ॥
ब्रह्म जगत्के भर्म हटाकर, "रामस्वरूप" लखाये हैं ॥
सो भेद सब बतावै, निर्पक्ष ज्ञान दर्शन ॥ ४ ॥
गुरु कबीर मन्तव्य है जैसा, तैसा त्रिजा प्रकाश करे ॥
वही भाव सिद्धान्त सुरक्षित, काशी गुरु निर्पक्ष भरे ॥
पारख सहजमें पावै, निर्पक्ष ज्ञान दर्शन ॥ ५ ॥

॥ ❀ ॥ भजन ॥ ❀ ॥

गुरु कबीर बीजक मत यह ही, पारख सत सिद्धान्त है सार ॥
पारख शुद्ध स्वरूप जीवके, निश्चय पारखि जन उर धार ॥ १ ॥
बिन पारख भव बन्ध लगा है, गुरु पारख तेहि बन्ध निबार ॥
गुरु पद अटल परख भूमिका, जीवन मुक्ती स्थिती ठहार ॥ २ ॥
बीजक भाव पूरण गुरु तिरजा, काशी साहेब तेहि विस्तार ॥
निर्पक्ष सत्यज्ञान परकाशे, सब जिज्ञासुन बड़ आधार ॥ ३ ॥
धन्य ! धन्य ! गुरु काशीसाहेब, सब पारख सत ग्रन्थ प्रचार ॥
तब उपकार महान हमनको, ग्रन्थ सुलभ कीन्हीं जग सार ॥ ४ ॥
प्रथम पारखी सन्त महाना, हंस रूप सद्गुनके आगार ॥
रामस्वरूप गुरुके गुण गाऊँ, दिव्य दृष्टि लहि सबहि निहार ॥ ५ ॥

दोहाः—निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शनको । पढ़ै सुनै चितलाय ॥
ताके सब संशय मिटै । सब ही पक्ष नशाय ॥ १ ॥
जड़ चेतन निर्णय लखै । सारासार विचार ॥
जड़ असार सब त्याग करि । सारसु चेतन धार ॥ २ ॥
जड़ाध्यास बन्धन अहै । ध्यास रहित जिवमुक्त ॥
गुरु पारख बल बोध गहु । लहु सत्सङ्गति उक्त ॥ ३ ॥
नास्तिक आस्तिक मत सकल । गुरुमुखते सब जान ॥
मिथ्या कल्पित मत तजू । निर्णय वाक्य प्रमान ॥ ४ ॥
बार-बार सद्ग्रन्थ पढ़ि । मनन करी गहु सार ॥
पारख स्थिति हो 'रामस्वरूप' । अब नर जन्म सुधार ॥ ५ ॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

॥❀॥ चतुर्थसंस्करणप्रकाशनदिग्दर्शन ॥❀॥

दोहाः—कबीर पूरण काशि गुरू। पारख शुद्ध स्वरूप ॥
मिलि पारख बोधक गुरू। बन्दौं रामस्वरूप ॥ १ ॥

साखीः—"पछा पछीके कारने। सब जग रहा भुलान ॥
निर्पछ होयके हरि भजै। सोई सन्त सुजान ॥ १३८ ॥"

'बीजक' के इसी महावाक्यको ध्यानमें रख कर सर्व साधारण जनोंको भी उच्चारणके लिये सहज हो, इस दृष्टिसे ग्रन्थकर्त्ताने प्रस्तुत सद्ग्रन्थका नाम "निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन" रक्खे, ऐसा ज्ञात होता है। यद्यपि संस्कृतमें—"निष्पक्ष" शब्द ही कहा जाता है। तथापि भाषामें 'निर्पछ' 'पछ रहित' कहनेकी शैली, रिवाज होनेसे और सबोंको कहनेमें सरलताके लिये ही 'निर्पत्त' शब्द जान—बूझके ग्रन्थके नाममें कायम रक्खा गया है। विशेषतः सन्त—महात्मा लोग सरल शब्दोंका ही प्रयोग करते हैं। सन्तोंके स्वानुभविक वाक्योंमें ही गूढ़ार्थ भरा रहता है। शब्द व्यञ्जनादि चातुर्यके पीछे महान सन्त लोग नहीं पड़ते हैं। भाव शुद्ध होनेसे भाषा कैसे भी हो, वह आदरणीय है, और अशुद्ध भावसे रचित शब्द सुन्दर होनेपर भी अनादरणीय हो जाता है। अतः पारखी सन्तोंके 'सार शब्द' सदा आदर करके ग्रहण करने योग्य है ॥

बीजक मूल, त्रिजा, निर्णयसार, पञ्चग्रन्थी आदि प्राचीन पारखी सन्तोंके सद्ग्रन्थोंका भावार्थ विस्तार व्याख्यारूपमें ही यह सद्ग्रन्थ निर्माण हुई है। जगह—जगह उन्हीं सद्ग्रन्थोंका प्रमाण सिद्धान्तरूपसे दर्शाया है। निष्पत्तरूपसे समस्त मत, पन्थ, और ग्रन्थोंका सारासारका परिचय पूरा पता सहित यथास्थानमें दे दिये हैं। 'जगत् कर्त्ता दर्शन'में—७३ प्रश्नोंद्वारा जगत् कर्त्ताकी असिद्धता दर्शा दिये हैं। 'नास्तिक मत दर्शन'में—१४ प्रश्नोंद्वारा

नास्तिकताका लक्षण दिखला दिये हैं। 'तृतीय प्रकरण' में–५२ प्रश्नोत्तरके भीतर ही मुख्य-मुख्य ज्ञातव्य समस्त बातोंको खुलासा करके जिज्ञासुओंको अलभ्य सत्य बोध प्रदान किये हैं। ऐसे यह सद्ग्रन्थ निर्माता पारखी सद्गुरुको कोटिशः धन्यवाद है! बलिहारी है आपकी !!! ॥

पारखी श्रीसद्-गुरुकी दयासे प्राप्त इसी सद्ग्रन्थके द्वारा ही हम लोगोंको और अन्य समस्त अभीके सन्तोंको भी पारख सिद्धान्तकी प्रक्रिया, समस्त युक्ति-प्रयुक्ति, गूढ़ भाव सहित सम्पूर्ण भेद अच्छी तरहसे जाननेमें आया है। सत्सङ्ग, और विवेक-विचारसे उसीकी ही परिपुष्टि हुई है। इस ग्रन्थको मनन करनेके पूर्व वर्त्तमानमें मौजूद सन्तगण इन सब बातोंसे अनभिज्ञ ही थे। इस ग्रन्थके पश्चात् और जितने भी ग्रन्थ सन्तोंसे बनी हैं, उन सबोंमें इसीका ही सार उतारके शब्द बदलकर या वैसे ही उन्होंने जगह-जगह पर रक्खे हैं, सो मिलान करके देख लीजिये। वर्त्तमानके सन्त समाजमें इस ग्रन्थका और ग्रन्थकर्त्ताके देनका विशेष ऋणकी छाप लगी हुई है। अतएव इस ग्रन्थके कर्त्ता पारखी सद्गुरुके महत्ता स्वयं सिद्ध है। इतना सारा अप्रकाशित बातोंका विस्तृतरूपसे प्रकाश करके भी ग्रन्थकर्त्ता कितने विनम्र, उदार, सरल रहे, यह तो ग्रन्थावलोकन करनेसे ही सबोंको ज्ञात हो जायगा। जिन्होंने आपका दर्शन, सत्सङ्ग किये थे, वे कहते हैं—आप अति निरभिमानी, सर्व सद्-गुणोंकी खान, दृढ़ वैराग्यवान्, जीवन्मुक्त, हंसन भूप थे। आपकी सराहना सभी लोग करते हैं। धन्य है! ऐसे महापुरुष को! । परन्तु वर्त्तमानके कोई-कोई सन्त रञ्चक-सी बातोंको ही कहने-सुनाने, ग्रन्थादि छपानेसे इतनी घमण्ड, अहङ्कार दिखलाते

हैं, कि जो उचित नहीं है। परन्तु वे लोग भी प्रथमके साधु–गुरुके ही उच्छिष्ट महाप्रसाद खा–खाके मुटाये हैं; इसे तो सब कोई जानते ही हैं। अतः उनका घमण्ड करना, और सबोंको दोष लगानेका निरर्थक प्रयास करना व्यर्थ ही है। जो जैसा करेंगे, सो अपने ही लिये है। दूसरे द्रष्टा लोग तो जैसा गुण देखेंगे, वैसा ही कहेंगे। कर्त्तव्यका फल तो कर्त्ताके साथमें ही लगा रहेगा। अतएव सन्तोंने प्रथम अपना ही हित हो, और अपने साथ दूसरोंका भी हित हो, ऐसी बर्त्ताव, शुभ–सद्-गुणोंकी धारणा ही कर लेना चाहिये। अपने जीवनमें ऐसा सरल शुभाचरण प्रस्तुत करे कि, भविष्यके लोगोंको अच्छा दृष्टान्त, आदर्श, अनुकरण मिल जाय। जिससे जन समाजको कल्याण मार्गमें रुचि, सुखद प्रेरणा मिले। देखकर, सुनकर, और बार-बार सङ्गति करके लोगोंको उसका प्रभाव, उस तरफ रुचि वा अरुचि, उन्नति वा अवनतिके तरफ बढ़ावा हो जाती है। इसलिए सब सन्तोंको सच्चा, गुणवान्, मिलनसार ही होना चाहिये॥

"निज स्वरूप चैतन्य जीव ही अखण्ड, नित्य, सत्य है।" इससे परे और कोई भी माना हुआ ब्रह्म–ईश्वरादि सत्य नहीं है। ऐसे स्वरूप–ज्ञान पारख सिद्धान्तके संस्थापक सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबको जितनी महान कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा है; उतनी कष्ट सायद और किसीको भी न पड़ा होगा। आपने निर्भिक, सहिष्णु होकर ही बीजक ज्ञानका उपदेश सर्व साधारण जनताको दिया। आपका सत्य बोधोपदेश जिज्ञासु जनोंने सादर अपना लिया। आपके कृपासे ही पारखी सन्तोंकी गुरुपरम्परासे पारख सिद्धान्त आज तक अक्षुण्ण कायम रहती चली आ रही है। श्रीगुरु कबीरसाहेब, श्रीगुरु श्रीपूरणसाहेबसे लेकर हमारे बोधक गुरुदेव श्रीलालसाहेबजी पर्यन्तकी महान कृपासे ही हम

लोगोंको भी सहजमें ही पारख सिद्धान्त जैसे महान ज्ञानका बोध मिला। सब कुछ परिश्रम तो आप ही लोगोंने सहन कर लिये। हम लोगोंको तो बना-बनाया तैय्यार भण्डारा खानेके समान ही पारख सिद्धान्तके सब ग्रन्थः, अनेकों युक्ति-प्रयुक्तियाँ आदिका गुरु ज्ञान मुफ्तमें ही मिल गई। ऐसे महान दयालू सद्गुरु देवोंको कोटिशः धन्यवाद है !!! ।।

उन प्रथमके पारखी महान सन्त-गुरुके सामने इस जमानेके वर्त्तमान सन्त अति नगण्य हैं। हम लोगोंको और वर्त्तमानके अन्य सर्व सन्तोंको भी पारख सिद्धान्त जानने और अन्योंको वह दर्शानेके लिये सच कहिये तो कुछ भी परिश्रम करना नहीं पड़ रहा है। सहजमें मिली हुई बातोंको सहजमें ही कह दिया जाता है। फिर बताइये ? इसमें क्या विशेषता है ? कुछ भी तो नहीं। अपने बातको वजनदार बनाके मनानेके लिये बीजक, निर्णयसार, पञ्चग्रन्थी आदिके पदोंको ही सन्मुख लाके प्रमाण दर्शा दिया जाता है। उन सद्ग्रन्थोंके प्रमाण बिना सिद्धान्त ही सिद्ध, और मान्य नहीं होता है। फिर किस बातके लिये हम लोग अहं-मन्यताको लेवैं? इसमें हमारा अपना गरिमा है ही क्या? गुरुदेवके यथार्थ गुण गाना, गुरुबोधके अनुसार अपना स्थिति बनाना ही तो मुख्य कर्त्तव्य है। ऐसा न करके मान-बड़ाईको लेकर राग-द्वेषादिमें पड़ना, भूलना, यह तो अपना ही हानि करना है। जब तक अपने हृदयमें आप ही अमानता आदि सद्गुण रहनीको पूर्णतासे धारण नहीं करेंगे, तब तक कहनीमात्रसे कुछ भी हित नहीं होगा।

कथा वाचक, उपदेशक बनके इधर-उधरके सही-कल्पित कथाओंको सुना करके, लोगोंके मनोरञ्जन करना, कुछ लोगोंसे मान्य-पूजित होना, लेखक बनके जहाँ-तहाँ के वाणियोंको संग्रह करना, वाक्योंको उलट-पलट करके अपने नामका छाप लगा देना, रोचक कथाएँ, कवितादि भरके कई तरहके ग्रन्थोंको छपा देना, इत्यादि कार्य आज-कलके जमानेमें सब बातोंके सुलभतासे, कोई भी चतुर मनुष्य कर सकते हैं, किये, और कर ही रहे हैं। परन्तु इस तरहसे जैसा चाहिये वैसा यथार्थ धारणा स्थिति तो होती हुई दिखाई नहीं दे रही है। अतएव मुमुक्षुओंके

लिये और विरक्त सन्तोंके लिये यह महान विघ्न-बाधाएँ ही उपस्थित हो रही है ॥

साखीः—"चलो-चलो सब कोइ कहै। पहुँचे बिरला कोय ॥
एक कनक और कामिनी। दुर्गम घाटी दोय ॥ १ ॥"

साखीः—"कहन्ता तो बहुते मिला। गहन्ता मिला न कोय ॥
सो कहन्ता बहि जान दे। जो न गहन्ता होय ॥८०॥"

अतएव चाहिये तो सब प्रकारसे अपने ही स्थिति करना, फिर जिसे जैसा सूझता, रुचता है, वैसे ही करते हैं। परन्तु हमें तो चाहे कोई कैसे भी आक्षेप-विक्षेपका प्रहार करके झकझोरैं, कैसे भी विघ्न-बाधाएँ पहुँचावैं, अड़चन डालैं, सजग हो, उधरसे उपरामता, उदासीनता, उपेक्षा रख करके अवश्य अपने ही स्थितिपर अटल रहना है। सो सद्गुरु देवकी महान दया और अपने पुरुषार्थ बलसे कार्य पूर्ण होगा ही ॥
"गुरुकी दया साधुकी सङ्गति। निकरि आव यहि द्वार ॥ ३०४॥" -बीजक ॥

ऐसे हो मुक्ति इच्छुक सन्तोंने अपने स्थिति बनाके, उसे कायम रखनेके तरफ ही पूर्णतासे ध्यान देना चाहिये ॥

समय अनुकूल न होनेसे पहले इस ग्रन्थके तृतीय संस्करण प्रकाशन अच्छी नहीं हो सकी थी। सो अबकी बार उसका सुधार निम्न प्रकारसे कर दी गई है। इस सद्ग्रन्थमें प्राचीन निर्मित प्रख्यात-१०८ ग्रन्थोंमेंका प्रमाण प्रश्नोत्तरमें यथास्थान आया है। उनमेंसे हमें इस समय केवल जैन मतके ही कुछ ग्रन्थोंको छोड़ कर अन्य सर्व ग्रन्थ उपलब्ध हुई हैं। अतः उन-उन ग्रन्थोंमें पुनरपि इसमें आगत प्रमाणोंको यथास्थान अच्छी तरहसे मिलाके शुद्ध कर ली गई है। जिन-जिन ग्रन्थोंके पृष्ठाङ्कादि इस ग्रन्थमें दिया है, उनके मुद्रित होनेका साल सम्वत् सहित सूची अलग इसीके साथ पृष्ठ १४ में संलग्नकर दी गई है। हस्तलिखित (ग्रन्थकर्त्ताके पाण्डुलिपि) ग्रन्थसे तथा प्रथम बार छपी हुई ग्रन्थपरसे भी सम्पूर्ण मिलाके शुद्ध की

गई है। 'षट् पशु' वर्णनमें 'नरपशु' विवर्णका अंश प्रथम संस्करणसे ही ग्रन्थमें छपाई छूटी थी, सो इस बार हस्तलिखित कापी ग्रन्थसे उतार कर साथमें छपा दी गई है। समस्त टिप्पणियोंकी वृद्धि करके जगह-जगह पर उन्हें रख दी गई है। ग्रन्थमें निर्देशित स्थानोंकी सूत्र, श्लोक, अर्थ, साखी, टीकादि भी जो मूलमें नहीं आया है, सो टिप्पणीमें यथास्थान रखी गई है। इस प्रकार जहाँ तक हो सकी इस-बार इसका सम्पादन अच्छी तरहसे ही हुआ है। शुद्ध छपाईके ऊपर भी विशेष ध्यान दी गई है। कागज, छपाई, जिल्द बन्धी आदि सब बढ़िया, बेश कीमती (महँगी) ही लगी है। अब ग्रन्थका संस्करण जैसा बना है, सो प्रत्यक्ष देख करके ही पहिचान कर लीजिये ॥

मशीनके धक्कासे छपाईमें टाइप, मात्राएँ जो टूट गई हों, अथवा खसक जानेसे, गिरकर इधर-उधर लग गई हों, उन्हें ठीक तरहसे सुधारके पाठकगण पढ़ लेवें। मशीनके काममें वैसा होना सामान्य-सी बात है। उसे शक्तिके बाहर हुआ कार्य समझके मिलाके पढ़ लेवें ॥

इस सद्ग्रन्थकी उत्तमता, उपादेयता, आवश्यकता विवेकी गुणग्राही सन्त जनोंको ज्ञात ही है। परमार्थ पथिक जिज्ञासु जनोंको यह ग्रन्थ अपने पासमें अवश्य रखना चाहिये। नित्यप्रति इसे पढ़ कर मनन करते रहनेसे धोखा, भ्रम-भूल मिटकर शुद्ध चैतन्य निज स्वरूपका पारख बोध निस्सन्देह हो जायगा। सत्साधनमें लगकर बोध-वैराग्य परिपुष्ट करके सर्व जड़ाध्यासोंको त्याग देनेसे निज स्वरूपकी स्थितिरूप जीवन्मुक्ति भी हो जायगा; जिज्ञासु-मुमुक्षुओंको सोई बना लेना चाहिये ॥

श्रीकबीर पारख मन्दिर, डिगिया (जैतपुरा),
वाराणसी। दिनाङ्क १२।४।१९६३ ई०। } —रामस्वरूपदास।

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ ग्रन्थ गौरवाष्टकादि वर्णन ॥ भजन ॥ ❀ ॥

नर जीवको जगावै, निर्पक्ष ज्ञान दर्शन ॥
भ्रम भूलको भगावै, निर्पक्ष ज्ञान दर्शन ॥ टेक ॥

जग कर्त्ताकी कल्पना, तम अँधियारी छाय ॥
गुरुवा तेहि प्रबोधिके, अमित बानि कहि गाय ॥
गुरुमुख सबै प्रखावै, निर्पक्ष ज्ञान दर्शन ॥ १ ॥

जग कर्त्ता कोई नहीं, जड़ चिद नित्य रहाय ॥
मेल प्रवाह अनादि है, पिण्ड ब्रह्माण्ड कहाय ॥
षट् भेद नित्य पावै, निर्पक्ष ज्ञान दर्शन ॥ २ ॥

नास्तिक जन बहु भाँतिके, जड़ हि जीव कहि मान ॥
नहीं पिछानै रूप निज, विषय प्रेम बन्धान ॥
आवागमन बतावै, निर्पक्ष ज्ञान दर्शन ॥ ३ ॥

भेद बतावै बहु विधी, भाँति अनेकन युक्ती ॥
गुरु पारखके बोधते, ध्यास नाश ह्वै मुक्ती ॥
निर्णय परख प्रखावै, निर्पक्ष ज्ञान दर्शन ॥ ४ ॥

सरल युक्तिके ग्रन्थ अस, पारखके सिद्धान्त ॥
मिला यही गुरुकी दया, अनुपम ज्ञान महान्त ॥
बस और नाहिं पावै, निर्पक्ष ज्ञान दर्शन ॥ ५ ॥

तृतिय भाग गुरु बोध सब, पढ़ि गुनि निश्चय सार ॥
संशय रञ्चक ना रहै, लहै भेद निस्तार ॥
टकसार सार पावै, निर्पक्ष ज्ञान दर्शन ॥ ६ ॥

बिरले ऐसे पारखी, धन्य ! धन्य ! जग माँहिं ॥
दाता अक्षय कोषके, गुरुवर काशि रहाँहिं ॥
तिनकी कृपा मिलावै, निर्पक्ष ज्ञान दर्शन ॥ ७ ॥

गुरु कबीर जस पारख, तस गुरु पूरण दीन ॥
काशी साहेब सद्गुरु, गुरु पदमें आशीन ॥
यश रामस्वरूप गावै, निर्पक्ष ज्ञान दर्शन ॥ ८ ॥

दोहाः—कबीर पारखरूप गुरु। बन्दौं शुद्ध स्वरूप ॥
निज पद पारखमें स्थिति। जीवन्मुक्तक रूप ॥ १ ॥

॥ ❀ ॥ सद्गुरुकी महानता वर्णन ॥ भजन ॥ ❀ ॥

गुरु काशि लाल जैसे, जगमें दिखे न कोई ॥
हैं सन्त जग घनेरे, गुण पाइये न सोई ॥ टेक ॥
सद्गुरु कबीर लेकर, गुरु काशि तक अनेकों ॥
सब हो गये महाना, सिद्धान्त एक होई ॥ १ ॥
गुरु के परम्परासे, सब सार सो गहे हैं ॥
गुरुमुख श्रवण सो भक्ती, परतत्त्व बोध सोई ॥ २ ॥
परतत्त्व लाल गुरुसे, गुरु काशि गुणपिछाना ॥
निर्पक्ष आदि पढ़ कर, निष्ठा महान होई ॥ ३ ॥
ऐसे अपर न पाया, सब ठौर जा टटोले ॥
मदऽहं प्रपञ्च सबमें, आवर्ण अन्त गोई ॥ ४ ॥
श्रीकाशि लाल गुरुवर, पूरा अधार मुझको ॥
तिनकी कृपासे पारख, सब भेद ज्ञान होई ॥ ५ ॥
गुरुपदमें पूर श्रद्धा, गुणवान सबमें समता ॥
रामस्वरूप पिछाना, नहिं काज और कोई ॥ ६ ॥

इस ग्रन्थमें यथास्थान निम्नाङ्कित ग्रन्थोंका प्रमाण ग्रन्थकर्त्ताके द्वारा आया हैः—

(१) बीजक मूल। (२) बीजक त्रिजा (टीका)। (३) पञ्चग्रन्थी मूल—(समष्टिसार, मानुष विचार, गुरुबोध,—सारशब्द निर्णय, टकसार, सत्ताईस रमैनी)। (४) निर्णयसार। (५) वैराग्यशतक। (६) पारख विचार। (७) कबीरपरिचय साखी, और ग्यारह शब्द। (८) ऋग्वेद। (९) यजुर्वेद। (१०) पुरुष सूक्त। (११) श्रुतियाँ। (१२) ईशावास्योपनिषद्। (१३) कठोप०। (१४) प्रश्नोप०। (१५) मुण्डकोप०। (१६) माण्डूक्यो-प०। (१७) तैत्तिरीयोप०। (१८) ऐतरेयोप०। (१९) छान्दोग्योप०। (२०) बृहदारण्यकोप०। (२१) श्वेताश्वतरोप०। (२२) कैवल्योप०। (२३) जाबालोप०। (२४) गर्भोपनिषद्। (२५) नारायणोपनिषद।

(२६) कौषीतकिब्राह्मणोप० । (२७) बृहज्जाबालोप० । (२८) नृसिंहोत्तर-तापिन्युप० । (२६) मन्त्रिकोप० । (३०) वज्रसूचिकोप० । (३१) आत्म[illegible] । (३२) [illegible] । (३३) [illegible] । (३४) रामोत्तरतापिन्युप० । (३५) महावाक्योप०। (३६) [illegible] । (३७) गोपालोत्तरतापिन्युप० । (३८) कृष्णोप० । (३६) जाबाल्युप० । (४०) सौभाग्यलक्ष्म्युप० । (४१) मुक्तिकोपनिषद् । (४२) वैशेषिकसूत्र । (४३) न्यायसूत्र । (४४) पातञ्जलयोगदर्शनसूत्र । (४५) सांख्यसूत्र । (४६) (व्यास) ब्रह्मसूत्राणि । (४७) पाणिनीय व्याकरणसूत्र । (४८) भगवद्गीता । (४६) गुरुगीता । (५०) शिवगीता । (५१) अवधूत-गीता । (५२) योगवासिष्ठ । (५३) भागवत । (५४) विवेकचूड़ामणि । (५५) अपरोक्षानुभूति । (५६) आत्मपुराण । (५७) न्यायसिद्धान्तमुक्तावलि । (५८) संक्षेप शारीरिक कारिका । (५६) शारीरिकभाष्य । (६०) पञ्चीकरण, मरहठी ज्ञानदेव कृत । (६१) पञ्चीकरण सटीक । (६२) चाणक्यनीति । (६३) वेदान्तसंज्ञा । (६४) तर्कसंग्रह । (६५) तत्त्वानुसन्धान । (६६) वृत्तिप्रभाकर । (६७) विचारसागर । (६८) सत्यार्थप्रकाश । (६६) कबीर-मन्सूर । (७०) कबीर-कसौटी । (७१) शब्दावली । (७२) साखीग्रन्थः । (७३) बाइबल (पुराना और नया धर्म नियम) [तौरेत उत्पत्ति०, यात्रा०, गिनती०, लयव्यवस्था०, समुएलकी दूसरी पुस्तक, जबूर ऐयूबकी पुस्तक । मत्ती रचित इञ्जील, मार्क रचित इञ्जील, लूक रचित इञ्जील, योहन प्रकाशित वाक्य] । (७४) कुरान । (७५) आप्त निश्चयालङ्कार । (७६) जैन तत्त्वार्थसूत्र । (७७) जैन तत्त्वादर्श । (७८) प्रकरणरत्नाकर भाग ४ । संग्रहसूत्र । (७६) प्रकरणरत्नाकर भाग २ । शष्ठीशतकसूत्र । (८०) रत्नसार भाग, भाग-१ । (८१) आत्मनिन्दा भावना । (८२) जैनसिद्धान्त प्रवेशिका । (८३) बाल-बोध जैन धर्म भाग-२, ३, ४ । (८४) जैनधर्म प्रवेशिका । (८५) सिद्धान्त-शिरोमणिः, गोलाध्यायः । (८६) सूर्य सिद्धान्त । (८७) गोलतत्त्वप्रकाशिका । (८८) पदार्थविज्ञान । (८६) हिलसाहब कृत पुरानी भूगोल विद्या; और (६०) नवीन भूगोल विद्याकी तीसरी पुस्तक । (६१) सर्वदर्शनसंग्रह— १. चार्वाकदर्शन, २. बौद्धदर्शन । (६२) सायन्स । (६३) सांख्यदिवाकर । (६४) मनुस्मृतिः । (६५) विष्णुस्मृतिः । (६६) हारीतस्मृतिः । (६७) आपस्तम्बस्मृतिः । (६८) संवर्तस्मृतिः । (६६) पाराशरस्मृतिः । (१००) व्यासस्मृतिः । (१०१) शङ्खस्मृतिः । (१०२) दक्षस्मृतिः ।

(१०३) गौतमस्मृतिः । (१०४) वसिष्ठस्मृतिः । (१०५) ज्ञानस्वरोदय । (१०६) रामायण । (१०७) विश्रामसागर । (१०८) प्रेमसागर ॥

अबकी बार इस ग्रन्थमें दी हुई टीप्पणी आदिमें पृष्ठाङ्क निम्न लिखित-ग्रन्थोंमेंसे ली गई हैं:—

१. बीजक मूल, और बीजक टीका–त्रिजा–श्रीवेंकटेश्वरप्रेस, बम्बई, सन् १९१८ ई० ।
२. मूल पञ्चग्रन्थी, शीतलाप्रेस, बनारस, स्थान बुरहानपुर, सन् १९५६ ई० ।
३. पञ्चग्रन्थी टीका, टाइमटेबुलप्रेस, बनारस, स्थान बुरहानपुर, सन् १९५६ ई० ।
४. ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषदः, निर्णयसागर यन्त्र, मुम्बई, सन् १९३२ ई० ।
५. उपनिषद् अङ्क–२३ । १, कल्याण, गीताप्रेस, गोरखपुर, सन् १९५९ ई० ।
६. सांख्यदर्शनम्, श्रीवेंकटेश्वरप्रेस, बम्बई, सम्वत् १९५७ विक्रमीय ।
७. वैशेषिकदर्शनम्, चौखम्भा काशी, संवत् १९५६ विक्रमीय ।
८. न्यायदर्शनम्, स्वामिमेशीनयन्त्रालय, मेरठ, सन् १९१० ईसवी ।
९. तर्कसंग्रह मूल, ग्रन्थोदयप्रेस, अमदाबाद, संवत् १९४२ विक्रमीय ।
१०. मूल भागवत, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् १९९९ विक्रमीय ।
११. शारीरकमीमांसादर्शनम् (ब्रह्मसूत्राणि) गीताप्रेस, गोरखपुर, सं० १९९८ विक्रमीय ।
१२. ब्रह्मसूत्र भाषा टीका, श्रीवेंकटेश्वरप्रेस, बम्बई, संवत् १९६६ विक्रमीय ।
१३. मनुस्मृतिः, श्रीवेंकटेश्वरप्रेस, बम्बई, संवत् १९६७ विक्रमीय ।
१४. अष्टादशस्मृतिः, श्रीवेंकटेश्वरप्रेस, बम्बई, संवत् १९६५ विक्रमीय ।
१५. भगवद्गीता गुटका, गीताप्रेस, गोरखपुर, पञ्चम संस्करण ।
१६. सर्वदर्शनसंग्रह, श्रीवेंकटेश्वरप्रेस, बम्बई, संवत् १९६२ विक्रमीय ।
१७. सिद्धान्तशिरोमणेः, गोलाध्यायः, श्रीवेंकटेश्वरप्रेस, बम्बई, संवत् १९६२ विक्रमीय ।
१८. पञ्चीकरण, वेद धर्म सभा, भावनगर, सन् १९५४ ईसवी ।
१९. गोलतत्त्वप्रकाशिका, कल्याण, मुम्बई, संवत् १९८४ विक्रमीय ।
२०. तत्त्वानुसन्धान, श्रीवेंकटेश्वरप्रेस, बम्बई, संवत् १९६५ विक्रमीय ।
२१. वृत्तिप्रभाकर, श्रीवेंकटेश्वरप्रेस, बम्बई, संवत् १९५३ विक्रमीय ।
२२. विचारसागर, श्रीवेंकटेश्वरप्रेस, बम्बई, संवत् १९८० विक्रमीय ।
२३. सत्यार्थप्रकाश गुटका, आर्टप्रिंटिंगप्रेस, अजमेर, संवत् १९९२ विक्रमीय ।
२४. भूगोलकी तीसरी पुस्तक, इण्डियनप्रेस, इलाहाबाद, सन् १९१४ ईसवी ।
२५. तत्त्वार्थसूत्र, भदैनीघाट, बनारस, वि० नि० सं० २४७६ ।

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ तृतीय संस्करण की प्रस्तावना ॥ ❀ ॥

दोहाः—परम गुरु श्रीसद्गुरु, बन्दीछोर कबीर ॥
पारख गुरु पद बीजक, प्रगट कीन्ह मति धीर ॥ १ ॥
ज्ञान शिरोमणि आप हो, तब समान नहिं कोय ॥
रामस्वरूप बन्दन करौं, गुरु कि दया हित होय ॥ २ ॥
बन्दौं पारखि सन्त समाजू । जिनकी कृपा होय मम काजू ॥ ३ ॥

प्रिय सन्त-महात्माओ ! तथा सज्जन जिज्ञासु जनो ! संसारमें समयानुसार अनेक ऋषि, मुनि, तपस्वी, संन्यासी, योगी, ज्ञानी, भक्त, पण्डित, धार्मिक, साम्प्रदायिक. विविध पन्थ-पन्थाई प्रकट करनेवाले अनेक सन्त-महात्मागण पूर्वमें हो गये । तथा वर्त्तमानमें भी उनके अनुयायी बहुतेक हैं; ऐसा आप लोगोंको विदित ही होगा ॥

परन्तु उन सब महात्माओंका सिद्धान्त, जड़-चैतन्य मिश्रितरूपसे, अद्वैत, द्वैत, विसिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत आदि अनेक भ्रमपूर्ण कल्पित हैं। परन्तु वैसे सिद्धान्त कायम करके वे स्वयं भूले तथा अन्य लोगोंको भी भ्रमाये; इसलिए उनकी विशेषता पारखी सन्त समाजमें नहीं हुई; और हो भी नहीं सकती है ॥ तहाँ कहा भी है:—

साखीः—"साधु-साधु सबहीं बड़े । अपनी-अपनी ठौर ॥
शब्द विवेकी पारखी । ते माथेके मौर ॥६०॥"

॥ टकसार, पञ्चग्रन्थी । साखी-६० । नं०-१८१ ॥

भावार्थः—ऐसा है कि षट् दर्शन भेषोंके साधु सर्व अपने-अपने सिद्धान्त और मान-मर्यादाओंमें श्रेष्ठ कहलाते हैं । परन्तु अनेक कल्पना, भास, अध्यास, अनुमान आदिमें वे भूल करके आवागमनके ही अधिकारी बने; और जिन्होंने वेद, शास्त्रादि वाणी तथा खानी जालोंको यथार्थ परख करके उसके अध्यास मानन्दियोंको त्याग दिये हैं, विवेक-द्वारा जड़-चैतन्यका यथार्थ निर्णय करके जड़ासक्तियोंको परित्यागकर चैतन्य बोध पारखमें स्थिति किये हुए जीवन्मुक्त सन्त (पारखी सन्त) जगत्‌मेंके सभी ज्ञानियोंमें शिरमौर सर्वश्रेष्ठ हैं ॥

अनादि कालके जगत्‌में यथार्थ चैतन्य सिद्धान्त पारख बोधका सर्व प्रथम प्रकाश करनेवाले सद्‌गुरु बन्दीछोर श्रीकबीरसाहेब पारख प्रकाशी आदिगुरु हुए। आपकी ही दयासे जगत्‌में जिज्ञासु जीवोंको पारखका बोध मिला। इसीसे आप सर्वसे श्रेष्ठ ज्ञानियोंमें शिरोमणि परमपूज्य हुए। आपका सत्य निर्णय उपदेशरूपमें "मूल बीजक सद्‌ग्रन्थ" जगत्‌में प्रख्यात है। "बीजक" का सत्य निर्णय पारख सिद्धान्त दर्शक टीकाकार बुरहानपुर कबीरपन्थ गद्दीके प्रथमाचार्य्य वर्य सद्‌गुरु श्रीपूरणसाहेबजी हुए। आप महान् शोध-बोधवाले परम पारखी सद्‌गुरु प्रसिद्ध हो गये। आपके गद्दी स्थान बुरहानपुर, नागझिरी, श्रीकबीर निर्णय मन्दिरमें परम्परासे श्रीसद्‌गुरु श्रीकबीरसाहेबका पारखबोधमें निष्ठावन्त पारखी सन्त होते ही आ रहे हैं॥

उन्हीं परम्परागत पारखी सन्तोंद्वारा पारख सिद्धान्तका प्रचार-प्रशार होती चली आ रही है। अब (सन् १६४६ ई०) से करीब २४ वर्ष पूर्व बुरहानपुर शुभ स्थानमें पारखनिष्ठ सन्त-महात्मा आचार्य्य श्रीकाशीसाहेबजी परम वैराग्यवान् विलक्षण तीक्ष्ण बुद्धिवाले, शोध-बोधमें परम प्रवीण, परम पुरुषार्थी, परम पारखी श्रीकबीरसाहेबके गुरुपदमें स्थित हुए हैं। यह "निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन" नामक सद्‌ग्रन्थ आपकी ही लेखनीसे लिखित सत् पुरुषार्थका 'अमर फल' है। वैसे ही "तत्त्वयुक्त निजबोध विवेक" "सत्यज्ञान बोध नाटक" आदि अन्य सद्‌ग्रन्थ भी आप रचना कर दिये हैं। सो सब वर्त्तमानमें छपकर प्रकाशित हैं॥

प्रस्तुत सद्‌ग्रन्थमें ग्रन्थकर्त्ताने वेद, शास्त्र, स्मृतिः, पुराण, कुरान, बाइबल, आदि ग्रन्थोंके प्रमाण सहित प्रसिद्ध मुख्य-मुख्य सर्व सिद्धान्तोंका यथार्थ रीतिसे निर्णय करते हुए सत्यासत्यका विवेचन पूर्णरूपसे दर्शा दिये हैं। और विविध विषयोंको भी प्रकरणोंके अनुसार सरल रीतियुक्त सत्यन्यायसे यथार्थ सत्य निर्णय करके दर्शा दिये हैं॥

जड़-चेतनका भिन्न-भिन्न गुण-लक्षण, आकार, धर्म, क्रिया, शक्ति, मेल-मिलाप आदि पूर्ण तौरसे निर्णय किये हैं। और योगी, ज्ञानी, भक्त, षट् दर्शनोंकी कसर गौणता किस प्रकारसे है? सो प्रमाण सहित दर्शाकर तथा पारख प्रकाशी आदिगुरु बन्दीछोर श्रीकबीरसाहेबकी पारख

सिद्धान्तकी ही विशेषता मुख्यता कैसे है ? सो भी यथार्थ रूपसे प्रमाण सहित "बीजक सद्ग्रन्थ" की सत्य सिद्धान्तको प्रतिपादन करते हुए समझाये हैं।

ऐसे यह सद्ग्रन्थ जिज्ञासु मनुष्योंको सर्व प्रकारसे उपयोगी रत्नवत् बना है। विचार पूर्वक एकबार सम्पूर्ण देखने-पढ़नेसे भी बहुत कुछ भेद समझनेमें आ जायगा।

प्रथम बार यह सद्ग्रन्थः सन् १९२२ ई० में सद्गुरु श्रीकाशीसाहेबजी ने ही छपा करके प्रसिद्ध कर दिये थे। पश्चात् ईसवीसन् १९३८ में सद्गुरु श्रीलालसाहेबजीने दुबारा कुछ सुधार करके बुरहानपुरमें ही छपवा करके प्रकाशित किये थे। अबकी बार भी उपर्युक्त टिप्पणी आदि रख कर छपा करके दिल्लीसे प्रकाशित की गयी है। इसमें भी छपाई आदिमें टाइप वगैरह की जो-जो त्रुटियाँ हो गई होवें, उसको विवेकी सन्त-महात्मा लोगोंने सुधार कर पढ़नेका कष्ट उठावेंगे॥

कबीर साहेब पारखि सद्गुरु, परख प्रकाश कियो सोइ जगमें॥
पारखि सन्त प्रचार करें सोइ, जिज्ञासुन सत्य लगावत मगमें॥
सार असार लखाय यथारथ, धोख मिटाय टिके निज पगमें॥
"रामस्वरूप" पढ़ो सतग्रन्थ हि, भूल मिटै गुरु पारख मगमें॥१॥

मानिकपुरा, दिल्ली। } पारखी सद्गुरुका अनुचरः—
ता० २२-१२-१९४६ ई०। } —रामस्वरूपदास।

भजनः—धनि ! धनि ! गुरू हमारे !, पारखि महान पाया॥
गुरु भक्ति प्रीति मुझको, निजरूप सो लखाया॥ टेक॥
ऐसा न कोइ देखा, अति ही दयालु दाया॥
पारख सहजमें देकर, आवर्णको हटाया॥ १॥
हंस स्वरूप साँचे, जस सन्त गुण कहाया॥
परतत्त्व सद्गुरू पद, बलिहारि सिर झुकाया॥ २॥
बड़ भागसे हि दर्शन, पहिचान सो कराया॥
करिके कृपा हि गुरुवर, सब भेद को बताया॥ ३॥
मानन्दि सब निछावर, गुरुके चरण चढ़ाया॥
रामस्वरूप निज पद, मुक्ती स्थिती रहाया॥ ४॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

पारखी सन्तोंके सत्य निर्णयका उपदेश, सद्ग्रन्थरूपमें प्रकाश ।

१).३८ सद्ग्रन्थ बीजक मूल-मात्र अजिल्द । २).१२ सजिल्द (१)

३).५० सद्ग्रन्थ पञ्चग्रन्थी मूल, षट् ग्रन्थ सहित मूल-मात्र । (२)

१)— सद्ग्रन्थ संयुक्त षट् ग्रन्थः मूल-मात्र । ... (३)

२१)—सद्ग्रन्थ पञ्चग्रन्थी (टीका सहित) । ... (४)

१५)— ,, संयुक्त षट् ग्रन्थः (टीका सहित) । (५)

४)— ,, निर्णयसार (टीका सहित) । ... (६)

४).५० ,, वैराग्यशतक (टीका सहित) । ... (७)

१)— ,, एकईस प्रश्न तथा पारख विचार ग्रन्थः(सटीक)। (८)

४).७५ ,, श्रीकवीरपरिचय साखी तथा ग्यारह शब्द ग्रन्थः (टीका सहित) । (९)

७)— ,, निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन । ... (१०)

३)— ,, तिमिर भास्कर (बड़ा) । ... (११)

२).५० ,, तत्त्वयुक्त निजबोध विवेक । ... (१२)

१).७५ ,, सत्यज्ञान बोध-नाटक । ... (१३)

).१२ ,, जड़ चेतन भेद प्रकाश । (गुटका) । ... (१४)

).३१ ,, तिमिर भास्कर का नमूना । (गुटका) । ... (१५)

).२५ ,, मूल सन्ध्यापाठ मात्र । ... ... (१६)

१).२५ ,, सन्ध्यापाठ (टीका सहित) । ... (१७)

).३८ ,, न्यायनामा-बड़ा दीगर (टीका सहित) । (१८)

१).३८ ,, श्रीबालक भजन माला । ... ... (१९)

).७५ ,, स्वरूप भजन माला ग्रन्थः । ... (२०)

).१० ,, शान्ति सन्देश । (गुटका) । ... (२१)

).२० ,, बंसू तिमिर भास्कर । ... ... (२२)

[ऊपर लिखित सब ग्रन्थः हिन्दी भाषामें छपी हुई हैं ।]

पुस्तक प्राप्ति स्थानः—**रामस्वरूपदासजी, आचार्य कबीरपन्थ ।**

गद्दीस्थान—श्रीकबीर निर्णय मन्दिर, मुकाम—नागझिरी मोहल्ला ।

डाकघर—बुरहानपुर । जिला—निमाड़ (खण्डवा), [मध्यप्रदेश]

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन सद्ग्रन्थः कीः— ॥ ❀ ॥

हिन्दुस्तान तथा अन्य देश—देशान्तरोंमें विख्यात सर्वश्रेष्ठ सन्त शिरोमणि महात्मा सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबको कोई बिरला ही नहीं जानता होगा। आप सत्यन्यायका पारखपद दर्शक "बीजक" ❀ नामक सद्ग्रन्थ बनाय जगत्में प्रकट कर दिये हैं। उसकी विस्तारयुक्त टीका (त्रिजा) [इस समय सं० १९७२ वि०से] अन्दाज अस्सी † वर्षोंके पीछे (पूर्व ही) जिसको "जिला खण्डवा, शहर बुरहानपुर, श्रीकबीर निर्णय मन्दिर, नागझिरी स्थान निवासी सन्त—महात्मा बुरहानपुर कबीरपन्थ गद्दीके प्रथम आचार्य्य वर्य

❀ बीजक मूल सद्ग्रन्थः जो कि, सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कृत सत्योपदेशरूप पद्य हैं। उसकी विस्तारयुक्त टीका सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबजीने किये हैं। जब वै टीका तैय्यार किये, और उनके पश्चात् जब बम्बईमें प्रेसमें छपायी गयी, तो वह टीका बनके छपने तक करीब त्रिहत्तर वर्ष व्यतीत हुए थे, ऐसा प्रमाण मिलता है॥

† निर्णयसार चौपाई नं०—६१ में कहा है:—"पक्की देह प्रथम हंसाकी। बीजक टीकामें सब भाखी॥" —इसके प्रमाणसे निर्णयसार बननेके पूर्व ही बीजककी टीका (त्रिजा) बन चुकी थी। वि० सं० १८९२ चैत्र शुक्ल १० को निर्णयसार सद्ग्रन्थ समाप्त होनेका प्रमाण लिखी है। फिर अवशिष्ठ बीजक साखीकी टीका लिख कर समाप्त होनेकी मिति वि० सं० १८९४ दी गई है। इस प्रकार वि० सं० १८९२ से वि० सं० १९७२ तक पूरा अस्सी वर्षोंका समय व्यतीत हो जाता है। निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन सद्ग्रन्थ वि० सं०१९७२में ही लिखकर समाप्त हो चुकी थी। उसी वक्त ग्रन्थकर्त्ताने भूमिका भी लिखी है। इसलिये ८० वर्षोंके पीछे टीका निर्माण होनेको जो लिखे हैं, सो यथार्थ है; ऐसा जानना चाहिये॥ —सम्पादक॥

सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबजी निर्माण किये ।" आप बीजकके सिद्धान्तानुसार "निर्णयसार" और "वैराग्यशतक" ये अन्य दो सद्ग्रन्थ भी बनाय दिये हैं। गया निवासी सन्त श्रीरामरहस साहेब कृत "पञ्चग्रन्थी" और पटना जिलामें फतुहा निवासी सन्त श्रीगुरुदयाल साहेब कृत "कबीरपरिचय साखी, तथा ग्यारह शब्द" समेत ये दो और ग्रन्थ बीजकका ही सिद्धान्त कायम रखकर निर्माण हुए हैं। पूर्वोक्त सब ग्रन्थ अब छपकर प्रसिद्ध हो चुके हैं। परन्तु निष्पक्ष यथार्थ परीक्षावान सन्त बिना तिन ग्रन्थोंका रहस्य संयुक्त बोध होना दुर्लभ है। इसलिये अपने—अपने बुद्धि-प्रकाशसे भिन्न—भिन्न अर्थ हो जानेसे सत्यासत्य न्याययुक्त पूर्ण विचार वर्त्तमानमें किसीको प्राप्त नहीं होता है। वह सत्यज्ञान लुप्त हो, बीजकका ज्ञान छूट जानेसे कबीरपन्थमें भी साम्प्रतमें भिन्न—भिन्न धर्मोपदेशक आचार्योंके नामोंसे बहुत ही पन्थ प्रचलित हुए हैं, ऐसा सबोंको विदित ही होगा। वैसे ही ब्राह्मण तथा साधु कहानेवाले भेषधारी जगत्में सद्गुरु बनकर, झूठ कल्पनाके पाखण्डरूप नाना उपदेश दे रहे हैं। अनेक मार्ग, पन्थ, और मत प्रकट करके गुरु तथा शिष्य मण्डल सहित विविध कर्मरूप भ्रमजालमें पड़े हैं। अपने—अपने मतोंका दृढ़ अभिमान धारण कर पूर्ण पक्षवादी बने हुए हैं। इसलिये बीजक सद्ग्रन्थका निष्पक्ष सत्यज्ञान प्राप्त नहीं होनेसे मनुष्य भ्रमसे छूटते नहीं। यही न्यूनता देखकर "निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन" नामक यह छोटा-सा ग्रन्थ यथार्थ वक्ता पारखी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब तथा अन्य सत्यन्यायी विवेकी पारखी सन्तोंकी कृपा और कितनेक ग्रन्थोंके प्रमाणोंसहित बीजकके सिद्धान्तानुसार मेरी अल्प मतिसे वर्णन किया गया है ॥

इस ग्रन्थमें परमात्मा, ईश्वरादि जगत् कर्त्ता मानना केवल मनुष्य जीवोंकी कल्पनामात्र ही ठहरनेसे वह किसी भी मतसे सिद्ध नहीं होता; ऐसा श्रुतिः, स्मृतिः, शास्त्रादि प्रमाणोंसे तथा अनेक युक्तियोंसहित कथन किया गया है। तहाँ श्रुतियोंका प्रमाणः—

'जीवः परमात्मनन्न भिद्यते।' "अयमात्मा ब्रह्म ॥" (माण्डूक्य० २।) (बृह० २।५।१६। बृह० ४।४।५) "अहं ब्रह्मास्मि ॥" (बृहदा०१।४।१०) "तत्त्वमसि ॥" (छा०उ०प्र०अ० ६। खण्ड ८ के मन्त्र-७ से खंड१६ तक) ॥

अर्थः—जीव परमात्मासे जुदा नहीं ॥ यह जीवात्मा ही ब्रह्म है ॥ मैं ब्रह्म हूँ ॥ वह ब्रह्म तू ही है ॥

परन्तु ब्रह्म वा परमात्मा अन्तर-बाहर व्यापक, अर्थात् जगदाकाररूप ही ठहरनेसे यह लक्षण अनेक चैतन्य जीवोंमें नहीं घटता है ॥ अथवा स्मृतिः प्रमाणः—

अर्द्ध श्लोकः—"ममैवांशो जीवलोके, जीवभूतः सनातनः ॥ ७ ॥"
॥ भगवद्गीता, अध्याय-१५ । अर्द्ध श्लोक-७ ॥

अर्थः—श्रीकृष्ण कहते हैं कि, इस जीवलोकमें वा जगत्में सनातन-अविनाशी-सर्व जीव मेरे ही अंश आत्मस्वरूप हैं ॥

परन्तु अविनाशी, अनेक चेतन जीवोंको अंश माननेसे तत्त्वोंके कार्य अनेक देहवत् वे नाशवान् तथा जड़ ठहरते हैं। इससे यह लक्षण भी नित्य जीवोंमें नहीं तुलता; और प्रमाणः—

साखीः—"जीव बिना नहिं आतमा। जीव बिना नहिं ब्रह्म ॥
जीव बिना शीवो नहीं। जीव बिना सब भर्म ॥ २५६ ॥"
॥ कबीरपरिचय साखी। साखी-२५६ ॥

अर्थः—श्रीगुरुदयाल साहेब कहते हैं कि, जीव ही आत्मा, ब्रह्म वा शिव बनता है। इसलिये चैतन्य जीव बिना सर्व पण्डित, महात्मादि निर्जीव तत्त्वोंके भासको ही दूसरा कर्त्ता मान रहे हैं ॥

और बीजकमें कहा है; सुनिये !:—

साखीः—"जो जानहु जग जीवना । जो जानहु सो जीव ॥
पानि पचावहु आपना । तो पानी माँगि न पीव ॥११॥"
॥ बीजक, साखी–११ ॥

अर्थः—सद्गुरु श्रीकबीर साहेब कहते हैं कि, जगत्में जगजीवन जीवनकला, चैतन्य सर्व जीव ही मुख्य हैं। और देह सहित पञ्चतत्त्वोंका ब्रह्माण्ड निर्जीव–जड़–हैं। परन्तु 'पानी' अर्थात् वीर्यकी प्रबलतासे विषय सुखकी इच्छा जो स्त्री-सम्भोगकी कामवासना है, और वाणीके प्रमाणसे कल्पित कर्त्ता प्राप्तिके लिये मुक्तिकी ज्ञानवासना, तिनको यदि सत्सङ्गद्वारा भूने बीजवत् कोई बना देवेंगे, तो अन्य कर्त्ताकी प्राप्तिका उपदेश वे मनुष्य किसीसे ग्रहण नहीं करेंगे॥

इन प्रमाणोंसे अनेक, अविनाशी चैतन्य जीव सहित पञ्च जड़ तत्त्वरूप जगत्का मालिक या दूसरा श्रेष्ठ जगत् कर्त्ता कहीं है, ऐसा मानना केवल मनुष्योंकी कल्पना ही सिद्ध होती है। और निष्पक्ष, सत्यज्ञान देनेमें समर्थ, देहधारी, मनुष्यरूपमें कायावीर कबीर श्रीसद्गुरुदेव सर्वश्रेष्ठ हैं। ईश्वर कर्त्ता आदि की भ्रम कल्पनाओंको परखानेवाले वे पारखी सद्गुरु परमपूज्य, प्रत्यक्ष पारखरूप सर्वोपरि हैं॥

इस ग्रन्थमें ऐसा निर्णय हुआ है कि, सब ब्रह्माण्ड उत्पत्ति–प्रलय रहित अनादि है। चार खानियोंके देहधारी, अनन्त चेतन जीव अविनाशी रहनेसे स्वरूपसे अनादि हैं। सर्व जीवोंके शरीरोंका माना हुआ आसक्ति वा अभ्यासरूप देहसम्बन्ध तथा देह, घट–पटादि पृथ्वीपर बने हुए तत्त्वोंके कार्यरूप अनेक पदार्थ प्रवाहरूप अनादि, अर्थात् उपजते–विनशते चले आते हैं। निराकार पोलरूप या अनेक शून्यस्वरूप वा अनेक छिद्ररूप आकाशतत्त्व, स्थूल, और

सूक्ष्म स्वरूप पृथ्वी, जल, और वायुतत्त्व, विशेषरूप स्थूल तेजस्वरूप सूर्य, और सूक्ष्म सामान्यरूपसे सबमें स्थित तेजतत्त्व और ब्रह्माण्डमें स्थित चन्द्र, तारागणादि स्वरूपसे अनादि हैं। वातावरणमें व्यवहार करनेवाले अन्य पृथिवी आदि चारों तत्त्वोंका "परस्पर संयोगरूप मिलाप, तिनके आकार, धर्म, गुण, शक्तियाँ, और क्रियाएँ" ये षट् भेद स्वरूपसे अनादि हैं। सर्व जीवोंके शरीरोंका अध्यासरूप देह-सम्बन्ध, अन्तःकरण पञ्चक, ज्ञानेन्द्रिय पञ्चकादि देहोपाधिसे होते हुए सुख—दुःख तथा इच्छाशक्तियाँ, और क्रियाएँ, ये चार भेद प्रवाहरूप अनादि हैं। सत्यन्यायी सद्गुरु श्रीकबीर साहेबरूप पारखी सद्गुरुका सत्सङ्ग तथा काया, वाचा, मनसे या तन, मन, धनसे चैतन्य साधु-गुरु त्यागी सन्तोंकी उपासनायुक्त सेवा करके जिज्ञासु मनुष्योंको यदि "मैं हंस जीव अविनाशी, सत्य हूँ।" ऐसी उपदेश द्वारा पारखदृष्टिकी यथार्थ धारणा जड़ासक्ति रहित हो जावै, तो वे देहोंके प्रारब्धमात्र व्यवहारमें विवेक, वैराग्य, सन्तोषादि शुद्ध रहनीसे जगत्में विचरते रहेंगे। अन्तमें प्रारब्धभोग सहित आयुकी समाप्ति होनेपर तिनकी देहें आप ही छूट जावेंगी। अनन्तर ज्ञानेन्द्रियाँ, अन्तःकरण पञ्चक, साक्षी-भास, सुख—दुःखादि सर्व देहोपाधियाँ तिनकी छूट जानेसे वे अविनाशी, अनादि चैतन्य हंस देहयुक्त इन्द्रियादि साधन नहीं रहनेसे अध्यासवश जड़ तत्त्वोंको अपनी चेतानेकी शक्ति—सत्ता—देनेसे रहित, क्रिया रहित, देहोपाधि रहित, पारखप्रकाशी या पारखधर्ममें वा निज ज्ञानगुणमें अग्नि-दाहवत् नित्य-सम्बन्धसे जगत्के साक्षी रहित निज ज्ञानप्रकाशमें स्वयंसुखी अर्थात् जन्म—मरणादि दुःखोंसे रहित स्थित रहकर जड़ देहोंके बन्धनोंसे रहित वे विदेहमुक्त सदैवके लिये हो जावेंगे॥

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी, परमहंस तथा सर्व भेषधारी साधु; अथवा गृहस्थ—संसारी—लोग जिनका स्त्री-सम्भोग विषय-विलासका अध्यास अन्तर—बाहरसे सम्पूर्ण छूटा है। और शुद्ध चालसे न्यायधर्मयुक्त चलते हैं, तिन्होंका ही ज्ञानमें लक्ष होनेका चिह्न है। इसलिये वे इस जन्ममें, अथवा बारम्बार नरदेह धरकर अवश्य कोई समय जीवन्मुक्त हो जायेंगे, ऐसा निश्चयसे जानना चाहिये। परन्तु नरदेहमें जिनकी मैथुनकी भोगाशक्ति नहीं छूटी, वे संसारी और भेषधारी मनुष्य पाप—पुण्योंके अनेक कर्मानुसार न्यून-अधिक पशु आदि खानियाँ भोगकर फिर नरदेहोंमें जीवन्मुक्त होनेके लिये अवश्य आ जायेंगे। ऐसा यथार्थ निर्णयरूप बीजकका सत्यबोध इस ग्रन्थमें वर्णन हुआ है॥

विशेष सत्सङ्गके अधिकारी मनुष्य एक बार लक्ष पूर्वक इसको सम्पूर्ण पढ़ जानेसे इसका मर्म समझ सकेंगे। सर्व ग्रन्थ प्रश्नोत्तररूपसे बने तहाँ तक सरल और सुलभ भाषामें लिखनेका प्रयत्न किया गया है। पक्षरहित, सत्यज्ञान शोधक, जिज्ञासुजन तथा सर्व सन्त—महात्मा हंसवत् सत्यन्याय ग्रहण करेंगे, ऐसी मुझे आशा है। यदि कहीं भाषाकी रचनादि अशुद्धियाँ रह गई हों, तो महात्मा पुरुष मेरी तुच्छ बुद्धिकी ओर दृष्टि न देकर, सुधार लेनेका कष्ट उठावेंगे, यही अन्तिम विनय है॥

पारखी सद्गुरु और पारखी सन्तोंका चरणरजः—

ग्रन्थ निर्मित स्थानः—
बुरहानपुर।
सं० १९७२ वि०।
सन् १९१५ ई०।

—साधु काशीदास।

॥ इति निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन सद्ग्रन्थकी भूमिका सम्पूर्णम् ॥
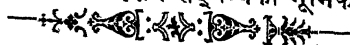
॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ अथ निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन सद्ग्रन्थः की— ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ विषयानुक्रमणिका वा प्रश्नानुक्रमणिका वर्णन ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ जगत् कर्त्ता दर्शन ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ अथ प्रथम प्रकरण प्रारम्भः ॥ १ ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ अथ सांख्य मत वर्णन ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ अथ वैशेषिक और न्याय मत वर्णन ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ अथ आर्य समाज मत वर्णन ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ अथ योग मत वर्णन ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ अथ वेदान्त मत वर्णन ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ अथ द्वैत मत वर्णन ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ अथ श्रीकबीर मत वर्णन ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ अथ ईसाई मत वर्णन ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ अथ मुसलमान मत वर्णन ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ अथ जैन मत वर्णन ॥ ❀ ॥

॥❀॥ अथ अनेक ब्रह्माण्ड कलाओंको कर्त्ता मानना वर्णन ॥❀॥

॥ ❀ ॥ इति जगत् कर्त्ता दर्शन प्रथम प्रकरण समाप्तम् ॥ १ ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ नास्तिक मत दर्शन ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ अथ द्वितीय प्रकरण प्रारम्भः ॥ २ ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ जीवोंके लक्षण मुक्त दशादि दर्शन ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ अथ तृतीय प्रकरण प्रारम्भः ॥ ३ ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ अथ जीवोंके गुण-लक्षणोंका वर्णन ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ अथ प्रत्यक्षादि अष्ट प्रमाण वर्णन ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ इति श्री निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन सद्ग्रन्थः की—विषयानुक्रमणिका वा प्रश्नानुक्रमणिका वर्णनम् सम्पूर्णम् ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

(पारखनिष्ठ सद्गुरु आचार्य्य श्री काशीसाहेब विरचित ।)

पारख स्वरूप सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका वचनामृतरूप

बीजक सद्ग्रन्थानुसारः—

निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन ।

(निष्पक्ष प्रश्नोत्तर सम्वाद)

॥ ❀ ॥ निष्पक्ष निर्णय सद्ग्रन्थः प्रारम्भः ॥ ❀ ॥

ग्रन्थके प्रारम्भमें अपने इष्टकी बन्दना करना चाहिये, तहाँ कहा है:-

"निर्विघ्नसमाप्तिकामो मङ्गलमाचरेत् ॥"

॥ तत्त्वानुसन्धान, परिच्छेद १ ॥ पृष्ठ १२ ॥

अर्थः—निर्विघ्नतासे ग्रन्थकी समाप्ति हेतु इष्टकी मङ्गलरूप बन्दना करना चाहिये ॥

इस प्रमाणसे मैं दीन साधु 'काशीदास' ग्रन्थके प्रारम्भमें श्रीसद्-गुरुदेवकी बन्दना करता हूँ ! ॥

॥ ❀ ॥ मङ्गलाचरण ॥ श्लोक ॥ श्रीसद्-गुरुदेव स्तुति ॥ ❀ ॥

तिष्ठति ज्ञानरूपेण, नररूपं कबीर भो ! ॥
वासनाजाल सर्वत्र, कृपादृष्टि विनश्यति ॥ १ ॥
तं कबीरं गुरुं वन्दे, ज्ञानिनामधिकं भवः ॥
जड़ाध्यास महाबन्धं, बोधज्ञानं विमुच्यते ॥ २ ॥

॥ ❀ ॥ टीका, दोहाः—॥ ❀ ॥

नरतनधारी रूप परख, गुरु कबीर ! मतिधीर॥
वाणि-खानि बहु वासना, हरें कृपा भव भीर ॥ १ ।
बन्दौं पारखी कबीर अस, ज्ञानिनमें शिरमौर ॥
जड़ाध्यास बन्धन प्रबल, तोरें परख करि गौर ॥ २ ।

॥ ❀ ॥ श्री सद्-गुरु स्तुति, कवित्तः—॥ ❀ ॥

भूमि जल तेज वायु, पञ्चम ❀ गगन तत्त्व ।
षट् वस्तु जीव मिलि, अनादि लखात हैं ॥
नारी पुत्र धन गृह, आदि बहु खानि जाल ।
लोक देव ब्रह्म ईश, शब्द जाल घात हैं ॥
पर्दा टारि दुई जाल, परख दृष्टि काटि देत ।
साहेब कबीर गुरु ! शिरमौर शान्त हैं ॥
'काशीदास' बन्दौं पद, परख गुरु बन्दीछोर ! ।
जीव गुणी परख गुण, नित्यको जनात हैं ॥ १ ॥

॥ ❀ ॥ सोरठाः—॥ ❀ ॥

बन्दौं पद शिर नाय, सर्वोपर कबीर गुरु ! ॥
बीजक ग्रन्थ बनाय, न्याय कियो सतदृष्टि दे ॥२॥

❀ शून्य अवकाशरूप अनेक छिद्र हैं। जिज्ञासुओं को बोध करनेके लिए गगन—अभावरूप आकाश तत्त्व कहा है। —सम्पादक।

बन्दौं साहेब पूरण, जिन बीजक टीका करी ॥
जगत जाल सम्पूर्ण, भ्रमटाटिको खोल दियो ॥३॥
बन्दौं सतपद पन्थ, रामरहस गुरु! प्रगट किये ॥
पञ्चग्रन्थी यह ग्रन्थ, निर्माणकरि भ्रम खोयसब॥४॥
'काशीदास' बन्दौं पद, साहेब रामसुख मम गुरु! ॥
पारख बोध गुरुपद, कृपादृष्टि दर्शाय प्रभु! ॥५॥

अर्थ स्पष्ट है ॥ इनका ही पूर्णतासे इस ग्रन्थमें वर्णन हुआ है ॥

॥ ❀ ॥ दोहाः—॥ ❀ ॥

आदिदेव सद्गुरु! नमों, प्रेम भक्ति उरधार ॥
दीन जानि संशय हरो, सत्य लखावहु सार ॥६॥

अन्वयः—सद्-गुरु, आदिदेव, प्रेम भक्ति उरधार नमों, (मुझे) दीन जानि संशय हरो, सत्य सार लखावहु ॥

अर्थः—(सद्-गुरु) इसमें 'सत्' और 'गुरु' ये दो शब्द हैं ॥

तहाँ सत् शब्दको प्रमाणः—

श्लोकः—"अन्तवन्त इमे देहा, नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ॥"

॥ भगवद्गीता, अध्याय २ । अर्द्ध श्लोक १८ ॥

अर्थः—अनेक शरीर नाशवान्–अनित्य–हैं, और देहधारी सर्व जीव नित्य हैं ॥

इस प्रमाणसे 'सत्' अर्थात् सदा जीवित रहनहार इससे अमर, सुख–दुःखादि ज्ञान जाननेवाले, शरीर, अन्तःकरण पञ्चक, इन्द्रियाँ तथा श्वासको चेतन सत्ता–चलन शक्ति–देनेवाले,

ऐसे अविनाशी, अनेक चेतन जीव सत्य हैं; और पञ्च तत्त्वोंके कार्यरूप शरीर नाशवान और जड़ हैं, ऐसा विवेकरूप सत्यन्याय है ॥

अब 'गुरु' शब्दमें प्रमाणः—

"गुकारोह्यन्धकारस्यात्, रुकारोन्तेज उच्यते॥"—गुरुगीता। अर्द्ध श्लोक २६॥

अर्थः—'गु' अन्धकारका नाम है, और 'रु' प्रकाशको कहते हैं ॥

इस प्रमाणसे 'गु' कहिये तमरूप अज्ञान या जड़ देहकी आसक्ति है। 'रु' कहिये उसी आसक्तिको मिटाय प्रकाशरूप पारख दृष्टिके शुद्ध ज्ञान दाता 'गुरु' हैं। अथवाः—

दोहाः—"गुरु साधु पद दीर्घ जग, हे शिष्य ! सबन परमान ॥"

॥ अर्द्ध दोहा २६५ ॥ गुरुबोध, पञ्चग्रन्थी नं० ५८७ ॥

अर्थः—श्री रामरहस साहेब कहते हैं कि, गुरुरूप दृढ़ वैराग्यवान् साधु और आपका पदरूप यथार्थ चैतन्य बोध सर्व जड़ देह भासके आसक्तिसे रहित श्रेष्ठ है, ऐसा हे शिष्य ! जगत् में सर्व महात्माजन प्रमाण करते हैं ॥

ये दो प्रमाणोंसे अनेक कल्पना, मानना, भास, अहङ्कार, ममता, पञ्च विषयोंकी आसक्ति इत्यादि अनेक जड़, लघु पदोंसे अतिशय गरुवा, सर्वसे श्रेष्ठ, चैतन्यपद या शुद्ध ज्ञानस्वरूप 'गुरु' हैं। अथवा लघु अर्थात् पाँच तत्त्वोंकी अनेक जड़ देहें और ब्रह्माण्डके कारणरूप जड़ तत्त्वोंसे निर्मित कार्यरूपसे अनेक जड़ पदार्थ हैं, और 'गुरु' अर्थात् चैतन्य, अनेक जीव हैं। परन्तु शरीररूपी जड़ माया वा ब्रह्माण्डमें स्थित अनेक जड़ पदार्थोंकी माया, तिनका अहङ्कार, ममतादि धारण कर, जड़ देह ही हम सत्य स्वरूप हैं, ऐसे दृढ़ माननेवाले मनुष्यादि सर्व जीव भ्रमिक

हुए हैं। तिनको सत्यबोध दाता, अर्थात् सत्यज्ञान प्रकाशक, यथार्थ मनुष्यरूप 'देव' वा साधु गुरु आप श्री सद्-गुरु हैं ॥

(आदिदेव) इसमें आदि शब्दको प्रमाण:—

श्लोक:—"गुरुर्देवो गुरुर्धर्मो, गुरौ निष्ठा परंतपः ॥
गुरोः परतरं नास्ति, नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥"

॥ गुरुगीता, श्लोक १३७ ॥

अर्थ:—गुरु ही देवता वा ईश्वर और गुरु ही धर्म, गुरुनिष्ठा ही परम तप, गुरुसे अन्य कोई भी श्रेष्ठ वस्तु पद नहीं, गुरुसे अन्य कोई तत्त्व श्रेष्ठ नहीं है ॥

इस प्रमाणसे जड़ देह बन्धनसे मुक्त करानेवाले 'गुरु' आदि-अनादि हैं। अर्थात् देह भावसे आदि, और चेतन जीव-स्वरूपसे अनादि हैं। अथवा नरदेहमें कब प्रगट हुए, सो अनादि कालका समय नहीं कहा जाता, (अर्थात् चेतन जीव नित्य होनेसे स्वरूपसे अनादि हैं। और नर तन धारण कर पारख बोधको प्रकाश किये, इसलिए गुरु का पारख स्वरूप बोध आदि है।), इसलिए गुरु आदि-अनादि हैं। और 'देव' अर्थात् ऐश्वर्य सहित ईश्वरका नाम है। परन्तु मायारूप, नाशवान्, जड़ ऐश्वर्ययुक्त गुरु नहीं हैं। किन्तु अविनाशी, नर तन धारी चेतन जीवोंको यथार्थ, निष्पक्ष, पारख बोध देनेवाले, दिव्य ऐश्वर्यवान् गुरु हैं। इसलिए ऐसे आदि-अनादि प्रत्यक्ष सर्वोपरि श्रीसद्-गुरु प्रथम भूतकालमें जीवन्मुक्त हो गये हुए, आप ही स्वयं सद्-गुरु श्री कबीर साहेबरूप सद्-गुरु प्रसिद्ध हुए। क्योंकि कायामें सकल माया-मोहादि विकारोंको त्यागे हुए शूर वीर, स्वयं प्रकाशी,

पारखी, परमपूज्य सद्-गुरुको ही सद्-गुरु श्री कबीर साहेब ! कहते हैं। अथवा चेतन जीवोंका शुद्ध स्वरूप पारख ही गुरुपदरूप सद्-गुरु श्रीकबीर साहेब है। वैसे ही बीजक ग्रन्थ बनाय, सत्यासत्य यथार्थ न्याय करके पारखपदका सत्योपदेश देनेवाले, निरूपण--रूपसे देहका कबीर ही नाम धरे हुए, प्रसिद्ध सत्यन्यायी, पारख सिद्धान्त प्रगटकर्त्ता काशीमें सन्त-महात्मा श्रीकबीर साहेब पारख-बोध दाता आदि गुरु सद्-गुरु हो गये। अथवा मूल बीजक सद्ग्रन्थके पारखबोध दर्शक टीकाकार, पारखी सन्त-महात्मा बुरहानपुर कबीर पन्थ गद्दीके प्रथमाचार्य्य सद्-गुरु श्रीपूरण साहेब पारख पदमें स्थित सद्-गुरु श्री कबीरसाहेबरूप पारखी सद्-गुरु हुए। ऐसे विरले ही देहधारी पारखी सन्त युग-युगसे सत्यका उपदेश देते ही चले आते हैं। ❀ तैसे ही मैं दीन, अधम, महा अपराधी शिष्यको सत्यबोध देनेवाले, राम जो सर्व योनियोंमें अनेक देहें धरके तिनमें रमे हुए रमैयाराम--चेतनजीव--तिसके स्वरूप प्रकाशकर्त्ता या पारखबोध दाता, मेरे सद्-गुरु पारखी सन्त गुरु श्री रामसुख साहेब हो गये। अथवा जितने पारखी सन्त पूर्व भूतकालमें हुए, अब वर्त्तमानमें हैं, तिनमेंसे पारख पदमें जो-जो स्थित हुए आप भी पारखी सद्-गुरुरूपसे सर्व सद्-गुरु श्री कबीरसाहेबरूप ही हैं ॥

(प्रेम भक्ति उर धार नमों) आपकी प्रेम सहित भक्ति

❀ खुलाशाः—अर्थात् सद्गुरु श्री कबीर साहेबसे पारख बोध सत्य सिद्धान्त प्रकाश होनेके बाद परम्परासे वही पारखका सत्य बोध प्रकाश होता ही चला आता है। सोई पारखी सन्तोंसे प्रचार-प्रसार हुई और होती रहती है। और १२ वर्ष का भी १ युग माना है।—सम्पादक।

हृदयमें धारण करके देह बन्धनसे छूटनेके लिये अभिमान रहित होकर, नीचे शिर नमाय, मैं देहका दास बना हुआ बुद्धिहीन 'काशीदास' सत्यप्रेमसे बन्दगी वा साष्टाङ्ग–दण्डवत् आपको बारम्बार करता हूँ ! (अर्थात् त्रयबार "साहेब बन्दगी ३" करता हूँ !) ॥

(मुझे दीन जानि संशय हरो) क्योंकि मैं दीन अर्थात् देहमें विषयासक्त होकर अनेक बार आवागमनका दुःख भोगता चला आया हूँ, और अनेक जड़ बन्धनोंसे छूटना चाहता हूँ। ऐसा मेरा सत्य हेतु जानकर मेरे सहित सर्व जीवोंका और जगत्-का दूसरा कोई कर्त्ता है; यह संशय आप मेरे बुद्धिको प्रकाशित करके निवारण कीजिये ॥

(सत्य सार लखावहु) सत्यन्यायरूप सारपदका पत्त रहित आप सत्य ज्ञान परखाय दीजिये ! ऐसा मैं दीनतासे प्रार्थना करता हूँ ! ॥

॥ ❀ ॥ इति मङ्गलाचरण श्री सद्गुरु स्तुति प्रकरण समाप्तम् ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

(पारखनिष्ठ सद्गुरु आचार्य्य श्रीकाशीसाहेब विरचित ।)

॥✻॥ निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन सद्ग्रन्थः ॥✻॥

जगत् कर्त्ता दर्शन ।

॥❀॥ अथ प्रथम प्रकरण प्रारम्भः ॥ १ ॥❀॥

प्रश्न (१) शिष्य प्रश्नके हेतुको प्रमाण देता हैः—

"कार्यात्कारणानुमानं तत्साहित्यात् ॥ १३५ ॥"

॥ सांख्य सूत्र १३५ । प्रकाश अध्याय १ ॥

अर्थः—कार्य–उत्पन्न हुए नाना पदार्थ–देख कर, कारणका (बनानेवाले का) अनुमान होता है; जैसे तेल को देखके तिल–पेड़ादिकों का अनुमान होता है, तद्वत् ॥

इस प्रमाणसे जगत्में जड़ तत्त्वयुक्त अनेक पदार्थ और अनेक, देहधारी चेतन जीव देखकर कोई एक तिनको उत्पन्न कर्त्ता आदि कारण है, ऐसा अनुमान होता है ? अथवा महात्मा पुरुष भी जगत्की उत्पत्ति वर्णन किये हैं, तिसको कैसे जानना, सो कृपा करके कहिये ? ॥

(१) उत्तरः—श्री सद्-गुरु कहते हैं कि, जगत्में कार्य पदार्थों को देख कर कारणका अनुमान प्रमाण मानते हैं, सो भी प्रत्यक्ष देखे हुए पदार्थोंसे ही सिद्ध होता है । जैसे रसोईके घरमें अग्निसे धुवाँ

निकलके नेत्रोंको दुःख देता है, वहाँ अग्नि और धुवाँ दोनोंको प्रत्यक्ष देखा है, तब कहीं पर्वतमें जलकी भाफको देखके उसे धुवाँ ही मानकर या दूरमें धुवाँ ही देखकर लोग अग्निका अनुमान प्रमाण करते हैं। तैसे ही जगत् कर्त्ता प्रत्यक्ष किसीने देखा नहीं, तब उस विषय अनुमान प्रमाण कैसा सिद्ध होगा ? कर्त्ताकी केवल कल्पना ही करनाहै। इसलिए कल्पित कर्त्ताका कार्य तत्त्वादि अनेक जड़ पदार्थ, और अनेक चेतन जीव अनुमान प्रमाणसे कैसे मानना ? यदि मनुष्य जीव जगत्में नहीं रहेंगे, तो प्रत्यक्ष या अनुमानादि एक भी प्रमाण कैसे सिद्ध होगा ? इस प्रश्नका पूर्णतासे उत्तर हम आगे स्पष्ट करके कहेंगे। परन्तु प्रथम यह कहिये ! कि आप जगत् कर्त्ताको कैसे मानते हो ? ॥

प्रश्न (२) शास्त्रोंको देखके और सत्सङ्ग द्वारा अनेक सिद्धान्तोंकी वाणी जैसी मैंने पूर्वमें सुनी है, वैसे ही कहता हूँ। कर्त्ता विषय कहा है:—

"पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् ॥"

॥ श्वेताश्वतर उपनिषद्। अध्याय ३। मन्त्र १५॥

अर्थः—जो कुछ पूर्वमें दृष्टिसे देखा है, अब दीख रहा है, और आगे दिखाई देगा, सो सब परमात्मा अधिष्ठानका ही स्वरूप है ॥

इस प्रमाणसे मैं कर्त्ताको चेतन पुरुष मानता हूँ ? ॥

(२) उत्तरः—यदि सर्व पदार्थरूप ही कर्त्ता चेतन पुरुष है, तो अनेक, देहधारी चेतनजीव और तत्त्वादि अनेक जड़ पदार्थ, ऐसे भिन्न-भिन्न क्यों प्रतीत हो रहे हैं ? इसलिए दृश्य जगत् अनादि

सिद्ध ठहरता है। यदि अकेला चेतन कर्त्ता जगत्‌को उत्पन्न किया है, ऐसा माने, तो तहाँ कहा है:—

श्लोक:—"सुवर्णाज्जायमानस्य, सुवर्णत्वं च शाश्वतम्।
ब्रह्मणो जायमानस्य, ब्रह्मत्वं च तथा भवेत् ॥"
॥ अपरोक्षानुभूति, श्लोक ५१ ॥

अर्थः—शङ्कराचार्यका कहना है कि, जैसे सुवर्णके अनेक भूषण सुवर्ण ही हैं, तैसे ही ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ संसार आकाररूप होकर फिर प्रलयमें ब्रह्मस्वरूप ही हो जाता है ॥

परन्तु जैसे उपादान कारण मिट्टीसे देहधारी कुम्भार घड़े बनाता है, तैसे अकेले निमित्त कारण चेतन पुरुषसे उपादान कारणवत् जड़ पञ्च तत्त्वोंकी उत्पत्ति सजातीय "सुवर्ण-भूषणन्याय" से विजातीय उत्पन्न हुई, कैसी मानना ? इसलिए जड़ पाँच तत्त्व स्वरूपसे अनादि ठहरते हैं ॥

श्लोक:—"अहं विकार हीनस्तु, देहो नित्यं विकारवान् ॥
इति प्रतीयते साक्षात्, कथं स्याद्देहक: पुमान् ॥"
॥ अपरोक्षानुभूति, श्लोक २३ ॥

अर्थः—शङ्कराचार्य कहते हैं कि, जीवात्मा विकार रहित और देह सदा विकारवान् है। ऐसी साक्षात् प्रतीति होती है, इससे जीवात्मा कैसे देहमय हो सकता है ? ॥

इस प्रमाणसे सर्व चेतन जीव विकारसे रहित अविनाशी हैं, और वे प्रत्यक्ष दृश्य देहधारी, अगणित हैं। तिनकी उत्पत्ति भी सुवर्ण-भूषणवत् मानना असम्भव दोषयुक्त है। इसलिए जड़ तत्त्वोंके कार्य रहित अनेक, देहधारी चेतन जीव स्वरूपसे अनादि ठहरनेसे सर्व जगत् भी स्वरूपसे अनादि सिद्ध है। यदि अविनाशी

चेतन जीव उत्पन्न भी हुए माने, तो जगत् कर्त्ता भी दूसरे चेतनसे उत्पन्न हुआ होगा ? परन्तु परस्पर एक चेतनको अन्य चेतनके उत्पत्तिकी अपेक्षा रहनेसे 'अन्योन्याश्रयदोष' आता है। अथवा और कहा है:—

साखी:—"कबीर जब यह जग नहीं, रहेउ एक भगवान् ॥
जिन यह देखा नजर सों, सो रहेऊ कौन मकान ? ॥" ❀

अर्थ स्पष्ट है ॥ ॥ साखी, कबीरपरिचय ॥ साखी १११ ॥

इस प्रमाणसे कहीं एक चेतन कर्त्ता है, तिसको जगत्में निर्णय करनेवाले और देखनेवाले देहधारी मनुष्य रहे बिना, कौन वर्णन कर सकेंगे ? इसीसे अनेक, अविनाशी चेतन जीव सहित पाँच जड़ तत्त्वोंका जगत् अनादि ही ठहरता है, ऐसा जानिये ॥

पूर्वोक्त जगत् कर्त्ता चेतन पुरुष मानना मनुष्योंकी कल्पना ही सिद्ध होती है ॥

प्रश्न (३) यदि कर्त्ता चेतन पुरुष नहीं ठहरता, तो तिस विषय और भी कहा है:—

श्लोक:—"स्थावरास्तत्र देहाः स्युः, सूक्ष्मा गुल्मलतादयः ॥"

॥ शिवगीता, अध्याय २। अर्द्ध श्लोक ३३ ॥

अर्थ:—स्थावर–उद्भिज्ज–खानीके वृक्ष, गुल्म, बेलि, तृण इत्यादि अङ्कुरजमात्र देहधारी सर्व जीव मुख्य जल और पृथिवी ये दो तत्त्वोंके संयोगसे पृथिवीको फाड़कर ऊपर निकल पड़ते हैं ॥

इस प्रमाणसे में कर्त्ताको जड़ मानकर पाँच जड़ तत्त्व भी

❀ साखी: -यह जगत् जब ना हता। तब रहा एक भगवान् ॥
जिन देखा यह नजर भरी। सो रहेउ कौन मकान ॥१११॥
॥ कबीर परिचय ॥

अनादि मानता हूँ। तिनके संयोग–वियोगसे या मिलन–बिछुड़नसे जगत्की उत्पत्ति और प्रलय होती रहती है ? ॥

(३) उत्तरः—यदि कर्त्ता भी जड़ और अनादि पाँच तत्त्व भी जड़, उन दोनोंको उपादान कारण जड़ माने, तो तिनके संयोगसे अनेक, अविनाशी, निमित्त कारण चेतन जीवोंकी उत्पत्ति मानना असम्भव दोषयुक्त है। क्योंकिः—

"जड़प्रकाशायोगात् प्रकाशः ॥१४५॥"—सांख्य सूत्र १४५। प्रकाश अ०१ ॥

अर्थः—जड़में जगत्की उत्पत्तिका ज्ञान ही नहीं ॥ अथवाः—

श्लोकः—"सर्वव्यापृतिकरणं लिङ्गमिदंम्याच्चिदात्मनः पुंसः ॥"

॥ विवेकचूड़ामणि। अर्द्ध श्लोक १०२ ॥

अर्थः—शङ्कराचार्यका कहना है कि, मनुष्योंका जो सर्व पदार्थोंके विषयोंका व्यापार होता है, वही चैतन्य जीवात्माका चिह्न है। अर्थात् बिना चेतन जीवके सर्व वस्तु विषयोंके व्यापार जड़ देहसे होते ही नहीं ॥

इन दो प्रमाणोंसे केवल संयोग–वियोगसे सर्व जगत् की उत्पत्ति और प्रलय करनेका ज्ञान तथा इच्छाशक्ति जड़में है नहीं। इसलिए अनेक चेतन जीव सहित सर्व जगत् अनादि सिद्ध है; क्योंकि कहा हैः—

"इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम् ॥"

॥ न्याय सूत्र १०। अध्याय १ ॥

अर्थः—इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, और ज्ञान, (जानना), ये गुण देहधारी जीवात्मामें रहते हैं ॥

इस प्रमाणसे वृक्ष, पहाड़, घर, मुर्दे, लक्कड़ इत्यादि पाँच तत्त्वोंके कार्यरूप जड़ पदार्थोंमें देहधारी चैतन्य मनुष्य तथा अन्य

देहधारी चेतन जीवोंके समान चलना, बोलना, सुख, दुःख, इच्छा, राग, द्वेष, नाना चतुराई, ज्ञान इत्यादि कोई लक्षण और भिन्न-भिन्न क्रियाएँ सर्वमें कभी दिखाई नहीं देते हैं। परन्तु देहधारी, सर्व चेतन जीव क्रिया तथा अनेक गुण—लक्षण सहित क्यों प्रतीत होते हैं ? स्थावर वृक्षादि खानी तत्त्वोंका कार्य जड़ है, इसका वर्णन आगे नास्तिक मत दर्शनमें होगा ॥

पूर्वोक्त प्रकारसे जड़ जगत् कर्त्ता मानना कपोल कल्पना ही ठहरती है। [अतः सो तो युक्ति प्रमाणसे अयुक्त कल्पित है] ॥

प्रश्न (४) यदि कर्त्ता जड़ नहीं ठहरता, तो उस विषय और भी कहे हैं:—

"सत्यानृते मिथुनीकरोति" ॥ इति श्रुतिः ॥

अर्थः—सत्य चेतन ब्रह्मसे सर्वज्ञ चेतन ईश्वर और अल्पज्ञ अनेक चेतन जीव तैसे ही मिथ्या मायासे—अज्ञानसे—अनेक कार्य-रूपसे जड़ देह, जड़ तत्त्व और अनेक जड़ पदार्थ उत्पन्न हुए; ऐसे जड़—चेतन दोनों मिलके संसारको उत्पन्न करते हैं ॥

श्लोकः—"यावत्संजायते किञ्चित्, सत्त्वं स्थावरजङ्गमम् ॥
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात् तद्विद्धि भरतर्षभ ॥"
॥ भगवद्गीता, अध्याय १३ । श्लोक २६ ॥

अर्थः—श्रीकृष्ण कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जो कुछ भी स्थावर, जङ्गम, (जड़—चेतन) वस्तु उत्पन्न होती है, सो क्षेत्र—प्रकृति—और क्षेत्रज्ञ—सर्वज्ञ पुरुष—दोनोंके संयोगसे है, ऐसे तू जान ॥

इन दो प्रमाणोंसे मैं जड़—चेतन संयोगवाला कर्त्ता मानता हूँ ? ॥

(४) उत्तरः—यदि कर्त्ताको जड़—चेतन संयोगवाला माने,

तो अनादि, जड़ तत्त्वरूप मायामें चेतनके साथ स्वयं संयोग करने का ज्ञान नहीं (तिसको पूर्वमें प्रमाण प्रश्न ३ में देखिये !) यदि शुद्ध चेतन ही जड़ मायाका संयोग कर्त्ता है, ऐसा माने, तो तहाँ कहा है:—

श्लोकः—'असङ्गः पुरुषः प्रोक्तो, बृहदारण्यकेऽपि च ॥"

॥ अपरोक्षानुभूति । अर्द्ध श्लोक ३६ ॥

अर्थः—शङ्कराचार्य कहते हैं कि, "असङ्गोऽयं पुरुषः" चेतन पुरुष असङ्ग और अक्रिय है, यह बृहदारण्यक उपनिषद् की श्रुति है ॥

इस प्रमाणसे शुद्ध चेतन पुरुष अक्रिय और असङ्ग रहनेसे जड़ मायाका संयोग कर ही नहीं सकता। अथवा ऐसे अविनाशी कर्त्तासे अविनाशी अनेक चेतन जीवोंकी उत्पत्ति होना भी असम्भव दोषयुक्त है। इसलिए अनेक देहधारी चेतनजीव सहित जड़ तत्त्वोंका दृश्य जगत् अनादि ठहरता है। यदि चेतन कर्त्ता स्वभावसे जड़ माया का संयोग करता है, ऐसा मान लिया, तो मुक्त जीव भी फिर बद्ध होंगे? और कर्त्तामें अनादि रोग वा स्वाभाविक भूल ठहरती है, इसलिए शास्त्र, उपदेश और मुक्तिके साधन सर्व वृथा बने हैं, ऐसा हो जायगा। यदि कर्त्ता जड़का संयोगवान् है, तो आप देहधारी, एक सिद्ध (पुरुषार्थी) मनुष्यवत् पृथ्वीपर रहनेवाला चाहिये। परन्तु आप किसीको दृश्य नहीं, इसीसे कल्पित ही सिद्ध होता है। यदि कर्त्ता जड़का संयोगवाला दृश्य भी माने, तो अनेक कर्म कर्त्ते दृश्य, देहधारी सर्व चेतन जीव भी अनादि ही ठहरते हैं। वैसे ही तिनको ठहरनेके तथा देह निर्वाहके लिए जड़ पाँच तत्त्वोंका ब्रह्माण्ड भी अनादि ही ठहरता है। यदि कर्त्ता जड़-चेतन संयोगवाला मान

लिये, तो जड़–चेतनयुक्त कारणवत् कार्यरूप जगत्की उत्पत्ति प्रतीत होना चाहिये। परन्तु कहीं देहधारी दृश्य चेतन जीव और कहीं केवल जड़ तत्त्व तथा तिनके कर्मरूप जड़ पदार्थ ही प्रतीत होते हैं, इस रीतिसे भी जड़–चेतनयुक्त कर्त्ता सिद्ध नहीं होता है ॥

पूर्वोक्त यथार्थ विचार करनेसे जड़–चेतन संयोगवाला जगत् कर्त्ता मानना अन्यायका कथन ठहरता है ॥

प्रश्न (५) यदि कर्त्ता जड़–चेतन संयोगवाला असिद्ध है, तो तिस विषयमें और भी कहा है:—

"आकाश एव तदोतं च प्रोतंचेति ॥ ७ ॥"

॥ बृहदारण्य उपनिषद् । अध्याय ३ । ब्राह्मण ८ । मन्त्र ७ ॥

अर्थ:—आकाशवत् निराकार, सर्वत्र अन्तर–बाहर व्यापक परमात्मा है ॥

इस प्रमाणसे मैं कर्त्ताको निराकार व्यापक मानता हूँ १ ॥

(५) उत्तर:—यदि कर्त्ताको निराकार व्यापक मानो, तो उसको निराकार आकाशवत् पोलाकार, जड़ ही मान लो! परन्तु निराकार पोलस्वरूप, व्यापक आकाशमें वैसे ही दूसरे निराकार, व्यापक कर्त्ताकी प्रतीति होना असम्भव है। और सीमा रहित माने हुए आकाशके बाहर तो उसकी प्रतीति मानना महा असम्भव है। जैसे प्रकाशकी अपेक्षासे अन्धकार, साकारकी अपेक्षासे निराकार और एकदेशी की अपेक्षासे व्यापक सर्वदेशी कहाता है। परन्तु सर्वको सिद्ध करनेवाले, जाननेवाले, (माननेवाले), देहधारी अनेक मनुष्य जीव भी प्रथम जगत्में अनादि ही चाहिए, इसलिए जगत् अनादि सिद्ध है। अथवा कहा है:—

"आकाशशरीरं ब्रह्म ॥ २ ॥"

॥ तैत्तिरीय उपनिषद् मध्ये शिक्षा उपनिषद् । अनुवाक ६ । मन्त्र २ में है ॥

अर्थः—जैसे आकाश व्यापक और क्रिया रहित है, तैसे ही चेतन ब्रह्म भी व्यापक और क्रिया रहित है ॥

इस प्रमाणसे जैसे निराकार आकाश व्यापक (यानी शून्यरूपसे सर्वत्र भरा हुआ व्यापक) और अक्रिय है, तैसे ही माना हुआ निराकार व्यापक कर्त्ता भी अक्रिय सर्वत्र व्यापक रहनेसे तिससे जगत्की उत्पत्ति बन ही नहीं सकती। पाँच जड़ तत्त्व और देहधारी, अनेक चेतन जीव भिन्न-भिन्न रहनेसे प्रत्यक्ष एकदेशी ही प्रतीत होते हैं। तैसे ही आकाश तत्त्व भी अखण्ड अनेक चेतन जीव तथा अखण्ड अन्य चारों तत्त्वोंके अतिशय सूक्ष्म-सूक्ष्म अंशोंके या-परमाणुओंके-बाहर स्थित है। सर्वत्र अन्तर-बाहर व्यापक नहीं। इसलिए एकदेशी आकाशवत् कर्त्ताको व्यापक मानना भी कल्पित है ॥

इस प्रकारसे कर्त्ताको निराकार व्यापक मानना धोखाज्ञान है ॥

प्रश्न (६) निराकार, व्यापक, आकाशमें प्रतिध्वनि यह गुणरूप स्वाभाविक क्रिया है, इसलिए निराकार व्यापक कर्त्तामें आकाशका दृष्टान्त तुल्य है। तहाँ कहे हैंः—

"संयोगाद्विभागश्च शब्दश्च शब्दनिष्पत्तिः ॥"

॥ वैशेषिक सूत्र ३१ । अध्याय २ । आह्निक २ ॥

अर्थः—संयोग और विभागसे या न्यारे-न्यारे भाग हो जानेसे 'शब्द' सिद्ध होते हैं ॥

श्लोकः—"आकाशं जायते तस्मान्, तस्य शब्दं गुणं विदुः॥"

॥ मनुस्मृति, अध्याय १ । अर्द्ध श्लोक ७५ ॥

अर्थः—आकाशसे उत्पन्न होता है, जिसके गुणको मनु आदिकोंने 'शब्द' कहा है ॥

सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्त आकाशं प्रत्यस्तं यन्ति ॥
॥ छान्दोग्य उपनिषद् । अध्याय १ । खण्ड ६ । मन्त्र १ ॥

अर्थः—ये सर्व भूत आकाशसे ही उत्पन्न हों, तिसमें ही लय होते हैं। परन्तु पाँचों तत्त्वोंकी उत्पत्ति-लयका सम्भव मुख्य परब्रह्ममें है ॥

इन प्रमाणोंसे आकाशमें प्रतिध्वनिरूप शब्दोंकी उत्पत्ति यह क्रिया है, तिसको आप अक्रिय क्यों कहते हो ? ॥

(६) उत्तरः—आकाश विषय कहे हैं:—

"आकाशमवकाशप्रदाने ॥"—गर्भ उपनिषद् । मन्त्र १ ॥

अर्थः—आकाश में अवकाश देना ही गुण है, अर्थात् वह आकाश ही स्वरूप है ॥

चौ०:—"पोल सन्धि सोई आकाश ॥" नं० १३२ ॥ समष्टिसार, पञ्चग्रन्थी ॥

अर्थः—तत्त्वोंके नित्य अनेक परमाणुओंके सन्धियोंमें जहाँ-जहाँ पोलाकार अनन्त छिद्ररूप अनेक सन्धियाँ रही हैं, वही आकाश तत्त्व है ॥

"चातुर्भौतिकमित्येके ॥ १८ ॥"—सांख्य सूत्र १८ । प्रकाश अ० ३ ॥

अर्थः—आकाश निराकार, अवयव रहित रहनेसे तिसका परिमाणरूप कोई कार्य नहीं बनता है। परन्तु अन्य चार तत्त्वोंके परमाणुओंके संयोगसे स्थूल देह बनी है ॥

इन तीन प्रमाणोंसे पोल, अवकाश अथवा अनन्त छिद्ररूप वा शून्यरूप मात्र खाली जगह है; मनुष्योंको समझानेके लिए

उसे आकाश नाम रखके जड़ तत्त्व माना गया है; वह कुछ परमाणुओंका समूह नहीं है। जैसे घटाकाशमें घटमेंके पोलाकार आकाशकी और बाहरके पोलाकार आकाशकी मनुष्योंको बुद्धि द्वारा प्रतीति होती है। तैसे ही पृथ्वी आदि तत्त्वोंका कार्य घटमें भी अनेक, सूक्ष्म-सूक्ष्म छिद्रोंरूपसे आकाश स्थित है। क्योंकि उसका चूर्ण-चूर्ण होकर वह तत्त्वोंमें मिल जाता है। इसलिए आकाशको अन्तर-बाहर व्यापक कहना असम्भव बात है। परन्तु अन्य चार तत्त्वोंसे भिन्न पोलाकार वा अनन्त छिद्रोंरूपसे वह जहाँ-तहाँ एकदेशी ही ❀ स्थित है। आकाश अक्रिय तथा परिणाम रहित रहनेसे, तिससे अन्य तत्त्वोंकी उत्पत्ति अथवा तिसमें शब्दोंकी उत्पत्तिरूप स्वयं क्रिया मानना असम्भव दोषयुक्त है। यदि अक्रिय आकाशका स्वयं गुण शब्दरूप नित्य क्रिया होवै, तो वह सदोदित रहते भी शब्दोंकी उत्पत्ति और लय क्यों प्रतीत होते हैं? पोलाकार, शून्यस्वरूप आकाशका एक देशमें नाश करके कोई दिखावै, तब सर्व मान लेवेंगे कि, निराकार परब्रह्मसे निराकार आकाश और उसीसे अन्य साकार तत्त्व उत्पन्न हुए हैं। पृथिवी, जल, तेज, वायु, ये चार तत्त्व अगणित परमाणुओंका समूह साकार रहनेसे सामान्य-विशेष रूपसे सर्वत्र संयोगसे मिश्रित हैं, ऐसा पञ्चीकरणमें कहा है। कुछ निराकार, निरवयव आकाशसे वे उत्पन्न हुए नहीं।

❀ चैतन्य जीवोंके स्वरूप और जड़ परमाणुओंके स्वरूप अखण्ड होनेसे ठोस हैं, उनमें सन्धि या पोल नहीं हैं। इससे आकाश शून्यरूपसे जहाँ-तहाँ होते हुए भी एकदेशी ही है। ऐसा जानना चाहिये।—सम्पादक।

तत्त्वोंका विस्तारसे वर्णन आगे होगा। यदि कर्त्ता व्यापक ब्रह्म चेतन भी माने, तो अन्य व्याप्य तत्त्वोंसे पृथक् आप एकदेशी ही ठहरता है। आप एकदेशी मनुष्यवत् रहनेसे सर्व जगत् आपसे उत्पन्न होकर आप ही में लय होना असम्भव दोषयुक्त है।

शब्दोंकी उत्पत्ति विषय कहे हैं:—

"वायोर्वायुसम्मूर्च्छनं नानात्वलिङ्गम् ॥ १४ ॥"

॥ वैशेषिक सूत्र १४ । अध्याय २ । आह्निक १ ॥

अर्थः—वायु-वायुके साथ सम्मूर्च्छन अर्थात् विरुद्ध दिशाओंके वेगसे आये हुए वायुओंका एक-दूसरेके साथ भिड़ जाना, यह वायुका अनेक होनेका चिह्न या लक्षण है ॥

श्लोकः—"यथाऽकाशस्थितो नित्यं, वायुः सर्वत्रगो महान् ॥"

॥ भगवद्गीता, अध्याय ६ । अर्द्ध श्लोक ६ ॥

अर्थः—आकाशमें सर्वत्र फैली हुई वायु चञ्चल तथा समान गतिवान् रहती है। अर्थात् सदैव चलती ही रहती है ॥

चौपाईः—"झीना शब्द है पवन स्वरूपा ॥ १६७ ॥"

॥ नं० १६७ ॥ मानुषविचार; पञ्चग्रन्थी ॥

अर्थः—कानोंके दोनों छिद्र बन्द करनेसे सुनाई देता हुआ झीना अनहद बाजा या ध्वनिरूप शब्द मुख्य वायु तत्त्वके हैं ॥

"साखीः – पूरब उगै पश्चिम अथवै, भखे पवनके फूल ॥" †

॥ बीजक, अर्द्ध साखी २३७ टीकायुक्त ॥

---

† साखीः—पूरब उगै पश्चिम अथवै । भखे पवनके फूल ॥
ताहूको राहू ग्रासै । मानुष काहेक भूल ॥ २३७ ॥ बीजक ॥

टीका गुरुमुखः—पूरब कहिये प्रथमारम्भमें जो उदय भया ज्ञान एकोहं, सो हंकारके पक्षमें डूब गया। ताते अविद्याके वश होयके अनेक हुवा। अब सोई जीव पवनके फूल भखता है। पवनके फूल कहिये चार वेद, छौ शास्त्र,

अर्थः—टीकामें सद्-गुरु श्रीपूरणसाहेब लिखे हैं कि, वेद, शास्त्र, पुराणादि वाणी मात्र पवनका फूल, अर्थात् सर्व शब्द मुख्य वायु तत्त्वसे उत्पन्न हों, एक दिशासे अन्य दिशामें सुने जाते हैं ॥

इन प्रमाणोंसे अदृश्य, सूक्ष्माकार, अनन्त परमाणुओंका समूहरूप वायु तत्त्व है। तिससे दृश्य, साकार, पृथ्वी, जल, तेज, इन सब तत्त्वोंके परमाणुओंका सदा कम–अधिक संयोग रहनेसे सदैव सामान्य–विशेष शब्द उत्पन्न हुआ करते हैं। परन्तु पोल, निराकार आकाश तत्त्वसे नहीं; जैसे मस्तकमें सुनाता हुआ झीना आवाज तथा ध्वनि और वर्णरूप स्थूल शब्द। वायुमें अन्य तत्त्वोंके विशेष परमाणु सदैव मिश्रित रहनेसे वह जोरसे बहते समय "सों सों सों" ऐसे एकदेशी विशेष शब्द सुनाई देते हैं। अथवा वायु तत्त्व और स्थूल अन्य पदार्थोंके संयोगसे ध्वनिरूप एकदेशी विशेष शब्द उत्पन्न हुआ करते हैं। जैसे वायु द्वारा बाँसोंके परस्पर घर्षणसे ध्वनिरूप शब्दों की उत्पत्ति। अथवा

अठारह पुराण बानीमात्र पवनका फूल ताको बहुत विचार करके फिर मैं एक ब्रह्म सर्वसाक्षी ऐसी बानी अनुभव सहित ग्रहण करता है। फिर ताहूको राहू ग्रास करता है, विज्ञान कैवल्य असीपद ब्रह्म भी जो हुवा, तब भी मायाने उसे खाय लिया, गाफिल किया और जगतमें खैंच लाया। वही ब्रह्म आदि मायाके पक्षमें बूड़ा और अनेक जगत हुवा। अब हे मनुष्य! तुम क्यों भूलते हो? औ ब्रह्म बनते हो? अरे! प्रथमारम्भमें तेरेमें आनन्द उगा, ता आनन्दके पक्षमें अथय गया, ताहीते पक्का, जायके कच्चा हुआ औ अनेक रूप होके अनेक बानी बोला, ताहीमें फँसा, सोई मानुष तू है, अब क्यों भूलता है? औ आदिका मानुष था सो ताहूको राहू मायाने ग्रास किया सोई माया तेरे पीछे लगी है, तू इसे भूले मत, परखके आसक्तता छोड़, न्यारा हो। ये अर्थ ॥ त्रिजासे बीजककी साखी ॥ २३७ ॥

चैतन्य मनुष्योंकी सत्ता श्वास वायुको मिलके मुख द्वारा वर्णरूप एकदेशी विशेष शब्द उत्पन्न होते हैं ॥

पहाड़ समान विशेष वा थोड़ी-सी ऊँची जमीन कहीं पृथ्वी-पर वा नदियोंके किनारोंपर रहती है । वहाँ विशेष करके वायुके संयोगसे मिश्रित पृथ्वी, जल और तेज तत्त्वोंसे उत्पन्न हुए शब्दों को खुला मार्ग नहीं मिलनेसे वहाँ ही रुककर पीछे उलटते समय एकदेशी प्रतिध्वनियाँ उत्पन्न हुआ करती हैं। कहीं देवालय, गुफा, कूँवें इत्यादिकोंमें गुम्बज आदिकोंसे शब्दोंको रुकावट होकर प्रतिध्वनियाँ सुनी जाती हैं ॥

इस प्रकारसे अकेले, निराकार, निरवयव पोलरूप, अक्रिय आकाशसे स्वयं, एकदेशी उत्पन्न होते हुए सूक्ष्माकार, क्रियावान् शब्द और तिनकी ही प्रतिध्वनिको उसकी (आकाशकी) नित्य गुणरूप क्रिया मानना केवल हठ मात्र है ।

तैसे ही निराकार, सीमा रहित माने हुए अक्रिय आकाशवत् दूसरा अक्रिय निराकार जगत्कर्त्ता मानना झूठ बकवाद मात्र है ॥

प्रश्न (७) यदि कर्त्ता निराकार व्यापक नहीं ठहरता, तो उस विषय और भी कहे हैं:—

"नारायणोऽकामयत प्रजाः सृजेयेति ॥"
"नारायणो निराकारो निरञ्जनो गुणातीतः ॥"

॥ नारायण उपनिषद्, मन्त्र १-२ ॥

अर्थः—इच्छा रहित नारायण ही आदिमें इच्छा करके प्रजाओंकी सृष्टि करते हैं ॥ नारायण ही निरञ्जन परमात्मा निराकार निर्गुण है ॥

अर्थः—टीकामें सद्-गुरु श्रीपूरणसाहेब लिखे हैं कि, वेद, शास्त्र, पुराणादि वाणी मात्र पवनका फूल, अर्थात् सर्व शब्द मुख्य वायु तत्त्वसे उत्पन्न हों, एक दिशासे अन्य दिशामें सुने जाते हैं ॥

इन प्रमाणोंसे अदृश्य, सूक्ष्माकार, अनन्त परमाणुओंका समूहरूप वायु तत्त्व है। तिससे दृश्य, साकार, पृथ्वी, जल, तेज, इन सब तत्त्वोंके परमाणुओंका सदा कम-अधिक संयोग रहनेसे सदैव सामान्य-विशेष शब्द उत्पन्न हुआ करते हैं। परन्तु पोल, निराकार आकाश तत्त्वसे नहीं; जैसे मस्तकमें सुनाता हुआ झीना आवाज तथा ध्वनि और वर्णरूप स्थूल शब्द। वायुमें अन्य तत्त्वोंके विशेष परमाणु सदैव मिश्रित रहनेसे वह जोरसे बहते समय "सों सों सों" ऐसे एकदेशी विशेष शब्द सुनाई देते हैं। अथवा वायु तत्त्व और स्थूल अन्य पदार्थोंके संयोगसे ध्वनिरूप एकदेशी विशेष शब्द उत्पन्न हुआ करते हैं। जैसे वायु द्वारा बाँसोंके परस्पर घर्षणसे ध्वनिरूप शब्दों की उत्पत्ति। अथवा

अठारह पुराण बानीमात्र पवनका फूल ताको बहुत विचार करके फिर मैं एक ब्रह्म सर्वसाक्षी ऐसी बानी अनुभव सहित ग्रहण करता है। फिर ताहूको राहू ग्रास करता है, विज्ञान कैवल्य असीपद ब्रह्म भी जो हुवा, तब भी मायाने उसे खाय लिया, [illegible] और [illegible]में खैंच लाया। वही ब्रह्म आदि मायाके पक्षमें बूड़ा और अनेक जगत हुवा। अब हे मनुष्य! तुम क्यों भूलते हो? औ ब्रह्म बनते हो? अरे! प्रथमारम्भमें तेरेमें आनन्द उगा, ता आनन्दके पक्षमें अथय गया, ताहीते पक्का, जायके कच्चा हुआ औ अनेक रूप होके अनेक बानी बोला, ताहीमें फँसा, सोई मानुष तू है, अब क्यों भूलता है? औ आदिका मानुष था सो ताहूको राहू मायाने ग्रास किया सोई माया तेरे पीछे लगी है, तू इसे भूले मत, परखके आसक्तता छोड़, न्यारा हो। ये अर्थ ॥ त्रिजासे बीजककी साखी ॥ २३७ ॥

चैतन्य मनुष्योंकी सत्ता श्वास वायुको मिलके मुख द्वारा वर्णरूप एकदेशी विशेष शब्द उत्पन्न होते हैं ॥

पहाड़ समान विशेष वा थोड़ी-सी ऊँची जमीन कहीं पृथ्वी-पर वा नदियोंके किनारोंपर रहती है। वहाँ विशेष करके वायुके संयोगसे मिश्रित पृथ्वी, जल और तेज तत्त्वोंसे उत्पन्न हुए शब्दों को खुला मार्ग नहीं मिलनेसे वहाँ ही रुककर पीछे उलटते समय एकदेशी प्रतिध्वनियाँ उत्पन्न हुआ करती हैं। कहीं देवालय, गुफा, कूँवें इत्यादिकोंमें गुम्बज आदिकोंसे शब्दोंको रुकावट होकर प्रतिध्वनियाँ सुनी जाती हैं ॥

इस प्रकारसे अकेले, निराकार, निरवयव पोलरूप, अक्रिय आकाशसे स्वयं, एकदेशी उत्पन्न होते हुए सूक्ष्माकार, क्रियावान् शब्द और तिनकी ही प्रतिध्वनिको उसकी (आकाशकी) नित्य गुणरूप क्रिया मानना केवल हठ मात्र है।

तैसे ही निराकार, सीमा रहित माने हुए अक्रिय आकाशवत् दूसरा अक्रिय निराकार जगत्कर्त्ता मानना झूठ बकवाद मात्र है ॥

प्रश्न (७) यदि कर्त्ता निराकार व्यापक नहीं ठहरता, तो उस विषय और भी कहे हैं:—

"नारायणोऽकामयत प्रजाः सृजेयेति ॥"
"नारायणो निराकारो निरञ्जनो गुणातीतः ॥"

॥ नारायण उपनिषद्, मन्त्र १-२ ॥

अर्थः—इच्छा रहित नारायण ही आदिमें इच्छा करके प्रजाओंकी सृष्टि करते हैं ॥ नारायण ही निरञ्जन परमात्मा निराकार निर्गुण है ॥

इस प्रमाणसे जो निर्गुण-निराकार रहकर सगुणरूप धरके जगत् रचता है, तिसको मैं कर्त्ता मानता हूँ ॥

(७) उत्तरः—व्याकरणमें निर्गुण और निराकार शब्दमें निर् उपसर्गका अर्थ "नहीं" ऐसा कहा है। अर्थात् निर्गुणमें "गुण नहीं" और निराकारमें "आकर नहीं"। इसलिए स्थूल-सूक्ष्माकार रहित निर्गुण-निराकार कर्त्ता सरासर कल्पित है। यदि कर्त्ताको निराकार भी माने, तो आप अनेक छिद्ररूप पोलाकार आकाशवत् अक्रिय, निर्जीव ठहरता है (तिसको पूर्वमें प्रमाण प्रश्न ४ में देखिये !) यदि कर्त्ता निर्गुण है, तो वह त्रिगुणोंका क्रियारूप जगत् रच ही नहीं सकता। यदि साकाररूप प्रगट होनेका गुण भी निर्गुणमें माने, तो आप एक जड़ तत्त्वोंका शरीर धरा हुआ मनुष्य रहनेसे जगत् अनादि सिद्ध है। यदि उक्त कर्त्ताको स्वर्ग लोकमें माने तो बीजकमें श्रीसद्-गुरुने कहा है:—

साखीः—"पर्वत ऊपर हर बहै, घोड़ा चढ़ि बसे गाँव ॥
बिना फूल भौंरा रस चाहै, कहु बिरवाको नाँव ॥ ३६ ॥"

॥ बीजक, साखी ३६, टीकायुक्त ॥

अर्थः—पर्वत कहिये ब्रह्माण्ड वा स्वर्ग, तिनमें हर कहिये परमात्मा तथा देवता और तिनका लोक स्वर्गमें है, ऐसा वेद-शास्त्रोंका प्रमाण सुनके बहुत ही मनुष्य भ्रममें पड़े। सङ्कल्परूप घोड़ेपर चढ़के उपासना, योग, तप, दान, पुण्यादि करके कब तिन गावोंमें हम बैठेंगे, ऐसा कहके सब धोखेमें बह गये। यदि वृक्ष सहित फूल होंगे, तो भौंरोंको रस मिलेगा ? परन्तु अनेक

देवता, ईश्वर, परमात्मा और स्वर्ग लोकोंका नाम मात्र सुनते हैं, रूपका ठिकाना ही नहीं। तहाँ सनकादि, शुकादि श्रेष्ठ जीव तिनका अनुभवरूप रस लेने चाहते हैं, तो कहाँसे पावैंगे ? ॥

इस प्रमाणसे अनेक स्वर्गादि लोक मानना कल्पना मात्र असिद्ध है। यदि कर्त्ताको पोल अधरमें माने, तो पृथ्वीपर अनेक कर्म करनेवाले, अहङ्कारी सर्व जीव स्थूल देहयुक्त प्रत्यक्ष प्रतीत होते हैं। कर्मोंका अभिमान धारण करके बिना स्थूल देह कोई जीव सदैव अधरमें ठहर नहीं सकते हैं। छोटे-छोटे देहधारी मच्छर, मक्खी, पक्षी आदि जीव भी वातावरणमें उड़कर पृथ्वीपर ही ठहरते हैं। महात्मा योगी पुरुष भी स्थूल-देहोंसे नाना युक्ति-प्रयुक्ति देखाय पूर्वकी स्थूल देहोंमें ही रहते हैं, ऐसा शास्त्रोंमें वर्णन है। सिद्धियोंका वर्णन आगे होगा ॥

इस प्रकारसे निर्गुण, निराकार, अक्रिय, एक ही पोल वा शून्य-स्वरूप आकाश है। उसके तुल्य दूसरा निर्गुण, निराकार, अक्रिय कर्त्ता मानना महा अज्ञानता ठहरती है ॥

प्रश्न (८) यदि कर्त्ता निर्गुण-निराकार नहीं ठहरता, तो तिस विषय और भी कहा है:—

"सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ॥" "साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥"

॥ श्वेताश्वतर उपनिषद् । अध्याय ६ । मन्त्र ११ ॥

अर्थः—परमात्मा केवल निर्गुण, निराकार, सर्वव्यापक और साक्षी चेतन स्वरूप है ॥

श्लोकः—"अभिन्नं भिन्न संस्थानं, शाश्वतं ध्रुवमव्ययम् ॥"

॥ शिवगीता, अध्याय १७ । अर्द्ध श्लोक ५ ॥

देवता, ईश्वर, परमात्मा और स्वर्ग लोकोंका नाम मात्र सुनते हैं, रूपका ठिकाना ही नहीं। तहाँ सनकादि, शुकादि श्रेष्ठ जीव तिनका अनुभवरूप रस लेने चाहते हैं, तो कहाँसे पावैंगे ? ॥

इस प्रमाणसे अनेक स्वर्गादि लोक मानना कल्पना मात्र असिद्ध है। यदि कर्त्ताको पोल अधरमें माने, तो पृथ्वीपर अनेक कर्म करनेवाले, अहङ्कारी सर्व जीव स्थूल देहयुक्त प्रत्यक्ष प्रतीत होते हैं। कर्मोंका अभिमान धारण करके विना स्थूल देह कोई जीव सदैव अधरमें ठहर नहीं सकते हैं। छोटे-छोटे देहधारी मच्छर, मक्खी, पक्षी आदि जीव भी वातावरणमें उड़कर पृथ्वीपर ही ठहरते हैं। महात्मा योगी पुरुष भी स्थूल-देहोंसे नाना युक्ति-प्रयुक्ति देखाय पूर्वकी स्थूल देहोंमें ही रहते हैं, ऐसा शास्त्रोंमें वर्णन है। सिद्धियोंका वर्णन आगे होगा ॥

इस प्रकारसे निर्गुण, निराकार, अक्रिय, एक ही पोल वा शून्य-स्वरूप आकाश है। उसके तुल्य दूसरा निर्गुण, निराकार, अक्रिय कर्त्ता मानना महा अज्ञानता ठहरती है ॥

प्रश्न (८) यदि कर्त्ता निर्गुण-निराकार नहीं ठहरता, तो तिस विषय और भी कहा है:—

"सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ॥" "साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥"

॥ श्वेताश्वतर उपनिषद् । अध्याय ६ । मन्त्र ११ ॥

अर्थः—परमात्मा केवल निर्गुण, निराकार, सर्वव्यापक और साक्षी चेतन स्वरूप है ॥

श्लोकः—"अभिन्नं भिन्न संस्थानं, शाश्वतं ध्रुवमव्ययम् ॥"

॥ शिवगीता, अध्याय १७ । अर्द्ध श्लोक ५ ॥

इस प्रमाणसे जो निर्गुण–निराकार रहकर सगुणरूप धरके जगत् रचता है, तिसको मैं कर्त्ता मानता हूँ ॥

(७) उत्तरः—व्याकरणमें निर्गुण और निराकार शब्दमें निर् उपसर्गका अर्थ "नहीं" ऐसा कहा है। अर्थात् निर्गुणमें "गुण नहीं" और निराकारमें "आकर नहीं"। इसलिए स्थूल–सूक्ष्माकार रहित निर्गुण–निराकार कर्त्ता सरासर कल्पित है। यदि कर्त्ताको निराकार भी माने, तो आप अनेक छिद्ररूप पोलाकार आकाशवत् अक्रिय, निर्जीव ठहरता है (तिसको पूर्वमें प्रमाण प्रश्न ४ में देखिये !) यदि कर्त्ता निर्गुण है, तो वह त्रिगुणोंका क्रियारूप जगत् रच ही नहीं सकता। यदि साकाररूप प्रगट होनेका गुण भी निर्गुणमें माने, तो आप एक जड़ तत्त्वोंका शरीर धरा हुआ मनुष्य रहनेसे जगत् अनादि सिद्ध है। यदि उक्त कर्त्ताको स्वर्ग लोकमें माने तो बीजकमें श्रीसद्‌गुरुने कहा हैः—

साखीः—"पर्वत ऊपर हर बहै, घोड़ा चढ़ि बसे गाँव ॥
बिना फूल भौंरा रस चाहै, कहु बिरवाको नाँव ॥ ३६ ॥"

॥ बीजक, साखी ३६, टीकायुक्त ॥

अर्थः—पर्वत कहिये ब्रह्माण्ड वा स्वर्ग, तिनमें हर कहिये परमात्मा तथा देवता और तिनका लोक स्वर्गमें है, ऐसा वेद–शास्त्रोंका प्रमाण सुनके बहुत ही मनुष्य भ्रममें पड़े। सङ्कल्परूप घोड़ेपर चढ़के उपासना, योग, तप, दान, पुण्यादि करके कब तिन गावोंमें हम बैठेंगे, ऐसा कहके सब धोखेमें बह गये। यदि वृक्ष सहित फूल होंगे, तो भौंरोंको रस मिलेगा ? परन्तु अनेक

देवता, ईश्वर, परमात्मा और स्वर्ग लोकोंका नाम मात्र सुनते हैं, रूपका ठिकाना ही नहीं। तहाँ सनकादि, शुकादि श्रेष्ठ जीव तिनका अनुभवरूप रस लेने चाहते हैं, तो कहाँसे पावैंगे ? ॥

इस प्रमाणसे अनेक स्वर्गादि लोक मानना कल्पना मात्र असिद्ध है। यदि कर्त्ताको पोल अधरमें माने, तो पृथ्वीपर अनेक कर्म करनेवाले, अहङ्कारी सर्व जीव स्थूल देहयुक्त प्रत्यक्ष प्रतीत होते हैं। कर्मोंका अभिमान धारण करके बिना स्थूल देह कोई जीव सदैव अधरमें ठहर नहीं सकते हैं। छोटे-छोटे देहधारी मच्छर, मक्खी, पक्षी आदि जीव भी वातावरणमें उड़कर पृथ्वीपर ही ठहरते हैं। महात्मा योगी पुरुष भी स्थूल-देहोंसे नाना युक्ति-प्रयुक्ति देखाय पूर्वकी स्थूल देहोंमें ही रहते हैं, ऐसा शास्त्रोंमें वर्णन है। सिद्धियोंका वर्णन आगे होगा ॥

इस प्रकारसे निर्गुण, निराकार, अक्रिय, एक ही पोल वा शून्य-स्वरूप आकाश है। उसके तुल्य दूसरा निर्गुण, निराकार, अक्रिय कर्त्ता मानना महा अज्ञानता ठहरती है ॥

प्रश्न (८) यदि कर्त्ता निर्गुण--निराकार नहीं ठहरता, तो तिस विषय और भी कहा है:—

"सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ॥" "साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥"

॥ श्वेताश्वतर उपनिषद् । अध्याय ६ । मन्त्र ११ ॥

अर्थः—परमात्मा केवल निर्गुण, निराकार, सर्वव्यापक और साक्षी चेतन स्वरूप है ॥

श्लोकः—"अभिन्नं भिन्न संस्थानं, शाश्वतं ध्रुवमव्ययम् ॥"

॥ शिवगीता, अध्याय १७ । अर्द्ध श्लोक ५ ॥

अर्थः—शिव कहते हैं कि, हे राम ! हम परमात्मा स्वरूप सबसे भिन्न साक्षी और सबमें व्यापक, पुराण पुरुष, अविनाशी अचल हैं ॥

इन दो प्रमाणोंसे मैं कर्त्ताको व्यापक और साक्षीरूप न्यारा मानता हूँ ? ॥

(८) उत्तरः—व्यापकवत् दृश्य, मिश्र पदार्थ स्वरूपसे सदैव न्यारे ही रहते हैं, तहाँ कहा हैः—

श्लोकः—"इक्षौ गुडस्तिले तैलं, काष्ठे वह्निःद्रपद्मयः ॥
धेनावाज्यं वपुष्यात्मा, लभ्यते चैव यत्नतः ॥"

॥ श्लोक, योगवासिष्ठ ॥

अर्थः—जैसे ऊखोंमेंसे गुड़, तिलोंमेंसे तेल, लकड़ीमेंसे अग्नि, पाषाणमेंसे लोहा, गायके दूधमेंसे घी, ऐसे पदार्थ प्रयत्नसे न्यारे-न्यारे कर सकते हैं। तैसे ही श्रवण, मनन, निदिध्यासनादि उपाय करके देहाध्याससे जीवात्मा न्यारा मुक्त भी हो सकता है ❀ ॥

इस प्रमाणसे दूधमेंसे घी या स्वाती नक्षत्रके जल बून्दोंमेंसे मोती बनकर न्यारे हुए बाद दूधके किसी अंशमें घी या स्वाती के उस जलके किसी अंशमें मोती कभी मिल नहीं सकते हैं। तैसे ही तत्त्वादि सर्व जड़ पदार्थ और देहधारी, अनेक चेतन जीव न्यारे-न्यारे एकदेशी ही हैं।

❀ "पुष्पे गन्धस्तिले तैलं काष्ठे वह्निं पयोघृतम् ॥ इक्षौ गुडं तथा देहे-पश्यात्मानं विवेकतः ॥"—चाणक्य० अ० ७ । २१ ॥—जैसे फूलमें गन्ध, तिलमें तेल, काष्ठमें अग्नि, दूधमें घी, ऊखमें गुड़ रहते हैं, वैसे ही इस देहमें आत्माको विवेक करके देखना चाहिये ॥—सम्पादक ।

जगत्के पदार्थ कभी–कभी एक ही स्वरूप प्रतीत होते, परन्तु सदोदित संयोगसे रहते हैं। जैसे एक लोटा भर जलमें पृथ्वीरूप थोड़ी शक्कर डालनेसे थोड़े ही देरमें जल स्वरूप प्रतीत होती है। परन्तु उस जलको औंटाय भाफ होकर वह जल वायु द्वारा वातावरणमें उड़ जानेसे फिर पूर्ववत् शक्कर कायम रहती है। इसलिए जगत्में व्यापक कोई पदार्थ ही नहीं है। यदि व्यापक कर्त्ता भी माने, तो आप जगत् रचकर कहाँ धरेगा ? क्योंकि उसके बिना जगह कहीं खाली ही नहीं है। यदि कर्त्ता साक्षी न्यारा और व्यापक भी माने, तो खेल करनेवाले और साक्षी रूपसे देखने वाले कहीं भी एक स्वरूप देखे नहीं हैं।

पूर्वोक्त न्यारा साक्षी और व्यापक कर्त्ता मानना भूलका ही कथन है॥

प्रश्न (६) हे दयानिधे ! कर्त्ता 'व्यापक' और 'न्यारा' ही है। तहाँ दृष्टान्त कहा है:—

श्लोक:—"यथा सर्वगतं सौक्ष्म्या-दाकाशं नोपलिप्यते॥
सर्वत्रावस्थितो देहे, तथात्मा नोपलिप्यते॥"
॥ भगवद्गीता, अध्याय १३। श्लोक ३२॥

अर्थ:—जैसे अति सूक्ष्म आकाश सर्वमें व्यापक, रहके अलिप्त वा न्यारा ही है। तैसे ही परमात्मा सर्वत्र व्यापक और देहोंसे भिन्न है॥

इस प्रमाणसे जैसे आकाश सर्वमें रहके अलिप्त है, तैसे ही मैं कर्त्ताको न्यारा और व्यापक मानता हूँ ?॥

(६) उत्तर:—आपका दृष्टान्त बराबर नहीं है, क्योंकि:—

अर्थः—शिव कहते हैं कि, हे राम ! हम परमात्मा स्वरूप सबसे भिन्न साक्षी और सबमें व्यापक, पुराण पुरुष, अविनाशी अचल हैं ॥

इन दो प्रमाणोंसे मैं कर्त्ताको व्यापक और साक्षीरूप न्यारा मानता हूँ ? ॥

(८) उत्तरः—व्यापकवत् दृश्य, मिश्र पदार्थ स्वरूपसे सदैव न्यारे ही रहते हैं, तहाँ कहा हैः—

श्लोकः—"इक्षौ गुडस्तिले तैलं, काष्ठे वह्निःद्रपद्मयः ॥
धेनावाज्यं वपुष्यात्मा, लभ्यते चैव यत्नतः ॥"

॥ श्लोक, योगवासिष्ठ ॥

अर्थः—जैसे ऊखोंमेंसे गुड़, तिलोंमेंसे तेल, लकड़ीमेंसे अग्नि, पाषाणमेंसे लोहा, गायके दूधमेंसे घी, ऐसे पदार्थ प्रयत्नसे न्यारे-न्यारे कर सकते हैं। तैसे ही श्रवण, मनन, निदिध्यासनादि उपाय करके देहाध्याससे जीवात्मा न्यारा मुक्त भी हो सकता है ❀ ॥

इस प्रमाणसे दूधमेंसे घी या स्वाती नक्षत्रके जल बून्दोंमेंसे मोती बनकर न्यारे हुए बाद दूधके किसी अंशमें घी या स्वाती के उस जलके किसी अंशमें मोती कभी मिल नहीं सकते हैं। तैसे ही तत्त्वादि सर्व जड़ पदार्थ और देहधारी, अनेक चेतन जीव न्यारे-न्यारे एकदेशी ही हैं।

❀ "पुष्पे गन्धस्तिले तैलं काष्ठे वह्निं पयोघृतम् ॥ इक्षौ गुडं तथा देहे-पश्यात्मानं विवेकतः ॥"—चाणक्य० अ० ७ । २१ ॥—जैसे फूलमें गन्ध, तिलमें तेल, काष्ठमें अग्नि, दूधमें घी, ऊखमें गुड़ रहते हैं, वैसे ही इस देहमें आत्माको विवेक करके देखना चाहिये ॥—सम्पादक ।

जगत्के पदार्थ कभी–कभी एक ही स्वरूप प्रतीत होते, परन्तु सदोदित संयोगसे रहते हैं। जैसे एक लोटा भर जलमें पृथ्वीरूप थोड़ी शक्कर डालनेसे थोड़े ही देरमें जल स्वरूप प्रतीत होती है। परन्तु उस जलको औंटाय भाफ होकर वह जल वायु द्वारा वातावरणमें उड़ जानेसे फिर पूर्ववत् शक्कर कायम रहती है। इसलिए जगत्में व्यापक कोई पदार्थ ही नहीं है। यदि व्यापक कर्त्ता भी माने, तो आप जगत् रचकर कहाँ धरेगा ? क्योंकि उसके बिना जगह कहीं खाली ही नहीं है। यदि कर्त्ता साक्षी न्यारा और व्यापक भी माने, तो खेल करनेवाले और साक्षी रूपसे देखने वाले कहीं भी एक स्वरूप देखे नहीं हैं।

पूर्वोक्त न्यारा साक्षी और व्यापक कर्त्ता मानना भूलका ही कथन है॥

प्रश्न (६) हे दयानिधे ! कर्त्ता 'व्यापक' और 'न्यारा' ही है। तहाँ दृष्टान्त कहा है:—

श्लोकः—"यथा सर्वगतं सौक्ष्म्या-दाकाशं नोपलिप्यते॥
सर्वत्रावस्थितो देहे, तथात्मा नोपलिप्यते॥"
॥ भगवद्गीता, अध्याय १३। श्लोक ३२॥

अर्थः—जैसे अति सूक्ष्म आकाश सर्वमें व्यापक, रहके अलिप्त वा न्यारा ही है। तैसे ही परमात्मा सर्वत्र व्यापक और देहोंसे भिन्न है॥

इस प्रमाणसे जैसे आकाश सर्वमें रहके अलिप्त है, तैसे ही मैं कर्त्ताको न्यारा और व्यापक मानता हूँ ?॥

(६) उत्तरः—आपका दृष्टान्त बराबर नहीं है, क्योंकिः—

अर्द्ध श्लोकः—"अग्निसङ्गाद्यथालोह-मग्नित्वमुपगच्छति ॥"—योगवासिष्ठ ॥

अर्थः—अग्निके संयोगसे लोहा भी अग्निरूप तेजमय हो जाता है ॥

इस प्रमाणसे अग्नि अति सूक्ष्म, अनेक परमाणुओंके मिश्रण से दृश्याकार रहनेसे अति तप्त लोहेमें वह प्रवेश कर सकती है ॥

शङ्काः—लोहा घन पदार्थ रहनेसे तिसमें अग्निका प्रवेश कैसा होगा ? ॥

समाधानः पृथिवी, जल, तेज, वायु, इन चार तत्त्वोंके अति सूक्ष्म, अखण्ड, अनन्त परमाणुओंके मिश्रणसे लोहादि घन पदार्थ बनके अन्तमें तिन तत्त्वोंमें वै लय हो जाते हैं। देखिये! जैसे राई, खसखस, खूबकला, रेती आदि सूक्ष्म-सूक्ष्म पदार्थ गोलाकार रहते हैं। तैसे ही तत्त्वोंके अति सूक्ष्म अनेक परमाणु भी गोलाकार रहने से लोहादि घन पदार्थोंके बनते समय तिनके सन्धियोंमें पोलाकार, शून्यस्वरूप आकाश चलनीके अनेक छिद्रोंवत् अति सूक्ष्म रूपसे आप ही रह जाता है। इसलिए वै घन पदार्थ छेनीसे कट जाते वा रेतासे चूर्ण-चूर्ण किये जाते हैं। इसी कारण सूक्ष्माकार अनेक परमाणुओंका समूहरूप अग्नि लोहेमेंके अति सूक्ष्म अनेक छिद्रोंमें प्रवेश कर सकती है; और वायुसे वह उनमेंसे निकल गये बाद लोहा पूर्ववत् प्रकाश रहित हो जाता है ॥

उक्त अनुभवसे आकाश एकदेशी ही सिद्ध है। परन्तु पदार्थों में अन्तर-बाहर सर्वत्र व्यापक नहीं है। आकाशमें आकार और क्रिया नहीं है। तहाँ कहा है:—

श्लोकः—"आकाशवन्निर्मलनिर्विकल्प, निःसीमनिष्पन्दननिर्विकारम् ॥"
॥ विवेकचूड़ामणि । अर्द्ध श्लोक ३६४ ॥

अर्थः—जैसे आकाश निर्मल, निर्विकल्प, सीमा, चेष्टा और विकारसे रहित है, वैसे ही परमात्मा भी है ॥

आकाशवत् कर्त्ता असङ्ग माना है, (तिसको पूर्वमें श्रुति प्रमाण प्रश्न ४ में देखिये !) ॥

इन प्रमाणोंसे अक्रिय, सीमा रहित माना हुआ आकाशवत् कर्त्ता न्यारा कहाँ रहेगा ? तथा वह जगत्को कैसा रचेगा ? और कहाँ रक्खेगा ? जैसे साकार पृथिवी और जलके उतने ही अवकाशमें थोड़ी–सी साकार मिट्टी और जल कोई मिलाय देवै, तो परस्पर नहीं समाते, परन्तु बढ़ जाते, ऐसा अनुभव सबको है। क्योंकि अदृश्य, सूक्ष्माकार, अनेक परमाणुओंका एकत्र समूह दृश्य, स्थूलाकार पृथिवी और जल तत्त्व हैं। परन्तु चारों तत्त्वोंसे न्यारा, एकदेशी, पोलाकार–अनेक शून्यस्वरूप–आकाश तत्त्व परमाणुओंका समूह नहीं रहनेसे तिसको व्यापक कहना बनता नहीं। व्याप्त साकार वस्तुओंमें संयोगसे मिश्रित कोई साकार पदार्थ व्यापकवत् प्रतीत होते हैं; जैसे जलमें शक्कर, दूधमें घी ॥

इस प्रकारसे स्थूल–सूक्ष्माकार रहित निराकार, अवकाश-रूप वा शून्यस्वरूप आकाश तत्त्वमें दूसरा निराकार कर्त्ता सूक्ष्म परमाणुओंके समूहवत् आकारवाला, एकदेशी होवै, तो वातावरण में व्यवहार कर सकता है; जैसे परमाणुओंके समूह स्थूल–सूक्ष्मरूप अन्य चारों तत्त्वोंका वातावरणमें व्यवहार। परन्तु स्थूल–सूक्ष्माकार रहित निराकार, जड़ आकाशवत् माना हुआ दूसरा

निराकार, चेतन कर्त्ता तिसमें कैसे समावेगा ? एक पोलमें अन्य पोल समाना आश्चर्यकी बात है। उपनिषद्में कहा है:—

"स्थूलमनएवह्रस्वमदीर्घम् ॥"

॥ बृहदारण्य उपनिषद् । अध्याय ३ । ब्राह्मण ८ । मन्त्र ८ ॥

अर्थः—परमात्मा, स्थूल, अति सूक्ष्म, ह्रस्व=छोटा, दीर्घ= बड़ा इत्यादि आकारोंसे विलक्षण धर्मवाला, निराकार, व्यापक है ॥

इस प्रमाणसे एक सीमा रहित माना हुआ आकाश छोड़ कर दूसरा वैसा ही कर्त्ता सिद्ध नहीं होता है। फिर उसको 'न्यारा' और 'व्यापक' क्या कहना ? ॥

पूर्वोक्त आकाशका दृष्टान्त कर्त्ता न्यारा और व्यापक मानने में झूठा है। ऐसा जानिये ! ॥

प्रश्न (१०) यदि आकाशका दृष्टान्त कर्त्ता न्यारा और व्यापक माननेमें असम्भव है, तो तिस विषय और भी दृष्टान्त कहा है:—

श्लोकः—"यथा प्रकाशयत्येकः, कृत्स्नं लोकमिमं रविः ॥
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं, प्रकाशयति भारत ॥"

॥ भगवद्गीता, अध्याय १३ । श्लोक ३३ ॥

अर्थः—श्रीकृष्ण कहते हैं कि, हे अर्जुन ! जैसे सूर्य सर्व- जगत्को प्रकाश करके न्यारा रहता है, तैसे ही मैं परमात्मा न्यारा रह कर सर्व भूतोंको प्रकाशित करता हूँ ॥

इस प्रमाणसे जैसे सूर्य न्यारा और उसका प्रकाश सर्वत्र व्यापक है, तैसे ही मैं कर्त्ताको न्यारा और व्यापक मानता हूँ ? ॥

(१०) उत्तरः—सूर्यका दृष्टान्त भी कर्त्ता विषय बराबर नहीं है; क्योंकिः—

श्लोकः—"केनापि मृद्भिन्नतया स्वरूपं, घटस्य संदर्शयितुं न शक्यते ॥"

॥ विवेकचूड़ामणि । अर्द्ध श्लोक २३१ ॥

अर्थः—शङ्कराचार्य कहते हैं कि, मिट्टीसे घड़ोंका स्वरूप कोई भिन्न नहीं दिखा सकता, अर्थात् कारण–कार्य सदोदित एक ही स्वरूप रहते हैं ॥

इस प्रमाणसे यदि कर्त्ताको आप सूर्यवत् न्यारा भी मानो, तो उसका सर्वत्र व्यापक प्रकाश ही जड़ तत्त्वयुक्त अनेक पदार्थ और देहधारी, अनेक चेतन जीवयुक्त जगत् कैसा प्रगट होगा ? व्यापक और न्यारा कर्त्ता मानना व्याघात दोषका कथन है; जैसे आकाशमें वृक्ष। सूर्य, बिजुली, दिये आदि जड़, तेज स्वरूप, एकदेशी पदार्थोंके अनेक किरणोंका प्रकाश, सदैव गतिवान् पृथिवी आदि चार मिश्रण तत्त्वोंके अनन्त परमाणुओंके सन्धियोंमें अनन्त छिद्ररूप, पोलाकार सदैव आप ही रहा है। तिन सर्व छिद्रोंमें सूर्य की किरणें प्रवेश करके अगणित परमाणुओंको चमकीले बनाय, तिनके प्रकाश उनके शक्ति प्रमाणसे दूर तक फैल जाते हैं। क्योंकि प्रकाशमें स्वयं शीघ्र गमन करनेका वेग है; परन्तु उनका प्रकाश सर्वत्र फैलता नहीं। तैसे ही सूर्यवत् न्यारा कर्त्ता माने, तो तिसका ज्ञान प्रकाश भी एकदेश ही में रहेगा ? और जड़ तत्त्वोंकी मायारूप उपाधि ग्रहण करनेसे इच्छानुसार उसका प्रकाश संयोग सम्बन्धसे फैल भी जायेगा; परन्तु निराकार कर्त्तामें ऐसा मानना असम्भव

पूर्वोक्त व्यापक कर्त्ताका प्रकाश यदि पदार्थोंसे जाता रहता है; तो सर्वको प्रकाश करनेवाला स्वयं प्रकाशी, न्यारा और व्यापक जगत् कर्त्ता मानना भी अविचार का कथन है ॥

प्रश्न (१२) यदि कर्त्ता स्वयं प्रकाशी, न्यारा और व्यापक नहीं ठहरता, तो तिस विषय और भी कहा है:—

श्लोक:—"अखण्डितघनाकारो, वर्त्तते केवलं शिवः ॥"

॥ अवधूतगीता, अध्याय ७ । अर्द्ध श्लोक १३ ॥

अर्थ:—दत्तात्रेयजी कहते हैं कि, व्यापक घनाकार, केवल, कल्याण-स्वरूप परमात्मा वर्त्तता है ॥

"स ओतः प्रोतश्च विभुः प्रजासु ॥"—नारायण उपनिषद् । अध्याय १ । मन्त्र ३॥

अर्थ:—नारायण परमात्मा चराचरमें सर्वत्र भरा है, इसलिए घनवत् व्यापक है ॥

इन दो प्रमाणोंसे मैं कहीं बाल मात्र जगह खाली नहीं, ऐसा कर्त्ता घनवत् व्यापक मानता हूँ ? ॥

(१२) उत्तर:—जगत्में जड़ पाँच तत्त्व और अनेक देहधारी चेतन जीव न्यारे-न्यारे एकदेशी रहनेसे दूसरा व्यापक पदार्थ कहीं भी प्रतीत नहीं होता। परन्तु यदि कर्त्ताको घनवत् व्यापक भी माने, तो आप अकेला एक-ही-एक ठहरता है। वह सर्व दृश्य जगत्को कहाँसे लायके रचेगा? और कहाँ धरेगा? अपने कन्धे पर आप ही स्वयं नाचते हम कहीं देखे नहीं; इसलिए ऐसा कर्त्ता मानना प्रत्यक्ष छोकड़ों का झूठा खेल ही जानिये ! ॥ अथवा कहा है:—

श्लोक:—"अनादिकालोऽयमहंस्वभावो, जीवः समस्तव्यवहारवोढा ॥"

॥ विवेकचूड़ामणि । अर्द्ध श्लोक १८८ ॥

अर्थः—शङ्कराचार्य कहते हैं कि, अहङ्कार स्वभावयुक्त अनादि कालसे सर्व जीव अनेक व्यवहार करते ही चले आते हैं ॥

इस प्रमाणसे पाँच जड़ तत्त्व और देहधारी, अनेक चेतन-जीव सहित प्रत्यक्ष प्रतीत होता हुआ जगत् अनादि कालका है, यह किसी कर्त्तासे उत्पन्न हुआ नहीं है। आप ही देहधारी चेतन जीव अपने-अपने देह व्यवहारोंके अनेक कर्त्ते हैं ॥

इस प्रकारसे कर्त्ता घनवत् व्यापक मानना अन्यायका कथन है। आप किस अनुभवसे उसको घनवत् व्यापक मानते हो ? सो कहिये ? ॥

प्रश्न (१३) घनवत् व्यापक कर्त्ता विषय कहा हैः—

श्लोकः—"सर्वातीत पदालम्बी, पूर्णेन्दु शिशिराशयः ॥
यस्तिष्ठति सदा योगी, स एव परमेश्वरः ॥" योगवासिष्ठ ॥

अर्थः—जो योगी सबसे परे परमात्माका आश्रय करनेवाला, पूर्ण चन्द्रमाके तुल्य शीतल है, वह साक्षात् परमेश्वर ही है ॥

इस प्रमाणसे योगीजन योग साधनसे श्वास वायुको चढ़ाय, मस्तकके दशवें द्वारमें या ब्रह्मरन्ध्रमें लय करते हैं। अनन्तर प्रत्यक्ष दिखाई देते हुए स्वच्छ, शीतल प्रकाशमें मिलकर, वे घनवत् व्यापक स्वयं परमात्मा स्वरूप बन जाते हैं ॥

उसी ज्ञानके अनुभवसे मैं कर्त्ताको घनवत् व्यापक मानत हूँ ? ॥

(१३) उत्तरः—जैसे सूर्यके धूपमें पड़ी हुई सफेद काँचपर नजर पहुँचते ही वह विशेष प्रकाशयुक्त दिखाती है। तैसे ही योगीजनोंको योग साधनसे प्राण मस्तकमें चढ़ाय स्थिर रखनेसे सूर्यके धूपवत् नादरूप श्वासवायु प्रकाशयुक्त हो जाती है। जैसे

दोषयुक्त है। इसलिए ऐसे कर्त्ताकी कल्पना करनेवाले मनुष्य जीव ही श्रेष्ठ हैं॥

पूर्वोक्त सूर्य दृष्टान्तवत् कर्त्ता न्यारा और व्यापक मानना भी झूठ कथन है। (निर्णयसे यह मिथ्या ठहरता है)॥

प्रश्न (११) यदि किसी प्रकारसे कर्त्ता न्यारा और व्यापक नहीं ठहरता है, तो उस विषय और भी कहा है:—

"न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः॥
तमेव भान्तमनु भाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥"

॥ कठ उपनिषद् । अध्याय २ । वल्ली ५ । मन्त्र १५ ॥

अर्थः—तिस ब्रह्मके विषय न सूर्य, न चन्द्र, न तारा, न बिजुली प्रकाश करती है। जहाँ सूर्यादि नहीं प्रकाश करते, तहाँ अल्प तेजवाली अग्नि कैसी प्रकाश करेगी? मुख्य प्रकाशरूप ब्रह्मके पीछेसे सर्व चराचर जगत् प्रकाशित होता है॥

इस प्रमाणसे कर्त्ता स्वयं प्रकाशी साक्षीरूप न्यारा है। सूर्य, अग्नि इत्यादि सर्व जड़ पदार्थोंको आप ही स्वबलसे प्रकाशित करके समान रूपसे सर्वत्र व्यापक रहता है॥

उक्तकर्त्ताको मैं स्वयंप्रकाशी, न्यारा और व्यापक मानता हूँ?॥

(११) उत्तरः—ऐसा कर्त्ता भी आपका मानना बराबर नहीं है; क्योंकिः—

"नित्यमात्मस्वरूपं हि, दृश्यं तद्विपरीतगम्" अपरोक्षानुभूति, अर्द्धश्लोक ५॥

अर्थः—शङ्कराचार्य कहते हैं कि, जीवात्मा नित्य है और देहादि सर्व दृश्य संसार अनित्य—नाशमान—है॥

अथवा चेतन जीवात्मा बिना जड़ देहसे सर्व वस्तु विषयोंका

व्यापार नहीं होता है [तिसको पूर्वमें प्रमाण प्रश्न ३ में देखिये !] ॥

इन दो प्रमाणोंसे सर्व नित्य जीव देहधारी प्रत्यक्ष एकदेशी अनेक हैं। वे देहोंको अपनी–अपनी शक्तियोंसे प्रकाश करने वाले, सुख--दुःखादि जानने वाले और इच्छाशक्तिसे मन, इन्द्रियादिकोंमें अनेक क्रियाएँ करानेवाले प्रतीत होते हैं। परन्तु जीवोंने देह छोड़े बाद मुर्दोंमें तिनके प्रकाश, ज्ञान, क्रियाएँ आदि कोई भी दिखाय नहीं देते, ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव है। परन्तु आपके माने हुए व्यापक कर्त्ताका स्वयं प्रकाश तो वहाँ बना ही रहता है, वह क्यों देखनेमें नहीं आता है ? मुर्दे सड़के क्यों दुर्गन्धी हो जाती है ? अथवा:—

"अस्य यदेकां शाखां जीवो जहात्यथ सा शुष्यति ॥"

॥ छान्दोग्य उपनिषद् । अध्याय ६ । खण्ड ११ । मन्त्र २ ॥

अर्थः—जिस–जिस शाखारूप अवयवसे जीवका वियोग होता है, सो–सो वृक्षके भाग डालियाँदि सूख जाते हैं ॥

परन्तु अविनाशी चेतन जीवका कुछ भाग नष्ट हो जाना और कुछ रह जाना, यह कथन असम्भव है। वृक्ष, तृण इत्यादि अङ्कुरज खानीमें हरापनरूप प्रकाश प्रतीत होता है, वह दियाओंकी ज्योतियोंवत् जड़ तत्त्वोंका है। इसका वर्णन आगेके प्रकरणमें होगा। यदि तिनमें हरापन, यह उसी कर्त्ताका प्रकाश भी माने, तो वे सूख गये बाद व्यापक कर्त्ताका प्रकाश नष्ट क्यों हो जाता है ? अथवा चेतन रहित ही देखके मुर्दे, लकड़, कण्डे आदि पदार्थ ज्ञानी लोग भी जलाय देते, वे क्या मूर्ख हैं ? कदापि नहीं ! [अतः स्थावर खानी जड़ है।] ॥

पूर्वोक्त व्यापक कर्त्ताका प्रकाश यदि पदार्थोंसे जाता रहता है; तो सर्वको प्रकाश करनेवाला स्वयं प्रकाशी, न्यारा और व्यापक जगत् कर्त्ता मानना भी अविचार का कथन है ॥

प्रश्न (१२) यदि कर्त्ता स्वयं प्रकाशी, न्यारा और व्यापक नहीं ठहरता, तो तिस विषय और भी कहा है:—

श्लोक:—"अखण्डितघनाकारो, वर्त्तते केवलं शिवः ॥"

॥ अवधूतगीता, अध्याय ७ । अर्द्ध श्लोक १३ ॥

अर्थः—दत्तात्रेयजी कहते हैं कि, व्यापक घनाकार, केवल, कल्याण-स्वरूप परमात्मा वर्त्तता है ॥

"स ओतः प्रोतश्च विभुः प्रजासु ॥"—नारायण उपनिषद् । अध्याय१ । मन्त्र ३॥

अर्थः—नारायण परमात्मा चराचरमें सर्वत्र भरा है, इसलिए घनवत् व्यापक है ॥

इन दो प्रमाणोंसे मैं कहीं बाल मात्र जगह खाली नहीं, ऐसा कर्त्ता घनवत् व्यापक मानता हूँ ? ॥

(१२) उत्तरः—जगत्में जड़ पाँच तत्त्व और अनेक देहधारी चेतन जीव न्यारे-न्यारे एकदेशी रहनेसे दूसरा व्यापक पदार्थ कहीं भी प्रतीत नहीं होता। परन्तु यदि कर्त्ताको घनवत् व्यापक भी माने, तो आप अकेला एक-ही-एक ठहरता है। वह सर्व दृश्य जगत्को कहाँसे लायके रचेगा ? और कहाँ धरेगा ? अपने कन्धे पर आप ही स्वयं नाचते हम कहीं देखे नहीं; इसलिए ऐसा कर्त्ता मानना प्रत्यक्ष छोकड़ों का झूठा खेल ही जानिये ! ॥ अथवा कहा है:—

श्लोक:—"अनादिकालोऽयमहंस्वभावो, जीवः समस्तव्यवहारवोढा ॥"

॥ विवेकचूड़ामणि । अर्द्ध श्लोक १८८ ॥

अर्थः—शङ्कराचार्य कहते हैं कि, अहङ्कार स्वभावयुक्त अनादि कालसे सर्व जीव अनेक व्यवहार करते ही चले आते हैं॥

इस प्रमाणसे पाँच जड़ तत्त्व और देहधारी, अनेक चेतन-जीव सहित प्रत्यक्ष प्रतीत होता हुआ जगत् अनादि कालका है, यह किसी कर्त्तासे उत्पन्न हुआ नहीं है। आप ही देहधारी चेतन जीव अपने-अपने देह व्यवहारोंके अनेक कर्त्ते हैं॥

इस प्रकारसे कर्त्ता घनवत् व्यापक मानना अन्यायका कथन है। आप किस अनुभवसे उसको घनवत् व्यापक मानते हो ? सो कहिये ?॥

प्रश्न (१३) घनवत् व्यापक कर्त्ता विषय कहा हैः—

श्लोकः—"सर्वातीत पदालम्बी, पूर्णेन्दु शिशिराशयः॥
यस्तिष्ठति सदा योगी, स एव परमेश्वरः॥" योगवासिष्ठ॥

अर्थः—जो योगी सबसे परे परमात्माका आश्रय करनेवाला, पूर्ण चन्द्रमाके तुल्य शीतल है, वह साक्षात् परमेश्वर ही है॥

इस प्रमाणसे योगीजन योग साधनसे श्वास वायुको चढ़ाय, मस्तकके दशवें द्वारमें या ब्रह्मरन्ध्रमें लय करते हैं। अनन्तर प्रत्यक्ष दिखाई देते हुए स्वच्छ, शीतल प्रकाशमें मिलकर, वे घनवत् व्यापक स्वयं परमात्मा स्वरूप बन जाते हैं॥

उसी ज्ञानके अनुभवसे मैं कर्त्ताको घनवत् व्यापक मानत हूँ ?॥

(१३) उत्तरः—जैसे सूर्यके धूपमें पड़ी हुई सफेद काँचपर नजर पहुँचते ही वह विशेष प्रकाशयुक्त दिखाती है। तैसे ही योगीजनोंको योग साधनसे प्राण मस्तकमें चढ़ाय स्थिर रखनेसे सूर्यके धूपवत् नादरूप श्वासवायु प्रकाशयुक्त हो जाती है। जैसे

रेल गाड़ीमें लगाये हुए ग्यासके दिये। फिर दशवें द्वारका—ब्रह्मरन्ध्रका—पर्दा खुलके सफेद काँचवत् वहाँके सफेद वीर्यको सूक्ष्म देहकी दृष्टिसे देखकर, विशेष शीतल, प्रकाशरूप ईश्वर वे स्वयं आपको मान लेते हैं❀। क्योंकि वहाँ अकेला प्रकाश—ही—प्रकाश सर्वत्र नजर आता है॥ ऐसे ही बीजकमें भी कहा हैः—

साखीः—"धरै ध्यान गगनके माहीं, लाये बज्र किवाँर॥
देखी प्रतिमा आपनी, तीनिउँ भये निहाल!॥ ३४८॥"
॥ बीजक, साखी, ३४८ टीकायुक्त॥

अर्थः—आसन लगाय श्वास वायुको त्रिबन्ध दे, नौ नाड़ियोंके दश वायुओंको साध, बाहरकी वृत्ति रोकके इड़ा—इङ्गला—और पिङ्गला अर्थात् बाएँ तथा दहिने श्वासको फेरकर, सुषुम्ना नाड़ीके सङ्ग उसे ब्रह्माण्डको चढ़ाये, तब श्वास स्थिर होके विशेष तेजोमय ज्योतिप्रकाश खड़ा हुआ, उसीको ब्रह्म माना। ऐसे ही देहमें तत्त्वोंका प्रतिबिम्ब वा प्रकाशरूप परमात्मा देखके ब्रह्मा, विष्णु और महेश निहाल हुए। वे ही जगत्में योगी, ऋषि, मुनियोंको यही ब्रह्मज्ञानका उपदेश दिये॥

इस प्रमाणसे चेतन योगी, देहकी नादरूप श्वासवायु और वीर्यरूप बिन्दु, ये तीनों एकत्र मिले, तब सर्वत्र प्रकाशरूप परमात्मा योगियोंको प्रत्यक्ष सूक्ष्म दृष्टिसे (दृष्टि उलट कर स्वप्नवत्) देख

❀ योग साधना विशेष होनेपर योगियोंकी अन्तर वृत्ति स्थिर होती है। दृष्टि अन्तरमें उलट करके कला = चेतन, नाद = वायु, बिन्दु = देहकी संघर्षणसे तत्त्वोंका प्रकाश प्रतिभास होकर अनेक रूपमें देखनेमें आता है। सो भास मात्र मिथ्या है।—सम्पादक।

पड़ा। परन्तु विचारसे देखिये! तो तत्त्वोंके प्रकाशको देखनेवाले योगी जीव उससे न्यारे ही साक्षीरूपसे रहे ॥ अथवाः—

साखीः—"पानी-पवन सञ्जोयके, रचिया यह उतपात ॥"

॥ बीजक, रमैनी ३६ की अर्द्ध साखी ॥

अर्थः—स्त्री का रजरूप रुधिर और पुरुषका वीर्य, ये दोनों बिन्दरूप तथा पवनरूप श्वासवायु नादरूप, इनके संयोगसे पिण्डज और अण्डज खानियोंमें जीवोंके शरीर उत्पन्न होते हैं ॥

पूर्वोक्त नाद-बिन्दके जड़ प्रकाशको ही घनवत् व्यापक कर्त्ता ज्ञानके अनुभवसे आप मान लिये हो, सो बड़ी भूलकी दृष्टि है। उसे परख लीजिये! ॥

प्रश्न (१४) यदि कर्त्ता घनवत् व्यापक नहीं ठहरता, तो उस विषय और भी कहा हैः—

"सच्चिदानन्दमात्मानमद्वितीयं ब्रह्म ॥"—अन्तमें बज्रसूचिक उपनिषद् ॥

अर्थः—शुद्ध ब्रह्म सच्चिदानन्द अद्वैतरूप है ॥

"ब्रह्मैवाहं समः शान्तः,सच्चिदानन्दलक्षणः॥" अपरोक्षानुभूति,अर्द्धश्लोक२४॥

अर्थः—शङ्कराचार्य कहते हैं कि, मैं ब्रह्मरूप, सर्वमय, शान्त, सच्चिदानन्द स्वरूप हूँ ॥

इन दो प्रमाणोंसे मैं कर्त्ताको सच्चिदानन्द निर्विकल्परूप मानता हूँ? ॥

(१४) उत्तरः—सच्चिदानन्द शब्दमें 'सत', 'चित' और 'आनन्द', ये तीन पद हैं। 'सत' कहिये वर्त्तमान, भूत, भविष्यत् इन तीन कालोंमें नाश रहित; 'चित' चैतन्य ज्ञानस्वरूप और 'आनन्द' सदा सुखस्वरूप; ऐसा सच्चिदानन्द आप कर्त्ता मानते हो। परन्तु सत्से असत्, चित्से जड़, और आनन्दसे

दुःख, ऐसे असत्, जड़ और दुःखरूप अनेक जड़ देह या जड़ पाँच तत्त्वरूप ब्रह्माण्ड और सङ्कल्प करनेवाले, अविनाशी, अनेक चेतन जीव उत्पन्न करनेमें उक्त कर्त्ता असमर्थ है॥

तहाँ बीजकमें कहा हैः—

"शिव ! काशी कैसी भई तुह्मारि ? । अजहूँ हो शिव ! लेहु बिचारि!॥१॥"

॥ बीजक, बसन्त ११ । टीकायुक्त ॥

अर्थः—सद्-गुरु श्री पूरणसाहेब टीकामें लिखे हैं कि, शिव कहिये साधन चतुष्टय सम्पन्न होकर, वेदान्तका श्रवण, मनन करके देहकी विस्मृति किये; षट् ऊर्मियाँ रहित हुए; पिशाच, बाल, जड़ादि दशा धारण किये, सो शिव ! सच्चिदानन्द, ब्रह्मस्वरूप कहलाते हैं। तिनको सद्-गुरु श्री कबीरसाहेब पूछते हैं कि, हे शिव ! आप सच्चिदानन्द, अवर्ण, अस्फूर्ण, रहिके आपमें असत्, जड़, दुःखरूप काशी कहिये देह कैसे उत्पन्न हुई ? यह विचार कीजिये ! ॥

इस प्रमाणसे सच्चिदानन्द शुद्ध ब्रह्ममें असत्, जड़, दुःखरूप जगत्का बीज रहना असम्भव दोषयुक्त कथन है। ऐसा कर्त्ता कहीं है, यह मानना मनुष्योंकी कल्पना ही सिद्ध होती है। अथवा वेदादि नाना प्रकारकी वाणी सुनके मनुष्य उसीका पक्ष लेते हैं॥

पूर्वोक्त सच्चिदानन्द कर्त्ता मानना कल्पित ठहरता है॥

प्रश्न (१५) यदि कर्त्ता सच्चिदानन्द नहीं ठहरता, तो उस विषय और भी कहा हैः—

"यः सर्वज्ञः सर्ववित्ः॥"—मुण्डक उपनिषद् । मुण्डक १ । मन्त्र ६ ॥

अर्थः—परमात्मा सर्वको जाननेवाला सर्वज्ञ है॥

"आदित्यवर्णम् तमसस्तु पारे ॥"—"मध्यमें महावाक्य उपनिषद् ॥"

अर्थः—परमात्मा सूर्यवत् वर्णवाला अन्धकारसे रहित है। इन दोनों प्रमाणोंसे मैं कर्त्ताको ज्ञानी और प्रकाशक मानता हूँ ? ॥

(१५) उत्तरः—यदि कर्त्ता प्रकाशक और ज्ञानी है, तो जड़ सामग्री बिना वह (आप) तमरूप जड़ तत्त्वोंका सम्पूर्ण संसार उत्पन्न कर ही नहीं सकता। और अविनाशी, देहधारी, अनेक चेतन जीव सदैव सत्य रहनेसे आप तिनको और संसारको भी कैसे उत्पन्न करेगा ? जड़-चेतनके संयोगसे जगत् उत्पन्न हुआ, ऐसा कहा है। (तिसको पूर्वका प्रमाण प्रश्न ४ में देखिये !) तिससे भी विरोध आता है ॥ अथवाः—

श्लोकः—"अज्ञानप्रभवं सर्वं ज्ञानेन प्रविलीयते ॥"

॥ अपरोक्षानुभूति. अर्द्ध श्लोक १४ ॥

अर्थः—सर्व जगत् अज्ञानसे उत्पन्न हुआ है, और ज्ञानके प्रकाशसे अज्ञानके सङ्कल्पका नाश होता है ॥

इस प्रमाणसे कर्त्ता माता–पितावत् अज्ञानी, देहधारी, एक संसारी मनुष्य सिद्ध होनेसे जगत् भी अनादि सिद्ध है ॥

पूर्वोक्त ज्ञानी और प्रकाशक कर्त्ता मानना असम्भव बात है ॥

प्रश्न (१६) यदि कर्त्ता ज्ञानी और प्रकाशक नहीं ठहरता, तो उस विषय और भी कहा हैः—

श्लोकः—"अर्चिर्भूत्वा दिनं प्राप्य, शुक्लपक्षमतो व्रजेत् ॥
उत्तरायणमासाद्य, संवत्सरमथो व्रजेत् ॥ २३ ॥
आदित्यचन्द्रलोकौ तु, विद्युल्लोकमतः परम् ॥
अथ दिव्यःपुमान्कश्चिद्, ब्रह्म लोकादिहैति न ॥ २४ ॥"

॥ शिवगीता, अध्याय ११ । श्लोक २३ । २४ ।

अर्थः—शम, दमादि साधनसम्पन्न और सदा अपने वर्णाश्रमके कर्म निष्काम बुद्धिसे ईश्वरको अर्पण करनेवाले मनुष्य, स्वर्गलोकमें जानेका जो देवयान मार्ग तिससे प्रथम ज्योतिलोकमें प्राप्त होते हैं। फिर क्रमसे दिन अभिमानी, शुक्लपक्ष अभिमानी, उत्तरायण अभिमानी और संवत्सर अभिमानी, देवताओंके पास गमन करते हैं ॥ २३ ॥ अनन्तर सूर्यलोक, चन्द्रलोक, विद्युत् या बिजुलीलोक, इन्द्रलोक, प्रजापति लोक, ऐसे-ऐसे एक-से-एक अधरमें ऊपर-ऊपरके लोकोंको प्राप्त हों, आगे दिव्य देह सहित वे ब्रह्मलोकमें गमन करते हैं। वहाँ बहुत काल तक उत्तम भोगोंको भोग कर, ब्रह्माके उपदेशसे तिनको ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो जानेसे, वे ब्रह्माके साथ मुक्त हो पुनः शरीर धरते ही नहीं ॥ २४ ॥

ऐसा ही कौषीतकि ब्राह्मण उपनिषद्में ❀ भी वर्णन किया है। अथवाः—

❀ "कोऽसि त्वमस्मीति तमतिसृजते ॥ २ ॥ स एतं देवयानं पन्थान-ना[illegible]ग्निलोकमागच्छति स वायु लोकं स वरुणलोकं स आदित्यलोकं स इन्द्रलोकं स प्रजापतिलोकं स ब्रह्मलोकं ॥ ३ ॥ एवं सुकृतदुष्कृते सर्वाणि च द्वन्द्वानि स एष विसुकृतो विदुष्कृतो ब्रह्म विद्वान्ब्रह्मैवाभिप्रैति ॥ ४ ॥"

॥ कौषीतकिब्राह्मणोपनिषद्, अ० १ । मन्त्र २ । ३ । ४ ॥

—'मैं कौन हूँ? क्या जो आप हैं, वही मैं भी हूँ?' उसके इस प्रकार कहनेपर संसार-भयसे डरे हुए उस शिष्यको गुरु ब्रह्मविद्याके उपदेशद्वारा भवसागरसे पार करके बन्धनमुक्त कर देता है ॥ २ ॥ वह परब्रह्मका उपासक पूर्वोक्त देवयान-मार्गपर पहुँचकर पहले अग्निलोकमें आता है, फिर वायुलोकमें आता है; वहाँसे वह सूर्यलोकमें आता है, तदनन्तर वरुणलोकमें आता है;

"कर्मणा ब्रह्मलोकं गत्वा भोगान्भुक्त्वा मुक्तिर्भवति नात्र संशयः सत्यम् ॥"
॥ आत्मपुराण ॥

अर्थः—निष्काम कर्म करनेवाले ब्रह्मलोकमें जाके नाना प्रकारके भोग भोगनेके पीछे ब्रह्मासे ब्रह्मज्ञानका उपदेश तिनको प्राप्त हो जानेसे वे मुक्त होते हैं, इसमें संशय नहीं। यह वेदका यथार्थ सार सिद्धान्त है ॥

इन प्रमाणोंसे चन्द्रलोक, सूर्यलोक, ब्रह्मलोकादि किसी स्वर्गादिलोकमें निवास करनेवालेको मैं कर्त्ता मानता हूँ ? ॥

(१६) उत्तरः—केवल ग्रन्थ पढ़कर स्वर्गलोकमें कर्त्ता क्यों मानते हो ? शास्त्र प्रतीति, गुरु प्रतीति और निज विवेककी सत्य प्रतीति या प्रत्यक्ष अनुभव होना चाहिये ! तब सत्यन्याय कहाता है। कभी देह छूटे तक स्वर्गलोक कितने लम्बे-चौड़े हैं, तिनको कोई प्रत्यक्ष देखे हैं ? कोई तिनको देखके आये हैं ? जो जीते ही प्रत्यक्ष सबको दिखाई देवै ? किसीकी चिट्ठी या सन्देशा आया है ? कि ब्रह्मज्ञान से ब्रह्मलोकके निवासी, निष्काम कर्म किये हुए उपासक मनुष्य उत्तम-उत्तम भोगोंको भोगकर, ब्रह्माके साथ निश्चयसे मुक्त हुए, उपरान्त फिर जन्म नहीं लेते ? ब्रह्मलोक भी नाशवान् और पुनर्जन्मका कारण है ॥ तहाँ कहा भी है:—

तत्पश्चात् वह इन्द्रलोकमें आता है, इन्द्रलोकसे प्रजापतिलोकमें आता है, तथा प्रजापतिलोकसे ब्रह्मलोकमें आता है ॥ ३ ॥ पुण्य और पापको देखता है, तथा अन्य समस्त द्वन्दोंको देखता है; द्रष्टा होनेके कारण ही उसका इनसे सम्बन्ध नहीं होता। अतएव यह पुण्य और पापसे रहित होता है। फलतः वह ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मको ही प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

श्लोकः—"आब्रह्मभुवनाल्लोकाः, पुनरावर्तिनोऽर्जुन ॥"
॥ भगवद्गीता, अध्याय ८। अर्द्ध श्लोक १६ ॥

अर्थः—हे अर्जुन! ब्रह्मलोकादि स्वर्गलोकोंसे सबोंको पुनर्जन्म है ॥

इस प्रमाणसे ब्रह्मलोक भी माने, तो ब्रह्मा सहित सर्व मुक्त उपासकोंके पुनर्जन्म हैं ही, अखण्ड मुक्ति नहीं ॥

सूक्ष्म देहधारी, कोई जीव सदोदित अधर, पोलाकार आकाशमें या स्वर्गलोकोंमें ठहर नहीं सकते, क्योंकि स्वर्गलोक ही असिद्ध है; (तिनको पूर्वमें प्रमाण प्रश्न ७ में देखिये!) ब्रह्म क्या एकदेशी स्वर्गलोकमें ही व्यापक है? सर्वत्र नहीं है? ॥ क्योंकिः—

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म ॥" छान्दोग्यउपनिषद्, अध्याय ३। खण्ड १४। मन्त्र १॥

अर्थः—सर्व स्थावर-जङ्गमादि जगत् ब्रह्म स्वरूप ही है ॥

'नेह नानास्ति किञ्चन" बृहदारण्यउपनिषद्, अध्याय४। ब्राह्मण४। मन्त्र १६॥

अर्थः—ब्रह्ममें ही सर्व जगत् है, दूसरी कोई भिन्नवस्तु ही नहीं॥

इन दो प्रमाणोंसे ब्रह्म यहाँ ही चारों खानियोंमें व्यापक है, इसलिए वे ब्रह्मलोकमें ब्रह्मा सहित सर्व उपासक ब्रह्म बनके चार खानियोंमें देह धरते ही रहेंगे। प्रत्यक्ष देखे बिना अथवा सत्य विवेक किये बिना स्वर्गलोकमें जगत् कर्त्ता मानना, यह अन्याय का नास्तिक मत ही ठहरता है ॥

तैसे ही चार आसमानोंके ऊपर कर्त्ता ईश्वर अंग्रेज लोगों का मानना; चौदह तबकोंके ऊपर मुसलमानोंमें कर्त्ता खुदा मानना; अनन्त योजनोंके ऊपर कबीरपन्थके एक पन्थमें—सत्यलोकमें कर्त्ता पुरुष मानना; और स्वर्गमें एक मुक्तशिला मानके

तिसके भी ऊपर जैनमतमें जीवोंकी सदैव मुक्तस्थिति ठहराना; ये सभी अन्यायके नास्तिक मत ही जानिये ! ॥

प्रश्न (१७) हम स्वर्गलोक माननेवाले नास्तिक वा अन्यायी नहीं। क्योंकि तैत्तिरीय उपनिषद्में ब्रह्मानन्दवल्लीके अष्टम अनुवाकमें † कहा है:—

---

† "ते ये शतं [illegible]। स एको मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य।" —वे जो मनुष्य लोक-सम्बन्धी एकसौ आनन्द हैं, वह मानव-गन्धर्वोंका एक आनन्द होता है। जिसका अन्तःकरण भोगोंकी कामनाओंसे दूषित नहीं हुआ है, ऐसे वेदवेत्ता पुरुषका भी (वह स्वाभाविक आनन्द है)।

"ते ये शतं मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दाः। स एको देवगन्धर्वाणामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य।" —वे (पूर्वोक्त) जो मनुष्य गन्धर्वोंके एक सौ आनन्द हैं, वह देवजातीय गन्धर्वोंका एक आनन्द है। तथा (वही) कामनाओंसे अदूषित चित्तवाले श्रोत्रिय (वेदज्ञ) को भी स्वभावतः प्राप्त है।

"ते ये शतं देवगन्धर्वाणामानन्दाः। स एकः पितॄणां चिरलोकलोकानामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य।" —वे (पूर्वोक्त) जो देवजातीय गन्धर्वोंके एक सौ आनन्द हैं, वह चिरस्थायी पितृलोकको प्राप्त हुए पितरोंका एक आनन्द है। और (वह) भोगोंके प्रति निष्काम वेदज्ञ पुरुषको स्वतः प्राप्त है।

"ते ये शतं पितॄणां [illegible]। स एक आजानजानां देवानामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य।"—वे (पूर्वोक्त) जो चिरस्थायी पितृलोकको प्राप्त हुए पितरोंके एक सौ आनन्द हैं, वह आजानज नामक देवताओंका एक आनन्द है। और (वह आनन्द) उस लोकतकके भोगोंमें कामनारहित श्रोत्रिय (वेदज्ञ) को स्वभावतः प्राप्त है।

"ते ये शतमाजानजानां देवानामानन्दाः। स एकः कर्मदेवानां [illegible]। ये कर्मणा देवानपियन्ति। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य।" —वे (पूर्वोक्त) जो आजानज नामक देवोंके एक सौ आनन्द हैं; वह (उन) कर्मदेव नामक देवताओंका एक आनन्द है। जो वेदोक्त कर्मोंसे देवभावको प्राप्त हुए हैं, और

सर्व मनुष्योंसे चक्रवर्ती राजाको सौगुणा सुख अधिक है। चक्रवर्ती राजासे मनुष्यगन्धर्वको सौगुणा अधिक सुख; अनन्तर क्रमशः मनुष्यगन्धर्वसे देवगन्धर्वको, देवगन्धर्वसे पितृलोकवालोंको, पितृलोकवालोंसे आजानजदेवको; आजानजदेवसे कर्मदेवको; कर्मदेवसे मुख्यदेवको; मुख्यदेवसे सर्व देवताओंके राजा इन्द्रको; इन्द्रसे देवताओंके गुरु बृहस्पतिको; बृहस्पतिसे प्रजापतिको या

(वह) उस लोकतकके भोगोंमें कामनारहित श्रोत्रिय (वेदज्ञ) को तो स्वतः प्राप्त है।

"ते ये शतं कर्मदेवानां देवानामानन्दाः। स एको देवानामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य।"—वे (पूर्वोक्त) जो कर्मदेव नामक देवताओंके एक सौ आनन्द हैं, वह देवताओंका एक आनन्द है। और (वह) उस लोकतकके भोगोंमें कामनारहित श्रोत्रिय (वेदज्ञ) को तो स्वभावतः प्राप्त है।

"ते ये शतं देवानामानन्दाः। स एक इन्द्रस्यानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य।" —वे जो देवताओंके एक सौ आनन्द हैं, वह इन्द्रका एक आनन्द है। और (वह) इन्द्रतकके भोगोंमें कामनारहित वेद वेत्ताको स्वतः प्राप्त है।

"ते ये शतमिन्द्रस्यानन्दाः। स एको बृहस्पतेरानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य।" —वे जो इन्द्रके एक सौ आनन्द हैं, वह बृहस्पतिका एक आनन्द है। और (वह) बृहस्पतितकके भोगोंमें निःस्पृह वेदवेत्ताको स्वतः प्राप्त है।

"ते ये शतं बृहस्पतेरानन्दाः। स एकः प्रजापतेरानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य।" —वे जो बृहस्पतिके एक सौ आनन्द हैं, वह प्रजापतिका एक आनन्द है। और (वह) प्रजापतितकके भोगोंमें कामनारहित वेदवेत्ता पुरुषको स्वतः प्राप्त है।

"ते ये शतं प्रजापतेरानन्दाः। स एको ब्रह्मण आनन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य।" —वे जो प्रजापतिके एक सौ आनन्द हैं, वह ब्रह्माका एक आनन्द है। और (वह) ब्रह्मलोकतकके भोगोंमें कामनारहित श्रोत्रिय (वेदज्ञ) को स्वभावतः प्राप्त है॥

॥ तैत्तिरीयोपनिषद् मध्ये ब्रह्मानन्दवल्ली (२) अनुवाक ८ में इसका वर्णन हुआ है॥

विराट् पुरुषको; विराट् पुरुषसे ब्रह्मानन्दका सुख; ऐसे एक-से-एक अधिक-अधिक सौ-सौ गुणोंके विशेष सुख हैं॥ अथवाः—

ब्रह्मलोकका विस्तार कौषीतकि ब्राह्मण उपनिषद् ❀ और

❀ "तस्य ह वा एतस्य ब्रह्मलोकस्यारोह्रदो मुहूर्ता येष्टिहा विरजा नदी तिल्यो वृक्षः सायुज्यं संस्थानमपराजितमायतनमिन्द्रप्रजापती द्वारगोपौ विभुं प्रमितं विचक्षणा-संध्यमितौजाः पर्यङ्कः प्रिया च मानसी प्रतिरूपा च चाक्षुषी पुष्पाण्यादायावयतौ वै च जगत्यम्बाश्चाम्बावयवाश्चाप्सरसोऽम्बया नद्यस्तमित्थंविदा गच्छति तं ब्रह्माहा-भिधावत मम यशसा विरजां वायं नदीं प्रापन्नवानयं जिगीष्यतीति॥ ३॥ तं पञ्चशतान्यप्सरसां प्रतिधावन्ति शतं मालाहस्ताः शतमाञ्जनहस्ताः शतं चूर्णहस्ता शतं वासोहस्ताः शतं कणाहस्तास्तं ब्रह्मालंकारेणालंकुर्वन्ति स ब्रह्मालंकारेणालं-कृतो ब्रह्म विद्वान् ब्रह्मैवाभिप्रैति॥ ४॥" कौषीतकिब्राह्मणोपनिषत् (अ० १। मन्त्र ३। ४॥)—इस प्रसिद्ध ब्रह्मलोकके प्रवेश-पथपर पहले 'आर' नामसे प्रसिद्ध एक महान् जलाशय है। उस जलाशयसे आगे मुहूर्ताभिमानी देवता हैं, जो काम-क्रोध आदिकी प्रवृत्ति उत्पन्न करके ब्रह्मलोक-प्राप्तिके अनुकूलकी हुई उपासना और यज्ञ-यागादिके पुण्यको नष्ट करनेके कारण 'येष्टिह' कहलाते हैं। उससे आगे विजरा नदी है, जिसके दर्शनमात्रसे जरावस्था दूर हो जाती है। उससे आगे 'इल्य' नामक वृक्ष है। 'इला' पृथिवीका नाम है, उसका ही स्वरूप होनेसे उसका नाम 'इल्य' है। उससे आगे अनेक देवताओंद्वारा सेव्यमान उद्यान बावली, कुएँ, तालाब और नदी आदि भाँति-भाँतिके जलाशयोंसे युक्त एक नगर है, जिसके एक ओर तो विरजा नदी है, और दूसरी ओर प्रत्यञ्चाके आकारका (अर्द्ध चन्द्राकार) एक परकोटा है। उसके आगे ब्रह्माजीका निवासभूत विशाल मन्दिर है, जो 'अपराजित' नामसे प्रसिद्ध है। सूर्यके समान तेजोमय होनेके कारण वह कभी किसीके द्वारा पराजित नहीं होता। मेघ और यज्ञरूपसे उपलक्षित वायु और आकाशरूप इन्द्र और प्रजापति उस ब्रह्म-मन्दिरके द्वार रक्षक हैं। वहाँ 'विभुप्रमित' नामक सभामण्डप है। उसके मध्यभागमें जो वेदी है, वह 'विचक्षणा' नामसे प्रसिद्ध है। वह अत्यन्त

विलक्षण है। जिसके बलका कोई माप नहीं है, वह 'अमितौजाः' प्राण ही ब्रह्माजीका सिंहासन-पलङ्ग है। मानसी उनकी प्रिया है। वह मनकी कारण-भूता अथवा मनको आनन्दित करनेवाली होनेसे ही मानसी कहलाती है। उसके आभूषण भी उसीके स्वरूपभूत हैं। उसकी छायामूर्ति 'चाक्षुषी' नामसे प्रसिद्ध है। वह तैजस नेत्रोंकी प्रकृति होनेके कारण अत्यन्त तेजोमयी है। उसके आभूषणादि भी उसीके समान तेजोमय हैं। जरायुज, स्वेदज, अण्डज और उद्भिज्ज—इन चतुर्विध प्राणियोंका नाम जगत् है। यह सम्पूर्ण जगत्—जड़-चेतन-समुदाय ब्रह्माजीकी वाटिकाके पुष्प तथा उनके धौत एवं उत्तरीय-रूप युगल वस्त्र हैं। वहाँकी अप्सराएँ—साधारण युवतियाँ 'अम्बा' और 'आम्बायवी' नामसे प्रसिद्ध हैं। जगज्जननी श्रुतिरूपा होनेसे वे 'अम्बा' कहलाती हैं। तथा 'अम्ब' (अधिक) और अयव (न्यून) भावसे रहित बुद्धिरूपा होनेसे उनका नाम 'आम्बायवी' है। इसके सिवा वहाँ 'अम्बया' नामकी नदियाँ बहती हैं। अम्बक (नेत्र) रूप ब्रह्मज्ञानकी ओर ले जानेके कारण उनकी 'अम्बया' संज्ञा है। उस ब्रह्मलोकको जो इस प्रकार जानता है, वह उसीको प्राप्त होता है। उसे जब कोई अमानव पुरुष आदित्यलोकसे ले आता है, उस समय ब्रह्माजी अपने परिचारकों और अप्सराओंसे कहते हैं—'दौड़ो' उस महात्मा पुरुषका मेरे यशके—मेरी प्रतिष्ठाके अनुकूल स्वागत करो; मेरे लोकमें ले आनेवाली उपासना आदिसे निश्चय ही यह उस विजरा नदीके समीपतक आ पहुँचा है, अवश्य ही अब यह कभी जरावस्थाको नहीं प्राप्त होगा' ॥ ३ ॥ ब्रह्माजीका यह आदेश मिलनेपर उसके पास स्वागतके लिये पाँच सौ अप्सराएँ जाती हैं। उनमेंसे सौ अप्सराएँ तो हाथोंमें हल्दी, केसर और रोली आदिके चूर्ण लिये रहती हैं। सौ-के हाथोंमें भाँति-भाँतिके दिव्य वस्त्र एवं अलङ्कार होते हैं। सौ अप्सराएँ हाथों-में फल लिये होती हैं। सौके हाथोंमें नाना प्रकारके दिव्य अङ्गराग होते हैं। तथा सौ अप्सराएँ अपने हाथोंमें भाँति-भाँतिकी मालाएँ लिये होती हैं। वे उस महात्माको ब्रह्मोचित अलङ्कारोंसे अलङ्कृत करती हैं। वह ब्रह्मवेत्ता पुरुष ब्रह्माजीके योग्य अलङ्कारोंसे अलंकृत हो ब्रह्माजीके स्वरूपको ही प्राप्त कर लेता है। वह ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मको ही प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

॥ कौषीतकिब्राह्मणोपनिषद् (अध्याय १ । मन्त्र ३ । ४ ।) ॥

छान्दोग्यउपनिषद्के अष्टम प्रपाठकमें † ऐसा कहा है कि:—

ब्रह्मलोकमें पीपल वृक्षके आकार सदृश एक कल्पवृक्ष मनकी इच्छानुसार फल दाता है। वहाँ "अर और ओदोराराय" नामकी दो बड़ी नदियाँ दूध और घी से भरी हुई हैं। विद्युत्लोकमें राजदरबारवत् बड़े आदरसे ब्रह्माके गण आके उपासकोंको ब्रह्मलोकमें ले जाते हैं। फिर षोड़श वर्ष देहोंकी तरुण, विशेष रूपवान्, मोहक मधुर शब्द गानेवाली, पाँच सौ अप्सरा तिन उपासक पुरुषोंके पास ब्रह्मा भेजते हैं। जिनको श्रुतिमें "अम्बा, अम्बावयवा" ऐसे नाम धरे हैं। तिनमेंसे सौ अप्सराएँ उपासकोंको नाना सुगन्ध लगाय फूल-मालाएँ पहिरावती हैं। सौ नाना प्रकारके अञ्जनों, सौ नाना प्रकारके वस्त्रों, सौ नाना प्रकारके चरणोंमें लगानेके सुगन्धी पदार्थों और सौ नाना प्रकारके अलङ्कारोंको

---

† "यं ब्रह्मचर्येणानुविन्दतेऽथ यदरण्यायनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तत्तदरश्च ह वै ण्यश्चार्णवो ब्रह्मलोके तृतीयस्यामितो दिवि तदैरंमदीयꣳ सरस्तदश्वत्थः सोमस्त-वनस्तदपराजिता पूर्ब्रह्मणः प्रभुविमितꣳ हिरण्ययम् ॥ ३ ॥ तद्य एवैतावरं च ण्यं चार्णवौ ब्रह्मलोके ब्रह्मचर्येणानुविन्दन्ति तेषामेवैष ब्रह्मलोकस्तेषाꣳ सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति ॥४॥" छान्दोग्योपनिषद् अष्टम प्रपाठकः (खण्ड ५ । मन्त्र ३ । ४) —और जिसे अरण्यायन ऐसा कहा जाता है, वह भी ब्रह्मचर्य ही है; क्योंकि इस ब्रह्मलोकमें 'अर' और 'ण्य' ये दो समुद्र हैं, यहाँसे तीसरे द्युलोकमें ऐरंमदीय सरोवर है, सोमसवन नामका अश्वत्थ है, वहाँ ब्रह्माकी अपराजिता पुरी है और प्रभुका विशेष रूपसे निर्माण किया हुआ सुवर्णमय मण्डप है। उस ब्रह्मलोकमें जो लोग ब्रह्मचर्यके द्वारा इन 'अर' और 'ण्य' दोनों समुद्रोंको प्राप्त करते हैं; उन्हींको इस ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। उनकी सम्पूर्ण लोकोंमें यथेच्छ गति हो जाती है ॥ ३ ॥ ४ ॥

लेके आती हैं। फिर ब्रह्मावत् अनेक अलङ्कारोंसे तिनको शोभायमान करती हैं। वहाँ ब्रह्माकी दो स्त्रियाँ "प्रियाचाक्षुषी और प्रियामानसी" नामकी हैं ॥ और कहा हैः—

"श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम् ॥"—भगवद्गीता, अध्याय ४। श्लोक ३६ ॥

अर्थः—सत् शास्त्र और आचार्य्य गुरुके वचन पर भक्ति सहित विश्वास चाहिये! तब जिज्ञासुओंको ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति होती है ॥

इन प्रमाणोंसे हम लोग स्वर्गलोक और देवता माननेवालों को आप कैसे नास्तिक अन्यायी ठहराओगे? ॥

(१७) उत्तरः—हाँ! अन्यायी ही नास्तिक कहा जाता है। क्योंकिः—

साखीः—"जाको इष्ट प्रत्यक्ष नहीं, लीन परोक्षहिं होय ॥
कहहिं कबीर पुकारिके, नास्तिक कहिये सोय ॥ ७१ ॥"
॥ साखी, कबीरपरिचय ॥ साखी ७१ ॥

अर्थः—श्री गुरुदयाल साहेब कहते हैं कि, जिनको इष्टदेव सद्गुरु देहोंमें अविनाशी चेतन जीव सत्य है, ऐसे प्रत्यक्ष बतलाते तो इसको मानते नहीं, और वेदों, शास्त्रों तथा पक्षपाती गुरुवा लोगोंने कल्पना करके दृढ़ाये हुए स्वर्गलोक, भूत, नाना देवता, चराचर व्यापक ब्रह्म आदिकोंको मानते ही चले जाते हैं, वे ही महाअन्यायी नास्तिक, नहीं तो कौन? ॥ बीजकमें कहा हैः—

शब्दः—"बैठा पण्डित पढ़ै पुरान। बिनु देखेका करत बखान" ॥चौ०५॥
॥ बीजक, शब्द १०१ ॥

अर्थः—सद्गुरु श्रीकबीर साहेब कहते हैं कि, पण्डित लोग पुराणादि वाणी पढ़के, बिना देखेका बखान अर्थात् लोक, परलोक, स्वर्ग, नरक, देवता, भूत, ब्रह्म, ईश्वरादि रोचक और भयानक

बातें अज्ञानी, विषयासक्त मनुष्योंको कहा करते हैं ॥

साखीः—"प्रगट कहौं तो मारिया, परदा लखै न कोय ॥
सहना छिपा पयार तर, को कहि बैरी होय ॥ १८४ ॥"
॥ बीजक, साखी १८४ टीकायुक्त ॥

अर्थः—हे सन्तो ! जगत्में सबसे मनुष्यजीव ही अनेक सिद्धान्त ठहरानेवाले श्रेष्ठ हैं, ऐसा प्रगट करके कहोगे, तो कर्मी, उपासक, योगी, ब्रह्मज्ञानी आदि पक्षपाती, अविचारीजन आपको वेद विरुद्ध, नास्तिक मानके मारनेको भी तत्पर हो जावेंगे। परन्तु शास्त्र और गुरुवाओंने कल्पित एक ब्रह्मरूप पर्दा दिया है, तिसको कोई नहीं लखते। सहना कहिये ब्रह्मादि सर्व गुरुवालोग, सो पयार कहिये वेद, तिसके ओटमें छिपकर ब्रह्म, ईश्वर, देवता, स्वर्गादि मान लिए हैं। पयार कहिये खाली घास, जिसमें कुछ जमा नहीं। तैसा ही वेद मिथ्या बकवाद, तिसमें भी कुछ जमा नहीं, परन्तु कौन कहके बैरी होवे ? निर्पक्ष जन इसका सत्य विचार करेंगे ॥ अथवाः—उपनिषद्में कहा हैः—

"अयमात्मा ब्रह्म ॥" माण्डूक्य उपनिषद् २ ॥
बृहदारण्यउपनिषद् (२ । ५ । १९) बृ०अध्याय ४ । ब्राह्मण ४ । मन्त्र ५ ॥

अर्थः—यह जीवात्मा ही ब्रह्मस्वरूप है ॥

इस प्रमाणसे जगत्में महात्मा पुरुष भी देहधारी, एकदेशी, अनेक जीवोंको ब्रह्मरूप कहते हैं; फिर ब्रह्मको व्यापक कहना बनता ही नहीं। यदि स्वर्गलोक मानके तिनमें निवासी देवता भी माने, तो भागवतमें कहा हैः—

श्लोकः—"तावत्प्रमोदते स्वर्गे, यावत् पुण्यं समाप्यते ॥
क्षीणपुण्यः पतत्यर्वागनिच्छन् कालचालितः ॥ २६ ॥"
॥ भागवत स्कन्ध ११ । अध्याय १० । श्लोक २६ ॥

अर्थः—जबलग पुण्य होवै तबलग वै कर्मी, उपासक मनुष्य स्वर्गलोकमें आनन्द उड़ाते हैं। परन्तु पुण्य क्षीण हुए बाद कालसे चलायमान हो, मृत्युलोकमें गिरके पुनर्जन्म लेते हैं ॥ और स्मृतिमें कहा हैः—

श्लोकः—"सहस्रयुगपर्यन्त-महर्यद्ब्रह्मणोविदुः ॥
रात्रिं युगसहस्रान्तां, तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ १७ ॥"
॥ भगवद्गीता, अध्याय ८ । श्लोक १७ ॥

अर्थः—चारों युग सहस्र बार चले जाते हैं, तब ब्रह्माका एक सम्पूर्ण दिन होता है, और उतनी ही उसकी रात्रि होती है। ऐसे ज्ञाननेवाले वे ही दिन-रात्रिको यथार्थ जानते हैं ❁ ॥

ब्रह्माके एक दिनको कल्प कहा है, तब जगत्का प्रलय माना है। ब्रह्माकी सौ वर्षोंकी बड़ी आयु पूर्ण हुए बाद जगत्का महाप्रलय माना है। कहीं ब्रह्मासे उत्तरोत्तर विष्णु, शिव, आदिमाया या आदिशक्ति, इन्होंकी बहुत ही बड़ी मर्यादाओंके आयुष्योंका वर्णन किया है † ॥ परन्तुः—

❁ अर्थात् ब्रह्माका जो एक दिन है, उसको हजार चौकड़ी युग तक अवधि वाला और रात्रिको भी हजार चौकड़ी युग तक अवधिवाली जो पुरुष तत्त्वसे जानते हैं, अर्थात् काल करके अवधिवाला होनेसे ब्रह्मलोकको भी अनित्य जानते हैं, वे योगीजन कालके तत्त्वको जाननेवाले हैं ॥ १७ ॥

† एक मन्वन्तरमें एकहत्तर चतुर्युग होते हैं। एक कल्प ब्रह्माका एक दिन होता है। सत्ययुगमें सत्रह लाख, अठ्ठाइस हजार वर्ष माना है। त्रेतायुगमें बारह लाख, छियान्नवे हजार वर्ष कहा है। द्वापरयुगमें आठ लाख, चौंसठ हजार वर्ष कहा है। कलियुगमें चार लाख, बत्तीस हजार वर्ष माना है ॥

संक्षेपमें खुलाशा बात यह है कि, चार लाख बत्तीस हजार वर्ष मनुष्य वर्षके हिसाबसे कलियुगकी पूरी आयु माना है। उससे दुगुना वर्ष द्वापरमें है। कलिसे

तिगुना वर्ष त्रेतायुगमें कहा है; और चौगुना वर्षोंका समय सत्ययुगका माना है। इस प्रकारसे चतुर्युगोंके तैंतालीस लाख, बीस हजार वर्ष हो गये। इस प्रकारसे एकहत्तर चतुर्युगोंका एक 'मन्वन्तर' होता है। इस मन्वन्तरके तीस करोड़, सतसठ लाख, बीस हजार मनुष्य वर्ष होते हैं। और एक कल्पमें चौदह मन्वन्तर होते हैं। उनके वर्ष चार अर्ब, उनतीस करोड़, चालीस लाख, असी हजार वर्ष—इतने होते हैं। सृष्टि प्रारम्भसे लेकर अभी चालू साल विक्रमीय सम्वत् २०१९ तक, एक अरब, सतानबे करोड़, उनतीस लाख, उनचास हजार, और तृसठ वर्ष [१, ९७, २९, ४९, ०६३] बीत चुके हैं, ऐसा कल्पनासे हिसाब करके जोड़ किया है। हम कल्पका निरूपण ऊपर कर चुके हैं। यह श्वेतवाराह कल्प है। इस प्रकार न मालूम कितने कल्प तथा कितने ब्रह्मादि हो चुके हैं। और ब्रह्माके एक सहस्र युगोंसे विष्णुकी एक घड़ी होती है; फिर विष्णुकी बारह लाख घड़ियोंसे रुद्रकी तो आधी घड़ी ही होती है, इस गणनासे रुद्र की आयु—

[२, २३, ६४, ८८, ००, ००, ००, ००, ००, ००, ००, ००, ०००,]

उन अङ्कोंकी संख्या सहित पच्चीस वा उन्निस शून्यवाली होती है। कल्याणादि में कहीं तो उन अङ्कोंको दुगुना बढ़ाकर भी लिखा है।

रुद्रकी आयुमें अनेकों विष्णु प्रकट होते हैं; तथा अन्तर्धान हो जाते हैं। इस बातका सङ्केत "बृहत्पराशर स्मृति" (१२। १८८ से १९१ तक।) में लिखा हुआ मिलता है।—इसका विशेष विस्तार जानना हो, तो पञ्चग्रन्थी की टीकामें (पृष्ठ १२७० से १२७२ तक में) देखिये !॥

अथवा भारतीय प्राचीन ग्रन्थोंमें एक ब्रह्माण्डकी आयुका निर्णय करनेमें इस प्रकारकी निम्न गणना पायी जाती है कि:—१०० त्रुटिका एक पर, ३० परका एक निमेष, १८ निमेषोंकी एक काष्ठा, २० काष्ठाओंकी एक कला, ३० कलाओंकी एक घटिका, दो घटिकाओंका एक क्षण, ३० क्षणोंका एक अहोरात्र अर्थात् मनुष्यका पूरा दिन-रात होता है। इसी संख्यासे मानववर्ष-गणना की जाती है। इस हिसाबसे १७२८००० मानववर्षोंका सत्ययुग, १२९६००० मानववर्षोंका त्रेतायुग, ८६४००० वर्षोंका द्वापरयुग और ४३२००० वर्षोंका कलियुग है; और ४३२०००० मानववर्षोंका महायुग होता है। ७१ महायुगोंका अर्थात् ३०६७२०००० वर्षोंका एक मन्वन्तर होता है; और ८६४०००००००० वर्षोंका ब्रह्माका एक दिन-रात अर्थात् एक कल्प होता है।

श्लोकः—"लोकानां लोकपालानां, मद्भयं कल्पजीविनाम् ॥
ब्रह्मणोऽपि भयं मत्तो, द्विपरार्धपरायुषः ॥ ३० ॥"
॥ भागवत, स्कन्ध ११ । अध्याय १० । श्लोक ३० ॥

३११०४०००००००००० मानववर्षोंमें एक ब्रह्मापदधारी बदल जाते हैं। १८६६२४००००००००००००० मानववर्षोंमें एक विष्णुपदधारी बदल जाते हैं। इसी प्रकार ४४७८६७६०००००००००००००००००० मानववर्षोंकी [illegible] जाती है, जो ब्रह्माण्डका प्रलय करके ब्रह्ममें लय हो जाते हैं। अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड–भाण्डोदरी ब्रह्मशक्ति जगदम्बाकी एक त्रुटिके शिवजीके पाँच करोड़ निमेष होते हैं। इस प्रकार एक ब्रह्माण्डके लय होनेका समय भी मनुष्योंने कल्पना करके निर्धारित किया है। कहा हैः—(१) चतुर्युगसहस्राणि दिनं पैतामहं भवेत्। पितामहसहस्राणि विष्णोश्च घटिका मता ॥ विष्णोर्द्वादश–लक्षाणि कलार्धं रौद्रमुच्यते। (दैवीमीमांसा भाष्य, उत्पत्तिपाद सूत्र ४) ॥ (२) चतुर्युगसहस्राणि ब्रह्मणो दिन मुच्यते। पितामहसहस्राणि विष्णोरेका घटी मता ॥
विष्णोर्द्वादशलक्षाणि निमेषार्धं महेशितुः।
दश कोट्यो महेशानां श्रीमातुस्त्रुटिरूपकाः ॥ (शक्ति रहस्य) ॥

कवित्तः—सत्रह लाख हजार अठाइस, है सतयुग चारों पग जानो ॥
बारह लाख हजार छानवे, त्रेता ही पग तीन बखानो ॥
आठ लाख हजार हैं चौंसठ, द्वापर धर्मके द्वै पग मानो ॥
चार लाख हजार बत्तीसको, है कलि एक पगे ठहरानो ॥१॥

छप्पै छन्दः—युग चारि चलि जाय, चौकड़ी एक कहावै ॥
चौकड़ी बहत्तर जाय, इन्द्र एक राज करावे ॥
इन्द्र अठाइस पड़े, ब्रह्मा दिन रैनि भनीजै ॥
ऐसे दिनके शत वर्ष, ब्रह्माकी आयु गनीजै ॥
ब्रह्मा सहस्र व्यतीत, विष्णुकी घटिका लहिये ॥
विष्णु सहस्र व्यतीत, शिवकी पल एकै कहिये ॥
रुद्र एकादश जाय, शक्ति शिङ्गार सजिजै ॥
शक्ति सहस्र व्यतीत, कल्पको भेद लहिजै ॥ २ ॥

दोहाः—विधिवतसे विनती करों, कल्प हुआ परमान ॥
अगनित ब्रह्मा हो गये, गिनत न आवै ज्ञान ॥ ३ ॥

अर्थः—श्रीकृष्ण उद्धवको कहते हैं कि, स्वर्गलोक और वहाँके निवासी देवताओंका सुख एक कल्प तक है। और महाकल्प तक या दो परार्ध संख्याकी बड़ी आयु तक रहके फिर ब्रह्माको भी मुझ कालका डर रहता है। अर्थात् ब्रह्मा सहित सर्व देवता और स्वर्गलोक महाप्रलयमें नाश हो जाते हैं॥

परन्तु कल्पनासे ऐसा माने हैं, क्योंकिः—

"पिण्ड भाव ब्रह्माण्ड अनुमान। प्रलय चार सो वेद परमान॥१२०॥"
॥ चौकड़ी नं० १२०॥ समष्टिसार, पञ्चग्रन्थी॥

अर्थः—श्री रामरहस साहेब कहते हैं कि, पिण्डरूप देहमें तत्त्वमें तत्त्व, अवस्थामें अवस्थादि लययोग या अहँग्रह ध्यानसे लय करके प्रलय मान कर, ब्रह्माण्डमें भी वैसे ही प्रलय माने हैं। सो १. नित्य प्रलय = निद्रा। २. मरण प्रलय वा जलामय प्रलय = ब्रह्माण्डका प्रलय। ३. एकान्तिक प्रलय = ब्रह्मज्ञान। और ४. महाप्रलय = महाशून्यमें सर्वलीन। ऐसे चार प्रलय वेद प्रमाणसे माने हैं॥ अथवाः—

"नित्यप्रलयः अवांतरप्रलयः दैनन्दिनप्रलयः ब्रह्मप्रलयः॥ आत्यन्तिक— प्रलयश्चेति पञ्चप्रलयाः॥" वेदान्तसंज्ञा॥ सूत्र १४॥

अर्थः—१. नित्य प्रलय = निद्रा। २. नैमित्तिक प्रलय-मन्वन्तर प्रलय = वही अवान्तर प्रलय अर्थात् एक ब्रह्माके दिनमें १४ इन्द्र और १४ मनु हो जाते हैं। ३. दैनन्दिन प्रलय = ब्रह्माकी रात्रि। ४. महा प्रलय वा ब्रह्म प्रलय = ब्रह्माका अन्तकाल। ५. आत्यन्तिक प्रलय = मुक्त अवस्थामें अज्ञान सहित कार्यका नाश। ऐसे पाँच प्रलय माने हैं॥ और कहा हैः—

"जन्तूनां नरजन्म दुर्लभमतः॥"—विवेकचूडामणि, श्लोक २॥

अर्थः—पुण्य-पापोंके कर्मानुसार पशु आदि योनियाँ कम-अधिक भोगके ऐसा दुर्लभ स्वरूप ज्ञान प्राप्त होनेका स्थान नरजन्म जीव धारण करते हैं ॥

पशुवत् कर्मोंमें और पञ्च विषयोंमें आसक्त पशु आदि योनियाँ हैं। नर देहमें वैखरी वाचा रहनेसे सत्सङ्ग द्वारा सत्यासत्यका विवेक करके सर्व जड़ासक्ति रहित जिज्ञासु मनुष्य जीवन्मुक्त हो सकते हैं। ऐसी नर देहकी विशेषता सर्व महात्मा पुरुष वर्णन किये हैं ॥ अथवा कहा है:—

"नित उतपति नित परलय होई, जाको जगत ब्रह्म कहो भाई ! ॥
विश्वरूप भगवान भयो तब, चौरासी केहि ठाँई ॥"

अर्थ स्पष्ट है ॥ कबीरपरिचयका ११ शब्द ॥ शब्द २ । चौ०—७-८ ॥

पूर्वोक्त प्रमाणोंसे यहाँ ही नर देहमें और चौरासीमें सर्व पक्षपाती मनुष्य पुनर्जन्म लेते ही रहेंगे; परन्तु मुक्त होनेके नहीं। ऐसे सत्यन्यायसे कहनेमें हम कैसे नास्तिक वा अन्यायी कहावेंगे? कभी नहीं; सो निष्पक्ष होकर विवेक कीजिये ! ॥

प्रश्न (१८) यदि स्वर्गलोकमें स्थित कर्त्ता नहीं ठहरता, तो उस विषय और भी कहा है:—

'अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोमध्यआत्मनि तिष्ठति' 'अङ्गुष्ठमात्रःपुरुषोज्योतिरिवाधूमकः'
॥ कठ उपनिषद्, अध्याय २ । वल्ली ४ । मन्त्र १२ । १३ ॥

अर्थः—हृदय कमल अङ्गुष्ठ परिमाण रहनेसे तिसके छिद्रमें का अन्तःकरण भी अङ्गुष्ठ परिमाणवाला है, तिसमें स्थित पुरुष भी अङ्गुष्ठ परिमाण है ॥ अङ्गुष्ठ परिमाणवाला पुरुष धूआँ रहित प्रकाशमान. अग्निवत ज्योति स्वरूप है ॥

इन प्रमाणोंसे पाषाण, काष्ठ, धातु आदि किसी मूर्तिके ध्यानसे मनकी भावना पूर्णतासे सिद्ध हुए बाद अङ्गुष्ठमात्र, प्रकाशरूप देवता प्रगट होता है; तिसको मैं कर्त्ता मानता हूँ ? ॥

(१८) उत्तरः—परमात्मा पुरुषकी वास्तविक मूर्ति ही नहीं; क्योंकिः—

"न तस्य प्रतिमाअस्ति ॥" ॥(२) यजुर्वेद, अध्याय ३२ । मण्डल मन्त्र ३॥

अर्थः—जगव्यापक, निराकार परमात्माकी प्रतिमावत्, साकार, एकदेशी मूर्ति कहीं नहीं है ॥

इस प्रमाणसे व्यापक माना हुआ परमात्मा सर्वके हृदयमें अङ्गुष्ठमात्र, एकदेशी रहना ही असम्भव है। अथवा कोई भी मूर्ति मुख्य पृथ्वी तत्त्वकी बनाई हुई जड़ है, उसे कर्त्ता कैसे मानना ? जैसे पृथिवी और घड़े दोनों कारण-कार्य एक ही स्वरूप जड़ रहते हैं। (तिसको पूर्वमें प्रमाण प्रश्न १० में देखिये !) । तैसे यदि मन जड़ है, तो तिसके एकाग्रतासे भावना सिद्ध होनेसे वा कल्पनाके सिद्धी कलासे दीखता हुआ अङ्गुष्ठमात्र प्रकाशरूप देवता भी जड़ है। वह जड़ मूर्ति ज्ञान हीन रहनेसे जगत्के रचनेमें असमर्थ है। बहुत काल तक जड़ मूर्तिका हृदयमें ध्यान करनेसे उसमें लक्ष स्थिर हुए बाद वृत्ति उलट करके स्वप्नवत् सूक्ष्म अङ्गुष्ठमात्र, प्रकाशरूप एक मूर्तिकी भास हृदयमें उपासकोंको दिखाई पड़ती है। परन्तु देखनेवाले उपासक जीव उससे न्यारे ही रहते हैं। अर्थात् दृश्य भाससे भासिक द्रष्टा जीव न्यारा ही रहता है। इससे दृश्य भास मिथ्या है ॥ क्योंकिः—

'यद्दृष्टं तन्नष्टं' इति श्रुतिः ॥ अर्थः—सर्व दृश्य पदार्थ नाशवान् हैं॥

इस प्रकारसे आप ही के प्रमाण द्वारा वह दृश्य, नाशवान् मूर्ति जगत्को रच ही नहीं सकती है ॥ बीजकमें कहा है:—

शब्द:—"ब्रह्मा वरुण कुबेर पुरन्दर, पीपा औ प्रहलादा ॥
हरणाकुश नख वोद्र बिदारा, तिन्हको काल न राखा ॥८६॥"
॥ चौ० ९–१० ॥ बीजक, शब्द ८६ टीकायुक्त ॥

अर्थ:—ब्रह्मा, वरुण, कुबेर, इन्द्र, पीपा और प्रह्लाद भक्त ये सब बड़े सामर्थ्यवान हुए कहते हैं; परन्तु वे सब मनके रङ्गमें दिवाने हुए। जो मनसे कल्पना उठी, तिसमें नाना प्रकारसे तिन्होंने लक्ष लगाया। फिर जब भावना पूर्णतासे सिद्ध हुई, तब उस मनका एक स्वरूप मनोभावनाकी सिद्धीकलासे सहचेतन स्वप्नवत् प्रगट हुआ, ऐसा कहते हैं। तिसको भगवान् मानके तिसके रङ्गमें दिवाने हुए। उस रूपसे सिद्धान्त पायके वे भ्रमिक हो संसारको भी भ्रमाने लगे। परन्तु वह मनका स्वरूप, हमारी ही दृढ़ भावनारूप कल्पनाकी सिद्धीकला है, ऐसा नहीं जाना। तिसकी सेवामें गाफिल हुए; उनको फिर स्थिति कैसे होगी? इसलिए गर्भवासमें जायेंगे। प्रह्लादके मनका जो स्वरूप बना, सोई "नरसिंह" जिसने हिरण्यकश्यपुका पेट फाड़ डाला। फिर कहाँ गया? उसका मन उसीमें समाया। वह भी मनसे नहीं बचा, अर्थात् उसी कल्पनामें गाफिल हुआ। नरसिंह नामका एक मनुष्य था, उसने सिंहका रूप बनाके धोखासे हिरण्यकश्यपुको मार डाला; उसीको बादमें सब कोई भगवान् कहने लगे। सोई कल्पनामें सब गाफिल हुए ॥

इस प्रमाणसे जैसे प्रह्लादके मनकी भावना सिद्ध हो जानेसे

कल्पनाकी सिद्धीकलासे देहधारी, सहचेतन नरसिंह अवतार प्रगट होकर, हिरण्यकश्यपुका पेट फाड़के पुनः उसीमें ही समाया। तैसे ही भक्तजनोंके दृढ़ ध्यानसे मनकी भावना सिद्ध हुए बाद उसी भावनारूप सिद्धि कलासे इष्ट देवता सहचेतन, देहधारी सामने दिखलाई पड़कर स्वप्नवत् बातें भी करता है। तिससे बर प्राप्त होके संसारमें कोई मायाका कार्य भी सिद्ध हो जाता है, और अन्तमें उन्हीं भक्तजनोंमें ही समा जाता है; ऐसा गुरुवा लोगोंने माने हैं। परन्तु वह सिद्धीकलासे प्रगट हुआ मनका भावनारूप देवता जड़ है, और भावना सिद्ध करनेवाले चेतन भक्तजन श्रेष्ठ हैं। देहके अन्त समय वे देवता भी नाश हो जायेंगे। ये सब कल्पित कथन गुरुवाओंके सिद्धान्तका ही है, सो समझानेके लिए ही यहाँ पर दर्शाया गया है॥

पूर्वोक्त भावनासिद्ध, अङ्गुष्ठमात्र, कल्पित जड़ देवताको कर्त्ता मानना भूलकी ही बात है॥

प्रश्न (१९) यदि भावनासिद्ध देवता कर्त्ता नहीं ठहरता, तो तिस विषय और भी कहा है:—

"स्वरूपं सगुणं॥" गोपालोत्तरतापिनि उपनिषद्॥ ३१॥

अर्थः—माया विशिष्ट, सगुण ब्रह्म, ईश्वरके नाना अवतार परमात्माके ही स्वरूप हैं॥ अथवाः—

"यो रामः कृष्णतामेत्य सर्वात्म्यं प्राप्य लीलया" कृष्ण उपनिषद्। मन्त्र १॥

अर्थः—सर्वात्मरूप परमात्मा ही स्व-लीलासे सगुण अवतार कृष्ण भगवान् प्रगट हुए॥

इन दो प्रमाणोंसे राम, कृष्णादि सगुण अवतारोंको मैं कर्त्ता मानता हूँ?॥

(१९) उत्तरः—जगत्के अनादि काल विषय कहा हैः—

"अनादित्वमविद्यायाः कार्यस्यापि तथेष्यते" विवेकचूडामणि, अर्द्ध श्लोक २०० ।

अर्थः—शङ्कराचार्य कहते हैं कि, माया और मायाका कार्य दोनों प्रवाहरूपसे अनादि हैं; अर्थात् किसी समय जगत् नहीं था, ऐसा कहा जाता नहीं ॥

परमात्मा निराकार, घनवत् व्यापक है, (तिसको पूर्वमें श्रुतियोंका प्रमाण प्रश्न ५ और प्रश्न १२ में देखिये !) ॥

इन दो प्रमाणोंसे अनादि कालके नित्य जगत्में कर्त्ता परमात्मा कहाँ रहेगा ? और एकदेशी अवतार कैसे धर लेवेगा ? अनादि कालके जगत्को रचनेवाला सगुण कर्त्ता मानना आश्चर्यकी बात है । जब राम, कृष्णादि अवतार प्रगट हुए, तब जगत् अनादि ही रहा । सर्व माने हुए अवतार अनादि कालके जगत्के भीतर ही प्रगट हुए, और विशेष कलाओंको (पुरुषार्थोंको) दिखला कर देह छोड़के चले गये, तिनको आप जगत् कर्त्ता कैसे मानते हो ?॥

इस प्रकारसे देहधारी, सगुण अवतारोंको कर्त्ता मानना असम्भव बात है ॥

प्रश्न (२०) यदि सगुण अवतार कर्त्ता नहीं ठहरता, तो उस विषय और भी कहा हैः—

"वैकुण्ठनाथो जगदुत्पादेन स्वरूपेण सृजति योगमायारूढ़ो भवति ॥"

॥ त्रिपाद्विभूति महानारायण उपनिषद् । अध्याय ५ ॥

अर्थः—वैकुण्ठवासी, निर्गुण नारायण अपनी योगमायारूप स्वयं शक्तिसे जगत्की उत्पत्ति करते हैं ॥

इस प्रमाणसे निर्गुण, वैकुण्ठवासी नारायण वा क्षीरसागर निवासी विष्णु भगवान्को मैं कर्त्ता मानता हूँ ? ॥

(२०) उत्तरः—वैकुण्ठादि स्वर्गलोक और वहाँके निवासी देवताओंको मानना कल्पित कथन है; (तिनको पूर्वमें प्रमाण प्रश्न ७ और प्रश्न १७ में देखिये !)। इसी सबब वैकुण्ठवासी, निर्गुण नारायण कर्त्ता मानना कल्पित है ॥

यदि क्षीरसागर निवासी विष्णु भगवान्‌को भी कर्त्ता माने, तो सागर रहनेसे जगत् भी अनादि ठहरता है। अथवा आप एकदेशी देवता रहनेसे सर्व जगत् रचनेमें सहज ही असमर्थ हैं ॥

यदि कर्त्ताको निर्गुण माने, तो निर्गुणसे सगुण जगत् उत्पन्न हो ही नहीं सकता है। निर्गुणसे जगत्‌की उत्पत्ति नहीं होती; (उसे पूर्वमें प्रमाण प्रश्न ७ में देखिये !)। योगमायारूप कर्त्ता की शक्ति उससे भिन्न होगी, तो किस कारणसे तिसकी सम्बन्ध की गई ? यदि कहोगे किः—

श्लोकः—"परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम् ॥
धर्मसंस्थापनार्थाय, सम्भवामि युगे युगे ॥ ८ ॥"
॥ भगवद्‌गीता, अध्याय ४। श्लोक ८ ॥

अर्थः—वेद धर्म स्थापन करके साधु, गौवें, ब्राह्मण और भक्तजनोंका रक्षण करनेके लिए विष्णु भगवान् युग-युगसे अवतार लेते रहते हैं ॥

इस प्रमाणसे प्रथम जगत् था ही, तब पीछेसे अवतार हुए। इसलिए जगत् अनादि सिद्ध है। जगत् अनादि कालसे है, और परमात्माके अवतार नहीं होते; (तिनको पूर्वमें प्रमाण प्रश्न १९ में देखिये !) ॥

पूर्वोक्त निर्गुण नारायण वा विष्णु भगवान्‌को कर्त्ता मानना, यह भी असम्भव बात है ॥

प्रश्न (२१) यदि निर्गुण नारायण वा विष्णु भगवान् कर्त्ता नहीं ठहरते हैं, तो उस विषय और भी कहा है:—

श्लोकः—"कल्पे-कल्पे क्षये सत्या, ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः ॥ २० ॥"
॥ पराशर स्मृति, अध्याय १ । अर्द्ध श्लोक २० ॥

अर्थः—चारों युग सहस्र बार बीत जानेसे ब्रह्माका एक दिन सम्पूर्ण हो के जगत्का प्रलय हो जाता है, उस समयको कल्प कहते हैं। ऐसे ब्रह्माकी सौ वर्षोंकी बड़ी आयु तक अनेक कल्प होते रहते हैं, उन प्रलयोंमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश, ये तीनों देवता कायम रहते हैं ॥

इस प्रमाणसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश, ये जो उत्पत्ति पालन और प्रलय करते हैं, उनको मैं कर्त्ता मानता हूँ ? ॥

(२१) उत्तरः—यदि ब्रह्मा, विष्णु और महेश को उत्पति, पालन और प्रलय कर्त्ता माने, तो तिनके स्वर्गलोक ही असिद्ध हैं; (उसे पूर्वका प्रमाण प्रश्न १७ में देखिये !) ॥

स्थूल देहके अभिमान युक्त वा सूक्ष्म देहसे अधर पोलमें कोई भी जीव सदोदित ठहर नहीं सकते; (उसे पूर्वमें प्रमाण प्रश्न ७ में देखिये !) ॥

इन दो प्रमाणोंसे उक्त तीनों देवता और तिनके स्वर्ग लोक सहज ही असिद्ध हैं। यदि उन्होंको कर्त्ता भी माने, तो अनेक, देहधारी चेतन जीव और पाँच तत्त्वोंका जड़ ब्रह्माण्ड रहे बिना वे उत्पत्ति, पालन और प्रलय तो भी किसका करेंगे ? जब जगत् नहीं था, तब वे कर्त्ता कहाँ रहे होंगे ? जैसे वृक्षका फल पृथ्वी पर गिरता है, तैसे ही पोलाकार आकाशमें स्थिर वृक्षसे आकाशमें ही

गिरकर, उनके पोलाकार शरीर बन्ध्या-पुत्रवत् आकाश ही में रहे होंगे? वाहजी! वाह! कैसी आश्चर्यकी बनावट बात है। इसी सबब जगत् अनादि सिद्ध है। जगत् अनादि कालसे है; (उसे पूर्वमें प्रमाण प्रश्न १२ और प्रश्न १६ में देखिये!) ॥ बीजकमें कहा है:—

शब्दः—"ब्रह्मा वेद सही कियो, शिव योग पसारा हो! ॥ ४ ॥
विष्णु माया उत्पति कियो, ई उरले व्यौहारा हो! ॥ ५ ॥"
॥ बीजक, शब्द ११४ । टीकायुक्त ॥

अर्थः—जगत्में जिसने पूर्वमें वेद सही किया, सोई मनुष्यका नाम ब्रह्मा हुआ। जिसने योग पसारा, सोई मनुष्य शिव हुए, और जिसने उपासनारूप माया उत्पन्न किया, सोई मनुष्य विष्णु हुए। सो यह सब उरला=इसी तरफ संसारमें बन्धनका ही व्यवहारका पसारा किये हैं॥

इस प्रमाणसे वै तीनों, कोई कल्पित सिद्ध कलाधारी या पुरुषार्थी मनुष्य पूर्वमें प्रसिद्ध हो गये होंगे। इस समय वै कहाँ रहते हैं? ऐसा प्रत्यक्ष कोई दिखला नहीं सकते हैं। अथवा वेद प्रमाणसे व्यापक परमात्मा दृढ़ निश्चय करके वै चारों खानियोंमें बारम्बार जन्म लेते होंगे॥ अथवाः—बीजकमें कहा है:—

शब्दः—"रजोगुण ब्रह्मा तमोगुण शङ्कर, सतोगुणी हरि होई॥ ७ ॥"
अर्थ ❁ स्पष्ट है॥ ॥ चौ० ७ ॥ बीजक, शब्द ७५ ॥

इस प्रमाणसे रज, सत्त्व और तम, ये त्रिगुणरूप क्रियाओंके

❁ रजोगुण, कामको धारण करै सोई ब्रह्मा। तमोगुण, क्रोधको धारण करै सोई शङ्कर। सत्त्वगुण, मोहको धारण करै सोई हरि=विष्णु कहा जाता है ॥ बीजक त्रिजा ॥

ही नाम ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं। क्योंकि नर देहोंमें इन तीनों गुणोंके व्यवहार प्रत्यक्ष हो रहे हैं ॥

पूर्वोक्त कल्पित वाणी सुनके ब्रह्मा, विष्णु और महेशको आप कर्त्ता मान बैठे हो, यही बड़ी भूल है। जरा सत्य विचार तो करिये ! ॥

प्रश्न (२२) यदि ब्रह्मा, विष्णु, महेश, ये कर्त्ता नहीं ठहरते हैं, तो कर्त्ता विषय और भी कहा है:—

'अणोरणीयान्महतो महीयान्' कठ उपनिषद् अध्याय१। वल्ली २। मन्त्र २०॥

अर्थ:—सूक्ष्मसे अति सूक्ष्म और स्थूलसे अति स्थूल परमात्मा है ॥

इस प्रमाणसे सूक्ष्म–से–सूक्ष्म और स्थूल–से–स्थूल विराट्रूप परमात्माको मैं कर्त्ता मानता हूँ ? ॥

(२२) उत्तर:—यदि कर्त्ताको अदृश्य परमाणुवत् अति सूक्ष्म और तिनके समूहवत् स्थूल विराट्रूप माननेसे पृथिवी, जल, तेज और वायु, इन चार तत्त्वोंके त्रसरेणुओं, अणुओं और परमाणुओंके समूह समान चारों जड़ तत्त्ववत् वह जड़ ही ठहरता है ॥

इस तरह कर्त्ताको अति सूक्ष्म और बड़ा स्थूल इन दोनों प्रकारसे मानना, यह व्याघात दोषवत् असम्भव कथन है। आप उक्त कर्त्ताका प्रमाण क्या अनुभव लेकर किये हैं वा कहे हैं, सो कहिये ? ॥

प्रश्न (२३) हे दयानिधे ! मेरा जो अनुभव है, सो भी मैं बतलाता हूँ। प्रथम सिद्धी विषय कहता हूँ:—

श्लोक:—"सिद्धयोऽष्टादश प्रोक्ता, धारणायोगपारगैः ॥
तासामष्टौ मत्प्रधाना, दशैव गुणहेतवः ॥ ३ ॥

अणिमा महिमा मूर्तेर्लघिमा प्राप्तिरिन्द्रियैः ॥
प्राकाम्यं श्रुतदृष्टेषु, शक्तिप्रेरणमीशिना ॥ ४ ॥
गुणेष्वसङ्गो वशिता, यत्कामस्तदवस्यति ॥
एता मे सिद्धयः सौम्य, अष्टावौत्पत्तिका मताः ॥ ५ ॥
अनूर्मिमत्त्वं देहेऽस्मिन् दूरश्रवणदर्शनम् ॥
मनोजवः कामरूपं, परकायप्रवेशनम् ॥ ६ ॥
स्वच्छन्दमृत्युर्देवानां, सहक्रीडानुदर्शनम् ॥
यथासङ्कल्पसंसिद्धि-राज्ञाऽप्रतिहतागतिः ॥ ७ ॥
त्रिकालज्ञत्वमद्वन्द्वं, परचित्ताद्यभिज्ञता ॥
अग्न्यर्काम्बुविषादीनां, प्रतिष्टम्भोऽपराजयः ॥ ८ ॥"

॥ भागवत, स्कन्द ११ । अध्याय १५ । श्लोक ३ । ४ । ५ । ६ । ७ । ८ ॥

अर्थः—श्रीकृष्ण कहते हैं कि, हे उद्धव ! योगके अनुभव सिद्ध पुरुषोंने (१८) अठारह प्रकारकी सिद्धियाँ और धारणा की हैं । अर्थात् धारणायोगके पारगामी योगियोंने अठारह प्रकारकी सिद्धियाँ बतलायी हैं । तिनमेंसे अष्ट सिद्धियाँ पूर्णतासे मुझमें ही रही हैं; और सारूप्य मुक्त पुरुषोंमें कछुक मुझसे न्यून अंशसे रहती हैं । अन्य दश सिद्धियाँ सत्त्वगुणकी वृद्धिसे दूसरे योगियोंको प्राप्त होती हैं ॥ ३ ॥ तिनका भेद मैं कहता हूँ, सो सुनोः—

१. अणिमा = बड़े शरीरमेंसे अति छोटा शरीर धर लेना । २. महिमा = अति छोटे शरीरमेंसे बड़ा शरीर बना लेना । ३. लघिमा = भारी शरीरको कपासवत् हल्का शरीर कर लेना । ४. प्राप्तिरिन्द्रिय = सर्व प्राणियों की इन्द्रियोंके साथ उन-उन इन्द्रियोंका देवतारूपसे सम्बन्ध । ५. प्राकाम्य = परलोकके वा इस लोकके सकल विषयोंके भोगोंको देखनेकी शक्ति । ६. ईशिता = ईश्वरमें मायाकी और दूसरोंमें मायाके अंशोंकी प्रेरणा करनेकी

शक्ति ॥ ४ ॥ ७. वशिता = विषय भोगोंमें असङ्ग रहना; और ८. प्राकाश्य-कामावसायिता = जिस-जिस सुख प्राप्ति की इच्छा होवै, तिस-तिस सुखकी अतिशयताको पहुँचना। ये अष्ट सिद्धियाँ मुझमें स्वाभाविक और अति विशेष हैं ॥ ५ ॥ इनके अतिरिक्त और भी कई सिद्धियाँ हैं ॥

१. अनुर्मिमत्त्व = इस शरीरसे क्षुधा-तृषा नहीं होना। २. दूरश्रवण = बहुत दूरसे सुनना। ३. दूरदर्शन = बहुत दूरसे देखना। ४. मनोजव = मन जहाँ जाय, वहाँ शरीरका पहुँचना। ५. कामरूप = मनसे इच्छित रूपकी प्राप्ति। ६. परकाया प्रवेशन = दूसरेके मृत शरीरमें पैठना ॥ ६ ॥ ७. स्वच्छन्द मृत्यु = अपनी इच्छाके साथ मरण। ८. देवानांसहक्रीडानु-दर्शनम् = देवता अप्सराओंके साथ जो क्रीड़ा करते हैं, तिन क्रीड़ाओंकी दर्शन प्राप्ति। ९. सङ्कल्पसंसिद्धि = सङ्कल्पके अनुसार प्राप्ति। १०. अप्रतिहताज्ञा = आज्ञाका भङ्ग कभी नहीं होना। ये दश सिद्धियाँ सत्त्वगुणके अधिकतासे होते हैं ॥ ७ ॥ १. त्रिकालज्ञत्त्व = तीनोंकालका ज्ञान होना। २. अद्वन्द्व = शीत-उष्णतासे पराभव नहीं पाना। ३. परचित्ताद्यभिज्ञता = पराये चित्तको जानना। ४. प्रतिष्टम्भ = अग्नि, सूर्य, जल, विष, इनसे किसी प्रकारकी शरीरको हानि नहीं पहुँचना; और ५. अपराजय = किसीसे भी किसी स्थलमें नहीं हारना। ये पाँच सामान्य-गौण-सिद्धियाँ हैं; ऐसी सिद्धियाँ सब (२३) तेईस कहे हैं ॥८॥

इन प्रमाणोंसे जैसे सिद्धयोगी 'अणिमा' और 'महिमा' इन दो सिद्धि कलाओंसे वायुवत् सूक्ष्म और पर्वत समान बड़ा स्थूल

शरीर धर लेते, तैसे ही कर्त्ता सम्पूर्ण सिद्धिकलाधारी है ॥ क्योंकिः—

"अहं सर्वस्य प्रभवो, मत्तः सर्वं प्रवर्त्तते ॥" भ०गीता, अ०१०, अर्द्ध श्लोक ८॥

अर्थः—श्रीकृष्ण कहते हैं कि, हम ही परमात्मा स्वरूप सर्वशक्तिमान् हैं। हमारी ही शक्तिसे सर्व जगत्का व्यवहार बराबर चल रहा है ॥

इन प्रमाणोंसे मैं कर्त्ताको सर्वशक्तिमान् मानता हूँ ? ॥

(२३) उत्तरः—इसका उत्तर हम आगे कहेंगे, परन्तु प्रथम यह बताइए कि, आप कर्त्ताकी शक्ति चेतन वा जड़ मानते हो ? ॥

प्रश्न (२४) जैसा मैं सत्सङ्गसे जाना हूँ ! तैसा ही कहता हूँ ! ॥ कर्त्ताके शक्ति विषय कहे हैंः—

श्लोकः—"यथा जलं जले न्यस्तं, सलिलं भेदवर्जितम् ॥
प्रकृतिं पुरुषं तद्वदभिन्नं प्रतिभाति मे ॥ ५० ॥"
॥ अवधूतगीता, अध्याय १ । श्लोक ५० ॥

अर्थः—दत्तात्रेयजी कहते हैं कि, जैसे जलमें डाला हुआ अन्य जल भेदसे रहित एक स्वरूप हो जाता है। तैसे ही प्रकृति और पुरुष मुझे अभिन्न-एकरूप-प्रतीत होते हैं ॥

श्लोकः—"गुणानां चाप्यहं साम्यं, गुणिन्यौत्पत्तिको गुणः ॥ १० ॥"
॥ भागवत, स्कन्ध ११ । अध्याय १६ । अर्द्ध श्लोक १० ॥

अर्थः—श्रीकृष्ण कहते हैं कि, त्रिगुणोंकी समतारूप प्रकृति मेरा ही गुण जगत्की उत्पत्तिका कारण है, और गुण गुणीमें ही रहता है ॥

इन दो प्रमाणोंसे मैं कर्त्ता की शक्तिको चेतन मानता हूँ ? ॥

(२४) उत्तरः—कर्त्ता चेतन और उसकी गुणरूप शक्ति भी चेतन, ऐसा वह एक स्वरूप चेतन ही ठहरता है; जैसे अग्निमें

उष्णता। इसलिए अन्य जड़ सामग्री बिना जड़ पाँच तत्त्वोंका ब्रह्माण्ड और जीवोंके अनेक शरीरादि जड़ पदार्थ वह उत्पत्ति कर ही नहीं सकता। चेतन शक्तियुक्त कर्त्ता चेतन ही स्वरूप अकेला रहनेसे तिससे जगत्की उत्पत्ति नहीं होती; (उसे पूर्वमें प्रमाण प्रश्न २ में देखिये !) । अकेले अखण्ड चेतन कर्त्तासे दूसरे अविनाशी अनेक चेतन जीवोंकी उत्पत्ति मानना असम्भव दोषयुक्त है ॥

इस प्रकारसे कर्त्ता चेतन शक्तियुक्त, एक ही स्वरूप चेतन रहनेसे आपसे अविनाशी अनेक चेतन जीव सहित जड़ तत्त्वयुक्ती जगत्की उत्पत्ति मानना अन्यायका कथन है ॥

प्रश्न (२५) यदि चेतन शक्तियुक्त चेतन कर्त्तासे जगत्का। उत्पत्ति नहीं ठहरती, तो उसके जड़ शक्ति विषय भी कहे हैं:—

"विकारजननीमज्ञामष्टरूपामजां ध्रुवाम् ॥"—मन्त्रिक उपनिषद्, मन्त्र ३

अर्थः—विकाररूप जगत्को उत्पन्न करनेवाली अष्टधा॥ पाँच तत्त्व, मन, बुद्धि और अहङ्कार ये अष्ट अङ्ग मिलके प्रकृति-रूप अज्ञान वा माया नित्य स्वरूप है ॥

श्लोकः—"मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ॥ १० ॥"

॥ भगवद्गीता, अध्याय ९। अर्द्ध श्लोक १० ॥

अर्थः—श्रीकृष्ण कहते हैं कि, मेरे ही कारणरूप कर्त्ता पुरुषसे इस चराचर जगत्को जड़ प्रकृति ही उत्पन्न करती है ॥

"मायां तु प्रकृतिं विद्यात् ॥" श्वेताश्वतर उपनिषद्। अध्याय ४। मन्त्र १० ॥

अर्थः—प्रकृतिको ही 'माया' कहते हैं ॥

इन प्रमाणोंसे मैं कर्त्ताकी शक्तिको जड़ मानता हूँ ? उसी मूल-मायारूप शक्तिसे सिद्ध, योगीवत् कर्त्ता जगत्को रचता है ॥

(२५) उत्तरः—देहधारी सिद्ध योगी जो सूक्ष्म वा बड़ा स्थूल शरीर धर लेते, अथवा एकसे अनेक स्वरूप भी धर लेते, जो ऐसा कहा है, सो योगकी पूर्णतासे कल्पित सिद्धि हुए बाद एक देशमें थोड़े समय तक ही देह धर लेते, ऐसा गुरुवा लोगोंने कल्पनासे माने हैं। परन्तु सम्पूर्ण जगत् रचनेमें वे तुम्हारे माने हुए सिद्ध योगी भी असमर्थ हैं। क्योंकि जगत् अनादि कालसे ही है; (उसे पूर्वमें प्रमाण प्रश्न १२ और प्रश्न १६ में देखिये !)। कर्त्ता जड़ शक्तियुक्त अनादि रहनेसे आप देहधारी, सिद्ध योगी-वत् कहीं पृथ्वीपर रहते होंगे। परन्तु आपका प्रत्यक्ष दर्शन आज तक किसीको हुआ नहीं। यदि जगत्में कहीं होंगे, तो भी आप अकेले सर्व जगत्को कैसे रचेंगे ? जड़—चेतन संयोग वाला कर्त्ता जगत्की उत्पत्ति नहीं करता। [उसे पूर्वमें प्रमाण प्रश्न ४ में देखिये !]। यदि कर्त्ताको कहीं अधर वातावरणमें रहनहार माने, तो सूक्ष्म देहसे भी कोई चेतन जीव अधर वातावरणमें सदाकाल ठहर नहीं सकते हैं, और ऊपर स्वर्गलोक भी असिद्ध हैं, [तिनको पूर्वमें प्रमाण प्रश्न ७ और प्रश्न १७ में देखिये !]॥

पूर्वोक्त जड़ शक्तियुक्त कर्त्ता पृथिवी पर स्थित, देहधारी एक कल्पनासे सिद्ध योगी पुरुष ठहरनेसे आपसे भी सर्व जगत्की उत्पत्ति मानना असम्भव बात है। परन्तु देहधारी अनेक चेतन जीव अपने—अपने अनेक व्यवहारोंके कर्त्ते प्रत्यक्ष ही हैं, ऐसे सब देख ही रहे हैं। सो तो सबको ज्ञात ही है, ऐसा जानिये ! ॥

प्रश्न (२६) यदि कर्त्ता जड़ और चेतन, ये दोनों शक्तियुक्त नहीं ठहरते, तो तिसके स्वयंसिद्धताकी और भी कारण मैं कहता हूँः—

भागवत दशम स्कन्ध, रामायण, विश्रामसागर, प्रेमसागरादि ग्रन्थोंके प्रमाणोंसे देहधारी सिद्ध योगीवत् विना योग सिद्ध किये हुए राम और कृष्ण, ये अवतारी पुरुष जन्म लेते ही स्वयं सिद्ध रहे ॥

कबीरमन्सूर, कबीरकसौटी आदि ग्रन्थोंके प्रमाणोंसे काशी निवासी महात्मा सद्-गुरु श्रीकबीर साहेब भी जन्मसे ही स्वयं सिद्ध रहे, ऐसा कई लोगोंने कहा है ॥

इन प्रमाणोंसे तथा पूर्वमें प्रश्न २३ में सर्व २३ सिद्धियाँ कही हैं, तिन प्रमाणोंसे सर्व कलाधारी, स्वयं सिद्ध आदिनारायण वा महाविष्णु भगवान् एक पलभरमें सर्व जगत्को रच लिए, ऐसा मानना सहज ही सम्भवता है ? ॥

(२६) उत्तरः—देहधारी सिद्ध देवता वा महाविष्णुका निवास स्थान "स्वर्गलोक" ही असिद्ध है; (उसे पूर्वमें प्रमाण प्रश्न १७ में देखिये !)। इसलिए सिद्ध कलाधारी स्वयं सिद्ध नारायण वा महाविष्णुको कर्त्ता मानना नहीं सम्भवता है। उपनिषद्में कहा है:—

"स पर्यगाच्छुक्रमकायम् ॥"—ईश उपनिषद् । मन्त्र ८ ॥

अर्थः—परमात्मा सर्व व्यापक निराकार है ॥

इस प्रमाणसे जैसे निराकार आकाश खण्ड करके मूठीमें नहीं पकड़ा जाता। तैसे ही निराकार परमात्मा भी राम-कृष्णादि एकदेशी, अनेक अवतार ले ही नहीं सकते। यदि स्वर्गलोक कहीं हिमालय तुल्य बड़े पहाड़ पर है, और वहाँ महाविष्णु रहते हैं, ऐसा मानें; तो "पहाड़ है" इतना मानते ही देहधारी, अनेक चेतन जीव और जड़ पाँच तत्त्व सहित जगत् भी अनादि ठहरनेसे आपको

जगत् उत्पन्न करनेवाला कर्त्ता मानना असम्भव है ॥

योगवासिष्ठ ग्रन्थमें कहा है:—सनत्कुमार, भृगु, बृन्दा, और देवशर्मा ब्राह्मण, इनके श्रापोंसे ❀ "विष्णु" का 'राम' अवतार हुआ ॥

भागवतमें कहा ‡ है:—वैकुण्ठवासी विष्णुके द्वारपाल बलि द्वार रक्षक "जय, विजय" को तीन जन्म राक्षस होंगे, और तीन बार विष्णु ही अवतार लेकर आपको मारेंगे, तब मुक्त होके आप पुनः वैकुण्ठवास पाओगे। ऐसा सनक-सनत्कुमारादिकोंका श्राप और आशीष हुआ रहा। अम्बरीषको दुर्वासा ऋषिका दश जन्म लेनेका श्राप हुआ। तब विष्णु ही स्वयं उसके दश जन्म लेनेका दुर्वासासे करार किये। सत्ययुगमें कश्यप और उसकी स्त्री अदिति, दोनोंने पुत्र प्राप्तिके कारण बड़ा कठिन तप किया। तब विष्णु प्रसन्न होकर आपके ही समान वे पुत्र माँग लेनेसे हम ही आपके पुत्र होंगे, ऐसा विष्णु ने बर दिये। अनन्तर त्रेता और द्वापर युगोंमें वे दोनों क्रमसे दशरथ, कौसल्या, और वसुदेव, देवकीके नामोंसे जन्म लिये। तहाँ राम और कृष्ण नाम धराय, कौसल्या और देवकीके उदरोंमें विष्णु ही स्वयं अवतार लिये, पुनः देह धरने ही को अवतार कहते हैं। ऐसा कथन भागवतमें लिखा है ॥

इन प्रमाणों द्वारा कहीं श्रापोंसे और कहीं तपके बरदानको

❀ श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस बम्बईमें सं० १६६२ वि० में छपी हुई योगवासिष्ठ भाषा भाग १ के वैराग्य प्रकरण सर्गः १ के अन्त में पृष्ठ ६ पर उन चारोंके शापका वर्णन करके लिखा है ॥

‡ भागवत, स्कन्ध ३। अध्याय १५ और १६ में इसका वर्णन हुआ है।

सत्य करनेके लिये कल्प–कल्पमें अथवा चारों युग बीत गये बाद विष्णुके (२४) चौबीस अवतार सदोदित होते ही रहते, ऐसा माना है। इसीको भागवत, भगवद्गीता और पूर्वके प्रश्न २० में भी प्रमाण दिये हैं ॥

विचारसागरके चतुर्थ स्तरङ्गमें लिखा ‡ हैः—राम और कृष्णके शरीर पञ्चभूत रचित नहीं, परन्तु मायाका कार्य केवल लीलाविग्रही रहे। देवता, सन्त, ब्राह्मणादि पुण्यवान् जीव और राक्षसादि तमोगुणी पापी जीव, तिनके पाप–पुण्योंसे रचे हुए और शुद्ध सत्त्वगुणयुक्त सर्वज्ञ रहे इत्यादि ॥ परन्तु विचार पूर्वक जब आगेका प्रश्नका उत्तर देखोगे, तो राम और कृष्णकी अनेक समय सर्वज्ञता और शुद्ध सत्त्वगुण दिखाई नहीं दिये। यदि चोर चोरी या हत्या करते हैं, तो राजालोग उन्हींको ही कैदकी या फाँसीकी सजा देते हैं। परन्तु पाप और पुण्य अनेक जीव करेंगे और उनकी सजा वा दण्डरूपी फल राम–कृष्ण, ये अवतारी पुरुष भोगेंगे, ऐसे अन्याय कहीं देखे–सुने भी नहीं। इसलिए राम–कृष्णके शरीर अन्य जीवोंके पुण्य–पापोंसे रचे हुए हैं, ऐसा मानना पक्षपात सहित अन्यायका कथन है ॥ उपनिषदोंमें कहे हैंः—

"न च पुनरावर्तते ॥ न च पुनरावर्तते ॥"

छान्दोग्य उपनिषद्, अध्याय ८। खण्ड १५ के मन्त्र १ के अन्तमें ॥

'न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तते ॥"

॥ जाबाल्युपनिषद् तथा सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद् दोनोंके अन्तमें है ॥

अर्थः—सदैव विदेहमुक्त जीवोंको पुनर्जन्म नहीं ❀ है ॥ और

‡ विचारसागर, स्तरंग ४, पृष्ठ १७६ से १८४ तक में लिखा है ॥

❀ 'परं पदं यत्र गत्वा न निवर्तन्ते ॥" बृहज्जाबालोपनिषद्, ब्राह्मण ८। मन्त्र ६ ॥

पूर्वमें प्रश्न ७ और प्रश्न १७ के प्रमाणोंसे वैकुण्ठ और महावैकुण्ठ लोक ही असिद्ध ठहरे हैं। इसलिए विष्णुको श्राप होने, वैकुण्ठमें द्वारपाल 'जय-विजय' रहने, विष्णुका दुर्वासासे दश जन्म लेनेका करार होने, सत्ययुगके कश्यप और अदिति पुनः दशरथ-कौसल्या, तथा वसुदेव-देवकीके नामोंसे त्रेता और द्वापर युगमें फिर जन्म लेने इत्यादि वचन सब पुराणोंके गपोड़े ही प्रतीत होते हैं, कुछ यथार्थ न्यायके नहीं। वे सब तो कल्पित रोचक वाणी हैं ॥

पूर्वोक्त अनेक ग्रन्थोंके अन्यायके शब्दोंको सुनकर, आप नारायण वा महाविष्णुको महासिद्ध जगत कर्त्ता मानके क्यों भूलमें पड़े हो ? ॥

प्रश्न (२७) अब मैं आदिनारायण वा महाविष्णु भगवान्को कर्त्ता नहीं मानता ॥ परन्तुः—

भागवतका दशम स्कन्ध, रामायणादि ग्रन्थोंके प्रमाणोंसे राम-कृष्णादि अवतार जन्मते ही स्वयंसिद्ध कलाधारी किस कारणसे रहे, सो कृपा करके समझा कर कहिये ? ॥

(२७) उत्तरः—भागवतादि ग्रन्थोंके प्रमाणोंसे राम और कृष्ण ये सर्वश्रेष्ठ अवतारोंने साधारण मनुष्यवत् कौसल्या और देवकीके दुर्गन्धरूप उदरोंमें जन्म क्यों लिये ? जन्मते ही चार भुजा, मुकुट, पीताम्बर, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म युक्त बड़े बालकोंके रूप अपने-अपने माताओंको दिखाय, भाषण करके फिर छोटे बालक रूप धर लिये, ऐसा कहा है। अन्त समय नरदेह छोड़के दिव्य विष्णुरूप देह बनाय, विमानोंमें बैठकर देह सहित वैकुण्ठको चले गये। ऐसे-ऐसे अनेक सिद्ध कलाधारी, त्रिकालदर्शी वे रहे,

ऐसा वर्णन किया है। परन्तु अब विचार करके देखिये ! कि:—

जब रामावतारमें रामने बाली बन्दर नामक मनुष्यको कपट से मारा, तो फिर उसी बालीने भी दूसरा जन्म लेकर व्याधा होकर 'जरा' नाम धराय, 'कृष्ण' को मार दिया। ऐसा राम को भी हत्याका बदला कृष्णावतारमें क्यों देना पड़ा ? रावणके युद्धमें लक्ष्मणको शक्ति लग जानेसे वह मरणके तुल्य दिनभर पड़ा रहा। उसको रामने क्यों नहीं जिलाया ? राम और लक्ष्मणको अहिरावण उठाय पातालमें ले गया, और देवीको बलिदान देने लगा, उसे रामने स्वयं क्यों नहीं मारा ? "जानकीविजय" नामक ग्रन्थके प्रमाणसे महिरावणको रामके अनेकों बाण लग कर रक्तके बून्दोंमेंसे दूसरे अनेक महिरावण देह धरके प्रगट होते रहे, ऐसा कल्पित कथन लिखा है। तब सीताजी कालीका बड़ा भयङ्कर स्वरूप धारण करके उसका रक्त पी जाने लगी, इस तरहसे महिरावण मारा गया। ऐसा कल्पनासे मानके अभी कालीदेवीकी, कलकत्ता तरफ मूर्ति पूजा होती है। रावणके नाभिमें अमृत था, उसीसे उसके (२०) बीस हाथ और (१०) दश मस्तक रामके बाणसे कटनेपर भी अनेक हाथ और अनेक मस्तक रावणको बारम्बार उत्पन्न होते रहे, ऐसा रामायणमें कथन है। फिर विभीषण द्वारा उसका भेद बताये बाद तब रावण मारा गया। ऐसे-ऐसे अनेक समय रामकी स्वयं सिद्धिकला कहाँ जाती रही ? ॥

और कृष्णावतारमें कालयवनके डरसे समुद्रमें एक ही रात्रीमें द्वारका नामकी नगरी बसाय, कृष्णने सर्व मथुरा शहर

क्यों उजाड़ किया ? और उसके तथा जरासन्धके डरसे कृष्ण क्यों भागे ? गान्धारीका श्राप और जाम्बुवतिका पुत्र साम्बको दुर्वासादि ऋषियोंके द्वारा यादव कुलके नाश हो जानेका श्राप दिया, वह कृष्णको क्यों लगा ? रीछोंका राजा जाम्बुवन्तसे कृष्णने (२४) चौबीस दिन मल्लयुद्ध क्यों किया ? उसको प्रथम दिनमें ही क्यों नहीं मार डाला ? ऐसे--ऐसे बहुत समय कृष्णकी स्वयं सिद्धिकला कहाँ जाती रही ? (अब अच्छी तरहसे विचार कीजिये ! तो आपको भी यथार्थ सत्य बात मालूम होगा !) ॥

कभी मनुष्यवत् नहीं बोलने वाले जड़ वृक्षों, बेलियों और पाषाणादिकोंको सीता सुधीके लिए रामजी पूछ–पूछ कर शोकमें व्याकुल हो कर क्यों रोते रहे ? रामजी सीताजीकी प्राप्ति हो, उसके कारण शिवकी प्रसन्नताके लिए बड़ा कठिन तप क्यों किये ? (इसका प्रमाण शिवगीतामें देखिये !) रामको देह धरके अनेक दुःख क्यों भोगने पड़े ? ॥ और:—

कृष्णने मोहके मारे अनेक गोपियों और ग्वालोंका बिरह दुःख शान्त करनेके लिए गोकुलमें उद्धवको क्यों भेजे रहे ? कृष्णने गोकुलकी अनेक गोपिनियोंसे रासलीलामें जारवत् सम्भोग किये, और कुब्जाके सङ्ग भोगविलास किये। सोलह हजार एकसौ आठ विवाहित स्त्रियोंके सङ्ग विषयभोग आनन्द उड़ाय, एक–एक स्त्रीको दश–दश पुत्र, ऐसे पुत्र–पौत्रादि अनेक यादव उत्पन्न किये। ऐसे व्यभिचारी, महाकामी कृष्ण होते हुए भी उसको बाल–ब्रह्मचारी कहना और उसकी विषयलीला गाय–गायके स्त्री सम्भोगादि विषयोंमें आसक्त रहना, उसके उपासकोंको

शरम नहीं लगती है ? ऐसे ही सब गृहस्थ वा संसारीलोग जो लड़के उत्पन्न करते हैं, तिन्होंको बाल–ब्रह्मचारी ही कहना शोभा देगा क्या ? ॥ अर्थात् नहीं देगा ॥

विष्णु भगवान् स्वयं मुक्त रहके भी जन्म लेते ही रहे। फिर राम और कृष्णने वशिष्ठ तथा सान्दीपन गुरुओंका उपदेश लेकर क्या फल कमाया ? राम और कृष्ण हाथोंमें धनुष, बाण, चक्र और गदादि आयुध सदैव रखते रहे, निर्भय नहीं रहे। इसलिए उनको देवता भी कैसे कहना ? क्षत्रिय राजे लड़ने वाले रहे। लाखों, करोड़ों जीवोंकी शिकार खेलकर और रणमें युद्ध करके अनेक शत्रुओंको मार गिराय दुःख दिये। जहाँ रुधिर बहनेसे हाथी भी डूबने लगे, ऐसा वर्णन है। ऐसा महानिर्दयी कर्म कसाई भी करता है क्या ? और क्रोध बिना किसीका बध भी होता है क्या ? अनेक राजे और राक्षसोंको छल, कपटसे मारे, परन्तु सर्व मुक्त हो गये; ऐसा मानते हैं, यही महाअन्यायके वचन हैं। कसाई, धीमर इत्यादि हत्यारे मनुष्य भी सर्व जीवोंकी हिंसा करके मुक्ति ही करते होंगे ? कृष्णजीने अर्जुनको गीता और उद्धवको भागवतका उपदेश देकर काम, क्रोध, लोभ, मोहादि विकारोंको क्यों त्यागनेके लिए कहे हैं ? भगवद्गीतामें कहा है:—

श्लोकः—"त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ॥
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥ २१ ॥"

भगवद्गीता, अध्याय १६। श्लोक २१ ॥

—अर्थः—काम, क्रोध और लोभ ये तीन, जीवात्माको नरकमें ले जानेके द्वार हैं, उन्होंको छोड़ना चाहिये, तब यथार्थ ज्ञान होगा ॥

इस प्रमाणसे यदि गुरुके अङ्गमें पूर्ण दोष भरे हुए हैं, तो उनसे शिष्य कैसे शुद्ध हो सकता है ? तिनके नाम स्मरणसे मनुष्य नरकमें पड़ेंगे, या मुक्त होंगे ? इसका निष्पक्ष विचार कीजिये ! जड़ वेदरूप शब्द और जड़ जलरूप सागर, नर देह धरके या मिट्टीरूप जड़ पृथ्वी गऊका रूप धरके रामकी और विष्णुकी स्तुति किये, ऐसा वर्णन है। इन सबोंको मिथ्या कल्पित ही जानना चाहिये। कल्पित स्वर्गमें दुन्दुभी बाजा बजना, वहाँसे मनुष्यवत् आकाशवाणी होना और आकाशसे फूलोंकी वर्षा हुई, ऐसा लिखना, ये सब पूर्ण कल्पित असत्य कथन ही हैं। यानी मिथ्या गप्प ही लिखे हैं ॥

इस प्रकारसे पूर्वोक्त पुराणोंके सब अन्यायके वचन हैं, प्रत्यक्ष गपोड़े ही हाँके हैं ॥ अथवाः—

श्लोकः—"पुनर्देहान्तरं याति, यथाकर्मानुसारतः ॥
अमोक्षात्संचरत्येवं, मत्स्यःकूलद्वयं यथा ॥ १२ ॥"
॥ शिवगीता, अध्याय ११ । श्लोक १२ ॥

अर्थः—जैसे मच्छ नदीके एक किनारासे दूसरे किनारोंको जाती हैं, तैसे ही पुण्य-पापोंके उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ, कर्मोंकी वासना रहनेसे जीवोंको फिर अन्य देहें अवश्य धारण करने पड़ते हैं ॥

इस प्रमाणसे जो कोई शुद्ध चालसे चलनेवाले देहधारी योगीजन पूर्णतासे योगकी भावनारूप कल्पना सिद्ध करके देह त्यागते, वे पूर्व जन्मोंके विशेष संस्कारयुक्त सिद्धिकलारूप अध्यास कल्पनाओंकी वासनानुसार जन्मते ही कोई बिरले स्वयंसिद्ध (कोई भी पुरुषार्थिक कर्मोंमें अनायास सफलता

पानेवाले) पुरुष प्रगट होते हैं। परन्तु नर देह धरके योग सिद्ध किये उपरान्त ही कोई बिरला सिद्ध ❀ जगत्में निकल पड़ता है। पूर्वमें प्रश्न १२ और प्रश्न १६ के प्रमाणोंसे जगत् अनादि कालसे स्वयं सिद्ध है। इसलिए कोई भी नरजीव देहधारी अवतारादि एक पलमात्रमें सर्व ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति और प्रलय करनेको समर्थ नहीं ॥

अवतारी, क्षत्रिय राजे और जड़ प्रतिमादिकोंको इष्टदेव मानकर, तिनकी बड़ाई करके उपासक भक्तोंने अनेक रोचक वाणीके ग्रन्थ बनाय रक्खें हैं। कपटी, झूठ, प्रपञ्ची, कामी, क्रोधी, लोभी, मोही, ऐसे अनीतिसे चलनेवाले अवतारी पुरुष और कल्पित सिद्धिकलाधारी भक्तलोग बारम्बार नरदेह धरेंगे? या चौरासीमें भ्रमेंगे? इसका निष्पक्ष विचार कीजिये। वैकुण्ठलोक ही नहीं है; [उसे पूर्वमें प्रमाण प्रश्न १७ में देखिये!]। इस-लिए विष्णु ही नहीं, तो उसके अवतार कहाँसे होंगे? अवतार विषय कहा है:—

साखीः—"अस्मदादि जीव जगतके, विशेष सोई अवतार ॥
अधिक कला सब तासुके, ब्रह्मज्ञान परचार ॥ २३ ॥"
॥ साखी २३ ॥ समष्टिसार, पञ्चग्रन्थी ॥ नं० ३५२ ॥

अर्थः—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि, जगत्के जीवोंमें (२४) चौबीस अवतार अथवा भक्त, योगी, ज्ञानी आदिकोंमें

❀ अनायास ही व्यावहारिक या पारमार्थिक कार्योंमें अल्प पुरुषार्थसे ही सफलता, निपुणता, कार्य सिद्धता नवीन आविष्कार विशेष बुद्धि आदिका होना, ऐसा पूर्व संस्कारसे कोई बिरले सिद्ध होते हैं। ऐसा जानना चाहिए! ॥ —सम्पादक ॥

जहाँ विशेष सफलतारूप सिद्धिकलाएँ या कल्पनाएँ प्रकट हुई, उनको जगत्में अवतारी पुरुष कहते हैं। उनकी सर्वसे अधिक कला चराचर व्यापक ब्रह्मज्ञानका उपदेश है। वास्तवमें अवतार तो जन्म लेनेका ही नाम है॥

सदोदित स्थिर, विदेहमुक्त जीव फिर पुनर्जन्म नहीं लेते हैं; [उसे पूर्वमें उपनिषदोंके प्रमाण प्रश्न २६ में देखिये !]। इसलिए सदैव मुक्त माने हुए महाविष्णु वा आदिनारायण, फिर अवतार लिये, यह कहना ही नहीं बनता॥

कृष्णके अवतार विषय कृष्ण उपनिषद्में ❀ वर्णन किये हैं:—

❀ देवकी ब्रह्मपुत्रा सा या वेदैरुपगीयते। निगमो वसुदेवो यो वेदार्थः कृष्णरामयोः॥ ६॥ स्तुवते सततं यस्तु सोऽवतीर्णो महीतले। वने वृन्दावने क्रीडन्गोपगोपीसुरैः सह॥ ७॥ गोप्यो गाव ऋचस्तस्य यष्टिका कमलासनः। वंशस्तु भगवान्रुद्रः शृङ्गमिन्द्रः सगोसुरः॥ ८॥ गोकुलं वनवैकुण्ठं तापसास्तत्र ते द्रुमाः॥ ९॥ अष्टावष्टसहस्रे द्वे शताधिक्यः स्त्रियस्तथा। ऋचोपनिषदस्ता वै ब्रह्मरूपा ऋचः स्त्रियः॥ १३॥ गदा च कालिका नाम्ना सर्वशत्रुनिबर्हिणी। धनुः शार्ङ्गं स्वमाया च शरत्कालः सुभोजनः॥ २३॥

॥ कृष्णोपनिषद्। श्लोक-मन्त्र ६। ७। ८। ९। १३। २३॥

—वह ब्रह्मविद्यामयी वैष्णवी माया ही देवकीरूपमें प्रकट हुई। निगम (वेद) ही वसुदेव हैं, जो सदा मुक्त नारायणके स्वरूपका स्तवन करते हैं। वेदोंका तात्पर्य-भूत ब्रह्म ही श्रीबलराम और श्रीकृष्णके रूपमें इस महीतलपर अवतीर्ण हुआ। वह मूर्तिमान् वेदार्थ ही वृन्दावनमें गोप-गोपियोंके साथ क्रीड़ा करता है। ऋचाएँ उस श्रीकृष्णकी गौएँ और गोपियाँ हैं। ब्रह्मा लकुटीरूप धारण किये हुए हैं; और रुद्र वंश अर्थात् वंशी बने हैं। देवराज इन्द्र सींगा बने हैं। गोकुल नामक वनके रूपमें साक्षात् वैकुण्ठ है। वहाँ द्रुमोंके रूपमें तपस्वी महात्मा हैं॥ सोलह हजार एक सौ आठ—रुक्मिणी आदि श्रीकृष्णकी रानियाँ वेदकी

देवकी ब्रह्मपुत्री, गौवें गोपाल और कृष्णकी सर्व स्त्रियाँ वेदोंकी ऋचाएँ, गोपिकारूप मुनि, कृष्णकी हाथोंमें लेनेकी लकड़ी ब्रह्मा, बाँसुरी रुद्र, शङ्ख इन्द्र, गोकुलका वन वैकुण्ठ, वृक्ष–तपसी, धनुष–मायाशक्ति, गदा–कालिकादेवी, इत्यादि स्वरूप धारण करके प्रकट हो गये। इसमें पूर्ण विचार कीजिये कि, वेद, वेदार्थ, वेदोंके ऋचारूप शब्द, ऐसे जड़ शब्द और जड़ पदार्थ कैसे नरदेह धर लेवेंगे? अथवा चेतन जीव कैसे जड़ स्वरूप हो जावेंगे? ये भी प्रत्यक्ष गपोड़े ही कल्पित वाक्य हैं॥ अथवाः—

श्लोकः—"अर्धमात्राऽऽत्मकः कृष्णो, यस्मिन्विश्वं प्रतिष्ठितम्॥
कृष्णात्मिका जगत्कर्त्री, मूलप्रकृति रुक्मिणी॥१२॥"
॥ गोपालोत्तरतापिनी उपनिषद्, श्लोक १२॥

अर्थः—अर्धमात्रा = तुरीय साक्षीरूप विश्व व्यापक श्रीकृष्ण हैं। और उसकी शक्ति = मूलप्रकृति रुक्मिणी— जगत् की उत्पत्ति करने वाली है॥

यह ऐसा कहना भी असम्भव दोषयुक्त है। क्योंकि पुरुषकी स्वयं-शक्ति आपसे भिन्न रह ही नहीं सकती; जैसे अग्निकी दाहक-शक्ति अग्निका स्वरूप ही है॥ अथवाः—

"तद्धुत्तरात्स्त्रीपुंसादिभेदं सकलमिदं॥३॥"
॥ गोपालपूर्वतापिनी उपनिषद्, खण्ड ४। मन्त्र ३॥

अर्थः—स्त्री–पुरुषादि भेदसे सर्व जीव कृष्णरूप ही हैं॥ परन्तुः—

ऋचाएँ तथा उपनिषद् हैं। इनके सिवा जो वेदोंकी ब्रह्मरूपा ऋचाएँ हैं, वे गोपियोंके रूपमें अवतीर्ण हुई हैं॥ हाथकी गदा मारे शत्रुओंका नाश करने-वाली साक्षात् कालिका है। शार्ङ्गधनुषका रूप स्वयं वैष्णवी मायाने धारण किया है; और प्राण संहारक काल ही उनका बाण है॥

अविनाशी, अखण्ड, चेतन जीव परस्पर एक ही स्वरूप हो जाना; नहीं सम्भवता है। क्योंकि अभी देहोंमें वे सबके साक्षी—सबसे न्यारे—अनेक ही हैं ॥

रामावतार विषय भी उपनिषदोंमें कहा है:—

"अर्धमात्रात्मको रामो, ब्रह्मानन्दैकविग्रहः ॥ २ ॥"

"सा सीता भवति ज्ञेया, मूलप्रकृतिसंज्ञिता ॥ ४ ॥"

"यः स्थावरजङ्गमात्मा ॥१८॥ यश्च मृत्युः ॥१५॥ यच्चामृतम् ॥१६॥"

[रामोत्तरतापिनी उपनिषद्, खण्ड-२। मन्त्र २। ४। खण्ड-४। मन्त्र १८।१५।१६।]

अर्थः—अर्धमात्रा = तुरीय साक्षीरूप राम है। वही ब्रह्मानन्दरूपसे लीला—विग्रही, देहधारी हुआ। उसकी विद्यारूप शक्ति = मूलप्रकृति = सीताजी हुई॥ वही स्थावर—जङ्गम चराचर जीवोंका आत्मा है॥ वही काल है॥ वही अमर है॥

इन प्रमाणोंसे सबका साक्षी और लीला—विग्रही अवतार, वही व्यापक, काल, दयालरूप राम है। यह मानना भी मनुष्योंकी कल्पना ही है। ऐसा ही कथन अन्य उपनिषद्में भी है:—

"जीववाची नमो राम, चात्मारामेति गीयते ॥ १ ॥"

"कल्पितस्य शरीरस्य, तस्य सेनादिकल्पना ॥ १० ॥"

[रामपूर्वतापिनी उपनिषद्, खण्ड—४। मन्त्र १॥ खण्ड—१। मन्त्र १०॥]

अर्थः—अज्ञानकी उपाधि सहित जीव वाचक रामका नाम है। उसको ऋषि, मुनि इत्यादि आत्माराम भी वर्णन किये हैं॥ रामको शरीर प्राप्त होना, उसकी सेना, वर्ण, आश्रम इत्यादि रहने, सो सर्व कल्पना मात्र हैं। इन पूर्वोक्त प्रमाणोंसे निराकार परमात्माका राम, कृष्णादि अवतार होना, केवल कल्पना ही ठहरती है; और जिन पुरुषोंमें अनायास सफलता प्रवीणतारूप

कार्य सिद्धियाँदि विशेष कलाएँ प्रकट हुईं, उनको ही संसारी जीव अपने-अपने भावनाके अनुसार अवतारी पुरुष कहते हैं। आप भी पक्षपात रहित होकर अब विवेक द्वारा सत्य विचार करके देखिये! ॥

प्रश्न (२८) कबीरमन्सूर, कबीरकसौटी आदि ग्रन्थोंके प्रमाणोंसे इन्द्रिय जीत, दृढ़ वैराग्यवान्, काशी निवासी, श्रेष्ठ महात्मा सद्गुरु श्रीकबीर साहेब देहधारी रहते भी जन्मसे स्वयं सिद्धि ज्ञानकलाधारी किस कारणसे रहे, वह भी दयादृष्टिसे परखाकर दिखाइये? वा उसका भेद भी यथार्थ समझाइये! ॥

(२८) उत्तरः—सद्गुरु श्रीकबीर साहेबकी उत्पत्ति अनेकों प्रकारसे मानी है। मरहठी भाषाके भक्तिविजय ग्रन्थमें कहा हैः—"आप शुकदेवका अवतार रहे। काशीजीके गङ्गामें एक सीप बहके आ गई, उसीमेंसे आप प्रकट हुए" ऐसा लिखा है॥

कबीरमन्सूर और कबीरकसौटीमें कहा हैः—"काशीमें एक दिन बिजलीवत् एक तेजोमय ज्योति आकाशसे उतरा, उसका बालक-रूप बनके लहर-तालावमें आप कमलपत्र पर ही प्रकट हुए॥" तथाः—

कबीरमन्सूरके प्रथम भागमें लिखा है कि, "कलियुगमें चौदह (१४) बार आप जीवोंके उद्धार हेतु स्वयं प्रकट हुए॥" औरः—

अनुरागसागरमें कहा हैः—"अनन्त योजनोंके ऊपर अर्थात् सर्वके ऊपर एक सत्यलोक है। वहाँ अनन्त सूर्योंके प्रकाशयुक्त एक अनादि सत्यपुरुष विराजमान हैं। आपके इच्छाशक्तिसे जगत्के प्रथमारम्भमें सद्गुरु श्रीकबीर साहेब, कूर्म, निरञ्जनादि सोलह सुत उत्पन्न हुए। पीछे काल निरञ्जनके सृष्टिमें अज्ञानी जीवोंके उद्धार हेतु सत्पुरुषकी आज्ञासे आप स्वयं इच्छासे चारों

युगोंमें सतसुकृत, मुनिन्द्र, करुणामय और कबीर, ऐसे नामोंसे चार ही अवतार बारम्बार अयोनि सम्भव प्रकट होते ही आते हैं ॥"

कहीं कहा है:—"किसी महातमाके बरदानसे एक कुँवारी कन्या-के हाथमें बड़ा फोड़ा हुआ था, उसीकी हथेलीमेंसे आप प्रकट हुए ॥"

कहीं ऐसा वर्णन है कि, "अन्न-जलके आहार रहित या देखने ही मात्र देहधारी, शब्द स्वरूप आप प्रकट हुए ॥"

किसी साधुने लिखा है:—"काशीके लहर तालावमें किसीका प्रथम दिनका मरा हुआ सुन्दर बालक कमलपत्रोंसे भरी हुई टोकरीमें धरके जल प्रवाह किया था। उसी देहमें किसी महासिद्ध पुरुषने परकाया प्रवेशनरूप सिद्धिकलासे प्रवेश करके आप जन्मसे ही स्वयं सिद्धकलाधारी रहे ॥" (ऐसे विविधरूपसे उत्पत्ति माने हैं) ॥

पूर्वोक्त अनेक प्रकारसे सद्गुरु श्रीकबीर साहेबके विषय देहकी उत्पत्तिका वर्णन है। परन्तु बराबर किसीको भी आपके शरीरकी उत्पत्ति और देह छूटनेका यथार्थ शोध मिला नहीं, ऐसा ही विदित होता है। इसीसे युक्त अयुक्त विभिन्न मति अनुसार लोगोंने कल्पित कथन बढ़ा करके वर्णन किये हैं। आप जगत्में मनुष्य देहधारी सत्यज्ञानी सर्वोपरि पारख बोध दाता थे! जिज्ञासुओंको पारख बोध दे सत्यन्याय द्वारा चेतन सिद्धान्त खोलके दिखला दिये। ऐसे सर्व पुरुषोंमें आप बड़े भारी ज्ञानी श्रेष्ठ स्वयं अनुभविक पारख प्रकाशी समर्थ महापुरुष काशीमें प्रकट हुए थे, इसीको हिन्दू, मुसलमान, क्रिस्तान और सर्व भेषधारी साधु निश्चयसे अपने-अपने ग्रन्थोंमें साक्षी दे रहे हैं ॥

विशेष करके काशीमें लहरी तालाव नामक लहर तालावके कमल

पत्रों पर आपका प्रकट होना कल्पित मानन्दिको दृढ़ किये हुए सर्व भावुक जन मानते हैं। क्योंकि काशीमें "नीरू" जोलाहा और गौनाके समय लाई हुई उसकी स्त्री "नीमा" इन दोनोंने लहरी तालावमेंसे बालक रूपसे ही आपको उठाकर लाये, ऐसा कहा है। तबसे तिसके घरमें रह कर प्रथम दिनसे ही बालक रूपमें आप बोलते रहे, ऐसा कहते हैं। शिकन्दर नामक बादशाहने आपको अनेक तरहसे दुःख-दायक (५२) बावन कसनी दिया कहते हैं। परन्तु किसी प्रकारसे भी आप देह दुःखोंमें दुःखित व्याकुल या रुष्ट नहीं हुए, और न उस बादशाह पर क्रोध किये, ऐसे परम दयालु आप रहे। सद्गुरु श्रीकबीर साहेब यथार्थ वक्ता सच्चे हंसरूप मनुष्य या पारखी गुरु महापुरुष थे ‡ ॥

‡ इतिहासकारोंने सद्गुरु श्रीकबीर साहेबका प्रादुर्भाव विक्रमीय सम्वत् १४५५में और तिरोभाव वि० सं० १५७५में ठहरा करके इतिहासके पृष्ठोंमें विशेषतः यही लेख लिखे हुए हैं। युक्तियुक्त होनेसे सो बात ठीक ही जँचता है। इस प्रकार आप १२० वर्ष तक सदेह जीवित रहे। तब तक सत्यन्यायके पारख ज्ञान-का उपदेश आप देते रहे। सच्चे मनुष्य देहधारी सत्पुरुष हंस पारखी सद्गुरु आप थे। आपके जन्म-मरणादिके विषयमें जो बहुतसे मतभेद हुए हैं। उन सबमें कुछ तत्थ्य नहीं है। यथार्थ बात तो यही है कि, जैसे अभी सब मनुष्योंके देहोंकी उत्पत्ति माता-पिताओंके सम्बन्धसे गर्भवासमें रज-वीर्यके सम्मेलन द्वारा जीवकी सत्तासे होती हैं या हो रही हैं, वैसे ही आपकी देहकी भी उत्पत्ति हुई है; यह निर्विवाद सत्य है। और लोगोंने अन्यथा उत्पत्ति का जो कथन किये हैं, सो कपोल कल्पित होनेसे मिथ्यावाद पक्षपात मात्र है। इसबारेमें सङ्केत तो श्रीसद्गुरुने स्वयं ही बीजक सद्ग्रन्थमें प्रथम रमैनीमें ही किया है, सो सुनियेः—

रमैनीः—"तहियां हम तुम एकै लोहू। एकै प्राण बियापै मोहू ॥ ८ ॥
एकै जनी जना संसारा। कौन ज्ञानसे भयउ निनारा ॥ ९ ॥
भौ बालक भग द्वारे आया। भग भोगीके पुरुष कहाया ॥ १० ॥ बीजक ॥"

—अर्थात् अभी जब मनुष्य शरीरमें हम तुमको प्रत्यक्ष दीख रहे हैं, तो हम और तुम एक सरीखे ही देहधारी हैं। स्थूल देहनें लोहूसे निर्मित सम्मिलित सप्तधातुएँ भी हमारे और तुम्हारेमें एक समान ही हैं। तथा सूक्ष्म देहमें स्थित प्राणवायु, चित्त चतुष्टय आदि भी सब एक-से ही हैं। परन्तु, खाश करके फरक तो इतना अवश्य ही है कि, तुम्हारेमें माया-मोहकी आसक्तिका अध्यास व्याप्त है। तुम जड़ाध्यासी होकर बद्ध हो रहे हो; और हम उन सब माया-मोहके आसक्तिको परख कर उसे परित्याग करके निज पारख स्वरूपमें स्थित होकर जीवन्मुक्त हुए हैं। यही तुम=जीवपदमें और हम=गुरुपदमें महान अन्तर है ॥ ८ ॥ और फिर एक समान ही स्त्रीने सारा संसारके पुत्र और पुत्रियोंको उत्पन्न किया है, सो प्रत्यक्ष ही है। अब कौनसे भ्रमिक ज्ञानसे तुम लोग अपनेको न्यारा ब्राह्मणादि वर्ण कहते हो ? तथा अवर्णरूप ब्रह्म होते हो ? क्यों ऐसे अपनेको कहते-मानते हो ? सो बतलाओ ? ॥ ९ ॥ जब जीव देह धारण करके बालक रूपमें प्रकट हुए, तो वे सब बालक भग द्वारसे होकर ही जन्म ले करके बाहर आए। योनि द्वारके बिना तो कोई भी बालक जन्म लेकर प्रकट होकर नहीं आए हैं, और आते भी नहीं हैं, और आवेंगे भी नहीं। पुनः उसी योनि द्वारको भोग करके पुरुष कहलाया; परन्तु उसी विषय भोगोंके अध्यासवश देह छूटे उपरान्त फिर चौरासी योनियोंके गर्भवासमें जाकर समाया। भोगासक्ति ही जीवोंको महान बन्धन है इत्यादि ॥ १० ॥

रमैनीः—"जो तू ब्राह्मण-ब्राह्मणिकोजाया। और राह दे काहे न आया ? ॥३॥
जो तू तुरुक-तुरुकनिको जाया। पेटहि काहे न सुन्नति कराया ॥४॥"
"जठर अग्निमों दीन्ह प्रजारी। तामहँ आपु भये प्रतिपाली ॥३॥
बहुत जतनकै बाहर आया। तब शिव शक्ती नाम धराया ॥४॥"
॥ इत्यादि; बीजक, रमैनी-६२। २६ ॥

अब विचार करिये ! जहाँ सद्गुरु श्रीकबीर साहेबने स्वयं इतना स्पष्ट रूपसे कहा है। वहाँ उस बचनपर लक्ष्य ही न दे करके अन्यथा उटपटाङ्ग रीतिसे उनके देहकी उत्पत्तिका कथन करना, शब्द स्वरूपी देखने मात्रका स्वप्नवत् आपका देह बतलाना, मिथ्या आरोपण करना ही सिद्ध हुआ कि, नहीं ? जरूर मिथ्या ही ठहरा। यह तो प्रसंशाके बदले खाश रूपसे निन्दा करना ही साबित

अब वर्त्तमानमें (वि० सं० १९७२ सालके आस–पासके समयमें) अयुक्त दूषित कल्पित ही एक सरासर झूठा नाटकका खेल सद्-गुरु श्रीकबीर साहेबको गृहस्थ बतानेके बारेमें दक्षिणमें चल रहा है ‡। ऐसे अविवेकी सर्व दक्षिणी हिन्दूलोग पक्षपाती, अन्यायी, अविचारी बने हैं। वे यथार्थसे पूर्ण शोध नहीं करते, यही आश्चर्यकी बात है। सद्-गुरु श्रीकबीर साहेबको गृहस्थ और पण्ढरपुरके जड़ देवके भक्त मानने वाले मुख्य–मुख्य गृहस्थ भक्तोंपर, तैसे ही नाटकका खेल दिखाने वाले नाटकके लोगोंपर कोई फिर्याद करेगा, तो सरकारी न्यायसे वे सब सजारूप (शिक्षा) दण्डके पात्र होंगे; ऐसा ग्रन्थकारका पूर्ण शोधयुक्त कहना है। उसीका सबोंको पूर्ण तपास और पूर्णतासे विचार करना उचित है। "कबीरपन्थ" यह मुसलमानोंके या हिन्दूओंके पक्ष लेने अथवा

हुआ। पक्षपातमें मदान्ध लोग इस बारेमें यथार्थ विचार ही नहीं करते हैं। कोई एक सत्यपुरुष कर्त्ताकी आज्ञासे युगानुयुगमें पृथ्वीमें अवतार लेनेवाले ऐसा कल्पना करके माना है। परन्तु इच्छा अध्यास रहे बिना मुक्त रूपसे अवतार लेना नहीं बनता है। अतः पारखी श्रीसद्गुरु ही सब सिद्धान्तोंका यथार्थ निर्णय करके जिज्ञासु मनुष्योंको सच्चा सीधा मार्गमें लगाते हैं, वही सत्य मानना चाहिये। इस प्रकार आप सद्गुरु श्रीकबीर साहेब सच्चे हंसरूप मनुष्य आदिगुरु प्रथम पारखी महान सन्त हुए थे। ऐसा विवेक करके अब जान लीजिये ! ॥

‡ वैसे ही सन् १९३३ ई० में "कबीर कमाल" तथा सन् १९३६ ई० में "भक्त कबीर" और सन् १९५४ ई० में "महात्मा कबीर" नामक फिल्म तैयार होकर चित्रपटोंमें प्रदर्शन हुए। उनमें झूठी प्रदर्शन होनेसे उस वक्त समस्त कबीरपन्थियोंने उन फिल्मोंका विरोध किया। अतः वे फिल्म भी उसी वक्त बन्द हो गये। सद्गुरु के बारेमें वैसे मिथ्या नाटक और फिल्म प्रदर्शन कभी नहीं होना चाहिये ॥—सम्पादक ॥

पाखण्डरूप अयुक्त चाल-चलनके नहीं है। परन्तु सत्यन्यायका, सर्व पन्थोंमें श्रेष्ठ, जीवन्मुक्त स्थितिका बोध दिखाने वाला है। ऐसा यह ग्रन्थ पढ़कर सत्य विचार करनेसे सर्व मरहठी भाषा जानने वाले मनुष्योंकी निश्चयसे पूर्ण खात्री होगी ॥

कबीरपन्थियोंमें कहीं 'राम' और 'कृष्ण' इन जड़ मूर्त्तिरूप देवताओंके उपासक, कहीं कबर वा समाधि, फोटो वा तसबीरों, पादुका, गादी, निशान इत्यादि ऐसे-ऐसे जड़ पदार्थोंके उपासक दिखाई देते हैं। कहीं नाम मात्रके त्यागी आचार्य वा महन्त हैं और वैसे ही त्यागी साधु हैं; तथा कहीं पर संयोगी साधु अर्थात् नाम मात्रके साधु कहाते हैं, परन्तु पक्के विषय लम्पट, स्त्री के गुलाम, ज्ञान-शून्य बने हैं। देखिये! सद्-गुरु श्रीकबीर साहेब आप छुटपनसे महाविरक्त रहे, इसीके ऊपर आपके वचन ऐसा हैः—

"ठगिनी क्या नैना झमकावै, कबीर तेरे हाथ न आवै ॥" अथवाः—

साखीः—"गाय भैंस घोड़ी गधी, नारी नाम है तास ॥
जा मन्दिरमें ये बसैं, तहाँ न कीजै बास ॥ ४४ ॥"
॥ साखी ग्रन्थः ॥ अङ्ग ३१ । ४४ ॥

"बिकट नारिके पाले परे, काढ़ि कलेजा खाय ‡ ॥" बीजक, साखी-१४३ ॥

इत्यादि ❀ दृढ़ वैराग्य पूर्ण आपका सत्य बचन जग जाहिर ही हैं। महान् वैराग्यवान्, बालब्रह्मचारी, परम पारखी सद्-गुरु श्रीकबीर साहेब रहे। एक बनखण्डी नामक वैरागीको कमलपत्रमें

‡ प्रश्न ११६के उत्तरमें यह साखी पूरा टीका त्रिजा सहित आया है, वहाँ पर देख लीजिये ! ॥

❀ बीजक रमैनी—"दिन-दिन जरै जलनीके पाँऊ। गाड़े जाय न उमँगे काहू ॥" इत्यादि पूरा रमैनी ५६ ॥ "कनक-कामिनी देखिके, तू मत भूल सुरङ्ग ॥ मिलन-बिछुरन दुहेलरा, जस केंचुलि तजत भुवङ्ग ॥ १४८ ॥ बीजक, साखी ॥

लपटे हुए गङ्गाके धारमें बहती हुई एक लड़की मिली, वह लोई नामसे बाबाके पासमें रही। उसी बाबाके देहान्त हुए कुछ काल पीछे कमाल, कमाली और लोई सद्-गुरु श्रीकबीर साहेबको पूर्ण ज्ञानी सद्-गुरु जानके शिष्य भावसे आपके पास कुछ काल तक रहते रहे। पश्चात् उन्हें पारखबोधदेकर उनसे अलग हो आप विचरण करते रहे ॥

आप बड़े सामर्थ्यवान् पूर्ण पारखी और दृढ़ वैराग्यवान् रहे। वि० सम्वत् १५७५ के सालमें गोरखपुरके पास मगहरमें जाके बिजलीखाँ पठान, बीरसिंह देव बघेल और कमलापति रानीको युक्तिपूर्वक चेतायके पुनः बाँधोगढ़में एक शिष्य धर्मदासजीको चेताये, तिनको आप सर्व कल्पना छुड़ा करके निज चैतन्य-स्वरूपकी पारख दृष्टिका यथार्थ बोध देकर त्यागी साधु बनाकर जीवन्मुक्त किये। तैसे ही अनेक नर देहधारी मनुष्य वा हंसोंको (जिज्ञासु जीवोंको) आप सत्य पारख दृष्टि स्वरूप बोध दे करके सत्यलोकमें सदोदित बैठाय दिये। अर्थात् पारखपदमें स्थिर किये। और कहीं पर सत्यलोकादि लोक, धाम मानना झूठ ही है। सत्यलोक विषय कहा है:—

साखीः—"प्रभु ! शरणागत परख दृढ़, सत्यलोक परवान ॥
सन्तत जीव विलास है, झूठा काल गुमान ॥ ३११ ॥"
॥ साखी ३११ ॥ नं० १७६१ । टकसार, पञ्चग्रन्थी ॥

अर्थः—स्पष्ट ही है ॥ सद्-गुरु श्रीकबीर साहेब अर्थात् पारखरूप गुरुपद है ॥ और धर्मदास अर्थात् सद्-गुरु श्रीकबीर साहेबरूप पारखी सन्तोंके ही सत्यबोधसे देह रहे तक पारख दृष्टिसे जड़ाध्यास रहित चेतनपदमें जीवन्मुक्त स्थितिसे रहना, वही शिष्यपद वा धर्मदासपद है, ऐसा जानिये ! ॥ सद्-गुरु सोई

श्रीकबीर साहेब हैं ! तथा सत्शिष्य सोई, वर्त्तमानमें धर्मके नातासे धर्मदास है । ऐसा यथार्थ सत्यन्यायको समझ करके और दूसरे कल्पनाको छोड़ देना चाहिये ॥

पूर्वमें प्रश्न २६ के उपनिषदोंके प्रमाणोंसे सदैव विदेहमुक्त हंस जीवोंके पास स्थूल और सूक्ष्म ये दो देहें नहीं रहनेसे वे पुनर्जन्म नहीं लेते या देह धारणरूप अवतार कभी कहीं भी कदापि नहीं लेते, ऐसा कहा है । बहुत करके नरदेहमें ही पूर्णतासे ज्ञान, योग सिद्ध किये बाद ज्ञानी योगियोंकी सिद्धि कलाएँ प्रकट हुई, ऐसा वर्णन किये हैं । सिद्धयोगी तत्त्वरूप ही बन जाते, वह अल्प समयकी सिद्धि है, ऐसा वर्णन करते हैं, सो भी मिथ्या भ्रम कल्पना मात्र ही है । परन्तु चेतन जीव कभी भी चेतनत्व स्वरूपको छोड़कर जड़ तत्त्वरूप ही बनके नहीं रह सकते हैं । जड़ और चेतन स्वरूपसे ही भिन्न–भिन्न हैं । स्वरूपसे दोनों विजातीय हैं । इसलिए अल्प समयके लिए भी तत्त्वरूपके समान चेतन जीव नहीं हो सकते हैं ॥ कबीरपरिचयमें ऐसा कहा है:—

साखी:—"पन्द्रह तत्त्व स्थूल है, नौ तत्त्व लिङ्ग शरीर ‡ ॥
चौबीस मृतुक जेहिसों जिये, सो जिन्दा जीव कबीर ॥१६७॥"
॥ साखी कबीरपरिचय ॥ साखी–१६७ ॥

अर्थः—दश इन्द्रियाँ और तिनके पञ्च विषय शब्दादि

‡ "स्थूलं पञ्चदशान्युक्तं लिङ्गं तु नव तत्त्वानि च ॥ यज्जीवन्ति चतुर्विंशा–स्तज्जीवं कवयो विदुः ॥"—पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पञ्च विषय संयुक्त स्थूल देह है । पञ्च प्राण और चित्त चतुष्टय संयुक्त सूक्ष्म देह है । उन चौबीसों जड़ (मृतुक) को चेताकर वा सत्ता दे करके प्रकाश कर जीवित करै, उसीको ज्ञानी पण्डित लोग चैतन्य जीव कहते हैं ॥

मिलके मुख्य पन्द्रह प्रकृतियोंकी स्थूल देह है। और पञ्च प्राण—व्यान, समान, उदान, प्राण, अपान तथा मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार, ये मुख्य नौ प्रकृतियोंकी सूक्ष्म देह है। ऐसी चौबीस (२४) जड़ प्रकृतियाँ जिस चेतनकी सत्तासे प्रत्यक्ष चेतनवत् प्रतीत होती हैं। अर्थात् मन, इन्द्रियादिकोंमें व्यवहार होके शरीर खड़ा है। वही जिन्दा—अमर—देहधारी, सर्व चेतन जीव कबीर हैं। परन्तु तिनमें शुभाशुभ कर्मोंको जाननेवाले नरदेहमें ही मनुष्य जीवोंकी विशेषता है ॥ तैसे ही सद्-गुरु श्रीकबीर साहेबके विषयमें कहे हैं:—

"कका कँवल किरणमें पावै ॥ १ ॥"—बीजक, ज्ञान चौंतीसा—१ ॥

अर्थः— बीजककी (त्रिजा) टीकामें सद्-गुरु श्रीपूरण साहेब लिखे हैं कि, 'क' शब्द का अर्थ 'कीचड़' है ॥

इस प्रमाणसे रज-वीर्यरूप जलसे रक्त—मांसादि—कीचड़वत् बनी हुई देह है। उसमें बीर अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, ममता, अहङ्कारादि जड़ मायाकी आसक्तिसे रहित, आप शुद्ध विवेकी पारखी सन्त हंस जीव या नरतन धारी चेतन जीव—कबीर हैं। और 'साहेब' कहिये 'बड़े' वा 'श्रेष्ठ' अर्थात् शुद्ध चेतन जीव ही अविनाशी, सत्य हैं। और देह तथा देह सम्बन्धी स्त्री, पुत्र, घर, धनादि अथवा भास, अध्यास, भावना, मानना, कल्पनादि सर्व जड़ विकार और देहके व्यवहार देहके साथ नाश हो जावेंगे। ऐसा जड़—चेतनका सत्यन्याय करनेवाले, सत्यासत्यके यथार्थ विवेकी, पूर्ण परीक्षक, परम श्रेष्ठ आप 'साहेब' हैं। वे ही जीवन्मुक्त पारख प्रकाशी आदिगुरु श्रीकबीर साहेबरूपमें सद्-गुरु आदि—अनादि कालके जगत्में हुए हैं। क्योंकि यदि सर्व चेतन जीव अखण्ड, अनादि सिद्ध हैं, तो उनका स्वयं ज्ञान गुण भी अनादि

कालसे चला आया है, कुछ आज–कलका नवीन नहीं। फिर कोई बिरले साधु–गुरुरूप सन्त सद्-गुरु श्रीकबीर साहेबके अनुयायी युग–युगसे वा समय–समय पर परम्परासे वही पारख ज्ञान सत्य धर्मका उपदेश देते ही चले आते हैं। कोई महात्मा पारखी सन्त कहे हैं:—

साखी:—"कायाबीर कबीर हैं, सब बीरन में बीर ॥
सात द्वीप नौ खण्ड में, हैं एक सत्य कबीर ॥ १ ॥"

—इस साखीका अर्थ स्पष्ट है ॥ बीजक शब्द ८६ में कहा है:—

"कहहिं कबीर गुरु ! सिकली दर्पण। हरदम करहिं पुकारा ॥२०॥८६॥"

अर्थ:—सद्-गुरु श्रीपूरण साहेब टीकामें कहे हैं कि, "गुरु सिकली दर्पण" या सत्य पारख ज्ञान दर्शाने वाले–जिनसे सब गाफिली परखनेमें आवै और सर्व जड़ बन्धनोंसे नरजीव छूटै। ऐसा जिस नरदेहरूप पुरुष वा मनुष्यके घटमें सत्य पारख ज्ञान दृढ़ हुआ, वे ही सन्त सर्वदा दया स्वभावसे जगत्में पुकारके सत्य का उपदेश देते हैं। पारखी सद्-गुरु तो अविनाशी, स्थिर पदको बतलाकर युग–युगसे चला आया हुआ भूलको मिटाते हैं ❀ ॥

इन प्रमाणोंसे यदि सद्-गुरु श्रीकबीर साहेब ही युग–युगमें अवतार लेते, तो स्थिर पद नहीं कहा जाता। और "गुरु सिकली दर्पणके स्थानमें हम सिकली दर्पण लिखना रहा।" इसलिए पारखरूप गुरुपद चेतन जीवोंका स्वयं स्वरूप अनादि सिद्ध है।

❀ अथवा सद्गुरु श्रीकबीर साहेब कहते हैं कि, सिकलीगरके समान पारखी गुरु होना चाहिये। जैसे सिकलीगर औजारोंको सिकलीमें रख कर घिस करके साफ स्वच्छ दर्पणके समान कर देता है। वैसे ही गुरु भी हरदम पारख बोधका पुकारा करके परखाकर दर्पणके समान शुद्ध कर देनेवाले होवैं ॥

उसकी दृढ़ धारणावाला पारख स्वरूपके ज्ञाता पुरुष फिर गर्भवासमें आता-जाता नहीं। कलियुगरूप इसी संसारमें विक्रमी सम्वत् १४५५ में सत्यन्यायी, सत्यज्ञानी, प्रथम पारखी सन्त देहका "कबीर" ही नाम धरे हुए, सद्-गुरुरूप, महान श्रेष्ठ सर्वोपरि सन्त शिरोमणि महात्मा काशीमें प्रकट हुए, जिनका महान पारख बोध स्व-स्वरूपका ज्ञान जो है, सो आदि-अनादि जड़ाध्यासोंको नाश करनेवाला है, सोई सद्-गुरु श्रीकबीर साहेबने पारख सिद्धान्त सर्व प्रथम दर्शाये। इसीसे आपके पारख बोध—सर्वोपरि ठहरता है। ऐसा आपके बनाये हुए बीजक सद्ग्रन्थसे विदित होता है। सद्-गुरु श्रीपूरण साहेब भी ऐसा ही कहे हैं:—

"पारखमा जो ह्वै गयो थीरा। तिन पायो गुरु! सत्त कबीरा!॥१०॥"

॥ चौपाई १० ॥ नं० ५४१ ॥ निर्णयसार ॥

अर्थः—जो सन्त साँच और झूठकी या नाशवान और अविनाशीकी पारख करके चेतन पदमें दृढ़ वैराग्यसे स्थिर हैं, वे ही पारखी सन्त सद्-गुरु श्रीकबीर साहेबके पारख पदको जानके जीवन्मुक्त हुए, वैसे ही जीवन्मुक्त होते हैं, और उसी प्रकार पारख बोधसे अध्यास मिटाने वाले भी जीवन्मुक्त होंगे॥

इन प्रमाणोंसे देहधारी जीवन्मुक्त हुए साधु-गुरु पारखी सन्त भी देह रहे तक सत्यन्यायका उपदेश युग-युगसे वा तबसे अब तक देते ही चले आते हैं। आदि-अनादिके सत्य बोध दाता सद्-गुरुको वा पूर्वमें विदेहमुक्त हुए पारखी सन्तोंको जगत्में अवतार लेनेका कोई प्रयोजन ही नहीं है॥

जगत्में सब महात्मा सन्त गण भी काशी निवासी सद्-गुरु श्रीकबीर साहेबको बड़े श्रेष्ठ ज्ञानी, शुद्ध त्याग पूर्ण वैराग्य

सद्गुण लक्षण संयुक्त चेतन पारख बोध कथन करने वाले रहे, अथवा कोई बड़े भक्त हुए, ऐसा भी पारख ज्ञानको न समझने वाले लोग कहते हैं। परन्तु ईश्वरादि जगत् कर्त्ता नहीं ठहरनेसे आप उसे नहीं मानते रहे या जड़ देवताओंके भक्त नहीं रहे। यथार्थ विवेकी सन्त वा चेतन साधु–गुरुमें निष्ठावन्त रहे। क्योंकि बीजककी साखी २९४ में कहे हैं किः—

साखीः–"कर वन्दगी विवेक की। भेष धरे सब कोय ❀ ॥
सो बन्दगी बहि जान दे। जहाँ शब्द विवेक न होय ॥ २९४ ॥"

इसमें जड़–चैतन्यका यथार्थ विवेक करनेवाले पारखी सन्तोंकी काया, वाचा, मनसे सेवा और आप सर्व मनुष्योंको सत्सङ्ग करनेका उपदेश करते रहे। सद्-गुरु श्रीकबीर साहेबकी शब्द, साखी आदि निष्पक्ष वाणी जगत्में प्रसिद्ध ही है। और अज्ञान भ्रम धोखाओंको निवृत्त करनेकी पारख ज्ञानकी सत्य सिद्धि ही स्वयं सद्-गुरु श्रीकबीर साहेब की थी, ऐसा जानिये! अन्य सिद्धियाँ तो कल्पित ही हैं ‡ ॥

इस प्रकारसे उपरोक्त निर्णय कथन अनुसार लोगोंके कहे प्रमाण और अपने विवेक प्रमाणसे सद्-गुरु श्रीकबीर साहेबादि पारखी सन्त–महात्माओंके स्थिति, सद्-गुण रहनी रहस्य विषयमें आप अब जान लीजिये! ॥

प्रश्न (२९) यदि स्वयं सिद्ध कलाधारी कर्त्ता नहीं ठहरता, तो उस विषय पर और भी कहा हैः—

❀ प्रश्न १३६ के उत्तरमें इस साखी का पूरा अर्थ लिखा है, वहाँ देख लीजिये ॥

‡ दोहाः—"सन्तोंकी सिद्धि यही। काटत भर्म कलेश ॥
अति हित मीठे बचन कही। देत सत्य उपदेश ॥" —सं०

श्लोकः—"बाह्यभावं भवेद्विश्वमन्तः प्रकृतिरुच्यते ॥
अन्तरादन्तरं ज्ञेयं, नारिकेलफलाम्बुवत् ॥ १६ ॥"
॥ अवधूत गीता, अध्याय २ । श्लोक १६ ॥

अर्थः—दत्तात्रेयजी कहते हैं कि, जैसे नारियलके ऊपरका बकला बड़ा कठिन, उसके भीतर गरी सूक्ष्म और गरीके भीतर और भी सूक्ष्म जल रहता है; तैसे ही बाहर जितने प्रत्यक्ष भाव पदार्थ हैं, सो स्थूल विश्व, तिसके भीतर अतिसूक्ष्म प्रकृति और प्रकृतिके भीतर व्यापक परमात्मा जानने योग्य है ॥

इस प्रमाणसे मैं सर्वमें अतिसूक्ष्म व्यापकरूप कर्त्ता मानता हूँ ?॥

(२६) उत्तरः—यदि नारियलके भीतरके जलवत् कर्त्ताको अतिसूक्ष्म व्यापक माने, तो विस्तार युक्त स्थूल, दृश्य पृथिवी और जल तत्त्व, अदृश्य परमाणुओंका समूहरूपी सामान्य तेज तत्त्व, अदृश्य वायु तत्त्व और अवकाश स्वरूप, निराकार अनेक छिद्ररूप, अदृश्य आकाश तत्त्व है। परन्तु वातावरणमें व्यवहार करनेवाले अन्य चारों तत्त्व परस्पर संयोगसे सर्वत्र मिश्रित हैं, ऐसा पञ्चीकरणमें कहा है। ऐसे पाँच तत्त्वरूप विस्तारको विश्व कहो या जड़ प्रकृति कहो, उससे भिन्न प्रकृति किसीको भी प्रतीत नहीं होती है। इसलिए प्रकृतिके भीतर अतिसूक्ष्म कर्त्ता रहनेसे वह एकदेशी ही ठहरता है। परन्तु स्थूल, सूक्ष्मादि आकारसे रहित उसको व्यापक माना है। (उसे पूर्वमें प्रमाण प्रश्न ६ में देखिये !)। तिससे विरोध आता है। यदि कर्त्ताको अतिसूक्ष्म भी माने, तो जैसे मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार, अन्तःकरण और काम, क्रोधादि तत्त्वोंके अदृश्य विकार प्रत्येक देहमें भिन्न-भिन्न एकदेशी ही हैं। वैसे ही अतिसूक्ष्म कर्त्ता एकदेशी रहनेसे अनेक, देहधारी चेतन

जीववत् वह भी एकदेशी, एक मनुष्य जीव ही ठहरता है। इसलिए एकदेशी जगत् कर्त्ता कहीं है, ऐसा मानना असम्भव दोषयुक्त है। उपनिषदोंमें भी कहा है:—

"अहं ब्रह्मास्मि ॥"—बृहदारण्य उपनिषद्, अध्याय १। ब्राह्मण ४। मन्त्र १०॥

अर्थः—"मैं जीवात्मा ब्रह्मस्वरूप ही हूँ ॥"

"एकमेवाद्वितीयं ॥" छान्दोग्य उपनिषद्, अध्याय ६। खण्ड २। मन्त्र १-२॥

अर्थः—एक ही अद्वैत, व्यापक और निराकार ब्रह्म है ॥

इन प्रमाणोंसे व्यापक और एकदेशीका विरोध है। अकेले व्यापक कर्त्तामें एकदेशी, देहधारी, अनेक चेतन जीव सहित जड़ तत्त्वोंका जगत् रहना नहीं सम्भवता। नित्य व्याप्य वस्तु रहे बिना व्यापक कहना ही असम्भव है। निराकार, पोल आकाशमें वैसा ही निराकार कर्त्ता समाता नहीं, (उसे पूर्वमें प्रमाण प्रश्न ६ में देखिये!) ॥

पूर्वोक्त अतिसूक्ष्म एकदेशी और व्यापक जगत् कर्त्ता मानना अन्यायका कथन है, ऐसा जानिये! ॥

प्रश्न (३०) यदि कर्त्ता अतिसूक्ष्म व्यापक नहीं ठहरता, तो उस विषयमें और भी कहा है:—

"अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ, दिशः श्रोत्रे वाग्विवृत्ताश्च वेदाः ॥
वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य, पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ॥४॥"

॥ मुण्डक उपनिषद्। मुण्डक २। खण्ड १। मन्त्र ४ ॥

अर्थः—अग्नि, मूर्धा (तालुके जरा ऊपरका भाग), नेत्र, चन्द्र, सूर्य, दिशा, कान, वाचासे प्रकट हुए वेद; वायु, प्राण, चराचर जीवोंका हृदय, पग, पृथिवी आदि सर्वके भीतर परमात्मा अतिसूक्ष्म प्रकाशरूप है ॥

इस प्रमाणसे जैसे लकड़ीमें अग्नि व्याप्त है, तैसे ही परमात्मा प्राणीमात्रोंके शरीरोंमें व्याप्त है। अथवा गृहके दीपक तुल्य शरीरोंका प्रकाशक है ॥

ऐसे प्रकाश स्वरूप अतिसूक्ष्म व्यापकको मैं कर्त्ता मानता हूँ? ॥

(३०) उत्तरः—कर्त्ताको केवल प्रकाश स्वरूप माननेसे सर्वत्र देखनेमें आते हुए तेजवत् वा प्रकाशवत् वह जड़ तत्त्वरूप ठहरता है। और जगत्‌मेंके चेतन मनुष्य तिसको देखनेवाले, जाननेवाले, माननेवाले न्यारे ही चाहिये। परन्तु कर्त्ताको चेतन माना है; (उसे पूर्वमें प्रमाण प्रश्न २ में देखिये!)। तिससे विरोध आता है। यदि कर्त्ताको स्वयं प्रकाशक माने, तो पूर्वमें प्रश्न ११ के प्रमाणसे वह असिद्ध ठहर गया है। यदि कर्त्ताको प्रकाशरूप ज्ञानी माने, तो पूर्वमें प्रश्न १५ के प्रमाण द्वारा अज्ञानसे जगत्की उत्पत्ति मानी है, सो झूठ ही ठहरती है। यदि कर्त्ताको दीपक-वत् साक्षी और उसके प्रकाशवत् व्यापक माने, तो वह भी पूर्वमें प्रश्न ८ के प्रमाणसे असिद्ध है। 'व्यापक' और 'न्यारा' ये परस्पर दो विरुद्ध धर्म कर्त्ता विषय सिद्ध करना, आकाशके फूलवत् त्रिकालमें असत्य है। व्यापकमें शरीरकी उपाधि नहीं सम्भवती है, और साक्षी न्यारा, एकदेशी ही चाहिये! ॥ परन्तुः—

"तत्सृष्ट्वा ॥ तदेवानुप्राविशत् ॥ तदनुप्रविश्य ॥"

॥तैत्तिरीय उपनिषद् मध्ये—ब्रह्मानन्दवल्ली (२) उपनिषद्। अनुवाक ६ ॥

अर्थः—शुद्ध, ज्ञानस्वरूप ब्रह्मने ही जगत्को रच कर, जीवभाव अज्ञानता लेके सबोंमें पीछेसे प्रवेश किया ॥

इस प्रमाणसे वेदान्तीजन दो मुखोंके साँपवत् दो तरहसे बोलनेवाले अन्यायी बने हैं। किसी प्रकारसे भी उक्त प्रकाशरूप

अतिसूक्ष्म व्यापक कर्त्ता ठहरता नहीं ॥

अतः पूर्वोक्त प्रकाश स्वरूप अतिसूक्ष्म, व्यापक कर्त्ता मानना भ्रमकी ही बात है; ऐसा जानिये ! ॥

प्रश्न (३१) यदि कर्त्ता अतिसूक्ष्म, प्रकाश स्वरूप, व्यापक नहीं ठहरता, तो उस विषयमें और भी कहा है:—

"अपाणिपादो जवनो ग्रहीता, पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ॥"

॥ श्वेताश्वतर उपनिषद् । अध्याय ३ । मन्त्र १६ ॥

अर्थः—परमात्मा कर बिना ग्रहण करता है, पग बिना चलता है, नेत्र बिना देखता है, कान बिना सुनता है, ऐसे देह इन्द्रियाँ बिना ही वह सर्व कर्म करनेमें समर्थ है ❀ ॥

"स्वतन्त्रः कर्त्ता" ॥ १ । ४ । ५४ ॥ अष्टाध्यायी ॥

॥ अर्थ स्पष्ट है ॥ सिद्धान्त कौमुदी, विभक्त्यर्थाः, पाणिनीय व्याकरणसूत्र ॥

इन दो प्रमाणोंसे देह इन्द्रियाँ बिना ही कर्त्ता शक्तिमान् और स्वतन्त्र है, ऐसा मैं मानता हूँ ! ॥

(३१) उत्तरः—अकेला, स्वतन्त्र चेतन कर्त्ता जड़ तत्त्वोंकी और देह सहित, अविनाशी अनेक चेतन जीवोंकी उत्पत्ति करनेमें असमर्थ है; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न २ में देखिये !) । जगत्में देह, इन्द्रियाँ और अन्तःकरण पञ्चक बिना स्वतन्त्र, अकेले, चेतन जीवोंसे कोई भी कर्म होते हुए हम कभी देखे नहीं । जैसे छोटे-बड़े शरीर रहते हैं, वैसी शक्ति भी, सब जीव शरीरोंमें रहने-

❀ "बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना । कर बिनु करम करइ बिधि नाना ॥
आनन रहित सकल रस भोगी । बिनु बानी बकता बड़ जोगी ॥३॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा । ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा ॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी । महिमा जासु जाइ नहिं बरनी ॥४॥"
गीताप्रेस, गोरखपुर सं० २००६ की रामायण, बालकाण्ड, दोहा-११७ के बाद चौपाई ३-४॥

से कम–अधिक प्रत्यक्ष देखनेमें आती हैं। इसलिए कर्त्ता शरीरधारी, एकदेशी, पृथिवीके ऊपर रहनेवाला चाहिए। परन्तु तिसको निर्गुण–निराकार माना है; (उसे पूर्वमें प्रमाण प्रश्न ७ में देखिये!) तिससे विरोध आता है। यदि कर्त्ताको सूक्ष्म देहधारी माने, तो कोई भी देहधारी जीव अधरमें सदैव ठहर नहीं सकते हैं, और ऊपर स्वर्गलोक भी असिद्ध है; (तिनको पूर्वमें प्रमाण प्रश्न ७ और प्रश्न १७ में देखिये !) । कर्त्ता जगत्की उत्पत्ति नहीं कर सकता है। क्योंकि वह असङ्ग अक्रिय है, (उसे श्रुति प्रमाण प्रश्न ४ में देखिये !) । इसलिए जड़ तत्त्वोंके सूक्ष्म वा स्थूल मायारूप शरीर रहित अकेला, निराकार कर्त्ता जगत् रचनेमें असमर्थ ठहरता है। यदि वह जगत्को रचनेमें तत्त्वरूपी मायाका आश्रय लेता है, तो वह पराधीन, बद्ध, अज्ञानी रहनेसे वह एकदेशी एक मनुष्य ठहरनेसे जगत्को भी अनादि ही मानना चाहिए। क्योंकि "माया" और "माया का कार्य" दोनों अनादि कालसे हैं; (उसे पूर्वमें प्रमाण प्रश्न १९ में देखिये !) ॥

इस प्रकारसे कर्त्ता स्वतन्त्र और देह इन्द्रियाँ बिना शक्तिमान् मानना मनुष्योंकी कल्पना ही सिद्ध होती है ॥

पूर्वके सर्व प्रश्नोंके प्रमाणोंसे श्रुति, स्मृति आदि अनेक प्रकारकी वाणी ज्ञाते मनुष्योंने अपनी–अपनी बुद्धि और कल्पना करके–करके रच रक्खी हैं, इसीसे परस्पर अनेक विरुद्ध बातें देखनेमें आती हैं, ऐसा जानिये ! ॥

॥ ❋ ॥ सांख्य मत वर्णन ॥ ❋ ॥

प्रश्न (३२) यदि कर्त्ता देह इन्द्रियाँ बिना शक्तिमान्

और स्वतन्त्र नहीं ठहरता, तो सांख्य शास्त्रके आचार्य कपिल मुनिके सिद्धान्तसे कर्त्ता विषय आपके बनाये सूत्रोंमें कहे हैं:—

"कुसुमवच्चमणिः ॥३५॥"—सांख्य सूत्र ३५। प्रकाश—अध्याय २॥

अर्थः—जैसे लाल फूलकी समीपताम्से स्फटिक मणि भी लाल रङ्गकी प्रतीत होती है। तैसे ही कर्त्ता पुरुषके पास शुद्ध प्रकृति सदोदित रहनेसे पुरुषका काँचवत् उसमें प्रतिबिम्ब होता है॥

"अकार्यत्वेपि तद्योगः पारवश्यात् ॥५५॥"—सांख्य सूत्र ५५। प्रकाश अ०३॥

अर्थः—यद्यपि प्रकृति कारणरूप है; कार्य नहीं। तथापि अनन्त, विभु जीवात्मा पुरुषोंके अदृष्ट कर्म संस्कार सहित, सर्व संसार प्रकृतिमें लीन रहता है। परन्तु वह स्वयं जड़ रहनेसे सबके परे परपुरुषके आधीन या परवश है। इसलिए फिर संसार उत्पन्न होनेका तिसमें योग है॥

"स हि सर्ववित् सर्वकर्त्ता ॥ ५६ ॥ ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा ॥ ५७ ॥"

॥ सांख्य सूत्र ५६। ५७। प्रकाश—अध्याय ३ ॥

अर्थः—वह सबसे परे स्थित पुरुष निश्चयसे सर्वज्ञान और सर्व कर्तृत्व शक्तिमान्, अर्थात् सर्वज्ञ तो अपने स्वरूप ही से है। और चुम्बक पत्थरवत् प्रकृतिके समीपमात्रसे प्रेरक होता है। उसकी प्रेरणा और ज्ञानशक्तिको प्राप्त होकर, जगत्की उत्पत्ति समयमें प्रकृतिसे ब्रह्मावत् एक स्वयंसिद्ध ईश्वर प्रकट हो जानेसे वह जगत्को रचता है, स्वतन्त्र भिन्न ईश्वर कर्त्ता नहीं है॥

पूर्वके प्रश्न ४ के श्रुति प्रमाणसे पुरुष सदा असङ्ग अक्रिय है॥

इन प्रमाणोंसे जैसे शुद्ध स्फटिक मणिमें लाल फूल का प्रतिबिम्ब होता है। तैसे ही असङ्ग कर्त्ताके पास प्रकृतिरूप माया सदोदित रहनेसे सबसे परे सर्वज्ञ, सर्व समर्थ पुरुषका प्रकृतिमें

प्रतिबिम्ब दर्पणवत् पड़ता है। फिर सर्व जीवात्मा पुरुषोंके अदृष्ट कर्म संस्कार फल देनेको सन्मुख हो जानेसे ब्रह्मावत् सिद्ध पुरुष ईश्वर प्रकृतिसे प्रकट होकर जगत्को रचता है ॥

वह असङ्ग पुरुष जगत्के उत्पत्ति विषय आदिकारण होनेसे मैं उसको जगत् कर्त्ता मानता हूँ ? ॥

(३२) उत्तरः—ब्रह्मावत् सिद्ध पुरुष चेतन ईश्वर और अदृष्ट कर्म संस्कार सहित अनेक चेतन जीवात्मा पुरुष जगत्की उत्पत्तिके प्रथम जड़ प्रकृतिमें लीन रहे, ऐसा मानना असम्भव दोषयुक्त है। क्योंकि जैसे जड़ प्रकृतिका कार्य जड़ तत्त्वोंका जगत् माना है। तैसे अनन्त चेतन पुरुष कुछ जड़ प्रकृतिके कार्य नहीं; वे कैसे तिसमें लीन रहेंगे ? यदि न्यारे-न्यारे शुद्ध, अनेक, विभु चेतन नित्य पुरुष माने हैं, तो वे प्रलयमें न्यारे-न्यारे विभुरूपसे रहने असम्भव बात हैं। यदि सर्व चेतन पुरुष सबसे परे चेतन पुरुषमें लीन होकर जगत्की उत्पत्ति समय फिर प्रकट होते हैं, ऐसा माने, तो 'बीज-अङ्कुर-न्याय' विशेष सिद्ध ईश्वर सहित सर्व जीवात्मा पुरुष उत्पति-प्रलय वाले, नाशवान्, जड़ ठहरते हैं। इसलिए परपुरुष कर्त्ता मानना कल्पित कथन है। और देहधारी, अनेक चेतन जीवात्मा पुरुष सहित पाँच जड़ तत्त्वोंका जगत् अनादि ठहरता है। जगत् अनादिसे है; (तिसको पूर्वमें प्रमाण प्रश्न १२ और प्रश्न १९ में देखिये !) ॥ अथवा कहा है:—

"प्रारब्धक्षयाद्देहत्रयभङ्गं॥" मुक्तिक उपनिषद् अ० १ के अन्तमें मन्त्र ६ ॥

अर्थः—प्रारब्ध कर्मोंका क्षय होते ही स्थूल, सूक्ष्म और कारण, ये तीन शरीर मुक्त दशामें नाश होते हैं। अन्य सर्व

जीव अपने-अपने प्रारब्ध कर्मोंको सम्पूर्ण भोगके देह छूटे बाद अध्यासवश फिर जन्म लेते हैं ॥

इस प्रमाणसे अगणित जीवात्मा पुरुषोंने अपने-अपने सम्पूर्ण प्रारब्ध कर्मोंको भोगे बिना एक ही नियमित कालमें सबको मृत्यु प्राप्त हो, जगत्का प्रलय मानना अन्यायका कथन है। इस हेतु से भी चराचर सर्व जगत् उत्पत्ति-प्रलय रहित अनादि ठहरता है ॥

यद्यपि सबके परे निराकार चेतन पुरुषके पास साकार वा निराकार जड़ प्रकृति अनादिसे नित्य रही है, ऐसा माना है। तथापि निराकार, चेतन परपुरुषका प्रकृतिमें प्रतिबिम्ब होना असम्भव है। इसलिए प्रतिबिम्ब विषय साकार स्फटिक और साकार लाल फूलका दृष्टान्त दिया हुआ अयोग्य है। प्रतिबिम्ब जड़ शक्तिहीन होता है, तिससे चैतन्य सिद्ध ईश्वर जगत् कर्त्ता प्रकृतिसे प्रकट हो ही नहीं सकता। अथवा जड़ प्रकृतिमें ज्ञान, विशेष सिद्धि कलाएँ और इच्छा शक्तियुक्त प्रयत्न असङ्ग पुरुषसे कैसे प्रकट होंगे ? जड़ पदार्थोंमें ज्ञान नहीं है, और इच्छा, प्रयत्न, नाना चतुराई आदि धर्म भी नहीं है; (उसे पूर्वमें प्रमाण प्रश्न ३ में देखिये !) ॥ अथवाः—

चौकड़ीः-"पुरुष प्रकृति सनातन जान । सन्तत स्वतः स्वभाव समान॥१३॥"
॥ चौकड़ी १३ ॥ नं० १०१ ॥ समष्टिसार, पञ्चग्रन्थी ॥

अर्थः—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि, पुरुष और मायारूपी प्रकृतिको अनादि मानने वालोंके मतमें जगत्के उत्पत्तिका रोग स्वभावसिद्ध सदोदित बना ही रहता है। इसलिए जन्म-मरणरूप रोगका छूटना असाध्य है ॥

इस प्रमाणसे सदैव प्रकृतिके समीपतासे सबके परे स्थित

पुरुषमें जगत्के उत्पत्तिका रोग अनादि ठहरता है। और स्वयं परपुरुष भी असाध्य रोगी बना है। क्योंकि निराकार पुरुषका सदैव जड़ प्रकृतिकी समीपतासे स्वाभाविक तिसमें प्रतिबिम्ब पड़ना, यह धर्म बन्धनरूप संसारकी उत्पत्तिमें कारण माना है॥

पूर्वोक्त असङ्ग, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् माने हुए सबसे परपुरुषका प्रकृतिकी समीपतासे तिसमें प्रतिबिम्ब पड़ कर, ब्रह्मावत् सिद्ध चैतन्य पुरुष एक ईश्वर प्रकट होकर जगत्को रचता है, ऐसा मानना अन्यायका कल्पित कथन है; ऐसा जानिये ! ॥

प्रश्न (३३) यदि परपुरुषका प्रतिबिम्ब दर्पणवत् प्रकृतिमें पड़के उसे प्रेरणा प्राप्त हो, ब्रह्मावत् एक सिद्ध ईश्वर जगत् कर्त्ता नहीं ठहरता, तो सांख्य सूत्रोंमें और भी कहे हैं:—

"प्रकृतिवास्तवे च पुरुषस्या ध्याससिद्धिः ॥५॥" सांख्यसूत्र ५। प्रकाश अ० २ ॥

अर्थः—जैसे सत्ता हीन अनेक योद्धे राजाके हुक्मरूप सत्ताको पाय, तिनकी ही 'जय वा पराजय' होती है। परन्तु उसका आरोप या मिथ्या कथन राजामें किया जाता है। तैसे ही असङ्ग सबसे परे पुरुषकी सत्तारूपसे प्रकृतिमें सम्बन्ध होकर, वह स्वयं समर्थ बनती है। वह सम्बन्ध पुरुषमें अध्यासमात्र है, ऐसा श्रुति प्रमाणसे सिद्ध होता है। परन्तु वास्तवमें प्रकृति ही जगत्को रचती है॥ प्रकृतिसे जगत् रचनेका कारणः—

"कार्यतस्तत्सिद्धेः ॥ ६ ॥"—सांख्य सूत्र ६। प्रकाश–अध्याय २ ॥

अर्थः—प्रधान वा प्रकृति जड़ रहनेसे तिससे कार्यरूप जगत्की रचना होना, सहज ही सिद्ध होता है॥

इन दो प्रमाणोंसे जैसे राजाकी सत्तासे उसकी सेना लड़ाई करके, शत्रुकी सेनाको मार हटानेसे राजाकी ही जय होती है।

परन्तु वह अलिप्त—अलग ही रहता है। तैसे ही अलिप्त कर्त्ताकी शक्तिसे मायारूप प्रकृति शक्तिमान् बनके जगत् रचती है; परन्तु नाम कर्त्ताका गाते हैं॥ उक्त अलिप्त पुरुषको मैं कर्त्ता मानता हूँ?॥

(३३) उत्तरः—देखिये! राजाकी सेना-प्रधान, सिपाही आदि देहधारी चेतन जीव रहनेसे चैतन्य, सत्ताधीश राजाका हुक्म पाय, वे शत्रुकी सेनाको मार हटाये बाद राजाकी जय होती है। परन्तु चैतन्य कर्त्ता पुरुष अलिप्त, निराकार माना है। और उसके समीपकी प्रकृति जड़, साकार वा निराकार रहनेसे दोनोंका परस्पर सम्बन्ध ही नहीं बनता। स्थूल वा सूक्ष्म साकार पदार्थोंका ही परस्पर संयोग-वियोग होता रहता है। ऐसी प्रत्यक्ष प्रतीति है। इसलिए ज्ञानहीन, जड़ प्रकृति जगत्को कैसे रचेगी? जड़ मुर्दे भी किसी कार्यको कर सकते हैं? जैसे तत्त्वोंके कार्यरूप जड़ शरीरोंमें मन, इन्द्रियादिकोंको सर्व चेतन जीव सत्ता देकर अनेक कार्य करते हैं। तैसे ही चैतन्य कर्त्ता पुरुष अपनी सत्ता जड़ प्रकृतिको देकर, दोनोंके संयोगसे जगत्को रचते हैं। ऐसा पूर्वके प्रश्न ४ के श्रुति प्रमाणसे माने, तो कर्त्ता एकदेशी, देहधारी रहनेसे जगत् भी अनादि ठहरता है। जगत् अनादिसे है, इसके लिए पूर्वके सब प्रश्नोंके प्रमाण हैं॥

सांख्य सूत्र ६१ प्रथम प्रकाशमें ❀ प्रकृति पदार्थ तीन गुणोंकी समान अवस्थाको माना है। परन्तु गुण-गुणीसे भिन्न नहीं रहता, इसलिए प्रधान वा प्रकृति कोई भिन्न पदार्थको मानना अन्याय है। जैसा पृथिवीका गुण गन्ध, सो गुणी पृथिवीको छोड़के न्यारा

❀ "सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः॥ ६१॥"—सांख्य सूत्र ६१। अध्याय १॥
—सत्त्व रज तम गुणोंकी सम होनेकी जो अवस्था है, वह प्रकृति है॥

नहीं रहता; अर्थात् दोनोंका नित्यसम्बन्ध है। तैसे ही कर्त्ता पुरुष और प्रकृति तिसका नित्य गुण रहनेसे एक ही पदार्थ ठहरता है। इस हेतुसे प्रकृतिको पुरुषसे न्यारी मानके फिर उस प्रकृतिसे जगत्की उत्पत्तिका कथन करना अन्यायका वचन है ॥

इन प्रमाणोंसे अलिप्त, नपुंसक, क्रिया रहित कर्त्ता पुरुष अपनी सत्तासे गुणरूपी जड़ मायारूप प्रकृतिको शक्तिमान्, ज्ञानवान बना कर वह प्रकृति जगत्को रचती है; ऐसा मानना झूठ बकवाद है ॥

प्रश्न (३४) यदि अलिप्त पुरुषकी सत्तासे शक्तिमान् बनके प्रकृति जगत्कर्त्ती नहीं ठहरती, तो कर्त्ता विषय सांख्य सूत्रोंमें और भी कहे हैं:—

"प्रधानसृष्टिः परार्थं स्वतोऽप्यभोक्तृत्वादुष्ट्रकुंकुमवहनवत् ॥ ५८ ॥"

॥ सांख्य सूत्र ५८ । प्रकाश—अध्याय ३ ॥

अर्थः—जैसा ऊँट मालिकके लिए केसरका भार उठाता है। तैसे ही प्रधानरूप माया स्वामी पुरुषके स्व-उपाधि संयोग और अविवेकरूप धर्म मिटानेके लिए जगत्को उत्पन्न करती है ॥

"गतियोगेऽप्याद्यकारणताहानिरणुवत् ॥३७॥" सांख्य सूत्र३७ । प्रकाश अ०६॥

अर्थः—प्रधान वा प्रकृति सर्व जगत्की उत्पत्तिका कारण सिद्ध नहीं होती, इसीसे वह भी व्यापक है। अथवा नैयायिकके मतमें जैसे प्रमाणुओंमें क्रिया होनेसे ही वे जगत्का आदिकारण सिद्ध होते हैं। तैसे ही पुरुषके सत्ता—संयोगसे प्रकृतिमें क्षोभ नामक क्रिया होनेसे मूलकारणकी हानि नहीं ॥

इन दो प्रमाणोंसे जैसे ऊँट अपने मालिकके लिए भार उठाता है। तैसे ही अपने स्वामीके स्व-उपाधि संयोग और अविवेकरूप निमित्त कारणका उपाधि धर्म मिटानेके लिए पुरुषकी सत्तासे

व्यापक, जड़ प्रकृतिमें 'गुण-क्षोभ' नामक उत्पत्ति हेतुरूप क्रिया प्रकट होती है; इसलिए जगत् उत्पन्न होता है ॥

पूर्वोक्त पुरुषसे क्रियावान् होनेवाली प्रकृतिको ही मैं जगत्-कर्त्री मानता हूँ ? ॥

(३४) उत्तरः—उक्त दृष्टान्तमें ऊँट और मालिक दोनों चेतन जीव हैं। परन्तु मायारूप प्रधान वा प्रकृति निर्जीव जड़ है। और उसका स्वामी चेतन पुरुष असङ्ग रहते भी जिसको प्रकृतिरूपी मायाकी संयोगरूप उपाधि और अविवेकरूप निमित्त कारण उपाधि मिटानेके लिए जड़ प्रकृतिमें 'गुण-क्षोभ' नामक उत्पत्तिकी हेतुरूप क्रिया होती है, ऐसा माना है। वह बाँझ-पुत्रवत् या छोकड़ोंके झूठे ही खेलवत् जगत्की उत्पत्तिका न्याय ठहरता है। क्योंकि जड़में ज्ञान ही नहीं; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न ३ में देखिये !)। जड़ प्रकृतिमें स्वयं हेतु (इच्छा) प्रकट होकर जगत् कैसे उत्पन्न होगा ? यदि जड़में भी इच्छाशक्ति माने, तो अचल, जड़ पदार्थोंमें इच्छा प्रकट होकर नाना चतुराईके अनेक कार्य चैतन्य मनुष्योंवत् प्रतीत क्यों नहीं होते ? केवल अन्यायी बनना अयोग्य है। अथवा मेरा स्वामी जड़, नपुंसक या चेतन पुरुष है, ऐसा जानके जड़ प्रकृति उसकी सेवा कैसे करेगी ? ॥

उपनिषद्में ऐसा कहा भी है:—

"न स्पृशामि जडाद्भिन्नो जडदोषाप्रकाशतः ॥ २७ ॥"

॥ आत्मप्रबोध उपनिषद् । मन्त्र २७ ॥

अर्थः—जीवात्मा जड़से भिन्न चेतन रहनेसे, जड़ देहके सर्व दोष और सर्व व्यवहारको वह अपनी सत्तासे प्रकाशता है। परन्तु उसे कोई भी जड़ विकार स्पर्श नहीं करते। अर्थात् आप

सर्वका साक्षी न्यारा रह कर सबको जानता है ॥

अथवाः—जानना यह ज्ञान धर्म जड़में माने, तो जीवात्मा पुरुष रहित जड़ मुर्दे सर्वको क्यों नहीं जान सकते हैं ? ॥

पूर्वोक्तज्ञान हीन जड़ प्रकृति सबसे परे परपुरुषसे क्रियावान् बनकर उसे जगत्कर्त्ती मानना झूठा ही विवाद है ॥

प्रश्न (३५) यदि ज्ञानवान् पुरुषके सत्ता-संयोगसे जड़ प्रकृति इच्छावान्, क्रियावान्, ज्ञानवान् बनकर वह जगत्कर्त्ती नहीं ठहरती, तो सांख्य मतके परिणाम वादसे कर्त्ता विषय कहे हैं:—

"यदल्पं तन्मर्त्यम् ॥"—छन्दोग्य उपनिषद् । अ० ७ । खण्ड २४ । मन्त्र १ ॥

अर्थः—जितने पदार्थ परिच्छिन्न (न्यारे-न्यारे एकदेशी) रहते हैं, तिनका नाश अवश्य होता है ॥

"परिच्छिन्नं न सर्वोपादानम् ॥७६॥"—सांख्य सूत्र ७६ । प्रकाश-अध्याय १ ॥

अर्थः—एकदेशी पदार्थ सर्व जगत्का उपादानकारण घटमें मिट्टीवत् नहीं बनता, इसलिए प्रकृति भी व्यापक है ॥

"अचेतनत्वेपि चीरवच्चेष्टितं प्रधानस्य ॥ ५९ ॥"

॥ सांख्य सूत्र ५९ । प्रकाश-अध्याय ३ ॥

अर्थः—जैसे जड़, दूध पुरुषके प्रयत्न बिना दही रूप परिणामको प्राप्त होता है । तैसे ही जड़ प्रकृतिके तीनों गुणोंमें स्वयं क्रियाएँ प्रकट होकर उससे जगत्की उत्पत्ति होती है ॥

"सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः, प्रकृतेर्महान्महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात्पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेयभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः ॥ ६१ ॥"—सांख्य सूत्र ६१ । प्रकाश-अध्याय १ ॥

अर्थः—सत्त्व, रज और तमगुणोंकी सम अवस्थाका नाम प्रकृति है । तिससे कार्य रूपमें महत्तत्त्व-बुद्धि-प्रकट होती है । फिर क्रमसे (एकके पीछे एक) अहङ्कार, पञ्च तन्मात्राः—शब्दादि पाँच

विषय, मन सहित दश इन्द्रियाँ, और पञ्च तन्मात्राओंसे पृथिवी आदि पाँच महाभूत, या जड़ पाँच तत्त्व (प्र० १ । बु० १ । अहं० १ । मन १ । ज्ञा० ५ । क० ५ । वि० ५ । तत्त्व ५ ।) ऐसे २३ कार्यरूप विकृति तथा एक कारणरूप प्रकृति २४—और पचीसवाँ परपुरुष और अनेक चेतन जीवात्मा पुरुष हैं । प्रकृति नित्य है, महत्तत्त्व, अहङ्कार, पञ्च तन्मात्रा ये प्रकृतिके कार्य हैं । और वे सब मन, इन्द्रियाँ तथा स्थूल पञ्च भूतोंके कारण हैं । सर्व चेतन जीवात्मा पुरुष नित्य तथा सर्व देहोंमें व्यापक हैं ॥

इन प्रमाणोंसे नित्य, अनेक सर्व पुरुष छोड़ कर पूर्वोक्त २३ पदार्थरूप सर्व जगत्के परिणामको प्रकृति ही कार्यरूपसे उत्पन्न करती है । इसलिए असङ्ग, सर्व चेतन पुरुषको प्रकृति ही बन्धन-रूपसे कारण है ॥

पूर्वोक्त परिणामरूपसे जगत्की उत्पत्ति प्रकृतिसे होती है । उसी जगत् परिणामिनी प्रकृतिको मैं जगत्कर्त्ती मानता हूँ ? ॥

(३५) उत्तरः—अनेक, चैतन्य जीवात्मा पुरुष असङ्ग, निराकार और देहोंमें व्यापक माने हैं । परन्तु हाथीकी देहमें हाथीवत् बड़े और चींटीकी देहमें चींटीवत् छोटे, व्यापकरूप रहनेसे संकोच-विकासवाले, वे जड़, नाशवान सिद्ध होते हैं । इसलिए जीवात्मा पुरुषोंको नित्य और अनेक ही मानना योग्य है । क्योंकि वे किसीके कार्य नहीं; वे साकार और निराकार पदार्थोंके जाननहार रहनेसे शुद्ध ज्ञानरूप ठहरते हैं । परन्तु निराकार, व्यापक अनेक जीवात्मा पुरुष मानना असम्भव दोषयुक्त है । दूसरी त्रिगुणकी समतारूप प्रकृति नित्य पदार्थ भी पुरुषसे भिन्न और जड़ मानना नहीं बनता । क्योंकि गुणीमें गुण नित्य

सम्बन्धसे रहते हैं। जैसे अग्निमें उष्णता, प्रकाश और अति चपलता, ये तीन नित्य गुण हैं। इसलिए सबसे परे माना हुआ पुरुष त्रिगुण धर्म वाला रहनेसे सामान्य संसारीवत् एकदेशी मनुष्य ठहरता है। इसी सबब अनेक चैतन्य जीव सहित जड़ पाँच तत्त्वोंका जगत् अनादि सिद्ध है॥

देखिये! रज, सत्त्व, और तम ये त्रिगुणरूप तीन क्रियाएँ हैं, जड़ तत्त्वोंका शरीर और जीव, दोनोंके सम्बन्धसे वे प्रतीत होती हैं। मनुष्योंमें पेट पालनेके कर्म, स्त्री-सम्भोगादि पाँच विषयोंके कर्मादि रजोगुणी कर्म हैं। भक्ति और यथार्थ ज्ञानके श्रवण, मननादि साधनोंके कर्म सत्त्वगुणी क्रियाएँ हैं। आलस्य, निद्रा, मारपीट करना, हिंसादि तमोगुणी क्रियाएँ हैं। जड़ तत्त्वोंमें अंकुरज खानी और अनेक पदार्थोंकी उत्पत्ति मुख्य पृथिवी और जल तत्त्वसे होती है; वह रजोगुणी क्रिया है। मुख्य अग्नि और वायु तत्त्वसे सर्वका पालनरूप सत्त्वगुणी क्रिया है, और सर्वत्र गतिवान् वायुकी समानरूपसे स्थिरता सर्व स्थूल क्रियाओंके नाशका कारण तमोगुणी क्रिया है। इस प्रकारसे त्रिगुणरूपी जड़ प्रकृतिको ही स्वतन्त्र, नित्य पदार्थ मानना अन्यायका कथन है। यदि पुरुषसे भिन्न, व्यापक प्रकृति मानकर दूधका परिणाम दहीवत् उसका कार्य सर्व जगत् माने, तो खटाईका जावन मनुष्योंके दिये बिना और मुख्य अग्नि तथा वायु, इन दो तत्त्वोंकी संयोग सहायता मिले बिना, दूध स्वयं जम जाता ही नहीं। जैसे समुद्रके जलसे मनुष्योंसे जमाया हुआ नमक; अथवा दहीका पूर्ववत् दूध भी उतनी ही क्रियासे नहीं बनता। इसलिए आप-ही-आप चेतन पुरुषके प्रयत्न बिना जड़

प्रकृतिमें भिन्न-भिन्न तेईस पदार्थोंका जगत् परिणामरूप बननेकी स्वयंशक्ति और ज्ञान तिनमें ठहरता ही नहीं। प्रकृति और पुरुष, दोनों नित्य, निराकार और विभु माने हैं। इसलिए दोनों पदार्थ संयोग रहित एक स्वरूप रहनेसे दोनोंको भिन्न और नित्य मानना असम्भव दोषयुक्त है। क्योंकि एक निराकार व्यापकमें वैसा ही दूसरा व्यापक, निराकार पदार्थ कैसे समावेगा? निराकारमें अन्य निराकार पदार्थ नहीं समाता। (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न ९ में देखिये!)। यदि प्रकृति को साकार, जड़ माने, तो वह एकदेशी ठहरती है, और व्यापक मानना ही नहीं बनता॥

पहला:—जैसे सुवर्णके अनेक अलङ्कार बननेसे तिसके 'नाम' 'रूप' का अभाव हो जाता है। तैसे ही जड़ प्रकृति अपने कारण भावको त्यागके कार्यरूपसे महत्तत्त्व आदि २३ पदार्थ बन जानेसे प्रकृतिका नाम-रूप नष्ट हो गया, और वह अनित्य पदार्थ सिद्ध हुई॥

दूसरा:—प्रकृति व्यापक पदार्थ निराकार माना है, तिसका कार्य साकार, एकदेशी बन ही नहीं सकता॥

तीसरा:—महत्तत्त्व = बुद्धि, अहङ्कार, मन, दश इन्द्रियाँ, ये सब अनेक, देहधारी जीवोंमें प्रतीत होते हैं। परन्तु जड़ पदार्थों या जड़ तत्त्वोंमें वे प्रतीत नहीं होते। इसलिए प्रकृतिका परिणाम वे प्रथम ही बने, ऐसा मानना कल्पित है। पाँच तन्मात्रा अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, ये गुण प्रथम प्रकट हो के पीछेसे गुणी पाँच तत्त्वोंकी उत्पत्ति मानना भी असम्भव दोषयुक्त है॥

चौथा:—पोलरूप या अनन्त छिद्ररूप आकाशकी उत्पत्ति मानना, तो महा असम्भव कथन है॥

इस प्रकारसे सांख्यमत पूर्ण अज्ञानतासे व्याप्त है। निर्णयसे देहधारी एकदेशी चेतन जीव अगणित और नित्य हैं। पोलाकार आकाश तत्त्व छोड़के अन्य चारों तत्त्व नित्य, अनन्त परमाणुओंका समूह तथा पाँचों तत्त्व भिन्न-भिन्न रहनेसे वे एकदेशी ही हैं। पूर्वके सर्व प्रश्नोंके प्रमाणोंसे जगत्की उत्पत्ति व प्रलय कर्त्ता कोई सिद्ध नहीं होता है। इसलिए पाँच जड़ तत्त्व और देहधारी, अनेक चेतन जीव ऐसे नित्य और परिच्छिन्न (न्यारे-न्यारे एकदेशी) पदार्थोंका नाश मानना बड़ी भूल है ॥

पहला:—पुरुष और प्रकृति दोनों नित्य और व्यापक रहनेसे देहधारी, अनेक चेतन जीव और एकदेशी पाँच तत्त्व कहाँ पर रक्खे जायेंगे। क्योंकि वे दोनों व्यापक रहनेसे भिन्न जगह कहीं खाली रही ही नहीं ॥

दूसरा:—चैतन्य निराकार पुरुष असङ्ग-नपुंसक अक्रिय तथा प्रकृति निराकार जड़, दोनों भी जगत्की उत्पत्ति करनेमें असर्थ हैं ॥

तीसरा:—सर्व जीवोंने अपने-अपने प्रारब्ध कर्म सम्पूर्ण भोगे बिना तिनके शरीर एक ही समयपर छूटते ही नहीं; (तिसको श्रुति प्रमाण पूर्वके प्रश्न ३२ में देखिये !)। इसलिए जगत्का प्रलय भी मानना असम्भव है। वाणीरूप भ्रमका-भूत अङ्गमें चढ़ाये हुए आप भ्रमिक पक्षपाती क्यों बनते हो ? निष्पक्ष पारखी सन्तोंका सत्सङ्ग कीजिये ! तब यथार्थ बोध होगा ॥

पूर्वोक्त निराकार पुरुषके प्रयत्न बिना निराकार, व्यापक, जड़ प्रकृतिका परिणाम साकार तत्त्वरूपी जगत्को जगत्कर्त्री प्रकृति ही बनाकर रचती है, ऐसा मानना वृथा ही गाल-बजाना है। इस भ्रमिक मतको आप त्याग ही दीजिये ! ॥

॥ ❀ ॥ वैशेषिक और न्याय मत वर्णन ॥ ❀ ॥

प्रश्न (३६) यदि सांख्यमतसे पुरुष और प्रकृति ये दोनों कर्त्ता नहीं ठहरते; तो वैशेषिक शास्त्र कर्त्ता 'कणाद ऋषि' और न्याय शास्त्र कर्त्ता 'गौतम ऋषि' दोनोंके मतोंसे आरम्भवादरूपसे कर्त्ता विषय कहा है:—

"द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाभावाः सप्तपदार्थाः ॥ १ ॥"

॥ तर्क संग्रह, प्रथम खण्ड—१ ॥

अर्थः—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव, ये सात पदार्थ हैं ॥ उक्त सात पदार्थोंके ही भीतर सर्व जगत् है; ऐसा न्याय मतमें माना है । और अभाव पदार्थ छोड़के अन्य छः पदार्थ वैशेषिक मतमें माने हैं ॥

न्याय सूत्र १, आह्निक १ में कहा ❀ है:—१. प्रमाण । २. प्रमेय (पदार्थ) । ३. संशय । ४. प्रयोजन । ५. दृष्टान्त । ६. सिद्धान्त । ७. अवयव । ८. तर्क । ६. निर्णय । १०. वाद = दो भिन्न पक्ष लेकर बोलना । ११. जल्प = छल और निषेधका भाषण । १२. वितण्डा = प्रतिपक्ष खण्डन बातें । १३. छल = वक्ताके विरुद्ध अर्थका—असम्भव अर्थका—वा अन्यायका अन्य अर्थ करके भाषण । १४. हेत्वाभास = सदोष हेतु । १५. जाति । और १६. निग्रहस्थान = भाषण बन्द होनेवाला पराजयका स्थान ।

❀ "प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्ताऽवयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डा—हेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः ॥ १ ॥" न्यायसूत्र १ । आह्निक १ ॥—प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति, और निग्रहस्थान; इन सोलह पदार्थोंके तत्त्वज्ञानसे मोक्ष होता है ॥

ऐसे जगत्में सोलह पदार्थ हैं। परन्तु पूर्व कहे हुए सात पदार्थोंके भीतर ही हैं। वैशेषिक मतमें कहा है:—

"पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि ॥ ५ ॥
रूपरसगन्धस्पर्शाः संख्याः परिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ
परत्वाऽपरत्वे बुद्धयः सुखदुःखेच्छाद्वेषौ प्रयत्नाश्च गुणाः ॥ ६ ॥"
॥ वैशेषिक सूत्र ५ । ६ ॥ अध्याय १ । आह्निक १ ॥

अर्थः—पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन ये नौ द्रव्य हैं ॥ १. रूप। २. रस। ३. गन्ध। ४. स्पर्श। ५. संख्या = एकसे परार्ध तक गिनती। ६. परिमाण = स्थूल-सूक्ष्मरूप आकार। ७. पृथकत्व = अलग। ८. संयोग = मिलाप। ९. विभाग = मिले हुए पदार्थ न्यारे-न्यारे होना। १०. परत्व = दूर स्थान। ११. अपरत्व = समीप स्थान। १२. बुद्धि। १३. सुख। १४. दुःख। १५. इच्छा। १६. द्वेष। १७. प्रयत्न। और १८. गुरुत्व = विशेष वजन। १९. द्रवत्व = पतलापन। २०. स्नेह = पीसी हुई चीजोंका गोला बननेमें कारण। २१. संस्कार = गुप्त वासना वा स्मृति। २२. धर्म। २३. अधर्म। और २४. शब्द; ये चौबीस गुण माने हैं।

"अग्नेरूर्द्ध्वज्वलनंवायोस्तिर्यग्गमनमणूनांमनसश्चाद्यंकर्मादृष्टकारितम्॥१३॥"
॥ वैशेषिक सूत्र १३ । अध्याय ५ । आह्निक २ ॥

अर्थः—अग्निकी ज्वाला ऊपरको उठना, वायुका तिरछा बहना, अणुओंका और मनोंका आद्य कर्म = सृष्टिकी उत्पत्तिके आदिमें हुआ कर्म, सो जीवोंके शुभ और अशुभ कर्मोंके संस्कार रहनेसे अदृष्ट कारणसे होता है ॥ न्याय मतमें कहा है:—

"क्षित्यप्तेजोमरुद्व्योमकालदिग्देहिनो मनः द्रव्याणि ॥ ३ ॥"
॥ न्यायसिद्धान्त मुक्तावलि, परिच्छेद १ । कारिका ३ ॥ प्रत्यक्ष खण्डः ॥

अर्थः—वैशेषिकवत् न्याय मतमें भी वे ही नौ द्रव्य पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन माने हैं ॥

"रूपरसगन्धस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वगुरुत्व-द्रवत्वस्नेहशब्दबुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माऽधर्मसंस्काराश्चतुर्विंशति गुणाः ॥ ३ ॥" ॥ तर्क संग्रह, खण्ड-१ ॥

अर्थः—वैशेषिकवत् न्याय मतमें भी वे ही (२४) चौबीस गुण माने हैं। (मूल शब्दार्थ ऊपर वैशेषिक सूत्र ६ में हो चुका है वहाँ पर देखिये !) ॥

"कालखात्मदिशां सर्वगतत्त्वं परमं महत् ॥ २६ ॥"
॥ न्यायसिद्धान्त मुक्तावलि । परिच्छेद १ । कारिका २६ ॥

अर्थः—काल, आकाश, आत्मा, दिशा, इन चार द्रव्योंका सर्व व्यापकता-परम महत् जाति परिमाणरूप-समान धर्म है ॥

आत्मा विषय कहा है:—

"ज्ञानाधिकरणमात्मा । स द्विविधः । जीवात्मापरमात्माचेति । तत्रेश्वरः सर्वज्ञः । परमात्माएकएवसुखदुःखादि रहितः । जीवात्माप्रति शरीरंभिन्नोविभुर्नित्यश्च ॥"—तर्क संग्रह, खण्ड-१ ॥

अर्थः—ज्ञानका अधिकरण-आश्रय-अर्थात् जिसमें नित्य-सम्बन्ध करके ज्ञान रहै, वही आत्मा है। वे आत्मा दो हैं। जीवात्मा और परमात्मा। तिनमें सर्वज्ञ परमात्मा ईश्वर एक ही है, वह सुख-दुःखादि रहित, नित्य और विभु-व्यापक-है। जीवात्मा प्रत्येक शरीरोंमें भिन्न और देहोंमें व्यापक तथा नित्य हैं ॥

विभु विषय कहा है:—

"सर्वमूर्तद्रव्यसंयोगित्वं विभुत्वं ॥"—तर्क संग्रह, खण्ड-१ ॥

अर्थः—सर्व मूर्तिमान् = साकार-अल्प द्रव्योंसे = परमाणुओंसे संयोग रहनेका नाम विभु-व्यापक-है ॥

संसारमहीरुहस्य बीजाय॥१॥पारिमाण्डल्यभिन्नानां कारणत्वमुदाहृतम्॥१५॥
॥ न्यायसिद्धान्त मुक्तावलि । परिच्छेद १ । कारिका १ । १५ ॥

अर्थः—संसार यही वृक्ष है, तिसका कुम्हारवत् निमित्तकारण कर्त्ता ईश्वर है॥ परिमण्डल=अतिसूक्ष्म परमाणुओंको कहते हैं॥ जिनके फिर टुकड़े नहीं बनते, अखण्ड अनेक कनकनिके हैं॥

अणु, त्रसरेणु विषय कहा हैः—

श्लोकः—"अणुर्द्वौ परमाणू स्यात्, त्रसरेणुस्त्रयः स्मृतः॥
जालार्करश्म्यवगतः, खमेवानुपतन्नगात्॥ ५॥"
॥ भागवत, स्कन्ध ३ । अध्याय ११ । श्लोक ५॥

अर्थः—दो परमाणुओंका मेलसे एक 'अणु' होता है, और तीन अणुओंके मिलनेसे एक 'त्रसरेणु' होता है। जो जाली और झरोखोंके भीतर सूर्यकी किरणोंमें दिखाते हुए नीचे–ऊपर जाया करते हैं। तिनमेंसे हरएक झीनेको त्रसरेणु कहा है ❀॥

❀ "चरमः सद्विशेषाणामनेकोऽसंयुतः सदा॥ परमाणुः स विज्ञेयो नृणामैक्य-भ्रमो यतः॥ १॥ सत एव पदार्थस्य स्वरूपावस्थितस्य यत्॥ कैवल्यं परममहान-विशेषो निरन्तरः॥२॥" श्रीमद्भागवते तृतीयस्कन्धे अध्यायः ११ । श्लोक १ । २॥

—पृथिवी आदि कार्य वर्गका जो सूक्ष्मतम अंश है—जिसका और विभाग नहीं हो सकता, तथा जो कार्यरूपको प्राप्त नहीं हुआ है, और जिसका अन्य परमाणुओंके साथ संयोग भी नहीं हुआ है; उसे परमाणु कहते हैं। इन अनेक परमाणुओंके परस्पर मिलनेसे ही मनुष्योंको भ्रमवश उनके समुदायरूप एक अवयवीकी प्रतीति होती है॥ १॥ यह परमाणु जिसका सूक्ष्मतम अंश है, अपने सामान्य स्वरूपमें स्थित उस पृथिवी आदि कार्योंकी एकता (समुदाय अथवा समग्ररूप) का नाम परम महान् है। इस समय उसमें न तो प्रलयादि अवस्था भेद की स्फूर्त्ति होती है, न नवीन–प्राचीन आदि काल भेद का भान होता है, और न घट–पटादि वस्तुभेद की ही कल्पना होती है॥ २॥

उक्त प्रकारसे दो परमाणुओंका एक अणु, दो अणुओंका 'द्व्यणुक' और तीन अणुओंका 'त्र्यणुक' कहाता है। तिन सबमें पदार्थ उत्पन्न होनेका कारणतारूप समान धर्म है। ऐसे ही "द्व्यणुक, त्र्यणुक, चतुरणुक" इत्यादि बनना वही पारिमाण्डल्य = परमाणुओंके कार्य हैं। ऐसे अनन्त परमाणुओंका मिलाप होते होते पृथ्वी, जल, तेज, वायु ये चारों तत्त्व महत्रूप विस्तारयुक्त बन जाते हैं ॥ मन विषय कहा है:—

"[illegible] मनः ।
तच्चप्रत्यात्मनियत्वादनन्तंपरमाणुरूपं नित्यं च ॥ तर्क संग्रह, खण्ड-१ ॥"

अर्थः—सुख-दुःखादि उपलब्धि-ज्ञानका साधन-और

शार्ङ्गधरसंहिता प्रथम खण्डे अध्याय १ । श्लोक १५-१६ में ऐसा भी लिखा है:— त्रसरेणुका परिमाणः—"त्रसरेणुर्बुधैः प्रोक्तस्त्रिंशता परमाणुभिः ॥ त्रसरेणुस्तु पर्यायनाम्ना वंशी निगद्यते ॥ १५ ॥"—तीस परमाणुका १ त्रसरेणु होता है, और वंशी शब्द उसी त्रसरेणुका पर्यायवाचक शब्द है, परमाणु अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं, वह स्वभावसे अथवा अणुभाव करके जाने जाते हैं, नेत्रों करके नहीं प्रतीत होते ॥ १५ ॥ परमाणुके लक्षणः—

"जालान्तरगते भानौ यत् सूक्ष्मं दृश्यते रजः । तस्य त्रिंशत्तमो भागः परमाणुः स उच्यते ॥ १६ ॥"—जाली झरोखोंमें सूर्यकी किरण पड़नेसे उन किरणोंमें जो धूलके बहुत बारीक कण उड़ते दिखते हैं, उस एक-एक कण (रज) का जो तीसवाँ भाग है, उसको परमाणु कहते हैं। कोई इसको आगे वंशीके लक्षणको कहता है; जैसे:—"जालान्तरगतैः सूर्यकरैर्वंशी विलोक्यते" अर्थात् जाली झरोखों में जो सूर्यकी किरणोंमें रज उड़ती है उसको वंशी कहते हैं ॥ १६ ॥

"जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः ॥ प्रथमं तत्प्रामाणानां त्रसरेणुं प्रचक्षते ॥ १३२ ॥" मनुस्मृति, अध्याय ८ । श्लोक १३२ ॥

—झरोखेमें होकर आए हुए सूर्यके किरणोंमें जो सूक्ष्म रज दीखता है, उस रजके परिमाणोंमें पहले को त्रसरेणु कहते हैं ॥ १३२ ॥

इन्द्रिय होवै, वह 'मन' कहाता है। वह प्रत्येक जीवात्माके साथ भिन्न-भिन्न रहनेसे अनन्त जीवात्माओंके साथ अनन्त हैं। तिनके संयोगसे ही सर्व जीवात्माओंको ज्ञान होता है। मन एक परमाणुरूप, निराकार, अति सूक्ष्म द्रव्य है ॥

इन प्रमाणोंसे पूर्व कल्पके प्रलय बाद पुनः जगत्की उत्पत्ति समय विभु परमेश्वर इच्छा करके कुम्हारवत् जगत्को रचनेवाला 'निमित्त कारण' है। मन परमाणुरूप निराकार, अति सूक्ष्म या विभुरूप मन, आकाश, दिशा, ये चार द्रव्य चक्र, डण्डावत् 'साधारण कारण' हैं। और पृथ्वी, जल, तेज, वायु, इन चार तत्त्वोंके अनन्त परमाणुओंको 'उपादानकारण' माने हैं।

वैशेषिक मतमें मनको विभु और न्याय मतमें उसे निराकार, अति सूक्ष्म एकदेशी माना है। वैशेषिक मतमें पृथ्वी, जल, तेज, वायु, इन चार तत्त्वोंके अनन्त परमाणु साकार, और न्याय मतमें तिनको निराकार माने हैं। वैशेषिक मतमें विभु और परमाणुरूप साकार द्रव्योंका उत्पत्तिके पूर्व तन्तु-पटवत् समवाय सम्बन्ध माना है। न्याय मतमें सर्व निराकार द्रव्योंका उत्पत्तिके पूर्व संयोगसम्बन्ध माना है। वैशेषिक मतमें जगत्की उत्पत्तिके आदिकालमें अनन्त जीवात्माओंके अदृष्ट संस्कार रहनेसे जगत्की उत्पत्ति मानी है। और न्यायमतमें ईश्वरकी इच्छासे सर्व परमाणुओंमें क्रिया प्रकट होकर, द्वयणुक, त्र्यणुकादि परिणाम बनते-बनते महत् स्थूल पृथ्वी आदि चारों तत्त्व और देहधारी जीवात्मा प्रकट हो जाते हैं। फिर प्रलय समय ईश्वरकी ही इच्छासे सर्व परमाणुओंमें क्रियाएँ प्रकट होकर सबोंके न्यारे-न्यारे विभाग हों, विशेष पदार्थ

से अनन्त परमाणुरूपसे पूर्ववत् स्थिर रह जाते हैं; (ऐसे ही व्यास सूत्र ११ । १२ । अध्याय २ । पाद २ में कहा है ।) ❀ ॥

इन प्रमाणोंसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु, इन चार द्रव्योंके अनन्त परमाणु मिट्टीवत् उपादान कारण हैं । उन उपादान और पूर्वोक्त साधारण कारण द्रव्योंका संयोग, समवाय-सम्बन्ध करनेवाला निमित्त कारण कर्त्ता ईश्वर है, ऐसा मैं मानता हूँ ? ॥

(३६) उत्तरः—ईश्वर जगत्की उत्पत्ति ही नहीं करता, सुनिये ! तहाँ कहा हैः—

"असङ्गो न हि सज्जते ॥"–बृहदारण्य उपनिषद् । अ० ४ । ब्रा० ५ । म०१५ ॥

❀ "महद्दीर्घवद्वा ह्रस्वपरिमण्डलाभ्याम् ॥ ११ ॥"—ब्रह्मसूत्र, अध्याय, २। पाद २ । सूत्र ११ ॥—परिमण्डल नाम परमाणुका है, और तिसके परिमाणका नाम पारिमाण्डल्य है । जैसे नैयायिक मतमें परिमण्डलसे अणु ह्रस्व परिमाणवाला द्व्यणुक उत्पन्न होता है; और तद्‌गत पारिमाण्डल्य उत्पन्न नहीं होता है; और द्व्यणुकसे महत् दीर्घ परिमाणवाला त्र्यणुक उत्पन्न होता है। द्व्यणुकगत ह्रस्वपरिमाण उत्पन्न नहीं होता है । तैसे ही चेतन ब्रह्मसे जगत् उत्पन्न होता है, और ब्रह्मगत चैतन्य उत्पन्न नहीं होता है ॥ ११ ॥ "उभयथापि न कर्मातस्तदभावः ॥ १२ ॥"–ब्रह्मसूत्र, अध्याय २ । पाद २ । सूत्र १२ ॥–सृष्टिके आदिकालमें सर्व परमाणुके विषै कर्म उत्पन्न होता है, तिसके अनन्तर दो-दो परमाणुका संयोग होके द्व्यणुक उत्पन्न होते हैं, और तीन-तीन द्व्यणुकका संयोग होके त्र्यणुक उत्पन्न होते हैं। इस रीतिसे और भी चतुरणुकादि उत्पत्ति क्रमसे महापृथिवी, महाजल, महातेज, महावायु, उत्पन्न होते हैं; और प्रलयके आदि कालमें सर्व परमाणुमें कर्म होके द्व्यणुकादिकोंका विभाग होके सर्व पृथिव्यादिकोंका नाश होता है । ऐसे वैशेषिक कहते हैं; सो कहना ठीक नहीं। क्योंकि सृष्टिके आदिकालमें परमाणुके कर्मका कोई निमित्त नहीं, अभावसे संयोग-विभाग नहीं हो सकते। संयोग-विभाग के अभावसे निमित्तके सृष्टि और प्रलय भी नहीं हो सकते ॥ १२ ॥

अर्थः—परमेश्वर असङ्ग रहनेसे वह जगत्की उत्पत्ति नहीं करता ॥

इस प्रमाणसे माने हुए ईश्वरमें जगत्के पदार्थोंका ज्ञान, इच्छा और प्रयत्न भी नहीं है ॥ और भी कहा हैः—

"निष्कलं निष्क्रियँ शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम् ॥ १९ ॥"

॥ श्वेताश्वतर उपनिषद् । अध्याय ६ । मन्त्र १९ ॥

अर्थः—इच्छा, क्रिया, गुण, जाति, सम्बन्ध तथा अवयव रहित, शान्त स्वरूप परमेश्वर है ॥

इन प्रमाणोंसे ईश्वर जगत्की रचना ही नहीं करता । सत्य-न्यायसे देखिये ! तो ईश्वर मानना यह मनुष्योंकी ही कल्पना है । क्योंकि जीव ही परमेश्वर वा परमात्मा है; (ऐसा पूर्वके प्रश्न १७ और प्रश्न २९ के उपनिषद्में कहा है) । यदि ईश्वर भी मानेंगे, तो तिसके गुण विषय कहा हैः—

"संख्यादयः पञ्च बुद्धिरिच्छा यत्नेपि चेश्वरे ॥ ४ ॥"

॥ न्यायसिद्धान्त मुक्तावलि । परिच्छेद १ । कारिका ४ ॥

अर्थः—संख्यादि पञ्च अर्थात् संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग और विभाग तथा बुद्धि, इच्छा, प्रयत्न, ये अष्ट गुण ईश्वरमें हैं । तिनमें बुद्धिरूप ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न, ये तीन नित्य गुण माने हैं ॥

जीवात्माके गुण विषय तर्क संग्रहके प्रथम खण्डमें कहा हैः— १. संख्या । २. परिमाण । ३. पृथक्त्व । ४. संयोग । ५. विभाग । ६. बुद्धिरूप ज्ञान । ७. सुख । ८. दुःख । ९. इच्छा । १०. द्वेष । ११. प्रयत्न । १२. धर्म । १३. अधर्म । और १४. भावना । ये चौदह गुण जीवात्मामें माने हैं । परन्तु सर्व अनित्य माने हैं ॥

तत्त्वानुसन्धानके प्रथम परिच्छेदमें कहा ❀ हैः—जीवात्माओंमें

❀ तत्त्वानुसन्धान, पृष्ठ ५८ में लिखा है ॥

बुद्धिरूप ज्ञान मनके संयोगसे है, परन्तु स्वरूपसे वे सब जड़ हैं ॥

विचार सागरके षष्ठ स्तरङ्गमें कहा ❀ हैः—

सर्व जीवात्माओंके सुषुप्ति अवस्थाओंमें अपने-अपने मनोंका संयोग छूटनेसे अथवा मन पुरीतत् नामक नाड़ीमें प्रवेश करनेसे वे ज्ञान हीन, जड़ रहते; और मोक्ष दशामें स्वयं जड़ ही रहते हैं ॥

इन प्रमाणोंसे ईश्वरात्माका ज्ञान नित्य माना है। परन्तु आत्मा एक ही द्रव्य मानके सर्व जीवात्मा स्वरूपसे जड़ और निराकार मनोंके संयोगसे वे ज्ञानवान् बनते, ऐसा कहना, यह भ्रमिक अज्ञानी मनुष्यके तुल्य कथन है। वैशेषिक और न्याय-शास्त्रके प्रकटकर्त्ते कणाद और गौतम ऋषि जीवात्माओंको स्वभावसे जड़ माननेवाले आप निराकार या विभु मनोंके संयोगसे ज्ञानवान् बने; परन्तु निराकार या विभु मनोंका और विभु जीवात्माओंका संयोग कैसे होगा? फिर दूसरा ईश्वरात्मा सर्वज्ञ कर्त्ताकी और कल्पना किये। परन्तु आत्मा एक ही नित्य द्रव्य माने हैं; इसलिए ईश्वर भी मनके संयोग बिना ज्ञानहीन—स्वरूपसे जड़ तत्त्वरूप ही सिद्ध होता है। और पूर्वके प्रश्न ३ के प्रमाणसे जड़में ज्ञान और जगत्की उत्पत्ति करनेका सामर्थ्य नहीं रहनेसे ईश्वर असिद्ध और जगत् अनादि सिद्ध ठहरता है। देखिये! सुषुप्तिमें "मैं सुखमें सोया था" ऐसी अन्तःकरणरूप उपाधि वहाँ रहनेसे निर्विकल्परूप स्थिरतासे सुखानुभव संस्कारका स्मृति ज्ञान सर्व मनुष्योंको जाग्रत्में रहता है। इसीसे जीवात्माओंको मनोंके संयोगसे ज्ञान नहीं होता। परन्तु उनमें स्वभावसे ही स्वयं ज्ञान धर्म है, ऐसा सिद्ध होता है। इसीसे वे स्वयं जड़ स्वरूप नहीं हैं। परन्तु चैतन्य, अर्थात्

❀ विचार सागर, पृष्ठ ३२९—३३० में लिखा है ॥

जड़को चेताने वाले और सबको जानने वाले स्वयं चैतन्य जीव हैं; ऐसा जानिये ! ॥

पूर्वके प्रश्न ३२ के श्रुतिमें कहा हैः—प्रारब्ध कर्म सम्पूर्ण भोगे बिना सर्व जीवोंके शरीर एक ही समय नहीं छूटते । इसलिए जगत्का प्रलय नहीं ठहरनेसे कर्त्ता ईश्वर मानना असिद्ध है ॥

यदि मनोंके संयोगसे सर्व जीव ज्ञानवान् बनते, ऐसा माने; तो मनको ही ज्ञान स्वरूप, चेतन मानना चाहिए ॥

परन्तु मन विषय कहा हैः—

"तन्मनोऽकुरुत ॥"–बृहदारण्य उपनिषद्, अध्याय १ । ब्राह्मण २ । मन्त्र १॥

अर्थः—परमात्माने मन उत्पन्न किया ॥

"मन" इन्द्रिय है, ऐसा प्रश्नमें कहा है, इसलिए उत्पत्तिवाली मन इन्द्रिय नित्य द्रव्य नहीं है । परन्तु मन नाशवान् जड़ ही ठहरती है ॥ अथवा कहा हैः—

श्लोकः—"भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ॥
अहङ्कार इतीयं मे, भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ ४ ॥"
॥ भगवद्गीता, अध्याय ७ । श्लोक ४ ॥

अर्थः—श्रीकृष्ण कहते हैं कि, पाँच तत्त्व, मन, बुद्धि और अहङ्कार, ये अष्टधा भिन्न–भिन्न पदार्थ मिलके मेरी प्रकृति है ॥

पञ्चीकरणमें मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार इन चारोंको अन्तःकरणकी वृत्ति कहा है ❀ ॥

इन प्रमाणोंसे 'मन' और 'बुद्धिरूप' ज्ञान जड़ और नाशवान हैं ॥

द्रव्य विषय कहा हैः—

"क्रियागुणवत्समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम् ॥ १५ ॥"
॥ वैशेषिक सूत्र १५ । अध्याय १ । आह्निक १ ॥

❀ पञ्चीकरण सटीक पृष्ठ ६३—६४में वर्णन है ॥

अर्थः—जिसमें 'क्रिया' और 'गुण' समवायी–नित्य–सम्बन्धसे रहै, वह द्रव्यका लक्षण है ॥

परन्तुः—आकाश, काल और दिशारूप द्रव्योंमें एक 'गुण' ही लक्षण माना है। और पृथ्वी, जल, तेज, वायु, इन चार द्रव्योंके अनन्त परमाणुओंको नित्य मानके प्रलय समय वे सब क्रिया रहित रह जाते। तैसे ही अनन्त, व्यापक जीवात्मारूप द्रव्यमें बुद्धिरूप ज्ञान गुण तथा क्रियाएँ दोनों गुण मुक्तिमें नहीं रहते, ऐसा माने हैं। इसलिए क्रिया और गुणवाले द्रव्य हैं, यह लक्षण असम्भव दोषसे व्याप्त है ॥ आकाशके विषयमें कहा हैः—

"निष्क्रमणं प्रवेशनमित्याकाशस्य लिङ्गम् ॥ २० ॥"

॥ वैशेषिक सूत्र २० । अध्याय २ । आह्निक १ ॥

अर्थः–जिसमें प्रवेश और निकलना होता है, वही आकाशका लक्षण है ॥

परन्तु खेलते हुए रबड़के बड़े गेंदमें वायु पिचकारीसे भरके निकाल देते हैं। लोहेमें अग्नि प्रवेश होकर निकल जाती है। मिट्टी और जल पात्रोंमें भरके निकाले जाते हैं। इसलिए प्रवेश करना और निकलना उक्त चारों तत्त्वोंमें हैं। परन्तु विभु आकाशमें नहीं। केवल अवकाश, शून्य वा पोल स्वरूप बतानेके लिये आकाश तत्त्व नाम धरा है। अन्य चारों तत्त्वोंके नित्य, अनन्त परमाणुओंने अवकाशरूप आकाशकी जगह रोक रक्खा है। आकाशमें तिन परमाणुओंको निकालनेकी शक्ति नहीं है। क्योंकि वह अक्रिय है। परन्तु अनन्त, छिद्ररूपसे तत्त्वोंके अनन्त परमाणुओंके सन्धियोंमें सर्वत्र पिण्ड–ब्रह्माण्डमें आकाश एकदेशी ही रहा है। और अखण्ड, अनन्त जीवोंके बाहर वह स्थित है; उसे एक बीताभर भी न्यारा विवेकसे कोई दिखला नहीं सकते हैं। परन्तु अन्य तत्त्व वातावरणमें

ही व्यवहार कर रहे हैं । अक्रिय आकाशका क्रियावान् 'शब्द' गुण माना है; (उसे स्मृति प्रमाण पूर्वके प्रश्न ६ में देखिये !)। परन्तु वर्त्तमानमें "फोनोग्राफ" गाना सुनानेवाला यन्त्र बना है । तिसमें शब्दोंको भीतर भरके निकाल देते हैं । इसलिए सूक्ष्माकार "शब्द" यह क्रियारूप गुण भी वायु आदि चार तत्त्वोंके संयोगसे हैं; केवल शून्य आकाशसे नहीं । सदैव गतिवान् तथा अन्य तत्त्वोंसे मिश्रित वायु रहनेसे तिसमें सामान्य—विशेषरूपसे क्रियारूप "शब्द" गुणकी सदोदित प्रतीति हुआ करती है । इसका विशेष वर्णन पूर्वके प्रश्न ६ में हुआ है ॥

तर्क संग्रहके प्रथम खण्डमें काल और दिशाका स्वरूप कहे हैं:—

"अतीतादिव्यवहारहेतुः कालः ॥"—तर्क संग्रह, खण्ड–१ ॥

अर्थः—भूत, वर्त्तमान और भविष्यत् व्यवहारका कारण काल है ॥

"प्राच्यादिव्यवहारहेतुर्दिक् ॥"—तर्क संग्रह, खण्ड–१ ॥

अर्थः—पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तरादि व्यवहारका कारण दिशा है ॥

परन्तुः—प्रश्न उपनिषद्के प्रथम प्रश्नमें कहा है; कि ❀ 'दिशा' और 'काल' मुख्य सूर्यसे सिद्ध होते हैं। क्योंकि सूर्योदय

❀ अथादित्य उदयन्यत्प्राचीं दिशं प्रविशति तेन प्राच्यान् प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते । यद्दक्षिणां यत्प्रतीचीं यदुदीचीं यदधो यदूर्ध्वं यदन्तरा दिशो यत्सर्वं प्रकाशयति तेन सर्वान् प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते ॥ ६ ॥ प्रश्नोपनिषद्, प्रथम–प्रश्न, मन्त्र ६ ॥ —रात्रिके अनन्तर उदय होता हुआ सूर्य जो पूर्व दिशामें प्रवेश करता है; उससे पूर्व दिशाके प्राणोंको अपनी किरणोंमें धारण करता है, (उसी प्रकार) जो दक्षिण दिशाको, जो पश्चिम दिशाको, जो उत्तर दिशाको, जो नीचेके लोकोंको, जो ऊपरके लोकोंको, जो दिशाओंके बीचके भागों (कोणों) को, (और) जो अन्य सबको प्रकाशित करता है; उससे समस्त प्राणोंको अर्थात् सम्पूर्ण जगत्के प्राणोंको, अपनी किरणोंमें धारण करता है ॥ ६ ॥

जहाँ होता है, वहीं पूर्व दिशा मानी है। दिन, रात्रि, मास, वर्षादि काल भी मुख्य सूर्यसे ही सिद्ध हो रहे हैं। इसलिए सूर्य, चन्द्र और पृथ्वीके सदैव क्रियाओंसे 'दिशा' और 'काल' ठहरनेसे वे दोनों नित्य द्रव्य सिद्ध नहीं होते हैं। इसीसे तिनको नित्य मानना अन्यायका कथन है। सूर्य, चन्द्र और पृथ्वीकी क्रिया विषय आगे कहेंगे ॥

न्याय मतमें यद्यपि निराकार और विभु काल, दिशा, आकाश और आत्मा इन चार द्रव्योंका अन्य सूक्ष्म-सूक्ष्म एकदेशी द्रव्योंसे नित्य संयोग सम्बन्ध माना है। तथापि निराकार और साकार पदार्थोंका संयोग-वियोगरूप सम्बन्ध विवेकसे प्रतीत नहीं होता। इसलिए तिनको विभु, नित्य द्रव्य मानना असम्भव दोषयुक्त है ॥

अथवाः—वे चारों विभुरूप द्रव्य एक ही स्थानमें प्रतीत नहीं होनेसे तिनको पृथक्-पृथक् नित्य द्रव्य मानना नहीं बनता है। क्योंकि एक निराकार व्यापक द्रव्यमें वैसा ही अन्य द्रव्य समा नहीं सकता; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न ६ में देखिये !)। यदि अनेक, विभु जीवात्माओंका परस्पर संयोग सम्बन्ध अनादिसे रहा है, तो एकके दुःख-सुखका अनुभव दूसरोंमें प्रतीत नहीं होता। इसलिए सर्व जीवात्मा किसीके कार्य नहीं रहनेसे देहधारी एकदेशी, सर्वके साक्षी, भिन्न-भिन्न ही सिद्ध होते हैं। परन्तु वे स्वयं ज्ञानस्वरूप अनेक ही हैं, इसका विशेष वर्णन आगे होगा ॥

वैशेषिक मतमें सर्व द्रव्योंका सर्वके साथ अनादि समवाय-नित्य-सम्बन्ध रहनेसे न्यारे-न्यारे जीवात्मा, शरीर, मन, इन्द्रियाँ, गुण, कर्म इत्यादिकोंकी पहिचान कभी नहीं होगी। कोई भी

जीवात्माका कर्म कोई भी भोगेगा; और मुक्तजीव फिर कर्मोंमें बन्ध हो जायेंगे। सबोंका समवाय सम्बन्ध रहनेसे जगत्का प्रलय भी नहीं होगा ॥

इस प्रकारसे वैशेषिक और न्याय दोनों मत अन्यायसे व्याप्त हैं। इन शास्त्रकर्ता ऋषियों द्वारा विभुरूप ईश्वर कल्पना किया हुआ सत्यन्यायसे ठहरता ही नहीं। यदि ईश्वर भी मानेंगे, तो वह इच्छा, बुद्धिरूप ज्ञान और प्रयत्न, ये नित्य तीन गुणयुक्त रहनेसे देहधारी, एकदेशी, एक मनुष्य ही ठहरनेसे सर्व जगत् अनादि सिद्ध है। यदि उसको निराकार मानेंगे, तो भी ऐसा कर्त्ता असिद्ध है; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न ५ और प्रश्न ६ में देखिये !)। यदि कर्त्ता देह इन्द्रियाँ बिना ही जगत्को रचता है ? ऐसा मानेंगे, तो वह भी असम्भव है; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न ३१ में देखिये !)। इसलिए जगत्के आरम्भ समय नित्य, अनन्त परमाणुओंकी नित्य क्रियाओंको प्रकट कराय, ईश्वरसे जगत्की उत्पत्ति मानना, असम्भव दोषयुक्त है ॥

न्यायमतमें सर्व परमाणुओंको निराकार मानना अयोग्य है। क्योंकि निराकार परमाणुओंसे साकार दृश्य पृथ्वी आदि तत्त्व कैसे प्रकट होंगे ? यदि वैशेषिक और न्याय दोनों मतोंमें अनन्त परमाणुरूपी नित्य द्रव्योंमें स्वभावसे नित्य क्रियाएँ मानी हैं, तो क्रियाएँ सर्वत्र प्रवृत्ति वा निवृत्तिरूप हैं या प्रवृत्ति-निवृत्ति दोनोंरूपसे हैं। प्रथम पक्षमें परमाणुओंमें प्रवृत्तिरूप वे क्रियाएँ मानेंगे, तो जगत्का प्रलय होना असम्भव है। दूसरे पक्षमें निवृत्तिरूप वे तिनमें क्रियाएँ मानेंगे, तो जगत्की उत्पत्ति होना

असम्भव है। अथवा प्रवृत्ति-निवृत्ति इन दोनों प्रकारसे वे तिनमें क्रियाएँ मानेंगे, तो परस्पर विरोध आता है। यदि ईश्वरकी इच्छासे तिनमें प्रवृत्ति और निवृत्तिरूप दोनों प्रकारकी क्रियाएँ होती हैं; ऐसा वे मानेंगे, तो द्रव्योंमें सदैव नित्य क्रियाएँ हैं, यह कहना ही नहीं बनता है। यदि नित्य विशेष अनेक पदार्थ तिनके क्रियाओंको बन्द रखनेवाले वे मानेंगे, तो ईश्वरकी निर्बलता दिखाती है। इसलिए जगत् उत्पत्ति-प्रलय रहित अनादि ही ठहरता है ॥

प्रश्नके प्रमाणसे न्याय मतमें "द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, अभाव" ये सात पदार्थ और वैशेषिक मतमें अभावको छोड़के अन्य छः पदार्थ ही जगत्में मुख्य माने हैं। परन्तु काल, दिशा और मन, ये तीन नित्य द्रव्य युक्ति और प्रमाणोंसे पूर्वमें असिद्ध ठहरे हैं। तिनको छोड़के और शून्यरूप आकाशके नित्य द्रव्यमें "शब्द" गुणको त्याग कर अन्य पाँच नित्य द्रव्योंमें तिनके गुण, कर्म, तिनमें सामान्य-विशेष धर्म और गुण-गुणी आदि समवाय-नित्यसम्बन्ध-ऐसे पाँच पदार्थ भिन्न और नित्य मानना यथार्थ न्याय नहीं। क्योंकि द्रव्योंका ग्रहण करनेसे तिनके नित्य धर्मरूप माने हुए उक्त नित्य पदार्थोंका ग्रहण सहज ही हो जाता है। तैसे ही पृथ्वी, जलादि द्रव्योंका और तिनके कार्यरूप देहें तथा अनेक पदार्थोंका परस्पर-एकमें एक-का अभाव रहा ही है, उसे भी नित्य पदार्थ मानना न्यायमतमें असम्भव दोषयुक्त है। इसलिए पाँच तत्त्व और अनन्त जीवात्मा, ये छः द्रव्य ही नित्य हैं, और गुण, कर्मादि उक्त छः या पाँच नित्य मुख्य पदार्थ मानना पूर्वोक्त दोनों मतोंमें अन्यायका कथन है ॥

वैशेषिक और न्याय मतोंमें नित्य निराकार, अनन्त जीवात्माओंको अनाजके दानाओंके ढेरीवत् एक–पर–एक लदे हुए संयोगवान् या समवाय सम्बन्धवान्, विभु मानना असम्भव दोषयुक्त है। यदि सर्व शरीरोंमें जीवात्मा व्यापक रहे हैं, तो बड़े देहोंमें बड़े आकारयुक्त और छोटे देहोंमें छोटे आकारयुक्त तथा संकोच–विकाशवान् ठहरनेसे तिनको अनित्य और जड़ ही मानना होगा। यदि सर्व जीवात्माओंको वे अनित्य तथा जड़ मानेंगे, तो एक शरीर, मन सहित पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, ये छः तिनके षट् विषय, तिनमें षट् प्रकारका ज्ञान, सुख और दुःख, ऐसे २१ दुःखोंसे मुक्ति ठहराने वाले गौतम ऋषि, न्याय शास्त्र बनानेका वृथा ही परिश्रम किये, ऐसा जानिये ! यदि सर्व जीवात्मा देहोंमें व्यापक सत्य ही हैं, तो स्वप्न, सुषुप्ति, मूर्च्छा और समाधि, ये अवस्थाएँ तिनको होने ही नहीं चाहिए ? परन्तु वे अवस्थाएँ होती ही हैं। इसलिए सर्व जीवात्मा किसीके कार्य रहित, एकदेशी और व्यापकको जाननहार ज्ञानस्वरूप तिनको अनेक मानना ही सत्यन्याय कहाताहै॥

पूर्वोक्त प्रमाणोंसे नौ द्रव्योंमें सूक्ष्म अनन्त परमाणुरूप पृथ्वी, जल, तेज, वायु, ये चारों नित्य, तत्त्व 'उपादान-कारण' हैं। तथा परमाणु वा विभुरूप मन, आकाश, काल, दिशा, ये नित्य द्रव्य 'साधारण-कारण' हैं। और अदृश्य कर्म संस्कार सहित स्वयं इच्छा–से कर्म फल देनेमें जीवात्माओंके शरीरोंका समवाय-सम्बन्ध करके जगत्को रचनेवाला ईश्वरको 'निमित्त-कारण' कर्त्ता माना है। वह देहधारी मनुष्योंकी कल्पना या पण्डित लोगोंका धोखारूप भ्रमिक ज्ञान है, ऐसा जानिये ! वैशेषिक और न्याय इन दोनों मतोंको भ्रमरूप जानके अब आप त्याग दीजिये ! ॥

॥ ❀ ॥ आर्यसमाज मत वर्णन ॥ ❀ ॥

प्रश्न (३७) यदि वैशेषिक और न्याय मतसे ईश्वर कर्त्ता नही ठहरता, तो आर्यसमाजके आचार्य दयानन्दसरस्वती नामके स्वामीजी के मतसे 'आरम्भवाद' और 'परिणामवाद'से कर्त्ता विषय कहा है:—

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ॥ २० ॥"

॥ ऋग्वेद मण्डल १ ॥ सूक्त १६४ । मन्त्र २० ॥

अर्थः—(द्वा) जो ब्रह्म और जीव दोनों, (सुपर्णा) चेतनता और पालनादि गुणोंसे सदृश, (सयुजा) व्याप्य-व्यापक भावसे संयुक्त, (सखाया) परस्पर मित्रता युक्त, सनातन-अनादि हैं । और (समानम्) वैसा ही, (वृक्षम्) अनादि मूलरूप कारण और शाखारूप कार्ययुक्त वृक्ष अर्थात् जो स्थूल होकर प्रलयमें छिन्न-भिन्न हो जाता है, वह तीसरा (प्रकृति) अनादि पदार्थ है । इन तीनोंके गुण, कर्म और स्वभाव भी अनादि हैं ॥

इस प्रमाणसे आरम्भ-वाद और परिणाम-वाद दयानन्द सरस्वतीजी मानते हैं । और भी उपनिषदोंमें कहा है:—

"अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः ॥ ५ ॥"

॥ श्वेताश्वतर उपनिषद् । अध्याय ४ । मन्त्र ५ ॥

अर्थः—जो जन्म रहित लाल, सफेद और कालारूप अर्थात् रज, सत्त्व और तमोगुण वाली प्रकृति है; वही स्वरूपाकारसे बहुत प्रजारूप हो जाती है । अर्थात् प्रकृति परिणामिनी रहनेसे अवस्थान्तर (दूसरारूप) हो जाती है । पुरुष ईश्वर अवस्थान्तर नहीं होता, सदोदित कूटस्थ-अलग-निर्विकार रहता है ॥

"तत्सृष्ट्वा ॥ तदेवानुप्राविशत् ॥ तदनुप्रविश्य ॥"

॥ तैत्तिरीयोपनिषद् मध्ये-ब्रह्मानन्द वल्ली (२) उपनिषद् । अनुवाक ६ ॥

अर्थः—परमेश्वर प्रवेश किये हुए जीवोंके साथ अनुप्रवेश अर्थात् पीछेसे प्रवेश करता है ॥

"सदेव सोम्येदमग्र आसीत् ॥" छान्दोग्य उपनिषद्, अध्याय ६। खण्ड २। मन्त्र १॥

अर्थः—हे श्वेतकेतो ! यह जगत् उत्पत्तिके पूर्व सत्यरूपसे ही रहा। अर्थात् जैसे दिन–रात्रिका अन्त नहीं, तैसे ही जगत्का अन्त नहीं है। उत्पत्ति–प्रलयका सृष्टि चक्र अनादिकालसे प्रवाह–रूप चला ही आता है ॥ वेदमें कहा है:—

"मनुष्या ऋषयश्च ये । ततो मनुष्या अजायन्त ॥"

॥ यजुर्वेद और उसके ब्राह्मणमें यह लिखा है ॥

अर्थः—जैसे चुम्बककी सत्तासे लोहा चलता है, तैसे ही परमेश्वरने अपनी स्वयं शक्तिसे जीवोंके कर्मानुसार सृष्टिकी उत्पत्तिके आदिमें अनेक अर्थात् सैकड़ों, सहस्रों, बड़े–बड़े तरुण मनुष्य उत्पन्न किये, और देखनेसे निश्चय होता है कि, अनेक मनुष्य मा–बापके सन्तान हैं ❀ ॥

इन प्रमाणोंसे परमेश्वर, अनेक जीव और अनन्त पदार्थकी उत्पत्तिका कारण प्रकृति, ये तीन पदार्थ अनादि हैं। इसलिए मैं परमेश्वरको जगत्की उत्पत्ति और प्रलय कर्त्ता मानता हूँ ? ॥

(३७) उत्तरः—आप परमेश्वर, अनेक जीव, और प्रकृति, ये तीन पदार्थ अनादि मानते हैं। परन्तु जैसे राजा, प्रजा और अनेक देशयुक्त राजाका राज्य, इन तीनोंको प्रत्यक्ष सब देखते हैं। तैसे ही सुख–दुःखादि ज्ञान जाननेवाले, अनेक क्रियाएँ करने–वाले, देहधारी, अनेक जीव और पाँच तत्त्वोंका विस्तारयुक्त ब्रह्माण्ड, इन दोनोंको सब देखते हैं। परन्तु प्रकृति और निराकार

❀ सत्यार्थ प्रकाश, समु० ८ में प्रश्न १७ के उत्तरमें पृष्ठ २४४ में लिखा है ॥

व्यापक परमेश्वरका विवेक करके भी किसीको निश्चय नहीं होता है। प्रकृति पदार्थ गुणी वस्तु छोड़के त्रिगुणरूपसे नित्य मानना यह युक्ति, प्रमाण और अनुभवसे सिद्ध नहीं होता है; (ऐसा पूर्वके प्रश्न ३५ में विस्तारसे कहा है, उसको देखिये !)। इसलिए पाँच तत्त्व छोड़के प्रकृति कहीं भिन्न वस्तु है ही नहीं। और रज, सत्त्व, तम, ये त्रिगुणरूप क्रियाएँ तत्त्वोंमें और जीवोंकी सत्ताओंसे शरीरोंमें हुआ करती हैं; (उसे भी प्रमाण पूर्वके प्रश्न ३५ में देखिये !) ॥

यदि परमेश्वर, जीव और प्रकृति, ये तीन स्वरूपसे नित्य पदार्थ माने गये, तो तीनोंको पृथक्–पृथक् एकदेशी ही मानना चाहिये। परन्तु परमेश्वर सर्वत्र अन्तर–बाहर व्यापक और जीव तथा प्रकृति व्याप्य पदार्थ, ऐसा व्याप्य–व्यापक सम्बन्ध मानना नहीं चाहिये। परमेश्वर कर्त्ताका नाममात्र सुनते हैं; परन्तु उसका निश्चय प्रत्यक्ष और विवेकसे किसीको भी नहीं होता है ॥

तहाँ कहा है:—

"यतो वाचो निवर्तन्ते ॥ अप्राप्य मनसा सह ॥"

॥ तैत्तिरीयोपनिषद् मध्ये–ब्रह्मानन्दवल्ली (२) उपनिषद् । अनुवाक ४ ॥

अर्थः—परमेश्वर वाचा, मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ इत्यादिकोंसे जाना जाता नहीं ॥

अथवाः—निराकार व्यापक या स्वयंप्रकाशी व्यापक जगत्–कर्त्ता मानना असिद्ध है; (तिसको प्रमाण पूर्वके प्रश्न ५ । ६ और प्रश्न ११ में देखिये !) ॥

इन प्रमाणोंसे परमेश्वर कल्पित है। और उसकी कल्पना करनेवाले मनुष्य जीव ही श्रेष्ठ हैं, ऐसा निश्चय होता है ॥

सत्यार्थ प्रकाशके सप्तम समुल्लासमें लिखा ❀ है:—जीव अल्पज्ञ, अल्प वा सूक्ष्म और परमेश्वर सूक्ष्मतर—अतिसूक्ष्म, ऐसा जीव और परमेश्वरका व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध है। परन्तु चेतन जीवोंको अखण्ड स्वरूप—नित्य—माने हैं। इसलिए वे परस्पर व्याप्य—व्यापक भावसे नहीं रहते। अर्थात् चेतन—में—चेतन मिलकर एक ही स्वरूप नहीं बनते हैं। फिर चेतन ईश्वर सर्व चेतन जीवोंमें व्याप्त कैसे रहेगा ? यदि ईश्वरको जीवोंमें लोहा—अग्निवत् व्याप्त भी माने, तो उसको सर्वज्ञ और जीवोंको अल्पज्ञ क्यों माने हैं ? मुक्तिके लिए फिर आर्यसमाजी जीवोंको उपदेश क्यों दे रहे हैं ? विशेष अग्नि लोहेमें प्रवेश होकर निकल जाती है। क्योंकि लोहा स्थूलाकार और अग्नि सूक्ष्माकार है। परन्तु निराकार ईश्वरको 'न्यारा' और 'व्यापक' ठहराना भ्रमिक ज्ञानका कथन है। अथवा व्यापक और न्यारा ईश्वर मानना यह 'बाँझ—पुत्रवत्' व्याघात—दोषका कथन है। कर्त्ता व्यापक और न्यारा मानना असिद्ध ठहरा है; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न ८—९ और प्रश्न १० में देखिये !)। यदि ईश्वरको जीवोंमें व्याप्त भी माने, तो कसाई, चोर, वेश्यादि हत्यारे और पापी जीवोंको बुरे कर्मोंके करनेमें वह क्यों नहीं रोकता ? क्या वह कभी—कभी शक्तिहीन भी बन जाता है। अथवा निराकार आकाशमें निराकार ईश्वर व्याप्त है, ऐसा माने, तो ईश्वरमें आकाश व्याप्य या आकाशमें ईश्वर व्याप्य, कैसा व्याप्य—व्यापक सम्बन्ध मानना चाहिए ? एकके कन्धेपर एक बैठे हैं क्या ? बड़ी आश्चर्यकी बात लिखी है। निराकार, पोल स्वरूप आकाशकी सीमा तो भी कैसी करना ? और उसके परे ईश्वर है,

❀ सत्यार्थ प्रकाश, समु० ७ में प्रश्न २२ के उत्तरमें पृष्ठ २०९ में देखिये ! ॥

ऐसा अनुभव भी कैसे लेना ? इसलिए कर्त्ता ईश्वर मानना मनुष्योंकी कल्पना ही है ॥

सत्यार्थ प्रकाशके बारहवें समुल्लासमें लिखा ❀ है:—"ईश्वर धार्मिक, न्यायाधीश, विज्ञानी, कर्ममें न फँसनेवाला है।" और उसी ग्रन्थके अष्टम समुल्लासमें लिखा † है:—"ईश्वरका स्वाभावक गुण जगत्की उत्पत्ति करना और जीवोंको असंख्य पदार्थ देकर परोपकार करना है ॥"

परन्तु:—उक्त दोनों वचन विरुद्ध धर्म वाले, व्याघात-दोषके हैं। ईश्वरका स्वाभाविक गुण जगत्की उत्पत्ति करनेका है, ऐसा ही जान कर, उसी सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थके चतुर्थ समुल्लासमें पुनर्विवाह–नियोग–करके स्त्री–पुरुष मिल कर दश–दश सन्तानोंको उत्पन्न कर लेना, ऐसा लिखा ‡ है; पुनर्विवाहके विषयमें आगे कहेंगे। जिससे मनुष्योंकी स्त्री सम्भोगादि विषय वासना बढ़ा दी गई। इसीसे आर्यसमाज बढ़ कर विशेष विषयासक्त हो रहा है। अथवा स्वामीजीकृत प्रथम बार छपे हुए सत्यार्थ प्रकाशमें लिखा है कि, मांस खानेमें श्रुति–स्मृतिकी आज्ञा है। इसलिए आर्यमतमें मांसपार्टी = मांस सेवन करने वाले और घासपार्टी = अन्नमात्र अङ्कुरजका आहार करने वाले, ऐसे दो मत आजतक चले

❀ सत्यार्थ प्रकाश, समु० १२, पृष्ठ ४७६ में लिखा है ॥ और पृष्ठ ३६५ में भी कुछ कहा है ॥

† सत्यार्थ प्रकाश, समु० ८ में प्रश्न–६। उत्तर–२ के अन्तमें पृष्ठ २३२ में लिखा है ॥

‡ सत्यार्थ प्रकाश, समु० ४ में प्रश्न ३५ के भीतर ऋग्वेद, मण्डल १०, सूक्त० ८५, मन्त्र ४५ की व्याख्या पृष्ठ १२० में लिखा है ॥

आते हैं। उक्त कथनसे मांस भोजन यह पशु चालकी विधि आर्यमतमें प्रचलित ही है। परन्तु ईश्वरका उत्पत्ति करनेका स्वाभाविक धर्म त्यागके स्वामीजी प्रथमसे देह रहे तक ब्रह्मचारी वा संन्यासी क्यों बने रहे ? भीतरसे स्त्री-सम्भोग विषयके और मांस भक्षणके पक्षपाती थे, ऐसा दश–दश, ग्यारह–ग्यारह पुनर्विवाह सिद्ध करनेसे और मांस विधिकी चालसे जाना जाता है॥

यदि कर्त्ता ईश्वरको शुद्ध ज्ञानी प्रकाशक माने, तो उसमें जगत्को उत्पन्न करनेका तमरूप अज्ञान प्रकट होना असिद्ध है; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न १५ में देखिये !)। यद्यपि प्रश्नके प्रमाणसे जगत्की उत्पत्तिका समय नहीं कहा जाता। इसीसे सृष्टि–चक्रको अनादि माना है। तथापि पाप–पुण्यके कर्माभिमानी मनुष्य और अन्य खानियोंके देहधारी, सर्व जीव भी अनादिसे रहे हैं। तिनके शरीरोंके निर्वाहके लिये पाँच तत्त्वोंका ब्रह्माण्ड भी रहा, ऐसा ही अवश्य मानना योग्य है। इसलिए जगत् अनादि सिद्ध ही ठहरता है। अनेक कर्मोंके वासनानुसार सर्व जीव पुनर्जन्म तथा अनेक सुख–दुःखादि भोगते ही चले आते हैं। ऐसा सिद्ध होनेसे जगत् कर्त्ता ईश्वर माननेकी आवश्यकता ही न रही। यदि किसी कालमें जगत्के प्रारम्भ समय सर्व जीवोंके कर्मोंको भी ईश्वरने रचा है, ऐसा माने; तो शुभाशुभ कर्मोंके ज्ञाते और मुक्तिके अधिकारी मनुष्य खानीके जीवोंके शरीर और इससे विपरीत शुभाशुभ कर्मोंको जाननेमें अज्ञानी और मुक्तिकी प्राप्ति नहीं होने लायक पशु, पक्षी आदि खानियोंके जीवोंके शरीर हैं। अथवा चोर, जार, ठग, हत्यारे इत्यादि पातकी और धर्मात्मा जीवोंके अनन्त शरीर हैं। जिसमें जन्म–मरण गर्भवास तथा त्रय तापोंके अनेक दुःखोंके भोग

अवश्य भोगने पड़ते हैं। ऐसे सर्व जीवोंके अनेक कर्म सहित शरीरोंको भी क्या ईश्वरने रचा है? ऐसे ईश्वरको सर्वज्ञ, परोपकारी, न्यायी, दयालु आदि कैसे कहना? कहो जी! पूर्वोक्त ईश्वरको कर्त्ता मानना पक्षपात या अन्यायकी बात है कि नहीं? इस हेतुसे सर्वज्ञ ईश्वर कर्त्ता मानना नहीं ठहरता ॥

पूर्वके प्रश्न ३२ के श्रुतिमें कहा है कि, सर्व जीवोंने अपने-अपने प्रारब्ध कर्मोंको सम्पूर्ण भोगे बिना एक ही समय पर उनके शरीर नहीं छूटते। इसीसे एक ही नियमित समय पर सर्व जीवोंके शरीर छूट कर जगत्का प्रलय मानना भी असम्भव दोषयुक्त है। ईश्वरको दयालु बतलाते हैं। परन्तु अकस्मात् एक ही समयमें जीवोंको अति दुःख देकर जगत्का प्रलय करनेवाला वह महानिर्दयी और काल स्वरूप ही ठहरता है। ईश्वरको निर्गुण-निराकार माने हैं; इसलिए उसका ध्यान और उसकी स्तुतियुक्त उपासना हो ही नहीं सकती। ईश्वर जगत्का प्रलय कर्त्ता माननेसे वह महाकालरूप होनेसे उसकी भक्ति करनेवाले सर्व जीव सदैव दुःख भोगते रहेंगे; फिर मुक्त तो भी कैसे होंगे? इसलिए ईश्वर जगत्का प्रलयकर्त्ता भी ठहरता नहीं ॥

प्रश्नानुसार वेदके प्रमाणसे सर्व मनुष्योंको सृष्टिके आरम्भ समय ईश्वरने तरुण-तरुण मनुष्य बनाया, यह कहना भी सृष्टिक्रम विरुद्ध है। सृष्टिके आरम्भमें सर्व तरुण मनुष्योंको ईश्वरने ऊपरसे मेघोंमेंसे गिरते हुए बून्दोंवत् या नीचेसे पृथ्वीको फाड़ कर प्रकट किये, ऐसा कहना भ्रम वायु चढ़े हुए भ्रमिक मनुष्यका वचन ठहरता है। ऐसे ईश्वरको मानना भी अविचारी पुरुषका कथन ठहरता है ॥

सत्यार्थ प्रकाशके नवम समुल्लासमें लिखा ❀ है:— छत्तीस सहस्र (३६०००) बार उत्पत्ति-प्रलयमें जितना समय होता है, उतने समय तक, अर्थात् पूर्वमें प्रश्न १७ में कहे प्रमाण दो परार्ध वर्षोंकी ब्रह्माकी मानी हुई बड़ी आयुके अन्ततक मुक्त जीव दुःख रहित रहते हैं। अर्थात् सर्वज्ञ सर्व सामर्थ्यादि ऐश्वर्य तिनको ईश्वरवत् प्राप्त होते हैं। कभी-कभी वे इच्छासे देहें, इन्द्रियादि भी उत्पन्न करके ईश्वर सदृश विषयोंके अनेक सुख वे भोगते रहते हैं। परन्तु "वे ईश्वरवत् सामर्थ्यसे तरुण स्त्रियोंको उत्पन्न करके तिनसे सन्तानोंकी उत्पत्ति भी करते हैं।" इतना भी और लिखना रहा; सो वे क्यों छोड़ दिये ? यदि पूर्वोक्त कर्त्ता ईश्वर ही सिद्ध नहीं होता है, तो ऐसे गपोड़े हाँकना अज्ञानीकी बात है ॥

सत्यार्थ प्रकाशके सप्तम समुल्लासमें "जीव कर्म करनेमें स्वतन्त्र और राजावत् ईश्वरके न्यायसे दण्डरूप फल भोगनेमें परतन्त्र है",

---

❀ सत्यार्थ प्रकाश, समु० ६ में प्रश्न १४ के उत्तर पृष्ठ २६६ में छत्तीस सहस्र संख्या लिखा हुआ है ॥ और—

१२—(प्रश्न) जो मुक्तिसे भी जीव फिर आता है, तो वह कितने समय तक मुक्तिमें रहता है ? ॥

(उत्तर) "ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृतात्परिमुच्यन्ति सर्वे ॥ मुण्डक० ३ । खण्ड २ । मन्त्र ६ ॥—यह मुण्डक उपनिषद्का वचन है। वे मुक्त जीव मुक्तिमें प्राप्त होके ब्रह्ममें आनन्दको तबतक भोगके पुनः महाकल्पके पश्चात् मुक्ति सुखको छोड़के संसारमें आते हैं। इसकी संख्या यह है कि तैंतालीस लाख, बीस सहस्र वर्षोंकी एक चतुर्युगी, दो सहस्र चतुर्युगियोंका एक अहोरात्र, ऐसे तीस अहोरात्रोंका एक महीना, ऐसे बारह महीनोंका एक वर्ष, ऐसे शत वर्षोंका परान्तकाल होता है। इसको गणितकी रीतिसे यथावत् समझ लीजिये। इतना समय मुक्तिमें सुख भोगनेका है ॥ सत्यार्थ प्रकाश, समु० ६ पृष्ठ २६४में ऐसा प्रश्नोत्तर लिखा है ॥

ऐसा लिखा है † । परन्तु अनेक कर्म करने वाले, देहधारी जीव प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं । और निराकार परमेश्वर अर्थात् जीवोंको दण्ड देने वाला राजा है, ऐसा स्वामीजी तो लिख गये; अब तिनके उपदेशी आर्य कहानेवाले समाजी लोग परमेश्वरको प्रत्यक्ष दिखावेंगे, तब सबोंको पक्का निश्चय होगा। सर्व मिलके विशेष प्रेमसे ईश्वरकी प्रार्थना करके यदि एक छोटा-सा नया गाँव किसी एक भी जीवका आश्रय लिये बिना अनेक, देहधारी, तरुण जीव तथा अनेक वस्तु सहित कर्त्ता ईश्वरसे बसावेंगे और कुछ दिन पीछे तिसका प्रलय करावेंगे, तब कर्त्ताका निश्चय सब करेंगे, और मानेंगे। यदि ऐसा नहीं होगा, तो कर्त्ता ईश्वर मानना आप लोगोंकी कल्पना ही सिद्ध है ॥

निराकार, सर्वज्ञ ईश्वरको त्यागके आर्यमताभिमानी लोग अल्पज्ञ, अल्प शक्तिमान्, दयानन्द सरस्वती नामक मनुष्य जीवको आचार्य गुरु, क्यों मान रहे हैं ? और स्वामीजी वेदोंके प्रकट कर्त्ते ब्रह्मा, अङ्गिरा, वायु, अग्नि, आदित्य, ये ऋषि जीव; षट् शास्त्र कर्त्ते जीव; स्मृतिकार मनु, पराशर, कृष्णादि जीवकोटि अल्पज्ञ मनुष्योंको क्यों मानते रहे ? और आप भी तिनको मानते ही चले आते हो ? सर्वज्ञ निराकार कर्त्ता ईश्वर मालिकको त्यागके अल्पज्ञ, सूक्ष्माकार कभी मुक्त न होनेवाले मनुष्य जीवोंको मानना, और उनके परस्पर विरुद्ध मतोंके बनाये हुए वेदादि ग्रन्थोंको मानना, ऐसी व्यभिचारिणी भक्ति क्यों प्रकट की गई ? ॥

सत्यार्थ प्रकाशके सप्तम समुल्लासमें सर्व जीव कर्म करनेमें स्वतन्त्र माने हैं; फिर बुरे कर्म करनेमें भय, शङ्का, लज्जा जीवोंकी

† सत्यार्थ प्रकाश, समु० ७ । प्रश्न १६ के उत्तर पृष्ठ २०६ में लिखा है ॥

ओरसे होते हैं; और अभय, निःशङ्कता, आनन्द, उत्सवादि अच्छे काम ईश्वरकी ओरसे होते हैं, ❀ ऐसा क्यों लिखे हैं ? यदि बुरे कर्म जीव ही स्वयं कर रहे हैं, तो तिनके फल सदैव दुःख ही भोगनेके लिये तिनको मिलने चाहिये। फिर पुण्यके फल विषय-सुख और मुक्ति-सुख क्या ईश्वर अपने घरसे जीवोंको दे रहे हैं ? वाह जी ! खूब सत्यार्थ प्रकाश स्वामीजी बना गये ! ॥

प्रश्नमें साकार लोहा और साकार चुम्बकका दृष्टान्त ईश्वरकी शक्तिसे जगत्‌की उत्पत्तिमें दिया है। परन्तु व्यापक और निराकार माना हुआ कल्पित ईश्वर तथा व्यापक और निराकार गुणरूप ही मानी हुई प्रकृति इन दोनोंके संयोगसे साकार जगत्‌की उत्पत्ति कैसी होगी ? यह दृष्टान्त प्रत्यक्ष असम्भव और युक्तिहीन है ॥

पूर्वोक्त प्रमाणोंसे और युक्तियोंसे सिद्ध अनेक चेतन जीव सहित पाँच जड़ तत्त्वोंका जगत् अनादि सिद्ध ही है। तत्त्वोंके कार्य देहादि पदार्थ सब प्रवाहरूप अनादि हैं। तिनकी उत्पत्ति और प्रलयकर्त्ता परमेश्वर सिद्ध नहीं होता है। इसलिए आर्य मत चलाने वाले आचार्य दयानन्द सरस्वतीसे स्थापित कल्पित जगत् कर्त्ता आप क्यों मान रहे हो ? । उसमें निष्पक्ष होकर विवेक करके परखिये ॥

प्रश्न (३८) आर्यसमाजी लोग कहते हैं कि, वेद वाणी या वेद विद्या मनुष्य कृत नहीं। परन्तु ईश्वर निर्मित उसका स्वयं ज्ञान वेद वाणी है, ‡ ऐसा मैं भी मानता हूँ ?॥ तहाँ कहा हैः—

"शास्त्रयोनित्वात् ॥ ३ ॥"—व्यास ब्रह्मसूत्र ३। अध्याय १। पाद १ ॥

❀ सत्यार्थ प्रकाश, समु० ७। प्रश्न २ के अन्तर्गत उत्तर पृष्ठ १६२ में लिखा है ॥

‡ सत्यार्थ प्रकाश, समु० ७। प्रश्न ३१-३२ के उत्तर पृष्ठ २१८-२१६में लिखा है ॥

अर्थः—सर्व विद्याओंके शास्त्र वेद हैं, जिनकी उत्पत्तिका कारण स्वयं ब्रह्म वा परमेश्वर है ॥

"नारायण एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् ॥" –नारायण उपनिषद्, मन्त्र २ ॥

टीकाः—"ईश्वरस्य प्रथमंश्वासनिर्गतः, ॐकार इति । स एव अकारादि षोड़शस्वराः । ककारादि पञ्चविंशति स्पर्शाः । यकारादि दशानुस्वाराश्च । एवं प्रथम बीजरूप सहिता द्विपञ्चाशब्दवर्णात्मिका भवति वाणी ॥"

अर्थः—टीकाकार विश्वेश्वरानन्द स्वामी कहते हैं कि— ईश्वरने जगत्की उत्पत्तिके प्रथम श्वासरूप वायु प्रकट करके ॐकार उत्पन्न किया । उस ॐकारसे "अ" अक्षरसे "अः" अक्षर तक सोलह स्वर; "क" अक्षरसे आदि लेके "म" अक्षर तक पचीस स्पर्श और "य" अक्षरसे आदि लेके शेष दस अनुस्वार प्रकट किये । ऐसे प्रथम बीज अक्षर ॐकार सहित (५२) बावन वर्णरूप वाणी प्रकट हुई ॥

"तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऽऋचः सामानिजज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ७ ॥"

॥ पुरुष सूक्त, कण्डिका–७ ॥

अर्थः—उस यज्ञ स्वरूप, सर्वहुत, विराट स्वरूप परमेश्वरसे ऋग्वेद, सामवेद, छन्दरूप अथर्ववेद और यजुर्वेद, ऐसे चारों वेद उत्पन्न हुए ॥

इन प्रमाणोंसे जैसे ईश्वरने जगत् रचा है, तैसे ही अपना स्वयं ज्ञानरूप चारों वेद भी आप उत्पन्न किये हैं। वेद मनुष्य कृत हैं, ऐसे आप क्यों कहते हो ? ॥

(३८) उत्तरः—पूर्वोक्त सब प्रश्नोंके प्रमाणोंसे और आर्य

मतसे भी निर्णय करने पर जगत् कर्त्ता ठहरता ही नहीं। इसलिए अनादि कालके जगत्में 'भाषा' और वेदादि 'संस्कृत' वाणी मनुष्य कृत ही बनी है ॥ वेदमें भी ऐसा कहा है:—

"तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। वीर्य्यमसि वीर्यं मयि धेहि ॥
बलमसि बलं मयि धेहि। ओजोऽस्योजो मयि धेहि ॥
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि। सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥ ६ ॥"
॥ यजुर्वेद संहिता, अध्याय १६। मण्डल कण्डिका मन्त्र—६ ॥

अर्थ:—आप प्रकाश स्वरूप हैं, कृपा कर मुझमें भी प्रकाश स्थापन करिये। आप अनन्त पराक्रमयुक्त हैं, मुझमें भी पूर्ण पराक्रम धरिये। आप अनन्त बलयुक्त हैं, मुझमें भी बल धारण कीजिये। आप अनन्त सामर्थ्ययुक्त हैं, मुझको भी पूर्ण सामर्थ्य दीजिये। आप दुष्टों पर क्रोधकारी हैं, मुझको भी वैसा ही कीजिये। आप निज अपराधियोंका सहन करने वाले हैं, मुझको भी वैसा ही कीजिये ! ॥

इस प्रमाणसे यजुर्वेदादि स्तुतियुक्त रहनेसे वेद मनुष्य कृत ही हैं। क्योंकि अपनी प्रार्थना (स्तुति) बड़े पुरुष आप स्वयं कभी नहीं करते, अथवा हमारी स्तुति कीजिये ! ऐसा उपदेश वे कभी नहीं देते। वेदोंमें परस्पर विरोधयुक्त अनेक वाक्य लिखे हुए हैं। इसीसे पक्षपाती अनेक ऋषि-मुनियोंसे वेद बनाये गये हैं, ऐसा ही प्रतीत होता है ॥ बीजकमें भी यही कहा है:—

शब्द:-"वेद बड़ा कि? जिन्ह उपजाया ? ॥२॥"—बीजक,शब्द११२टीकायुक्त॥

अर्थ:—वेद कुछ आकाशसे गिर नहीं पड़े। निर्जीवसे वेदादि वाणी कैसे उत्पन्न होगी ? मनुष्य जीवोंसे वाणी बनी है। वे ही तिसको पढ़ते-पढ़ाते और विचार करते चले आये हैं। वाणीके

प्रमाणसे ही 'परोक्ष' वा 'अपरोक्ष' अनुभवसे वे कल्पित ब्रह्म और ईश्वरको मान लेते हैं, सो सब वाणी मनुष्योंकी ही कल्पना है, और मनुष्य जीव ही सत्य है ॥

इस बीजकके प्रमाणसे बावन वर्णरूप भाषा और संस्कृतादि वाणी तथा ॐकारकी कल्पना मनुष्योंने ही किये हैं ॥

पूर्वके प्रश्न २३ में तेइस ही सिद्धियाँ कही हैं। तिनके प्रमाणोंसे अनेक वर्षों तक पूर्णतासे योग समाधिके साधनासे मनकी भावना मानन्दि कल्पनाको सिद्ध किये हुए कल्पित सिद्ध-कलाधारी चतुर पुरुषार्थी वाचाल ब्रह्मा वा वैसे ही किसी मनुष्यने अपने स्वयं कल्पना, अनुमित मानन्दिके ज्ञान बलसे चारों वेद संस्कृत भाषामें रचे हैं। तिनमें वर्ण, आश्रमादि मर्यादा स्थापन करके कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ब्रह्मज्ञानमें ही योगमार्ग अर्थात् साक्षात्काररूपी ज्ञानकाण्ड, ऐसे त्रिकाण्ड वेद निर्माण हुए हैं ॥

सत्यार्थ प्रकाशके सप्तम समुल्लासमें ऐसा लिखा है ❀ कि, पवित्रात्मा आदित्य, अग्नि, वायु, अङ्गिरा, इन चार ऋषियोंमें प्रत्येकको एक-एक वेद ऐसे चारों वेद निराकार ईश्वरने पढ़ाया। परन्तु क़ुरानमें पैगम्बरादि पवित्रात्मा जगत्में खुदा भेजते हैं, ऐसा लिखा है। तैसे ही ईश्वरने भी कोई देहधारी पवित्रात्मा मनुष्य स्वयं उत्पन्न किये, ऐसा प्रमाण वेदोंमें आपको ढूँढ़नेसे भी मिलनेका नहीं। इसलिए निराकार ईश्वरने जीभ आदि देह साधनके बिना चारों वेदोंको उच्चारण करके उक्त ऋषियोंको पढ़ाया, ऐसा मानना असम्भव दोषयुक्त और अन्यायका कथन है ॥

व्याकरणमें कहा है कि, कण्ठ, तालु, मूर्द्धा, दाँत, ओष्ठादि

❀ सत्यार्थ प्रकाश, समु० ७। प्रश्न २३ के उत्तर, पृष्ठ २१६-२२० में लिखा है ॥

स्थानों पर सदैव चलती हुई प्राण वायु लग कर, नासिका, कण्ठ और जीभके आधारसे मुख द्वारा ५२ वर्णरूप वैखरी वाणी प्रकट होती है ॥

इस प्रमाणसे निराकार और व्यापक माना हुआ ईश्वर वेदोंके शब्दोच्चारण करनेमें असमर्थ है। इसलिए वेदसे लेकर अनेक भाषाओंकी वाणीको मनुष्यकृत ही मानना चाहिये। अथवा कहा है:—

श्लोकः—"आधारे लिङ्गनाभौ, हृदयसरसिजे तालुमूले ललाटे ॥
द्वैपत्रे षोड़शारे द्विदशदशदले, द्वादशार्धे चतुष्के ॥
वासान्ते बालमध्ये, डफकठसहिते कण्ठदेशस्वराणां ॥
हृंक्षंतत्त्वार्थयुक्तं सकलदलयुतं, वर्णरूपं नमामी ॥ १ ॥"

॥ पञ्चीकरण मरहठी, ज्ञानदेव कृत श्लोक—१ ॥

अर्थः—आधार (मूलद्वार) तहाँ १. मूलाधार चक्र। लिङ्गके स्थान पर (नाभिके नीचे छः अङ्गुलियों पर) २. स्वाधिष्ठान चक्र। नाभिमें ३. मणिपुर चक्र। हृदयमें ४. अनाहद चक्र। हृदयके समीप कण्ठमें ५. विशुद्धि चक्र। ललाटमें (दोनों भौहोंके बीचमें) ६. त्रिकुटी वा अग्निचक्र है। त्रिकुटीसे 'ह' और 'क्ष' ये दो अक्षर। कण्ठके 'अ' से 'अः' तक १६ स्वर। हृदयसे 'क' से 'ठ' तक बारह अक्षर। नाभिसे 'ड' से 'फ' तक दश अक्षर। लिङ्ग वा पेड़ू स्थानसे 'ब' से 'ल' तक छः अक्षर। और गुदासे 'व' से 'स' तक चार अक्षर। ऐसे श्वास वायु और जीभके आधारसे उक्त सर्व अक्षर प्रकट होते हैं। जिस स्थानसे जितने अक्षर प्रकट होते हैं, उतने ही अक्षरोंके कमल दल नाम रक्खे गये हैं। निर्विकल्प—रूप मस्तकके मध्य सहस्र दल कमलमें सर्वत्र व्यापकरूप ॐकार ब्रह्म स्वरूप विराजमान है। ऐसा पूर्ण आत्मज्ञान प्रकट होता है। इसलिए ॐकार ब्रह्म कारण और सर्व अक्षर कार्य रहनेसे तिनको हमारा नमस्कार है ॥

इस प्रमाणसे (५२) वर्णरूप अक्षरोंकी उत्पत्ति नरदेहसे ही होती है। ऐसा योगी पुरुषोंने ध्यानके बलसे प्रमाण किया है॥

पूर्वोक्त प्रमाणोंसे श्रुति, स्मृति, संस्कृतादि अनेक भाषाओंकी वाणी मनुष्य कृत हैं। यदि निराकार, व्यापक ईश्वर ही सिद्ध नहीं होता है, तो उससे वेद वाणी या वेद विद्याकी उत्पत्ति मानना, यह अन्यायका कथन है। इस आर्य मतको आप भ्रमिक जानके अब त्याग दीजिये ! ॥

॥ ❀ ॥ योग मत वर्णन ॥ ❀ ॥

प्रश्न (३९) यदि वेदादि अनेक भाषाओंकी वाणी मनुष्य कृत हैं, और आर्य मतसे ईश्वर कर्त्ता नहीं ठहरता है, तो योग मतसे कर्त्ता विषय कहा है:—

"अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः ॥ ३ ॥"

॥ पातञ्जल योगदर्शन, साधनपाद, सूत्र ३। पाद २ ॥

अर्थः—१. अविद्या = जड़को चेतन और चेतनको जड़, ऐसे विपरीत मानना; अथवा इन्द्रियोंके संस्कार दोषोंसे हुई जड़ासक्ति है। २. अस्मिता = अहङ्कार अर्थात् देहको मैं और देह सम्बन्धी पदार्थोंको 'अपना' करके मानना है। ३. राग = सुखोंके सजातीय वस्तुओंके स्मरणसे तृष्णा, लोभ, प्रीति, और ममत्त्व करना है। ४. द्वेष = क्रोध वा बैर भाव है। और ५. अभिनिवेश = मृत्युका डर वा पक्षपातसे हठ करना है। ऐसे पञ्च क्लेश सहित सर्व जीव विभु हैं॥

"क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ॥ २४ ॥"
"स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥ २६ ॥"

॥ पातञ्जल योगदर्शन, समाधिपाद, सूत्र २४। २६। पाद १ ॥

अर्थः—पूर्वोक्त अविद्यादि पञ्च क्लेश, कुशल—अकुशल,

इष्ट—अनिष्ट, धर्म—अधर्म रूपी सर्व मिश्रित फल कर्मोंकी वासनाओंसे सदोदित रहित है। वही सर्व जीवोंसे श्रेष्ठ पुरुष ईश्वर है ॥

पूर्वमें विष्णु, शिवादि सिद्ध हुए; वे कालके आधीन अर्थात् उत्पत्ति—प्रलयको प्राप्त होते हैं। परन्तु ईश्वर कालके अधीन नहीं, सर्व सिद्धोंके गुरु! अर्थात् सबसे श्रेष्ठ हैं ॥

"योगश्चित्त वृत्तिनिरोधः ॥ २ ॥ प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य ॥ ३४ ॥
तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः ॥ ५१ ॥"

॥ पातञ्जल योगदर्शन, समाधिपाद, सूत्र २ । ३४ । ५१ । पाद १॥

अर्थः—चित्त वृत्तियोंको प्राण और मन सहित निरोध करना (रोकना या स्थिर करना), वही योग है। जहाँ संस्कार रह जाता है, वह सविकल्प समाधि = सम्प्रज्ञात—समाधि है। संस्कार रहित सदैव स्थिर रहना, वह निर्विकल्प समाधि = असम्प्रज्ञात—समाधि है ॥ नासापुट द्वारा प्राण वायुको रेचन करना—(बाहर निकालना)—'प्रच्छर्दन' है। उसे बाहर रोक रखना, 'विधारण' है। ऐसी 'प्रच्छर्दन और विधारण' क्रिया बहुत दिन करनेसे चित्त शान्त (स्थिर) हो जाता है। अथवा बाएँ नासापुट द्वारा प्राणवायुको भीतर पूरना, यह 'पूरक' क्रिया है। उसे भीतर स्थिर रखना, यह 'कुम्भक' क्रिया है। दहिने नासापुट द्वारा धीरे—धीरे प्राणवायुको बाहर छोड़ना, यह 'रेचक' क्रिया है। ऐसी तीन क्रियाएँ हुई, तो आधा 'प्राणायाम' होता है। अनन्तर इसको ही उलट करके दहिने नासापुट द्वारा वायुको पूरना, फिर स्थिर रखकर बाएँ नासापुट द्वारा रेचक करना, तब एक पूर्ण 'प्राणायाम' होता है। पूरकके चौगुना काल तक 'कुम्भक' और पूरकके द्विगुना 'रेचक' करना चाहिए। एक वा दो घण्टों तक प्राणायाम

साधनेसे सर्व पाप दूर हों चित्त स्थिर हो जाता है ॥ प्राणके और मनके निरोधका बहुत काल तक योगमार्ग द्वारा अभ्यास होनेसे सर्व क्रियाएँ, वृत्तियाँ, सिद्धियाँदि संस्काररूप सर्व प्रकृति सदोदित निरोध हो, योगी आत्मानन्दमें लीन होकर उसकी निर्बीज समाधि सिद्ध हो जाती है। अर्थात् चित्तका प्रलय होनेसे योगी सदैव पुरुष स्वरूप ईश्वर बनके शुद्ध और मुक्तरूप हो जाता है ॥

इन प्रमाणोंसे योगीजनोंको 'निर्विकल्प' वा 'निर्बीज' समाधि द्वारा ईश्वर पुरुषका साक्षात् अनुभव होता है। ऐसे ईश्वरको मैं कर्त्ता मानता हूँ १ ॥

(३६) उत्तरः—पूर्वके सर्व प्रश्नोंके प्रमाणोंसे ईश्वरादि जगत् कर्त्ता ठहरता ही नहीं ॥ परन्तु कहा है:—

"अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिर्भवति ॥ १४ ॥"

॥ बृहदारण्य उपनिषद् । अध्याय ४ । ब्राह्मण ३ । मन्त्र १४ ॥

अर्थः—स्वयं प्रकाशी, आनन्दघन, चेतन पुरुष परमेश्वर है ॥

"ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् ॥ ३ ॥"

॥ श्वेताश्वतर उपनिषद् । अध्याय १ । मन्त्र ३ ॥

अर्थः—काल, स्वभावादि कारणोंमें नाना दोषोंका विचार करके जगत् कर्त्ताके कारणका निश्चय करनेके लिये ब्रह्मके ध्यानमें स्थिर हुए ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंने ईश्वरमें रही हुई गुप्त-शक्ति ही को जगत्का कारणरूप है, ऐसा ही सिद्ध किया है ॥

परन्तुः—जड़ाध्यासरूप-सुखकी सूक्ष्म हन्तारूप-बीज रहे बिना इच्छाशक्ति प्रकट होना असम्भव है। यदि ईश्वर आनन्दघन सबमें अन्तर-बाहर परिपूर्ण भरा है, तो वह पाँच तत्त्वोंके पञ्चीकरणवत् षष्ठीकरणरूप सबमें रहनेसे जड़ पदार्थोंमें उसके स्वयंज्ञानके

अनुभवकी प्रतीति नहीं होती; जैसे मुर्दे, सूखे लकड़े आदि पदार्थ हैं ॥

"स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगः ॥ २३ ॥"

॥ पातञ्जल योगदर्शन, साधनपाद,सूत्र २३ । पाद २ ॥

अर्थः—प्रधान वा प्रकृतिकी शक्तिमें जड़तासे भोग्यमात्र होनेकी योग्यता है। स्वामी पुरुषकी शक्ति चेतनतासे भोक्ता (भोग करनेवाला) होने की योग्यता है। इन दोनों स्वरूपोंकी प्राप्तिका कारण संयोग है। वही अविवेकरूप बन्धन पुरुषको होता है, और विवेकसे मोक्ष होता है ॥

परन्तुः—निराकार, विभु, अक्रिय ईश्वर पुरुष और सदोदित सूक्ष्माकार, विभु जड़रूप प्रकृति दोनोंका संयोग और वियोग मानना असम्भव दोषयुक्त है। तथा चेतन पुरुषको अविवेकसे बन्धन और विवेकसे मुक्त ठहराना भी अन्यायका कथन है।

दूसराः—त्रिगुणकी समतासे गुणी पदार्थको छोड़के केवल गुणरूप प्रकृतिको ही नित्य वस्तु मानना तथा अनेक विभु चेतन पुरुषोंको—अनेक जीव और विभु ईश्वरको—नित्य मानना भी अन्यायका कथन है; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न ३५ में देखिये !) ॥

विचारसागरके सप्तम स्तरङ्गमें कहा हैः—ध्यानयुक्त निर्विकल्प समाधिकी स्थिरतासे चिन्तन किये हुए पदार्थोंसे सिद्धियोंकी सर्वज्ञता योग महात्म्यसे प्राप्त होती है, वे युञ्जान योगी कहाते हैं ❀॥

परन्तुः—सर्व सिद्धियाँ मनोभावनारूप कल्पित हैं, तथा तत्त्वरूपी मायाके कार्य नाशवान हैं। और वह प्रकाशरूप ईश्वर या शक्तियुक्त चिदानन्द ईश्वर यह ब्रह्मवेत्ता श्रमिक-योगी पुरुषोंकी कल्पना ही है। क्योंकि योगियोंको योग समाधिसे मस्तकमें

❀ विचारसागर, तरङ्ग ७, चौ० १०२ के टीकामें पृष्ठ ५०६ में कहा है ॥

श्वास सहित देहका सर्व वायु चढ़ानेसे 'नाद' और 'बिन्द'का जड़ प्रकाशका भास स्वप्नवत् दृश्य दिखाई देता है। अन्तमें उनकी आनन्दरूप निर्विकल्प वृत्ति हो जाती है, (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न १३ में देखिये !) ॥ बीजकमें कहा हैः—

साखीः—"झिलमिल झगरा झूलते, बाकी छूटि न काहु ॥
गोरख अटके कालपुर, कौन कहावै साहु ? ॥ ४२ ॥"
॥ बीजक, साखी—४२ टीकायुक्त ॥

अर्थः—'झिलमिल' कहिये ज्योतिस्वरूप परमात्मा, उसका झगरा वेद, जिसके प्रमाणसे दश मुद्राएँ और अष्ट योगादि साधनोंसे समाधि सिद्ध करके योगीजन ब्रह्मसे जीव और जीवसे ब्रह्म, ऐसे 'ज्ञानी' और 'अज्ञानी' होने लगे। गोरखनाथ सरीखे महा सिद्ध योगी मस्तकके सहस्रदल कमल (भ्रमर गुफामें) कालके डरसे छिप रहे। परन्तु ब्रह्म, आत्मा, निर्विकल्प ऐसा जो आप मान लिये, सोई काल कल्पना ब्रह्मरूप बनके जगतरूप आप ही हो रहे ॥

[क्योंकि सत्यार्थ प्रकाशके प्रथम और सप्तम सम्मुल्लासमें कहा हैः—

"योऽतति व्याप्नोति स आत्मा ॥" समु० १ में (१५-) पृष्ठ ११ ॥
"अतति सर्वत्र व्याप्नोतीत्यात्मा ॥" समु० ७ में प्रश्न १६ के उत्तर, पृष्ठ २०४ ॥
—अर्थात् सर्वत्र व्यापक सोई आत्मा है ॥

वेदान्त संज्ञामें (तीन ब्रह्मके बाद, पृष्ठ २० में) कहा हैः—

"बृहत्त्वाद्बृंहणत्वात् ब्रह्म ॥"—वेदान्तसंज्ञा ॥

बृहत्त्वात् = बड़ा होनेसे व्यापक और बृंहणत्वात् = शरीर वृद्धि आदि हेतुत्व वही 'ब्रह्म' है। ऐसा "आत्मा और ब्रह्मका" व्यापक ही अर्थ है।] आगे साखीका अर्थः—

तत्त्वोंका अभ्यास, तत्त्वोंका भास, तत्त्वोंका अनुमान मानना,

तत्त्वोंका वासना, तत्त्वोंकी देह, तत्त्वोंकी समाधि, तत्त्वोंका प्रकाश, तत्त्वोंका आनन्द, तिसको मैं या मेरा स्वरूप ऐसा मानै, वही चोर है। ऐसे सर्व जड़, नाशवान् पदार्थोंकी पारख करके चेतन हंस सत्य ऐसा निश्चय किये हैं; वे ही साहु (श्रीसद्-गुरुरूप सन्त) हैं ॥

इस प्रमाणसे योगीजन कालरूपी कल्पनाके वश होकर, देह रहे तक कल्पित सिद्धियोंके विशेष मदसे बल प्रयोग करके अनेक जीवोंको दुःख दें, बारम्बार जन्म—मरणके चक्करमें पड़ेंगे। तिनका ज्योति प्रकाशरूप कल्पित ईश्वर—पुरुष देहके साथ छूट जायगा ॥

पूर्वके प्रश्न ५ के उपनिषद्के प्रमाणसे कर्त्ताको सर्वत्र व्यापक कहा है। इसलिए योग समाधिसे योगियोंको एकदेशी देहमें ईश्वरका दर्शन होता ही नहीं। परन्तु नाद—बिन्दके जड़ प्रकाशको ही वे ईश्वर मानके आप ही ईश्वर बन बैठे। वह जड़ तत्त्वरूप ईश्वर जगत्को रच ही नहीं सकता है। क्योंकि जड़में ज्ञान और इच्छा नहीं है। (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न ३ में देखिये !) ॥

इस प्रकारसे योगी पुरुष समाधिके ध्यान साधनसे जड़ तत्त्वोंका प्रकाश देख कर, शून्य वृत्तिसे आनन्दमें गाफिल होते हैं। उसीको कर्त्ता ईश्वर मानना बड़ी भूल है। इस भ्रमिक योग मतको आप अब त्याग दीजिये ! ॥

॥ ❀ ॥ वेदान्त मत वर्णन ॥ ❀ ॥

प्रश्न (४०) यदि योग मतसे कर्त्ता नहीं ठहरता, तो वेदान्तके अद्वैत मतसे कर्त्ता विषय कहा है:—

"यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च ॥ ७ ॥" विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता ॥ १ ॥"

॥ मुण्डक उपनिषद् । मुण्डक १ । खण्ड १ । मन्त्र ७ । १ ॥

अर्थः—जैसे मकरी अपनेमेंसे तन्तुओंको उत्पन्न करके आप ही में तिनको लय करती है। तैसे ही कर्त्ता विराट्-स्वरूप ईश्वर या मायोपाधियुक्त ब्रह्म, जगत्को अपनेमेंसे उत्पन्न करके उसे आप ही में लय करता है ॥

"एतावानस्य महिमा तोज्ज्यायाँश्च पूरुषः ॥
पादोस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥" पुरुषसूक्तकण्डिका मन्त्र-३॥

अर्थः—भूत, वर्त्तमान, भविष्यत् ये तीन काल स्वभावयुक्त जितना यह जगत् है, वह सब चैतन्य पुरुषकी महिमा सामर्थ्य विशेष विभूति है। अर्थात् तिसके ही सत्तासे प्रकाशमान है। उस पुरुषके एक पादका चतुर्थ अंश सर्व विश्व है। (त्रिपाद्) तीन पाद अविनाशी और स्वयं प्रकाशरूप हैं ॥

छान्दोग्य उपनिषद्के चौथे प्रपाठकमें कहा ❀ है:—पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, ये चार दिशा ब्रह्मके चार कलाएँ हैं। इन चार कलायुक्त एक पाद मात्र ब्रह्मका 'प्रकाशवान' नामसे है। पृथ्वी, अन्तरिक्ष=आकाश, द्युलोक, स्वर्गलोक और समुद्र, इन चार कलायुक्त उसका दूसरा पाद 'अनन्तवान' नामसे है। अग्नि, चन्द्र, सूर्य, विद्युत्=बिजली, इन चार कलायुक्त उसका

❀ "प्राची दिक्कला प्रतीची दिक्कला दक्षिणा दिक्कलोदीची दिक्कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणः प्रकाशवान्नाम ॥ २ ॥" छान्दोग्य०, अ० ४। खण्ड ५। मन्त्र २ ॥ "पृथिवी कलान्तरिक्षं कला द्यौः कला समुद्रः कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणोऽनन्तवान्नाम ॥ ३ ॥" छान्दोग्य०, अ० ४। खण्ड ६। मन्त्र ३ ॥ "अग्निः कला सूर्यः कला चन्द्रः कला विद्युत्कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणो ज्योतिष्मान्नाम ॥ ३ ॥" छान्दोग्य०, अ० ४। खण्ड ७। मन्त्र ३ ॥ "प्राणः कला चक्षुः कला श्रोत्रं कला मनः कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मण आयतनवान्नाम ॥ ३ ॥" छान्दोग्य०, अ० ४। खण्ड ८। मन्त्र ३ ॥

तीसरा पाद 'ज्योतिष्मान' नामसे है। ये तीन पाद शुद्ध ब्रह्मके स्वरूपका स्थान है। प्राण, नेत्र, श्रोत्र और मन, इन चार कलायुक्त उसका चौथा पाद 'आयतवान' नामसे है। जिसको "सगुण ब्रह्म, वैश्वानर, हिरण्यगर्भ, विराट् पुरुष, विधाता, पितामह" इत्यादि नामोंसे कहते हैं। इस चौथे पादमें अनन्त ब्रह्माण्ड स्थित हैं। यही षोड़श कलायुक्त कारण शरीरवाला निर्गुण ब्रह्म अर्थात् आदि पुरुष है। इसमें ही उत्पत्ति, प्रलय हैं, और तीन पादोंमें नहीं। ये तीन पाद उपासनाके लिये निर्गुण, निराकार, अनन्त ब्रह्ममें अध्यारोप (द्वैतभाव न होते ही) कथन किये हैं, जिससे ब्रह्म भावना सिद्ध होवै, ऐसा टीकाकारका कहना है ॥

"यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति ॥ यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम् ॥७॥"—मुण्डक उ०,मुण्डक१। खण्ड १।मन्त्र७॥

अर्थः—जैसे पृथ्वीसे नाना प्रकारकी औषधियाँ उत्पन्न होती हैं, जैसे इस पुरुषसे जड़ केश, नख उत्पन्न होते हैं; तैसे ही अविनाशी "अक्षर ब्रह्म" से यह जगत् उत्पन्न होता है ॥

"जन्माद्यस्य यतः ॥ २ ॥"—व्यास ब्रह्मसूत्र २। अध्याय १। पाद १॥

अर्थः—जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करनेवाला सर्वशक्तिमान् ब्रह्म कुम्हारवत् स्वयं निमित्त-कारण और मिट्टीवत् उपादान-कारण भी है ॥

इन प्रमाणोंसे विराट् पुरुष ईश्वर जगत् रचनेमें 'निमित्त' और 'उपादान' कारण है। अथवा परब्रह्म स्वयं निमित्त और उपादान कारण, उसका चौथापाद रहनेसे कर्त्ता है। इसलिए विराट् पुरुष ईश्वर या स्वयं शुद्ध ब्रह्मको मैं कर्त्ता मानता हूँ ? ॥

(४०) उत्तरः—विराट् पुरुष कर्त्ताको मकरीका दृष्टान्त

देते हो ! परन्तु तन्तुओंको उत्पन्न करनेमें मुख्य कारण पाँच तत्त्वोंकी कार्य मायायुक्त मकरीकी स्थूल देह उपादान–कारण है। क्योंकि अन्नका रस बननेसे मुख द्वारा वह अनेक जड़ तन्तुओंको निकालती है। और वह स्वयं चेतनरूपसे निमित्त–कारण है। इस प्रकारसे विराट् पुरुष भी देहधारी, एकदेशी चाहिये ? परन्तु उसके स्थानका पता कोई भी नहीं कहता है ॥

विराट् पुरुष विषय कहा है:—

"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ॥" ईशावास्य उपनिषद्, मन्त्र१॥

अर्थः—जहाँ तक स्थूल, सूक्ष्म आकारवान् जगत् है, वह सर्व विराट् पुरुष ईश्वरका ही स्वरूप है ॥

इस प्रमाणसे जगत्में अनेक देहधारी चेतन जीव, पाँच जड़ तत्त्व और सूर्य, चन्द्र, तारागणादि प्रत्यक्ष हैं। परन्तु ईश्वरकी कहीं प्रतीति ही नहीं होती, इसलिए वह कर्त्ता सिद्ध नहीं होता है ॥

अथवा श्रुतिमें कहा है:—

"सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥
सभूमिं सर्वत स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशांगुलम् ॥१॥" पुरुषसूक्त कण्डिका मन्त्र१ ॥

अर्थः—सहस्र = हजारों वा असंख्य मस्तक, असंख्य नेत्रादि ज्ञानेन्द्रियाँ, असंख्य चरणादि कर्मेन्द्रियाँ मिलकर जीवोंके असंख्य शरीर हैं। और पृथ्वी आदि पाँच तत्त्वरूप विश्वमें दशोंदिशाओंसे व्याप्त वही "विराट् पुरुष" है। वह दश अङ्गुलियों से दिखाया जाता नहीं, उसे अनुभवसे जानना चाहिये ! ॥

इस प्रमाणसे सर्व 'व्यष्टिरूप' अनन्त जीवोंके शरीर और पाँच तत्त्वोंके समुदायका नाम ही 'समष्टिरूप' एक "विराट् पुरुष" माना है; जैसे सर्व वृक्षोंके समुदायका नाम 'वन' है। परन्तु वह

जगत्से भिन्न (न्यारा) कहीं नहीं, जो जगत्को उत्पन्न करेगा ? उसके रूपका ठिकाना ही नहीं, नाम मात्र कहते हो ! इसलिए जगत् अनादि सिद्ध ठहरता है ॥ अथवाः—स्मृतिमें कहा हैः—

श्लोकः—"अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं, पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् ॥
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं, पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ॥१६॥"
॥ भगवद्गीता, अध्याय ११ । श्लोक १६ ॥

अर्थः—अर्जुन कहते हैं कि, हे श्रीकृष्ण ! आप जो "विराट्रूप" दिखाये हो ! तिसमें बाहु, उदर, मुख, नेत्रादि अनेक –अनेक मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ ! हे विश्वरूप ! विश्वेश्वर ! आदि, अन्त और मध्य रहित आपको अनन्त रूपोंसे मैं देखता हूँ ! ॥

इस प्रकारसे अर्जुनने विराट् स्वरूपका वर्णन किया । परन्तु वह द्रष्टा बनकर तिस दृश्य स्वरूपके बाहर ही रहा । इसलिए विराट् स्वरूप भी एकदेशी ही ठहरता है । परन्तु पूर्वके प्रश्न २३ के प्रमाणसे यह कल्पित महिमा सिद्धिकी मिथ्या प्रसिद्धि मानी है, कुछ विराट् पुरुष ईश्वर नहीं है । इसलिए जगत् अनादि सिद्ध है । यदि शुद्ध चैतन्य ब्रह्मको ही स्वयं कर्त्ता माने, तो उसके चार पादोंकी कल्पना करनेवाले मनुष्य जीव सत्य और वह कल्पनारूप ही ठहरता है । यदि वह तीन पादोंमें व्यापक प्रकाशरूप, शुद्ध है, और एक पादमें ही उत्पत्ति–प्रलय मानते हो; तो शुद्ध ब्रह्म भी लङ्गड़ी गऊवत् उपाधियुक्त, लङ्गड़ा–रोगी ही ठहरता है । अकेला चैतन्य कर्त्ता अनेक, अखण्ड चेतन जीव और जड़रूप जगत्की उत्पत्ति कर ही नहीं सकता; (तिसको प्रमाण पूर्वके प्रश्न २ में देखिये !) । मुख्य पृथ्वी और जल इन दो तत्त्वोंसे उत्पन्न हुई अनेक औषधियाँ जड़ हैं । उनका निर्णय निघण्टु आदि ग्रन्थकार, देहधारी वैद्यजनोंने

किया है। ज्ञान धर्म चैतन्य जीवोंका है, जड़ औषधियाँ स्वयं कुछ भी नहीं जान सकतीं; (तिसको प्रमाण पूर्वके प्रश्न ३ में देखिये !)। नरदेहधारी आदि जीवोंके शरीरोंमें जो केश और नख जड़रूप उत्पन्न होते हैं, सो देहोंमें जीवोंके निवास हैं, तभी तक तिनकी सत्तासे बढ़ते रहते हैं। परन्तु मुर्दोंमें नहीं, ऐसी प्रत्यक्ष प्रतीति है। गर्भमें बालकका शरीर भी चैतन्य जीवोंकी सत्तासे ही बढ़ जाते हैं ॥ परन्तु उपनिषद्‌में कहा है:—

"सप्तमे मासे जीवेन संयुक्तो भवति ॥"—गर्भ उपनिषद् । मन्त्र-३ ॥

अर्थः—गर्भमें जीव सातवें महीनेमें शरीरसे संयोग करता है। ऐसा अर्थ कोई कहते हैं, वह सत्य नहीं है। सातवें महीनेमें गर्भमेंका जीव सम्पूर्ण देहयुक्त बन कर गर्भमें ही चलन क्रियावान् होता है, यह अर्थ सत्य है ॥

इस प्रकारसे जड़ देहधारी मनुष्योंसे जड़ औषधियोंका शोध और चेतन जीवोंकी सत्तासे जड़ केश, नख, उत्पन्न हुए हैं। अकेले शुद्ध चैतन्यसे जगत्‌की उत्पत्ति नहीं होती है। क्योंकि वह असङ्ग है; (तिसको श्रुति प्रमाण पूर्वके प्रश्न २६ में देखिये !)। परन्तु यह भी बिना देखे, बिना अनुभव किये केवल कल्पना ही की गई है। इन कारणोंसे पूर्वोक्त विराट् पुरुष ईश्वर या शुद्ध ब्रह्मको निमित्त और उपादान कारणसे जगत् कर्त्ता मानना केवल अन्याय है, ऐसा जानिये ! ॥

प्रश्न (४१) यदि वेदान्त मतसे विराट् पुरुष ईश्वर या शुद्ध ब्रह्म कर्त्ता नहीं ठहरता, तो व्यासजीके मतानुसार तिनके बनाये सूत्रोंमें कहे हैं:—

"न प्रयोजनवत्त्वात् ॥३२॥" व्यास ब्रह्मसूत्र ३२ । अध्याय २ । पाद १ ॥

अर्थः—यह शङ्का सूत्र है। जगत्‌में बिना प्रयोजन (कारण) अज्ञानी पुरुष भी कोई कर्म नहीं करते ? इसलिए अति आनन्दवान्, नित्यमुक्त, नित्यतृप्त, पुरुषको स्वयं जगत् रचनेमें कोई प्रयोजन नहीं है? ॥

"लोकवत्तु लीलाकैवल्यम् ॥३३॥" व्यास ब्रह्मसूत्र ३३। अध्याय २। पाद १॥

अर्थः—यह समाधान सूत्र है। जैसे सर्व सङ्कल्पसे रहित राजा अपने प्रयोजन बिना कभी सहज लीलासे किसी कार्यको करनेमें प्रवृत होे जाता है। तैसे ही बिना प्रयोजन स्वभाव मात्रसे जगत्‌रूपी लीला करनेके लिये नित्यमुक्त, नित्यतृप्त पुरुष प्रवृत्त होता है। कैसे वह जगत्‌को रचता है ? ॥ तहाँ कहे हैं:—

"देवादिवदपि लोके ॥ २५ ॥"—व्यास ब्रह्मसूत्र २५। अध्याय २। पाद १॥

अर्थः—जैसे जगत्‌में देवतारूप ऋषि, योगी आदि चैतन्य पुरुष ऐश्वर्य संयुक्त हैं। वे बाहरके साधन बिना अपने सङ्कल्पसे ही शरीर, मकान, रथादि अनेक पदार्थ बना देते हैं। तैसे ही महाऐश्वर्यवान् ब्रह्म चैतन्यको कोई बाहरके साधन नहीं चाहिये, सहज ही लीलासे जगत्‌को रच देते हैं ॥

इन प्रमाणोंसे नित्यमुक्त, नित्यतृप्त, अति आनन्दवान् पुरुषको स्वयं लीला मात्रसे जगत्‌को रचनेवाला मैं कर्त्ता मानता हूँ ? ॥

(४१) उत्तरः—जैसे सर्व इच्छा रहित राजा सहज ही लीलासे कोई कर्म करनेके लिये प्रवृत्त हो जाता है। इसका कारण उसके पास शरीर—सम्बन्धसे सुख, दुःख, नाना विषयोंकी इच्छादि अन्तरकी उपाधियाँ रहती हैं। और अन्न, वस्त्र, धन, परिवार, सेना, नौकर, न्याय करना इत्यादि बहुत-सी बाहरकी उपाधियाँ रहती हैं। परन्तु इच्छाके सङ्कल्प रहित, नित्यमुक्त, नित्यतृप्त पुरुष सर्व उपाधि रहित रहनेसे तिसमें सहज ही लीलासे जगत्‌को रचनेका सङ्कल्प कैसे होगा ?

यदि उसको कर्त्ता भी माने, तो बालकवत् वह रागी, अज्ञानी और जीवोंको दुःख देनेवाला ठहरता है ॥ परन्तु कहा भी है:—

"सोऽकामयत ॥ बहु स्यां प्रजायेयेति ॥"

॥ तैत्तिरीयोपनिषद् मध्ये–ब्रह्मानन्द वल्ली (२) उपनिषद् । अनुवाक ६ ॥

अर्थः—अति आनन्दवान् तथा नित्यमुक्त पुरुष "मैं एकसे अनेकरूप हो जाऊँ" ऐसा सङ्कल्प करके जगत्की रचना किया ॥

"स्वमपीतो भवति ॥" छान्दोग्य उपनिषद् । अध्याय ६ । खण्ड ८ । मन्त्र १ ॥

अर्थः—जीवकी सुषुप्ति अवस्था (गाढ़ी नीन्द) विषय उपाधियुक्त जगत्का अज्ञानमें लय हो जाता है ॥

इन दो प्रमाणोंसे जैसे सुषुप्तिके आनन्दमें जीवोंके पास जाग्रत् अवस्थाकी सर्व उपाधियोंका अज्ञानमें लय माना है । तैसे ही अति आनन्दवान्, मुक्त पुरुषके पास सर्व जगत्का अज्ञान बीजरूपसे रहा । इसलिए सहज ही लीला मात्रसे जगत् रचनेका सङ्कल्प करके आप ही जीव भाव (अज्ञानता) लेकर जन्म, मरण, गर्भवासादि दुःख आप स्वयं भोग रहे हैं। क्योंकि ब्रह्म ही ने जीवभाव (अज्ञानता) लेकर जगत्में प्रवेश किया है; (तिसको श्रुति प्रमाण पूर्वके प्रश्न ३० में देखिये !) । परन्तु मुक्त पुरुष पुनर्जन्म नहीं लेते, ऐसा पूर्वमें प्रश्न ३२ के श्रुतिमें कहा है, तिससे विरोध आता है ॥

प्रश्नके प्रमाणसे ऋषि, योगी आदि कल्पित सिद्धकलाधारी या ऐश्वर्ययुक्त पुरुष पृथ्वी पर स्थित देहधारी हैं । वे सङ्कल्पसे जो–जो पदार्थ बनाते सो इन्द्रजालवत् तुरन्त ही अदृश्य हो जाते अथवा कायम भी रहे, तो एकदेशमें वे बनाते, सर्वत्र नहीं । तैसे ही कर्त्ता योगीवत् साकार मनुष्य होगा, तो आप एकदेशी, देहधारी रहनेसे अखण्ड, देहधारी, अनेक जीव और पाँच तत्त्व सहित

सर्व जगत् अनादि ठहरता है, और कर्त्ताकी केवल कल्पना ही की हैं। पूर्वके प्रश्न ७ और प्रश्न १७ के प्रमाणोंसे अधर वा पोलमें देहाभिमानी जीव सदोदित ठहर नहीं सकते हैं, और स्वर्गलोक भी असिद्ध है; तो साकार कर्त्ता अधरमें कैसे ठहरेगा ? यदि कर्त्ताको निराकार माने, तो वह भी असिद्ध है; (तिसको प्रमाण पूर्वके प्रश्न ५ और प्रश्न ६ में देखिये !) । यदि कर्त्ताको निराकार स्वयं शक्तिमान् माने, तो देह, इन्द्रियाँ, अन्तःकरणादि उपाधि रहे बिना उसके शक्तिका प्रकट होना असम्भव है; (तिसको प्रमाण पूर्वके प्रश्न ३१ में देखिये !) । अकेले चैतन्यसे जगत्की उत्पत्ति नहीं होती; (तिसको प्रमाण पूर्वके प्रश्न २ में देखिये !) । पूर्वोक्त सब प्रश्नोंके प्रमाणोंसे कर्त्ता रहित जगत् अनादि ही ठहरता है ॥

इस प्रकारसे नित्यमुक्त, नित्यतृप्त, अति आनन्दवान् पुरुष स्वयं सहज लीलासे अज्ञान, तृष्णा सहित दुःखरूपी जगत्को रचनेवाला कर्त्ता मानना असम्भव दोषयुक्त है ॥

प्रश्न (४२) यदि सहज लीलासे जगत्को रचनेवाला कर्त्ता सिद्ध नहीं होता, तो वेदान्तके विवर्तवादसे कर्त्ता विषय कहा है:—

"न तत्ररथा न रथयोगा न पन्थानो भवन्त्यथ,रथान्रथयोगान्पथःसृजते॥"

॥ बृहदारण्य उपनिषद् । अध्याय ४ । ब्राह्मण ३ । मन्त्र १० ॥

अर्थः—तिस स्वप्न अवस्थामें जीवके पास न रथ है, न रथके घोड़े हैं, चलने योग्य रास्ता है, सर्व आप ही रच लेता है ॥

इस प्रमाणसे जैसे स्वप्न अवस्थामें एक जीवके विषय अपने स्वरूपके नाश बिना ही अनेक प्रकारका विचित्र जगत् वह उत्पन्न कर लेता है । वैसे ही शुद्ध ब्रह्मके विषय अपने स्वरूपके नाश बिना ही अनेक प्रकारका विचित्र जगत् वह आप ही प्रकट करता है;

इसका नाम 'विवर्तवाद' है। इसी कारण स्वप्नके दृष्टान्त प्रमाण स्वयं स्वरूपके नाश बिना ही सत्य सङ्कल्पसे विचित्र जगत् रचनेवाले शुद्ध ब्रह्मको मैं कर्त्ता मानता हूँ ? ॥

(४२) उत्तरः—अनेक चेतन जीव सहित जड़ पाँच तत्त्वोंका जगत् रहेगा, तभी मनुष्योंको स्वप्न होंगे। इसलिए जगत् अनादि रहनेसे कर्त्ताका कोई प्रयोजन रहा ही नहीं। यदि स्वप्नवत् 'विवर्तवाद' से जगत्को रचनेवाला कर्त्ता भी माने, तो विचारसागरके चतुर्थ स्तरङ्गमें कहा ❀ हैः—"स्वप्नमें साक्षी शुद्ध चैतन्यके आश्रित अविद्याका ही तमोगुण अंश विषयरूप परिणामको प्राप्त होता है। जिस ज्ञानको भ्रम वा अध्यास कहते हैं, सो भ्रम अविद्याका परिणाम और शुद्ध चैतन्यका विवर्त है, अर्थात् अधिष्ठान शुद्ध चैतन्यसे अन्यथा स्वरूप (विपरीत स्वरूप) विवर्त है॥"

इस प्रमाणसे अनादि अविद्यारूप जड़मायाको आधार देनेवाला शुद्ध ब्रह्म ही अधिष्ठान (मालिक) है। इसलिए आप शुद्ध ब्रह्म स्वप्नवत् विचित्र जगत् उत्पन्न कर सकता है, ऐसा माना है। परन्तु कहा हैः—

"स्वप्नो भवत्यस्य विभक्त्यवस्था, स्वमात्रशेषेण विभाति यत्र ॥
स्वप्ने तु बुद्धिः स्वयमेव जाग्रत्,-कालीननानाविधवासनाभिः ॥१००॥"

॥ [illegible] श्लोक १०० ॥

अर्थः—शङ्कराचार्य कहते हैं कि, स्थूल और सूक्ष्म शरीरोंके विभाग तत्त्व, प्रकृति, इन्द्रियाँ, पाँच विषयादि भिन्न-भिन्न भाग-निमित्त स्वप्न अवस्था है। जिसमें जाग्रत् अवस्थाकी जो नाना प्रकारकी वासनाएँ हैं, उन (वासनाओंके) संयुक्त हो के बल-बुद्धिका

❀ विचारसागर, स्तरङ्ग ४। पृष्ठ ११३ में लिखा है॥

भान होता है या जाना जाता है ॥

अथवाः—तत्त्वानुसन्धानके प्रथम परिच्छेदमें कहा ❀ हैः—
"जाग्रत् अवस्थामें सुख—दुःख भोग देनेवाले पाप—पुण्यरूप अनेक कर्म हैं। तिन कर्मोंके और इन्द्रियोंके व्यापार बन्द हुए पीछे जाग्रत्में अनुभव किये हुए वासना संस्कारसे शब्दादि विषय तथा तिनका ज्ञान उत्पन्न करनेवाली 'स्वप्न अवस्था' है ॥"

इन प्रमाणोंसे अनादि जगत् रहा, तब जाग्रत् अवस्थामें जो—जो पदार्थ देखे हैं, तिनका भोग भोगे हैं, या अनेक वाणी सुनी हैं, उन्हींके अनुभव संस्कारसे फोटोवत् भीतर अनेक पदार्थ भास होनेवाली 'स्वप्नावस्था' होती है। केवल जीव स्वरूपसे कायम रहके जगत् सहित जगत्मेंकी जाग्रत् अवस्था नहीं रहनेसे वे आप ही आप स्वप्नमें अन्य विचित्र पदार्थ कैसे उत्पन्न करेंगे ? तैसे ही अनादि जगत्के जाग्रत् संस्कार रहित अनादि अज्ञानको (अविद्यारूपी—मायाको) आधार दिये बिना एक ही अधिष्ठान ब्रह्मके सङ्कल्पसे आप-ही-आप स्वप्नवत् जगत्की उत्पत्ति होना असम्भव दोषयुक्त है ॥

इस प्रकारसे स्वप्नके दृष्टान्त प्रमाण अनादि जगत्रूपी मायाके जाग्रत् संस्कार रहित निज स्वरूपके नाश बिना ही अनेक विचित्र पदार्थरूप जगत् रचनेवाले शुद्ध ब्रह्मको कर्त्ता मानना कल्पित कथन है। ऐसा जानिये ! ॥

प्रश्न (४३) अनेक पदार्थोंको देखकर तिनका उपभोग लिये हैं। अथवा अनेक वाणी सुनी हैं, तिनका अनुभव संस्कार रहकर स्वप्नमें अनेक पदार्थ प्रकट होते हैं, ऐसा नियम नहीं ॥

तिस विषय कहा हैः—

❀ तत्त्वानुसन्धान, परि० १। पृष्ठ ५६ में लिखा है ॥

श्लोकः—"यदर्थेन विनाऽमुष्य, पुंस आत्मविपर्ययः ॥
प्रतीयत उपद्रष्टुः, स्वशिरश्छेदनादिकः ॥ १० ॥"
॥ भागवत, स्कन्ध ३ । अध्याय ७ । श्लोक १० ॥

अर्थः—मैत्रेयजी विदुरसे कहते हैं कि, स्वप्न अवस्थामें तिसके देखनेवालेको बिना शिरके कटे भी "यह मेरा शिर कट गया" ऐसा अपने विषय अनेक प्रकारका भ्रम होता है ॥

इस प्रमाणसे कर्त्ता ब्रह्मके विषय भी जगत्की उत्पत्तिका विपरीत भाव स्वप्नवत् हो सकता है, इसलिए स्वप्नका दृष्टान्त जगत्की उत्पत्तिमें कल्पना कहना योग्य नहीं है ? ॥

(४३) उत्तरः—पूर्वके सर्व प्रश्नोंके प्रमाणोंसे जगत् अनादि ही ठहरा है; इसलिए जगत् कर्त्ता माननेकी आवश्यकता ही नहीं। यदि कर्त्ता भी मानें, तो पूर्वके अनेक जन्मोंमें नेत्रवान् रहते हुए भी कोई जन्मान्ध मनुष्यको पदार्थोंके रूप विषयका ज्ञान स्वप्नमें होता ही नहीं। इस हेतु अपना शिर कट गये बाद तिसको "मैं प्रत्यक्ष उसे देखकर जीता हूँ" ऐसा विपरीत स्वप्न किसीको भी नहीं होता है। यदि पूर्ववत् विपरीत स्वप्न दिखाई देता है, ऐसा भी थोड़ी देरके लिए मानें, तो अनादि कालके जगत्में कहीं बकरा, मुरगा, गऊ इत्यादिकोंके शिर कटे हुए किसीने देखा है। कोई स्वयं उन्हें काटके मांस खानेसे अनुभव किये हैं। अथवा लड़ाईमें अनेक मनुष्योंके शिर कट गये उपरान्त वे रुण्ड योद्धे देहोंसे सर्व वायु निकल जाने तक लड़ते ही रहे, ऐसी वाणी सुनी है। इसलिए स्वप्न अवस्थामें किसी बिरलेको "अपना शिर कट गये बाद मैं जीता हूँ" ऐसी विपरीत भावना, जाग्रत्के वासना—संस्कारका फोटो भीतर रहनेसे हो जाती है, ऐसा जानिये ! यदि वासना—संस्कारके

फोटोवत् स्वप्न प्रतीति नहीं माने, तो चोर, बाघ, साँपादिकोंके डरसे जाग्रत् देहोंके मुखोंसे अनेक मनुष्योंके घबराहट शब्द क्यों सुनाई देते हैं? किसी स्त्रीके दर्शन, स्पर्श, सम्भोगादि अष्ट मैथुनके अध्यास आसक्तिके कारण वीर्य पतन हो जानेसे गृहस्थ लोग और विषयासक्त साधु, दोनोंके वस्त्र और लङ्गोटियाँ क्यों भींज जाती हैं? अष्ट मैथुन विषय आगे कहेंगे। इस हेतुसे जाग्रत् अवस्थाके ही संस्कार अध्यासरूपसे फोटोवत् स्वप्नमें गुप्तरूपसे रहते हैं। स्वप्नमें परस्पर स्त्री-को-स्त्री-से और पुरुष-को-पुरुष-से मैथुन कर्म नहीं होते हैं। अथवा आप ही स्वयं पशु, पक्षी आदि बन गये, ऐसे विपरीत स्वप्न कभी देखनेमें नहीं आते हैं। स्वप्नमें भी जाग्रत्में देखे हुए देहधारी चेतन जीव और अनेक जड़ पदार्थ मनुष्य पहिचान लेते, यह भी अनुभव सिद्ध है॥

इन पूर्वोक्त कारणोंसे अनादि जगत्में स्वप्नका दृष्टान्त शुद्ध-चैतन्यके विषय आपके स्वरूपके नाश बिना आप-ही-आप अनेक प्रकारका विचित्र जगत् उत्पन्न हो जाता है; ऐसा मानना मनुष्योंकी कल्पना ही सिद्ध है। आप सत्यन्यायसे विचार करके देखिये! ॥

प्रश्न (४४) यदि स्वप्न दृष्टान्तवत् वेदान्तके विवर्तवादसे कर्त्ता नहीं ठहरता, तो शङ्कराचार्यके मतानुसार कर्त्ता विषय कहा है:—

श्लोकः—"ब्रह्मैवेदं विश्वमित्येव वाणी, श्रौती ब्रूतेऽथर्वनिष्ठा वरिष्ठा॥
तस्मादेतद् ब्रह्ममात्रं हि विश्वं, नाधिष्ठानाद्भिन्नतारोपितस्य॥२३३॥"
॥ विवेकचूड़ामणि, श्लोक—२३३॥

अर्थः—शङ्कराचार्य कहते हैं—"ब्रह्मैवेदंसर्वम्" सबसे श्रेष्ठ अथर्ववेदकी श्रुति कहती है कि, सर्व विश्व ब्रह्ममय है। अर्थात् अधिष्ठान ब्रह्म सर्व जगत्का आधार है, इसलिए यह जगत् ब्रह्मसे

भिन्न नहीं। जैसे अधिष्ठान रज्जु (रस्सी) आरोपित (वस्तु नहीं होते हुए भी कथन) सर्पका आधार है। परन्तु रज्जुसे भिन्न नहीं; तैसे ही ब्रह्म जगत्से भिन्न नहीं (जगत्रूप ही) है ॥

श्लोकः-"सत्यं यदि स्याज्जगदेतदात्मनो, न तत्त्व हानिर्निगमाऽप्रमाणता ॥
असत्यवादित्वमपीशितुः स्यात्,नैतत्त्रयं साधु हितं महात्मनाम् ॥२३४॥"
॥ (प्राचीन प्रति) विवेकचूड़ामणि, श्लोक-२३४ ॥

अर्थः—शङ्काः-जो यह दृश्य जगत् अपने स्वरूपसे सत्य होवै, तो आत्म तत्त्वकी कुछ हानि तो नहीं होगी? समाधानः-जगत्को अनित्य कहनेवाला वेद अप्रमाण होगा, वेद रचनेवाले ईश्वर भी मिथ्यावादी होंगे। परन्तु जगत्का सत्य होना, वेद अप्रमाण ठहरना, ईश्वरको मिथ्यावादी कहना, ये तीनों बातें किसी महात्माको इष्ट नहीं, इसलिए जगत्को असत्य मानना ही योग्य है ॥

इन दो प्रमाणोंसे जगत्का कर्त्ता ब्रह्म है। ऐसा अज्ञान वा मायासे आरोप हुआ है, वास्तवमें एक ब्रह्म ही सत्य है? ॥

(४४) उत्तरः—परमाणुओंका समूहरूप खण्डित पदार्थ कारणरूप पृथ्वी 'आधार' है। और उसका ही कुछ खण्डित अंश कार्यरूप घट 'आधेय' बना है। अथवा कारण-कार्यरूप ही 'आधार-आधेय' सम्बन्ध जड़में रहता है। परन्तु अखण्ड शुद्ध चेतन स्वरूप ब्रह्म कारणरूप या आधाररूप सत्य रह कर, उसीका कार्य वा आधेयरूप असत्य (मिथ्या) नाम-रूपात्मक खण्डित माया वा अज्ञानरूप जगत् कैसे प्रकट होगा? ॥

यदि एक अधिष्ठान ब्रह्म ही सत्य है, और माया रज्जुमें भास हुए सर्पवत् मिथ्या है (है ही नहीं), तो जगत्का भ्रम किसको हुआ? और क्यों हुआ? भ्रमको-ही-भ्रम हुआ क्या? भ्रम हुआ

ही नहीं माने, तो ईश्वर क्यों माना गया ? वेद क्यों बनाये गये ? सर्व जीव कहाँसे प्रकट हुए ? तिनको जन्म–मरणादि दुःखोंका रोग क्यों लगा ? निवृत्तिकी चाह क्यों हुई ? जड़ तत्त्व कहाँसे आए ? इत्यादि बहुत-सी शङ्काएँ उत्पन्न होती हैं। आपके प्रश्नका उत्तर हम आगे कहेंगे। परन्तु यह तो बतलाइये कि, आप अज्ञान या मायाका क्या स्वरूप मानते हैं ? ॥

प्रश्न (४५) हे दयानिधे ! अज्ञान या मायाके स्वरूप विषय कहा है:—

श्लोकः–"[illegible] नो, भिन्नाप्यभिन्नात्युभयात्मिका नो ॥
साङ्गाप्यनङ्गाप्युभयात्मिका नो, महाद्भुतानिर्वचनीयरूपा ॥ १११ ॥"
॥ (प्राचीन प्रति) विवेकचूड़ामणि, श्लोक–१११ ॥

अर्थः—शङ्कराचार्य कहते ❀ हैं—इस मायाको हम सत्य भी नहीं कह सकते, क्योंकि अद्वैत कहनेवाली बहुत-सी श्रुतियाँ विरोध पड़ती हैं। अथवा तिसको असत्य भी नहीं कह सकते, क्योंकि इस मायाका कार्य प्रत्यक्ष ही देखनेमें आता है। मायाको आकारवान् या निराकार भी नहीं कह सकते, इसलिए 'अनिर्वचनीयरूप' माया वा अज्ञान है ॥

इस प्रमाणसे सत्य अर्थात् जो पदार्थ त्रिकालमें एक-सम रहै, वही सत्य है। ऐसी मायाको माने, तो ज्ञानसे वह नाश होती है; (तिसको प्रमाण पूर्वके प्रश्न १५ में देखिये !) । असत्य अर्थात्

❀—वह न सत् है, न असत् है और न [सदसत्] उभयरूप है; न भिन्न है, न अभिन्न है और न [भिन्नाभिन्न] उभयरूप है; न अङ्गसहित है, न अङ्गरहित है और न [सांगानंग] उभयात्मिक ही है; किन्तु अत्यन्त अद्भुत और अनिर्वचनीयरूपा (जो कही न जा सके ऐसी) है। ॥१११॥ विवेकचूड़ामणि ॥

खरगोशका सींङ्ग, बन्ध्याका पुत्र, आकाशमें फूल, ये त्रिकालमें हैं नहीं, ऐसी मायाको माने, तो सब संसार प्रत्यक्ष दिखाई देता है ? ॥

इसीसे अज्ञानरूपी मायाको सत्य-असत्यसे विलक्षण अनिर्वचनीय स्वरूप (मिथ्या, कल्पित या केवल देखनेमात्र ही) मैं मानता हूँ ? ॥

(४५) उत्तरः—अविद्या (अज्ञान) विषय कहा हैः—

"इन्द्रियदोषात्संस्कारदोषाच्चाविद्या ॥"—वैशेषिक सूत्र १० । अ० ६ । आ० २ ॥

अर्थः—इन्द्रियोंके संस्कार दोषोंको "अविद्या" कहते हैं ॥

चौ०—"जड़ आसक्त अज्ञान सो नाशी ॥ ६ ॥"—नं० २१५ ॥ निर्णयसार ॥

अर्थः—सद्-गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं कि, नाशवान् विषयानन्द, अहङ्कार, कल्पना, नाना भास, जड़ देहोंके विकार इत्यादि जीवोंकी जड़ाशक्ति, यही अज्ञान है ॥

इन दो प्रमाणोंसे मुख्य जड़ देह ही माया है, और जड़ पदार्थोंमें मनुष्योंकी आसक्ति, यही अज्ञान है । परन्तु पूर्वोक्त अनिर्वचनीय माया मिथ्या भ्रमरूप माननेमें आप कोई दृष्टान्त दीजिये ! जिससे हमको भी यथार्थ उसकी प्रतीति होगी ॥

प्रश्न (४६) हाँ दयानिधे ! माया मिथ्या भ्रमरूप विषय दृष्टान्त भी मैं देता हूँः—

श्लोकः—"पञ्चभूतात्मकं विश्वं, मरीचिजलसन्निभम् ॥ ३ ॥"

॥ अवधूतगीता, अध्याय १ । अर्द्ध श्लोक-३ ॥

अर्थः—दत्तात्रेयजी कहते हैं कि, यह पाँच तत्त्वरूपी जगत् मृगजलवत् मिथ्या प्रतीति-मात्र ही है ।

श्लोकः—"शुक्तौ रजतवद्रज्जौ, भुजङ्गो यद्वदेव तु ॥ ७ ॥"

॥ शिवगीता, अध्याय ६ । अर्द्ध श्लोक-७ ॥

अर्थः—शिव कहते हैं, हे रामजी ! यह प्रपञ्च सीपीमें

रूपा या रस्सीमें सर्पवत् भास मात्र मिथ्या है। ऐसे तत्त्ववेत्ता ब्रह्मज्ञानी कहते हैं ॥

"वाचारम्भणं विकारो नामधेयम्॥"—छान्दोग्य उ०,अ०६।खण्ड१।मन्त्र४-६॥

अर्थः—सर्व नाम-रूप विकारयुक्त माया कहने मात्र, कल्पित या मिथ्या है ॥

इन प्रमाणोंसे मिथ्या, भ्रमरूप अनिर्वचनीय ही माया है ॥

(४६) उत्तरः—माया प्रतीति मात्र मिथ्या नहीं है, परन्तु अनेक चेतन जीव सहित जड़ पाँच तत्त्वोंका जगत् अनादि कालका रहनेसे सत्य ही है ॥ तहाँ कहा हैः—

साखीः—"जो अहि कबहुँ देखा नहीं, तेहि रज्जुमें नहिं दरशाय ॥
सर्प ज्ञान जाको भयो, जहाँ तहाँ देख भयाय ॥ ७६ ॥"
॥ साखी कबीरपरिचय ॥ साखी-७६ ॥

अर्थः—श्रीगुरुदयाल साहेब कहते हैं कि, जिसने सजीव सर्प कभी देखा नहीं है, तिसको निर्जीव (जड़ रस्सीमें भी) सर्प नहीं भासता है। परन्तु जिसको सजीव सर्पका ज्ञान हुआ कि, "जो सर्प काटै, तो मैं मर जाऊँगा" वही जड़ रस्सीमें भास मात्र सर्पका भ्रम होकर डरता है ॥

इस प्रमाणसे सत्य जगत् रहते ही पूर्वमें कहीं सजीव चैतन्य सर्प, जड़ रूपा (रजत या चाँदी) और जड़ जल देखा है, अनुभव किया है, तभी वर्त्तमानमें किसी मनुष्यको निर्जीव रस्सीमें सजीव चैतन्य सर्पका भ्रम, जड़ सीपीमें जड़ रूपाका भ्रम, और भास-मात्र मृगजलमें जड़ जलका भ्रम बारम्बार होता ही रहता है। सो भी प्रकाशयुक्त सामान्य अन्धकार और सादृश्यतासे (समान दोषसे) अनादि जगत्में जड़-चैतन्य पदार्थोंके अनुभव

संस्कारकी स्मृति होकर प्रत्यक्ष प्रतीत होते हैं। पूर्वोक्त जड़-चेतनयुक्त अनादि कालके जगत्को मिथ्या, भ्रम या प्रतीति-मात्र, अथवा सत्य-असत्यसे विलक्षण अनिर्वचनीय माया कहना पक्षपाती अविचार अज्ञान ही ठहरता है ॥

प्रश्न (४७) हे दयानिधे ! भ्रम-मात्र अनिर्वचनीय माया मिथ्या ही है। तहाँ और भी प्रमाण मैं देता हूँ:—

"चित्रसर्पः परिज्ञातो, न सर्प भयदो यथा ॥"-अर्द्ध श्लोक, योगवासिष्ठ ॥

अर्थः—चित्रमेंका मिथ्या सर्प देखकर सत्य सर्पवत् कोई नहीं डरता है ॥ अथवाः-विचारसागरके चतुर्थ स्तरङ्गमें कहा ❀ हैः—

"यदि बाजीगरने किसी पुरुषको मन्त्रके बलसे उसका मिथ्या शत्रु दिखाया होवै, तो वह उसके लिए मारनेका उद्योग नहीं करता ॥"

इन प्रमाणोंसे किसीको कहीं सर्पका मिथ्या चित्र या बाघ देखनेसे मिथ्या ही भासते हैं, कभी सत्य नहीं भासते हैं ॥

इस प्रकारसे मैं मायाको अनिर्वचनीय (मिथ्या देखने-मात्र ही) मानता हूँ ? ॥

(४७) उत्तरः—आप अनेक जीव चेतन और जड़ तत्त्वयुक्त सर्व जगत्को प्रथम मायारूप मिथ्या (देखने-मात्र ही) कहते हो। फिर कहीं सजीव सर्पादि सत्य और निर्जीव सर्प, बाघादि चित्र या बाजीगरने हाथके सफाई चतुराई अभ्यासके बलसे दिखाये हुए भास-मात्र पुरुषादि मिथ्या, ऐसे दृष्टान्त देते हो, वे सब असम्भव दोषसे व्याप्त हैं। देखिये ! कहीं चित्रका निर्जीव सर्प या बाघ देखनेसे सजीव सर्प या सजीव बाघवत् काटनेका डर, शरीर कम्पादि विकार मनुष्योंमें प्रतीत नहीं होते हैं। जैसे छोटे-छोटे अज्ञान

❀ विचारसागर, स्तरङ्ग ४। पृष्ठ १२५ में-॥ ५७ ॥ लिखा है ॥

बालक सजीव सर्प या बाघके काटनेसे मनुष्योंको विशेष दुःख प्राप्त होकर मर भी जाते, ऐसे वे नहीं जानते, इसलिए निर्भयतासे तिनको पकड़ भी लेते हैं, क्योंकि उनको सजीव—निर्जीव दोनों पदार्थोंके भाव समान ही रहते हैं। परन्तु सजीव सर्प या बाघके काट खानेसे मनुष्य मर जाते; ऐसे देखे—सुने और जान लिए हैं, इसलिए जानकार बड़े मनुष्योंमें तिनको देखकर भय, कम्पादि विकार प्रकट हो जाते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि, मिथ्या भास-मात्र पदार्थोंमें सत्यकी भ्रान्ति होती ही नहीं। परन्तु अनादि कालके सत्य जगत्के पदर्थोंमें ही कभी—कभी किसी कारणोंसे मनुष्योंको मिथ्या भ्रान्ति हो जाती हैं ॥ श्रुतिमें कहा है:—

"मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥ १० ॥"

॥ कठ उपनिषद् । अध्याय २ । वल्ली (१–) ४ । मन्त्र–१० ॥

अर्थः—जो पुरुष परमात्माके विषय नानात्त्व करके देखता है। वह मृत्युसे मृत्युको पावता है, अर्थात् चौरासी योनियोंमें भ्रमता फिरता है। इसलिए एक अद्वैत ब्रह्म ही सत्य है; और नाम, रूप, गुणादि मायारूपी जगत् मिथ्या (प्रतीतिमात्र) है ॥

इस प्रमाणसे ऐसा 'भयानक' वेद वचन सुन कर, अद्वैत पक्षपाती वेदान्ती महात्मा सर्व जगत् अनिर्वचनीयरूप मिथ्या और 'एक ब्रह्म सत्य' है। ऐसा सिद्ध करनेके लिए रज्जुमें सर्पका भ्रम, सीपीमें रूपाका भ्रम इत्यादि दृष्टान्त देते हैं। क्योंकि भ्रमरूप सर्पादि द्वैत नाश होकर रस्सी आदि एक अधिष्ठान ही शेष रह जाता है। तैसे ही जगत्को भ्रमरूप मिथ्या मानकर शेष एक अद्वैत अधिष्ठान ब्रह्म ही सत्य रह जावै। परन्तु परमात्मा या ब्रह्मकी कल्पना करनेवाले मनुष्य जीव ही सत्य हैं। क्योंकि पूर्वमें

प्रश्न १७ और प्रश्न २६ के श्रुतियोंमें कहीं अन्त नहीं लगनेसे जीव ही को शुद्ध चेतन ब्रह्म स्वरूप माने हैं ॥

देह और जड़ तत्त्व वादी नास्तिकोंको छोड़ कर बहुतसे पूर्वके मतवाले जगत्को प्रवाहरूप अनादि अर्थात् किसी समय जगत् नहीं था, यह कहा नहीं जाता; ऐसा अनादि ही माने हैं ॥

अब तिनके प्रमाण देते हैः—

(१) "अहङ्कारयुक्त अनादि कालसे जीव देह व्यवहार करते हैं;" और माया तथा मायाके कार्य दोनों अनादि कालसे हैं;" (तिनको प्रमाण पूर्वके प्रश्न १२ और प्रश्न १६ में देखिये !)। ऐसे जगत्को प्रवाहरूप अनादि 'शङ्कराचार्य' माने हैं ॥

"न कर्माविभागादिति चेन्नानादित्वात् ॥ ३५ ॥"

॥ व्यास ब्रह्मसूत्र ३५ । अध्याय २ । पाद १ ॥

अर्थः—पाँच विषयादि संसार कर्त्ता ईश्वर नहीं, जीव है, ऐसे मत् कहो । 'बीज-अङ्कुर-न्याय-' कर्मसे संसार और संसारके जीवोंसे कर्म होते ही आए हैं, इसलिए संसार अनादिसे है ॥

(२) ऐसा जगत्को प्रवाहरूप अनादि वेदान्त शास्त्र कर्त्ता 'व्यासजी' भी माने हैं ॥

(३) सांख्य शास्त्र कर्त्ता 'कपिल मुनि' जगत् प्रवाहरूप अनादि मानते हैं; (तिसको प्रमाण पूर्वके प्रश्न ३२ में देखिये !)॥

और भी कहा हैः—

"अनादिरविवेको अन्यथा दोषद्वयप्रसक्तेः ॥ १२ ॥"

॥ सांख्य सूत्र १२ । प्रकाश-अध्याय ६ ॥

अर्थः—अविवेक प्रवाहरूपसे अनादि है । जो सादि (बीचमें उत्पन्न हुआ) माने, तो दो दोष आते हैं; अविवेककी स्वतः उत्पत्ति

और मुक्तको भी बन्ध प्राप्त होगा। यही 'आत्माश्रय दोष' अर्थात् आप ही कर्मका कर्त्ता चैतन्य और कर्म करके बनाये हुए जड़ पदार्थ, दोनों आप ही बन जाना, यह प्रथम दोष है। अविवेकसे कर्मकी उत्पत्ति माने, तो वह कर्म इस अविवेकका कारण, ऐसे कर्म कारणकी उत्पत्तिका अन्त नहीं मिलनेसे 'अवस्था दोष' जलधारावत् कर्मकी धारा मानना यह दूसरा दोष है ॥

(४–५) वैशेषिक और न्याय शास्त्र कर्त्ते 'कणाद' और 'गौतम ऋषि' ये काल, दिशा, आत्मा, मन, तथा पाँच तत्त्व, ऐसे नौ द्रव्योंको नित्य मानकर जगत्को प्रवाहरूप अनादि मानते हैं; (तिसको प्रमाण पूर्वके प्रश्न ३६ में देखिये !) ॥

(६–७) योग शास्त्र कर्त्ता 'पतञ्जलिजी' पञ्च क्लेश रहित ईश्वर, पञ्च क्लेशयुक्त अनेक जीव तथा प्रकृति, ये जगत्में तीन पदार्थ अनादि माननेसे आप जगत् प्रवाहरूप अनादि ही माने हैं; (तिसको प्रमाण पूर्वके प्रश्न ३६ में देखिये !)। मीमांसा शास्त्र कर्त्ता तो जगत् कर्त्ता नहीं मानते। परन्तु कर्मके अनुष्ठानसे चित्त शुद्धि और मुक्तिका कथन करते हैं; (ऐसे आपके बनाये हुए सूत्रोंके प्रमाण हैं) इसलिए 'जैमिनी ऋषि' भी जगत्को प्रवाहरूप अनादि माने हैं ॥

(८) मनुस्मृतिके प्रथम अध्यायमें श्लोक ७६ से श्लोक ८० तक बारम्बार जगत्की उत्पति और प्रलयका कथन ❀ है।

❀ आकाशात्तु विकुर्व्वाणात्सर्व्वगन्धवहः शुचिः ॥ बलवाञ् जायते वायुस्स वै स्पर्शगुणो मतः ॥ ७६ ॥ वायोरपि विकुर्वाणाद्विरोचिष्णु तमोनुदम् ॥ ज्योति-रुत्पद्यते भास्वत्तद्रूपगुणमुच्यते ॥ ७७ ॥ ज्योतिषश्च विकुर्वाणादापो रसगुणाः स्मृताः ॥ अद्भ्यो गन्धगुणा भूमिरित्येषा सृष्टिरादितः ॥ ७८ ॥ यत्प्राग्द्वादशसाह-

इसलिए 'मनुजी' भी जगत्को प्रवाहरूप अनादि माने हैं ॥

(९) भगवद्गीताके श्रीकृष्णका प्रमाण सुनिये:—

श्लोक:—"प्रकृतिं पुरुषं चैव, विद्धयनादी उभावपि ॥
विकारांश्च गुणांश्चैव, विद्धि प्रकृतिसम्भवान् ॥ १६ ॥"
॥ भगवद्गीता, अध्याय १३ । श्लोक १६ ॥

अर्थ:—प्रकृति और पुरुष दोनों अनादि हैं । परन्तु जगत्के त्रिगुणोंका विकार प्रकृतिरूप उपादान-कारणसे हुआ है ॥

इस प्रमाणसे जगत् प्रवाहरूप अनादि ही सिद्ध होता है ॥

(१०) आर्यसमाजके आचार्य दयानन्द सरस्वतीजी 'ईश्वर' 'अनेक जीव' और 'प्रकृति' इन तीनोंको अनादि मान कर, दिन-रात्रिवत् जगत्को प्रवाहरूप अनादि माने हैं; ❀ (तिसको प्रमाण

स्समुदितं दैविकं युगम् ॥ तदेकसप्ततिगुणं मन्वन्तरमि होच्यते ॥ ७९ ॥ मन्वन्तराण्यसंख्यानि सर्गः संहार एव च ॥ क्रीडन्निवैतत्कुरुते [illegible] पुनः पुनः ॥८०॥
॥ मनुस्मृति, अध्याय १ । श्लोक ॥ ७६ । ७७ । ७८ । ७९ । ८० ॥

—विकारको प्राप्त हुए आकाशसे सब भाँतिके गन्धका बहनेवाला बलवान् पवित्र पवन उत्पन्न होता है, उसका गुण स्पर्श कहा गया है ॥ ७६ ॥ विकारको प्राप्त हुए पवनसे भी दूसरेको प्रकाशित करनेवाला तथा अन्धकारका विनाशक प्रकाशमान तेज उत्पन्न होता है, उसका गुण रूप है ॥ ७७ ॥ विकारको प्राप्त हुए तेजसे रस जिनका गुण ऐसे जल उत्पन्न होते हैं, और जलसे गन्ध जिसका गुण ऐसी भूमि उत्पन्न होती है, यह आदिसे सृष्टि कही ॥ ७८ ॥ पहले कही हुई जो बारह हजार वर्षोंकी मनुष्योंकी सन्ध्या तथा सन्ध्यांशसहित मनुष्योंकी चतुर्युगी है, वह देवताओंका एक युग होता है । उसका इकहत्तरि गुणा करनेसे एक मन्वन्तर होता है, उसमें एक मनुका सृष्टि आदि करनेका अधिकार होता है ॥ ७९ ॥ असंख्य कहिये जिनकी संख्या नहीं, ऐसे मन्वन्तरोंको और सृष्टि तथा संहारको वह परमेष्ठी खेलते हुए मानो बारम्बार करता है ॥ ८० ॥

❀ सत्यार्थ प्रकाश गुटका, पृष्ठ २४४ में लिखा है ॥

पूर्वके प्रश्न ३७ में देखिये !) ॥

(११) पूर्वके प्रश्न ३७ के छान्दोग्य उपनिषद्के श्रुतिमें जगत् उत्पत्तिके पूर्व सत्यरूपसे ही रहा; ऐसा कहा है, सो देख लीजिये ! वेदमें कहा है:—

"सूर्याचन्द्रमसौधाताय्थापूर्वमकल्पयत्।।दिवं च पृथिवींचान्तरिक्षमथो स्वः ३"

॥ ऋग्वेद मण्डल १० । सूक्त १६० । मन्त्र—३ ॥

अर्थः—सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, पृथ्वी, वायु, जल, इत्यादिकों—को धारण करनेवाले परमेश्वरने प्रथम कल्पमें जैसा था, तैसा ही रच दिया ॥

(१२) इस प्रमाणसे वेदमें भी जगत्को प्रवाहरूप अनादिसे कहा है ॥

पूर्वोक्त प्रमाणोंसे वेद, वेदान्त तथा अन्य शास्त्र कर्त्ते जगत्को प्रवाहरूप अनादि ❀ माने हैं। इसलिए अज्ञान वा मायाको सत्य—असत्यसे विलक्षण अनिर्वचनीय (मिथ्या भास-मात्र) कहना, यह दो मुखके सर्पवत् या दो तरहसे बोलनेवाले अन्यायी अथवा मिथ्यावादी आप क्यों बनते हो ? अनेक देहधारी चेतन जीव सहित जड़ पाँच तत्त्वोंका जगत् प्रत्यक्ष सब देख रहे हैं । जो वस्तु किसी कालमें भी नहीं, उसका भास भी कहाँसे होगा ? कोई ईश्वर, परमात्मादि जगत् कर्त्ता है । ऐसी कल्पना मनुष्य बिना कौन करेंगे ? ऐसा यथार्थ निष्पक्ष विचार कीजिये ! यदि माया मिथ्या है, तो वह भ्रममें कैसे डालेगी ? और उसका कार्य 'जगत्' कहाँसे प्रतीत होगा ? मुख्य 'देह' यही 'माया' है। और जीवोंकी 'जड़ासक्ति' यही 'अज्ञान' है, ऐसा पूर्वमें कहा है। यदि माया मिथ्या भास-मात्र

❀ विचारसागर, स्तरङ्ग ५ । पृष्ठ २२४ में "संसार अनादि है" पृष्ठ ३०४में— "संसार प्रवाह अनादि है" । ऐसा लिखा है ॥

है, तो वेदान्ती पक्षपातीजन शरीरोंके अनेक दुःखोंसे रोय-रोयके तिनको अत्यन्त निवृत्ति करनेके लिए सत्सङ्ग क्यों चाहते हैं ? वेद और आचार्य गुरुलोगोंको क्यों मानते चले आते हैं ? भास-मात्र मिथ्या माया छुड़ानेके लिए उपदेश और अनेक साधनोंको क्यों कर रहे हैं ? देखिये ! यही बड़ा आश्चर्य है ! ॥

इन पूर्वोक्त प्रमाणोंसे जड़-चेतनयुक्त अनादि कालके सत्य जगत्रूप मायाको केवल भास-मात्र, कल्पित और मिथ्या माननेवाले आप झूठे मिथ्यावादी हो ! सत्य निष्पक्ष विचार कीजिये ! ॥ आप मायाको और भी किसी प्रकारसे मान रहे हो क्या ? सो कहिये ? ॥

प्रश्न (४८) हाँ दयानिधे ! मानता हूँ ! यदि माया सत्य-असत्यसे विलक्षण अनिर्वचनीय (मिथ्या भास-मात्र) नहीं ठहरती, तो तिस विषय और भी कहा है:—

श्लोक:—"सेयं भगवतो माया, यन्नयेन विरुध्यते ॥
ईश्वरस्य विमुक्तस्य, कार्पण्यमुत बन्धनम् ॥ ६ ॥"
॥ भागवत, स्कन्ध ३ । अध्याय ७ । श्लोक-६ ॥

अर्थ:—मैत्रेयजी विदुरसे कहते हैं कि, अचिन्त्यशक्ति यह परमेश्वरकी माया है कि, जो तर्कसे विरोध होना । जैसे नित्य मुक्त आत्माको जो कृपणता और बन्धन है, वह तर्क के बाहर है ॥

विचारसागरके पञ्चम स्तरङ्गमें ❀ और वृत्तिप्रभाकरके षष्ठ प्रकाशमें ‡ कहा है:—"युक्तिको न सहारे वह अचिन्त्यशक्ति माया है ।" अथवा मायामें 'अद्भुतशक्ति' है, और प्रश्न ३७ में दो श्रुतियाँ कही हैं, तिनमें परमात्मा पुरुष असङ्ग, अक्रिय, और इच्छा रहित कहा है ॥

❀ विचारसागर, स्तरङ्ग ५ । पृष्ठ २२२ में और ‡ वृत्तिप्र० प्र० ६ पृष्ठ १०६-१६६॥

इन प्रमाणोंसे 'अचिन्त्यशक्ति या अद्भुतशक्ति' अर्थात् नहीं घटनेको भी घटानेवाली माया है। "अघटपटीयसी माया" वह असङ्ग पुरुषमें इच्छा प्रकट कराय, उसके ही आधारसे जगत्को रचती है, तिसको मैं जगत्कर्त्ता मानता हूँ ? ॥

(४८) उत्तरः—चेतन परमात्मा असङ्ग और अक्रिय रहनेसे नपुंसक पुरुषवत् वह जगत्को रचनेमें असमर्थ है। और माया स्वयं जड़ रहनेसे बन्ध्या-स्त्री-वत् वह भी पुरुषमें इच्छा प्रकट कराय, उसके आधारसे जगत्को रचनेमें असमर्थ है। क्योंकि जड़में ज्ञान नहीं; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न ३ में देखिये !) ॥

प्रश्नमें परमात्मा असङ्ग, अक्रिय और इच्छा रहित कहा है। परन्तु विचारसागरके पञ्चम स्तरङ्गमें ‡ बहुत ही ग्रन्थोंके प्रमाण देके लिखे हैं, कि "ब्रह्मरूप शुद्ध चेतनमें मायाको सत्ता-स्फूर्ति (चेतानेकी शक्ति) देना, इतना ही सामर्थ्य है, और कोई भी शक्ति नहीं। वही माया शुद्ध ब्रह्मके आश्रय गोरे अङ्गमें तिलवत् एकदेशी रहकर, जैसे घरको अन्धकार आच्छादित कर देता है, तैसे ही वह व्यापक शुद्ध ब्रह्मको विषय करती है, अर्थात् ढाँक लेती है।" परन्तु सर्वत्र व्यापक शुद्ध ब्रह्मको एकदेशी मायाने आच्छादित करके सर्वत्र अन्धकार ही हो गया, ऐसी महाअज्ञानताकी कल्पना जगत्में वैसे भ्रमिक मनुष्य बिना कौन करेंगे? सो विचार करिये ! ॥

पुनः उसी ग्रन्थके षष्ठ स्तरङ्गमें ❀ लिखा है:—"शुद्ध ब्रह्मकी ही शक्ति माया है; जिसको बल, जोर और सामर्थ्य कहते हैं ॥"

अथवाः—ध्यानयुक्त ब्रह्मवेत्ता पुरुष कल्पित परमेश्वरकी

‡ विचारसागर, स्तरङ्ग ५। पृष्ठ २१८–२२२ तक में वर्णन है ॥

❀ विचारसागर, स्तरङ्ग ६। पृष्ठ ३९२–४०१ में वर्णन है ॥

शक्तिको जगत्की उत्पत्तिका कारण ठहराये हैं; (उसे प्रमाणपूर्वके प्रश्न ३६ में देखिये !) ॥

इन प्रमाणोंसे शुद्ध ब्रह्ममें शक्ति भी होवै, तो उससे भिन्न नहीं। क्योंकि शक्ति–शक्तिमानमें ही रहती है, अर्थात् वह उसका स्वयं–स्वरूप ही है। फिर दूसरी कल्पित माया मानके तिसको अचिन्त्य–शक्ति कहना अन्यायका कथन है। वेदान्तके पक्षवाले महात्माओंकी यहाँ पर बुद्धि कुण्ठित हो गई, इसलिए मायामें अद्भुत शक्ति मान लिये। इस हेतु शक्तिमान् और इच्छा करके जगत्को रचनेवाला माना हुआ कल्पित कर्त्ता योगीवत् जगत्में ही एक जगह रहनेसे वह सर्व जगत्को कैसे उत्पन्न करेगा ? जगत् प्रवाह-रूपसे अनादि है; (तिसको बहुतसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न ४७ में देखिये !)। "इच्छा शक्ति" न स्वयं शुद्ध चेतनमें है, और न केवल जड़में है। परन्तु पाँच विषय सुखोंके देहाध्याससे सदोदित सुख ही के लिए सर्व जीवोंको इच्छा, सङ्कल्प वा स्फुरणा हुआ करती है, ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव है ॥

इस प्रकारसे 'स्वाश्रय–स्वविषय' सहित मायायुक्त शक्तिमान् ब्रह्म या स्वयं अचिन्त्यशक्ति माया ही को कर्त्ता मानना अन्यायका कथन है ॥

पूर्वोक्त अचिन्त्य वा अद्भुत शक्तिमान् माया चेतन पुरुषसे अलग है नहीं। और शुद्ध चेतनमें दुर्घट इच्छा भी उत्पन्न करने वाली नहीं। फिर गाफिल मनुष्यवत् आप जड़ मायामें अद्भुत–शक्ति है, ऐसी भ्रमकी बात क्यों बोलते हो ? आप इस जगत्की उत्पत्ति किस प्रकार मानते हो ? सो कहिये ! ॥

प्रश्न (४६) यदि शुद्ध ब्रह्मसे भिन्न माया रहकर, अचिन्त्य वा अद्भुत शक्तिमान् वह नहीं ठहरती, तो आभासवादसे = बिम्ब-प्रतिबिम्ब-वादसे जगत्की उत्पत्ति विषय कहा है:—

शुद्ध चेतन ब्रह्मके पास अज्ञान (माया) अनादि है; (उसे पूर्वके प्रमाण प्रश्न १६ और २५ में कहा है !) ॥

"माया चाविद्या च स्वयमेव भवति । जीवेशावभासेन करोति ॥"

॥ नृसिंहोत्तरतापिनि उपनिषद् । खण्ड ६ ॥ पंक्ति १०–११ ॥

अर्थ:—सत्त्व, रज, तम, ये त्रिगुणरूप मूलप्रकृति (माया) अविद्यारूप स्वयं बनती है । और मायाके विषय परमात्माका प्रतिबिम्ब (आभास) होनेसे ईश्वर और अनेक जीव वही परमात्मा स्वयं प्रकट होता है ॥

श्लोक:—"जीवेशौ च विशुद्धा चिद्विभेदस्तु तयोर्द्वयोः ॥
अविद्या तच्चितोर्योगः, षडस्माकमनादयः ॥ १ ॥"

॥ (संक्षेप शारीरिक कारिका) वेदान्त साम्प्रदायिक वचन श्लोक–१ ॥

अर्थ:—शुद्ध चेतन ब्रह्म तथा विद्या और अविद्या व मायाके योगसे ईश्वर और जीव ये दो पदार्थ मिलके वेदान्तमें षट् पदार्थ अनादि माने हैं ❀ ॥

इन प्रमाणोंसे जगत्के उत्पत्तिका भेद ऐसा कहा है:— शुद्ध चेतन ब्रह्मका प्रतिबिम्ब विद्यामायामें या शुद्ध सत्त्वगुण मायामें पड़ा, इससे शुद्ध ब्रह्म, विद्यामाया और शुद्ध प्रतिबिम्ब तीनों मिलकर, वही ब्रह्म मायाधीश, सर्वज्ञ व्यापक ईश्वर कहाता है । अथवा शुद्ध चेतन ही बिम्बरूपसे ईश्वर कहाता है । सबके अन्तर कूटस्थ

❀ अर्थात् १ जीव, २ ईश्वर, ३ ब्रह्म, ४ जीव और ईश्वरका विशेष भेद, ५ अविद्या, अज्ञान, और ६ अविद्या और चेतनका योग, इनको अनादि मानते हैं । परन्तु एक ब्रह्म अनादि अनन्त, और अन्य पाँच अनादि शान्त माने हैं ॥

साक्षी चेतनका या बाहरके शुद्ध ब्रह्मका प्रतिबिम्ब अविद्यामाया या रज, तमोगुणसे दबे हुए मलीन सत्त्वगुणमें वा बुद्धिमें पड़ा, इसीसे शुद्ध ब्रह्म, अविद्यामाया और मलीन प्रतिबिम्ब तीनों मिलकर वही ब्रह्म देहरूप घटोंके उपाधियोंसे मायावश, अल्पज्ञ, एकदेशी अनेक जीव कहाता है। ऐसे १. शुद्धचेतन ब्रह्म, २. ईश्वर चेतन, ३. जीव चेतन, ४. अविद्या (अज्ञान), ५. अविद्या और चेतनोंका परस्पर सम्बन्ध और ६. सबोंके परस्पर भेद; ये षट् पदार्थ वेदान्त शास्त्रमें अनादि माने हैं। परन्तु शुद्ध ब्रह्म असङ्ग अक्रिय, निर्विकार रहनेसे स्वरूपसे अनादि है ॥

वृत्तिप्रभाकरके षष्ठ प्रकाशमें ❀ कहा है:—

"अज्ञान भावरूप अनादि है। परन्तु ज्ञानसे मोक्ष दशामें तिसका नाश होता है," और कारण-कार्यरूप माया अनादिसे है; (तिसको प्रमाण पूर्वके प्रश्न १६ में कहा है!)। इसलिए माया, मायाका कार्य, ईश्वर भाव, जीवभाव, सबोंका सम्बन्ध और तिनके भेद, अनादिसे हैं। परन्तु शान्त अर्थात् प्रलयमें नाश माना है, सम्पूर्ण शान्त नहीं। अर्थात् उत्पत्ति-प्रलयरूप जगत्का प्रवाह अनादिसे चला आया है। क्योंकि कहा है:—

श्लोक:—"मय्येव सकलं जातं, मयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥
मयि सर्वं लयं याति, तद्ब्रह्माद्वयमस्म्यहम् ॥ १९ ॥"
॥ कैवल्य उपनिषद् । खण्ड १ । मन्त्र श्लोक-१६ ॥

अर्थ:—ब्रह्मवेत्ता पुरुष कहते हैं कि, जिससे यह सर्व भूत जगत् उत्पन्न होता है, जीता है और सर्व जीव मृत्युको प्राप्त हुए बाद पाँच महाभूत सहित जिसमें लय होता है; वही अद्वैत ब्रह्म मैं हूँ! ॥

❀ वृत्तिप्रभाकर, प्रकाश ६। पृष्ठ ११८-११६ में लिखा है ॥

इन प्रमाणोंसे शुद्ध चेतत ब्रह्मके बिम्ब-प्रतिबिम्ब भेदसे ईश्वर अनेक जीव और मायाका परिणाम सब विश्व (पाँच जड़ तत्त्वोंका जगत्) उत्पन्न हुआ है और बारम्बार प्रलय भी होगा; ऐसा मैं मानता हूँ ? ॥

(४९) उत्तरः—जगत्की उत्पत्ति और प्रलयके लिये ईश्वर माना है। परन्तु जगत् अनादि कालसे है, अर्थात् वह किसी समय न था, ऐसा नहीं कहा जाता। ऐसा वेद-शास्त्रादि सब मतवाले मानते हैं; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न ४७ में देखिये !)। और जगत्में ज्ञानी आदि सर्व संसारी जीवोंने अपने-अपने सम्पूर्ण प्रारब्ध कर्म भोगे बिना एक ही समय सबको मृत्यु प्राप्त नहीं होते; (उसे उपनिषद्का प्रमाण पूर्वके प्रश्न ३२ में देखिये !)। इसलिए अनेक, देहधारी चेतन जीव सहित पाँच तत्त्वोंका जगत् अनादि ठहरनेसे ईश्वर माननेका कोई प्रयोजन ही नहीं ॥

दूसराः—इन्द्रियोंके 'संस्कार दोष' या जीवोंकी 'जड़ासक्ति' यही अज्ञान है; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न ४५ में देखिये !)। इसीसे अज्ञान कोई स्वतन्त्र मायारूप पदार्थ ही नहीं, जिसको शुद्ध ब्रह्मके आश्रित माना है ॥

तीसराः—गुणी वस्तु बिना गुणरूप माया वा प्रकृति भी स्वतन्त्र पदार्थ मानना असम्भव दोषयुक्त है ॥

चौथाः—रूपवान, एकदेशी पदार्थका ही प्रतिबिम्ब होता है; जैसे दृश्य, साकार मुखका साकार दर्पणमें दृश्य साकार प्रतिबिम्ब; परन्तु प्रतिबिम्ब स्वरूपसे जड़ ही रहता है ॥

विचारसागरके चतुर्थ और षष्ठ स्तरङ्गमें ❀ कहा है:—

❀ विचारसा० त० ४, पृष्ठ ११८-११९ तथा १३६-१४१ और पृष्ठ ३३४-३३५ में है॥

"कूटस्थ–साक्षी चेतन–आकाशवत् सर्वत्र देहमें व्यापक है। वैसे ही अन्तःकरण वा उसकी वृत्तिरूप बुद्धि भी मध्यम परिमाण अर्थात् देह भरमें व्यापक मानी है। और प्रतिबिम्ब भी स्फटिकमणिमें लाल फूलके दमकवत् देह भरमें व्यापक मानकर तीनों मिलकर अनेक, अखण्ड चेतन जीव माने गये।" परन्तु तीन निराकार व्यापक वस्तु एक देशमें रहना ही असम्भव दोषयुक्त ठहरनेसे अनेक चेतन जीव मानना ही असिद्ध है। क्योंकि वे तीन पदार्थ मिश्रित जड़ स्वरूप ही ठहरते हैं॥

यद्यपि निराकार शुद्ध ब्रह्मको निरपेक्षिक व्यापक तीन भागमें स्वयं प्रकाशक माना है, और एक भागमें (अंशरूप देशमें) अनन्त ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्तिके कारण अज्ञानरूप–मायाको सापेक्षिक व्यापक मानी है; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न ४० में देखिये !)। तथापि जगतमें व्यापक कोई पदार्थ ही नहीं है। सर्व पृथक्–पृथक् एकदेशी ही हैं; (तिसको प्रमाण पूर्वके प्रश्न ५। ६। ६। १०। ११। १२ और प्रश्न १३ में देखिये !)। इसलिए शुद्ध ब्रह्मको व्यापक मानना मनुष्योंकी कल्पना ही है॥

वृत्तिप्रभाकरके अनिर्वचनीय ख्यातिमें ‡ कहा है:— "अज्ञानरूप माया यह सत्यसे विलक्षण 'बाधवान' और असत्यसे विलक्षण 'रूपवान' अर्थात् मिथ्या (देखने–मात्र) मृगजलवत् है।" परन्तु प्रश्नमें मिथ्या मायाको शुद्ध ब्रह्मके आश्रित अनादि मानी है, तो वह ब्रह्म भी मिथ्या वा कल्पित अपदार्थ ही सिद्ध होता है। इसलिए मिथ्या, अनादि, अज्ञानरूप–मायाको और उसके

‡ वृत्तिप्रभाकर, प्रकाश ७। पृष्ठ २३२ में लिखा है॥

कार्यरूप माने हुए जड़—चेतन पदार्थ सहित जगत्को शान्त मानना (नाश मानना), बकवाद ही है ॥

निराकार और सर्वत्र व्यापक माने हुए शुद्ध ब्रह्ममें स्वाभाविक अज्ञानरूप माया—शक्ति है; ऐसा मानना भी नहीं सम्भवता। क्योंकि शक्ति साकार, स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों तथा देहधारी जीवोंमें हैं। ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव है; वह शक्तिमान् पदार्थसे भिन्न रह ही नहीं सकती है ॥

यदि निराकार शुद्ध ब्रह्मसे अज्ञानरूप माया एक भिन्न शक्ति भी मानी, तो गुणी पदार्थ छोड़के सत्त्व, रज, तम, ये त्रिगुणरूप, निराकार अदृश्य, भिन्न स्वरूप मायामें दूसरा निराकार, सर्वत्र व्यापक, प्रतिबिम्बरूप एक चेतन शक्तिमान् कल्पित ईश्वर और देहधारी, एकदेशी, प्रतिबिम्बरूप, अल्पज्ञ, अनेक चेतन जीव सहित कार्यरूपसे जड़ तत्त्वरूप जगत्की उत्पत्तिकी कल्पना करना, यह प्रत्यक्ष धोखा ज्ञान है ॥

निराकार किसी व्यापक पदार्थका प्रतिबिम्ब होता है, ऐसा आप दृष्टान्त भी दे सकते हो क्या ? सो कहिये ? ॥

प्रश्न (५०) हाँ दयानिधे ! निराकार, व्यापक आकाशका प्रतिबिम्ब होता है, तिस विषय कहा है:—

दोहाः—"जो जलमें आकाशको, नहिं प्रतिबिम्ब लखाइ ॥
थोरेमें गम्भीरता, ह्वै प्रतीत किहिं भाइ ॥ ७७ ॥
याते जलमें व्योमको, लखि आभास सुजान ॥
रूप रहित जिमि शब्द ते, ह्वै प्रतिध्वनिको भान ॥ ७८ ॥
॥ पृष्ठ १३३ ॥ दोहा ७७ । ७८ ॥ विचारसागर, स्तरङ्ग ४ ॥

अर्थः—निश्चलदासजी कहते हैं, कि जो जलमें निराकार,

व्यापक आकाशका प्रतिबिम्ब नहीं होवै, तो केवल पग डूबे हुए आकारयुक्त जलमें मनुष्यके आकार या विशेष गहरा आकार क्यों दिखलाई पड़ता है? इसलिए हे शिष्य! जलमें आकाशका प्रतिबिम्ब होता ही है, ऐसा जानिये! अथवा जैसे आकाशका 'गुण' जो रूप रहित 'शब्द' तिसकी 'प्रतिध्वनि' होती है। तैसे ही निराकार आकाशका भी 'प्रतिबिम्ब' होता है, ऐसा जानिये!॥

इस प्रमाणसे निराकार व्यापक आकाशका प्रतिबिम्ब होता है, ऐसा मैं मानता हूँ?॥

(५०) उत्तरः—पोलाकार, अनेक छिद्ररूप या अवकाशका नाम आकाशतत्त्व रक्खा है। अन्य न्यारे-न्यारे चार तत्त्वोंके अखण्ड, अनन्त परमाणुओं और न्यारे-न्यारे अखण्ड चेतन जीवोंके भीतर वह व्यापक नहीं ठहरनेसे आकाश एकदेशी ही है। क्योंकि सर्वत्र संयोगवान् अन्य चार तत्त्वों और अनन्त पदार्थोंके भीतर अनन्त छिद्ररूपसे वह प्रत्यक्ष स्थित है। आकाश स्वतन्त्र अकेला कहीं भी दिखेगा नहीं। सर्वत्र अन्य चार तत्त्वोंके अनन्त, अखण्ड परमाणुओं और अनन्त, अखण्ड चेतन जीवोंने उसका स्थान सदोदित रोक रक्खा है। दृश्य सर्व जगहोंके पोलाकार आकाशमें भी अन्य चारों तत्त्वोंके अनन्त परमाणु, अणु और त्रसरेणु सर्वत्र स्थित हैं, ऐसा विवेकसे जाना जाता है। इसलिए जगत्में व्यापक कोई पदार्थ ही नहीं। क्रिया रहित निराकार आकाशका कोई कार्य नहीं बननेसे उसका गुण प्रतिध्वनि-रूप क्रिया या साकार प्रतिबिम्ब मानना कपोल कल्पना है। परन्तु वायु आदि अन्य तत्त्वोंके सदोदित संयोग सम्बन्धसे क्रिया-रूप शब्द सामान्य-विशेषरूपसे उत्पन्न हुआ करते हैं; (इसका

वर्णन पूर्वके प्रश्न ६ में हुआ है)। चार तत्त्वोंके संयोगसे और देहधारी पशु, पक्षी आदि जीवोंसे ध्वनिरूप शब्द और देहधारी मनुष्योंसे बावन वर्णरूप शब्द उत्पन्न होके ऊँची भूमि, गुम्बज आदिकोंसे शब्द रुककर, पीछे उलटते समय उन शब्दोंकी प्रतिध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं, ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव है ॥

पदार्थ विज्ञानमें लिखा है:—परस्पर संयोगसे पदार्थ कम्पायमान हुए बिना शब्दउत्पन्न नहीं होते। इसलिएनिराकार,अक्रिय आकाशसे सूक्ष्माकार शब्दरूप क्रियाओंकी उत्पत्ति मानना असम्भव दोषयुक्त है॥

यदि निराकारका भी साकार प्रतिबिम्ब माने, तो सूक्ष्माकार, क्रियावान्, परन्तु निराकार माने हुए शब्दोंका निराकार रस और गन्धमें प्रतिध्वनिरूप प्रतिबिम्ब देखा नहीं जाता है। तैसे ही साकार सूर्यका साकार दृश्य मृगजलमें प्रतिबिम्ब होना चाहिये? परन्तु वैसा कहीं भी देखे नहीं। वैसे ही घरमें धरे हुए पात्रोंमेंके जलोंमें उनके बाहरके पोल, निराकार आकाशका भी दृश्य प्रतिबिम्ब कभी देखनेमें नहीं आता है ॥

सत्यार्थ प्रकाशके एकादश समुल्लासमें लिखा ❀ है:— "ऊपर तम्बूवत् नीला-सा रङ्ग प्रतीत होता है; वह जल, पृथ्वी, अग्नि और वायुके असंख्यात परमाणु, अणु और त्रसरेणुओंका फैला हुआ 'जलचक्र' है।" वह अनादि, साकार, 'जलचक्र' तथा बादल, धूएँ, सूर्य, चन्द्र, तारागणादि साकार पदार्थोंका एकदेशी, साकार प्रतिबिम्ब साकार जलमें देखा जाता है। वे पदार्थ बहुत ही ऊँचे वा दूर स्थानमें स्थित हैं। इसीसे घुटनायुक्त आकारके जलमें मनुष्याकार वा अधिक गहरे आकारके तिनके प्रतिबिम्ब प्रतीत

❀ सत्यार्थप्रकाश, समु० ६। पृष्ठ २५७में और समु० ११के पृष्ठ ३२४में लिखा हुआ है॥

होते हैं। इसी सबब निराकार, अदृश्य पदार्थका वा अपदार्थका साकार दृश्य प्रतिबिम्ब होता ही नहीं ॥

अनादि गुणी शुद्ध ब्रह्म और अनादि, गुणरूप अज्ञान वा माया दोनों निराकार एक ही स्वरूप सिद्ध होते हैं। इसलिए माने हुए निराकार, गुणयुक्त, सर्वत्र व्यापक एक ही ब्रह्म पदार्थका अन्य साकार वा निराकार, मिथ्या अज्ञानरूप मायाके पदार्थमें एकदेशी अनेक या सर्वदेशी एक, ऐसे भिन्न–भिन्न प्रतिबिम्ब मानना अन्यायका कथन है। तैसे ही अदृश्य, निराकार आकाशका साकार जलमें साकार दृश्य प्रतिबिम्ब होता है, यह दृष्टान्त भी असम्भव दोषयुक्त है ॥

पूर्वोक्त अक्रिय, परिणाम रहित, पोलस्वरूप, निराकार आकाशका साकार जलमें साकार दृश्य प्रतिबिम्ब मानना असिद्ध है॥

तैसे ही निराकार, मिथ्या देखने-मात्र, अज्ञानरूप माया जो माने हुए शुद्ध ब्रह्मकी शक्ति उसका स्वरूप ही रहनेसे, उस निराकार व्यापक ब्रह्मके देशमें एकदेशी, भिन्न, व्यापक माया मानकर, तिसमें शुद्ध ब्रह्मका प्रतिबिम्ब एक, व्यापक चेतन ईश्वर और अनेक, एकदेशी चेतन जीव मानना भी अन्यायका कथन है। इसलिए अनेक चेतन जीव सहित जड़ पाँच तत्त्वोंका जगत् अनादि सिद्ध ठहरता है। तिनको जगत् कर्त्ता माननेका कोई प्रयोजन ही नहीं; ऐसा आप जानिये ! ॥

प्रश्न (५१) यदि आभास–बिम्ब-प्रतिबिम्ब-वादसे कर्त्ता नहीं ठहरता, तो अवच्छेद-वादसे जगत्की उत्पत्ति विषय कहा है:–

"कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः ॥" –शारीरिक भाष्य ॥

अर्थः—कारणोपाधिरूप अज्ञान या माया विशिष्ट–चेतन-

ईश्वर–है, और कार्योपाधिरूप अविद्या वा नाना अन्तःकरण विशिष्ट चेतन अनेक जीव हैं ॥

विचारसागरके चतुर्थ स्तरङ्गमें ❀ कहा है:—

"जैसे 'नीला घट' है; इस स्थानमें नीलता घटका विशेषण है। क्योंकि नीलताका घट विषय प्रवेश है; और पीला, सफेद आदि रङ्गसे भिन्न करके जनाता है। तैसे ही अन्तःकरण विशिष्ट (अन्तःकरण विशेषणयुक्त) चेतन कर्त्ता–भोक्ता है, और जैसे घटाकाश (घड़ेमेंका आकाश) घट पदार्थसे भिन्न रह कर मन भर अन्नको अवकाश देता है, वह घटकी उपाधि है ॥"

"तैसे ही अन्तःकरण उपाधियुक्त कूटस्थकी (साक्षी चेतनकी) अन्तःकरण उपाधि है। इसरीतिसे एक स्थानमें अन्तःकरण चेतनका विशेषण है, और दूसरे स्थानमें अन्तःकरण चेतनकी उपाधि है ॥"

इन दो प्रमाणोंसे माया उपहित (उपाधियुक्त) ईश्वर और नाना अन्तःकरण उपहित तथा अन्तःकरणविशिष्ट (अन्तःकरण विशेषणयुक्त) अथवा कार्यरूप अविद्या उपाधियुक्त अनेक जीव हैं ॥

उक्त अवच्छेदवा-दसे ईश्वर रचित जगत्को मैं प्रवाहरूप अनादि मानता हूँ ? ॥

(५१) उत्तरः—पाँच तत्त्वोंका कार्यरूप 'देह' यही मुख्य 'माया' है। और जड़ पदार्थोंमें जीवोंकी 'आसक्ति' यही 'अज्ञान' है; (उसे प्रमाण पूर्वमें प्रश्न ४५ में देखिये !)। इसलिए अविद्या-रूप माया कुछ स्वतन्त्र वस्तु नहीं है। यदि मायाको स्वतन्त्र वस्तु भी माने, तो जैसा एकदेशी मनुष्य कोई स्वाङ्ग धर लेता है; वह एकदेशी, एक ही स्वरूप बना लेता है। परन्तु अन्तर–बाहर

❀ विचारसागर, स्तरङ्ग ४। पृष्ठ १७१–१७३ तक लिखा है ॥

व्यापक या सर्वत्र व्यापक निराकार माने हुए शुद्ध ब्रह्मने मायारूप उपाधि ग्रहण करके, दूसरा अन्तर-बाहर व्यापक, निराकार ईश्वररूप धारण करना या स्वयं बन जाना, अन्यायका कथन है। यदि एक निराकार, व्यापक, ईश्वर ही शुद्ध ब्रह्म बन गया, ऐसा माने; तो अखण्ड, अनन्त, देहधारी जीव क्यों दिखलाई पड़ते हैं ? इसलिए शुद्ध ब्रह्म ही कारणरूप मायाकी उपाधिसे एक, व्यापक चेतन ईश्वर और कार्यरूप मायाकी उपाधिसे एकदेशी, देहधारी, अनेक, अखण्ड, चेतन जीव बन गये, यह कथन झूठ ही प्रतीत होता है। क्योंकि अज्ञानरूप मायाको शुद्ध ब्रह्मकी शक्ति या उसीका गुणरूप करके मानी है, इसलिए वह उसका स्वयं स्वरूप ही सिद्ध होती है। और जगत्की उत्पत्तिका कथन सरासर मिथ्या ठहरता है ॥

प्रश्नके प्रमाणसे घटकी नीलताका घट विषय प्रवेश है। और अन्य रङ्गोंसे भिन्न करके जनाती है; इसलिए नीलता घटका विशेषण है, यह कहना यथार्थ है। न्याय मतमें कर्णगोलक आकाशसे भिन्न करके जनाता है, इसलिए कर्णगोलक आकाशकी उपाधि मानी है। परन्तु विचारसागरके षष्ठ स्तरङ्गमें ❀ "अन्तःकरणका देह भरमें व्यापक ऐसा मध्यम परिमाण (आकार) माना है।" इसलिए दो व्यापक पदार्थ एकत्र रहना ही सम्भवता नहीं। फिर भिन्न अन्तःकरणको साक्षी कूटस्थमें प्रवेश मानके विशेषण मानना या उसे कूटस्थकी भिन्न उपाधि मानना, ये दोनों भी कहते नहीं बनता है। इसी सबब मिथ्या देखने-मात्र मायाके कारण, कार्य उपाधिरूप एक कल्पित ईश्वर और अनेक, नित्य, देहधारी चेतन जीव मानना झूठ ही अवच्छेदवादकी कल्पना की

❀ विचारसागर, स्तरङ्ग ६। पृष्ठ ३३४-३३५ में लिखा है ॥

है। इस प्रकारसे जीव और ईश्वरकी असिद्धि होनेसे अन्तःकरण-विशिष्ट चेतन जीव कर्त्ता-भोक्ता और साक्षी कूटस्थ अकर्त्ता-अभोक्ता मानना भ्रमका कथन है ॥

जैसे शुद्ध ब्रह्म को व्यापक मानके उसके आश्रित अनादि, मिथ्या अज्ञानरूप मायाका कार्य पञ्चभूत हैं, और अनन्त जीवोंके अनन्त अन्तःकरण महाभूतोंका कार्य माने हैं। तैसे घट-पटादि सर्व पदार्थ भी भूतों (तत्त्वों) के कार्य हैं। इसलिए घट-विशिष्ट, पट-विशिष्ट, अथवा घटोपाधियुक्त, पटोपाधियुक्त चेतन भी देख नहीं पड़ते। परन्तु देहोपाधियुक्त अनेक जीव ही प्रतीत हो रहे हैं। इस हेतु अविद्या (अज्ञान) उपाधियुक्त सर्वत्र अनेक जीव भी सिद्ध नहीं होते हैं ॥

व्यापक माने हुए सर्व जीवोंके अन्तःकरण अनन्त रहनेसे सर्वत्र हैं। उसके भी परे मायाकी उपाधियुक्त ईश्वर मानना नहीं बनता, क्योंकि उसको सर्वत्र व्यापक ही माना है ॥

कारण मायाकी उपाधि बिना ईश्वर कल्पित है; और नाना अन्तःकरण या कार्य अज्ञानरूप माया बिना अनेक जीव भी कल्पित हैं। परन्तु मायाका कार्य जीव होनेसे वेदान्त मतमें तिनको जड़ ही माने हैं ॥ तहाँ कहा है:-

श्लोकः—"भूमिरापोऽनलो वायुः, खं मनो बुद्धिरेव च ॥
अहंकार इतीयं मे, भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ ४ ॥
अपरेयमितस्त्वन्यां, प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ॥
जीवभूतां महाबाहो, ययेदं धार्यते जगत् ॥ ५ ॥"
॥ भगवद्गीता, अध्याय ७ । श्लोक-४ । ५ ॥

अर्थः—श्रीकृष्ण कहते हैं, हे अर्जुन ! पाँच तत्त्व, मन,

बुद्धि, अहङ्कार, ये अष्टधा मेरी 'अपरा प्रकृति' है ॥ ४ ॥ दूसरी अनेक जीवरूप मेरी 'परा प्रकृति' है, जिसने यह जगत् धारण कर रक्खा है ॥ ५ ॥

इस प्रमाणसे शुद्ध परा प्रकृतिरूप जीव स्वरूपसे जड़, उत्पत्तिवाले, नाशवान् ठहरते हैं। फिर किसको उपदेश देके कौन मुक्त होंगे ? वेदान्ती लोग मायाको मृगजलवत् वा मिथ्या मानकर, अधिष्ठानरूप एक ब्रह्म पदार्थ ही सत्य मानते हैं; जैसे "रज्जु-सर्प-न्याय" परन्तु जिसको अद्वैत ब्रह्मका ज्ञान हुआ, उसको अधिष्ठान रज्जुवत् एक ही ब्रह्मकी प्रतीति होना चाहिये ? फिर वेद, शास्त्रादि वाणी अज्ञानतामें (जगत्की प्रतीतिमें) बनी है, तिन वाणियोंको मानना व्यर्थ है। सर्व ब्रह्मज्ञानी जगत्में उपदेश करते रहे; ऐसा सुना जाता है, और अब उपदेश कर भी रहे हैं। इसलिए जगत्में आजतक अद्वैत ब्रह्मज्ञानी हुआ भी नहीं, न अब है, और न आगे होगा। इसीसे ब्रह्मको पदार्थ अद्वैतरूप मानना मनुष्य जीवोंकी मिथ्या कल्पना ही ठहरती है; और द्वैतरूप जगत् सदैव है ही। ऐसा ही कहा है:—

"सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् ॥ १-२ ॥"

॥ छान्दोग्य उपनिषद् । अध्याय ६ । खण्ड २ । मन्त्र-१-२ ॥

अर्थः—उद्दालक मुनि कहते हैं, हे श्वेतकेतो ! अपनी उत्पत्तिके पूर्व यह दृश्य जगत् अद्वैत, सत्य ब्रह्म ही से प्रतीति मात्र होता भया ॥

ऐसा वेदान्तमें जगत्के आरम्भको 'उपक्रम' कहा है। जगत्के अन्त स्थितिको 'उपसंहार' विषय कहा है:—

"एतादात्म्यमिदꣳ सर्वं ॥"

॥ छान्दोग्य उपनिषद् । अध्याय ६ । खण्ड ८ । मन्त्र-७ ॥

अर्थः—यह दृश्य जगत् अद्वैत ब्रह्मरूप ही है। अर्थात् सजातीय, विजातीय, स्वगत भेद रहित अथवा देश, काल, वस्तु, ये तीन पदच्छेदोंसे रहित, अद्वैत, अखण्डरूप है॥

अब इसीका भेद कहते हैं:—जैसे मनुष्यमात्र एक जातिवाले हैं। तैसे ब्रह्म समान कोई जातिवाला है नहीं, यह 'सजातीय' भेद है। जैसे मनुष्योंसे पशु, पक्षी, आदि जातियाँ विजाति हैं। तैसे ब्रह्म सदृश दूसरा विजातिवाला कोई है नहीं, यह 'विजातीय' भेद है। जैसे शरीरके इन्द्रियादि अवयव भिन्न-भिन्न हैं, तैसे ब्रह्म निराकार, अवयव रहित रहनेसे 'स्वगत भेद' रहित है। ऐसे तीन भेदोंसे रहित शुद्ध ब्रह्म है॥

परस्पर वस्तुओंके नामोंका और रूपोंका अत्यन्त अभाव वह देशका अभाव या 'देश परिच्छेद' है। परन्तु मायोपाधियुक्त ईश्वर और अविद्याकी उपाधियुक्त सर्व जीव प्रलयमें नहीं रहते, ऐसा माना है। इसलिए जीव, ईश्वर, उपाधि रहित अधिष्ठान शुद्ध ब्रह्मके आश्रित अनादि, कारणरूप अज्ञान वा माया सदैव रहती है, तिसका नाश (अभाव) कभी नहीं होता, ऐसा 'विचारसागर' ❀ 'वृत्तिप्रभाकर' आदि ‡ भाषा ग्रन्थोंमें वर्णन किये हैं। कार्य मायाका अभाव वह 'प्राग अभाव' है। अनादि कारण मायामें लय होके प्रागका अभाव होना, वह 'प्रध्वंस अभाव' है। इन दोनों अभावोंको काल-अभाव (कालपरिच्छेद) कहा है। परस्पर वस्तुओंके सम्बन्धका अभाव ही 'अन्योन्य अभाव' है यही वस्तु अभाव (वस्तुपरिच्छेद) है। पूर्वोक्त तीन परिच्छेदोंसे रहित, एकरस, अखण्ड, अद्वैत ब्रह्म

❀ विचारसागर, तरङ्ग ६। पृष्ठ ४१२ में देखिये॥

‡ वृत्तिप्रभाकर, प्रकाश ६। पृष्ठ १०६-१६६ में लिखा है॥

है; ऐसा कथन किये हैं ॥

परन्तुः—शुद्ध ब्रह्मको असङ्ग माना है; (उसे पूर्वका श्रुति प्रमाण प्रश्न ४ में देखिये !)। जड़, अज्ञानरूप, अघटित मायाकी उपाधि सहित ईश्वरभाव और जीवभाव अर्थात् विद्या-अविद्याकी उपाधि सहित, व्यापक चेतन ईश्वर और अनेक चेतन जीव कल्प-कल्पमें और महाप्रलयमें उत्पत्ति तथा लय ब्रह्ममें हुआ करते हैं। इस प्रकार माननेसे "ईश्वर और अनेक जीव" मिथ्या मायाका कार्य जड़ ही ठहरते हैं। परन्तु जड़ मायामें जगत्की उत्पत्ति करनेका ज्ञान नहीं; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न ३ में देखिये !) ॥

विचारसागरके पञ्चम स्तरङ्गमें लिखा ❀ है:—

"मायाधीश ईश्वर जब उदासीन (वैराग्यवान्) बनता है, तब जगत्का प्रलय करता है। फिर जब अनादि कालके जगत्में अनन्त जीवोंके कर्म फल देनेको सन्मुख होते हैं; तब वह रागी बनके जगत्की उत्पत्ति करता है ॥"

परन्तुः—मिथ्या मायाका कार्य मृगजलवत्, व्यापक ईश्वर जगत्की उत्पत्ति करके, जब जीवोंके कर्मोंके फल देनेसे थक जाता होगा, तब उदासीन (निर्दयी) बनकर सर्व जगत्का प्रलय करता होगा ? परन्तु सर्व जीवोंके शरीर अपने-अपने प्रारब्ध कर्म सम्पूर्ण भोगे बिना एक ही समय पर कभी नहीं छूटते; (उसे श्रुति प्रमाण पूर्वके प्रश्न ३२ में देखिये !)। अनन्तर बहुत ही समय बीत जाने बाद नींद लेके, उसकी थकावट दूर हो जानेसे दयावान्, रागी बन कर वह जगत्की उत्पत्ति करता होगा ? ऐसे-ऐसे मिथ्या बातोंके

❀ विचारसागर, स्तरङ्ग ५। पृष्ठ २२५ में कहा है ॥

दृष्टान्त देके, वेदान्ती (मिथ्यावादी महात्मा) अज्ञानी मनुष्योंको भ्रमाय दिये, भ्रमाय रहे हैं, और आगे भी भ्रमाय देवेंगे। परन्तु जगत्में मनुष्यजीव रहे बिना अद्वैत ब्रह्मकी और ईश्वरकी कल्पना कौन कर सकते हैं ? इसलिये अनादि कालसे यह जगत् अनादि सिद्ध है; (तिसको बहुतसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न ४७ में देखिये !)। फिर सम्पूर्ण जगत्के प्रलयका अन्त लगानेवाले आप व्यर्थ तर्कबलसे असत्यको सिद्ध करना, ऐसे प्रौढ़ीवादी क्यों बनते हो ? ॥

पूर्वोक्त कारण—मायाकी उपाधियुक्त व्यापक ईश्वर और कार्य—मायाकी उपाधियुक्त एकदेशी, अखण्ड, अनेक जीव मानना, ऐसी अवच्छेदवादसे सर्व जगत्की 'उत्पत्ति' और 'प्रलय' प्रवाहरूप सदोदित रहना, असम्भव तथा अन्यायकी बात है। और जगत् कर्त्ता मानना कपोल कल्पना है। ऐसा सत्य निर्णयसे आप जानिये !॥

प्रश्न (५२) यदि अवच्छेदवादसे प्रवाहरूप जगत्की उत्पत्ति और प्रलय करनेवाला कर्त्ता नहीं ठहरता, तो अजातवादसे (दृष्टिसृष्टिवादसे) कर्त्ता विषय कहा है:—

"एष योनिः सर्वस्य ॥ ६ ॥" माण्डूक्य उपनिषद् । मन्त्र—६ ॥

अर्थः—शुद्धब्रह्म ही सम्पूर्ण जगत्का उपादान और निमित्तकारण कर्त्ता है ॥

"अद्वयब्रह्मरूपेण, व्याप्तोऽहं वै जगत्त्रयम् ॥ १३ ॥"
"ब्रह्मादिकीटपर्यन्ताः प्राणिनो मयि कल्पिताः ॥ १४ ॥"
॥ आत्मबोध उपनिषद् । मन्त्र—१३—१४ ॥

अर्थः—जैसे सुषुप्तिमें कोई पदार्थ नहीं भासते, और जाग्रत्में सर्व प्रतीत होते हैं। तैसे ही ब्रह्मादि कीट पर्यन्त सर्व जीव और तत्त्वादि सर्व पदार्थ प्रतीत होते हुए अर्थात् सर्व द्वैतमात्र मिथ्या

जगत् यह सर्वत्र व्यापक शुद्ध ब्रह्मके सङ्कल्पसे कल्पित है, और परमार्थसे एक अद्वैत ब्रह्म ही सत्य है ॥

इन दो प्रमाणोंसे जब इच्छारूपी सङ्कल्प करके मायासे आच्छादित अद्वैत ब्रह्मके देखनेसे द्वैतमात्र मिथ्या जगत् उत्पन्न होता है, और आपके विकल्प करनेसे तब जगत्का नाश होकर, एक अद्वैत ब्रह्म स्वयंप्रकाशी फिर बना रहता है ॥

इस प्रकारसे शुद्ध ब्रह्मको "अजातवाद या दृष्टिसृष्टिवाद" से मैं जगत्की उत्पत्ति और प्रलयका कारण मानता हूँ ? ॥

(५२) उत्तरः—कितनेक ग्रन्थकारोंने स्थूलदर्शी पुरुषोंके लिए "दृष्टिसृष्टिवाद" माना है। प्रथम जब सृष्टि होवै, तब उत्तर कालमें इन्द्रिय प्रमाणके सम्बन्धसे दृष्टि होती है, यह दृष्टि और सृष्टि पदका अर्थ है, इसलिए जगत् अनादि ही ठहरता है ॥

सिद्धान्तमुक्तावलिमें कहा हैः—"दृष्टि कहिये ज्ञान, सो ज्ञानस्वरूप सृष्टि है। ज्ञानते पृथक् सृष्टि नहीं;" परन्तु क्षणिक विज्ञानवादी बौद्ध ऐसा कहते हैं कि, क्षणिक विज्ञानरूप बुद्धि ही जगदाकार बनती है, उसको वेदान्ती नास्तिक मानते हैं। परन्तु दृष्टि कहिये ज्ञानस्वरूप ही सृष्टि है, यह भी नास्तिक मत सिद्ध होता है ॥

विचारसागर, वृत्तिप्रभाकरादि ग्रन्थोंमें कहा हैः—"स्वप्नवत् समकालमें ही जाग्रत्के पदार्थ उत्पन्न होते और लय हो जाते, दृष्टिज्ञान सम है।" कहीं स्वप्नके पदार्थोंकी प्रातिभासिक-सत्ता और जाग्रत्के पदार्थोंकी व्यावहारिक-सत्ता मानकर, अन्तमें स्वप्न और जाग्रत्की एक ही प्रातिभासिक-सत्ता ठहराये हैं। परन्तु

यह भी आश्चर्यकी मिथ्या बात है; क्योंकि जो-जो पदार्थ दृष्टिकालमें उत्पन्न होकर भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं, वे बिना संस्कार प्रतीत नहीं होते हैं, ऐसा अनुभव है। और संस्कार बिना इच्छा नहीं होती है। यदि हमको ऐसी इच्छा है कि, इमलीका वृक्ष आमका हो जावै, परन्तु होता तो नहीं है। जो पूर्वमें इमलीका वृक्ष देखा था; वही नजर आता है। इसका कारण ऐसा है कि, अनादि कालका जगत् रहनेसे जो-जो पदार्थ पूर्वके जाग्रत् कालमें देखे, सुने और अनुभव किये रहे, वे वैसे ही सुषुप्तिके बाद प्रतिदिन देखे जाते हैं, उनमें कभी फेरफार नहीं होता है। इसी सबब प्रत्येक दृष्टि समयमें भिन्न-भिन्न नवीन-नवीन सृष्टि उत्पन्न होकर लय हो जाती हैं; ऐसा मानना अन्यायका कथन है॥

सुषुप्ति विषय कहा है:—

"सुषुप्तिकाले सकले विलीने तमोऽभिभूतः सुखरूपमेति॥"

॥ कैवल्य उपनिषद्। अर्द्ध श्लोक, मन्त्र-१३॥

अर्थः—सुषुप्तिमें सर्व जगत् अज्ञानमें लीन होके जीव सुखरूप रहते हैं॥

परन्तुः—अज्ञान तो इन्द्रियोंके संस्कार दोष या जीवोंकी जड़ासक्तिको कहा है; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न ४५ में देखिये!)। इसलिए सुषुप्तिमें हृदय वा अन्तःकरणमें सर्व जगत्का बीज गुप्त रूपसे रहता है। वही फिर उदय होकर पूर्ववत् जगत् प्रतीत होता है।

जगत्कर्त्ता विषय कहा है:—

"जगत्कर्तृत्वेसति जगदुपादानत्वं॥"—तत्त्वानुसन्धान, परिच्छेद-१॥

अर्थः—स्वामी चिद्घनानन्दगिरीजी कहते हैं कि, कार्य करनेकी इच्छा, कार्यके सर्व पदार्थरूप उपादान-कारणका प्रत्यक्ष

ज्ञान और इच्छासे प्रयत्न, ये तीन गुण जिस विषय रहते हैं, वह कर्त्ता कहा जाता है ॥

इस प्रमाणसे यदि माना जाय, तो शुद्ध ब्रह्मको अक्रिय, असङ्ग, निर्विकार माना है। उसमें मायाको सत्ता-स्फूर्ति देना इतना ही सामर्थ्य है, तथा 'सामर्थ्य' वही मायाशक्ति है। उसी मायाको शुद्ध ब्रह्ममें दुर्घट (नहीं घटने लायक) इच्छा प्रकट करानेवाली अचिन्त्यशक्ति मानी है। वही माया शुद्ध ब्रह्मको आच्छादित कर देती है। इसीसे उसे ब्रह्मके 'स्वाश्रय' और 'स्वविषय' मानी है; (इन सबोंके प्रमाण पूर्वके प्रश्न ४८ में देखिये!)। पूर्वोक्त शुद्ध ब्रह्मके सङ्कल्पसे जगत्की उत्पत्ति और विकल्पसे जगत्का प्रलय होना असम्भव है ॥

परन्तुः—ऐसे क्यों नहीं कहते कि, शुद्ध ब्रह्म ही मायाकी उपाधि सहित एकदेशी है? मायाके देशमें ब्रह्म व्यापक नहीं? जगत् प्रवाहरूप अनादि रहनेसे शुद्ध ब्रह्म ही इच्छा करता है? तिसको अनादि सर्व जगत्के उपादान पदार्थोंका ज्ञान संस्काररूपसे है? वह कर्मकर्त्ता बननेसे उत्पत्ति, पालन और प्रलय करनेवाला काल भी है। तथा कल्पनासे उसी ब्रह्मको माननेवाले हम (सर्व वेदान्ती लोग) महाकाल बने हैं? विप्रलिप्सा दोष, अर्थात् नर जीवोंको झूठा ही उपदेश देकर बहकानेवाले हैं। क्योंकि अनेक प्रकारसे जगत् उत्पत्ति क्यों कही है? देखिये! श्रुतिमें कहा हैः—

"वायुश्चान्तरिक्षंचैतदमृतम् ॥"—इति श्रुतिः ॥

अर्थः—वायु और आकाश ये दो तत्त्व स्वरूपसे नित्य हैं ॥

इस प्रमाणसे छान्दोग्य उपनिषद्में वायु और आकाश तत्त्व नित्य रहके अग्नि, जल और पृथ्वी इस क्रमसे जगत्की उत्पत्ति

कही ❀ है। तैत्तिरीय उपनिषद्में † आकाश, वायु, तेज, जल, और पृथ्वी इस क्रमसे जगत्की उत्पत्ति कही है। परन्तु केवल क्रियारूप सूक्ष्माकार शब्दको निराकार अक्रिय आकाशका गुण मानके क्रमसे आकाशका कार्य सूक्ष्माकार वायुमें स्पर्शगुण; सूक्ष्माकार वायुका कार्य अग्निमें रूप गुण; अग्निका कार्य जलमें रस गुण; और जलका कार्य पृथ्वीमें गन्ध गुण; उत्पन्न हुआ; ऐसे वायुमें शब्द, स्पर्श, ये दो गुण; अग्निमें शब्द, स्पर्श, रूप, ये तीन गुण; जलमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, ये चार गुण; और पृथ्वीमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, ये पाँच गुण माने हैं; (तिनको प्रमाण मनुस्मृतिके प्रथम अध्यायमें देखिये !) ‡ । परन्तु यह अविचारका कथन है। कहीं शुद्ध ब्रह्मसे, कहीं कल्पित ईश्वरसे, कहीं बिना ही क्रमसे जगत्की उत्पत्ति कही है; (तिसको प्रमाण पूर्वमें जगत् कर्त्ता दर्शन प्रकरणके सर्व

❀ तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत तत्तेज ऐक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तदपोऽसृजत तस्माद्यत्र क्वच शोचति स्वेदते वा पुरुषस्तेजस एव तद्ध्यापो जायन्ते॥३ ता आप ऐक्षन्त बह्वयःस्याम प्रजायेमहीति ता अन्नमसृजन्त तस्माद्यत्र क्वच वर्षति तदेव भूयिष्ठमन्नं भवत्यद्भ्यः एव तदध्यन्नाद्यं जायते ॥ ४ ॥

॥ छान्दोग्य उपनिषद्, अध्याय ६ । खण्ड २ । मन्त्र–३ । ४ ॥

† "तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः ॥ आकाशाद्वायुः ॥ वायोरग्निः॥ अग्नेरापः । अद्भ्यः पृथिवी । पृथिव्या ओषधयः ॥ ओषधीभ्योऽन्नम् ॥अन्नात्पुरुषः॥ स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः॥"–तैत्तिरीय उपनिषद्, ब्रह्मानन्द वल्ली२ । अनुवाक–१॥

‡ अद्याद्यस्य [illegible] परःपरः ॥ योयो यावतिथश्चैषां सस तावद्गुणः स्मृतः ॥२०॥ मनस्सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया ॥ आकाशं जायते तस्मात्तस्य शब्दं गुणं विदुः ॥ ७५ ॥—मनुस्मृति, अध्याय १ । श्लोक २० । ७५ ॥

इसके साथके श्लोक ७६ से ८० तक सटीक, प्रश्न ४७ के उत्तरकी टिप्पणीमें॥ लिखा है, पृष्ठ १६२–१६३ में है; वहाँ पर देखिये ! ॥

प्रश्नोंको देखिये !) । इसलिए वेदादि सर्व वाणी अनेक पक्षपाती ऋषि, मुनियोंके वचन प्रतीत होते हैं । क्योंकि कहीं–कहीं बहुतसे वचनोंका परस्पर विरोध देखा जाता है । पुनः सर्व देहधारी जीवोंके अपने–अपने सम्पूर्ण प्रारब्ध कर्मोंको भोगे बिना ही बारम्बार जगत्का प्रलय भी कथन किये हैं । फिर जगत्को प्रवाहरूप अनादि एक कल्पित कर्त्ता स्थापन करके बहुतसे मतवादी लोग मानते हैं; (तिसको बहुतसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न ४७ में देखिये !) । इसीसे यह सिद्ध होता है कि, इतने प्रकारके वचनोंका सङ्कल्प करना मनुष्योंकी भ्रम कल्पना ही है; और अनेक चेतन जीव सहित पाँच तत्त्वोंका जगत् उत्पत्ति-प्रलय रहित अनादिसे है । तत्त्वोंके कार्य देह सहित अनेक पदार्थोंकी उत्पत्ति और लय प्रवाहरूपसे अनादि हैं । परन्तु वेदान्तके अद्वैत सिद्धान्तका पक्ष जगत्में विशेष प्रबल है ॥ तहाँ कहा भी है:—

साखी:—"कबीर ब्रह्म पिशाच यह, जबर बड़ा मुँह जोर ॥
बड़े बड़े ओझा झारन लगे, बकन लगे तेहि ओर ॥ ८६ ॥"
॥ साखी कबीरपरिचय । साखी–८६ ॥

अर्थः—श्रीगुरुदयाल साहेब पारखनिष्ठ वा पारख स्वरूप सद्गुरु श्रीकबीर साहेबका निर्णय वचन कहते हैं कि, यह वाणीसे कथन किया हुआ भ्रमरूप ब्रह्मपिशाच बड़ा जबर मुँह-जोर है; जिसे उसने पछाड़ा, वह मन माने वैसे ही बकने लग जाता है । ब्रह्मज्ञानी, योगी इत्यादि बड़े–बड़े ब्रह्मवेता पुरुषोंने वेदादि वाणी पढ़ कर, नरजीवोंको सुनाके भ्रमरूपी भूत निकालने लगे । परन्तु पक्षरूपी वाणीका भूत तिनसे नहीं निकला । दृढ़ पक्षपाती बन कर सन्निपात दशा या भ्रमिक मनुष्यवत् "एको ब्रह्म द्वितीयोनास्ति"

अर्थात् एक ही ब्रह्म चराचरमें अद्वैतरूप सत्य है, और दूसरा द्वैत नहीं है ! नहीं है !! नहीं है !!! ऐसे ही बारम्बार पुकारते-पुकारते वे इस नरजन्मको कल्पनामें लग कर आयु व्यर्थ खो देते हैं ॥

पूर्वोक्त दृष्टिसृष्टिवादसे शुद्ध ब्रह्मको या किसी चेतनको सर्व जड़-चेतनरूप जगत्की उत्पत्ति और प्रलयका कारण मानना झूठ, अन्यायका कथन है । "अन्धगोलाङ्गुल—न्याय" अर्थात् जैसा कोई मनुष्य अन्धे बालकको यह पशुकी पूँछ पकड़के बेधड़क चला जा; बराबर घरको पहुँचेगा, ऐसा कह दिये; चाहे वह मर जाय या कुछ भी हो ! वैसे ही धोखारूप महा अज्ञान यह वेदान्तका अद्वैत मत है । आप सत्य निर्णयसे पक्ष रहित होकर पारख दृष्टिसे सत्यन्याय कीजिये ! और इस मिथ्यावादी भ्रमिक मतको, अब त्याग ही दीजिये ! ॥

॥ ❀ ॥ द्वैत मत वर्णन ॥ ❀ ॥

प्रश्न (५३) यदि वेदान्तके अद्वैत मतसे कर्त्ता नहीं ठहरता, तो द्वैतवादी उपासकोंके मतसे कर्त्ता विषय कहा है:—

"अनन्त कोटि ब्रह्माण्डप्रेरकः ॥"—इति श्रुतिः ॥

अर्थः—अनन्त—करोड़ों ब्रह्माण्डोंका प्रेरक ईश्वर है ॥

श्लोकः—"ईश्वरः सर्वभूतानां, हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ॥
भ्रामयन्सर्वभूतानि, यन्त्रारूढानि मायया ॥ ६१ ॥"

॥ भगवद्गीता, अध्याय १८ । श्लोक—६१ ॥

अर्थः—श्रीकृष्ण कहते हैं, हे अर्जुन ! सर्व प्राणियोंके हृदयमें ईश्वर निवास करता है । और जैसे कुम्हार चाकको फिराता है, वैसे ही मायारूप चक्र पर वह सबोंको प्रेरणा करके नचा रहा है ॥

इन दो प्रमाणोंसे सबोंके बुद्धिप्रेरक ईश्वरको मैं कर्त्ता मानता हूँ ॥१

(५३) उत्तरः—यदि ईश्वरको जगत्का प्रेरक माने, तो सर्व जीव काष्ठकी पुतलियाँवत् या देहोंवत् जड़ ही ठहरते हैं। परन्तु जीवोंको अविनाशी कहे हैं; (तिसको प्रमाण प्रारम्भके प्रथम दोहाके अर्थमें और पूर्वके प्रश्न २ में देखिये !)। स्वर्गलोक असिद्ध हैं; (तिसको प्रमाण पूर्वके प्रश्न ७ में देखिये !)। इसलिए अनन्त ब्रह्माण्ड और तिनका प्रेरक ईश्वर मानना, यह मनुष्योंकी भ्रम कल्पना ही है। अनेक जीवोंके अनेक देहरूप पिण्डको ही यदि ब्रह्माण्ड माने, तो बन सकते हैं। ईश्वरको घनवत्, सर्वत्र व्यापक कहा है; (तिसको श्रुति प्रमाण पूर्वके प्रश्न १२ में देखिये !)। इससे हृदयरूप एक देशमें उसका निवासस्थान मानना भी असम्भव दोषयुक्त है। परन्तु जीव ही हृदय देशमें रहते हैं, तहाँ कहा है:—

रमैनीः—"हृदया बसै तेहि राम न जाना ॥"—बीजक, र० ४१। ४॥

"आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ॥ ३ ॥"

॥ कठ उपनिषद्, अध्याय १। वल्ली ३। मन्त्र-३ ॥

अर्थः—शरीररूपी रथमें जीवात्माको रथमें बैठनेवाला जानना ॥

यदि कहीं न्यारा ईश्वर जगत्का प्रेरक भी माने, तो जैसे बड़ा सेठजी बहुत ही नौकर रखकर व्यापार करता है, और नफा-नुकसानका मालिक आप ही बनता है, कुछ तनखाह लेनेवाले नौकर उस हानि-लाभके भोक्ता नहीं होते हैं। तैसे ही ईश्वरसे बुद्धिमें प्रेरणा होनेसे सर्व जीव पाप-पुण्यरूप अनेक कर्म करते हैं, ऐसा कहो; तो अनेक जीव नौकर और ईश्वर बड़े सेठजीवत् ठहरे। इसलिए जैसे सेठजी व्यापारमें नफा और नुकसान आप ही भोगता है। तैसे ही ईश्वर भी सेठजीवत् सर्व जीवोंके पाप-पुण्यरूप कर्मोंके फल उत्तम, मध्यम, नीच योनियोंमें देहोंको धारण करके भोगेंगे,

और सर्व जीव देह छूटनेसे मुक्त हो जायेंगे। फिर अनेक देहधारी जीव प्रत्यक्ष क्यों दिखलाई पड़ते हैं? इस विषय कहा भी है:—

श्लोकः—"नादत्ते कस्यचित्पापं, न चैव सुकृतं विभुः॥
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं, तेन मुह्यन्ति जन्तवः॥ १५॥"
॥ भगवद्गीता, अध्याय ५। श्लोक–१५॥

अर्थः—ईश्वर किसीके भी पाप और पुण्य कर्मोंके फलोंको नहीं भोगता। परन्तु अज्ञानसे ज्ञान ढक जाने पर मोहवश होकर, जीव ही स्वयं अपने–अपने कर्म फलोंको भोगते हैं॥

इस प्रकारसे आप ही किये हुए पाप–पुण्योंके कर्म फलोंको सर्व जीव स्वयं भोग रहे हैं। इसलिए दूसरा कर्त्ता बुद्धि–प्रेरक ईश्वर मानना मनुष्योंकी भ्रम कल्पना ही ठहरती है। आप इस उपासकोंके द्वैत मतको भ्रमिक अविचारी जानके अब त्याग दीजिये!॥

॥ ❀ ॥ श्री कबीर मत वर्णन ॥ ❀ ॥

प्रश्न (५४) यदि द्वैत मतसे कर्त्ता ईश्वर नहीं ठहरता, तो सद्-गुरु श्रीकबीर साहेबके बीजक मतसे कर्त्ता विषय कहा है:—

साखीः—"जहिया जन्म मुक्ता हता, तहिया हता न कोय॥
छठी तुम्हारी हौं जगा, तू कहाँ चला बिगोय?॥ १॥"
॥ बीजक, साखी–१। टीकायुक्त॥

अर्थः—पारखनिष्ठ सद्-गुरु श्रीपूरण साहेब टीकामें लिखे हैं कि ❀ पाँच तत्त्व, तीन गुण, अवस्था, प्रकृति, चार खानियाँ, दूसरा मनुष्यजाति आदि कोई नहीं थे, तब जीव मुक्त था।

❀ हंस या मनुष्य जीवोंकी उत्पत्ति प्रकरण समझानेके वास्ते दृष्टान्तरूपसे पूर्वपक्षमें उपरोक्त कथन बीजक टीकामें किया है। परन्तु सो सिद्धान्त नहीं है। उत्तरपक्षमें टीकामें ही उसको खण्डन करके यथार्थतासे निर्णय दर्शाया है। ऐसा जानिये!॥ —सं०।

क्योंकि जीवके पास विजाति बन्धन कोई भी नहीं था। परन्तु पृथ्वी, जल, तेज, वायु, और आकाशके स्थानमें क्रमसे सत्य, विचार, शील, दया, और धैर्य, ये अनादि तत्त्वोंकी देह हंसकी थी। यही हंसका ब्रह्माण्ड, जिसमें हंस एक और रूप एक, जीवका कर्त्ता कोई दूसरा नहीं। सो हंसने अपनी छट्ठी देह छोड़ी, और 'हौं जागा' कहिये आनन्द जागा। उसी विशेष आनन्दमें उसके पक्के तत्त्व लय हो कर, क्रमसे कैवल्य देहरूप विज्ञानमय कोश, महाकारण देहरूप ज्ञानमय कोश, कारण देहरूप मनोमय कोश, सूक्ष्मदेहरूप प्राणमय कोश और स्थूल देहरूप अन्नमय कोश, इन पाँचों कोशोंके हिण्डोलेमें हंस पड़ा। सत्य, विचार, शील, दया और धैर्य, ये पक्के तत्त्व उलट कर, क्रमसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश, ये कच्चे तत्त्वरूप कच्चा ब्रह्माण्ड प्रकट हुआ, और कच्ची स्थूल देहमें हंस आया। फिर इच्छा करके नारी आदि चौरासी योनियाँरूपी पिण्ड–ब्रह्माण्ड उसीने बनाया। अब इनके पीछे हे जीव! तू कहाँ चला बिगोय, अर्थात् क्यों भ्रमता फिरता है? ॥१॥

अब वास्तविक साखीका संक्षिप्त अर्थ और सुनिये! :—

दूसरा अर्थः—हे जीव! जिस समय तुम पहले भी मुक्त होनेकी जगह मनुष्य देहमें था, उस समय मनुष्य खानीको छोड़ कर अन्य खानीके, अर्थात् पशु आदि खानीके देहोंका बन्धन परवशता कोई भी नहीं था, अब फिर भी चौरासी योनियाँ भोग कर छट्ठी कहिये मनुष्य देहमें आ गये हो! सो तुम इस मनुष्य देह (हंस देह) को नष्ट करके कहाँ चला जाता है? इसी मनुष्य देहमें रहते हुए पारखी गुरुके द्वारा सत्सङ्गति करके स्व-स्वरूपको जान ले, तब आवागमनसे रहित हो जायगा ॥२॥ और पञ्चग्रन्थीमें कहा हैः—

चौ०:-"हे शिष्य ! प्रथम देह हंसाकी । ताहि देह ते झाँई झाँकी ॥ ४४६ ॥
झाँई बिम्ब देहकी आभा । बसै तहाँ कोहंकी दाभा ॥ ४४७ ॥
बिम्बाकार भयो परचण्डा । इच्छा ते कीन्हों ब्रह्मण्डा ॥ ४४८ ॥"
॥ चौपाई नं० ४४६-४४८ ॥ गुरुबोध, पञ्चग्रन्थी ॥

अर्थः—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि, हे शिष्य ! प्रथम उत्पत्ति समय सत्य, विचारादि पाँच तत्त्वोंकी शुद्ध देह हंसकी थी, उसी देहको देखके देहरूप बिम्बका प्रकाश हुआ । तहाँ हंसको "मैं कौन हूँ ?" ऐसी गाफिली हुई, तब पाँच तत्त्वोंकी स्थूल देह धारण करके इच्छासे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उत्पन्न किया ॥

निर्णयसार में कहा है:—॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ ❀ ॥

"दया क्षमा सत्य धीर विचारा । पाँच तत्त्व हंसाके सारा ॥६३॥
याही देह हंसाने देखी । उपजो हर्ष निज प्रेम विशेखी ॥६५॥
पक्की ते कच्ची भइ भाई ! । भई स्फूर्ति हंसा सुधि आई ॥६८॥
ई न जाना मैं भरम भुलाना । पक्की ते हंसा बिलगाना ॥६९॥
पिण्ड-ब्रह्माण्ड सबै भौ काँचा । तामें आपु रहा जिव साँचा ॥७०॥
कच्चीके प्रताप ते भाई ! । दूसरि इच्छा उठी बनाई ॥७१॥
ताते नारि रूप निर्मावा । सब कछु कीन्हा जो मन आवा ॥७२॥
॥ निर्णयसार, (सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कृत) चौपाई नं० ६३ से ७२ तक॥

अर्थः-बिलगाना = अलग हुआ या छूट गया; और अर्थ स्पष्ट ही है ॥

इन प्रमाणोंसे जैसे असङ्ग शुद्ध ब्रह्मके पास अज्ञानरूप माया रहनेसे नहीं घटनेवाली वह ब्रह्ममें इच्छा प्रकटाय, सर्व ब्रह्माण्डकी रचना हुई है; (तिसको प्रमाण पूर्वके प्रश्न ४६ में देखिये !) । तैसे ही शुद्ध हंसके पास पक्के तत्त्वरूपी माया रहनेसे ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति हुई है ॥

उक्त शुद्ध जीवोंको वा हंसको मैं कर्त्ता मानता हूँ ? ॥

(५४) उत्तरः—आप, सद्-गुरु श्रीकबीर साहेबके सिद्धान्तका मुख्य भेद नहीं जानते हैं। अब ध्यान पूर्वक सुनियेः—

बीजकके प्रथम साखीके टीका प्रमाणसे हंस देहकी इन्द्रियोंके वर्णनमें शीलकी दो इन्द्रियाँ नेत्र–पाँव, दयाकी दो इन्द्रियाँ त्वचा–हाथ, विचारकी दो इन्द्रियाँ लिङ्ग–जीभ, इत्यादि नरदेहकी इन्द्रियोंका कथन है। अथवा उसी साखीके अन्तकी टीकामें सद्-गुरु श्रीपूरण साहेब ऐसा लिखे हैं कि, छट्ठी पक्की देह तो हौं भाव = आनन्द और सूक्ष्म अध्यासका कारण, अथवा सर्व विकारोंका मूल ही ठहरता है। क्योंकि उत्पत्तिके आरम्भमें स्थूल देहादि पाँच देहें, एक पक्की हंस देहमें थीं, और अभी स्थूल देहमें ही पक्की आदि पञ्च देह हैं, इसलिए पक्का ही कच्चा हो गया। पक्का क्या कहीं न्यारा बैठा है? नाहक कल्पना क्यों करना? पाँचों देहोंका बन्धन या पञ्च कोशरूप हिण्डोला परखायके छुड़ानेके लिये छट्ठी पक्की हंस देह हम सिद्ध किये हैं। पारखीको न पक्कीसे काम, और न कच्चीसे काम है। जो पाँच देहरूप पञ्च कोशोंके हिण्डोलेको परखै सो पारखी–पारख स्वरूप ही हैं। पारख स्वरूप कहिये पारखी–पारख एक स्वरूप, पारख जीवकी भूमिका और सब नास्ति धोखा है। देह रहे तक पारखियोंको सत्य, विचार, शील, दया, धैर्य, ये पक्केकी रहनी लेना, और यथार्थ पारखमें सदोदित लक्ष रखना चाहिये! ॥

इस प्रमाणसे छट्ठी देह कहीं अलग नहीं है, यही "नरदेह" वा मनुष्य देह ही है। पक्के तत्त्व सत्य, विचारादि या शुद्ध गुण पशु आदि खानियाँ छोड़कर केवल मनुष्य देहमें वर्तते हैं। जीव पारखरूप या ज्ञानमात्र हैं। मनुष्य जीव न्यारे रहकर, विषय

पदार्थ, खानी, वाणी सबको परखते हैं। केवल रहनीके लिये देह रहे तक पक्के तत्त्वोंकी धारणा रखना है। पक्के—कच्चे जड़ तत्त्व देहके साथ छूट जायेंगे। परन्तु सदैव विदेहमुक्तिमें हंस जीव पारखरूप ही रह जायेंगे ॥

अब साखीका तात्पर्य अर्थ दिखलाते हैं, उसे ध्यान देकर सुनियेः—

सद्-गुरु श्रीकबीर साहेबका कहना है कि, जब-जब नरदेहोंमें जीव आते हैं, तब-तब अन्य पशु आदि तीन खानियोंके परवशता-रूप महान बन्धनोंसे मुक्त रहते, तथा जीवन्मुक्त होने की कर्म भूमिकारूप नरदेहोंकी स्वतन्त्र जगहों पर हैं। परन्तु छट्ठी नरदेह, यह विषयानन्दोंमें या निर्विकल्परूप भासमात्र ब्रह्मानन्दमें और अनेक जड़ पदार्थोंके अहङ्कारमें भूलनेका स्थान 'कर्म भूमिका' है। क्योंकि नरदेहके कच्चे-पक्के सर्व तत्त्व जड़ और छट्टे, अविनाशी नरदेहधारी, चेतन जीव तिनसे भिन्न, तिनके जाननहार या सबके साक्षी हैं। ऐसा हे मनुष्य जीवो! आप सत्य निर्णय करके देखो और माने हुए पाँच तत्त्वोंके पाँच देहरूपी पञ्च कोशोंको पूर्णतासे परखके तिनका अध्यास छोड़ दो। दूसरा कल्पित कर्त्ता मत् मानिये!, तथा नाना कर्मोंमें भ्रमके अनेक दुःखोंको क्यों भोगते हो? ॥

बीजकमें और भी कहे हैंः—

"कौन मुवा कहो? पण्डित! जना?। सो समुझाय कहो मोहि सना ॥"

॥ बीजक, शब्द ४५। चौपाई १। टीकायुक्त ॥

अर्थः—सद्-गुरु श्रीकबीर साहेब कहते हैं कि, हे पण्डितजन! जड़ मुआ कि, चैतन्य मुआ? दोनोंमें कौन मुआ? सो हमको समुझायके कहो? चैतन्य मुआ कहना, तो जीवका मरण नहीं, सर्व जीव अमर हैं। और जड़ मुआ कहना, तो पाँच तत्त्व नित्य हैं

ही; अब मुआ तो भी क्या ? ॥

इस प्रमाणसे जगत् अनादि ही ठहरता है ॥

साखीः—"दोहरा तो नौ तन भया, पदहि न चीन्हैं कोय ? ॥ ६२ ॥" ❀

॥ बीजक, अर्द्ध साखी ६२ । टीकायुक्त ॥

अर्थः—जिस मनुष्यरूप हंससे स्त्री-पुरुष ये दो नवीन शरीर पैदा हुए, अथवा नौ कोशरूप वेदादि वाणी प्रकट हुई, उस हंस-पदको कोई चीन्हते नहीं, सर्व मनुष्य भ्रममें पड़े हैं। कोई ईश्वर, कोई आत्मा, कोई दास, कहाते हैं ॥

इस प्रमाणसे एक शुद्ध हंस जीवसे अनेक अविनाशी जीवोंकी उत्पत्ति नहीं हुई। परन्तु नरजीवसे ही स्त्री-पुरुषके शरीर उत्पन्न होते हैं। पाँच जड़ तत्त्वों और अनेक चेतन जीवोंके सहित यह जगत् अनादि सिद्ध है ॥ पञ्चग्रन्थीमें कहा हैः—

दोहाः—"मानुष बिन कछु ना भयो, प्रथमा मानुष नाम ॥
मानुष ते सब ही भयो, ब्रह्म रूप अरु नाम ॥२५६॥"
"मानुष देही पाँचकी, दशा साधुके रूप ॥२५७॥"

॥ दोहा नं० २५६ । २५७ ॥ गुरुबोध, पञ्चग्रन्थी ॥

अर्थः—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि, मनुष्य जीव बिना

❀ साखीः—दोहरा तो नौ तन भया । पदहि न चीन्हैं कोय ॥
जिन्ह यह शब्द विवेकिया । छत्र धनी है सोय ॥ ६२ ॥

टीका गुरुमुखः—अरे ! ये स्त्री-पुरुष दोहरा दो तन तो नये पैदा भये। परन्तु जा हंसके पाससे ये दोनों स्त्री-पुरुषके तन पैदा भये, सो हंस पदको कोई चीन्हता नहीं, सब भूल में परे। कोई ब्रह्म, कोई आत्मा, कोई दास कहलाता है। पर जहाँसे ये बानी वेद खड़े भये औ ब्रह्म आत्मा सिद्धान्तनको जा ने माना सो जीव को कोई चीन्हता नहीं, तो कैसे छत्र धनी जाना जाय ? ये शङ्का। भाई ! जिनने सम्पूर्ण वेदादिक शब्दका विवेक किया औ सब सिद्धान्त माना है, सोई छत्रधनी जीव। ये अर्थ। जो शब्दका विवेकी सोई शब्दका मालिक। ये अर्थ। त्रिजासे बीजक साखी ॥ ६२ ॥

ब्रह्मकी कल्पना और नाम–रूपादि मायाको कौन सिद्ध करेगा ? इसीसे खानी–वाणी आदि जाननहार, 'प्रथम' कहिये मनुष्य जीव ही श्रेष्ठ हैं। नरदेहमें ही सत्य, विचारादि पाँच शुद्ध गुण हैं, तिनको दृढ़तासे कोई धारण करें, तो साधुरूप पारखी मनुष्य बनके वे जीवन्मुक्त भी हो सकते हैं ॥

इस प्रमाणसे यह जगत् उत्पन्न हुआ ही नहीं, और दूसरा कर्त्ता मानना मनुष्योंकी कल्पना ही ठहरती है ॥

निर्णयसारमें कहा हैः—

चौ०:—"सोई जीवरूप यह भाई ! आपन बन्धन आप बन

॥ निर्णयसार । चौपाई नं० ७७ ॥

अर्थः—पारखनिष्ठ सद्-गुरु श्रीपूरण साहेब कहते हैं कि, पूर्वोक्त जो हंस कहा गया है, सोई 'हंस' यह मनुष्यदेह धरा हुआ जीव है। अर्थात् देहधारी मनुष्य जीव ही हंस है; अन्य कर्त्ता हंस जीव कोई नहीं है। हंस वा मनुष्य जीव आप ही स्वयं बन्धन बनायके फँसता है ॥

दोहाः—"जस सुवना नलिनी फँदो, कीट कुस्यारी माँझ ॥
ऐसी गति या जीवकी, भई दिवस ते साँझ ॥ ८ ॥"

॥ निर्णयसार । दोहा नं० ५४ ॥

अर्थः—पारखनिष्ठ सद्-गुरु श्रीपूरण साहेब कहते हैं कि, जैसा तोता नलिकामें भ्रमसे आप ही बन्ध जाता है। अथवा कुस्यारी कीट (अण्डाकार एक प्रकारका रेशमका घर बनानेवाला कीड़ा) आप ही अपने बनाये हुए घरमें बन्धके फँस जाता है। ऐसे ही मनुष्य भी स्वयं ज्ञानरूप होकर, आप ही अपने कर्तव्योंके गुलाम बनके, खानी–वाणीरूप अनेक बन्धनोंको बनायके, आप

ही विषयासक्त अज्ञानी बनकर अनादि कालसे फँसे हैं ॥

बीजककी टीकारूप 'त्रिजा' सद्-गुरु श्रीपूरण साहेब निर्माण किये हैं। उसमें भी मनुष्योंने मनुष्य खानीमें ही इच्छासे तीन प्रकारकी जाया। अर्थात् स्त्री, पुरुष, नपुंसक, इन तीन देहोंकी दृढ़ भासरूप दृढ़ भावना प्रकट की है। अथवा:—किसी ब्रह्मज्ञानी मनुष्यने इच्छासे तीन प्रकारकी जाया। अर्थात् त्वं, तत्, असि; अज्ञान, ज्ञान, विज्ञान; जीवमुख, मायामुख, ब्रह्ममुख; या जीव, ईश्वर, ब्रह्म; इस भेदसे तीन चेतनोंके निर्णयकी वेद वाणी प्रकट करके द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, ये तीन मत प्रसिद्ध किये हैं। इन्हीं दोनों बन्धनोंकी जड़ासक्तिरूप अज्ञानोंका मनुष्य जीवोंको सर्व बन्धन कसर और विकार सहित पूर्णतासे परखायके मुमुक्षुजनोंकी जड़ासक्ति छुड़ाय, सद्-गुरु श्रीकबीर साहेब किस प्रकार नरजीवोंको जीवन्मुक्त किये? सो दर्शाये हैं ॥

इन प्रमाणोंसे मनुष्य सोई हंस जीव अनादि कालसे जगत्में हैं ही। शुद्ध ब्रह्मके पास मायोपाधि रहनेसे, वह माया नहीं घटने लायक उसमें इच्छा प्रकट कराय, जगत्की उत्पत्ति हुई, ऐसा कहा है, वह तो मिथ्या कल्पना ही है; (तिसको प्रमाण पूर्वके प्रश्न ४८ में देखिये !)। इसलिए हंसजीव या शुद्ध जीव कहीं अलग बैठा नहीं है। केवल बन्धनोंको परखायके जीवोंको देह बन्धन छुड़ानेके लिये ही सिर्फ पिण्डरूप जगत्की उत्पत्ति बीजक टीकामें कही है। देहधारी, अनेक मनुष्य जीव ही 'हंस' हैं। दूसरा ज़गत्का कर्त्ता कहीं भी नहीं, जगत् अनादि सिद्ध है। यह सद्-गुरु श्रीकबीर साहेबका सत्यन्यायरूप पारख निर्णयका सिद्धान्त है; ऐसा आप अब निष्पक्ष, सत्य निर्णय करके देखिये ! ॥

॥ ❀ ॥ ईसाई मत वर्णन ॥ ❀ ॥

प्रश्न (५५) यदि सद्-गुरु श्रीकबीर साहेबके सत्यन्यायरूप पारख निर्णयके सिद्धान्तसे हंस जीव कर्त्ता नहीं ठहरता, तो ईसाइयोंके बाइबल मतसे कर्त्ता ईश्वर विषय कहा है:—जिसको यहूदी धर्मवाले भी मानते हैं। हिन्दी भाषामें तिसका भाषान्तर ❀ हुआ है; तिसके अनुसार सब प्रमाण हैं ॥

तौरेत पर्व १ में कहा है:—"ईश्वरने प्रथम आकाश और पृथ्वीको उत्पन्न किया। पृथ्वी बेडौल थी, गहिराव पर अँधियारा था, उसे डौलदार बनाया। ईश्वरका आत्मा जल पर डोलता था। ईश्वरने कहा कि, उजियाला होवै, और उजियाला हो गया। ईश्वरने कहा कि, पानीके मध्यमें आकाश होवै, और पानियोंको पानियोंसे विभाग करै; तब ईश्वरने आकाशको बनाया और ईश्वरने आकाशको स्वर्ग कहा, और साँझ तथा बिहान—दूसरा दिन हुआ ॥"

॥ —तौरेत पर्व १ ॥ आयत १ । २ । ३ । ४ । ६ । ८ ॥

तौरेत पर्व २ और ३ में कहा है:—"ईश्वरने पृथिवीकी धूलसे आदमको (मनुष्यको) बनाया और उसके नथुनोंमें जीवनका श्वास फूँका, आदम जीवित प्राणी हुआ। पूर्वकी ओर एक बारी लगायके उसमें उसे रक्खा; जिसके मध्यमें भले-बुरे ज्ञानका वृक्ष भूमिसे उगाया (तौरेत पर्व २ । आ० ७ । ८ । ९) ॥" उसे नींदमें डाला, वह सो गया। तब उसने उसकी फसुलीमेंसे एक फसुली निकाल कर एक नारी बनायके उसके पास लाया (तौरेत पर्व २

❀ बाइबल सोसाइटी आफ इण्डिया, इलाहाबाद में ई० सन् १९५० में मुद्रित—हिन्दी बाइबल (पुराना और नया धर्म नियम) ग्रन्थ में से भी अबकी बार यह प्रकरण पूरा मिला लिया गया है ॥—सम्पादक ॥

आ० २१ । २२) ॥" "ईश्वरके बनाये धूर्त्त-सर्पके (शैतानके) कहनेसे ज्ञानके वृक्षका फल यदि ईश्वरने खानेके लिये मना किया था, तो भी उस नारीने (हव्वाने) खाया, और आदमने भी उसके देनेसे खा लिया । फिर दोनों जान गये कि, हम नङ्गे हैं; तब अञ्जीरके पत्तोंका ओढ़ना बनाया । ईश्वरने उसी नारीको कहा कि, फल न खानेकी मेरी आज्ञाको तुमने नहीं मानी, इसीसे अब तुम साग–पात खाओगे । तेरी इच्छा तेरे पति पर होगी । आदम तेरे पर प्रभुता करेगा । तेरे गर्भ धारणकी पीड़ाको मैं बढ़ाऊँगा । भूमि श्रापित है, काँटे ऊँटकटारे तेरे लिये उगाऊँगा । सर्पको कहा कि, तू पेटसे चलेगा । जीवन भर धूर खाया करेगा । मनुष्योंसे तेरा बैर बन्धेगा । तेरे मुँहको सब कुचलेंगे । तू उनके एड़ीको काटेगा । फिर दोनोंको बारीसे निकाल दिया, और चारों ओर घूमते हुए कारोबीम (चमकते हुए खड्ग) रक्खे, जो जीवनके वृक्षका मार्ग रखवाली करें ॥

॥ तौरेत पर्व २ । आ०७ से २२ ॥ तौ० प० ३ । आ० १ से २४ तकका सारांश ॥

"जो कुछ उत्पन्न हुआ सो ईश्वर बिना नहीं; इसलिए मनुष्य, पशु, पक्षी, वनस्पति इत्यादि सर्व ईश्वरने उत्पन्न किया है ॥" तौ०पर्व३॥

इन प्रमाणोंसे बाइबल मतसे मैं कर्त्ता ईश्वरको मानता हूँ ? ॥

(५५) उत्तरः—प्रश्नके प्रमाणसे उत्पत्तिके प्रथम पृथिवी बेडौल (ऊँची–नीची) रही, इससे वह अनादि ही ठहरती है । पोलाकार आकाशकी उत्पत्ति मानना मिथ्या कल्पना या अन्यायका कथन है । ईश्वर किससे कहता था ? क्या जड़ पदार्थ भी किसी बातको जान सकते हैं ? जो आदम, नारी इत्यादि अनेक चेतन जीव ईश्वरने फूँक-फूँकके बनाया, तो क्या जीव जड़ वायु या अग्नि

तत्त्व हैं। फिर लिखा है कि, ईश्वरने आदमरूप आदमीको मिट्टीसे और नारीको एक ही हड्डीसे बनाया, इस बातको कैसे मानना ? अभी पुरुषोंमें एक हड्डी कम और स्त्रियाँ एक ही हड्डीयुक्त देखनेमें क्यों नहीं आतीं ? इसलिए पूर्वोक्त उत्पत्ति मिथ्या कल्पना ही ठहरती है। जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं, वे नाश भी अवश्य होते हैं। जैसे वृक्ष, घर इत्यादि। इससे उत्पन्न हुए चेतन जीवोंको भी नाशवान् मानना होगा। परन्तु किसी भी मतमें जीवोंको नाशवान् नहीं माना है। यदि ईश्वर बोलता था, तो वह एक देहधारी मनुष्य जगत्में रहनेवाला था; इससे जगत् अनादि ही ठहरता है ॥ और प्रमाण कहे हैं:—

"और मतूसिहलकी उत्पत्तिके पीछे हनोक तीन सौ वर्ष लौं ईश्वरके साथ-साथ चलता था ॥ तौरेत उ० पर्व ५ ॥ आयत २२ ॥

"ईश्वरके पुत्रोंने आदमकी पुत्रियोंको देखा और चाहा, उनसे ब्याहा, और बालक उत्पन्न हुए ॥"

॥ —तौरेत, उत्पत्ति पर्व ६ ॥ आयत २ । ३ । ४ ॥

"फिर उन्होंने कहा एक नगर हम अपने लिये बनवावें।"

॥ —तौरेत उत्पत्ति पर्व ११ ॥ आयत ४ ॥

"और अपने कहनेके समान परमेश्वरने सरीसे भेंट किया, और वह गर्भिणी हुई ॥" ॥ तौरेत उत्पत्ति पर्व २१ ॥ आयत १-२ ॥

"परमेश्वर तुम्हारे लिये युद्ध करेगा ॥" तौ० या० पर्व १४ । आ० १४॥

"ईश्वरने ऐकूबसे मल्लयुद्ध किया ॥"—तौरेत यात्रा पर्व २४ ॥

"नातनके पास ईश्वरका वचन पहुँचा, मेरे सेवक दाऊदसे कह कि, ईश्वर यों कहता है ? मेरे निवासके लिये तू एक घर बनावेगा। क्योंकि मैं बहुत दिन तम्बू और डेरेमें फिरा, जबसे

इसरायलके सन्तानोंको मिश्रसे निकाल लाया ॥"

॥ —तौरेत समुएलकी दूसरी पुस्तक पर्व ७ ॥ आयत ४ से ७ ॥

"शैतानसे ईश्वरसे बात और उसने ऐकूबको मारा ॥"

॥ —जबूर ऐयूबकी पुस्तक पर्व २ ॥ आयत २ । ५ । ६ ॥

इन प्रमाणोंसे ईश्वर पहाड़ पर या तम्बू, डेरे, घर, नगरमें रहनेवाला था, उसके पुत्र थे, तिनके ब्याह किये गये, पहलवान था, इत्यादि कथनसे ईश्वर एक साधारण मनुष्य ठहरता है। और जगत् अनादि सिद्ध है। अब अबिरहाम जो बड़ा पैगम्बर ईसाई और मुसलमानोंका है, उसके और ईश्वरके विषयमें कहा है:—

"तब अबिरहामने अपनी स्त्री सरीसे कहा कि, देख मैं जानता हूँ कि, तू देखनेमें सुन्दर है। जब मिश्री तुझे देखेंगे, वे कहेंगे कि, यह उसकी स्त्री है, और मुझे मार डालेंगे। परन्तु तुझे जीती रक्खेंगे। तू यों कहियो, मैं उसकी बहिन हूँ! ॥"

॥ —तौरेत पर्व १२ ॥ आयत ११–१३ ॥

देखिये! अबिरहाम पैगम्बर कैसा विषयी और झूठ बोलनेवाला था॥

"अबिरहामको ईश्वरने कहा कि, तेरा और तेरे वंशका हुक्म सब मानेंगे। तुममेंसे हर एक पुरुष बालकका आठवें दिन खतना (लिङ्ग इन्द्रियकी आगेकी खलड़ी कटवाना!) किया करो ॥"

॥ —तौरेत उत्पत्ति पर्व १७ ॥ आयत ६–११ ॥

"हर एक जीता चलता जन्तु तुम्हारे भोजनके लिये होगा। मैंने हरी तरकारीके समान सारी वस्तु तुम्हें दी ॥"

॥ —तौरेत उत्पत्ति पर्व ६ ॥ आयत ३–४ ॥

"ईश्वरसे नूहको पशु, पक्षी आदि सबके भोजन करने की आज्ञा हुई ॥" ॥ —तौरेत उत्पत्ति पर्व ६ ॥ आयत २० । २२ ॥

"फिर ईश्वरने उसे ममरे के बलूतोंमें दिखाई दिया, और मक्खन, दूध तथा बछड़ा पकाया था, सो अबिरहामने दिया और ईश्वरने खाया ॥" ॥ —तौरेत उत्पत्ति पर्व १८ ॥ आयत १–६ ॥

"हाबीलने मोटी–मोटी भेड़ें चढ़ाई, और उसका ईश्वरने आदर किया ॥" ॥ —तौरेत उत्पत्ति पर्व ४ ॥ आयत ४ ॥

"ईश्वरने मूसाको बुलाया, और मण्डलीके तम्बूमेंसे यों कहा, इसरायलके सन्तानोंसे मेरे लिये गाय, बैल, भेंड़, बकरीमेंसे अपनी भेंट लाओ ॥" ॥ –तौरेत लयव्यवस्था पुस्तक पर्व १ ॥ आ० १ । २ । ३ ॥

"जब कोई अध्यक्ष पाप करै, तब वह बकरीका निसखोट नरमेम्ना (पुष्ट बकरा) अपनी भेंटके लिये लावै । और ईश्वरके लिये बली करै, यह पापकी भेंट है ॥"

॥ —तौरेत लयव्यवस्था पुस्तक पर्व ४ ॥ आयत २२–२४ ॥

"और यदि उसे भेंड़ लानेकी पूँजी न हो, तो अपने किये हुए अपराधके लिये दो पिण्डुकियाँ और कपोतके दो बच्चे ईश्वरके लिये लावै । वे भी न हो, तो सेर भर चोखा पिसानका दसवाँ हिस्सा पापकी भेंटके लिये लावै ॥"

॥ — तौरेत लयव्यवस्था पुस्तक पर्व ५ ॥ आयत ७ । ११ ॥

"इन प्रमाणोंसे ईश्वर जङ्गली, मांसाहारी, निर्दयी, घातकी और विशेष पापोंको बढ़ानेवाला ठहरता है । अब मूसा पैगम्बर बाइबल मतका सिद्ध कर्त्ता मुख्य आचार्यका चलन सुनियेः—

"मूसाने मिश्रीको मारके बालुमें छिपा दिया ॥"

॥ —तौरेत यात्राकी पुस्तक पर्व २ ॥ आयत १२ ॥

"सो अब लड़कोंमेंसे हर एक बेटेको और हर एक स्त्रीको जो पुरुषसे संयुक्त हुए हों, उन सबोंको प्राणसे मारो । परन्तु वे

बेटियाँ जो पुरुषसे संयुक्त नहीं हुई हैं, उन्हें अपने लिये जीती रक्खो ! ऐसी मूसा पैगम्बरकी आज्ञा हुई ॥"

॥ —तौरेत गिनती पर्व ३१ ॥ आयत १७-१८ ॥

इन प्रमाणोंसे मूसा पैगम्बर भी निर्दयी, विषयी और व्यभिचारी था। इसलिए बाइबल ग्रन्थ जङ्गली मनुष्यका बनाया हुआ है, उसमें सत्यधर्मकी बातें लिखी नहीं। अब ईसा (ईशु) ईश्वर-पुत्र और पापोंसे मुक्त करनेवाला कहते हैं, तिस विषय प्रमाण सुनियेः—

"ईशुख्रिष्ट (ईशा) का जन्म इस रीतिसे हुआ। उसकी माता मरियमकी यूसुफसे मँगनी हुई थी, परन्तु उन दोनोंके इकट्ठे होनेके पहिले ही वह देख पड़ी कि, पवित्र आत्मासे गर्भवती है। ऐसा दाऊदके सन्तान यूसुफको ईश्वरके दूतने स्वप्नमें कहा ॥"

॥ —मत्ती रचित इञ्जील पर्व १ ॥ आयत १८। १९-२० ॥

इस प्रमाणसे यह व्यभिचार करके प्रथम ही गर्भ रहा होगा। अथवा ईश्वर मनुष्य था ही, उसकी इच्छा बदलके ईशु हुआ होगा। बिना मा-बाप सृष्टिक्रम विरुद्ध कहीं लड़के भी पैदा होते हैं ? ॥

"यह क्या बढ़ई नहीं ? ॥"-मार्क रचित इञ्जील पर्व ६ ॥ आ० ३ ॥

इस प्रमाणसे ईशु बढ़ई था। मत्ती रचित इञ्जीलमें कहा हैः—

"ईशु गालील देशमें उपदेश देता था। उसने रोगियोंकी रोग-व्याधि, भूतग्रस्तोंका भूत, मृगीवाले, स्पर्श जानना रहित अर्धङ्गी आदिकोंको अच्छा किया ॥ एक कोढ़ीको छूते ही उसका रोग अच्छा किया, और कुछ करामाती था ॥"

॥ -मत्ती रचित इञ्जील पर्व ४। आयत २३-२५ ॥ पर्व ८। आयत १-४ ॥

इन प्रमाणोंसे ईशु एक वैद्य था, और जादू, मन्त्र, टोनादि करनेवाला था। इसी प्रकार अज्ञजनोंको प्रभाव देखाता, भुलाता भ्रमाता था ॥

"ईशुने उनसे कहा, मेरे पीछे आओ! मैं तुमको मनुष्योंके मछुवे बनाऊँगा; वे तुरन्त जालोंको छोड़कर उसके पीछे हो लिये ॥"

॥ —मत्ती रचित इञ्जील पर्व ४ ॥ आयत १६–२२ ॥

इस प्रमाणसे ईशु जाली और मांसभक्षक था, ऐसा जाना जाता है॥

"हमारी दिन भरकी रोटी आज हमें दे! अपने लिये पृथिवी पर धनका सञ्चय मत् करो ॥"

॥ —मत्ती रचित इञ्जील पर्व ६ ॥ आयत ११ । १६ ॥

इस प्रमाणसे ईशु दरिद्री था। क्योंकि दिन भर की रोटीके लिये वह ईश्वरकी प्रार्थना करता था ॥

"ईशुने उससे कहा तू मुझे उत्तम क्यों कहता है, उत्तम कोई नहीं है, एक ईश्वर ॥" ॥—लूक रचित इञ्जील पर्व १८ ॥ आयत १६ ॥

"और तब वह हर एक मनुष्यको उसके कार्यके अनुसार फल देगा ॥" ॥ —मत्ती रचित इञ्जील पर्व १६ ॥ आयत २८ ॥

योहन प्रकाशित वाक्योंमें कहा है:—"आत्मा कहती है हाँ! क्योंकि वे अपने परिश्रमसे विश्राम करेंगे, परन्तु उनके कार्य उनके सङ्ग हो लेते हैं ॥" ॥ —योहन प्र० पर्व १४ ॥ आयत १३ ॥

इन प्रमाणोंसे ईशु पापकी क्षमा करनेवाला और पवित्रात्मा नहीं था। अपने-अपने कर्मोंके फल सबोंको भोगने अवश्य हैं ॥

"अन्तमें ईशु क्रूस पर चढ़ायके मारा गया। तीन दिन बाद फिर जी उठा, और स्वर्गको गया ॥" ॥ —आ० ३५ । ५१ ॥

॥ —मत्ती रचित इञ्जील पर्व २७ । २८ ॥ आयत ६–७ ॥

शरीर छूटे बाद तीन दिन पिछे फिर जी उठना असम्भव बात है। देहसे सर्व वायु पूरे निकल गये, ऐसे देखनेवाले परीक्षक डाक्टर वहाँ रहे ही होंगे। ईसाइयोंके स्वर्गका वर्णन सुनियेः—

"और अपने-अपने शिर पर सोनेके मुकुट दिये हुए थे। और सात अग्नि दीपक सिंहासनके आगे जलते थे, जो ईश्वरके सातों आत्मा हैं। और सिंहासनके आगे काँचका समुद्र है, और सिंहासनके आस-पास चार प्राणी हैं, जो आगे और पीछे नेत्रोंसे भरे हैं ॥" ॥ -योहनके प्रकाशित वाक्य पर्व ४ ॥ आयत ४। ५। ६ ॥

"सोनेकी धूपदानी, तुरई बाजा, घुड़चढ़ोंकी सेना बीस करोड़, पराक्रमी दूत, स्त्रीको गर्भ, स्वर्गमें लड़ाई, बड़ा अजगर, शैतान, छोटे-बड़े मृतक सर्व ईश्वरके आगे खड़े, ईशुका स्वर्गमें ब्याह, स्वर्गमें सात सौ कोश लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाईका नगर, जहाँ सोना, मोती, नाना रत्न लगे हुए फाटक, सड़कों सहित अनेक प्रकारके अथाह कुण्ड इत्यादि प्रकारका योहन प्रकाशित ❀ वाक्योंमें स्वर्गका वर्णन है ॥"

❀ "और दूसरा दूत आके वेदीके निकट खड़ा हुआ, जिसके पास सोनेकी धूपदानी थी और उसको बहुत धूप दिया गया और धूपका धूआँ पवित्र लोगोंकी प्रार्थनाओंके सङ्ग दूतके हाथमेंसे ईश्वरके आगे चढ़ गया। और दूतने वह धूपदानी लेके उसमें वेदीकी आग भरके उसे पृथ्वी पर डाला और शब्द और गर्जन और बिजुलियाँ और भूईंडोल हुए ॥ पहिले दूतने तुरही फूँकी और लोहूसे मिले हुए ओले और आग हुए और वे पृथिवी पर डाले गये और पृथिवी की एक तिहाई जल गई ॥" ॥ —योहन प्रकाशित वाक्य पर्व ८ ॥ आयत ३। ४। ५। ७ ॥

"और घुड़चढ़ोंकी सेनाओंकी संख्या बीस करोड़ थी" ॥ यो० प्र० प० ९ ॥ आ० १६ ॥ "और मैंने दूसरे पराक्रमी दूतको स्वर्गसे उतरते देखा, जो मेघको ओढ़े था और उसके शिर पर मेघ धनुष् था और उसका मुँह सूर्य्यकी नाँई और उसके पाँव आगके खम्भोंके ऐसे थे। और उसने अपना दहिना पाँव समुद्रपर और बाँया पृथ्वी पर रक्खा ॥ यो० प्र० प० १० ॥ आ० १। २। ३ ॥ "और एक बड़ा आश्चर्य स्वर्गमें दिखाई दिया अर्थात् एक स्त्री जो सूर्य पहिने है और चाँद उसके पाँओंतले है और उसके शिर पर बारह तारोंका मुकुट है। और वह गर्भवती

होके चिल्लाती है, क्योंकि प्रसवकी पीड़ा उसे लगी है और वह जननेको पीड़ित है। और दूसरा आश्चर्य स्वर्गमें दिखाई दिया और देखो एक बड़ा लाल अजगर है, जिसके सात शिर और दश सींग हैं और उसके शिरों पर सात राजमुकुट हैं। और उसकी पूँछने आकाशके तारोंकी एक तिहाईको खींचके उन्हें पृथिवी पर डाला ॥ और स्वर्गमें युद्ध हुआ, मीखायेल और उसके दूत अजगरसे लड़े और अजगर और उसके दूत लड़े ॥ और वह बड़ा अजगर गिराया गया। हाँ! वह प्राचीन साँप जो दियाबल और शैतान कहावता है, जो सारे संसारका भरमानेहारा है ॥ हाय पृथिवी और समुद्रके निवासियो! क्योंकि शैतान तुमारे पास उतरा है ॥ यो० प्र० प० १२। आ० १–१२ ॥" "और मैंने दृष्टिकी और देखो मेम्ना सियोन पर्वत पर खड़ा है और उसके सङ्ग एक लाख चवालीस सहस्र जन थे, जिनके माथे पर उसका नाम और उसके पिताका नाम लिखा है ॥" ॥ यो० प्र० प० १४। आ० १ ॥ "क्योंकि मेम्नेका विवाह आ पहुँचा है और उसकी स्त्रीने अपने को तैयार किया है ॥" ॥ यो० प्र० प० १६। आ० ७ ॥ "जिसके सन्मुखसे पृथिवी और आकाश भाग गये और उनके लिये जगह न मिली। और मैंने क्या छोटे क्या बड़े सब मृतकोंको ईश्वरके आगे खड़े देखा और पुस्तक खोले गये और दूसरा पुस्तक अर्थात् जीवनका पुस्तक खोला गया और पुस्तकोंमें लिखी हुई बातोंसे मृतकोंका विचार उनके कर्मोंके अनुसार किया गया ॥" ॥ यो० प्र० प० २०। आ० ११–१२ ॥ "और उसने उस नलसे नगरको नापा कि साढ़े सात सौ कोशका है, उसकी लम्बाई और चौड़ाई और ऊँचाई एक समान है। और उसने उसकी भीतको मनुष्यके अर्थात् दूतके नापसे नापा कि एक सौ चवालीस हाथकी है और उसकी भीतकी जुड़ाई सूर्य्यकान्त की थी और नगर निर्मल सोनेका था जो निर्मल काँचके समान था और नगरके भीतकी नेवें हर–एक बहुमूल्य पत्थरसे सँवारी हुई थी, पहिली नेव सूर्य्यकान्त की थी, दूसरा नीलमणि की, तीसरी लालड़ी की, चौथी मरकत की, पाँचवीं गोमेद की, छठवीं माणिक्य की, सातवीं पीतमणि की, आठवीं पेराज की, नवीं पुखराज की, दशवीं लहसनिये की, एग्यारहवीं धूम्रकान्त की, बारहवीं [illegible] की; और बारह फाटक बारह मोती थे, एक–एक मोतीसे एक–एक फाटक बना था और नगरकी सड़क स्वच्छ काँचके ऐसे निर्मल सोनेकी थी ॥ (बाइबलका नया नियममें यह सब कल्पित बातोंका वर्णन की गयी है।) ॥

॥ योहन प्रकाशित वाक्य पर्व २१ ॥ आयत १६। १७। १८। १९। २०। २१ ॥

इन प्रमाणोंसे बिना देखे, बिना अनुभव किये झूठ ही गपोड़े हाँके हैं; जैसे हिन्दू उपासकोंके स्वर्गलोक वर्णनके बड़े-बड़े पुराणादि गपोड़े। तैसे इन लोगोंके भी बाइबल ग्रन्थमें मिथ्या गपोड़ोंसे भरे हैं ॥

इस प्रकारसे ईसाइयोंके बाइबल मतसे ईश्वर जङ्गली, मांसाहारी, एक मनुष्य जगत्में रहनेवाला ठहरनेसे तिसको कर्त्ता ईश्वर मानना पक्षपात और अन्यायका कथन है ॥

यह भी भ्रमिक मतको आप अब मत् मानिये ! ॥

॥ ❋ ॥ मुसलमान मत वर्णन ॥ ❋ ॥

प्रश्न (५६) यदि ईसाइयोंके बाइबल मतसे कर्त्ता ईश्वर नहीं ठहरता है, तो मुसलमानोंके कुरान मतके अनुसार कर्त्ताका प्रमाण सुनियेः—

कुरान अरबी भाषामें है, परन्तु मौलबियोंने उर्दूमें तिसका अनुवाद-रूप अर्थ लिखा है; उसीके अनुसार इसमें सर्व प्रमाण दिये हैं‡ ॥

"निश्चय तुम्हारा मालिक अल्लाह है, जिसने आसमानों और पृथिवीको छः दिनोंमें उत्पन्न किया। फिर करार पकड़ा अर्श पर, अर्थात् आकाशमें सिंहासन पर ॥"

॥ मंजिल २। पिसारा ८। [रुकू ७]। सूरत ७। सूरे आराफ, आयत ५३ ॥
॥ और सूरे फ़ुर्कान, पारा १६। [रुकू ५]। आयत ५६ में भी लिखा है ॥

"बस नियत किया उसको सात आसमान बीच दो दिनके और डाल दिया हमने बीच उसके काम उसका ॥"

॥ मं० ६। सि० २४। सू० ४१। सूरे हामीम सज्दह [रुकू २]। आ० १२॥

---

‡ लखनऊमें छपी हुई मौलबी अहमद बसीर एम० ए० की अनुवादित हिन्दी कुरानमें भी इस बार पूरा यह प्रकरण मिला ली गयी है। —सम्पादक ॥

"और किये हमने बीच पृथिवीके पहाड़ ऐसा न हो कि, हिल जावै ॥"
॥ मं० ४ । सि० १७ । सू० २१ । सूरे अम्बिया [रुकू ३] । आ० ३० ॥

"बस ठीक करूँ मैं उसको और फूँक दूँ बीच उसके रूह अपनीसे बस गिर पड़ो वास्ते उसके सिजदा करते हुए ॥"
॥ मं० ३ । सि० १४ । सू० १५ । सूरे हिज्र [रुकू ३] । आ० २८ ॥

"जो आसमान और पृथिवीको उत्पन्न करनेवाला है । जब वो कुछ करना चाहता है, यह नहीं कि उसको करना पड़ता है, किन्तु उसे कहता है कि, हो जा ! बस हो जाता है ॥"
॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । सूरे बकर [रुकू १४] । आ० ११६ ॥

"अल्लाह पहिलीबार करता है उत्पत्ति, फिर दूसरीबार करेगा उसको, फिर उसीकी ओर फेर जावोगे ॥"
॥ मं० ५ । सि० २१ । सू० ३० । सूरे रूम [रुकू २] । आ० १० ॥

इन प्रमाणोंसे रूह (जीव) सहित सर्व जगत्का उत्पन्न करनेवाला अल्लाह या खुदा है; उसको मैं कर्त्ता मानता हूँ ? ॥

(५६) उत्तरः—जैसे घड़े बनानेमें कुम्हारको उपादान-कारण मिट्टी चाहिये ! तैसे ही पाँच तत्त्वरूप कारण बिना कर्म नहीं बन सकता, इसलिए पाँच तत्त्व अनादि हैं। खुदा किसको कहता है कि "हो जा !" बस, हो जाता है । जब जगत् ही नहीं था, तब बेचून, बेनमून खुदाका आवाज किसने सुना ? सुननेवाले मनुष्य रहनेसे जगत् प्रथम था, इसलिए खुदासे जगत्की उत्पत्तिका कथन मिथ्या भ्रम कल्पित है। खुदाने सात आसमानोंको दो दिनमें बनाया ? परन्तु पोलाकार अनन्त छिद्ररूप आकाश (आसमान) कैसे बनेंगे ? प्रथम पोलाकार आकाश नहीं था, तब खुदा कहाँ रहता था ? पोलका भी कभी नाश हो सकता

है ? इससे सात आसमानोंकी उत्पत्तिका झूठा कथन है। यदि रूहोंको (जीवोंको) फूँकके खुदा उत्पन्न करता है, तो जीवोंकी उत्पत्ति और नाश किसी मतमें नहीं माना है। यदि जीव नाश भी होते होंगे, तो फिर 'नेकी' और 'बदी' के कर्मोंके फल 'बहिस्त' और 'दोजख' मुसलमीन क्यों मानते हैं ? इससे जगत् अनादिसिद्ध है। आसमानसे खुदाका भेजा हुआ "कुरान" कहते हैं, तिस विषयमें सुनियेः—

"निश्चय उतारा हमने कुरानको बीच रात क़द्रके ॥
और क्या जाने तू क्या है रात क़द्रकी ? ॥
उतरते हैं फ़रिस्ते और पवित्रात्मा बीच उसके साथ ॥
आज्ञा मालिक अपने के वास्ते हर क़ामके ॥"

॥ मं० ७ । सि० ३० । सू० ६७ । सूरे क़द्र [रुकू १] । आ० १ । २ । ४ ॥

"सब स्तुति खुदाके वास्ते हैं, जो परवरदिग़ार (सब संसारका पालन करनेवाला) है, सब संसारका । क्षमा करने वाला दयालु है ॥"

॥ मञ्जिल १ । सि० १ । सू० १ । सूरे फ़ातिहा [रुकू १] । आ० १ । २ ॥

"मालिक दिन न्यायका । तुझ ही को हम भक्ति करते हैं, और तुझ ही से सहायता चाहते हैं। दिखा हमको सीधा रास्ता ॥"

॥ मं० १ । सि० १ । सू० १ । सूरे फ़ातिहा [रुकू १] । आ० ३ । ४ । ५ ॥

"यह पुस्तक कि, जिसमें सन्देह नहीं, परहेज़गारोंको मार्ग दिखलाती है ॥ जो ईमान लाते हैं, साथ ग़ैबके नमाज़ पढ़ते, और विश्वास क़यामत पर रखते हैं। ये लोग अपने मालिक की शिक्षा पर हैं, और ये ही छुटकारा पानेवाले हैं। अल्लाहने उनके (क़ाफ़िरोंके) दिलों, कानों पर मोहर कर दी और उनकी आँखों पर पर्दा है, और उनके वास्ते बड़ा अज़ाब है ॥"

॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । सूरे बकर [रुकू १] । आयत २ से ७ तक ॥

"क़सम अल्लाहकी अवश्य भेजे हमने पैग़म्बर ॥"

॥ मञ्जिल ३ । सि० १४ । सू० १६ । सूरे नहल [रुकू ८] । आयत ६३ ॥

इन प्रमाणोंसे कुरानमें मनुष्योंके अनेक स्तुतिके वचन हैं। बड़े आदमी अपनी बड़ाई अपने मुखसे कभी नहीं करते या क़सम भी नहीं लेते; इसलिये कुरान मनुष्य कृत है। वह खुदा भी कोई मनुष्य ही होगा; इससे धीरे-धीरे चोरवत् रातमें कुरानको उतारा। क्या दिनमें उसे उतारनेको किसीकी डर थी? ॥ और कहा हैः—

"जो अल्लाहकी और उसके रसूलकी आज्ञा भङ्ग करेगा और उसकी हदोंसे बाहर हो जायगा, सो वह सदैव रहनेवाली आगमें जलाया जायगा; और उसके लिये ख़राब करनेवाला दुःख है ॥"

॥ मञ्जिल १ । सिपारा ४ । सू० ४ । सूरे निसा [रुकू २] । आयत १४ ॥

"लाइलाह इल्लील्लाः महम्मदर्रसूलल्लाः ॥"

ऐसा क़लमामें अल्लाहके साथ मुहम्मद रसूलका नाम लगायके कहते हैं। इसलिये मुहम्मद ही ने कुरानको लिख कर रातमें चोरीसे छिपायके कहीं वृक्ष परसे मनुष्यकी सहायता लेकर उसे नीचे उतारा होगा। क्योंकि कुरानकी असम्भव बातें सुनियेः—

"जब कि सूर्य लपेटा जावै। और जब कि तारे गदले हो जावें। और जब कि पहाड़ चलाये जावें। और जब आसमानकी खाल उतारी जावे ॥

॥ मं० ७ । सि० ३० । सू० ८१ । सूरे तक़वीर [रुकू१] । आ० १ । २ । ३ । ११ ॥

"और जब कि आसमान फ़ट जावे। और जब तारे झड़ जावें। और जब दर्या चीरे जावें। और जब क़बरें जिलाकर उठाई जावें ॥"

॥ मं० ७ । सि० ३० । सू० ८२ । सूरे इन्फ़ितार [रुकू १] । आ० १ । २ । ३ । ४ ॥

"क़सम है आसमान बुर्जोंवाले की ॥"

॥ मञ्जिल ७ । सिपारा ३० । सू० ८५ । सूरे बुरूज [रुकू १] । आयत १ ॥

"जब यूसुफने अपने बापसे कहा कि, ऐ बाप मेरे ! मैंने एक स्वप्न देखा ॥"

॥ मं० ३ । सि० १२ । सू० १२ । सूरे यूसुफ [रुकू १-६] आ० ४ से ४६ तक ॥

ऐसी-ऐसी आश्चर्ययुक्त बातें और पिता-पुत्रका सम्वादरूप किस्सा-कहानियोंसे भरा हुआ कुरान ज्ञानी मनुष्य कृत नहीं। परन्तु अज्ञानी, जङ्गली मनुष्यका ही बनाया हुआ दिखलाई पड़ता है ॥ अब अल्लाहमें प्रमाण सुनियेः—

"बस कहा था वास्ते उनके पैग़म्बर खुदाके ने, रक्षा करो ऊँटनी खुदाकी को और पानी पिलाना उसके को ॥"

॥ मञ्जिल ७ । सिपारा ३० । सू० ९१ । सूरे शम्स [रुकू १] । आयत १३ ॥

"फट जावैगा आसमान बस, वह उस दिन सुस्त होगा। और फ़िरिस्ते होंगे, ऊपर किनारों उसकेके और उठावेंगे तख़्त मालिक तेरेका ऊपर अपने उस दिन आठजन ॥"

॥ मञ्जिल ७ । सि० २९ । सू० ६९ । सूरे हाक़्क़ा [रुकू१] । आ० १६ । १७ ॥

"बस तूँ अलबत्ता मुझे देख सकेगा, जब प्रकाश किया, उसके मालिकने पहाड़की ओर, उसको परमाणु-परमाणु किया, गिर पड़ा मूसा बेहोश ॥"

॥ मञ्जिल २ । सि० ९ । सू० ७ । सूरे आराफ़ [रुकू १७] । आयत १४३ ॥

इन प्रमाणोंसे खुदाको ऊँटनी और तख़्त था। खुदा की ओरसे पैग़म्बर आते थे। मूसा पैग़म्बर खुदाका स्वरूप देख सकता था, और खुदासे वार्तालाप कर लेता था, इसलिए खुदा कोई एक मनुष्य ही था ॥ और कहा हैः—

"जब खुदा तुम मुसलमानों से प्रतिज्ञा करता था कि, और काटो जड़ काफ़िरोंकी। मैं तुमको सहायता दूँगा। साथ सहस्र

"क़सम अल्लाहकी अवश्य भेजे हमने पैग़म्बर ॥"

॥ मञ्जिल ३ । सि० १४ । सू० १६ । सूरे नहल [रुकू ८] । आयत ६३ ॥

इन प्रमाणोंसे कुरानमें मनुष्योंके अनेक स्तुतिके वचन हैं। बड़े आदमी अपनी बड़ाई अपने मुखसे कभी नहीं करते या क़सम भी नहीं लेते; इसलिये कुरान मनुष्य कृत है। वह खुदा भी कोई मनुष्य ही होगा; इससे धीरे–धीरे चोरवत् रातमें कुरानको उतारा। क्या दिनमें उसे उतारनेको किसीकी डर थी? ॥ और कहा है:—

"जो अल्लाहकी और उसके रसूलकी आज्ञा भङ्ग करेगा और उसकी हदोंसे बाहर हो जायगा, सो वह सदैव रहनेवाली आगमें जलाया जायगा; और उसके लिये ख़राब करनेवाला दुःख है ॥"

॥ मञ्जिल १ । सिपारा ४ । सू० ४ । सूरे निसा [रुकू २] । आयत १४ ॥

"लाइलाह इल्लील्लाः महम्मदर्रसूलल्लाः ॥"

ऐसा क़लमामें अल्लाहके साथ मुहम्मद रसूलका नाम लगायके कहते हैं। इसलिये मुहम्मद ही ने कुरानको लिख कर रातमें चोरीसे छिपायके कहीं वृक्ष परसे मनुष्यकी सहायता लेकर उसे नीचे उतारा होगा। क्योंकि कुरानकी असम्भव बातें सुनियेः—

"जब कि सूर्य लपेटा जावै। और जब कि तारे गदले हो जावें। और जब कि पहाड़ चलाये जावें। और जब आसमानकी ख़ाल उतारी जावे ॥

॥ मं० ७ । सि० ३० । सू० ८१ । सूरे तक़वीर [रुकू१] । आ० १ । २ । ३ । ११ ॥

"और जब कि आसमान फ़ट जावे। और जब तारे झड़ जावें। और जब दर्या चीरे जावें। और जब क़बरें जिलाकर उठाई जावें ॥"

॥ मं० ७ । सि० ३० । सू० ८२ । सूरे इन्फ़ितार [रुकू १] । आ० १ । २ । ३ । ४ ॥

"क़सम है आसमान बुर्जोंवाले की ॥"

॥ मञ्जिल ७ । सिपारा ३० । सू० ८५ । सूरे बुरूज [रुकू १] । आयत १ ॥

"जब यूसुफ़ने अपने बापसे कहा कि, ऐ बाप मेरे! मैंने एक स्वप्न देखा ॥"

॥ मं० ३ । सि० १२ । सू० १२ । सूरे यूसुफ़ [रुकू १-६] आ० ४ से ४६ तक ॥

ऐसी-ऐसी आश्चर्ययुक्त बातें और पिता-पुत्रका सम्वादरूप किस्सा-कहानियोंसे भरा हुआ कुरान ज्ञानी मनुष्य कृत नहीं। परन्तु अज्ञानी, जङ्गली मनुष्यका ही बनाया हुआ दिखलाई पड़ता है ॥ अब अल्लाहमें प्रमाण सुनियेः—

"बस कहा था वास्ते उनके पैग़म्बर खुदाके ने, रक्षा करो ऊँटनी खुदाकी को और पानी पिलाना उसके को ॥"

॥ मञ्जिल ७ । सिपारा ३० । सू० ९१ । सूरे शम्स [रुकू १] । आयत १३ ॥

"फट जावैगा आसमान बस, वह उस दिन सुस्त होगा। और फ़िरिस्ते होंगे, ऊपर किनारों उसकेके और उठावेंगे तख़्त मालिक तेरेका ऊपर अपने उस दिन आठजन ॥"

॥ मञ्जिल ७ । सि० २९ । सू० ६९ । सूरे हाक्क़ा [रुकू१] । आ० १६ ।१७॥

"बस तूँ अलबत्ता मुझे देख सकेगा, जब प्रकाश किया, उसके मालिकने पहाड़की ओर, उसको परमाणु-परमाणु किया, गिर पड़ा मूसा बेहोश ॥"

॥ मञ्जिल २ । सि० ९ । सू० ७ । सूरे आराफ़ [रुकू १७] । आयत १४३ ॥

इन प्रमाणोंसे खुदाको ऊँटनी और तख़्त था। खुदा की ओरसे पैग़म्बर आते थे। मूसा पैग़म्बर खुदाका स्वरूप देख सकता था, और खुदासे वार्तालाप कर लेता था, इसलिए खुदा कोई एक मनुष्य ही था ॥ और कहा हैः—

"जब खुदा तुम मुसलमानों से प्रतिज्ञा करता था कि, और काटो जड़ काफ़िरोंकी। मैं तुमको सहायता दूँगा। साथ सहस्र

फ़िरिस्तोंके पीछे—पीछे आनेवाले। अवश्य मैं काफ़िरोंके दिलोंमें भय डालूँगा, बस मारो ऊपर गर्दनोंके, मारो उनमेंसे प्रत्येक पोरीपर = सन्धि पर। इनके टुकड़े—टुकड़े कर डालो ॥"

॥ मं० २। सि० ६। सू० ८। सूरे अन्फ़ाल [रुकू १]। आ० ७। ६। १२॥

"क्या तुमको यह बहुत न होगा कि, अल्लाह तुमको तीन हज़ार फ़िरिस्तोंके साथ सहायता देवें ॥"

॥ मं० १। सि० ४। सू० ३। सूरे आल इमरान [रुकू १३]। आ० १२५॥

"और क़ाफ़िरों पर हमको सहाय कर। अल्लाह तुम्हारा उत्तम सहायक और कारसाज़ है। जो तुम अल्लाहके मार्गमें मारे जाओ, वा मरजाओ, तो अल्लाहकी दया बहुत अच्छी है ॥"

॥ मं० १।सि० ४।सू०३।सूरे आल इमरान[रुकू१५]। आ० १४८।१५१।१५८॥

इन प्रमाणोंसे सात हजार वा तीन हजार फ़िरिस्तोंको लेकर इमान लानेवाले मुसलमीनोंको छोड़कर और क़ाफ़िरोंपर लड़ने, मारने-काटनेकी आज्ञा देनेवाला अल्लाह किसी देश निवासी, निर्दयी और पापी लोगोंका सहायक ठहरता है ॥

"और नियत करते हैं वास्ते अल्लाहके बेटियाँ पवित्रता है उसको, और वास्ते उनके हैं जो कुछ चाहे ॥"

॥ मं० ३। सि० १४। सू० १६। सूरे नहल [रुकू ७]। आ० ५७॥

"रजस्वला दिन छोड़के तुम्हारी बीबियाँ तुम्हारे लिए खेतियाँ हैं, बस जाओ जिस तरह चाहो अपने खेतमें ॥"

॥ मं० १। सि० २। सू० २। सूरे बकर [रुकू २८]। आ० २२२-२२३॥

"रोज़ेकी रातमें भी स्त्रियोंसे मिलो, वह पाप अल्लाहने क्षमा किया ॥"॥ मं० १। सि० २। सू० २। सूरे बकर। [रुकू २३]। आ० १८७॥

इन प्रमाणोंसे बेटियाँ पास रखनेवाला, बीबियाँ खेतियाँ हैं, ऐसा

कहनेवाला अल्लाह विषयलम्पट होगा,ऐसा ही जाना जाता है ॥

और कहा है:—

"तुम पर मुर्दार, लोहू और गोस्त सूअरका हराम है ॥ और अल्लाहके बिना जिसपर कुछ पुकारा जावै ॥"

॥ मञ्जिल १ । सि० २ । सू० २ । सूरे बकर [रुकू २१] । आ० १७३ ॥

"जो कुछ आसमान और पृथिवी पर है, सब उसीके लिये है। चाहे उसकी कुरसीने आसमान और पृथिवीको समा लिया है ॥"

। मञ्जिल १ । सि० ३ । सू० २ । सूरे बकर [रुकू ३४] । आयत २५५ ॥

इन प्रमाणोंसे अल्लाहने सर्व पृथ्वीके प्राणी व पदार्थ खाने-पीनेकी मुसलमान नरजीवोंके लिये आज्ञा दी, फिर अकेला सूअरका मांस क्यों छुड़ाया ? यदि वे नरक भक्षण करनेसे उसे छुड़ाया हो, तो गाय, मुरगा भी तो वही खा लेते हैं ? इसलिए अल्लाह मांसाहारी, बेदर्दी ही होगा । खुदाकी ओरसे स्वयं मरे हुए पशु-पत्ती आदि बकरे, गाय, मुरगे, ये सर्व नापाक, और अपने हाथसे हलाल कर गला काटके मारे हुए पशु, पत्ती आदि सर्व पाक होते हैं ? ऐसा क़ाफ़िरवत् नादान, मेहर रहित काम मुसलमीन लोग क्यों चलाते हैं ? ॥

"तुम जिधर मुँह करो, उधर ही मुँह अल्लाहका है ॥"

॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । सूरे बकर [रुकू १४] । आयत ११५ ॥

"जब हमने लोगोंके लिये क़ाबेको (मक्केको) पवित्र स्थान सुख देने-वाला बनाया है । तुम नमाज़के लिये इबराहिमके स्थानको पकड़ो ॥"

॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । सूरे बकर [रुकू १५] । आयत १२५ ॥

इन दो प्रमाणोंसे जब अल्लाहको सब जगहोंपर कहा, तो दुर्गन्धी पदार्थोंमें भी वही होगा क्या ? वाहजी वाह ! फिर क़ाबाका

स्थान पवित्र क्यों कहा? इससे ये कुरान खुदाके वचनरूप हैं नहीं। यदि उसीका ही होवै, तो वह मूर्ख और अविचारी ठहरता है ॥

"क्या नहीं देखा तूने यह कि, भेजा हमने शैतानोंको ऊपर क़ाफ़िरोंके, बहकाते हैं उनको बहकानेपर ॥"

॥ मं० ४ । सि० १६ । सू० १६ । सूरे मरियम [रुकू ६] । आयत ८३ ॥

"और अल्लाह तुमको परोक्षज्ञान नहीं करता। परन्तु अपने पैग़म्बरोंसे, जिसको चाहे पसन्द करे, बस अल्लाह और उसके रसूलके साथ इमान लाओ ॥"

॥ मञ्जिल १ । सि० ४ । सू० ३ । सूरे आल इमरान [रुकू १८] । आ० १८० ॥

इन दो प्रमाणोंसे अल्लाह शैतान द्वारा नरजीवोंको बहकाने-वाला है। फिर अल्लाहके साथ रसूलपर (मुहम्मदपर) वह इमान लानेको क्यों कहता है ? इसलिए कुरान मुहम्मद ही का बनाया होगा। अब मुहम्मदके विषयमें सुनियेः—

"और अटकी रहो बीच घरों अपनेके, आज्ञा पालन करो अल्लाह और रसूलकी सिवाय इसके नहीं ॥ बस जब अदा कर ली ज़ैदने, हाजित उससे ब्याह दिया, हमने तुझसे उसको ताकि न होवैं, ऊपर इमानवालोंके तङ्गी बीच बीबियों से लेपालकों उनकेके, जब अदा कर लें उनसे हाजित और है आज्ञा खुदाकी की गई ॥"

॥ मञ्जिल ५ । सिपारा २२ । सू० ३३।सूरे अहज़ाब [रुकू ५] । आ० ३३।३७॥

इन दो प्रमाणोंसे मुहम्मदका बेटा ज़ैद (लेपालक) था। उसकी स्त्रीसे मुहम्मदने ब्याह किया, और खुदा भी आज्ञा देता है वाह वा ! धन्य है ! ऐसे कुरानकी ! ऐसा बेसहूर मुहम्मद खुदाकी आज्ञासे महाविषयी बना हुआ बहुत-सी बीबियोंको अनाचारसे भ्रष्ट किया होगा। यह कुरान अपने मतलबके लिये

जरूर मुहम्मद ही ने बनाया है; इसलिए अन्यायकी बातोंसे भरा हुआ, पवित्र और न्याय नीतियुक्त कुरान क्यों कर हो सकता है ॥

"फिर निश्चय तुम दिन क़यामतके उठाये जाओगे ॥"

॥मञ्जिल ४। सिपारा १८। सू० २३। सूरे मोमिनून [रुकू१]। आयत १६॥

"चढ़ते हैं फ़िरिस्ते और रूह तर्फ़ उसकी, वह अज़ाब होगा बीच उस दिनके, कि है परिमाण उसका पचास हज़ार वर्ष ॥ जबकि, निकलेंगे क़बरोंमेंसे दौड़ते हुए मानों कि, वह बुतोंके स्थानों की ओर दौड़ते हैं ॥"

॥मं० ७। सि० २६। सू० ७०। सूरे मआरिज़ [रुकू १-२]। आयत ४।४३॥

इन दो प्रमाणोंसे पचास हज़ार वर्ष क़बरोंमें मुर्दे रहेंगे, फिर जीते हों, सब रूह देह धरके खुदाके पास सातवें आसमानपर जावेंगे, यही बड़ी असम्भव बात है। यदि जगत्की फिर उत्पत्ति नहीं मानते हैं, तो सबोंके शरीर छूटे बाद बारम्बार अनेक देहधारी अविनाशी जीव कहाँसे प्रकट होते हैं ? इसलिए जीवोंके पुनर्जन्म अवश्य होते हैं। अथवाः—खुदा दो बार जगत्की उत्पत्ति करता है; ऐसा प्रमाण पूर्वमें ❀ दिया है, तिससे पुनर्जन्म सिद्ध होता ही है ॥

अब बहिस्त, दोज़ख़ (स्वर्ग, नरक) विषय सुनियेः—

"क़ाफ़िरोंके वास्ते पत्थर तैय्यार किये गये हैं ॥"

॥ मं० १। सि० १। सू० २। सूरे बकर [रुकू ३]। आयत २४ ॥

"किया हमने दोज़ख़को वास्ते क़ाफ़िरोंको घेरनेवाला स्थान ॥"

॥ मं० ४। सि० १५। सू० १७। सूरे बनी इसराइल [रुकू १]। आ० ८ ॥

"क़ाफ़िरोंको मारते फ़िरिस्ते मुख और पीठ पर ॥"

॥ मं० २। सि० १०। सू० ८। सूरे अन्फाल [रुकू ७]। आ० ५० ॥

❀ पृष्ठ २०८ में-मं० ५। सि० २१। सू ३०। सूरे रूम [रुकू २]आ० १०में कहा है॥

"ये लोग वास्ते उनके हैं बाग़ हमेशह रहनेके, जहाँ चलती हैं नीचे उनकेसे नहरें। गहना पहिराये जावेंगे, बीच उसके कङ्गन सोनेकेसे और पोशाक़से पहिनेंगे वस्त्र हरे लाहीकेसे, और ताफ़तेकीसे तकिये किये हुए बीच उसके ऊपर तख़्तोंके, अच्छा है पुण्य, और अच्छी है बहिस्त, लाभ उठानेकी ॥"

॥ मं० ४ । सि० १५ । सू० १८ । सूरे क़हफ़ [रुकू ४] । आ० ३१ ॥

"तारीफ़ उस बहिस्तकी, कि प्रतिज्ञा किये गये हैं परहेज़गार, बीच उसके नहरें हैं बिन बिगड़े पानी की और नहरें हैं दूधकी कि, नहीं बदला मज़ा उनका और नहरें हैं शराबकी मज़ा देनेवाली वास्ते पीनेवालोंको और नहरें शहद साफ़ किये गये की और वास्ते उनके, बीच उसके मेवे हैं, प्रत्येक प्रकारसे दान मालिक उनकेसे ॥"

॥ मं० ६ । सि० २६ । सू० ४७ । सूरे मुहम्मद [रुकू २] आ० १५ ॥

और मञ्जिल ६, सिपारा २५; और मञ्जिल ७, सिपारा २७; में कहा ❀ है:—लड़के और सुहागनवालियाँ, बराबर अवस्था—

❀ इसी प्रकार रहेंगे और ब्याह देंगे उनको साथ गोरियों अच्छी आँख वालियोंके ॥मञ्जिल ६। सिपारा २५। सूरत ४४। सूरे दुख़ान [रुकू ३]आयत ५४॥

ऊपर पलङ्ग सोनेके तारोंसे बुने हुए हैं। तकिये किये हुए हैं ऊपर उनके आमने-सामने। और फिरेंगे ऊपर उनके लड़के सदा रहने वाले। साथ आब-ख़ोरोंके और आफ़्ताबों के। और प्यालोंके शराब साफ़से। नहीं माथा दुखाये जावेंगे उससे और न विरुद्ध बोलेंगे। और मेवे उस क़िस्मसे कि पसन्द करें। और गोस्त जानवर पक्षियोंके उस किस्म से कि पसन्द करें। और वास्ते उनके औरतें हैं अच्छी आँखों वाली। मानिन्द मोतियों छिपाये हुओं की और बिछौने बड़े। निश्चय हमने उत्पन्न किया है औरतोंको एक प्रकारका उत्पन्न करना है। बस किया है हमने उनको कुमारी। सुहागनवालियाँ बराबर अवस्थावालियाँ। बस भरनेवाले हो उससे पेटोंको। बस क़सम खाता हूँ साथ गिरने तारोंके ॥ मञ्जिल ७। सिपारा २७। सूरत ५६। आयत १६ से २३। ३४ से ३७। ५३। ७५। सूरे वाकिआ [रुकू १—३] ॥

वालियाँ, सुन्दर कुमारियाँ हमेशा बहिस्तमें रहती हैं। खुदा ब्याह भी कर देता है। सोनेके तारोंसे बुने हुए पलङ्ग, बड़े बिछौने, तकिये, शराब, मेवे, गोस्त जानवर पक्षियोंके, ऐसे-ऐसे अनेक प्रकारसे वर्णन हैं। परन्तु यह स्वर्ग (बहिस्त) नहीं है, प्रत्यक्ष दिखाई देता हुआ सब जगत्का ही विषय भोग विलासका ठाठ है। स्वर्गलोक असिद्ध है; (तिसको पूर्वके प्रमाण प्रश्न ७ तथा प्रश्न १७ में देखिये !)। इससे स्वर्ग-नरकके विषय विना देखे, बिना अनुभव किये, झूठ गपोड़े ही हाँके हैं, ऐसा ठहरता है॥

पूर्वोक्त मुसलमानोंके कुरान मतसे कर्त्ता अल्लाह या खुदा मानना, कपोल कल्पना और अन्यायका कथन है। यह जगत् अनादि सिद्ध है। ऐसा सत्य निर्णय करके देखिये ! और इस भ्रमिक मतको भी आप अब त्याग दीजिये ! ॥

॥ ❀ ॥ जैन मत वर्णन ॥ ❀ ॥

प्रश्न (५७) यदि मुसलमानोंके कुरानमतसे कर्त्ता खुदा नहीं ठहरता, तो जैनमतसे परमेश्वर विषय कहा है:—

श्लोकः—"सर्वज्ञो वीतरागादि,-दोषस्त्रैलोक्यपूजितः॥
यथास्थितार्थवादी च, देवोऽर्हन् परमेश्वरः॥ १॥"

॥ आप्त निश्चयालङ्कार श्लोक—१॥

अर्थः—चन्द्रसूरीजी कहते हैं कि, अर्हन्त (तीर्थङ्कर) सर्वज्ञ, साक्षात् परमेश्वर, तीन लोकमें पूज्यमान, यथार्थ वक्ता हुए हैं। जिन्होंने—१ मिथ्यात्व, २ अज्ञान, ३ मद, ४ क्रोध, ५ माया, ६ लोभ, ७ रति (राग), ८ अरति, (खेद), ९ निद्रा, १० शोक, ११ अलीक, (झूठ भाषण), १२ चोरी, १३ मत्सर (प्रभुत्त्व

बढ़ानेके लिये अन्यका द्वेष), १४ भय, १५ प्राणि वध, १६ प्रेम रहित, १७ क्रीड़ा (गाना-बजानादि), और १८ हँसना, ये अठारह दोष जीत लिये थे ॥

"अनादिसम्बन्धे च ॥ ४१ ॥" जैन तत्त्वार्थ सूत्र ४१ । अध्याय २ ॥

अर्थः—संसारी जीवोंका अनादि कालका शरीर सम्बन्ध है, और सादि (बीच-बीचमें) जन्म-मरणरूपसे देह सम्बन्ध होता ही जाता है ॥

इस प्रमाणसे सर्व देहधारी जीवोंका जन्म-मरणका प्रवाह अनादि ही चला आया है ॥

"जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम् ॥ ४ ॥"

॥ जैन तत्त्वार्थ सूत्र ४ । अध्याय १ ॥

अर्थः—१ जीव, २ अजीव, ३ आस्रव, ४ बन्ध, ५ सँवर, ६ निर्जरा और ७ मोक्ष ये सात तत्त्व हैं ॥ चेतना लक्षण (ज्ञानगुण) वाला जीव है । चेतना लक्षण रहित पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, और आकाश, ये पाँचों मिलके एक अजीव तत्त्व है । ऐसे जीव-अजीव इन दोनोंमें छः द्रव्य कहाते हैं । शुभ और अशुभ कर्मोंके आने वाले द्वारको "आस्रव" कहते हैं । जीवोंके प्रदेशोंमें अर्थात् अनेक परमाणुओंका कर्म द्वारा सम्बन्ध होना, वही "बन्ध" है । आस्रवका रुक जाना "सँवर" कहा है । जीवके प्रदेशोंसे कर्मोंका एक देशमें क्षय हो, उससे जीव न्यारा हो जाना, "निर्जरा" है । समस्त कर्मोंका जीवके प्रदेशोंसे सर्वथा क्षय होना "मोक्ष" है । ऐसे मुख्य सात तत्त्व हैं । परन्तु पाप और पुण्य, ये दो मिलाय कहीं नौ पदार्थ भी मानते हैं ॥

संसारिणो मुक्ताश्च। संसारिणस्त्रसस्थावराः। पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः,वनस्पत्यन्तानामेकम् ,कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि।।
॥ जैन तत्त्वार्थ सूत्र १० । १२ । १३ । २२ । २३ ॥ अध्याय २ ॥

अर्थः—जीव दो प्रकारके हैं; 'संसारी' और 'मुक्त'। संसारी 'त्रस' और 'स्थावर' ये दो जातिके हैं। जो जीव पैदा होते, बढ़ते, मरते, चल-फिर नहीं सकते; वे पृथ्वी, जल, तेज, वायु, और वनस्पतिकाय स्थावर जीव हैं। जिनका पृथ्वी ही शरीर हों वे "स्थावरकाय" जीव हैं। जैसे मिट्टी, पाषाण, अभ्रक, सोना, रूपा इत्यादि हैं। खानियोंमेंसे निकाल लिये बाद तिनमें जीव नहीं रहते। "जलकाय" जीव = जल-ओले, ओस, बर्फ इत्यादि हैं। "तेजकाय" जीव = दियाओंकी ज्योति, बिजली, आग इत्यादि हैं। "वायुकाय" जीव = केवल हवा ही है। "वनस्पतिकाय" जीव = वृक्ष, बेलि, तृण, पत्ती, फूल, फल, मूल, (जड़ियाँ), अथवा सेवार, तरबूज, गाजरादि पोले हरे पदार्थ, हरि शाक, कच्चा दूध, दही, छाँछ, मक्खन इत्यादि हैं; जहाँ सूक्ष्म-सूक्ष्म अनन्तकाय जीव रहते, ऐसे मानते हैं। जैन तत्त्वादर्शके अष्टम परिच्छेद (पृष्ठ ३५६ के २२) में लिखा है:—"सूईके अग्रभाग पर किसी हरे पदार्थका जितना भाग ठहरेगा, तिसमें 'अनन्तकाय' जीव रहते हैं।" 'वनस्पतिकाय' जीवोंमें एक ही स्पर्श इन्द्रिय, त्वचा रहती है। और आयु, काय बल, वायु भीतर लेनी-छोड़नी, ऐसे मिलकर चार प्राण होते हैं। त्वचा, जीभ, ये दो इन्द्रियोंके जीव = कृमि, केंचुवा, जोंक, शङ्ख इत्यादि हैं। त्वचा, जीभ, नासिका, ये तीन इन्द्रियोंके जीव = चिउँटी, चिउँटा, खटमल, जूँ, इत्यादि हैं। त्वचा, जीभ, नासिका, नेत्र, ये चार इन्द्रियोंके जीव = बर्रे, भँवरा,

मक्खी, टीड़ी, इत्यादि हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके जीव = मनुष्य, पशु, पक्षी, स्वर्गवासी देव और पातालमें नरकवासी, नरकी जीव हैं। सबमें कहीं 'मन सहित' और कहीं 'मन रहित' 'सैनी–असैनी' जीव रहते, ऐसा मानते हैं ॥

"स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः ॥" जैन तत्त्वार्थ सूत्र २३। अध्याय ५ ॥

अर्थः—स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण—रूपवाला—पुद्गल है। उसके अनन्त परमाणु तीनोंलोकमें भरे हैं। दो या अधिक परमाणुओंका मेल होनेसे अनेक स्कन्ध बनते हैं ॥

"गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ॥ वर्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वे च कालस्य ॥ आकाशस्यावगाहः ॥ [illegible] ॥

॥ जैन तत्त्वार्थ सूत्र १७। २२। १८। १२ ॥ अध्याय ५ ॥

अर्थः—जीव और पुद्गलोंके गमनमें और स्थितिमें सहकारी (आश्रय) वे धर्म और अधर्म 'द्रव्य' है; जैसे मच्छके चलनेमें और मुसाफिरोंके ठहरनेमें जल और वृक्षोंके छायाकी सहायता। वर्त्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व, अपरत्व, इन पाँचोंमें कालद्रव्य उपकारी और निमित्त–कारण है। द्रव्यमें एक धर्म छूटकर दूसरा प्रकट होना, वह 'परिणाम' है। हलन, चलनादि 'क्रिया' है। बड़ी–छोटी आयु वही 'परत्व' और 'अपरत्व है। ये कालद्रव्यसे सिद्ध होते हैं। सर्व द्रव्योंको अवकाश देना वह आकाश द्रव्यमें निमित्त कारण माना है। लोकाकाशमें "धर्म, अधर्म, जीव, पुद्गल और काल" इन पाँच द्रव्योंकी स्थिति है। सर्वके ऊपर अलोकाकाशमें एक ही आकाश द्रव्य माना है ॥

कर्म बन्धन विषय कहा हैः—

"आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्राऽन्तरायाः ॥ ४ ॥"

॥ जैन तत्त्वार्थ सूत्र ४। अध्याय ८ ॥

अर्थः—'आदिबन्ध' अर्थात् पुद्गलोंके बन्धनमें "ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय" ये आठ कर्म हैं ॥ उनका विस्तार १४८ भेदोंसे कहा है ॥

यहाँ संक्षेपसे सुनियेः—

जीवका असली गुण (ज्ञानगुण) प्रकट न होने देवै, अर्थात् परदा बना रहे, वह 'ज्ञानावरण कर्म' है; झूठ उपदेश, किसी कर्ममें विघ्न डालना इत्यादि कर्मोंसे वह कर्म बन्धता है। कोई देहधारी जीवका और पदार्थोंका दर्शन नहीं होने देना, वह 'दर्शनावरण कर्म' है; किसीको किसी वस्तुका दर्शन नहीं होने देना, वस्तु छिपाना इत्यादि कर्मोंसे वह कर्म बन्धता है। जीवोंको सुख और दुःख देनेवाला "वेदनीय कर्म" है। काया, वाचा, मनसे जीवोंको अनेक सुख और दुःख देनेसे वह कर्म बन्धता है। जीव स्वयं भूल जावै, या अनेक वस्तुओंमें लुभाय जावै, वह 'मोहनीय-कर्म' है। काम, क्रोध, माया, मान लोभादि कषाय विशेष रखनेसे वह कर्म बन्धता है। जीवोंको मनुष्य, पशु, पक्षी, देवादि देहोंमें रखनेवाला 'आयु कर्म' है। हिंसा, छल–कपट या अल्प शुद्ध व्यवहार रखनेसे वह कर्म बन्धता है। सुन्दर, कुरूप, लम्बा, छोटा, टेढ़ा, सीधा, इन्द्रियहीन, रोगी, इत्यादि शरीरोंके विचित्र आकार बनने, वह 'नाम कर्म' है। किसीकी भलाई, बुराई, काया, वाचा, मनसे सोचने या अशुभ–शुभ कर्मोंसे वह कर्म बन्धता है। ऊँच, नीच, कुल–जातिमें जन्म होना, वह 'गोत्र कर्म' है। जाति, कुल, रूप, बलादि अहङ्कारसे वह कर्म बन्धता है। जीवोंके कार्यमें कोई विघ्न करे, वह 'अन्तराय कर्म' है। दान रोकना, विद्या नहीं पढ़ाना, लाभ न होने देना इत्यादि कर्मोंसे वह कर्म बन्धता है ॥

अर्थः—जो जैनमत विरोधी मिथ्या धर्मवाले हैं, वे क्यों जन्मे ? जो जन्मे, तो बढ़े क्यों ? अर्थात् जल्दी मर जाते ? तो अच्छा होता ॥ सर्वज्ञ भाषित जिनेन्द्र वचन जैनके सुगुरु और जैनधर्म कहाँ ? तथा उनसे विरुद्ध कुगुरु अन्य मार्गोंके उपदेशक कहाँ ? अर्थात् हमारे सुगुरु, सुदेव, सुधर्म और दूसरे सब कुगुरु, कुदेव, कुधर्म हैं। ऐसा वे लोग मानते हैं ॥

इन प्रमाणोंसे जिस शास्त्रमें पक्षपाती, द्वेषी, निर्दयी वचन लिखे हैं, वे तीर्थङ्कर सर्वज्ञ नहीं थे, और उनके शास्त्र भी मानने योग्य नहीं है ॥ और कहा हैः—

"विष्णु, शिवादि देवोंकी बड़ाई नरकका हेतु है, उनको देखकर जैनियोंके रोमाञ्च खड़े हो जाते हैं।" जो कोई ऐसा कहै कि, "हमारे जैन साधुओंमें और अन्यमें भी धर्म है," तो वह मनुष्य कोड़ाकोड़ी वर्ष तक नरकमें रहकर फिर भी नीच जन्म पाता है ॥

॥ प्रकरण रत्नाकर भाग २। षष्ठी शतक सूत्र ६५। १२२ ॥

इस प्रमाणसे कोई जैनमत खण्डन करेंगे, इसलिए वैसे भयङ्कर वचन लिख रक्खे हैं, कुछ सत्यन्यायके नहीं ॥

काल संख्या विषय कहा हैः—

"समयका नाम सूक्ष्म काल है। और असंख्यात समयको "आवलि" कहते हैं। एक श्वासमें असंख्यात "आवलियाँ" होती हैं। एक क्रोड़ सर्सठ लाख सत्तर हजार दो सौ सोलह आवलियोंका एक "मुहूर्त्त" होता है। वैसे तीस मुहूर्त्तोंका एक "दिवस" वैसे पन्द्रह दिवसोंका एक "पक्ष" वैसे दो पक्षोंका एक "महीना" और वैसे बारह महीनोंका "एक वर्ष" होता है। एक क्रोड़ को एक क्रोड़से गुणा करने बाद उस संख्याको "कोड़ा—कोड़ी"

कहते हैं। वैसे सत्तर लाख क्रोड़ छप्पन सहस्र क्रोड़ वर्षोंका एक "पूर्वकाल" और ऐसे असंख्यात पूर्वोंका एक "पल्योपम" काल होता है" ऐसा कहते हैं। उसकी गणति ऐसी है:—"चार कोशोंका चौरस और उतना ही गहरा कूआँ खोदके, उसमें जुगुलिये मनुष्यके शरीरका बाल एक अङ्गुलका भाग लेना। वह बाल इस समयके मनुष्यके चार सहस्र छियानवे बालोंको इकट्ठा करें, इतना सूक्ष्म होता है। उस बालके सात बार आठ–आठ टुकड़े करनेसे बीस लाख सत्तानवे सहस्र एक सौ बावन टुकड़े होते हैं। ऐसे सर्व टुकड़ोंको उसी पूर्वोक्त कूआँमें भरे, अनन्तर सौ वर्षोंके अन्तरसे सर्व टुकड़े निकाल लिये जावें, तो भी वह "संख्यात काल" होता है। जब उनमेंसे एक–एक टुकड़ाके असंख्यात टुकड़े करके उन कूँएँको ठसके भरै, चाहे चक्रवर्ती राजाकी सेना सर्व चली जाय, तो भी दबे नहीं। फिर सौ–सौ वर्षोंके अन्तरसे सब कूँवा खाली हो जाय, वह "असंख्यात काल" वा "पल्योपम काल" होता है। दश क्रोड़ान् क्रोड़ पल्योपम काल बीतें तब "सागरोपमकाल" होता है। दश 'कोड़ाकोड़ी' सागरोपम काल बीत जाय तब एक "उत्सर्पणी काल" और 'उत्सर्पणी और अवसर्पणी' काल बीत जाय, तब एक "कालचक्र" होता है॥ रत्नसार भाग ❀ और जैन सिद्धान्त प्रवेशिका प्रश्न ३३० से ३६७ तक इसका वर्णन है॥

इस प्रमाणसे एक बालके लाखों–असंख्यात टुकड़े होते, ऐसे कहनेवाले, आश्चर्य युक्त मिथ्या कल्पित कालका प्रमाण

❀ "रत्नसार भाग" ई० सन् १८७६ अप्रैल ता० २८ में नानकचन्द जतीने जैन प्रभाकरप्रेस, बनारसमें छपाकर प्रकाश किया था; उसीमेंसे ऊपर प्रमाण दी गयी है॥

करनेवाले, जैनमतके सर्वज्ञ गुरु और शिष्य सर्व गणित विद्या हीन, अज्ञानी, जङ्गली ही थे, और आज तक उसीको माननेवाले भी वैसे ही अज्ञान दशासे भ्रममें पड़े हैं। परन्तु काल स्वयं नित्य द्रव्य नहीं; पृथ्वी, सूर्य–चन्द्रमाके हर दिनकी क्रियाओंसे वह सिद्ध है; (तिसको पूर्वके प्रश्न ३६ में देखिये !) ॥

"१. रत्न प्रभा, २. सक्कर प्रभा, ३. बालु प्रभा, ४. पङ्क प्रभा, ५. धूम प्रभा, ६. तमः प्रभा, और ७. तमतमा प्रभा, ये सात 'अधोलोक' हैं। तिनमें क्रमसे तीस लाख, पचीस लाख, पन्द्रह लाख, दश लाख, तीन लाख, पाँच कम एक लाख, और सातवेंमें केवल पाँच ही ऐसे अनन्त नरकावास हैं। उनमें असंख्यात योजनोंके गोल, त्रिकोणादि अनेक आकारवाले नरक पृथ्वीके पोलमें स्थित हैं। जहाँ महादुःख सहनेवाले नारकीय जीवोंकी क्रमसे एक, तीन, सात, दश, सत्रह, बाईस, और तैंतीस सागरोपम कालकी बड़ी आयु होती है ❀ ॥"

॥ जैन तत्त्वार्थ † सूत्र २ । ६ । अध्याय ३ ॥

"मध्यलोक = पृथ्वी लोकमें सबके बीच थालीवत् गोल आकारयुक्त 'जम्बू द्वीप' एक लाख योजन लम्बा–चौड़ा है। इनके यहाँ योजन दो हजार कोशोंका जानिये ! जिसमें एक लाख योजन ऊँचा सुमेरु पर्वत है। पृथ्वीके भीतर एक हजार योजन, और बाकी ऊपर ऊर्ध्वलोक पर्यन्त गया है। उसको दो लाख योजन 'लवण समुद्रका' घेरा है। उसे घिरा हुआ 'धातकीखण्ड द्वीप' चार लाख

❀ तत्त्वार्थ सूत्र पृष्ठ १३२–१३३ में और १४१ से १४६ तक लिखा है ॥

† "तासु त्रिंशत्पञ्चविंशतिपञ्चदशदशत्रिपञ्चोनैकनरकशतसहस्राणि पञ्च चैव यथाक्रमम् ॥ २ ॥" "तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ॥ ६ ॥"—तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय ३ ॥

योजनोंका है; उसमें दो मेरु पर्वत हैं। उसको घिरा हुआ 'कालोदधि समुद्र' आठ लाख योजनोंका है। उसके चौ तरफ 'पुष्करावर्त द्वीप' सोलह योजनोंका है। उसके आधेमें मनुष्य बसते हैं। उनके बाद असंख्यात द्वीप बीच-बीच बड़े-बड़े पहाड़ और समुद्रोंसे घिरे हुए हैं। ऐसे एक-से-एक दुगुने योजनोंके सर्व द्वीप हैं। उनमें तीर्यञ्च जीव बसते हैं" रत्नसारभाग और जैनतत्त्वार्थ सूत्र, अध्याय ३ ॥

"सुमेरु पर्वत निन्यान्नवे हजार योजन ऊँचाई तक है। उसके ऊपर ऊर्ध्वलोक है; जहाँ सोलह स्वर्ग हैं। तिन लोकोंके नाम:— १ सुधर्मा। २ ईशाणदेव। ३ सनत्कुमारदेव। ४ महेन्द्रदेव। ५ ब्रह्मदेव। ६ लान्तकदेव। ७ महाशुक्रदेव। ८ सहसारदेव। ९ आणदेव। १० पणदेव। ११ अरुणदेव। १२ अच्युतदेव। और चार स्वर्ग अधिपति रहित साधुओंके स्थान हैं। अन्य स्वर्गोंमें अणिमादि ऋद्धि ऐश्वर्ययुक्त बहुतसे इन्द्र, इन्द्राणी, सुन्दर रूपवान् स्त्रियों सहित अनेक देव, कोटपाल, लोकपाल, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, भूत, पिशाच, पियादे, हाथी, घोड़े इत्यादि नाना उत्तम भोग विलास और अनेक सागरोंकी आयुवाले सर्व देव विमानोंमें रहते हैं। सर्व विमान चौतीस लाख सत्तान्नवे हजार तेईस हैं; और असंख्यात विस्तारयुक्त हैं ॥" ऐसा लिखा है ॥

॥ जैन तत्त्वार्थ ‡ सूत्र ७-११। अध्याय ४ ॥

"जम्बूद्वीपमें दो सूर्य, और दो चन्द्रमा हैं। लवण द्वीपमें

‡ "कायप्रवीचारा आ ऐशांनात् ॥ ७ ॥ शेषाः [illegible] ॥ ८ ॥ परेऽप्रवीचाराः ॥ ९ ॥ भवनवासिनोऽ [illegible]-नितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ॥ १० ॥ व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्ष-राक्षसभूतपिशाचाः ॥ ११ ॥"—तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय ४ ॥

चार सूर्य, और चार चन्द्रमा हैं। धातकी द्वीपमें बारह सूर्य, और बारह चन्द्रमा हैं। कालोदधि समुद्रके ऊपर ब्यालीस सूर्य और ब्यालीस चन्द्रमा हैं। और पुष्कर द्वीपमें बहत्तर सूर्य, और बहत्तर चन्द्रमा हैं। वे सब ग्रह, नक्षत्र, तारागण सहित मेरुके चौ तरफ फिरते हैं। अढ़ाई द्वीपोंके बाहर सर्व सूर्य-चन्द्रमादिकोंके ज्योतिष्क विमान हैं॥" ऐसा लिखा हुआ है॥

॥ जैन तत्त्वार्थ ❀ सूत्र १२-१५। अध्याय ४॥

"सूर्य और चन्द्र लाख योजन अर्थात् चार लाख कोशोंके अन्तरसे चलते हैं। उनकी चार पंक्तियाँ हैं॥ ६६ चन्द्र और ६६ सूर्य दक्षिण दिशामें और उतने ही चन्द्र-सूर्य उत्तर दिशामें मेरुको प्रदक्षिणा करते हैं॥" प्रकरण रत्नाकर भाग ४। संग्रह सूत्र ७६॥

पूर्वोक्त प्रमाणोंसे तीन लोककी अनेक असम्भव बातें लिखी हुई हैं। जिनका जीते तक वैसा उनके लिखे अनुसार प्रत्यक्ष अनुभव किसीको हो ही नहीं सकता है। इतने बड़े-बड़े और ऊँचे सुमेरु आदि पहाड़ तथा अनेक चन्द्र, सूर्य, ऊपर आकाशमें नित्य रहते हुए प्रत्यक्ष सबोंको क्यों दिखाई नहीं देते? अनेक सूर्य और चन्द्रोंके विशेष दाह और शीतसे सर्व देश उजाड़ ही रहना चाहिये? परन्तु उनकी प्रतीति वस्तीयुक्त प्रत्यक्ष क्यों हो रही है? इसीसे ऐसे असर्वज्ञ तीर्थङ्करोंका असम्भव कथन नहीं सम्भवता; वह तो महा अज्ञानी मनुष्यकी कपोल कल्पित बातें हैं॥

रत्नसार भाग (पृष्ठ ५२) में लिखा है:—"हम जल,

❀ "ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च॥ १२॥ मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके॥ १३॥ तत्कृतः कालविभागः॥ १४॥ बहिरवस्थिताः॥ १५॥"—तत्त्वार्थ सूत्र, अध्याय ४॥

योजनोंका है; उसमें दो मेरु पर्वत हैं । उसको घिरा हुआ 'कालोदधि समुद्र' आठ लाख योजनोंका है। उसके चौ तरफ 'पुष्करावर्त द्वीप' सोलह योजनोंका है। उसके आधेमें मनुष्य बसते हैं। उनके बाद असंख्यात द्वीप बीच-बीच बड़े-बड़े पहाड़ और समुद्रोंसे घिरे हुए हैं। ऐसे एक-से-एक दुगुने योजनोंके सर्व द्वीप हैं। उनमें तीर्यञ्च जीव बसते हैं" रत्नसारभाग और जैनतत्त्वार्थ सूत्र, अध्याय ३ ॥

"सुमेरु पर्वत निन्यान्नवे हजार योजन ऊँचाई तक है। उसके ऊपर ऊर्ध्वलोक है; जहाँ सोलह स्वर्ग हैं। तिन लोकोंके नाम:—
१ सुधर्मा। २ ईशाणदेव। ३ सनत्कुमारदेव। ४ महेन्द्रदेव। ५ ब्रह्मदेव। ६ लान्तकदेव। ७ महाशुक्रदेव। ८ सहसारदेव। ९ आणदेव। १० पणदेव। ११ अरुणदेव। १२ अच्युतदेव। और चार स्वर्ग अधिपति रहित साधुओंके स्थान हैं। अन्य स्वर्गोंमें अणिमादि ऋद्धि ऐश्वर्ययुक्त बहुतसे इन्द्र, इन्द्राणी, सुन्दर रूपवान् स्त्रियों सहित अनेक देव, कोटपाल, लोकपाल, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, भूत, पिशाच, पियादे, हाथी, घोड़े इत्यादि नाना उत्तम भोग विलास और अनेक सागरोंकी आयुवाले सर्व देव विमानोंमें रहते हैं। सर्व विमान चौतीस लाख सत्तान्नवे हजार तेईस हैं; और असंख्यात विस्तारयुक्त हैं ॥" ऐसा लिखा है ॥

॥ जैन तत्त्वार्थ ‡ सूत्र ७-११। अध्याय ४ ॥

"जम्बूद्वीपमें दो सूर्य, और दो चन्द्रमा हैं। लवण द्वीपमें

---

‡ "कायप्रवीचारा आ ऐशांनात् ॥ ७ ॥ शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥ ८ ॥ परेऽप्रवीचाराः ॥ ९ ॥ भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्त-नितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ॥ १० ॥ व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्ष-राक्षसभूतपिशाचाः ॥ ११ ॥"—तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय ४ ॥

चार सूर्य, और चार चन्द्रमा हैं। धातकी द्वीपमें बारह सूर्य, और बारह चन्द्रमा हैं। कालोदधि समुद्रके ऊपर ब्यालीस सूर्य और ब्यालीस चन्द्रमा हैं। और पुष्कर द्वीपमें बहत्तर सूर्य, और बहत्तर चन्द्रमा हैं। वे सब ग्रह, नक्षत्र, तारागण सहित मेरुके चौ तरफ फिरते हैं। अढ़ाई द्वीपोंके बाहर सर्व सूर्य-चन्द्रमादिकोंके ज्योतिष्क विमान हैं॥" ऐसा लिखा हुआ है॥

॥ जैन तत्त्वार्थ ❀ सूत्र १२-१५। अध्याय ४॥

"सूर्य और चन्द्र लाख योजन अर्थात् चार लाख कोशोंके अन्तरसे चलते हैं। उनकी चार पंक्तियाँ हैं॥ ६६ चन्द्र और ६६ सूर्य दक्षिण दिशामें और उतने ही चन्द्र-सूर्य उत्तर दिशामें मेरुको प्रदक्षिणा करते हैं॥" प्रकरण रत्नाकर भाग ४। संग्रह सूत्र ७६॥

पूर्वोक्त प्रमाणोंसे तीन लोककी अनेक असम्भव बातें लिखी हुई हैं। जिनका जीते तक वैसा उनके लिखे अनुसार प्रत्यक्ष अनुभव किसीको हो ही नहीं सकता है। इतने बड़े-बड़े और ऊँचे सुमेरु आदि पहाड़ तथा अनेक चन्द्र, सूर्य, ऊपर आकाशमें नित्य रहते हुए प्रत्यक्ष सबोंको क्यों दिखाई नहीं देते? अनेक सूर्य और चन्द्रोंके विशेष दाह और शीतसे सर्व देश उजाड़ ही रहना चाहिये? परन्तु उनकी प्रतीति वस्तीयुक्त प्रत्यक्ष क्यों हो रही है? इसीसे ऐसे असर्वज्ञ तीर्थङ्करोंका असम्भव कथन नहीं सम्भवता; वह तो महा अज्ञानी मनुष्यकी कपोल कल्पित बातें हैं॥

रत्नसार भाग (पृष्ठ ५२) में लिखा है:—"हम जल,

❀ "ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ [illegible] ॥ १२॥ मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥ १३॥ तत्कृतः कालविभागः ॥ १४॥ बहिरवस्थिताः ॥ १५॥"—तत्त्वार्थ सूत्र, अध्याय ४॥

चन्दन, चावल, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, वस्त्र और अतिश्रेष्ठ उपचारोंसे जिनेन्द्र तीर्थङ्कर जड़ मूर्तियोंकी पूजा करें, वै नरकसे छूट कर स्वर्गमें जायेंगे ।। (रत्नसार० पृ० ३ में लिखा है-) किसीने पाँच कौड़ीका फूल प्रतिमाको चढ़ाया, उसने अठारह देशोंका राज्य पाया, उसका नाम "कुमारपाल" हुआ ।।"

इस प्रमाणसे तीर्थङ्कर चैतन्य मनुष्य रह कर जड़ प्रतिमा पूजा अपनी दृढ़ाय, लोभ दिखलाना भी अज्ञानता है। श्वेताम्बरी = श्वेत वस्त्र वा पीले वस्त्र पहिरे हुए साधु और दिगम्बरी = नग्न साधु—प्रतिमा पूजा इष्ट मानते हैं ।।

अढ़ाई द्वीपोंके बाहर सामान्यपनसे एक इन्द्रिय वाले, स्थावर जीवोंका शरीर हजार योजन अर्थात् चार हजार कोशोंका जानिये! ऐसे अन्य शरीरधारी जीवोंके बहुत ही लम्बे शरीर रहते हैं । ऐसा मिथ्या कल्पना किये हैं ।। प्रकरण रत्नाकर भाग ४ । संग्रह सूत्र २६७।।

इस प्रमाणसे किसी जीवके इतने बड़े-बड़े लम्बे शरीर भी कोई पुरुष आज तक देखे हैं क्या ? इस जैनोंके शास्त्रको बड़ा गपोड़ा अयुक्त कथनसे भरा हुआ कल्पित शास्त्र ही कहना चाहिये ! ।।

अब जीव द्रव्य विषय सुनियेः—

"पुद्गल द्रव्य अनन्तानन्त (अति अनन्त) हैं, समस्त तीन लोकोंके लोकाकाशमें भरे हैं । जीव कितना बड़ा है ? इसका उत्तर ऐसा है कि, एक जीव प्रदेशोंकी या अनन्त परमाणु और स्कन्धोंकी अपेक्षासे लोकाकाशके बराबर है । परन्तु दीपकके प्रकाशवत् सङ्कोच-विस्तारके कारण अपने शरीरके प्रमाण आकारवान् है ।।" —जैन धर्म प्रवेशिका, प्रश्न १७० । १७१ । १७२ ।।

"जो मृत्यु तक दुःख हो, तो भी खेती, व्यापारादि जैन

लोग नहीं करें। क्योंकि उनमें अनन्त जीवोंकी हत्या होनेसे वै कर्म नरकमें ले जाने वाले हैं ॥"

॥ प्रकरण रत्नाकर भाग २ । षष्ठी शतक सूत्र १०६ ॥

इन प्रमाणोंसे जीव संकोच-विकासवाला ठहरानेसे जड़ देहवत् सर्व जीव नाशवान् ठहरते हैं। जीव निराकार और देह साकार दोनोंका संयोग-वियोग, आवागमनादि कर्म नहीं बन सकते हैं। इससे जाना जाता है कि, जैन मतके माने हुए सद्-गुरु तीर्थङ्कर अविचारी बुद्धि हीन ही थे। तिनको त्रिकालदर्शी, सर्वज्ञ कहना भूठ कथन है ॥

श्राद्धदिन कृत्य आत्म निन्दा भावना (पृष्ठ ३१) में लिखा है:—"बावड़ी, कूँवें, तालाब, नहीं बनवाना चाहिये। उनमें जीव पड़ कर मरनेसे बनानेवालोंको बहुत ही पाप लगते हैं॥"

परन्तु कूँवें, तालाब, बनाये बिना जगत्में सर्व मनुष्यादि जीवोंका देह निर्वाह भी कभी हो सकता है ? ॥

रत्नसार भाग (पृष्ठ १०४) में लिखा है:—

"बगीचा लगानेसे एक लक्ष (लाख) जीवोंकी हत्याका पाप मालीको लगता है।" परन्तु खेती करना, शाक बोवना, छाया और फल-फूलोंके लिए वृक्ष लगाना, इनके बिना भी देह निर्वाह कैसे चलेंगे ? इसलिए इनका खण्डन वृथा ही लिख दिये हैं। अन्न-जल बिना जैन धर्मी गुरु-शिष्य भी जी सकते हैं ? धन्य है जीव दया ! और धन्य है ! ऐसे जैन शास्त्रोंको ! ॥

बालबोध जैनधर्म भाग तीनके प्रथम पाठमें निम्न चौपाई कहा है:—

चौपाई:—"पृथिवी बहु खोद कराई। महलादिक जागाँ चिनवाई ॥
बिन गाल्यो पुनि जल ढोल्यो। पङ्खा ते पवन बिलोल्यो ॥

हा ! हा ! मैं अदयाकारी । बहुत हरित जु काय विदारी ॥
या मधि जीवनको खन्दा । हम खाये धरि आनन्दा ॥
नदियन बीच चीर धुवाये । कोशनके जीव मराये ॥
गरियारे धूप डराये ॥"—इत्यादि वर्णन किये हैं ॥

अर्थः—पृथ्वी खोदनेसे, जल छान लेने और गिरानेसे, पङ्खा लेकर पवन चलानेसे, हरे पदार्थ, अर्थात् फल, फूल, पत्र, शाक, और पोले हरे पदार्थ खानेसे और काट-काटके विभाग करनेसे नदियोंमें कपड़े धुलानेसे, तिनको धूपमें सुखानेसे स्थावरकाय और त्रस जीवोंको हाय ! हाय ! हम बहुत दुःख देकर मारे हैं ॥

पूर्वोक्त सब कर्म किये बिना किसीके देह व्यवहार चलते ही नहीं । आप नहीं करेंगे, तो दूसरोंसे तिन कर्मोंको कराते ही हैं । जीव हिंसा बिना बच ही सकना कठिन है। शक्ति अनुसार बने तहाँ तक तो जीव हिंसा बचाना मनुष्यका मूल धर्म दया है । धर्मशालाएँ, साधुओंके स्थान बाँधने आदि कर्म करनेमें यद्यपि झीने-झीने देहधारी जीवोंकी हिंसा होती है । तथापि तिनको सर्व धर्मकृत्य क्यों कहते हैं ? जैनधर्मी लोग अपने साधुओंको अन्न-जलादिमेंके जीवोंकी हत्या करके खिलाते-पिलाते, इनको भी अधर्म ही कहोगे ? क्या ? वाह जी ! वाह ! सत्यन्यायी सर्वज्ञ जैनधर्मी सुगुरु ! सुदेव ! ऐसे ही विवेक और न्यायकी विशेषता कहाती है ? मुख्य जीव दया धारण करनेके लिये पूर्वमें जैनधर्मी साधु नग्न वा दिगम्बरी रहते रहे। नदियोंका जल पीकर, सूखे पत्र, सूखे फल भक्षण करते रहे, इससे तिनको मुनि कहते थे। परन्तु अब सर्व साधु और साधु बनी हुई सर्व स्त्रियाँ संसारमें रहती हैं । लकड़ेके पात्र, पुस्तक, तुम्बा, पोथी आदि धरने, सोवने, बैठनेकी

जगहोंमेंके जीव निकालनेके लिये वै बगलमें ऊनी वा सूतकी पिच्छी (झाड़ू) रखते हैं, गर्म जल किये हुए पीते हैं, और भिक्षावृत्तिसे रहते हैं। अब दिगम्बरी साधु विरले कहीं हैं। वै मूर्ति पूजाको मानते हैं, पोथी-पुस्तक पढ़ते हैं, भिक्षावृत्तिसे "मैं फलानी वस्तु पाऊँगा!" ऐसा सङ्कल्प करके वही वस्तु मिली, तो खड़े-खड़े हाथोंमें ही अन्नको खा लेते हैं। यदि वही अन्न नहीं मिला, तो जल पीकर उपासे ही रह जाते हैं। स्नान करना, सबेरे मुख धोना, ये कर्म नहीं करते हैं। श्वेताम्बरी साधु मुख धोते हैं, और ठण्डे जलसे स्नान करके जलमें कपड़े धो लेते हैं, मूर्तिपूजा मानते हैं। ढूँढ़िया साधु सफेद वस्त्र धारण करते हैं। वायुकाय जीवोंकी हिंसा बचानेके लिये मुख पर कपड़ेकी पट्टी बाँध लेते हैं। परन्तु वायु रुक कर विशेष गर्मी देहमें हो जानेसे उनके मानन्दीसे हवारूपी बहुतसे जीव मरते ही होंगे? अपनी दाढ़ी, मूँछ और शिरके सर्व बाल आप उखाड़ लेना या उखड़वाना ये क्या जीव दया ही है। सर्व साधु दो, चार, आठ-आठ दिन उपवास करनेसे पाप क्षय मानते हैं, और यदि ४० दिन उपवास करके देह छूटनेसे मुक्ति मानते हैं, और शिष्योंको वैसे ही दृढ़ाते हैं, ये भी क्या जीव दया ही कहावेगी? निर्दयी, घातकी वा आत्म-हत्याके ये कर्म नहीं हैं? तो क्या है? विवेकी जनो! इसे विचार कर लीजिये! ॥

जैनतत्त्वादर्शमें लिखा है:—"मट्टीके जुवार जितने कङ्करमें, जल बुन्दमें, अग्निकी एक चिनगारीमें और वायुके एक झपटमें असंख्यात जीव हैं। वै यदि क्रमसे कबूतर, अण्डा, राई, और बड़के बीजवत् आकारके देह धरके उड़ जायेंगे, तो तीनों लोकमें

दिखाई देते हैं। परन्तु हम खुर्दबीनके काँच द्वारा प्रत्यक्ष ❀ देख

❀ दि० २६ । १० । १९५७ ई० को नागपुर 'मेयो अस्पतालमें' एक डाक्टरकी सहायतासे मैंने निम्न लिखित परीक्षा स्वयं किया हूँः—

परीक्षा कक्षमें अणुवीक्षण यन्त्र (खुर्दबीन) से मैंने देखाः—

१. प्रथम—गायका ताज़ा दूध काँचके प्लेटमें रखकर मशीनमें देखनेपर उसमें निर्जीव जड़ अणुओंका सङ्घात फैले हुए गोल, लम्बा, तिरछी आकारके दीखे। सजीव अंश उसमें कुछ भी दिखाई नहीं दिया। अतः वे निर्जीव जड़ अणुओंके सूक्ष्म-सूक्ष्म अंश मात्र ही थे। २. द्वितीय—उसी प्रकार एक रात्रिके दही भी मशीन द्वारा निरीक्षण करने पर उसमें सूक्ष्म-सूक्ष्म गोलाकार चाँदीवत् कण या बालू कणवत् श्वेत जड़ अणुओंका फैलाव अक्रियरूपमें दृष्टिगोचर हुआ। उनमें जीवका लक्षण कुछ भी नहीं था। अतः वे जड़ तत्त्वोंके अंशरूप अणुमात्र ही थे। ३. तृतीय—फिर मक्खनको प्लेटमें रखकर मशीन द्वारा देखने पर उसमें भी वैसे ही सूक्ष्म-सूक्ष्म गोलाकार श्वेत जड़ अणुओंका फैलाव दीखा। ऊपर वहाँ पर बिजली पङ्खा चल रही थी, उससे चञ्चल पवनका वेग पा करके प्लेटमें प्रतिबिम्बित होनेसे सामान्य क्रियासे प्लेटके जड़ अणुएँ भी एक तरफ सरकते हुए-से दीखते थे। डा० को बताने पर उसने भी कहा कि, वह सरकता हुआ जैसा दीखना पवनके कारणसे ही है। इसलिए वह क्रिया जड़ तत्त्वोंकी है, तथा श्वेत कण उसीके जड़ अणुओंका अंश होनेसे वह निर्जीव है। ४. चतुर्थ—कुओंका जलको भी छानकर प्लेटमें रखकर मशीन द्वारा देखनेपर उसमें अति सूक्ष्म-सूक्ष्म साफ अणु समूहोंका फैलाव मात्र ही दीखा। वे सब जड़ तत्त्वोंके सूक्ष्म अंशमात्र ही हैं। उनमें जीव होनेका गुण-लक्षण कुछ भी प्रकट नहीं होता है। अतएव वे चारों तत्त्वोंके सङ्घातरूप जड़ अणु मात्र ही हैं।

ऐसे उपर्युक्त उन चारों चीजोंको ध्यानपूर्वक अच्छी तरहसे खुर्दबीनके यन्त्र द्वारा परीक्षा करके देखने पर यही निश्चित होता है कि, वे दृश्य रजकण अणु समूह निर्जीव जड़ हैं; वे सजीव कीटाणु नहीं हैं। उनमें जड़त्व अंश, जड़ क्रियाके सिवाय चैतन्य जीव होनेका कुछ भी गुण-लक्षण नहीं है। इसलिए उनमें कीटाणु रूपसे जीव होते हैं, ऐसा कहा हुआ, और माना हुआ डाक्टरोंका मत मिथ्या भ्रमपूर्ण ही ठहरता है। जड़ तत्त्वोंके अंश निर्जीव अणु समूह वे ही चैतन्य जीव कभी नहीं हो सकते हैं। अन्य देहधारियोंकी अपेक्षासे उष्मज खानीके जीवोंका देह

चुके हैं कि, वे जड़ तत्त्वोंके सूक्ष्म त्रसरेणु, अणु, आदि रज जलमें चलते हुए-से दिखाई देते हैं। शुद्ध स्वच्छ जलमें एक भी देहधारी जीव दिखाता नहीं है। परन्तु जहाँ दुर्गन्धयुक्त और पृथ्वीकी मिट्टी वगैरह मिला हुआ जल होता है, वहाँ थोड़े-से देहधारी छोटे–छोटे जीव सहित दिखाई देता है। त्रसरेणु, अणु, ये वायुके वेगानुसार नीचे या ऊँचे एक ही सीधमें घूमा करते हैं। परन्तु देहधारी जीव स्वयं शक्तिमान् रहनेसे चाहे सो दिशामें जिधर–तिधर तुरन्त ही घूम जाते हैं, ऐसा जीवोंका लक्षण स्वच्छ जलमें कहीं दिखाता ही नहीं है। इसलिए पृथ्वी, जल, तेज, वायु, ये जड़ तत्त्वोंको और वनस्पतिको स्थावर जीव ज्ञानगुणयुक्त मानना बड़ी भूल और अन्यायका कथन है। वनस्पति आदि स्थावर खानी सरासर जड़ हैं, इसका वर्णन आगे होगा ! ॥

बालबोध जैनधर्म भाग ४ के पाठ १० में लिखा है:—

छोटे–छोटे आकारोंका होनेपर भी वे अदृश्य नहीं हैं, दृश्य ही हैं। अच्छी तेज दृष्टिवालोंको यन्त्रादिके सहायता लिए बिना ही खाली नेत्रोंसे सूक्ष्म–सूक्ष्म उष्मज खानीके जीव साफ दिखाई देते हैं। यन्त्रोंके द्वारा देखा हुआ वे अणु समूह चैतन्य जीव नहीं हैं। वे तो सब प्रकारसे जड़ तत्त्वोंके अंश वा भाग मात्र ही हैं।

चारों खानियोंके देहधारी जीव प्रत्यक्ष दृश्य हैं। स्थूल देहधारी जीव अदृश्य अणुरूप कभी नहीं हो सकते हैं। क्योंकि चारों तत्त्वोंके कई परमाणुओंके समूहों–को सङ्ग–साथमें ले करके ही अध्यासी जीव स्थूल देह धारण कर लेते हैं। इच्छा–शक्तियुक्त देहधारी जीवोंमें विभिन्न प्रकारकी क्रियाएँ हुआ करती हैं। वैसा लक्षण जड़ अणुओंमें नहीं होते हैं। इसलिए यन्त्रोंसे दीखनेवाले वे जड़ अणु देहधारी जीव नहीं हैं। ऐसा गुरु परीक्षा पारख दृष्टि और निज परीक्षा द्वारा यथार्थ ठहरता है। अतः वैसे भ्रमको परख कर मिटाना चाहिये॥

। परीक्षकः—रामस्वरूपदास । बुरहानपुर ॥

"छट्ठे गुणस्थानवर्ती अर्थात् १४८ कर्म बन्धनोंमेंसे ६३ बन्धन बाकी रहे हुए मुनियोंको शङ्का होने पर एक हाथके आकारका सफेद पुतला (पुरुष) उनके मस्तकमेंसे निकलकर 'केवली' या 'श्रुतकेवली' ज्ञानीके समीप जाते ही उनकी शङ्का दूर हो जाती है ॥"

परन्तु यह भी असम्भव बात लिखी है। जैन सिद्धान्त प्रवेशिकाके प्रश्न १९० में लिखा है:—"जिसमें महासत्ताकी वा सामान्यकी निराकार झलक दीखना, उसे 'दर्शनचेतना' कहते हैं ॥"

इस प्रमाणसे मुनि—जैनसाधु—योग साधनसे 'शुल्क—ध्यान' वा 'निराकार झलक' देखनेके लिये ध्यान करते हैं। परन्तु वह नाद—बिन्दकी या वायु—वीर्यकी या तत्त्वोंके रङ्गोंकी कलक—ज्योति प्रकाश—नाशवान् जड़ है; वह देहके साथ आप ही नष्ट हो जावेगा। ऐसे साधनसे जैनीसाधु मुक्त नहीं होंगे। अब तीर्थङ्करोंका माहात्म्य और मुक्ति विषय सुनिये:—

"ऋषभदेव तीर्थङ्करका शरीर पाँच सौ धनुषका लम्बा और चौरासी लाख वर्षोंकी आपकी आयु रही। अजितनाथका चार सौ पचास धनुषका लम्बा शरीर, और बहत्तर लाख वर्षोंकी आपकी आयु रही। ऐसी आयु घटते—घटते नेमीनाथका दश धनुषका लम्बा शरीर और एक हजार वर्षोंकी आपकी आयु रही। अन्तमें चौबीसवें तीर्थङ्कर महावीर स्वामीका सात हाथोंका लम्बा शरीर और बहत्तर वर्षोंकी ही आपकी आयु रही ॥"

॥ रत्नसार भाग १। पृष्ठ १६६—१६७ ॥

"अरहन्त—परमेष्ठीके गुणोंके जन्मके दश लक्षणोंमें अतिशय सुगन्धवाला—पसीना, तथा मल—मूत्र रहित, सफेद रुधिरवाला आपका शरीर रहता है। केवल ज्ञानके दश लक्षणोंमें चारों ओर

मुख दिखलाई देना, अन्नका आहार नहीं होना, नख–केश नहीं बढ़ना, नेत्रोंके पलक न झपकाना, शरीरमें छाया नहीं होना, ऐसा लिखा है ॥" ॥ बालबोध जैनधर्म भाग ४ । पाठ २ ॥

इन प्रमाणोंसे ये भी असम्भव बातें अपने परमेश्वर माने हुए गुरुकी बड़ाई करनेके लिये कहा है। सो बात कल्पित होनेसे मिथ्या ही है ॥

"जमीन पर 'भद्रसाल वन,' पाँच सौ योजनोंके ऊपर 'नन्दन वन', उससे बासठ हजार पाँच सौ योजनोंके ऊपर 'सौमनस बन' है। और सबके ऊपर चौथा 'पाण्डुक वन' है। वहाँ सौ योजन लम्बी, (५०) पचास योजन चौड़ी और (८) आठ योजन ऊँची, ऐसी चार शिलाएँ पाण्डुक नामकी चारों दिशाओं-में पड़ी हैं। वहाँ भरतखण्डके अर्हन्त भगवानको दक्षिण दिशाके शिला पर जन्मके साथ ही अभिषेक होता है। सौ मुख और एक–एक मुखमें आठ-आठ दाँतवाला एक लाख योजनोंका लम्बा हाथी इन्द्र लाता है। उस पर भगवान् तीर्थङ्करको बैठायके अनेक इन्द्र–इन्द्राणी, सर्व देव, देवी, बाजा सहित आपको ले जाते हैं। पीछे एक योजन मुँह, चार योजन पेट और ऊँचाई आठ योजन की, ऐसा एक कलशका आकार रहता है। ऐसे एक हजार आठ कलशोंसे पाँचवें क्षीर समुद्रमेंसे जल मँगवाय कर, बड़े ठाठसे भगवान्को अभिषेक करते (नहावते) हैं ॥"

॥ बालबोध जैनधर्म भाग २ । पाठ ३ ॥

इस प्रमाणसे दो हजार कोशोंका योजन रहे हुए एक लाख योजनोंका हाथी और एक योजन मुँहवाले कलश भी किसी जैनीने आज तक देखा है क्या ? जब गप्प ही हाँकने हुए, तो फिर कम क्यों लिखेंगे ? वाह जी ! वाह ! क्या जैनशास्त्र न्यायके बने हैं ?

अपनी पोल निकल जायगी, और कोई भी मानेगा नहीं; इसी कारण जैनलोग अपने धर्मशास्त्र किसीको पढ़ने भी नहीं देते हैं। और मागधी भाषामें मुख्य-मुख्य ग्रन्थ लिखे हैं। इसलिए सबोंको सरलतासे उनका बोध भी नहीं होता है ॥

"जैसे मिट्टीसे लिपटी हुई तुम्बी जलमें डूब जाती है, और मिट्टी धुल जानेसे जलके ऊपर आ जाती है। वैसे ही तीर्थङ्करादि देहधारी, निराकार स्वरूप जीवोंका सर्व कर्म बन्धन प्रदेश छूट कर, तिनको ऊर्ध्वगमन गति प्राप्त हों, धर्म द्रव्यके साथ मुक्तस्थानमें जाते हैं ॥"

॥ जैन तत्त्वार्थ ❀ सूत्र ५ । ६ । ७ । अध्याय १० ॥

इस प्रमाणसे जड़ तत्त्वोंके गुण, धर्म और अधर्म हैं, तिनको भिन्न, नित्य द्रव्य मानना अन्याय है। यदि जीवोंके स्वरूप निराकार माने हैं, तो देह रहित अकेले मुक्त जीवोंमें ऊर्ध्वगमनकी क्रिया मानना, और देह छूटे बाद मुक्ति और जीते तक मुक्ति नहीं, यह मानना भी असम्भव दोषयुक्त वर्णन है ॥ रत्नसार भाग (पृष्ठ २३) और प्रकरण रत्नाकरके भाग चारमें कहा है:—

"महावीर स्वामी गौतजीसे कहते हैं:—ऊर्ध्वलोकमें स्वर्गपुरीके ऊपरके शिखा पर या सर्वार्थसिद्धि विमानकी ध्वजाके ऊपर (१२) बारह योजनों पर एक शिद्धशिला है। वह (४५) पैंतालीस लाख योजन लम्बी तथा उतनी ही ऊँची और (८) आठ योजन जाड़ी (मोटी) है। वह मोतीके हारवत् उजली या स्फटिक मणिसे भी निर्मल, सोनेके तुल्य प्रकाशवान् और चौ तरफ

❀ "तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात् ॥ ५ ॥ पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद् बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च ॥ ६ ॥ आविद्धकुलालचक्रवद् व्यपगतलेपालाबुवदे-रण्डबीजवदग्निशिखावच्च ॥ ७ ॥" —तत्त्वार्थ सूत्र, अध्याय १० ॥

मुख दिखलाई देना, अन्नका आहार नहीं होना, नख–केश नहीं बढ़ना, नेत्रोंके पलक न झपकाना, शरीरमें छाया नहीं होना, ऐसा लिखा है ॥" ॥ बालबोध जैनधर्म भाग ४ । पाठ २ ॥

इन प्रमाणोंसे ये भी असम्भव बातें अपने परमेश्वर माने हुए गुरुकी बड़ाई करनेके लिये कहा है। सो बात कल्पित होनेसे मिथ्या ही है ॥

"जमीन पर 'भद्रसाल वन,' पाँच सौ योजनोंके ऊपर 'नन्दन वन', उससे बासठ हजार पाँच सौ योजनोंके ऊपर 'सौमनस बन' है। और सबके ऊपर चौथा 'पाण्डुक वन' है। वहाँ सौ योजन लम्बी, (५०) पचास योजन चौड़ी और (८) आठ योजन ऊँची, ऐसी चार शिलाएँ पाण्डुक नामकी चारों दिशाओं-में पड़ी हैं। वहाँ भरतखण्डके अर्हन्त भगवानको दक्षिण दिशाके शिला पर जन्मके साथ ही अभिषेक होता है। सौ मुख और एक–एक मुखमें आठ-आठ दाँतवाला एक लाख योजनोंका लम्बा हाथी इन्द्र लाता है। उस पर भगवान् तीर्थङ्करको बैठायके अनेक इन्द्र–इन्द्राणी, सर्व देव, देवी, बाजा सहित आपको ले जाते हैं। पीछे एक योजन मुँह, चार योजन पेट और ऊँचाई आठ योजन की, ऐसा एक कलशका आकार रहता है। ऐसे एक हजार आठ कलशोंसे पाँचवें क्षीर समुद्रमेंसे जल मँगवाय कर, बड़े ठाठसे भगवान्को अभिषेक करते (नहावते) हैं ॥"

॥ बालबोध जैनधर्म भाग २ । पाठ ३ ॥

इस प्रमाणसे दो हजार कोशोंका योजन रहे हुए एक लाख योजनोंका हाथी और एक योजन मुँहवाले कलश भी किसी जैनीने आज तक देखा है क्या ? जब गप्प ही हाँकने हुए, तो फिर कम क्यों लिखेंगे ? वाह जी ! वाह ! क्या जैनशास्त्र न्यायके बने हैं ?

अपनी पोल निकल जायगी, और कोई भी मानेगा नहीं; इसी कारण जैनलोग अपने धर्मशास्त्र किसीको पढ़ने भी नहीं देते हैं। और मागधी भाषामें मुख्य-मुख्य ग्रन्थ लिखे हैं। इसलिए सबोंको सरलतासे उनका बोध भी नहीं होता है ॥

"जैसे मिट्टीसे लिपटी हुई तुम्बी जलमें डूब जाती है, और मिट्टी धुल जानेसे जलके ऊपर आ जाती है। वैसे ही तीर्थङ्करादि देहधारी, निराकार स्वरूप जीवोंका सर्व कर्म बन्धन प्रदेश छूट कर, तिनको ऊर्ध्वगमन गति प्राप्त हों, धर्म द्रव्यके साथ मुक्तस्थानमें जाते हैं ॥"

॥ जैन तत्त्वार्थ ❀ सूत्र ५। ६। ७। अध्याय १० ॥

इस प्रमाणसे जड़ तत्त्वोंके गुण, धर्म और अधर्म हैं, तिनको भिन्न, नित्य द्रव्य मानना अन्याय है। यदि जीवोंके स्वरूप निराकार माने हैं, तो देह रहित अकेले मुक्त जीवोंमें ऊर्ध्वगमनकी क्रिया मानना, और देह छूटे बाद मुक्ति और जीते तक मुक्ति नहीं, यह मानना भी असम्भव दोषयुक्त वर्णन है ॥ रत्नसार भाग (पृष्ठ २३) और प्रकरण रत्नाकरके भाग चारमें कहा है:—

"महावीर स्वामी गौतजीसे कहते हैं:—ऊर्ध्वलोकमें स्वर्गपुरीके ऊपरके शिखा पर या सर्वार्थसिद्धि विमानकी ध्वजाके ऊपर (१२) बारह योजनों पर एक शिद्धशिला है। वह (४५) पैंतालीस लाख योजन लम्बी तथा उतनी ही ऊँची और (८) आठ योजन जाड़ी (मोटी) है। वह मोतीके हारवत् उजली या स्फटिक मणिसे भी निर्मल, सोनेके तुल्य प्रकाशवान् और चौ तरफ

❀ "तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात् ॥ ५ ॥ पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद् बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च ॥ ६ ॥ आविद्धकुलालचक्रवद् व्यपगतलेपालाबुवदे-रण्डबीजवदग्निशिखावच्च ॥ ७ ॥" —तत्त्वार्थ सूत्र, अध्याय १० ॥

मक्खीके पङ्खवत् पतली है। उस शिलाके ऊपर एक योजन अन्तरमें स्वर्गलोकोंका अन्त है। वहाँ केवलज्ञान, सर्वज्ञता और पवित्रता प्राप्त हुए सिद्ध तीर्थङ्करादिकोंकी स्थिति है। वहाँ अलोक आकाश एक ही आकाश द्रव्य है ॥"

इस प्रमाणसे यह मुक्ति देह छूटे बाद अलोक आकाश और तीन लोकके अन्तके सन्धिमें मानी है। परन्तु मुक्तस्थान सर्वके ऊपर मानकर, वहाँ आकाश छोड़ कर अन्य जड़ तत्त्व नहीं हैं, यह मानना असम्भव दोषयुक्त है। और इनकी मुक्ति भी कल्पना-मात्र है। जैनमतमें वास्तवमें जड़ तत्त्व ही सिद्ध नहीं होते हैं। परन्तु सर्व परमाणुओंके संयोगसे बढ़ते और घटते हुए अनन्तानन्त निराकार चेतन जीव माने हैं। इसलिए तीन लोकोंमेंके अनन्त पुद्गल परमाणुओंके ऊपर मुक्ति ठहराना, अविचार और भूलकी बात है। सर्व तत्त्ववेत्ते महात्मा लोग पृथ्वी, जल, तेज, और वायुको जड़ तत्त्व ही कहे हैं। परन्तु जैनके तीर्थङ्कर तिनको स्थावर जीव मानते हैं, यही उनकी महा अज्ञानता है। और वे महान भूलमें ही पड़े हुए हैं ॥

पूर्वोक्त जैनमत भ्रमिक और अन्यायका है। अनेक मिथ्या और असम्भव बातोंसे वाणीका विस्तार किये हुए तीर्थङ्कर या मुनि आदि जैनमतवाले कोई भी सद्गुरु यथार्थ वक्ते ज्ञानी या परमेश्वर स्वरूप मानने योग्य नहीं हैं। थोड़ी-सी जीव दया कही है, वह भी चेतन-जीवोंका यथार्थ स्वरूप जानकर नहीं कही है। व्यर्थ अनेक उपवासादि दुःखोंके साधनोमें वे सब परिश्रम कर रहे हैं। आप इस भ्रमिक जैनमतको अब त्याग दीजिये ! ॥

॥ ❀ ॥ अनेक ब्रह्माण्ड कलाओंको कर्त्ता मानना वर्णन ॥ ❀ ॥

प्रश्न (५८) यदि जैनमतसे तिनके तीर्थङ्कर गुरु सर्वज्ञ परमेश्वर नहीं ठहरते, और पृथ्वी, जल, तेज, वायु, ये जड़ तत्त्व स्थावर जीव भी मानने योग्य नहीं है; तो जड़ तत्त्वोंमें अनेक क्रियाएँ प्रतीत हो रही हैं। वातावरणरूप फैली हुई वायु सदोदित गतिवान् है, और अग्निका ऊर्ध्वगमन है; (तिनको प्रमाण पूर्वके प्रश्न ६ और प्रश्न ३६ में देखिये !)। नदी-नालादि जल अधोमुख बहता हुआ प्रत्यक्ष ही है ॥

इस प्रकारसे जड़ तत्त्वोंमें क्रिया प्रकटानेवाला अन्य कर्त्ता है, ऐसा मैं मानता हूँ ? ॥

(५८) उत्तरः—पूर्वके सब प्रश्नोंके प्रमाणोंसे जगत् कर्त्ता ठहरता ही नहीं। इसलिए चेतन, देहधारी, सर्व जीव सहित पाँच जड़ तत्त्वोंका जगत् और ऊपर खगोलमें सूर्य, चन्द्र, तारागण, ये स्वरूपसे अनादि सिद्ध हैं। जगत् प्रवाहरूप अनादि है; (तिसको बहुतसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न ४७ में देखिये !)। जड़ पाँच तत्त्वोंमें पोल स्वरूप वा अनन्त छिद्ररूपसे आकाश तत्त्व है। तिसमें गुण, क्रियादि कोई धर्म नहीं; (तिसको प्रमाण पूर्वके प्रश्न ६ में देखिये !)। थोड़ी-सी शक्कर जलमें घुल जानेसे जल स्वरूप ही दिखाती है। परन्तु उसी जलको औंटाय, तिसकी भाफ बनकर वायु द्वारा ऊपर आकाशमें उड़ जानेसे फिर पृथ्वीका अंश शक्कर पूर्ववत् रह जाती है। इसीसे तत्त्व परस्पर एक स्वरूप मिलते नहीं। परन्तु पृथ्वी, जल, तेज, और वायु, ये चारों जड़ तत्त्वोंके परस्पर मिलापरूप संयोग-सम्बन्ध स्वरूपसे अनादि हैं। सामान्य-विशेष भावसे वे "स्थूलाकार" और "सूक्ष्माकार" रूपसे सर्वत्र स्थित हैं।

पृथ्वी, जल और विशेष सूर्यादि अग्नि ये दृश्य, 'स्थूलाकार' और सामान्य तेज और वायु ये अदृश्य, 'सूक्ष्माकार' हैं। तत्त्वोंके अनन्त त्रसरेणु, अणु और परमाणु सर्वत्र वातावरणमें फैले हुए अनादि कालसे जहाँ-तहाँ क्रियायुक्त है। 'पृथ्वीके रज (त्रसरेणु), जलकी भाफ, तेजकी चिनगारियाँ नेत्रों द्वारा और अनेक प्रकारसे गतिवान् वायु सूक्ष्मरूपसे त्वचा द्वारा प्रतीत होती हुई सर्व जानते हैं। इस रीतिसे चारों तत्त्वोंके संयोगरूप मिलाप और स्थूल, सूक्ष्म आकार स्वरूपसे अनादि हैं। यदि तत्त्व अनादि हैं, तो आकाश तत्त्व छोड़के अन्य चार तत्त्वोंमें तिनके धर्म, गुण, शक्तियाँ और क्रियाएँ भी स्वयं अनादि हैं, तिनको विस्तारसे आगे कहेंगे ॥

इस प्रकारसे अनादि जड़ तत्त्व रहनेसे तिनमें क्रियाएँ प्रगटानेवाला दूसरा कर्त्ता मानना कपोल कल्पना है। ऐसा आप विवेक करके जानिये ! ॥

प्रश्न (५६) अनादि जड़ तत्त्वोंके स्थूल, सूक्ष्म आकारोंका भेद मैं जान गया हूँ। परन्तु तिनके संयोगरूप मिलाप स्वयं अनादि हैं, ऐसा आप कहे हो ! तिनको प्रत्यक्ष अनुभवसे और प्रमाण सहित आप दिखाओगे ? तब मुझे निश्चय होगा। प्रथम अनादि वायु तत्त्वका अन्य तत्त्वोंसे मिलापका भेद आप दिखाइये ? ॥

(५६) उत्तरः—१. अनादि, कारणरूप, अनन्त परमाणुओंसे संयोगवान्, अदृश्य, सूक्ष्माकार और कार्यरूपसे अनेक प्रकारकी गतिवान् वायु, प्रत्यक्ष वायुका मुख्य भाग है। जिसको स्पर्श द्वारा सर्व जानते हैं। २. समान और विशेष गतिवान् वायु सदैव चलती ही रहती हैं; (तिसको पूर्वका प्रमाण प्रश्न ६ में देखिये !)। इससे वायु वातावरणरूपसे सर्वत्र व्यवहार करती है। ३. शरीरके

सर्व वायुओंको योग साधना द्वारा मस्तकमें चढ़ाय, योगीजन उसका ग्यास वायुके धूँआँवत् प्रकाश देखते हैं; (तिसको पूर्वका प्रमाण प्रश्न १३ में देखिये !)। अथवा पृथ्वीके समीपकी घन वायु स्थिररूप समान गतिवान् रहनेसे गर्मी होती है, वह वायुमें सूक्ष्म तेजका मिलाप है। ४. बड़ी आँधीमें वायुके विशेष वेगसे वृक्ष गिर पड़ते हैं, सो वायुमें कठिन अंशसे पृथ्वीके अनेक त्रसरेणुओंका मिलाप है। और ५. गीले कपड़ोंमेंसे वा जलमेंसे अग्नि द्वारा भाफ बनकर वायुके संयोगसे ऊपर उड़ जाती है। अथवा जलके अनेक अणुओंका वायुमें संयोग रहनेसे ही त्वचा द्वारा वायुका शीत स्पर्श जाना जाता है, वह वायुमें सूक्ष्म जलका मिलाप है। परन्तु छिद्ररूपसे निराकार आकाश तत्त्व तिसमें आप ही स्थित है; तिसका और सूक्ष्माकार वायु तत्त्वका संयोगरूप मिलाप नहीं; ऐसा जान लिजिये !॥ पूर्वोक्त वायु तत्त्वका अन्य तत्त्वोंसे संयोगरूप मिलापका भेद आपको प्रत्यक्ष दिखला दिया है। सो विचार करके इसे समझ लीजिये !॥

प्रश्न (६०) अब अनादि तेज तत्त्वका अन्य तत्त्वोंसे मिलापका भेद आप दर्शाइये ? ॥

(६०) उत्तरः—१. अधरमें स्थित, अनादि मुख्य विशेष तेज तत्त्वरूप सूर्य, तारागणादि खगोलपिण्ड और अनादि कारणरूप अनन्त परमाणुओंसे संयोगवान्, सर्वमें स्थित समानरूप तेज तत्त्व और सूर्यके प्रकाशसे प्रकाशवान् अनेक त्रसरेणुओं तथा अनेक चिनगारियाँ, बिजलियाँ, दिये (दीपकें), आग, इत्यादि प्रत्यक्ष देहको गर्मी पहुँचावे, वह विशेष अग्नि मुख्य तेज तत्त्वका भाग है; जिस प्रकाशको नेत्रों द्वारा सब देखते हैं। २. जलरूप धूवें या ग्यासके रेलमें प्रत्यक्ष दिये (दीपकें) लगा दिये हैं, वह तेजमें

सूक्ष्म जलका मिलाप है। ३. पृथ्वीके अनेक, सूक्ष्म त्रसरेणु अग्निमें रहनेसे वह लोहादि धातुओंमें स्थित, अनेक पोलाकार सूक्ष्म-सूक्ष्म छिद्रोंमें प्रवेश करके वे धातु तेजोमय लाल रङ्गके बन जाते हैं; (तिसको पूर्वका प्रमाण प्रश्न ६ में देखिये !) । वह तेजमें सूक्ष्मरूपसे पृथ्वीका मिलाप है । ४. दिये, आग आदिकोंके जलनेमें भीतर—बाहरसे वायुकी सहायता रहती है, वह तेजमें वायुका मिलाप है । और ५. अग्निके ज्योतिरूप प्रकाशमें तार आदि पदार्थ प्रवेश करके आर-पार निकाले जाते हैं, इसीसे अनेक छिद्ररूपसे निराकार आकाश तत्त्व आप ही तेज तत्त्वमें रहा है । तिसका और सूक्ष्माकार तेज तत्त्वका संयोगरूप मिलाप नहीं है ॥

पूर्वोक्त तेज तत्त्वका अन्य तत्त्वोंसे संयोगरूप मिलाप अब आप प्रत्यक्ष जान ही गये होंगे? कहिये! समझ गये कि नहीं?॥

प्रश्न (६१) हाँ जी! अब अनादि जल तत्त्वका अन्य तत्त्वोंसे मिलापका भेद मुझे कैसे जाननेमें आवै ? सो दया करके समझाइये ? ॥

(६१) उत्तरः—१. अनादि, कारणरूप समुद्र, बड़ी—बड़ी नदियाँदि विस्ताररूप स्थूल जल और अनेक अणुरूप सूक्ष्म भाफ तथा बर्फ, ओले, बादलादि स्थूल कार्यरूप मुख्य जल तत्त्वका भाग है । २. समुद्रमें बड़वाग्नि नामकी अग्नि और शीत समयमें नदियाँ, तालाब आदिकोंके जलोंमें भाफ निकलती हुई प्रत्यक्ष दिखाई देती है, वह जलमें तेजका सूक्ष्मरूपसे मिलाप है । ३. जलसे उत्पन्न हुई अनेक अणुरूप भाफको अधरमें दूर उड़ा कर ले जाना, वायु बिना नहीं होता है, वह जलमें सूक्ष्म वायुका मिलाप है । ४. जलमें अनेक छिद्ररूपसे निराकार आकाश तत्त्व आप ही रहा है, इसीसे पाषाणादि पदार्थ तिसमें डूब जाते हैं । परन्तु निराकार आकाश

तत्त्वका और स्थूलाकार जल तत्त्वका संयोगरूप मिलाप नहीं है। ५. जलमेंसे पृथ्वीका अंश नमक जम जाता है। अथवा माँजे हुए बर्तनोंपर जलकी बुन्दें छिड़कनेसे वह सूख गये बाद, उनके दाग रह जाते हैं, वे प्रत्यक्ष देखनेमें आते हैं, वह जलमें सूक्ष्मरूपसे पृथ्वीका मिलाप है ॥

पूर्वोक्त जल तत्त्वका अन्य तत्त्वोंसे मिलापका भेद आपको दिखाये हैं। सो विचार करके अब समझ लीजिये ! ॥

प्रश्न (६२) अब अनादि पृथ्वी तत्त्वका अन्य तत्त्वोंसे मिलापका भेद भी आप दया करके दर्शाइये ? ॥

(६२) उत्तरः—१. अनादि, कारणरूप स्थूल विस्तारयुक्त यह भूगोल (दृश्य पिण्डरूप पृथ्वी) और कार्यरूपसे अनन्त दृश्य स्थूल पदार्थ और सूक्ष्मरूप अनन्त त्रसरेणुरूपसे मुख्य पृथ्वीका भाग है। २. ईंट, पत्थरादि पृथ्वीके घनीभूत कार्य पदार्थ विशेष तपाकर पृथ्वी पर धर दिये, तो थोड़ी ही देरमें उसमेंका जल, तेज द्वारा ऊपर खैंच आनेसे उनके नीचेकी भूमि हमेशा गीली हो जाती है। चाहे अन्दाज लीजिये ! वह पृथ्वीमें सूक्ष्म जलका मिलाप है। ३. लोहेकी चोटें पत्थर पर मारनेसे, तलवार, चक्कू आदि हथियार शिकलीगरके चाक पर धरनेसे, चकमकके ठोकरसे और बाँसोंके घर्षणसे अनेक चिनगारियाँ और अग्नि प्रकट होती है; वह पृथ्वीमें सूक्ष्म तेजका मिलाप है। ४. पृथ्वी पर गिरा हुआ जल सूक्ष्म–सूक्ष्म छिद्रोंके द्वारा उसीमें प्रवेश होता है। इसलिए पृथ्वीमें अनन्त छिद्ररूपसे निराकार आकाश आप ही स्थित है; तिसका और स्थूलाकार पृथ्वी तत्त्वका संयोगरूप मिलाप नहीं है। ५. पृथ्वीमें जल प्रवेश करते समय वायुकी सहायता लगती ही

है । अथवा पृथ्वीके अनन्त छिद्रोंमें वायु सर्वत्र भरी ही है; वह पृथ्वीमें सूक्ष्मरूपसे वायुका मिलाप है ॥

पूर्वोक्त पृथ्वी तत्त्वका अन्य तत्त्वोंसे संयोगरूप मिलाप आपको प्रत्यक्ष अनुभव कराये हैं । सो विचार करके अब जान लीजिये ! ॥

देखिये ! किसी पदार्थको देखना, वह 'रूप' तेजका है । उसका 'पिण्ड' बन्धा हुआ जलसे है । उसका दृश्य 'कठिन' आकार पृथ्वीके अनेक त्रसरेणुओंका है । गोलाकार सूक्ष्मरूप अनेक परमाणु, अणु और त्रसरेणुओंका संयोगरूप मिलाप तिसमें रहनेसे, अनेक पोलाकार छिद्ररूपसे संयोग रहित निराकार आकाश तिसमें आप ही स्थित है, और तिन छिद्रोंमें वायु सदैव गतिवान् रही ही है ॥

इस प्रकारसे जगत्में ऐसा दृश्य सूक्ष्म भी पदार्थ कोई नहीं, कि जहाँ पाँच तत्त्व नहीं होवें । जड़ तत्त्व स्वयं अनादि, एकदेशी, पृथक्–पृथक्, परन्तु संयोग रहित, अनन्त छिद्ररूप निराकार आकाश छोड़के चारों तत्त्व संयोग सम्बन्धसे सदैव स्थित हैं । तिनको अन्य उत्पन्न कर्त्ता कोई नहीं; ऐसा विवेकसे आप अब जान लीजिये !॥

प्रश्न (६३) यदि अनेक छिद्ररूप निराकार आकाश छोड़ कर अन्य चारों तत्त्वोंके मिलाप और स्थूल–सूक्ष्म आकार स्वयं अनादि हैं; और यदि तिनको अन्य उत्पन्न कर्त्ता नहीं ठहरता, तो उन चारों तत्त्वोंमें धर्म, गुण, शक्तियाँ, और क्रियाएँ भी आप पूर्वमें प्रश्न ५८ में अनादि कहे हो ! परन्तु तिनको भी कर्त्ता अवश्य चाहिये । इसका भी भेद आप दया करके दिखाइये ? ॥

प्रथम अनादि वायु और तेज इन दो जड़ तत्त्वोंमें प्रमाण सहित तथा प्रत्यक्ष अनुभवसे धर्म, गुण, शक्ति और क्रिया जब स्वरूपसे अनादि आप दिखाओगे, तब मुझको भी पूर्ण निश्चय हो जायेगा ?॥

(६३) उत्तरः—सुनिये ! वायु तत्त्व विषय कहा हैः—

श्लोकः—"मृदुत्वं कठिनत्वं च, शैत्यमुष्णत्वमेव च ॥ ३६ ॥"

॥ भागवत, स्कन्ध ३ । अध्याय २६ । अर्द्ध श्लोक—३६ ॥

अर्थः—कपिल मुनि देवहूति मातासे कहते हैं कि, नरम या कोमल, कठिन, शीत, उष्ण वा गर्म, ये स्पर्शवान् वायुके लक्षण हैं ॥

इस प्रमाणसे सदोदित प्राण वायुरूपसे सुख देनेवाला, कोमल स्पर्श मुख्य वायुका धर्म है । अन्य तत्त्वोंके संयोगसे गर्म तेजका, शीत जलका, और कठिन पृथ्वीका, ऐसे चार स्पर्श वायुमेंसे होते हैं ॥

शङ्काः—कोमलता धर्म जलमें है, परन्तु वायुमें नहीं ॥

समाधानः—जल स्थूलाकार रहनेसे उसकी चोटें देहमें लगती हैं । परन्तु वायु सूक्ष्माकार रहनेसे ब्रह्माण्डमें मन्द गतिवान् वायु और देह रहे तक चलन गतिवान् श्वास वायुकी चोटें देहमें नहीं लगतीं हैं । इससे अतिकोमलता धर्म वायुका ही है । इस हेतुसे वायुमें स्वयं कोमलता धर्म है ॥

बहुतसे मतवादी आकाशका गुण 'शब्द' मानते हैं । परन्तु पोलाकार अनन्त छिद्ररूपसे निराकार, अक्रिय आकाश रहनेसे तिसका परिणामरूप कोई कार्य नहीं बनता है । इसीसे आकाशमें क्रियारूप शब्द गुण नहीं है । 'मुख्य वायु तत्त्वमें अन्य तत्त्वोंका विशेष संयोग रहनेसे या पृथ्वी, जल, तेज, और वायु, इनकी सदोदित संयोगरूप मिश्रता रहनेसे उन चारों तत्त्वोंके संयोगसे शब्दोंकी उत्पत्ति होती है;' (इसका विशेष वर्णन पूर्वके प्रश्न ६ और प्रश्न ३८ में देखिये !) ॥

"रूपरहितःस्पर्शवान्वायुः ॥"—तर्कसंग्रह खण्ड-१ ॥

अर्थः—स्थूल रूप रहित स्पर्शवाली वायु है ॥

इस प्रमाणसे वायुका स्वयं स्पर्श विषय वा गुण है ॥

श्लोकः—"चालनं व्यूहनं प्राप्तिर्नेतृत्वं द्रव्यशब्दयोः ॥
सर्वेन्द्रियाणामात्मत्वं, वायोः कर्माभिलक्षणम् ॥ ३७ ॥"
॥ भागवत, स्कन्ध ३ । अध्याय २६ । श्लोक–३७ ॥

अर्थः—कपिल मुनि कहते हैं कि, वृक्षकी डालियाँ, पत्र, पताकादिकोंको हिलाना, तृण, झीने कण, झीने पदार्थ आदिकोंको परस्पर मिलाय देना, मुख्य पृथ्वी तत्त्वयुक्त गन्धवाले पदार्थोंकी गन्धोंको नासिका इन्द्रियके पास ले आना, मुख्य जल तत्त्वयुक्त शीत गुणवाले पदार्थोंके शीतको त्वचाके पास ले आना, और मुख्य वायु तत्त्वयुक्त शब्दोंको कर्ण इन्द्रियके पास ले आना, सर्व इन्द्रियोंको बल देना, इन कर्मों द्वारा वायुका लक्षण जानिये ! ॥

इस प्रमाणसे सर्व इन्द्रियोंमें बल देना, बड़ी तूफानी हवा (आँधी) चलकर वृक्षोंकी डालियाँ या उनको भी गिराय देना, धातुओंके पत्रे, नरियाँ-कवेलू-आदि बड़े—छोटे पदार्थोंको दूर उड़ाय ले जाना, जल पर पदार्थ तिराना, मुर्दे फुलाना, आग जलाना, इत्यादि वायुमें स्वयं अनेक शक्तियाँ हैं ॥

वनस्पति और वृक्षोंके पत्र, डालियाँ, तृणादिकोंको हिलाना, पत्तियाँ, धूल, झीने कण, अन्नके दाने इत्यादि झीने पदार्थ परस्पर मिलाय देना, आग जलाना, जलमें लहरें उठाना, कफ, पित्त, वातादि नाड़ियाँ और प्राणादि वायुओंको चलाते रहना, ब्रह्माण्डमें समान और विशेष भावसे तिरछीरूपसे चलती ही रहना, इत्यादि वायुमें स्वयं अनेक प्रकारकी क्रियाएँ हैं ॥

तेजतत्त्व विषय कहा हैः—

श्लोकः—"द्योतनं पचनं पान,-मदनं हिममर्दनं ॥
तेजसो वृत्तयस्त्वेताः, शोषणं क्षुत्तृडेव च ॥ ४० ॥"
॥ भागवत, स्कन्ध ३ । अध्याय २६ । श्लोक-४० ॥

अर्थः—कपिल मुनि कहते हैं कि, प्रकाश करना, पकाना, भूख-प्याससे खाना, और पीना, सर्दी मिटाना और सुखाना, ये अग्निके लक्षण हैं ॥

"भौमदिव्यौदर्याकरजभेदात् ॥" —तर्कसंग्रह, खण्ड-१ ॥

अर्थः—भौम, दिव्य, उदर्य, और आकरज, ऐसे चार प्रकार-के तेज हैं । अग्निका भौम तेज, बिजलीका दिव्य तेज, उदर्य तेज, पेटमें अन्नादि पचानेवाली जठराग्नि, और खानियोंमेंसे उत्पन्न होनेवाले सोना, लोहादि धातुओंका आकरज तेज है ॥

"तेजः प्रकाशने ॥" —गर्भ उपनिषद् । मन्त्र ॥ १ ॥

अर्थः—तेजका प्रकाश करना धर्म है ॥

इन प्रमाणोंसे तेजमें स्वयं प्रकाश करना यह 'धर्म' है ॥

"चक्षुर्मात्र ग्राह्योगुणोरूपम् । तच्च शुक्लनीलपीतरक्तहरितकपिश-चित्रभेदात् सप्तविधम् ॥" —तर्कसंग्रह, प्रथम खण्ड-१ ॥

अर्थः—नेत्रोंसे देखते हैं, वह तेजका गुण "रूप" है । शुक्ल वा सफेद, नीला, पीला, लाल, हरा, काला, और चित्र = अनेक रङ्गोंसे मिश्रित—ऐसे सात रङ्गोंके भेदोंसे 'रूप' हैं ॥

इस प्रमाणसे तेजका स्वयं रूप विषय वा 'गुण' है ॥

छन्दः—"सो वह्निमें जिमि दाहकी, है शक्ति त्यूँ निरधार ॥"
॥ विचारसागर, स्तरङ्ग ६ । छन्द ॥ पृष्ठ ३६२ ॥

अर्थः—निश्चलदासजी कहते हैं कि, हे शिष्य ! जैसी अग्निमें दाहक शक्ति (जलानेकी शक्ति) है; तैसे ही सर्व पदार्थोंमें अपनी-अपनी शक्ति रही है, ऐसा निश्चय कीजिये ! ॥

इस प्रमाणसे पदार्थोंको जलाना, तपाना, पिघलाना, सुखाना अन्नादिकोंको पकाना, शीत मिटाना, इत्यादि तेजरूप अग्निमें स्वयं अनेक 'शक्तियाँ' हैं ॥

'ऊर्ध्वज्वलनमेव च॥'न्यायसि०मुक्तावलिकारिका७।परिच्छेद१।प्रत्यक्षखण्डः॥

अर्थः—दियाओंकी ज्योतियाँ, अग्निकी ज्वालाएँ–लपटें, आग ऊपर उठकर जला करती हैं ॥

इस प्रमाणसे अग्निमें ऊपरको गमन करनेकी क्रिया है ॥

इस प्रकारसे अनादि जड़ वायु और तेज इन दो तत्त्वोंमें स्वयं धर्म, गुण, शक्तियाँ और क्रियाएँ हैं। ऐसा प्रमाण सहित आपको दिखाये हैं। सो आप भी अब विवेक करके जान लीजिये! ॥

प्रश्न (६४) अब अनादि पृथ्वी और जल, इन दो जड़ तत्त्वोंमें प्रमाण और अनुभवसे धर्म, गुण, शक्तियाँ और क्रियाएँ जो हैं, सो मुझे बोध निश्चय करनेके लिये आप दर्शाइये ? ॥

(६४) उत्तरः—सुनिये ! जल विषय कहा हैः—

चौपाईः—"सदा शीत है, जलको धर्मा ॥ २८॥"

अर्थ स्पष्ट है॥ ॥ मानुषविचार, पञ्चग्रन्थी ॥ नं० २८ ॥

इस प्रमाणसे जलमें स्वयं शीत 'धर्म' है ॥

पञ्चीकरणमें कहा हैः—जलमें स्वयं रस विषय वा 'गुण' है॥

रसके भेद विषय कहा हैः—

"मधुराम्ललवणतिक्तकटुकषायरसान्विन्दती ॥"-गर्भ उपनिषद्, मन्त्र १॥

अर्थः—१. मधुर, २. खट्टा, ३. खारा, ४. तीखा, ५. कड़ुवा, और ६. कषाय, ये षट् रस हैं ॥

इस प्रमाणसे मुख्य मधुर रस जलका है, और अन्य रस अन्य तत्त्वोंके मिलापसे हैं ॥ जलमें शक्ति विषय कहा हैः—

श्लोकः—"क्लेदनं पिण्डनं तृप्तिः, प्राणनाप्यायनोन्दनम् ॥
तापापनोदो भूयस्त्व,–मम्भसो वृत्तयस्त्विमाः ॥ ४३ ॥"
॥ भागवत, स्कन्ध ३ । अध्याय २६ । श्लोक–४३ ॥

अर्थः—कपिल मुनि कहते हैं कि, कोई पदार्थ भिगाय देना, मिट्टी, आटा इत्यादिकोंके पिण्ड बाँध देना, तृप्त कराना, जिलाना, प्यासकी कायरता मिटाना, नरम करना, गर्मी मिटाना, कूएँ आदिमेंसे जल निकाले पर भी उतना ही फिर हो जाना, ये जलके लक्षण हैं ॥

इस प्रमाणसे पूर्वोक्त सर्व लक्षण तथा रज और वीर्यरूप जलसे शरीर बननेः दूध, घी, शहदादि पतले पदार्थ जम जानेः स्वाती नक्षत्रमें जल बरसनेसे कहीं-कहीं सीपीमें मोती, केलामें कपूर, हाथीके मस्तकमें गजमुक्ता, सर्पमें मणि, गायके मस्तकमें गोरोचन, और बासोंमें वंशलोचन, नमक जम जानेः वृक्ष, तृणादि सर्व अङ्कुरोंकी उत्पत्ति होकर, तिनमें अनेक पत्र, डालियाँ, मञ्जरियाँ, फूल, फलादि लग जाने, परस्पर पेड़ों पर कलम बन्ध जाने, वृक्षोंमें बाँदा प्रकट होने, इत्यादि जलमें स्वयं अनेक 'शक्तियाँ' हैं ॥

"द्रवत्वात्स्यन्दनम् ॥" –वैशेषिक सूत्र ४ । अध्याय ५ । आह्निक २ ॥

अर्थः—जल पतला रहनेसे बहता है ॥

इस प्रमाणसे बादलोंसे जल नीचे गिरना, अधोमुख नीचेकी ओर बहा करना, पदार्थोंको बहाय ले जाना, ऐसी जलमें स्वयं 'क्रियाएँ' हैं ॥ पृथ्वी विषय कहा हैः—

"तत्र यत्कठिनं सा पृथिवी ॥" –गर्भ उपनिषद् । मन्त्र ॥ १ ॥

अर्थः—जहाँ–जहाँ कठिनपन है, वह पृथ्वीका धर्म है ॥ इस प्रमाणसे पृथ्वीमें स्वयं कठिनता 'धर्म' है ॥ पञ्चीकरणमें कहा हैः—

पृथ्वीमें स्वयं गन्ध विषय वा गुण है ॥ गन्धके भेद सुनियेः—

श्लोकः—"करम्भपूतिसौरभ्य,-शान्तोग्राम्लादिभिः पृथक् ॥ ४५ ॥"
॥ भागवत, स्कन्ध ३ । अध्याय २६ । अर्द्ध श्लोक-४५ ॥

अर्थः—गन्ध छः प्रकारकी हैं । १. कपूर आदिककी गन्ध "करम्भः" २. कस्तूरी आदिककी गन्ध "सौरभ्यः" ३. कमल आदिककी गन्ध "शान्तः" ऐसी तीन सुगन्ध हैं ॥ ४. लहसुन, प्याज आदिककी गन्ध "उग्रः" ५. कोई पतला वा गीला पदार्थ फेनाय सफेद रङ्ग आए हुएकी गन्ध "खट्टीः" ६. सड़े हुए पदार्थ-की गन्ध "पूति," (बदबू); ऐसी तीन दुर्गन्ध हैं ॥

पृथ्वीके लक्षण विषय कहा हैः—

श्लोकः—"भावनं ब्रह्मणः स्थानं, धारणं सद्विशेषणम् ॥
सर्वसत्त्वगुणोद्भेदः, पृथिवीवृत्तिलक्षणम् ॥ ४६ ॥"
॥ भागवत, स्कन्ध ३ । अध्याय २६ । श्लोक-४६ ॥

अर्थः—मूर्त्ति आदिमें ब्रह्म भावना करना, जलादि पदार्थोंसे विलक्षण रहना, सर्व पदार्थोंको आकर्षण शक्तिसे धारण करना, पदार्थोंके अनेक भेद होना, सर्व प्राणियोंका पुरुषत्त्व गुण प्रकट करना, ये पृथ्वीके लक्षण हैं ॥

इस प्रमाणसे हीरा–पन्नादि रत्न; १ सोना, २ रूपा, ३ लोहा, ४ ताम्बा, ५ पीतल, ६ काँसा, ७ जस्ता, और ८ शीशा, ये अष्ट धातु; सादे और नाना रङ्गोंके पत्थर; अनेक क्षार, कोयला, सोरा, अभ्रक, पारा, गन्धक, वृक्ष, बेलें, देहें इत्यादि अनेक पदार्थ पृथ्वीके अनेक रज और अन्य तत्त्वोंके अणु–परमाणुओंके संयोग–सम्बन्धसे सदोदित बन जाते हैं, और उन्होंमें लय हुआ करते हैं ॥

अपने आकर्षण शक्तिसे सर्व पदार्थ जहाँ–तहाँ ठहर रहने; परन्तु भीतर नहीं घुसने देना, यह "धारणाशक्ति" स्वयं पृथ्वीमें है ॥

गोलतत्त्व प्रकाशिकाके चतुर्थ परिच्छेद (पृष्ठ ५०) में कहा है:— "गाड़ीकी खड़ी पहियावत् (चाकवत्) पृथ्वी सदैव घूमा करती है; ऐसी "चक्राकार गति" की पृथ्वीमें क्रिया है;" इसका विशेष विस्तार आगे कहेंगे। पृथ्वीवत् जल, तेज, वायु, इन तत्त्वोंमें और चन्द्र, सूर्य, तारागणादि सर्व पदार्थोंमें एक प्रकारकी शक्ति है; जिसको "गुरुत्वाकर्षण शक्ति" कहते हैं। एक जाति या विजातियोंके सर्व परमाणुओंमें "स्नेहाकर्षण शक्ति" है; जिसको "केशाकर्षण शक्ति" भी कहते हैं। चारों तत्त्वोंके कम-अधिक परमाणुओंके मेलसे अनेक पदार्थ बन जाते हैं, वह "रसायनाकर्षण शक्ति" है। ऐसी "गुरुत्वाकर्षण, धारणाकर्षण, रसायनाकर्षण, और स्नेहाकर्षण" इन चार शक्तियोंका वर्णन पदार्थ विज्ञान शास्त्रमें किया है। इन जड़ तत्त्वोंकी अनादि चार शक्तियोंसे जगत्‌की सर्व क्रियाएँ बराबर चल रही हैं। तिनको चलानेके लिए भिन्न कर्त्ता माननेकी कोई आवश्यकता ही नहीं है ॥

पूर्वोक्त अनादि पृथ्वी-जलादि चारों जड़ तत्त्वोंमें स्वयं धर्म, गुण, शक्तियाँ और क्रियाएँ हैं, ऐसा अब आप निश्चय करके जगत् कर्त्ता मत् मानिये; और निष्पक्ष होकर सत्य पारख दृष्टिको धारण करिये ! ॥

प्रश्न (६५) यदि जड़ तत्त्वोंमें क्रियाएँ प्रकटानेवाला कर्त्ता नहीं ठहरता, तो हम लोग कर्त्ताको क्यों मानते हैं ? उसका हेतु कहता हूँ:—

श्लोकः—"पिताहमस्य जगतो, माता धाता पितामहः ॥ १७ ॥"

॥ भगवद्‌गीता, अध्याय ६। अर्द्ध श्लोक-१७ ॥

अर्थः—श्रीकृष्ण कहते हैं कि, जगत्‌का पिता-मातारूपसे उत्पत्ति और पालन कर्त्ता पितामह (सर्व माता, पिताओंका भी पिता)

परमात्मारूप हम ही हैं ॥

इस प्रमाणसे शरीरोंमें अनेक सुख, दुःख और धन, स्त्री, पुत्रादि हमारे इच्छाके अनुकूल प्राप्त नहीं होते; अर्थात् सुख होना, तहाँ दुःख और प्रयत्न करने पर भी धनादिकोंकी प्राप्ति नहीं होती है ॥

इसी अनुभवसे जगत्में सुख–दुःखादि देनेवाला दूसरा कर्त्ता है, ऐसा मैं मानता हूँ ? ॥

(६५) उत्तरः—सत्यन्यायसे निर्णय करने पर जगत् कर्त्ता सिद्ध नहीं होता है, तिसको पूर्वके सब प्रश्नोंको देखिये ! सर्व जीव अपने–अपने कर्मोंके अनुसार वासना–संस्कारसे बारम्बार अनेक शरीर धरते रहते हैं; (तिसको पूर्वका प्रमाण प्रश्न २६ में देखिये !) ॥

श्रुतिमें भी कहाः—

"स यथाकामो भवति तत्क्रतुर्भवति । यत्क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते । यत्कर्म कुरुते तदभिसम्पद्यते ॥"—बृहदारण्य उपनिषद्, अ० ४ ब्रा० ४ मन्त्र५॥

अर्थः—यह पुरुष जिस–जिस फलकी इच्छावाला होता है, तैसे ही सङ्कल्पवाला होता है। जैसे सङ्कल्पवाला होता है, तैसे ही कर्म करता है। जैसे कर्म करता है, तैसे ही कर्मके अनुसार फल प्राप्त होता है॥

इस प्रमाणसे नरजन्मरूप मनुष्य देह "कर्म भूमिका" है, और अन्य खानियाँ नरदेहोंमें किये हुए कर्मोंके फल भोगनेके स्थान हैं। पशु आदि खानियोंमें अनेक दुःख भोगनेके प्रथम अनेक पूर्वके नरदेहोंमें अथवा पिछले ही नरदेहोंमें जैसे उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ अथवा पुण्य–पापरूपी शुभाशुभ अनेक कर्म मनुष्योंने किये हैं, तिनमेंके शेष रहे हुए कर्मोंके ही फल प्रारब्ध बन कर, पाप–पुण्योंके मिश्रित कर्मोंसे मनुष्योंके शरीर जीवोंने धर लिये हैं। धन, स्त्री, पुत्रादि सर्व बराबर रहने, शरीर रोग रहित रहने, सो

पुण्योंके फल अनेक "सुख" हैं। दरिद्री रहने, स्त्री, पुत्र, खेती, बाड़ी, नौकर इत्यादिकोंका मेल बराबर नहीं रहने या वियोग होने, शरीर रोगी दुःखी रहने, सो पापोंके फल अनेक 'दुःख' हैं। ऐसा देह धरनेका दण्ड ❀ सत्त्व, रज और तमोगुण वाले सर्व मनुष्य जीव भोग रहे हैं। और कहा है:—

"आध्यात्मिकं आधिभौतिकमाधिदैविकं चेति तापत्रयम् ॥ १४ ॥"

॥ त्रिविध वर्णनम्; वेदान्तसंज्ञा (पृष्ठ ३०) ॥

अर्थः—देहमें होने वाले नाना रोग और चिन्ता, वैसे ही काम, क्रोध, तृष्णादि अन्तर मनसे होने वाले मानस दुःख, सो "आध्यात्मिक ताप" है। छोटे-बड़े देहधारी जीवोंसे दुःख होने, वह "आधिभौतिक ताप" कहाता है। बिजली गिरनेसे मृत्यु होने, वृक्ष, घरादि टूटके अङ्ग पर गिरने, आगमें जलने, जलमें बह जाने, अनावृष्टि इत्यादि अकस्मात् होने वाले दुःख, सो "आधिदैविक ताप" हैं।

ये तीन तापयुक्त सम्पूर्ण प्रारब्ध कर्म भोगे बिना किसीका भी शरीर छूटता नहीं है; (तिसको श्रुति प्रमाण पूर्वके प्रश्न ३२ में देखिये !)। इसलिए धन, स्त्री, पुत्रादि प्राप्ति और अप्राप्तिरूपसे सुख-दुःखादि अनेक भोग अर्थात् पिछले जन्मोंके कर्मोंके फल मनुष्योंको प्रारब्धरूपसे भोगने अवश्य हैं, और इसी नरदेहमें अभी पाप, पुण्यरूप अनेक कर्म मनुष्य कर रहे हैं, सो तिनके संस्कार रहनेसे आगे प्रारब्ध बन जानेसे देह धर कर फिर तिनके फल सुख-दुःखादि सबोंको भोगने होंगे ! ॥

इस प्रकारसे सुख-दुःखादि देनेवाला दूसरा कर्त्ता आप

❀ "सुर नर मुनि औ देवता। सात द्वीप नौ खण्ड ॥
कहहिं कबीर सब भोगिया। देह धरेको दण्ड ॥" बीजक, साखी-२६५ ॥

मिथ्या मानन्दी भावनाके अनुभवसे जो मान बैठे हो, सो भूल है। इसी या अन्य शरीरोंमें अपने ही किये हुए कर्मोंके फल सर्व जीव दुःख–सुख रूपसे भोगते हैं; ऐसा आप अब निश्चय कर लीजिये ! ॥

प्रश्न (६६) यदि सुख–दुःखादि देनेवाला अनुभव सिद्ध कर्त्ता नहीं ठहरता, तो तिस विषय और कहा है:—

"भूतप्रेतपिशाचब्रह्मराक्षसापस्मारभव॥"—बृहज्जाबालउ०, ब्राह्मण१ केअन्तमें।

अर्थः–पिशाच, ब्रह्मराक्षस इत्यादि भूत और महादेवके भूतगण हैं॥

सूक्ष्म देहधारी वायुरूपी पिशाच मनुष्योंके शरीरोंमें प्रवेश करके बोल कर अपने–अपने नाम बताते हैं। यदि उस मनुष्यको वा स्त्री–पुरुषको लिखने–पढ़ने नहीं आवै, तो भी वै लिख कर बताते, और कहीं अन्य भाषा बोलने लग जाते हैं, ऐसे देखे–सुने हैं। इसलिए ईश्वर निर्मित प्रेत, पिशाच, ज़िन्द, ब्रह्मराक्षस, यक्षिणी, डाकिनी, चुड़ैल, इत्यादि अनेक भूत मनुष्योंको जीते ही दुःख देते हैं॥

अथवा और कहा है:—

"अपि च सप्त ॥ १५ ॥"—व्यास ब्रह्मसूत्र १५। अध्याय ३। पाद १॥

अर्थः—निश्चय करके पुराण पढ़नेवाले पण्डित लोग कहते हैं कि, पापी पुरुषोंके लिए रौरवादि सात नरक हैं; वहाँ पाप करनेवाले पुरुष जाते हैं॥ तहाँ टीकाकार शङ्का करते हैं कि, यमराजाके दण्डको पापी लोग भोगते हैं, सो कहना विरुद्ध है, क्योंकि रौरव नरकादि विषय चित्रगुप्तादि नाना अधिष्ठानका पुराण द्वारा जाना जाता है॥ तहाँ समाधानः—

"तत्रापि च तद्व्यापारादविरोधः॥१६॥"—व्यास ब्रह्मसूत्र१६।अध्याय३।पाद१॥

अर्थः—तिस सात नरक विषय यमराजा अधिष्ठाताका व्यापार होनेसे कोई विरोध नहीं। यमराजा प्रेरित चित्रगुप्तादि अधिष्ठानका पुराण द्वारा जाना जाता है॥

श्लोकः—"तामिस्रमन्धतामिस्रं, महारौरवरौरवौ ॥
नरकं कालसूत्रं च, महानरकमेव च ॥ ८८ ॥
संजीवनं महावीचिं, तपनं संप्रतापनम् ॥
संघातं च सकाकोलं, कुड्मलं पूतिमृत्तिकम् ॥ ८९ ॥
लोहशंकुमृजीषं च, पन्थानं शाल्मलीं नदीम् ॥
असिपत्रवनं चैव, लोहदारकमेव च ॥ ९० ॥"
॥ मनुस्मृति, अध्याय ४ । श्लोक ८८ । ८९ । ९० ॥

अर्थः—१ तामिस्र । २ अन्धतामिस्र । ३ महारौरव । ४ रौरव । ५ कालसूत्र । ६ महानरक ॥ ८८ ॥ ७ सञ्जीवन । ८ महावीचि । ९ तपन । १० संप्रतापन । ११ सङ्घात । १२ सकाकोल । १३ कुड्मल । १४ पूतिमृत्तिक ॥ ८९ ॥ १५ लोहशङ्कु । १६ ऋजीष । १७ पन्थान । १८ शाल्मली । १९ नदी । २० असिपत्रवन । और २१ लोहदारक । ऐसे २१ नरकोंका नाम मनुस्मृतिमें विस्तारयुक्त वर्णन किया है ॥ ९० ॥

कठ उपनिषद्में यमराजा और नचिकेताका सम्वाद लिखा ❀

कठ उपनिषद्, अध्याय १ । वल्ली १ । मन्त्र ९ में यमराजने कहाः—

❀ "तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मे अनश्नन् ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः ॥ नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन् स्वस्ति मेऽस्तु तस्मात्प्रति त्रीन् वरान् वृणीष्व ॥ ९ ॥"

—हे ब्राह्मण देवता ! आप नमस्कार करने योग्य अतिथि हैं । आपको नमस्कार हो । हे ब्राह्मण ! मेरा कल्याण हो । आपने जो तीन रात्रियोंतक मेरे घरपर बिना भोजन किये निवास किया है; इसलिए (आप मुझसे) प्रत्येक रात्रिके बदले (एक-एक करके) तीन वरदान माँग लीजिये ॥ ९ ॥ नचिकेताने कहाः—

"शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्याद्वीतमन्युर्गौतमो माभि मृत्यो ॥ त्वत्प्रसृष्टं माभिवदेत्प्रतीत एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे ॥ १० ॥" —हे मृत्युदेव ! जिस प्रकार (मेरे पिता) गौतम वंशीय उद्दालक मेरे प्रति शान्त संकल्पवाले प्रसन्नचित्त (और) क्रोध एवं खेदसे रहित हो जायँ; (तथा) आपके द्वारा वापस भेजा जाने-

है। सूक्ष्म देहधारी देवता स्वर्गोंमें बहुत सुख भोगते हैं, ऐसा वर्णन पूर्वके प्रश्न १७ में कहा है ॥

इन प्रमाणोंसे विशेष पाप कर्मोंके अनुसार चित्रगुप्त पटवारीके लिखे प्रमाण मृत्यु समय यमराजाके यमदूत मनुष्य जीवोंको ले जाय, नवीन शरीरोंमें उन्हें डाल कर २१ नरकादि अनेक दुःख वै देते हैं। और विशेष पुण्य कर्मोंके अनुसार देवगण मनुष्योंको स्वर्गोंमें ले जानेसे स्वर्ग सुख वै सूक्ष्म शरीर धरके बहुत ही दीर्घ काल तक भोगते रहते हैं ॥

इस प्रकारसे ईश्वरसे निर्मित भूतगण, स्वर्ग और नरक हैं। वहाँ पर और भूतोंसे मनुष्य सब सुख-दुःखोंको भोगते जाते हैं। इसी हेतु मैं कर्त्ता ईश्वर मानता हूँ ? ॥

(६६) उत्तरः—इसका भी भेद मैं कहता हूँ, सो आप ध्यान पूर्वक सुनिये ! बीजक साखी ३६. "ज्यों मोदाद समसान सिलः-" ❀

पर जब मैं उनके पास जाऊँ तो वे मुझपर विश्वास करके (यह वही मेरा पुत्र नचिकेता है, ऐसा भाव रखकर) मेरे साथ प्रेमपूर्वक बातचीत करें, यह अपने तीनों वरोंमेंसे पहला वर मैं माँगता हूँ ॥१०॥ कठ० । अ० १ । वल्ली १।मन्त्र६-१० ॥

इत्यादि प्रकारसे दोनोंका सम्वाद तथा यमराजका उपदेश वर्णन करके कठ उपनिषद् अध्याय १ के वल्ली १ से वल्ली ३ की समाप्ति तक लिखा है ॥

❀ साखीः—ज्यों मोदाद समसान सिल। सबै रूप समसान ॥
कहहिं कबीर वह सावजकी गती। तबकी देखि भुकान ॥३६॥

टीका गुरुमुखः—मोदाद कहिये प्रमाण, समसान सिल एक पत्थर होता है। ताको प्रमाण ऐसा है कि, जो कोई रङ्ग उस पत्थरपर धरो, सो रङ्ग उस पत्थरके मुताबिक मालूम होता है। उस पत्थरका रङ्ग हरा है। ताको दृष्टान्त देके ब्रह्म स्थितिकी कसर बताते हैं। जो समसान सिलका प्रमाण है, तैसा अन्तःकरणका प्रमाण है, कि जो जीव अन्तःकरणमें मिलता है, सो अन्तःकरण निर्विकलपरूप हो जाता है, और कहता है कि, ब्रह्म साक्षात्कार मेरे को हुआ; सो ब्रह्म कैसा है ?

इसकी टीकामें सद्गुरु श्रीपूरण साहेब लिखे हैं कि, 'मोदाद' कहिये प्रमाण और 'समसान सिल' एक प्रकारका पत्थर होता है। जिसका प्रमाण ऐसा है कि, जो कोई रङ्ग उस पत्थर पर धरा जाता है, वह रङ्ग उसी पत्थरके मुताबिक मालूम होता है। जैसे समसान सिलका प्रमाण है, वैसा ही अन्तःकरणका भी प्रमाण है। जो अन्तःकरणमें दृढ़ भावनाका भास होता है, वही भासरूप भावना आगे कल्पनासे दरशती है। भावना करनेवाला सत्य है, और भावना मिथ्या है ॥ और सुनिये ! "ये भ्रम भूत सकल जग खाया ॥" बीजक, शब्द १०५ इसकी टीकामें पारखनिष्ठ सद्-गुरु श्रीपूरण साहेबजी लिखे हैं कि, "भ्रम भूत कहिये ब्रह्मभूत, तिस ब्रह्मभूतने सकल जग

कि समसान सिलावत् जो कोई उसे परसे सो सब जगत् ब्रह्मरूप मालूम होता है। परन्तु जबलग अन्तःकरणमें जीव समरस होके रहता है, तबलग द्वैत मालूम होता नहीं और जब अन्तःकरणका वियोग हुवा तब द्वैत बना है, जीवरूपका जीवरूप बना है। ऐसे ही जबलग समसान सिलपर वस्तु धरो तबलग समसान सिला माफिक मालूम होती है और जब समसान सिल परसे वस्तु निकार लेव, तब जिसका रङ्ग उसको बना ही है। तो विजातीय रङ्ग अन्तःकरण आदि सम्पूर्ण नाशमान ऐसा न जानके जीव सब भ्रममें पड़े। ये अभिप्राय। काया छूटै उपरान्त द्वैत, अद्वैत स्थिति कहाँ है ? हे जीव ! ये सम्पूर्ण तेरी समरसताईसे देहमें प्रतिभास होता है, देह नाशै सब नाश होती है। परन्तु वह सावजकी गती, तबकी देखि भुकान। अरे ! वह सावज कहिये आदि पुरुष जाने सब सृष्टिको पैदा किया, सो वही सावज ये जीव है। परन्तु तबकी प्रथमारम्भकी गति विचित्र अद्भुत देखके भूकने लगा। जैसा कुत्ता काँचके मन्दिरमें पड़ा, सो अनेक भास मालूम भये, तब भूकते-भूकते प्राण छूटे और फिर श्वान योनिमें गया, तद्वत् ये जीवको आनन्द तो समसान शिलावत् भया और देह तो सब स्फटिक शिला अथवा काँचके महलवत् भया, ताते जीवको अनेक भास भये। ताहीते चार वेद, छै शास्त्र, अठारह पुराण सब भूकि-भूकि मर गये। और जैसा अध्यास तैसा बास प्राप्त भया ॥ ये अर्थ ॥ त्रिजासे बीजक साखी ॥ ३६ ॥

खाया, अर्थात् जिन-जिनने अनुमान किया, मानन्दी किया, तेही जहँड़ाया ।" इस प्रमाणसे भूत, ब्रह्मराक्षस, ज़िन्द, चुड़ैल, डाँकिनी इत्यादि मनुष्योंकी मिथ्या कल्पना ही ठहरती है । स्थूल शरीर छूटनेके बाद जीव सब शुभाशुभ कर्मोंके अध्याससे चार खानियोंमें जाते हैं । परन्तु स्थूल देह बिना केवल सूक्ष्मसे और कोई पुरुषार्थ या कर्त्तव्य बनता नहीं । (तिसको पूर्वका प्रमाण प्रश्न ७ में देखिये !) । ऐसा निश्चय करके आप जान लीजिये !

और भी सुनिये !:—

श्मशानोंमें अथवा वृक्षोंपर भूत रहा करते हैं, ऐसी कहीं वाणी सुनी हैं । इसलिए किसी समय वहाँपर रात्रिमें कोई पहुँच गये बाद मिथ्या कल्पना भ्रान्तिकी भावनावश डर जानेसे मनुष्योंकी जाग्रत् अवस्थाकी दृष्टि पलट कर, अपनेमेंसे स्वप्नवत् कल्पित भ्रम भूतादिकी भावना प्रकट होकर भावनारूप भ्रमभूत मिथ्या निज कल्पनाका भास ही उन्हें दिखाई देते हैं । अथवा अन्धकारमें कहीं सूखी खड़ी लकड़ी, ठूँठ-वृक्ष, ऊँचे पत्थरादि देखके कल्पित भूतका पूर्व सुनी हुई वाणीकी स्मृति भास हो जानेसे मनुष्य डरते हैं ॥

श्मशानोंमें साधन करने वाले अघोरी मनुष्य लोग; अथवा भूतोंको उतारनेवाले मन्त्र प्रयोगी ओझे लोग कल्पित भूतको भ्रमसे अङ्गमें आ गया, ऐसा कह कर घूमते और अनेक बातें बोलने लगते हैं, वह केवल झूठा ढोङ्ग मात्र है । कोई कल्पित भ्रमभूत देख कर डर जानेसे या दृढ़तासे अन्दरमें भ्रम हो जानेसे पागल बनते हैं, बिमार पड़ते हैं, और कहीं मृत्युको भी प्राप्त होते हैं । सो तो मिथ्या मानन्दी दृढ़ करनेसे ही ऐसा वे लोग अपने आप ही भ्रमसे हो जाते हैं ॥

(इस विषयमें हम आपको एक दृष्टान्त सुनाते हैं; सो निम्न टिप्पणीको पढ़कर आपको भी मालूम हो जायगा; सुनिये !) ❀ ॥

❀ टि०:—उपरोक्त बातोंका खुलासा आप निम्न लिखित दृष्टान्तसे कर सकते हैं ॥

दृष्टान्तः—कोई एक नवयुवक पुरुष था। होलीके मौसममें एक दिन सवेरे कुछ-कुछ उजियाला होने पर दस्त करनेको पायखाना (संडास) में गया। टट्टी करते समयमें समय-संयोगसे उसको वहींपर एक गिरगिट चलता-फिरता दिखाई दिया; तदुपरान्त वह गिरगिट कहीं बिलमें छिप गई; या कहीं चली गयी। तब उस युवकके चित्तमें ऐसा भ्रम या संशय उत्पन्न हुआ कि, अभी दिखाई पड़ी हुई गिरगिट कहाँ चली गई ? फिर उसको ऐसा भ्रम या मिथ्या संशय दृढ़ हुआ कि, हो न हो ! गुदाद्वार द्वारा हमारे पेटमें अन्दर ही घुसी होगी ? (क्योंकि गिरगिटको दूसरे तर्फ जाते हुए उसने लक्ष्य लगाके या ख्याल करके नहीं देखा था, इससे ऐसा भ्रम उसने दृढ़ किया) ॥

फिर घबराहटसे झट-पट मलद्वार साफ किया, तो खून सदृश पतला लाल-लाल बहता हुआ भी उसने देखा। अब तो उसको भ्रमसे दृढ़ निश्चय हो गया कि, हाँ ! गिरगिट अभी मेरे पेटमें घुस जानेके कारणसे ही हमारे पेटमेंसे यह खून गिर रहा है। तब विशेष डर घबराहटके कारण रोता-चिल्लाता हुआ पलङ्ग पर आ कर लेट पड़ा,और शोर मचाने लगा। [उधर उसकी छोटी बहिनने होली होनेके कारण सबेरेके लिये रातको ही लाल रङ्ग घोल करके भाईके पलङ्गके पास रङ्गके लोटा लाकर रक्खी थी, संयोगसे वही लोटा उस युवकने ले गया था] उस युवकका रोनेकी या चिल्लानेकी शोर सुन करके उसके माता-पिता आदि दौड़कर आए। पूछ-ताछ करके क्या हुआ ? कहने पर वह कहने लगा, "आज सवेरे टट्टी करनेको गया था, एक गिरगिट आई और उसी समय गुदाद्वारसे मेरे पेटमें घुस गयी। जब पेटमें जाकर उसने कुतरना-नोचना शुरू किया, तब पेटमेंसे बहुत-सा खून गिरा। अभी मुझको बहुत बेचैनी और पेटमें दर्द हो रही है" इत्यादि कहा। तब उसके पिताने वैद्य, डाक्टरोंको बुला करके दवाई कराने लगाया। [इधर उसकी बहिन सवेरे उठ कर रङ्गका लोटा ढूँढ़ने लगी, रङ्ग उसे नहीं मिला; तो वह एक तरफ बैठके रोने लगी। परन्तु उधर लड़केकी बीमारीके खलबलामें इसके रोनेके तरफ किसीने

भी ध्यान ही नहीं दिया ।] और फिर अनेक वैद्य, हकीम, डाक्टरोंसे उसका इलाज होने लगा, मगर "ज्यों-ज्यों दवा की मर्ज़ बढ़ता गया" रोग घटनेके बदले और बढ़ने लगा । विशेष करके वह लड़का भी कृष तथा असक्त होता गया । तथा भ्रम बेचैनी भी साथ ही बढ़ती गयी । ऐसे ही अवस्थामें उन लोगोंको कोई एक अच्छा अनुभवी विचारशील सद्वैद्य आ मिले । उनको रोगीका हालत कहने पर वे देखने आए । रोगीको देखकर रोग होनेका कारण, समय, उपचार आदि सब पूछते गये । जिस प्रकारसे गिरगिटका दीखना, और छिप जाना या पेटमें घुसना आदि समय, और औषध वगैरह जो कुछ हुआ, सो सब उनको घर वालोंने बताया । सो सब हाल सुन करके वैद्यजी विचार करने लगे, बड़े आश्चर्यकी बात है कि, मनुष्यके पेटमें गिरगिट घुसना, यह तो किसी प्रकार किसी हालतमें भी नहीं हो सकती है । हो न हो ! इस लड़केको मिथ्या भ्रम घुस गया होगा इसीसे इसका यह हालत हुआ होगा । कोई युक्ति किये बिना इसका भ्रम नहीं मिट सकता है, और भ्रम मिटे बिना यह अच्छा होनेका भी नहीं । ऐसा विचार करके वैद्यजी बोले, अच्छा ! अब आप लोग कोई चिन्ता नहीं करिये ! जब तक रोगोंका निदान-कारण मालूम नहीं होता है, तभी तक ठीक उपचार न होनेसे रोग नहीं छूटता है । अब हमको इस लड़केको रोग होनेका कारण, वगैरह अच्छी तरहसे आप लोगोंके द्वारा मालूम हो गया है; इससे अब हम ऐसा अच्छा दवाई इस रोगीको देंगे कि, जिससे बहुत जल्दी ही यह आराम हो जायगा । अब यह रोग छूटा ही समझ लीजिये ! ऐसा वैद्यका वचन सुनकर उस लड़का समेत् सबको धैर्य बँधा । उसका पिता कहने लगा, वैद्यराज ! ऐसा उपाय कीजिये ! जिससे यह लड़का अच्छा हो जाय; बहुत उपकार होगा, हम बड़े चिन्तामें हैं । और वैद्यजी कहने लगे, आप घबराइये नहीं । मैं अब जाकर दवाई लाता हूँ । फिर आऊँगा, कहके वैद्य चले गये । घरमें जा करके कड़ी जुलाब वाली दवाईकी पुड़िया लिये और समीपके जङ्गल पहाड़िकी तर्फ जाके कहींसे ढूँढ़ कर एक मरी हुई गिरगिट भी छिपा करके यत्न पूर्वक ले आये । और रोगीके यहाँ जा करके कहने लगे कि, देखिये ! मैं एक अच्छी दवाई ले आया हूँ ! ये पुड़िया देने पर २ + ४ दस्त तो होंगे; साथ ही अन्दरके विकार सब भी निकल जायेगा । ऐसा कहके उक्त जुलाब वाली दवाई लड़केको खिला दिये । कुछ देर बादमें उसको दस्त लगना शुरू हुआ; २ + ३

"जैसी वासना तैसे फूल ॥" इस कहावतके प्रमाणसे स्वर्ग लोकोंमें देवताओंको विशेष सुख और यमलोकोंमें यमराजा, यमदूत और चित्रगुप्त पटवारी रहनेसे वहाँ विशेष दुःख होते हैं। ऐसी अनेक प्रकारकी वाणी पुराण पढ़ने वाले पण्डित गण और अनेक मनुष्योंसे बारम्बार सुननेमें आती है। फिर जैसे जाग्रत्में देखे, सुने और अनेक भोग भोगे हुए अनेक जन्मोंके या इस जन्मके

दस्त होनेके बाद अवसर या मौका देखकर सबके आँखें बचाकर टट्टी किये हुए बर्तनमें उक्त मरा हुआ गिरगिट वैद्यजीने झटसे डाल दिये। और प्रसन्न वदन होकर कहने लगे कि, देखो ! देखो ! इसके पेटका विकार अब सब निकलके आ गया। हमारी दवाईकी शक्तिसे गिरगिट भी मरकर पेटसे बाहर निकल गया। अब रोगका जड़ ही चला गया। देखो ! कहके उस लड़केको भी वह गिरगिट दस्तमें लिपटी हुई दिखलाये। तब उस लड़केको भी पूरी तौरसे निश्चय हो गया कि, मेरे पेटमें घुसा हुआ गिरगिट अब बाहर निकलके आ गया। अब हमारा रोग अच्छा हुआ। तदुपरान्त उपयुक्त औषधीके सेवन करानेसे और मन-मानन्दीके मिथ्या भ्रम भी छूट जाने पर कुछ रोज बाद कमजोरी आदि भी मिट कर वह लड़का अच्छा आरोग्य हो गया ॥

जब तक उसकी मनकी दृढ़ मानन्दीरूप भ्रम नहीं हटी थी, तब तक कोई औषधीसे भी उसको फायदा नहीं हुआ था। और जब चतुर वैद्यकी युक्तिसे उसकी मनकी भ्रान्ति हट जानेसे बादमें उसको आरोग्य लाभ हुआ ॥

यह तो एक दृष्टान्त सुनाया है। तैसे ही सिद्धान्तमें उपरोक्त भ्रमिक लड़काके नाँई यह अज्ञ नर जीव भी भ्रमिक हुए हैं। जहाँ कहीं अर्ध अल्प प्रकाश और अर्ध अल्प अन्धकार देखनेमें आया या ठूँठ, पत्थर या पशु, पक्षी आदिकोंको देखा, उसीको मिथ्या भ्रान्ति या मानन्दी दृढ़ करके कल्पनासे भूत, प्रेत, ब्रह्मराक्षस, चुड़ैल, इत्यादि मानके भयभीत हो कोई पागल समेत् हो जाते हैं। सो भ्रमकी दृढ़तामात्र होनेसे सरासर मिथ्या है। ऐसा विवेक करके आप अब देवी, देवता, ईश्वर, भूत-प्रेतादि मानन्दी सब झूठा है, ऐसा जान लीजिये ! ॥ —सम्पादक, **रामस्वरूपदास** ॥

॥ ❀ ॥ इति टिप्पणी समाप्तम् ॥ ❀ ॥

संस्कारोंसे दृढ़ वासना बन कर फोटोवत् प्रतिदिन थोड़े ही कालके स्वप्नवत् मिथ्या भासको निश्चय करके देह व्यवहार करने लगते हैं। तैसे ही मृत्युके उपरान्त पुण्यवान् कर्मी और भक्त लोगोंकी तथा हिंसक, कठोर हृदयवाले, विषयासक्त मनुष्योंकी दृढ़ वासना या संस्कार रहनेसे थोड़े समयमें बहुत ही काल तक कल्पित स्वर्ग लोकोंमें अनेक सुख और यमलोकोंमें अनेक दुःख हम प्रत्यक्ष भोग रहे हैं; ऐसे तिनको स्वप्नवत् भ्रान्तिसे भास मात्र दिखाई देते। स्वर्गमें अप्सराओंके साथ भोग—विलास, तिनके मधुर गायन, फूलोंकी शैय्या, अमृतपान इत्यादि सुख और यमलोकमें अनेक नरकोंमें निवास, साँप—बिच्छू आदिसे कटवाना, गर्म लोहेपर चलाना, बहुत प्रकारके मार सहना, इत्यादि दुःख ठहराये हैं। परन्तु न कहीं स्वर्गलोक, न यमलोक, न कोई भूत—प्रेतादि और न अनेक देवता हैं। स्वर्गलोक, भूत और देवता, मिथ्या ही नर कल्पित हैं; (तिसको पूर्वके प्रमाण प्रश्न ७ और प्रश्न १७ में देखिये !)। मनुष्योंने चित्तमें जो गुप्त वासना रक्खी है; वही पटवारी "चित्रगुप्त" है। अनेक दुःखोंके बन्धन देने वाले जातभाई, स्त्री, ठग गुरुवा लोगादि प्रत्यक्ष 'यम' हैं॥ अथवा कहा है:—

श्लोकः—"गर्भे दुर्गन्धभूयिष्ठे, जठराग्नि प्रदीपिते॥
दुःखं मयाप्तं यत्तस्मात्.-कनियः कुम्भपाकजन ॥३०॥"
॥ शिवगीता, अध्याय ८। श्लोक ३०॥

अर्थः—शिव कहते हैं, हे राम ! जीव कहता है कि, गर्भकी बड़ी दुर्गन्ध और जठराग्निकी ज्वालासे जो मुझे दुःख हुआ है, उससे कुम्भीपाक नामके नरकका भी दुःख कम है॥

इस प्रमाणसे गर्भवासमें जो अनेक दुःख जीव भोगते हैं, वही

प्रत्यक्ष यमदण्ड है। अथवा जीते ही नरकसे भरी हुई देहोंमें बैठ कर अज्ञान दशामें भङ्गीवत् पाँच विषयोंकी आशक्तिसे नरकका ही कर्म मनुष्य किया करते हैं, यही नरकवास वा यमदण्ड प्रत्यक्ष ही देख लीजिये ! ॥

इस प्रकारसे यमलोक, स्वर्गलोक, यमराजा, यमदूत, भूत, प्रेतादिगण चित्रगुप्त पटवारी, इत्यादि कोई भी नहीं हैं। पृथ्वी पर स्थित देहधारी चारोंखानियोंके जीव जो दुःख-सुख भोगते हैं, सो अपने-अपने साधनरूप कर्मोंके फल हैं। इसलिए तिनको उत्पन्न कर्त्ता ईश्वर मानना, मनुष्योंकी मिथ्या कल्पना भूल भ्रम ही ठहरती है ॥

प्रश्न (६७) यदि भूत, यमराजा, देवतादि ईश्वरकी आज्ञासे दुःख-सुख देनेवाले नहीं ठहरनेसे कर्त्ता नहीं ठहरता, तो उस विषय और भी कहा है:—

"भयादस्याग्निस्तपति,भयात्तपति सूर्यः।भयादिन्द्रश्चवायुश्च,मृत्युर्धावतिपञ्चमः"

॥ कठ उपनिषद्, अध्याय २। वल्ली ६। मन्त्र-३ ॥

अर्थः—उस परमेश्वरके भयसे अग्नि और सूर्य तपते हैं, वायु चलती है, सर्व देवताओंका राजा इन्द्र जलकी वर्षा करता है, और पाँचवीं मृत्यु भी प्राणियोंका नाश करनेको दौड़ती है ॥

"वरुणो यादसामहम् ॥" भगवद्गीता, अध्याय १०। श्लोक-२९ ॥

अर्थः—श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं कि, जल जन्तुओंका राजा अर्थात् जलका देवता वरुण मैं हूँ ! ॥

इन दो प्रमाणोंसे सर्व देवताओंका राजा इन्द्रकी आज्ञासे जलका देवता वरुण तथा वायु और अग्नि, ये तीन देवता मिल कर जलकी वर्षा करते हैं। उसीसे वनस्पति और अन्न पैदा होकर

सर्व देहधारी जीवोंका जीवन व्यवहार (शरीरोंका पालन) होता है ॥

उक्त इन्द्रादि सिद्ध देवता जिसके डरसे जलकी वर्षा करते हैं; उस परमेश्वरको मैं कर्त्ता मानता हूँ ? ॥

(६७) उत्तरः—पूर्वके सब प्रश्नोंके प्रमाणोंसे जगत् कर्त्ता मानना ठहरता नहीं। स्वर्ग और वहाँके निवासी अनेक देवता भी असिद्ध हैं; (तिनको पूर्वके प्रमाण प्रश्न ७ और प्रश्न १७ में देखिये !)। पूर्वके प्रश्न ४७ में अनेक प्रमाणों सहित जगत्की उत्पत्ति और प्रलय प्रवाहरूप अनादि माना है। परन्तु यदि जगत्की उत्पत्तिका अन्त नहीं लगा, तो तिसके प्रलयका भी अन्त नहीं मिलेगा। कभी भूकम्पसे जलके थल, और थलके जल, ऐसे फेरफार होते ही रहते हैं। अथवा ज्वालामुखी पहाड़ोंको वायुकी विशेष सहायता मिल कर अग्नि उड़ जानेसे कहीं-कहीं देशके देश जल जाते हैं। कभी समुद्र और बड़ी नदियाँ बढ़ जानेसे शहर और मनुष्य सहित अनेक घर डूब जाते हैं। ऐसा एकदेशी जगत्में विनाशरूपमें प्रलय होता है, सर्वत्र नहीं। भूकम्प और ज्वालामुखी पहाड़ोंका वर्णन आगे होगा ! इसलिए परमेश्वर, स्वर्ग, इन्द्रादि देवता मानना मनुष्योंकी कल्पना ही ठहरती है ॥

जलके वर्षा विषय कहा है:—

श्लोकः—"वायुनाऽऽनीयते मेघः, पुनस्तेनैव नीयते ॥ १७५ ॥"

॥ (प्राचीनप्रति) विवेकचूड़ामणि, अर्द्ध श्लोक–१७५ ॥

अर्थः—वायु बादलोंको इकट्ठा करती है; फिर तिनको और देशमें उड़ा भी देती है ॥

साखीः—"अनल आकर्षण बीज जल, प्रेरक वायू थाप ॥ १५८ ॥"

चौ०:—"जो जल शोषक उठै बतास। तुरितहिं तहाँ घटाको नाश ॥८५॥"

॥ टकसार साखी नं० ७४३। और समष्टिसार चौ० ८५। पञ्चग्रन्थी ॥

अर्थः—"प्रेरक और शोषक" दो प्रकारकी वायु हैं। 'प्रेरक' वायुसे सूर्यके उष्ण किरणों द्वारा समुद्र, नदियाँ आदि स्थानोंका जल भाफ रूपसे ऊपरको चढ़ जाता है। और अनेक बादल बन कर फिर बून्दरूपसे जलकी वर्षा होती है॥ 'शोषक' वायु चलनेसे बादलोंके घटाका तुरन्त नाश हो जाता है। अर्थात् बादलोंके अनेक त्रसरेणु, अणु, परमाणु जहाँ-तहाँ वातावरणमें छिन्न-भिन्न हो जाते हैं॥

सत्यार्थ प्रकाशके एकादश समुल्लासमें ❀ लिखा हैः—

"ऊपर तम्बूवत् नीलारङ्ग प्रतीत होता हुआ 'जलका चक्र' है। उसमें पृथ्वी, जल, तेज, और वायुके अनेक त्रसरेणु, अणु और परमाणु भरे हैं। ऊपर जल नहीं, तो वर्षा कहाँसे होवै ?॥"

वह "जलचक्र" प्रतिदिन सर्व स्थानोंके जलकी ऊपर चढ़ती हुई भाफसे बना हुआ अनादि कालसे सर्वत्र विस्तारसे स्थित है। कभी-कभी पहाड़ों पर उतरे हुए बादल दूरसे देख पड़ते हैं। परन्तु तिनमें प्रवेश करनेसे किसीका शरीर भीजता नहीं। क्योंकि वे जलकी झीनी रेणुकारूपसे रहते हैं; जैसे धूँएँ और कुहिरें॥

डायरेक्टर हिल साहब कृत भूगोल-खगोलकी तीन पुस्तकें हिन्दी पाठशालाओंमें पढ़ाई जाती हैं। तिसकी नवीन आवृत्तिके तीसरी पुस्तकके चौदहवें अध्यायमें और गोलतत्त्व प्रकाशिकाके षष्ठ परिच्छेदमें (पृष्ठ ७३ में) जल वृष्टि विषय कहा हैः—

"जब उत्तरीय गोलार्धमें सूर्य क्रान्तीवृत्तमें (भूमध्यरेखामें) स्थित होता है, तब समुद्र, नदियाँ, नाले, झीलें, गीली भूमि इत्यादि हर जगहोंका जल सूर्यकी किरणोंके विशेष उष्णतासे

❀ सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास ६, पृष्ठ २५७ में और सत्यार्थ प्र० ११ के पृष्ठ ३२४ में सिद्धान्तीका उत्तर लिखा है॥

तपके विशेष भाफ बन कर, अग्नि और वायुके आधारसे वह ब्रह्माण्डके "जलचक्र" में मिल जाती है। फिर प्रेरक वायुसे जैसे दहीके गाढ़ी छाँछको मथानीसे बिलोते हैं, तब मक्खनके छोटे-छोटे आकार बन जाते हैं। तैसे ही उस 'जलचक्र' मेंसे छोटे-छोटे बादल बन कर जहाँ-तहाँ वातावरणमें फैल जाते हैं। अनन्तर वे इकट्ठे होनेसे बड़े-बड़े आकारवाले बन कर चौतरफ छा जाते हैं। कभी-कभी चन्द्रकी ठण्डी वायुसे बर्फवत् जमके पहाड़के तुल्य हों, पृथ्वीके समीप तीन मीलकी दूरी तक नीचे उतर जाते हैं। परन्तु वायु, चन्द्र और सूर्यकी आकर्षण शक्तिसे वे अधर ही में ठहर रहते हैं। फिर पवनके सङ्घातसे (संयोगसे) बादलोंका परस्पर घर्षण होनेसे खूब जोरसे आवाज या गर्जना हुआ करती है। जैसे पत्थर पर लोहेके चोट द्वारा जोर-जोरसे आवाज और अनेक चिनगारियाँ निकलती हैं। तैसे ही बादलोंके घर्षणसे बिजलियाँ भी चमकने लग जाती हैं। उक्त बादल बिजलीके उष्णता द्वारा पिघलके बड़े-बड़े झरनावत् जगह-जगह जल फूटता है। फिर जिन-जिन दिशाओंकी पवन होती हैं, उन-उन दिशाओंकी देशोंमें अथवा दिशाओंमें तिरछी बून्दरूपसे पृथ्वी पर जलकी वर्षा होती है। कभी-कभी चनेके बराबर या पाँच सेरोंसे भी अधिक वजनके ओले गिरते हैं। कभी-कभी बिजली और पाला (झीने-झीने तुषाररूपसे) पृथ्वी पर गिरता है॥"

"अफ्रिका देशमें जून महीनेसे नवम्बर पर्यन्त, और अमेरिका देशमें मार्च महीनेमें ऐसी भिन्न-भिन्न समयोंपर वर्षा होती है॥

वायु छः महीने नैऋत्य दिशासे पश्चिम किनारे पर और छः महीने ईशान्य दिशासे पूर्व किनारे पर बहती रहती है; तब उन

दिशाओंमें बड़ी वर्षा होती है ॥"

॥ हिल साहब कृत पुरानी भूगोल विद्या, पर्जन्य भाग । खण्ड-२ ॥

इन प्रमाणोंसे ऊपरका "जलचक्ररूपसे जल," "सूर्यकी विशेष उष्णतारूप तेज" और "वायु" ये तीन अनादि जड़ तत्त्वोंके संयोग-सम्बन्धसे तथा चन्द्रकी शीतलताकी सहायतासे जलकी वर्षा होती है। क्योंकि जड़ तत्त्वोंमें स्वयं अनादि क्रियाएँ और शक्तियाँ हैं; (तिनको पूर्वके प्रमाण प्रश्न ६३ और प्रश्न ६४ में देखिये !) ॥

पूर्वोक्त कथनसे इन्द्र, वरुण, वायु और अग्नि, ये कल्पित सिद्ध देवता कर्त्ता परमेश्वरके डरसे जलकी वर्षा करते; ऐसा मानना मनुष्योंकी कल्पना ही सिद्ध होती है। इसको आप भी अब निश्चय कर लीजिये ! ॥

प्रश्न (६८) यदि कर्त्ता परमेश्वर और इन्द्रादि देवता मानना नहीं ठहरते, किन्तु जल, तेज और वायु, ये अनादि जड़ तत्त्वोंकी शक्तियाँ और क्रियाओंसे तथा चन्द्र, सूर्यकी सहायतासे जलकी वर्षा होती है, ऐसा मैं अब समझ चुका हूँ ! परन्तु पृथ्वीमें चक्राकार स्वयं घूमनेकी क्रिया है; ऐसा आप पूर्वके प्रश्न ६४ में वर्णन किये हैं; तिस विषय कहे हैं:—

"स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमाम् ॥"-यजुर्वेद, अध्याय १३ । मन्त्र-४ ॥

अर्थः—वह परमात्मा पृथिवी आदि सर्व भूतोंका धारण कर्त्ता है ॥

श्लोकः-"यथोष्णतार्कानलयोश्च शीतता, विधौ द्रुतिः के कठिनत्वमश्मनि ॥
मरुच्चलो भूरचला स्वभावतो, यतो विचित्रा बत वस्तुशक्तयः ५॥"

॥ सिद्धान्तशिरोमणि, गोलाध्यायः, भुवनकोश । श्लोक-५ ॥

अर्थः—ज्योतिषी भास्कराचार्य कहते हैं कि, सूर्य और अग्निकी उष्णता, चन्द्रमाकी शीतलता, जलकी द्रवता, पत्थरकी कठिनता,

वायुकी चलनगति और पृथिवीका अचल होना, सो स्वाभाविक गुण है। अहो ! कैसी विचित्र प्रकारकी शक्ति है ? ॥

इस प्रमाणसे पृथ्वी अचल है। अर्थात् कभी घूमती ही नहीं। पुराण पढ़नेवाले पण्डित लोग पृथ्वीको स्थिर तथा चकीके पाटवत् चपटी आकारवाली मानते हैं। क्योंकि वह प्रत्यक्ष चपटी देखनेमें भी आती है। हिन्दू लोग शेषनागके माथे पर और मुसलमान लोग बैलके आधार पर और कहीं कूर्म पर पृथ्वी स्थिर है, ऐसा माने हैं॥

इन प्रमाणोंसे पृथ्वी परमात्माके आधारसे स्थिर है। वह कभी घूमती ही नहीं, ऐसा मैं मानता हूँ ? ॥

(६८) उत्तरः—सुनिये ! पृथ्वीके आकार विषय कहा हैः—

'सर्वतः पर्वतारामग्रामचैत्यचयैश्चितः।कदम्बकुसुमग्रन्थिः,केसरप्रकरैरिव॥३॥'

॥ सिद्धान्तशिरोमणि, गोलाध्यायः, भुवनकोश । श्लोक—३ ॥

अर्थः—चारों ओरसे पर्वत, वन, गाँव, मन्दिर, इत्यादिकोंसे घिरा हुआ यह भूगोल, केसर सहित फैलाव-सा कदम्बके फूलवत् दक्षिण—उत्तरकी ओर जरा-सा चपटा ऐसा 'गोलाकार' है ॥

इस प्रमाणसे यह पृथ्वी कदम्बके फूलवत् या नारङ्गीके फलवत् दक्षिण—उत्तर तरफ जरा-सी चपटी रहकर 'गोलाकार' है॥

सुनिये ! पृथ्वीके गोलाकारमें प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैंः—

१. प्रथमः—पृथ्वीके दक्षिण किनारेपर पहुँचनेसे ध्रुव तारा दीखेगा ही नहीं। परन्तु तिसके उत्तरके किनारे पहुँचने पर वह तारा माथे पर दिखाई देगा। २. दूसराः—सबोंकी निगाह गोल घेरेमें घिर जाती है। ३. तीसराः—सीधी भूमि पर ताड़वत् ऊँचे-ऊँचे वृक्ष सम्पूर्ण नहीं दीखते हैं। ४. चौथाः—समुद्रमें

जहाजें, अगिनबोटें इत्यादिकोंके दूरसे प्रथम ऊपरके भाग दीखते हैं, फिर क्रमसे नीचे-नीचेके भाग दिखाई देकर अन्तमें वै सम्पूर्ण देख पड़ते हैं ।। अथवा गोलतत्त्व प्रकाशिकाके द्वितीय परिच्छेदमें लिखा है:—"यदि कोई मनुष्य पृथ्वीकी परिक्रमा करनेको निकलै, तो बिना मुख मोड़ै उसके सर्व किनारे घूमकर अपने पूर्वके स्थान पर लौट आता है; जैसी देवालयकी मूर्त्तिको प्रदक्षिणा ।।" तैसे ही समझ लीजिये ! ।।

इन प्रमाणोंसे पृथ्वीका आकार गोल है । पृथ्वी चपटी आकारवाली प्रतीत होनेका कारण ऐसा है कि, सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थमें भास्कराचार्य ज्योतिषी लिखते हैं:—"किसी गोलाकार पदार्थका सौ भागोंमेंसे एक भाग चपटा ही दीखता है ❀ ।।" "अथवा एक गोलाकार बड़ाचक्र कागद पर लिख कर एक सरल रेखा उसे स्पर्श करै, ऐसी बनानेसे वहाँका भाग चपटे आकारका ही दिखाई देगा ।।" पृथ्वीके आधार विषय कहा है:—

"मूर्त्तो धर्त्ता चेद्धरित्र्यास्ततोऽन्यस्तस्याप्यन्योऽस्यैवमत्रानवस्था ।।
अन्त्ये कल्प्या चेत्स्वशक्तिः किमाद्ये, किं नो भूमेः साष्टमूर्तेश्च मूर्त्तिः ।।४।।"
।। सिद्धान्तशिरोमणि, गोलाध्यायः, भुवनकोश । श्लोक-४ ।।

अर्थः—भास्कराचार्य ज्योतिषी कहते हैं कि, यदि इस पृथ्वीका धारण कर्त्ता माने, तो शेष, बैल, कूर्मादि साकार मूर्तिका

❀ "समो यतः स्यात्परिधेः शतांशः पृथ्वी च पृथ्वी नितरां तनीयान् ।।
नरश्च तत्पृष्ठगतस्य कृत्स्ना समेव तस्य प्रतिभात्यतः सा ।। १३ ।।"
।। सिद्धान्तशिरोमणेः—गोलाध्यायः, भुवनकोश, श्लोक-१३ ।।

—परिधिका शतांश (१०० वाँ हिस्सा) जैसे तुल्यरूपसे बोध होता है, पृथिवी, मनुष्यकी अपेक्षा अत्यन्त बड़ी है—इसलिए पृथिवीस्थ व्यक्तिके निकट भूमि समतल जान पड़ती है ।। १३ ।।

कोई दूसरा धारण कर्त्ता माना जायगा। इस प्रकारसे दूसरेको तीसरा, तीसरेको चौथा, ऐसी असंख्य धारककी कल्पना करनी पड़ेगी, और अन्तमें एक स्वयं शक्तिमान् धारक मानना होगा। इसलिए प्रथम पृथ्वीमें ही स्वयं "धारणा-शक्ति" है; और वातावरणमें निराधार वह स्थित है; ऐसा कहनेमें क्या दोष है ? क्योंकि पाँच तत्त्व, चन्द्र, सूर्य और तारागण, इन अष्ट वसुओंमें क्या पृथ्वी भी एक वसु (मूर्त्ति) नहीं है ? ॥

इस प्रमाणसे वातावरणमें स्थित पृथ्वी निराधार अर्थात् चन्द्र—सूर्यादिकोंके अनादि "गुरुत्त्वाकर्षण-शक्ति" से और अपनी "धारणाकर्षण-शक्ति" से अधरमें ठहरी है। तिसको शेषादि अन्य आधार मानना सम्भवता ही नहीं। जड़ तत्त्वादिकोंमें स्वयं आकर्षण-शक्ति है; (तिसको पूर्वके प्रमाण प्रश्न ६४ में देखिये !) ॥

पृथ्वीके घूमने विषय वेदमें कहा है:—

"आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः ॥ पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥"

॥ यजुर्वेद अध्याय ३ । मन्त्र–६ ॥

अर्थः—यह भूगोल पिण्ड वायुका घनीभूत वेष्टन और समुद्रादि जल सहित सूर्यके चारों ओर घूमा करती है ॥

हिलसाहब कृत नवीन भूगोलकी तीसरी पुस्तकके ❀ नवम अध्यायमें कहा है:—"पृथिवीके पास वायु विशेष घनीभूत है, और तिसका विस्तार ऊपर ४५ मील तक फैला है ॥"

"नौस्थो विलोमगमनादचलं यथा न, चामन्यते चलति नैवमिला भ्रमेण ॥
लङ्का समापरगतिप्रचलद्भचक्रमाभाति सुस्थिरमपीति वदन्ति केचित्॥१॥"

॥ गोलतत्त्वप्रकाशिका, भूभ्रमणनिरूपणम्, परिच्छेद ४ । श्लोक–१ ॥

❀ भूगोलकी पुस्तक ३, पृष्ठ ३८ के (७) में और पृष्ठ ४० के ४–में लिखा है ॥

अर्थः—भास्कराचार्यके पूर्व प्रख्यात हुए ज्योतिषी श्रीपति आचार्य अपने ग्रन्थमें लिखते हैं कि, कोई-कोई आचार्य ऐसा कहते हैं:—जैसे नौका पर चढ़े हुए मनुष्य वृक्षादि अचल वस्तुओंको विपरीत दिशाकी ओर जाते हुए मानते हैं। वैसे ही पृथिवीके घूमनेसे स्थिर भी तारागणका चक्र पृथिवीका मध्यभाग जो लङ्का देश, तिससे पश्चिमकी ओर जाता-सा जान पड़ता है ॥

इन प्रमाणोंसे पृथ्वी पश्चिम दिशासे पूर्वकी ओर समुद्रादि जल सहित सूर्यके चारों ओर घूमा करती है ॥

"पृथिवीसे जल तिगुना अधिक है;" ऐसा हिलसाहब कृत भूगोलकी तीसरी पुस्तकमें लिखा ❀ है ॥

गोलतत्त्व प्रकाशिकाके चतुर्थ परिच्छेद(पृष्ठ ४०-५०)में लिखाहै:— "गाड़ी की खड़ी पहियावत् (चाकवत्) अपनी कक्षामें वा परिधि-में अर्थात् चलनगतिके क्रान्तीवृत्त चक्रमें सदैव पश्चिमसे पूर्व तरफ पृथ्वी चक्राकार घूमा करती है। और एक वर्षमें सूर्यके चौ तरफ घूम कर अपने पूर्वके स्थल पर आ जाती है। ऐसा इंगलिश ज्योतिषी कोपर्निकस, गैलीलियो तथा सर ऐजिक न्यूटन साहबोंने शोध लगाके सिद्ध किया है ॥"

इस पर ज्योतिषी लल्ल आचार्य शङ्का करते हैं:—

श्लोकः—"यदि च भ्रमति क्षमा तदा, स्वकुलायं कथमाप्नुयुः खगाः ॥
इषवोऽभिनभः समुज्झिता, निपतन्तः स्युरपाम्पतेर्दिशि ॥१॥
पूर्वा भिमुखेभ्रमेभुवो, वरुणाशाभिमुखो व्रजेद्घनः ॥
अथ मन्दगमात् तथा भवेत्, कथमेके न दिवा परिभ्रमः ॥२॥"
॥ गोलतत्त्वप्रकाशिका, भूभ्रमणनिरूपणम्, परिच्छेद ४। श्लोक—१-२ ॥

❀ भूगोलकी पुस्तक ३, पृष्ठ २७, अध्याय ७ के (१) में लिखा है ॥

अर्थः—यदि पृथिवी घूमती है, तो चिड़ियाएँ अपने-अपने घोंसलोंको कैसे पातीं ? फिर आकाशकी ओर फेंके हुए बाण, जहाँसे फेंके गये पश्चिम गिरने चाहिये । पृथिवीका घूमना पूर्व ओर है, तो बद्दल पश्चिमकी ओर चलने चाहिये । यदि पृथिवीका गमन मन्द मानोगे तो साठ दण्डका अहोरात्र कैसे ? ॥

इसी प्रकार श्रीपति आचार्य भी शङ्का किये हैं:—

"यद्येवमम्बरचरा विहगाः स्वनीडमासादयन्ति न खलुभ्रमणे धरित्र्याः ॥
किंचाम्बुदा अपि न भूरिपयोमुचः स्युर्देशस्य पूर्वगमनेन चिराय हन्त ॥ १ ॥
भूगोलवेगजनितेन समीरणेन, केत्वादयोऽप्यपर दिग्गतयः सदा स्युः ॥
प्रासादभूधरशिरांस्यपि सम्पतन्ति,तस्माद्भ्रमत्युडुगणाम्त्वचला चलैव ॥ २॥"
॥ गोलतत्त्वप्रकाशिका, भूभ्रमणनिरूपणम्, परिच्छेद ४ । श्लोक-१-२ ॥

अर्थः—पृथिवीका घूमना माननेमें आकाशमें उड़ती हुई चिड़ियाँओंको अपने-अपने घोंसले नहीं मिलने चाहिये ? और जब कि देश पूर्व ओरको घूमता है, तब देर तक एक स्थानमें वृष्टि न होनी चाहिये ? फिर भूगोलके वेगसे उत्पन्न जो वायु, तिससे पताकादिको सदा पश्चिम ही की ओर उड़ने चाहिये ? और राजभवन तथा पहाड़ोंके शिखर गिरने चाहिये ? [ये बातें जो नहीं होतीं] तिससे जाना जाता है कि, तारागण घूमते हैं; पृथिवी अचल है ॥

ये शङ्काएँ प्राचीन ज्योतिषियों की हैं । इनका समाधान इस बातसे हो जाता है कि, यह पृथिवी अपने ४५ मील वेष्टनरूप वायु मण्डल सहित और समुद्रादि जल सहित सदैव घूमती है ॥ यदि पृथिवी घूमनेसे मनुष्य, पशु आदि क्यों नहीं गिर पड़ते ? ऐसी शङ्का होवै, तो पृथिवीमें धारणाकर्षण शक्ति है, ऐसा पूर्वमें कहा है । जलसे भरे हुए लोटेको रस्सीका फाँसा लगाय, वेगसे घुमाकर

देख लीजिये ! तो वह जल बिल्कुल गिरेगा ही नहीं। तैसे ही समुद्रादि जल, पृथिवीके सदोदित घूमनेमें ठहरा रहता है। अथवा जैसी चींटियाँ, मक्खी, मकरी, इत्यादि छोटे-छोटे देहधारी जीव घरोंके ऊपरकी जगह और कड़ियोंपर बिना घबराहट चलते ही रहते हैं, परन्तु नहीं गिरते हैं। तैसे ही इस बड़ी पृथिवीके सामने हम मनुष्य तथा पशु आदि देहधारी सब जीव चींटियाँवत् बहुत ही छोटे हैं; इसीसे बिना घबराहट सब देह व्यवहार बराबर करते जाते हैं। पृथिवीकी आकर्षण शक्तिसे ही डारसे टूटे हुए फल नीचे गिर पड़ते हैं ॥

इन प्रमाणोंसे यह पृथिवी कल्पित कर्त्ता परमात्माके आधारसे स्थिर नहीं है। परन्तु वायुका घनीभूत वेष्टन और समुद्रादि जल सहित अपनी "धारणाकर्षण-शक्ति" और सूर्य-चन्द्रादिकोंकी "गुरुत्त्वाकर्षण-शक्ति" से वायु मण्डलमें निराधार वह सदोदित घूमा करती है, ऐसा, आप अब निश्चय कीजिये ! ॥

प्रश्न (६६) पृथिवी कर्त्ताके आधारसे स्थिर नहीं है; परन्तु अपनी "धारणाकर्षण-शक्ति" से और सूर्यादिकोंकी "गुरुत्त्वाकर्षण-शक्ति" से सदैव घूमा करती है, यह बोध मुझको अब हुआ है ॥ परन्तु और भी कहा है:—

"अग्निर्वायुरादित्यश्चन्द्रमा नक्षत्राणि ॥"

॥ तैत्तिरीय उपनिषद्, मध्ये शिक्षा (१) उपनिषद् ॥ अनुवाक-७ ॥

अर्थः—अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, ये देवता पञ्चक हैं ॥ इस प्रमाणसे सूर्य-चन्द्रादि ग्रह, (२७) सत्ताईस नक्षत्र, सप्त ऋषि तारे, तारागण इत्यादि वातावरणमें स्थित देवताओंको चलन शक्ति देकर दिन-रात्रि का प्रकट करने वाला कोई कर्त्ता

है, ऐसा मैं मानता हूँ ? ॥

(६६) उत्तरः—जैसी पृथिवी वायुके घनाकार आवरण चक्रमें अपनी "धारणाकर्षण-शक्ति" से और सूर्य, चन्द्रादि ग्रहोंकी "आकर्षण-शक्ति" से सदैव घूमा करती है। तैसे ही सूर्य, चन्द्रादि ग्रह, (२७) सत्ताईस नक्षत्र, (७) सात ऋषि तारे, और अन्य तारागण भी अपनी-अपनी आकर्षण शक्तिसे ही वायुके आवरण चक्रमें अधरमें सदोदित घूमते ही रहते हैं। पूर्वोक्त सब प्रश्नोंके प्रमाणोंसे दूसरा कर्त्ता सिद्ध नहीं होता है, और न तिनको चलन शक्ति देता है ॥ तहाँ कहा है:—

श्लोकः—"भ्रमद्भचक्रचक्रान्तर्गगने गगनेचरैः ॥ १ ॥"

॥ सिद्धान्तशिरोमणि, गोलाध्यायः, गोलस्वरूप प्रश्न, अर्द्ध श्लोक-१ ॥

अर्थः—ज्योतिषी भास्कराचार्य कहते हैं कि, आकाशमें भ्रमण करने वाले ग्रह अर्थात् क्रमसे चन्द्र, शुक्र, बुद्ध, सूर्य, मङ्गल, बृहस्पति, शनि, इन ग्रहोंसे घिरी हुई यह अचल पृथिवी, नक्षत्रोंके पुञ्ज सहित, अर्थात् तिनके गमन मार्गमें अधर आकाशमें स्थित है ॥

इस प्रमाणसे अचल पृथिवीको चन्द्र, सूर्यादि ग्रह, नक्षत्र, तारागण ये परिक्रमा दे रहे हैं ॥

"यही मत मिश्र देशका ज्योतिषी तालमी मानता था। डेनमार्क देशमें तैकोब्राह नामक एक प्रसिद्ध ज्योतिषी हुआ; वह मानता था कि, चन्द्र और सूर्य पृथिवीको परिक्रमा देते हैं, और अन्य ग्रह सूर्य को ॥"

॥ हिल साहब कृत पुरानी भूगोल विद्या, खण्ड २। सूर्यमाला वर्णन ॥

पौराणिक लोग पृथिवीको चपटी आकार वाली मान कर, तिसके मध्य भागमें दक्षिणोत्तर फैला हुआ लक्ष योजन ऊँचा सोनेका

सुमेरु पहाड़ मानते हैं। जब पृथिवीकी परिक्रमा करते–करते सूर्य सायंकालमें सुमेरुकी ओट हो जाता है, तब पृथिवीके अर्द्ध भागमें रात्रि, और दूसरे अर्द्ध भागमें दिन रहता है; ऐसा वे कहते हैं ॥

इस प्रकार माननेसे गोलाकार पृथ्वीकी परिक्रमा देनेमें सूर्यकी सदोदित एक ही समान गति रहनेसे दिन–रात्रियोंमें घट–बढ़, उत्तरायण–दक्षिणायन, ये कभी नहीं होंगे? ॥

तहाँ ज्योतिषी भास्कराचार्य भी शङ्का करते हैं:—

श्लोकः–"यदि निशाजनकः कनकाचलः, किमु तदन्तरगः स न दृश्यते॥१२॥"
॥ सिद्धान्तशिरोमणि, गोलाध्यायः, भुवनकोश, अर्द्ध श्लोक–१२ ॥

अर्थः—यदि सोनेका सुमेरु पहाड़ ही दिन–रात्रि होनेमें कारण है, तो सूर्य तिसके भीतर जाने बाद इतना बड़ा ऊँचा पहाड़ ही क्यों नहीं दीखता है? तथा सूर्यका उदय उत्तरकी ओरसे क्यों नहीं होता है॥

फिर भास्कराचार्य अपनी सिद्धान्त कहे हैं:—

श्लोकः–"लङ्का कुमध्ये यमकोटिरस्याः, प्राक् पश्चिमे रोमकपत्तनं च ॥
अधस्ततः सिद्धपुरं सुमेरुः, सौम्येऽथ याम्ये वड़वानलश्च ॥१७॥"
"कुवृत्तपादान्तरितानि तानि, स्थानानि षड् गोलविदो वदन्ति ॥१८॥"
॥ सिद्धान्तशिरोमणि, गोलाध्यायः, भुवनकोश, श्लोक–१७। १८ ॥

अर्थः—पृथ्वीके मध्य भागमें लङ्का है। उसके पूर्व यमकोटि–स्थान। पश्चिममें रोमक शहर। लङ्काके नीचे सिद्धपुर। उत्तरमें सुमेरु स्थान। और दक्षिणमें बड़वानल स्थान है ॥ १७ ॥ उक्त छः स्थान मुख्य हैं, ऐसे गोलतत्त्वज्ञानी कहते हैं ॥ १८ ॥

इस प्रमाणसे पृथ्वीके उत्तरमें सुमेरु स्थान है, कुछ लक्ष योजन ऊँचा पहाड़ नहीं है। फिर उसे सोनेका पहाड़ क्यों कहा है? ऐसा कहोगे, तो वह देश पहाड़ी रहनेसे वहाँ सोनेकी खानियाँ बहुत–

सी हैं, इससे कहा है; जैसे ब्राह्मणोंकी विशेष बस्तीके कारण ब्राह्मण गाँव कहते हैं ॥

सिद्धान्तशिरोमणिके ग्रह गणिताध्यायान्तर्गत प्रत्यब्द शुद्धि प्रकरणके श्लोक २६ और २७ में कहा ❀ है:—"हरदिन अपनी कक्षामें इतने योजन चल कर चलनेका घेरा (परिधि) पूरा करना, सो सर्व ग्रहोंकी "योजनात्मिका" गति है। और प्रतिदिन अपनी कक्षाका कुछ भाग पूरा करना, वह "कलात्मिका" गति है। "योजनात्मिका" गति सबोंकी समान है। परन्तु "कलात्मिका" गति सबोंके कक्षावृत्त छोटे–बड़े रहनेसे कम–अधिक सबकी भिन्न-भिन्न है।"

गोलतत्त्वप्रकाशिकाके चतुर्थ परिच्छेदमें † कहा है:—

"भचक्र = गति–चक्र पूरा करनेको २६ दिन चन्द्रको लगते हैं; परन्तु शनिको अपना "गतिचक्र" सम्पूर्ण फिरनेको लगभग ३० वर्ष लग जाते हैं।" और पुराने मतमें दोष भी दिखाया है, वह ऐसा है:—'बुद्ध और शुक्र ग्रहोंके "कक्षावृत्त" बहुत ही छोटे

❀ श्लोकः—"समागतिस्तु योजनैर्नभः सदां सदा भवेत्। कलादिकल्पना–वशान्मृदुद्रुता च सा स्मृता ॥ २६ ॥ कक्षाः सर्वा अपि दिविषदां चक्रलिताङ्कि–तास्ताः वृत्ते लघ्व्यो लघुनि महति स्युर्महत्यश्च लिप्ताः ॥ तस्मादेते शशिजभृगुजादित्य–भौमेज्यमन्दा मन्दाक्रान्ता इव शशधराद्भान्ति यान्तः क्रमेण ॥ २७ ॥"

अर्थः—ग्रहोंकी योजनात्मिका गति सबकी सदा समान होती है। वही गति कला अंश आदिकी कल्पनासे मन्द और शीघ्र कही जाती है ॥ २६ ॥ ग्रहोंकी सब कक्षा भचक्रकी कलासे अङ्कित अर्थात् चिह्नित हैं। वे कलाएँ छोटे वृत्तमें छोटी–छोटी और बड़े वृत्तमें बड़ी–बड़ी हैं। इसीसे ये बुध, शुक्र, सूर्य, मङ्गल, गुरु, और शनि, चन्द्रकी अपेक्षा क्रमसे मन्दगामीसे प्रतीत होते हैं ॥ २७ ॥

॥ गोलतत्त्वप्रकाशिका, भूभ्रमणनिरूपणम्, परिच्छेद–४, पृष्ठ ४६ ॥

† गोलतत्त्वप्रकाशिका, भूभ्रमणनिरूपणम् परिच्छेद–४। पृष्ठ ४६–४७ में लिखा है।

हैं। इसलिए वै सूर्यकी अपेक्षा अपनी—अपनी कक्षाकी गति थोड़े दिनोंमें ही पूरी कर लेवेंगे। इससे किसी दिनमें तिनके और सूर्यके छः राशियोंके अन्तर हो जाने चाहिये; जैसा कि, और ग्रहोंसे देखा जाता है। जब छः राशियोंकी अन्तर पड़ेगा, तब बुद्ध और शुक्रके उदय तथा अस्तमें भी सूर्यके अस्तकालसे बराबर (१२) बारह घण्टोंके अन्तर पड़ने चाहिये ?' अर्थात् जब सूर्यका पश्चिम दिशामें अस्त, तब तिनका पूर्वके क्षितिज पर (पृथिवीसे आकाश मिला हुआ को क्षितिज कहते हैं) दिखाई पड़े, वहाँ पर उदय होना चाहिये ? जैसे हर पूनमको चन्द्रका उदय। परन्तु छः राशियोंका अन्तर तो दूर रहा, उन ग्रहोंसे सूर्यका कभी तीन राशियोंका पूरा अन्तर भी देखनेमें नहीं आता है। ऐसा नहीं होता है कि, वै तारे आधी रात तक या अन्तरिक्षके मध्य दिखाई पड़ें ॥"

देखिये ! चन्द्र पृथिवीके समीप रहके भी २९ दिनोंमें उसकी परिक्रमा पूरी कर लेता है। ऐसा अभी कह आए हैं। और तिसके बीच 'शुक्र' और 'बुद्ध' ये दो ग्रह छोड़के फिर सूर्यका घेरा माना है। इसलिए सूर्य पृथिवीसे बहुत ही दूर है। वह उसके चौ तरफ घूमेगा ? तो कितने ही महीनोंतक दिन—रात्रि नहीं होंगे ? इसी सबब पृथिवीके नहीं घूमनेका प्राचीन (पूर्वके) ज्योतिषियोंका मत भ्रमरूप है। यही बात बुद्धिमानोंके लिये पृथिवीको सूर्यके चौ तरफ घूमनेमें दृढ़ प्रमाण है॥ वेदमें भी कहा है:—

"आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो, निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ॥
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो, याति भुवनानि पश्यन् ॥ ४३ ॥"
॥ यजुर्वेद, अध्याय ३३ । मन्त्र–४३ ॥

अर्थः—सूर्य वर्षादिकोंका कर्त्ता तेजोमय प्रकाशके साथ,

आकर्षण गुण सहित, वर्त्तमान, अपनी परिधिमें घूमता रहता है, किन्तु किसीके चारों ओर नहीं ॥

इन प्रमाणों और कारणोंसे हालका मत, जो यूरोप, अमेरिका, और बहुतसे विद्यमान देशोंमें चलता है, वही मानना चाहिये। तिसका वर्णन हिल साहब कृत पुरानी भूगोल विद्याके द्वितीय खण्डमें सूर्यमालाके भागमें और गोलतत्त्वप्रकाशिकाके चतुर्थ परिच्छेदमें कहा ❀ हैः—"सबके मध्य एक ही स्थान पर भौंरावत् अपनी कील पर ही सूर्य घूमता है। इससे सबके मध्य 'सूर्य' तिसके समीप क्रमसे 'बुद्ध' और 'शुक्र' तथा हमारी 'पृथिवी' जिसकी परिक्रमा 'चन्द्रमा' देता है। पृथ्वीके परे क्रमसे "मङ्गल, बृहस्पति, और शनि" ये ग्रह हैं। और सबके परे तारागणके घेरे ऊँच-नीच भेदसे हैं। पृथ्वी, ग्रह, तारे आदि सर्व मुरगेके अण्डाकारवत् लम्ब गोलाईके घेरेमें सूर्यको परिक्रमा देते हैं। ऐसी स्थिति माननेसे पूर्वोक्त दोष नहीं आता है। क्योंकि बुद्ध और शुक्रकी कक्षा (घेरा) अपनी पृथ्वीके भीतर ही पड़ता है। इस हेतु जब बुद्ध और शुक्र घूमते-घूमते सूर्यके "निकृष्टयोग" अर्थात् सूर्य और पृथ्वीके बीचमें आ जाते हैं, तब वै उदय होंगे, और जब वै पूर्व दिशाके "निकृष्टयोग" में होंगे, तब सूर्यके उदय होनेके प्रथम ही पूर्वकी ओर दिखलाई देवेंगे, और जब वै पश्चिम दिशाके निकृष्टयोगमें होंगे, तब सूर्यके अस्त समयके पीछे दिखलाई पड़के दो-तीन घण्टे बाद छिप जावेंगे ॥"

"शुक्रका तारा पृथ्वीके समीप रहनेसे बहुत समयपर सूर्योदयके प्रथम पूर्वमें और सूर्यास्तके पीछे पश्चिममें दिखाई देता है। परन्तु

❀ गोलतत्त्वप्रकाशिका, चतुर्थ परिच्छेद, पृष्ठ ४७-४८ में लिखा है।

बुद्धका तारा सूर्यके समीप रहनेसे तिसका दर्शन दुर्लभ है। ईसवी सन् १८६८ में सूर्यके अस्त समय उसका दर्शन हुआ था ॥" ऐसा हिल साहब कृत पुरानी भूगोल विद्याके द्वितीय खण्डमें लिखा है ॥

इस प्रकारसे सब ग्रह, तारागण और पृथ्वी भी अपनी-अपनी आकर्षण-शक्तियोंसे घूमते-घूमते सूर्यकी परिक्रमा कर रहे हैं। प्रतिदिन कोई रात्रिमें देखा करें, तो ग्रह, तारागण, नक्षत्रादि भिन्न-भिन्न दिशाओंसे सर्व घूमते हैं, ऐसा निश्चय हो जायेगा ॥

हिल साहब कृत पुरानी भूगोल विद्यामें द्वितीय खण्डके सूर्यमाला प्रकरणमें कहा है:— "यह मत पहिले ईसवी सन्के पाँचवें शतकमें ग्रीस देशमें एक तत्त्वज्ञानी हुआ, उसने कथन किया था, और हिन्दुस्तानमें आर्यभट्ट नामके एक ज्योतिषी हो गये, आप यह मत निकाले थे; परन्तु दोनोंका मत उसी समय किसीने नहीं माना ॥"

गाड़ीकी खड़ी पहियावत् (चाकवत्) दिन-रात्रिमें एक बार सम्पूर्ण पृथिवी घूम जाती है। इसलिए जहाँ-जहाँ सूर्यका प्रकाश पहुँचता है, तहाँ-तहाँ दिन और दूसरे नीचेके अर्द्ध भागमें रात्रि रहती है। यहाँ हिन्दुस्तानमें दिन, तो पातालमें (नीचेके अमेरिका देशमें) रात्रि रहती है। तार द्वारा खबर मँगानेसे यह खुलासा हो सकता है। ध्रुव तारा नहीं घूमता, ऐसा कहते हैं। परन्तु वह भी थोड़ेसे गोल घेरेमें घूमता है, सूर्यके चौतरफ नहीं। पत्थरमें छिद्र करके वह तारा दीख जाय, ऐसा कहीं दिवालमें वह पक्का बैठाया जावै, तो सौ-पचास वर्षोंमें फिर उसी छिद्रसे वह दिखेगा ही नहीं, चाहे कोई अन्दाज लेवै। सर्व ग्रहादिकोंकी सर्वोपर आकर्षण-शक्ति रहनेसे चार तत्त्वादि सर्व जड़ पदार्थ क्रियावान् हैं ॥

हिल साहब कृत नवीन भूगोल विद्याकी पहिली किताब और

पुरानी भूगोल विद्याकी तीसरी पुस्तकमें लिखा है:—"सात तारे, (सप्त ऋषि मण्डल) हरदिन (२४) चौबीस घण्टोंमें एक बार ध्रुवतारेके चौतरफ घूम आते हैं। पूछल तारे अनेक हैं, वे प्रवाही द्रव्यके या भाफसे बने हुए सूर्यकी दीर्घ गोलाकार कक्षाओंमें परिक्रमा देते हैं। पतनशील तारे (उल्का) भी अनेक हैं ॥"

जैसे दिये, बिजली आदि प्रकाशक पदार्थ अग्निरूप रहते हैं। तैसे ही सूर्य, (२७) सत्ताईस नक्षत्र, सप्त ऋषि, ध्रुव तारा और अन्य तारागण विशेषरूपसे अग्नि स्वरूप हैं। परन्तु चन्द्र स्वयं अप्रकाशित और सूर्यके प्रकाशसे प्रकाशमान् है; इसका वर्णन आगे होगा। इसलिए ये सर्व चैतन्य देवता नहीं हैं, तत्त्व-स्वरूप वे सब जड़ हैं ॥

इन पूर्वोक्त प्रमाणोंसे जड़ तत्त्व-स्वरूप सूर्य, चन्द्रादि ग्रह, नक्षत्र, तारागण, पृथिवी आदि अपनी–अपनी परस्पर आकर्षण और "धारणा-शक्ति" से वायुके वातावरण चक्रमें सदोदित घूमा करते हैं। पृथिवी एक बार प्रतिदिन उलट–पलट घूम जानेसे तथा सूर्यका प्रकाश तिस पर पहुँचने या नहीं पहुँचनेसे दिन और रात्रि सदोदित हुआ करती हैं। तिनके क्रियाओंको प्रकटाने-वाला अन्य कर्त्ता मानना बड़ी भूल है। ऐसा आप अब विचार करके जान लीजिये ! ॥

प्रश्न (७०) यदि ग्रह, नक्षत्र, तारागण, पृथिवी आदिकोंमें क्रिया प्रकटानेवाला कर्त्ता नहीं ठहरता है, तो दिन–रात्रियोंमें घट-बढ़ या कभी दिन–रात्रि बराबर होने या उत्तरायण, दक्षिणायन, तीन समय, छः ऋतु, शीत, उष्ण, और समशीतोष्ण देश रहने, ऐसी अनेक क्रियाओंकी व्यवस्था बराबर रखनेवाले कर्त्ताकी

आवश्यकता है, ऐसा मैं मानता हूँ ? ॥

(७०) उत्तरः—पूर्वोक्त सब प्रकारकी क्रियाओंकी व्यवस्था बराबर रखनेवाला दूसरा कर्त्ता मानना नहीं ठहरता है। क्योंकि प्रश्न उपनिषद्के प्रथम प्रश्नमें कहा हैः—"दिशा, रात्रि, दिन, मास, वर्ष, उत्तरायण, दक्षिणायण, छः ऋतु, इत्यादि सर्व व्यवस्थाएँ सूर्यसे सिद्ध होती हैं ॥"

गोलतत्त्वप्रकाशिकाके अहोरात्रनिरूपणम्के पञ्चम परिच्छेद-(पृष्ठ ५४–६६) में कहा हैः—"पृथ्वीकी मध्य = बीचकी रेखाको "विषुववृत्त" कहते हैं, तहाँ पृथ्वीका मध्यदेश विशेष उष्ण रहता है। पृथ्वीके गोलार्द्धके नब्बे हिस्सोंको संस्कृतमें "अक्षांश" कहते हैं। जो दक्षिणसे उत्तर तक रेखाएँ नकशाओंमें लिखी जाती हैं। पृथ्वीका मध्य "निरक्ष स्थान" (अक्षांश रहित स्थान) जो लङ्का देश है, तहाँ रात्रि और दिन हमेशा बराबर रहते हैं। परन्तु पृथ्वी गोलाकार रह कर सदोदित घूमनेसे और (दूसरे) देशोंके दिन–रात्रियोंमें घट–बढ़ हो जाती हैं ॥"

हिल साहब कृत नवीन भूगोल की तीसरी पुस्तक के २१वें अध्यायमें (पृष्ठ १२२ से १२५ तक) लिखा हैः—"तारीख २१ मार्च अर्थात् चैत महीनेमें और तारीख २३ सितम्बर अर्थात् कुँवार महीनेके प्रारम्भ समय, ये दो दिन एक वर्षमें बराबर रहते हैं। उस दिन सूर्यकी किरणें उत्तर और दक्षिण ध्रुव तक बराबर पहुँचती हैं। पृथ्वीके घूमनेका प्रथम दिन तारीख २२ मार्चसे प्रारम्भ होता है। मकर राशिके सूर्यसे अर्थात् आधे माघसे आधे श्रावण तक छः महीने उत्तरायण रहता है। और कर्क राशिके सूर्यसे अर्थात् आधे श्रावणसे आधे माघ तक छः महीने दक्षिणायन रहता है ॥"

गोलतत्त्वप्रकाशिकाके ऋतुपरिवर्त्तननिरूपणम्के षष्ठ परिच्छेदमें❀ लिखा है:—"यह भूगोल पिण्ड पृथ्वी निज धुरीसे साढ़े छियासठ अंशके कोणसे 'क्रान्तिवृत्त' अर्थात् जिस कक्षा परसे पृथ्वी सूर्यको एक वर्षमें परिक्रमा देती है, उस पर स्थित है। और "निरक्ष स्थान" लङ्काके निज धूरीसे लम्बरूप है। इसीसे भूगोलरूप पृथ्वीका साढ़े तेईस अंशका कोण बनता है। इसी सबब भूमि गोल क्रान्तिवृत्त पर तिरछी स्थित है। यदि लम्बरूप नत्थमें मोती पोयेवत् वह स्थित रहती, तो एक भी ऋतु नहीं होती। पृथ्वी घूमते—घूमते जब उत्तरीय गोलार्द्ध पर आ जाती है, तब दक्षिणीय गोलार्द्धकी अपेक्षासे सूर्यके अधिक समीप हो जाती है। इसलिए उत्तरीय गोलार्द्धमें विशेष उष्णता और दक्षिणीय गोलार्द्धमें विशेष ठण्ड बढ़ जाती है। उत्तरीय गोलार्द्धके बरसातमें दक्षणीय गोलार्द्धमें बर्फ गिरता है। जब दक्षिणीय गोलार्द्ध पर पृथ्वी सूर्यके समीप हो जाती, तब वहाँ पर विशेष उष्णता और उत्तरीय गोलार्द्धमें विशेष ठण्ड बढ़ जाती है। दक्षिणीय गोलार्द्धके बरसातमें उत्तरीय गोलार्द्धमें पाला (झीना—झीना बर्फ) गिरता है, जिससे वृक्षोंके पत्रादि सूख जाते हैं॥"

इस प्रमाणसे दो ऋतु, शीत और उष्ण होने चाहिए। परन्तु अतिशीत और अतिउष्णताके बीचका समय समशीतोष्ण होनेसे दो ऋतु और मानी गई। फिर कालका विचार करके दो ऋतु और भी मानी गई। इसी सबब शीत, उष्ण, और समशीतोष्ण देश रहते हैं। बारह राशियोंमें दो राशियोंको सूर्य भोग लेनेसे

❀ गोलतत्त्वप्रकाशिका, ऋतुपरिवर्त्तन, षष्ठ परिच्छेद, पृष्ठ ७०-७३ में लिखा है॥

दो महीनेकी एक ऋतु होती है। चैत्र–वैशाख, "वसन्त ऋतु" और जेष्ठ–आषाढ़, "ग्रीष्म ऋतु" इन दो ऋतुओंके चार महीने 'धूप काल' (गर्मीका समय) रहता है। श्रावण–भाद्र, "वर्षा ऋतु" और आश्विन–कार्तिक, "शरद् ऋतु" ये चार महीने 'वर्षाकाल' (बरसातका समय) रहता है। मार्गशीर्ष–(अगहन)–पौष, "हेमन्त ऋतु" और माघ–फाल्गुन, "शिशिर ऋतु" इन दो ऋतुओंके चार महीने 'शीतकाल' (ठण्ढीका समय) रहता है। जब उत्तरमें "वसन्त ऋतु" तब दक्षिणमें "शरद् ऋतु" और जब दक्षिणमें "शरद् ऋतु" तब उत्तरमें "वसन्त ऋतु" ऐसा ऋतुओंका हेर–फेर हुआ करता है। इस हेतुसे जहाँ–तहाँ ऋतु और दिनमान पलटते जाते हैं ॥

हिन्दुस्तानमें 'बङ्गाल' और 'बम्बई'के सूर्योदयमें आधे घण्टेका फरक सदा रहता है ❀। "अजमेरमें सायङ्कालको पाँच बजे, तो उसी समय लन्दनमें मध्याह्न और ग्रीनचमें सबेरेके पाँच बजते हैं। ऐसा 'हिन्दुस्तान' और 'विलायतका' पाँच घण्टोंका फरक और 'अमेरिका' देशका बारह घण्टोंका फरक हमेशा रहता है। शीत समयमें छः–सात घण्टोंका दिन और "ग्रीष्म–ऋतु" में अठारह–बीस घण्टोंका दिन 'नार्वे' और 'स्काटलैंड' देशोंमें रहता है ॥" –हिल साहब कृत पुरानी भूगोल विद्या, भाग ३। अध्याय २१ ॥

गोलतत्त्वप्रकाशिकाके अहोरात्रनिरूपणमूके पञ्चम परिच्छेदमें (पृष्ठ ६१ पर) कहा है:—"दक्षिण और उत्तर ध्रुवोंके देशोंमें छः–छः महीनेका 'दिन' और 'रात्रि' हमेशा रहती हैं। क्योंकि

❀ भूगोलकी पुस्तक ३, पृष्ठ १११ से ११५ तक लिखा है ॥

वहाँ पर सूर्यकी किरणें छः महीने तक बराबर पहुँचती हैं, और छः महीने तक सूर्यका अस्त रहता है ॥"

इन पूर्वोक्त प्रमाणोंसे पृथिवीकी घूमनेकी सदैव रहनेवाली क्रिया और सूर्यसे दिन–रात्रियोंमें घट–बढ़ या बराबर दिन रहना, दक्षिणायन, उत्तरायण, तीन समय, छः ऋतु आदि सर्व क्रियाओंकी व्यवस्था हो रही है। तिनको बराबर रखनेवाला दूसरा कर्त्ता माननेकी कोई आवश्यकता रही नहीं, ऐसा अब आप निष्पक्ष विचार कर देखिये ! ॥

प्रश्न (७१) यदि ब्रह्माण्डकी अनेक क्रियाओंको बराबर चलाने वाला कर्त्ता नहीं ठहरता है, तो चन्द्रके कलामें घट–बढ़ तथा सूर्य और चन्द्रको राहु और केतु नामके दैत्योंसे ग्रसाकर ग्रहण लगाने वाला ईश्वर कर्त्ता अवश्य ही है, ऐसा मैं मानता हूँ ? ॥

(७१) उत्तरः—उक्त क्रियाओंका भी कर्त्ता ईश्वर नहीं है। क्योंकि सूर्य अपनी कील पर एक ही स्थान पर घूमता है। उसके चारों ओर पृथिवी क्रान्तिवृत्त पर घूमती है, और अपनी कक्षामें चन्द्रमा पृथिवीकी परिक्रमा देता है। ये तिनों आकर्षण और धारणाशक्तिसे सदैव घूमते हैं; (तिसको पूर्वका प्रमाण प्रश्न ६९ में देखिये !)। वे ही उक्त क्रियाओंके कारण हैं ॥

तहाँ भास्कराचार्य ज्योतिषी कहते हैं:—

"तरणिकिरणसङ्गादेष पीयूषपिण्डो, दिनकरदिशि चन्द्रश्चन्द्रिकाभिश्चकास्ति॥
तदितरदिशि बालाकुन्तलश्यामलश्रीर्घटइवनिजमूर्तिच्छाययैवातपस्थः॥१॥
॥ सिद्धान्तशिरोमणिः, गोलाध्यायः, शृङ्गोन्नतिवासना, श्लोकः–१ ॥

अर्थः—अमृतपिण्ड चन्द्र–सूर्यकी किरणोंके संयोगसे उसकी दशामें प्रकाशता है। और दूसरी ओर अपनी छाया द्वारा तरुण

स्त्री के श्याम बालवत् दिखाई देता है; जैसे धूपमें रखा हुआ घड़ा ॥

इस प्रमाणसे भीतर बर्फसे बन्धा हुआ सफेद काँचवत् चन्द्रमा एक जड़ पदार्थ है, और वह सूर्यके प्रकाशसे प्रकाशमान् है। इसीसे वह स्वयं प्रकाशक नहीं। शृङ्गोन्नतिवासनाके श्लोक–२ और श्लोक–४ में ❀ भास्कराचार्य लिखते हैं:—"अमावास्याको सूर्यके अधःस्थित चन्द्रमाके नीचे पृथिवी आनेसे मनुष्योंको चन्द्रका दृश्य अर्द्ध भाग सम्पूर्ण काला देखनेमें आता है। पूर्णिमाको चन्द्र छः राशि दूर स्थित होने पर वह सम्पूर्ण प्रकाशित दृष्ट आता है। अर्थात् पृथिवीकी ओर अर्द्ध भागमें सम्पूर्ण प्रकाशित रहता है। चन्द्रमा (२९) उनतीस दिनोंमें पृथिवीकी परिक्रमा देता हुआ गोलाकार रहनेसे सूर्यको छोड़कर जितनी दूर गमन करता है, उतना उसका अर्द्ध दृश्य सफेद भाग क्रमशः क्षय होता जाता है। वह सूर्यके समीप जितना आ जाता है, उतना अर्द्ध दृश्य भाग क्रमशः बढ़ता जाता है ॥"

सूर्यसिद्धान्तके दशम अध्यायके प्रथम श्लोकमें कहा है:— "पूर्वमें चन्द्रमा बारह अंश सूर्यके समीप होने पर अदृश्य होता है। और पश्चिममें वह बारह अंश सूर्यसे दूर होने पर दिखाई देता है ॥"

इन प्रमाणोंसे चन्द्रकलाकी वृद्धिको "शुक्लपक्ष" और घटतीको "कृष्णपक्ष" कहते हैं ॥

❀ "सूर्य्यादधःस्थस्य विधोरधःस्थमर्धं नृदृश्यं सकलासितं स्यात् ॥
दर्शेऽथ भार्धान्तरितस्य शुक्लं तत्पौर्णमास्यां परिवर्त्तनेन ॥ २ ॥"
"उपचितिमुपयाति शौक्ल्यमिंदोस्त्यजत इनं व्रजतश्च मेचकत्वम् ॥
जलमयजलजस्य गोलकत्वात् प्रभवति तीक्ष्णविषाणरूपतास्य ॥ ४ ॥"
॥ सिद्धान्तशिरोमणेः—गोलाध्यायः, शृङ्गोन्नतिवासना, श्लोक–२–४ ॥

हिल साहब कृत पुरानी भूगोल विद्यामें द्वितीय खण्डके वातावरण प्रकरणमें ग्रहण विषय कहा है:—

"ईसवी सन् १८१७ और १८३७ इन सालोंमें 'चन्द्र ग्रहण' समय चन्द्र तथा सूर्य पूर्व और पश्चिम दिशामें क्षितिजपर देख पड़े। उस दिनसे यह बात प्रत्यक्ष हो गई कि, चन्द्र, सूर्य, और पृथ्वी एक रेखामें आये बिना ग्रहण नहीं लगते ॥"

श्लोकः—"छादको भास्करस्येन्दुरधःस्थो घनवद्भवेत् ॥
भूच्छायां प्राङ्मुखश्चन्द्रो, विशत्यस्य भवेदसौ ॥ ६ ॥"
॥ सूर्यसिद्धान्त, अध्याय ४। श्लोक-६ ॥

अर्थः—सूर्यका छादक (ढाँपनेहारा) नीचे रहनेवाला चन्द्रमा जो पूर्व मुख पैठता है, इसीसे वह छाया चन्द्रको छादक होती है॥

इन प्रमाणोंसे अमावास्याके दिन सूर्य और पृथ्वीके बीचमें बादलवत् चन्द्रमा अपनी कक्षामें घूमते-घूमते आ जानेसे हमको सूर्य दीखता नहीं, तब सूर्य ग्रहण होता है। तैसे ही पूर्णिमाके दिन पृथ्वी अपनी क्रान्तिवृत्तमें घूमते-घूमते सूर्य और चन्द्रके बीच आ जानेसे उसकी छायासे चन्द्र आच्छादित होता है, तब 'चन्द्रग्रहण' होता है। हर अमावास्या और पूर्णिमाको ग्रहण इसलिए नहीं होते कि, चन्द्र और पृथ्वी सीधी रेखामें नहीं आते, परन्तु ऊँचे-नीचे रह जाते हैं। चन्द्र और सूर्यके ग्रहण सर्वलीन (खग्रास), आधा वा चौथाई भाग या थोड़ा-सा ढाँपा हुआ अथवा कङ्कणाकृति (सूर्यकी गोलाकार किनारी सबकोर खुली) ऐसे ग्रहण दिखाई देते हैं। सूर्यको खग्रास या कङ्कणाकृति ग्रहण लगते हैं, तिसका कारण ऐसा है कि, वह चन्द्रसे बड़ा और बहुत ऊँचा है। इसलिए निकट देशोंमें चन्द्रसे सूर्य बादलवत् सम्पूर्ण आच्छादित

वा खग्रास दिखाई देता है। और उससे दूर देशोंमें खण्डग्रास या कुछ भी वह दृष्ट नहीं आता है। जैसे सूर्यको ढके हुए बादलोंकी कहीं छाया और कहीं सूर्यका प्रकाश ॥

सूर्य और चन्द्रको क्रमसे 'केतु' और 'राहु' ये ग्रसनहार (निगलनेवाले और उगलनेवाले) कोई दैत्य नहीं हैं। इस कारण, १. एक तो प्रत्येक "अमावास्या" और "पूर्णिमा" को तिनको ग्रहण नहीं लगते हैं। २. दूसरा—खग्रास ग्रहणमें चन्द्र बड़ा और सूर्य छोटा देख पड़ता है। ३. तीसरा—चन्द्रग्रहण देर तक ठहरता है, और सूर्य ग्रहण कम देर। ४. चौथा—सूर्यग्रहण पश्चिमसे लगकर पूर्वकी ओरसे मुक्त होता है, और चन्द्रग्रहण पूर्वकी ओरसे स्पर्श और पश्चिमकी ओरसे मोक्ष होता है; इसका कारण चन्द्र पूर्वसे पश्चिमकी ओर गमन करता है। ऐसे भिन्न-भिन्न फरक दोनोंके ग्रहणोंमें नहीं होना चाहिए? ऐसा देशभेद, कालभेद, स्थितिभेद, और आवरणभेद इनको देख कर हम कैसे मान लेंगे कि, 'सूर्य' 'चन्द्र' को ग्रसनहारे कोई दैत्य हैं? इसका विस्तार सहित कथन गोलतत्त्वप्रकाशिकाके ग्रहणनिरूपणम् नामक अष्टम परिच्छेदमें किया है, चाहे वहाँ पर भी देख लीजिये! ❀ ॥

इन पूर्वोक्त प्रमाणोंसे चन्द्रकी कलामें घट-बढ़का कारण वह स्वयं तेज हीन और सूर्यसे प्रकाशमान् होता है। ग्रहणका कारण 'चन्द्र' और 'पृथ्वी'की गमन क्रिया तथा पृथ्वीकी चन्द्रको छादक-छाया और बादलवत् चन्द्रसे सूर्यका आच्छादित होना, इसलिए तिनको ग्रसनहारे कोई दैत्य नहीं ठहरते; ग्रसनहारे कोई दैत्य मानना झूठा ही कल्पना है। इस प्रकारसे पूर्वोक्त व्यवस्थाको

❀गोलतत्त्वप्रकाशिका, ग्रहणनिरूपणम्, परिच्छेद ८। पृष्ठ ८३ से ९९ तक लिखा है॥

अवश्य दूसरा कर्त्ता मानना, यह कपोल कल्पना ही जानिये ! ॥

प्रश्न (७२) यदि चन्द्रकी कलामें घट—बढ़ और सूर्य—चन्द्रको ग्रहण लगानेवाला कर्त्ता नहीं ठहरता तो 'शेषनाग' द्वारा भूकम्प (भूडोल) और समुद्रके जलमें चढ़ाव—उतार करनेवाला कोई कर्त्ता चाहिये ? ऐसा मैं मानता हूँ ? ॥

(७२) उत्तरः—इनको भी कोई दूसरा कर्त्ता मानना योग्य नहीं है। क्योंकि यह भूगोल पिण्ड या पृथ्वी समुद्रादि जल और वायुके वेष्टन सहित सूर्यके चौतरफ निराधार घूमती है; (तिसको पूर्वके प्रमाण प्रश्न ६८ में देखिये !) । इसलिए शेषनाग पृथ्वीको धारण करने वाला नहीं ठहरता, कि जिसका माथा हिलनेसे भूकम्प होगा ? ॥ भूकम्पका कारण कहते हैंः—

हिल साहब कृत नवीन भूगोलकी तीसरी पुस्तकके छट्ठे अध्यायमें (पृष्ठ १८ से २६ तक) कहा हैः—"गर्म सोते, ज्वालामुखी पहाड़ोंका रहना, पृथ्वीके भीतर रहे हुए बारुदके खानोंका उड़ना, पृथ्वीके अन्तस्थ गीला भाग सिकुड़नेसे परतोंका (तहोंका) झुक कर तिरछा होना, और टूट जाना, धरातलके नीचे अकस्मात् किसी धक्केका लगना, भाफका भकसे उड़ जाना, इत्यादि कारणोंसे 'भूकम्प' होता है। उसका असर शब्दोंकी गतिवत् चट्टानोंके दबने और फैलनेसे दूर—दूर तक पहुँच जाता है। भूकम्प बहुत जोरसे आता है; तब दिवालें, फट जातीं हैं, खम्बे गिर पड़ते हैं, घरके घर बैठ जाते हैं, और अनेक मनुष्योंकी मृत्यु होती है। जमीन फट कर कहीं बस्ती सहित गाँव धरतीमें बैठ जाते हैं, और कहीं धरती ऊँची बढ़ आती है। समुद्रके नीचे भी भाफका जमाव बना रहता है। इसलिए वहाँ ऊँचा भाग होकर समुद्र एक ओर हट

जाता है, तब वहाँका जल बड़े वेगसे बढ़ आता है। कहीं पृथिवीका भाग नीचे धस कर वहाँ समुद्र बढ़के जहाँ-तहाँ जल-ही-जल हो जाता है ॥"

इस प्रमाणसे कहीं जलके थल और थलके जल भूकम्पसे हो जाते हैं। हिल साहब कृत पुरानी भूगोल विद्याके समुद्रके जलके चढ़ाव-उतारके (ज्वार-भाटाके) वर्णनमें कहा है:—

"सूर्य और चन्द्रके आकर्षण योगसे तथा पृथ्वी अपनी धूरीपर घूमनेसे समुद्रके जलमें जितनी लहरें उत्पन्न होतीं हैं, उनको "ज्वार-भाटा" कहते हैं। लहरें कम होतीं, उनको 'भाटा' (उतार) और लहरें विशेष उत्पन्न होतीं, उनको 'ज्वार' (चढ़ाव) कहते हैं। सूर्यकी अपेक्षा "चन्द्र" पृथिवीके समीप है। इससे तिसका आकर्षण पृथिवी पर अधिक होता है। जहाँ चन्द्र लम्बरूप होता है, वहाँ समुद्रके जलको वह विशेष आकर्षण कर लेता है। फिर लहर उत्पन्न होकर चन्द्रके पीछे-पीछे चली जाती है। इस लहरका जल समुद्रके निकट जो देश और नदियाँ हैं, वहाँ स्पष्ट नजर आता है। यह जल छः घण्टों तक बढ़ता है, फिर (१२) बारह मिनट स्थिर रह कर छः घण्टों तक घट जाता है। अनन्तर (१२) बारह घण्टोंमें फिर दूसरी लहर पैदा हो जाती है, इसके पहले भी (१२) बारह मिनट जल स्थिर रहता है। इस क्रमसे (२४) चौबीस घण्टे और (४८) अड़तालिस मिनटोंमें दो दफे लहरें आ जातीं हैं, अथवा दो दफे 'ज्वार-भाटा' हो जाता है। चन्द्रमा अपने स्थानमें स्थिर रहता, तो (२४) चौबीस घण्टोंमें दो वख्त 'ज्वार और भाटा' हो जाता है। परन्तु चन्द्रको अपनी कक्षामें हर दिन (१३) तेरह अंश गति है। इसलिए अन्दाज

(५०) पचास मिनट पीछे कल का वह पृथिवीका भाग चन्द्रके नीचे बराबर आ जाता है। और (२४) चौबीस घण्टे और (५०) पचास मिनटोंमें दो वख्त 'ज्वार और भाटा' हो जाते हैं। चन्द्र जहाँ लम्बरूप हो जाता है, वहाँ उसी समय लहर पूर्ण गहरी नहीं होती है। परन्तु चन्द्रमा आगेको निकल गये बाद अन्दाज दो घन्टोंसे वह लहर पूर्ण हो जाती है। जब चन्द्र और सूर्य एक राशिको होते हैं, तब दोनोंके आकर्षणका परिणाम एक ही रेखामें होता है। इसलिए 'पूर्णिमा' और 'अमावास्या' को ज्वार बहुत जोरसे आता है, उसे "उधान या खटाल" कहते हैं। जब वै शुक्लः (सुदी) और कृष्णः (बदी) अष्टमीके दिन तीन राशियोंके अन्तरमें हो जाते हैं। तब उनके आकर्षण परस्पर प्रतिबन्धक होते हैं, इसलिए ज्वार बिल्कुल कमजोरसे होता है, उसको भाङ्ग, 'मन्दा ज्वार' या 'मरा खटाल' कहते हैं। सूर्य–चन्द्रका आकर्षण 'विषुववृत्त' वा भूमध्यके पास बहुत जोरसे है। इसलिए वहाँ ज्वार भी बहुत ही जोरसे होता है॥"

इन प्रमाणोंसे पृथ्वीके भीतर और समुद्रके नीचे विशेष उष्णता और भाफ रहनेसे भूकम्प हो जाते हैं। और चन्द्र–सूर्यका आकर्षण तथा पृथ्वी अपने कीलपर घूमनेसे समुद्रके जलमें घट–बढ़ वा ज्वार–भाटा हुआ करते हैं। इन क्रियाओंको कराने–वाला दूसरा कर्त्ता कोई नहीं। इसलिए तिसको मानना अज्ञानता ही ठहरती है; ऐसा जानिये !॥

प्रश्न (७३) यदि भूकम्प और समुद्रके जलमें घट–बढ़ करने वाला कर्त्ता नहीं ठहरता, तो ज्वालामुखी पहाड़, गर्म जलके कुण्ड, आकाशगङ्गा, इन्द्रधनुष, ऐसे–ऐसे विलक्षण पदार्थोंको

ईश्वर बिना कौन उत्पन्न करेगा ? इसलिए कर्त्ता मानना ही योग्य है ? ॥

(७३) उत्तरः—पूर्वके सब प्रश्नोंके प्रमाणोंसे जगत् कर्त्ता ठहरता ही नहीं। फिर तिसको कैसे मानना ? ॥

हिल साहब कृत पुरानी भूगोल विद्याकी तीसरी पुस्तकके छट्ठे अध्यायमें ज्वालामुखी पहाड़ विषय लिखा हैः—"ज्वालामुखवाले शुण्डाकार पर्वतको "ज्वालामुखी पहाड़" कहते हैं। जिनसे एक नली द्वारा पिघले हुए धातुओंके गोले और तिनकी छोटी–छोटी गोलियाँ, धूवें, भाफ, ग्यासोंका फौवारा, राख या झीनी गर्म धूल निकला करती है; सो भी पहाड़ोंके भीतर बारुद, गन्धक, सोरा, कोयला, इत्यादि ज्वालाग्राही अनेक पदार्थ विशेष रहनेके सबबसे निकला करते हैं। ज्वालामुखी पर्वत 'जापान' और 'अमेरिका' में स्थित हैं। कभी–कभी धूवें, भाफ, असाधारण वायु निकलनेसे उसे "सुप्त ज्वालामुखी" कहते हैं। हिन्दुस्तानके बङ्गालकी खाड़ीमें अण्डमन द्वीपोंके समीप पहले प्रज्वलित ज्वालामुखी था, जिससे अब भाफ और धूआँ निकला करता है, इससे वह 'सुप्त अवस्था' में है। ज्वाला निकलनेसे नष्ट हो गये बाद वह पहाड़ 'शान्त ज्वालामुखी' कहलाते हैं। ज्वालामुखी पहाड़ समुद्रके नीचे भी स्थित हैं ॥"

हिल साहब कृत पुरानी भूगोल विद्याकी तीसरी पुस्तकके सप्तम अध्यायमें 'गर्मजल' वा 'तप्तकुण्ड' विषय कहा हैः—

"तप्तकुण्डोंके नीचे कोयला, पारा, सोरा, गन्धक, इत्यादि बहुत ही गर्म और ज्वालाग्राही पदार्थ रहनेसे वहाँ पर गर्म जल सदोदित रहता है। वे पदार्थ निकाल लिए पीछे वह जल ठण्डा हो जाता है। मुङ्गेर जिलामें 'सीताकुण्ड' और गढ़वालमें 'बद्रिनाथ' में और

यमुनोत्रीमें ये गर्म कुण्ड ❀ अभी मौजूद हैं। आइसलैण्ड, न्यूजीलैण्ड और उत्तरी अमेरिकामें खौलते हुए पानीके सोते मौजूद हैं ॥"

हिल साहब कृत पुरानी भूगोल विद्याके द्वितीय खण्डमें आकाश—गङ्गाका कारण लिखा हैः—"ऊपर अधरमें लम्बा, उजला और घूमता हुआ भाग रात्रिमें दीखता है, वह बहुतसे झीने—झीने तारे एकत्र रहनेसे केवल उनका प्रकाश दिखाई देता है, जिनको दुर्बीनके काँच द्वारा आप देख सकते हैं। इसलिए वह जलका जमाव 'आकाशगङ्गा' नहीं। परन्तु केवल झीने अनेक तारोंका प्रकाश है ॥"

इन्द्रधनुषका भेद पदार्थ विज्ञानमें लिखा हैः—

"सूर्यकी श्वेत किरणें सफेद, लाल, पीला, हरा, नीला, नारङ्गी और बैंगनी, इन सात रङ्गोंसे बनी हैं। वे रङ्ग त्रिकोण वाले सफेद काँच द्वारा भिन्न—भिन्न देख पड़ते हैं ॥"

इस प्रमाणसे एक दिशामें वर्षा और उसके सामनेके दिशामें धूप रहती है, तब सूर्यकी किरणों सहित वातावरणमें अधर जलकी छायाका "अर्द्ध वर्तुल चक्र," पृथिवी गोलाकार रहनेसे वह भी पूर्वोक्त सातों रङ्गयुक्त 'अर्द्ध गोलाकार' दिखाई देता है। वह विशेष करके दिनके प्रथम और चौथे पहरमें नजर आता है। तैसे ही कारञ्जोंके फौहारोंमें अथवा मुखमें भरा हुआ जल धूपमें ऊँचे खड़े होकर झीनी बून्दोंसे बाहर डाल देनेमें उक्त सातों रङ्गोंका 'अर्द्ध गोलाकार' चक्र दीख कर तुरन्त बिलाय जाता है; चाहे अन्दाज लीजिये!

❀ कैलास—मानसरोवर के मार्गमें तीर्थपुरीमें भी खौलता हुआ सोता अभी मौजूद है। बद्रिकाश्रम और तीर्थपुरी दोनों [illegible] खौलता हुआ गरम पानी निकलके बहते हैं; यह मैंने स्वयं अपने नेत्रोंसे देखके आया हूँ ॥ सम्पादक"

पूर्वके प्रश्न १७ और ६७ के प्रमाणसे इन्द्र देवता ही असिद्ध है; तो उसका इन्द्रधनुष कहाँसे प्रकट होगा ? ॥

सद्गुरु श्रीकबीर साहेब कहे हैं:—

साखी:—"जहिया कित्तम ना हता। धरती हती न नीर॥
उत्पति-परलय ना हती। तबकी कहैं कबीर॥ २०३॥"
॥ बीजक, साखी २०३। टीकायुक्त॥

अर्थः—जब जगत् न हता, पाँच तत्त्व, चन्द्र, सूर्य, तारागण, न हते, उत्पत्ति-प्रलय इत्यादि कुछ नहीं थे, तबकी वाणी जगत्में स्थित मनुष्योंने कल्पना करके लिख रक्खी है। इसलिए अनेक कल्पना करनेवाले मनुष्य जीव ही श्रेष्ठ हैं, और जगत् कर्त्ता मानना मिथ्या भूलमात्र है। पारखी श्रीसद्गुरुकी सत्सङ्गति करके उक्त भूल या भ्रमको जिज्ञासु मनुष्यजनोंने मिटाना चाहिये ! ॥

पूर्वोक्त प्रमाणोंसे जगत्में नाना प्रकारके अनेक विलक्षण पदार्थ जड़ तत्त्वोंके अनेक त्रसरेणु, अणु और परमाणुओंके संयोगसे बने हैं। क्योंकि तत्त्वोंमें रसायनाकर्षणादि चार प्रकारकी शक्तियाँ हैं; (तिनको पूर्वके प्रमाण प्रश्न ६४ में देखिये !)। अथवा मनुष्यादि जीवोंने अपनी-अपनी शक्तियोंसे अनादि जड़ तत्त्वोंकी सहायता लेकर बनानेसे अनेक पदार्थ बन जाते हैं, और आगे भी बनेंगे ! । तिनको बनानेवाला ईश्वरादि कोई दूसरा कर्त्ता सत्यन्यायसे ठहरता ही नहीं। फिर हम कैसे मान लेवें कि, जगत् और जगत्के अनेक पदार्थोंको बनानेवाला कोई अन्य कर्त्ता है ? इसी जगत् कर्त्ता दर्शन प्रकरणके सब प्रश्नोंके प्रमाणोंसे किसी प्रकारसे जगत् कर्त्ता मानना ठहरता ही नहीं। परन्तु पाँच जड़ तत्त्व, तथा अनेक चैतन्य जीव और ब्रह्माण्डमें स्थित सूर्य, चन्द्र, तारागणादि पदार्थ स्वरूपसे अनादि हैं। और नित्य,

कारणरूप, जड़ तत्त्वोंसे बनते हुए देहादि अनेक कार्य पदार्थ प्रवाहरूपसे अनादि हैं। अर्थात् अनेक पदार्थ उत्पन्न होकर तत्त्वोंमें लयरूप नाश होते रहते हैं। ऐसा आप अब पक्का निश्चय कर लीजिये! परन्तु एक बात हम और आपसे पूछते हैं कि, आप जगत्के जीवोंका स्वरूप कैसा मानते हैं? सो जैसा आपको निश्चय हुआ है, वैसा खुलासासे कहिये? ॥

॥ ❀ ॥ इति श्री पारखनिष्ठ सद्गुरु आचार्य्य श्रीकाशीसाहेब विरचित—
निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन सद्ग्रन्थे—जगत् कर्त्ता दर्शन नामिका
प्रथम प्रकरणम् परिसमाप्तम् ॥ १ ॥ ❀ ॥

प्रिय सन्त-महात्माओ! तथा सज्जनो!

आगेके प्रकरणमें नास्तिक मतोंका सत्यन्यायसे यथार्थ निर्णय किया गया है। उसको आप लोग विचार पूर्वक ध्यानसे देखिये! जिससे नास्तिक-आस्तिकके नास्तिकता और आस्तिकताके सिद्धान्तका पूर्णतासे आप लोगोंको भी मालूम हो जायगा ॥

श्रीगुरुदयाल साहेबने कबीरपरिचय साखीमें कहा है:—

"नास्तिक-नास्तिक सब कहैं। नास्तिक लखै न कोय ॥
कृतमको कर्त्ता कहै। नास्तिक कहिये सोय ॥७०॥
जाको इष्ट प्रत्यक्ष नहीं। लीन परोक्षहिं होय ॥
कहहिं कबीर पुकारिके। नास्तिक कहिये सोय ॥७१॥
है ताको जाने नहीं। नाहीं को करे मान ॥
कहहिं कबीर पुकारिके। सो नास्तिक अज्ञान ॥७२॥"
"अस्ति जीव मानै नहीं। नास्ति ब्रह्मको मान ॥
कल्पित वाणी पक्ष गहै। सो नास्तिक अज्ञान ॥"—सम्पादक ॥

॥ ❀ ॥ इति जगत् कर्त्ता दर्शन प्रकरण सम्पूर्णम् ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

(पारखनिष्ठ सद्गुरु आचार्य्य श्रीकाशीसाहेब विरचित ।)

॥ ❀ ॥ निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन सद्ग्रन्थः ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ अथ द्वितीय प्रकरण प्रारम्भः ॥ २ ॥ ❀ ॥

प्रश्न (७४) मैं जगत्‌के कर्त्ताका पक्ष सत्यन्यायको जान कर अब त्याग देता हूँ ! परन्तु सत्सङ्ग और ग्रन्थों द्वारा पूर्वमें जैसी वाणी मैंने सुनी है, वैसे ही जीवोंके स्वरूपका निश्चय कर बैठा हूँ ! मैं जीवका स्वरूप देह ही मानता हूँ ? ॥ तहाँ कहा भी है:—

श्लोकः—"यावज्जीवं सुखं जीवेन्नास्तिमृत्योरगोचरः ॥
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥ ५ ॥"
॥ सर्वदर्शन संग्रहागत, चार्व्वाक दर्शनम् । श्लोक—५ ॥

अर्थः—बृहस्पति मतानुसारी चार्व्वाक कहता है कि, जब तक जीवै, तब तक सुखसे रहै। मृत्युके बाहर कोई नहीं है, अर्थात् सबको मरण है। देह जल कर भस्म होगी, उसे आवागमन कैसा ? इसलिए आवागमन झूठ है ॥

सर्वदर्शन संग्रह ग्रन्थके चार्व्वाक दर्शनम् ❀ में कहा हैः—

"जैसे अनेक परमाणुओंसे मिश्रित मदिरादि अमली पदार्थोंके सेवनसे विशेष नशारूप शक्ति उत्पन्न होती है। तैसे ही पृथ्वी, जल, तेज, और वायु, ये चार द्रव्य एकत्र हों, तिनके संयोगसे जीवरूप विशेष शक्ति प्रकट होती है। वह शक्ति हरएक झीने परमाणुओंमें भी है। हम प्रत्यक्ष प्रमाणको मानते हैं, प्रत्यक्ष दृश्य देह ही सत्य है। और जीव, देवता, भूत, स्वर्गादि कल्पनामात्र हैं। घी पीकर शरीर पुष्ट रखना, और स्त्रीके सङ्गमें विषय सुख भोगना, यही परम पुरुषार्थ है। काँटे लगने आदि दुःख नरक है। देह छूटे बाद न देह है, न जीव है, सहज ही मुक्ति है॥

श्लोकः—"अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम्॥
बुद्धिपौरुषहीनानां, जीविकेति बृहस्पतिः॥ ११॥"
॥ सर्वदर्शन संग्रहागत, चार्व्वाक दर्शनम्। श्लोक–११॥

अर्थः—बृहस्पति चार्व्वाक कहता है कि, अग्निहोत्र (होम यज्ञादि), तीन वेद, त्रिदण्ड (संन्यासका चिह्न), भस्म लगाना, ये सब बुद्धिहीन और पुरुषार्थ रहित धूर्त्त लोगोंने अपने पेट भरनेका धन्धा निकाला है॥

❀ "किण्वादिभ्यो मदशक्तिवत् चैतन्यमुपजायते तेषु विनष्टेषु सत्सु स्वयं विनश्यति॥ ७॥" "प्रत्यक्षैकप्रमाणवादितया अनुमानादेरनङ्गीकारेण प्रामाण्याभावात्॥ ८॥" "अत्र चत्वारि भूतानि क्षितिजलपावकानिलाः। चतुर्भ्यः खलु भूतेभ्यश्चैतन्यमुपजायते॥ १३॥" "किण्वादिभ्यः समेतेभ्यो द्रव्येभ्यो मदशक्तिवत्॥ १४॥" "न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः। नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः॥ २०॥" "यावज्जीवेत् सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिवेत्। भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥ २५॥" "अङ्गनालिङ्गनादिजन्यं सुखमेव पुरुषार्थः॥ ६॥" "कण्टकादिजन्यं दुःखमेव नरकं, देहोच्छेदो मोक्षः॥ १२॥"—सर्वदर्शनसंग्रहः, चार्वाक–दर्शनम्॥

श्लोकः—"पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं, ज्योतिष्टोमे गमिष्यति ॥
स्वपिता यजमानेन, तत्र कस्मान्न हिंस्यते ॥ २२ ॥"
॥ सर्वदर्शन संग्रहागत, चार्वाक दर्शनम् । श्लोक-२२ ॥

अर्थः—आप लोग कहते हो, जो ज्योतिष्टोमादि यज्ञोंमें जिस पशुका वध किया है, वह स्वर्गमें जाता है। जो ऐसा होगा, तो तुम भी कोई यज्ञ करके अपने पिताको बलि क्यों नहीं कर सकते ? जो सहज ही स्वर्गमें चला जावै ॥

श्लोकः—"अश्वस्यात्र हि शिश्नं तु, पत्नीग्राह्यं प्रकीर्त्तितम् ॥
भण्डैस्तद्वत्परं चैव, ग्राह्यजातं प्रकीर्त्तितम् ॥
मांसानां खादनं तद्वन्निशाचरसमीरितः ॥ २६ ॥"
॥ सर्वदर्शन संग्रहागत, चार्वाक दर्शनम् । श्लोक-२६ ॥

अर्थः—अश्वमेध यज्ञमें यजमानके स्त्री घोड़ेका लिङ्ग ग्रहण करे, इत्यादि विषय सब भाण्ड रचित हैं। भूत, स्वर्ग, नरकादि विषय सर्व धूर्त्तोंने रचा है। जिन शास्त्रोंमें मद्य-मांसका ग्रहण विधि है, वै सब निशाचर कल्पित हैं ॥

इन प्रमाणोंसे मैं देह ही को जीव मानता हूँ ? ॥

(७४) उत्तरः—सुनिये ! जड़ देह कभी चैतन्य जीव नहीं हो सकती है ॥ तहाँ कहा हैः—

"व्यतिरेकस्तद्भावाभावित्वान्न तूपलब्धिवत् ॥ ५४ ॥"
॥ व्यास ब्रह्मसूत्र-५४ । अध्याय ३ । पाद ३ ॥

अर्थः—देह जीवात्मा नहीं है, परन्तु देहसे जुदा है। देहके धर्म, रूपादि मृत देहमें रहते हैं। और जीवात्माके धर्म, प्राणचेष्टा शरीर व्यापारादि मृतदेहमें नहीं रहते। ऐसा ज्ञान दूसरे पुरुषोंसे होता है ॥

इस प्रमाणसे जीवमें ज्ञान है, और देहमें जीव रहनेसे ही देह व्यवहार होते रहते हैं। देह विकारवान् और जीवात्मा

निर्विकारी, नित्य है; (तिसको पूर्वके प्रमाण प्रश्न २ में देखिये !) । यदि देह सत्य है, तो नाश क्यों होती है ? ॥

१. प्रथमः—जड़ पदार्थोंके मिलनेसे एक ही प्रकारकी क्रिया होती है। जैसे बन्दूक, मेघ, और घड़ीका शब्द, जलके बुलबुले आदि। परन्तु मनुष्यादि देहधारी जीवोंमें इच्छा, अनिच्छा, कर्त्तव्य-कर्म, सोच करना, चतुराईके गुण, किसी कार्यों, तीन समयों, ग्रहणादिकोंका नियमित समय ठहराना, इत्यादि भिन्न-भिन्न कार्य होते रहते हैं ॥

२. दूसराः—फलाने-फलाने पदार्थोंके मिलनेसे फलाना फल होगा ? बहुतसे पदार्थोंका ज्ञान, किसीको सुख-दुःख देना, समुझाना, दिखाना, धमकी देना, इत्यादि अनेक बातें मनुष्यादि जीव जान सकते हैं। परन्तु अति झीने अनेक परमाणुओं, बड़े-बड़े वृक्ष, पाषाण, घर, पहाड़, इत्यादि पदार्थों और जड़ तत्त्वोंमें ज्ञान-अज्ञान इन दोनोंको जाननेका ज्ञान नहीं रहता है ॥

३. तीसराः—एक ही मा-बापके अनेक सन्तान होते हैं, परन्तु तिनके धर्म, गुण और क्रियाएँ भिन्न-भिन्न रहती हैं। इसलिए देहधारी चैतन्य जीवोंके और जड़ तत्त्वोंके धर्म भिन्न-भिन्न हैं ॥

४. चौथाः—कारणरूप, नित्य जड़ तत्त्व और तिनके कार्य अनेक जड़ पदार्थोंवत् नित्य चैतन्य जीवोंका कारण-कार्य भाव नहीं बनता है। क्योंकि देह रहे तक हम स्वयं नाश हो गये, ऐसी प्रतीति किसी मनुष्यको नहीं आती है ? सुषुप्तिमें भी सुख और जगत्के अभावका ज्ञान जाग्रत्में सर्व मनुष्योंको स्मृतिरूपसे बना रहता है। कण्ठ किये हुए अनेक शब्दोंका स्मृतिज्ञान और पूर्वमें देखे-सुने और भोग किये हुए अनेक पदार्थोंका स्मृतिज्ञान

मनुष्यादि जीवोंमें बना रहता है ॥

५. पाँचवाँ:—जन्मते ही बालकोंको माताओंके स्तनोंसे खैंच कर दूध पीना, दुःखसे रोना, नीन्द लेना, कभी-कभी सहज स्वभावसे हँसना, बन्दूकादि बड़े धड़ाकेकी शब्दोंसे डर जाना, ये भी पूर्व जन्मोंके अनेक कर्म संस्कारोंका स्मृतिज्ञान है। अथवा तरुण अवस्थाओंमें स्त्री-सम्भोग, देहका ममत्त्व और अहङ्कार रखना, राजा, धनवान् कङ्गाल, अङ्गहीन, सर्व अङ्गयुक्त, पूर्ण शरीर, रोगी, निरोगी, रागी, वैरागी, कम-अधिक, सुख-दुःख विशेष भावसे सत्त्व, रज, और तमोगुणमें प्रवृत्ति इत्यादि पूर्व और इस जन्मोंके कर्म संस्कारोंके फल हैं। इसलिए चेतन जीवोंके पूर्व जन्म थे, अब हैं, और आगे भी अनेक कर्मोंके वासनानुसार पुनर्जन्म होंगे ॥

भूत, स्वर्गलोक और देवता, असिद्ध हैं; (तिनको प्रमाण पूर्वके प्रश्न ७ और प्रश्न १७ में देखिये !)। इसलिए स्वर्ग प्राप्तिके लिये पशु हिंसा करना और मद्य, मांस सेवन करना, ये पशुवत् अविचारी कर्म हैं। नाशवान् देह पुष्ट रख कर, खान-पान विलास और स्त्री-सङ्ग भोग सुख अल्प और परिणाममें दुःखरूप हैं। तिनको परम पुरुषार्थ माननेवाले महा अज्ञानी पशुवत् चार्व्वाक लोग नर-पशु बने हैं, तिनकी सङ्गति त्यागना ही चाहिये। आप तिनकी सङ्गति अब छोड़ ही दीजिये ! ॥

पूर्वोक्त प्रमाणोंसे जड़, अनित्य और ज्ञान धर्म रहित देहको चैतन्य, नित्य और ज्ञान धर्म वाला जीव मानना, प्रत्यक्ष अनुभवसे असिद्ध ठहरता है। आप नास्तिक देहवादी मत् बनिये ! ॥

प्रश्न (७५) हे दयानिधे ! मैं नास्तिक नहीं हूँ ? देह ही को जीव माननेमें और भी प्रमाण हैं। विचारसागरके पञ्चम

स्तरङ्गमें कहा ❀ हैः—"असुर स्वामी विरोचनके मतवाले अन्नमयकोश, अर्थात् अन्नसे ही उत्पत्ति, पालन, और नाश होने वाले स्थूल शरीरको ही जीवात्मा मानते हैं। वे ऐसा कहते हैं कि, "मैं स्थूल हूँ ! मैं दुबला हूँ ! मैं मनुष्य हूँ !" ऐसी अहंबुद्धि स्थूल शरीर ही में होती है। इसलिए स्थूल शरीर ही अहंपनाका विषय होनेसे जीवात्मा है। अथवा स्त्री, पुत्र, धन, पशु, इत्यादि स्थूल शरीरके विजातीय सम्बन्धसे उपकार करने वाले हैं। तिनमें जो प्रीति होती है, सो मुख्य स्थूल शरीरके निमित्तसे है। इसी सबब स्थूल शरीरको वस्त्र, गहना, अञ्जन, मञ्जन, नाना प्रकारके भोजनादि पदार्थोंका उपभोग देना ही परम पुरुषार्थ है, और मरण बाद मोक्ष है ॥"

इन प्रमाणोंसे मैं स्थूल शरीर ही को जीव मानता हूँ ? ॥

(७५) उत्तरः—स्थूल शरीर जड़ है, वह चेतन जीव नहीं है ॥

तिस विषय कहा हैः—

"न वा अरेऽहं मोहं ब्रवीम्यविनाशी वा अरेऽयमात्माऽनुच्छित्ति धर्मा ॥"

(नाहं मोहं ब्रवोमि अनुच्छितिधर्मायमात्मेति) ॥ १४ ॥

॥ बृहदारण्य उपनिषद्, अध्याय ४ । ब्राह्मण ५ । मन्त्र–१४ ॥

अर्थः—याज्ञवल्क्य कहते हैं, हे मैत्रेयि ! मैं मोहसे नहीं बोलता हूँ; परन्तु निश्चयसे जीवात्मा अविनाशी है। जिसके योगसे शरीरकी चेष्टा या व्यवहार बराबर हुआ करता है। जब जीव शरीरसे अलग होता है, तब शरीरमें ज्ञान नहीं होता है। और चेतनसत्ता बिना इन्द्रियाँ स्वतः ज्ञान नहीं कर सकतीं हैं ॥

तत्त्वानुसन्धानके प्रथम परिच्छेदमें ‡ कहा हैः—"शरीर ही

❀ विचारसागर, स्तरङ्ग ५ । पृष्ठ २३३–२३४ में लिखा है ॥

‡ तत्त्वानुसन्धान, परिच्छेद १ । पृष्ठ ६ (१–२) में लिखा है ॥

को जीवात्मा माननेमें दो दोष आते हैं। एक "कृतनाश दोष" अर्थात् पाप-पुण्योंके सर्व कर्म भोगे बिना शरीर नाश हो जाने, और दूसरा "अकृताभ्यागम दोष" अर्थात् बिना किये हुए कर्मोंसे नवीन देहें उत्पन्न होने।" ऐसे दो दोष कहा गया है॥

अथवा अहङ्कारयुक्त अनादि कालसे सर्व जीव देह-व्यवहार करते हैं; (तिसको पूर्वका प्रमाण प्रश्न १२ में देखिये!)। "मैं रोगी हूँ! मैं रोग रहित हूँ! ऐसा 'मैं-मैं' कहनेवाला जीव शरीरसे भिन्न ही है।" क्योंकि दुःख भोगनेवाला रोगी जीव शरीरके रोगसे न्यारा है, ऐसा सब जानते हैं। अनेक चेतन जीव अनादि अमर रहनेसे मृत्युके पीछे मुक्ति मानना यह असम्भव है। परन्तु अनेक कर्मोंके अध्यास वश जीवोंको जन्म-मरणादि अनेक दुःख भोगने ही पड़ेंगे। जड़ स्थूल शरीर ही को चेतन जीव माननहार विरोचन मतवाले शरीरके अनेक भोगोंमें आसक्त हों, परम पुरुषार्थ ठहराये हुए विषय लम्पट मनुष्योंको गधे, कुत्तेके समान नीच नर-पशु ही जान लीजिये! अर्थात् बिना सिङ्ग-पूँछके नर-पशु ही जान लीजिये!॥

इन प्रमाणोंसे अन्नमयकोशरूप स्थूल शरीरके अहङ्कार, अनेक विषय भोगादि जाननेवाला चैतन्य जीव न्यारा ही है। तिसको नाशवान्, जड़ स्थूल शरीर ही मानना, यह अज्ञानता है। इन नास्तिकोंकी सङ्गति आप अब दिलसे छोड़ ही दीजिये!॥

प्रश्न (७६) यदि शरीर ही चेतन जीव नहीं ठहरता, तो इन्द्रिय ही जीव है॥ तिस विषय कहा है:—

"य एषोऽक्षिणी पुरुषो दृश्यत॥" छान्दोग्य उ०, अध्याय८। खण्ड७। मन्त्र-४॥

अर्थः—नेत्रके विषय चैतन्य पुरुष दृश्यमान् है॥

अथवा शरीरमें इन्द्रिय रहनेसे ही तिनके द्वारा खान-पानादि

व्यवहारसे शरीरकी स्थिति है, और इन्द्रियोंके अभाव होते ही तिसका नाश हो जाता है। "मैं देखता हूँ! मैं सुनता हूँ! मैं बोलता हूँ!" ऐसी अहंबुद्धि, अहङ्कार इन्द्रियमें होती है॥

इन प्रमाणोंसे मैं इन्द्रिय ही को जीव मानता हूँ ? ॥

(७६) उत्तरः—शरीरमें इन्द्रियाँ अनेक और जड़ हैं। तथा शरीरधारी जीव एक और चैतन्य है। वह जड़ इन्द्रिय स्वरूप ही नहीं हो सकता है। तहाँ कहा है:—

"इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था॥"—कठ उपनिषद्, अध्याय १। वल्ली ३। मन्त्र–१०॥

अर्थः—इन्द्रियोंसे चैतन्य जीव पर (भिन्न) है॥

अथवा जीवकी सत्तासे इन्द्रियाँ क्रियावान् होती हैं; (तिसको पूर्वका प्रमाण प्रश्न ७५ में देखिये!)। और भी कहा है:—

"इन्द्रियाणि अनात्मा करणत्वात् कुठारवत्॥"

॥ तत्त्वानुसन्धान, परिच्छेद १। (पृष्ठ ७ में)॥

अर्थः—जैसे जड़ कुल्हाड़ीसे लकड़ी काटनेवाला मनुष्य न्यारा रहता है। तैसे ही इन्द्रिय द्वारा व्यवहार करता हुआ सत्ताधारी जीवात्मा इन्द्रियोंसे न्यारा है॥

१. प्रथमः—इन्द्रियोंके गुण–दोषोंको कहनेवाला और जाननेवाला "जीव" इन्द्रियाँ नहीं हो सकता है। २. दूसराः—यदि हाथ, पग, नासिका, कर्णादि इन्द्रियाँ कट गई, अथवा कोई बधिर, अन्धादि इन्द्रियहीन हुए, तो भी जीव शरीरोंमें कायम रहते हैं। ३. तीसराः—एक इन्द्रियका कर्म दूसरी इन्द्रिय नहीं कर सकती हैं। ४. चौथाः—परस्पर इन्द्रियोंमें 'स्मरण' और 'ज्ञान' नहीं रहता है, यह अनुभव सिद्ध लक्षण है। ५. पाँचवाँः—यदि इन्द्रियाँ चैतन्य हैं, तो घोर निद्रामें और मृतक शरीरमें वे क्यों व्यवहार नहीं कर सकतीं हैं ? ॥

इन प्रमाणोंसे भिन्न-भिन्न जड़ इन्द्रियोंको एक ही, सत्ताधारी, जाननहार चैतन्यजीव मानना सहज ही असिद्ध है। आप यह भी नास्तिक पक्षको अब त्याग ही दीजिये ! ॥

प्रश्न (७७) यदि इन्द्रिय ही चेतन जीव नहीं ठहरता है, तो जीव विषय और भी कहा है:—

श्लोकः—"प्रकृतेः क्रियमाणानि, गुणैः कर्माणि सर्वशः ॥ २७ ॥"

॥ भगवद्गीता, अध्याय ३ । अर्द्ध श्लोक-२७ ॥

अर्थः—मायारूप प्रकृतिके सत्त्व, रज, तम, ये त्रिगुण ही देहका सर्व कर्म करते हैं ॥

श्लोकः—"सत्त्वं रजस्तमश्चैवत्रीन्विद्यादात्मनो गुणान् ॥ २४ ॥"

॥ मनुस्मृतिः, अध्याय १२ । अर्द्ध श्लोक-२४ ॥

अर्थः—सत्त्व, रज, तम, ये त्रिगुण आत्माके गुण जानिये ! परन्तु गुणी आत्मा गुणोंसे भिन्न नहीं है ॥

इन दो प्रमाणोंसे सत्त्व, रज, तम, ये त्रिगुण ही जीव है, ऐसा मैं मानता हूँ ? ॥

(७७) उत्तरः—रज, सत्त्व, तम, ये त्रिगुण (तीन गुण) केवल जड़ क्रियाओंके नाम हैं, वे कुछ चैतन्य जीव नहीं हैं ॥

तहाँ कहा है:—

"निस्त्रैगुण्यपदोऽहम् ॥ ५ ॥" "विगलितगुणजालकेवलात्माहम् ॥ ४ ॥"

॥ आत्मप्रबोध उपनिषद् । मन्त्र-५ । ४ ॥

अर्थः—मैं आत्मा त्रिगुणसे न्यारा हूँ ! ॥ मैं शुद्धात्मा त्रिगुण जालसे रहित हूँ ! ॥

त्रिगुणरूपा प्रकृतिको ही माया कहा है; (तहाँ पूर्वका श्रुति-प्रमाण प्रश्न २५ में देखिये !) । परन्तु मुख्य माया जड़ तत्त्वोंका

"शरीर" ही है। इस देहमें चैतन्य जीवोंकी 'सत्ता' और 'ज्ञान' से ही त्रिगुणोंके सर्व कर्म हो रहे हैं। मृतक शरीरमें कोई भी कर्म नहीं होते हैं, ऐसा अनुभव सबको है। जीवोंकी सत्तासे होते हुए त्रिगुणोंके कर्मोंका लक्षण पूर्वके प्रश्न ३५ में देख लीजिये! अथवा काम, क्रोध, और मोह, ये तीन विकार ही क्रमसे रज, तम, और सत्त्वगुणरूप हैं; ऐसा यथार्थ जानिये ! ॥

इन प्रमाणोंसे रज, तम, और सत्त्व, ये तीन भिन्न–भिन्न त्रिगुणरूप जड़ क्रियाओंको सत्ताधारी, जनैया चैतन्य जीव मानना, यह अन्यायका कथन है। यह भी नास्तिक पक्ष है, सो आप इसको अब छोड़ ही दीजिये ! ॥

प्रश्न (७८) यदि त्रिगुणरूप जड़ क्रिया ही चेतन जीव नहीं ठहरता है, तो जीव विषय और भी कहा है:—

"मनुष्याः पशवश्च ये ॥" "प्राणो हि भूतानामायुः ॥"

॥ तैत्तिरीयोपनिषद् मध्ये ब्रह्मानन्दवल्ली (२) उपनिषद् । अनुवाक–३ ॥

अर्थः—प्राण ही मनुष्य, पशु आदि सर्व जीवोंकी आयु है। इसलिए जीवोंको "प्राणी" कहते हैं। प्राणके स्थितिसे देहकी स्थिति और प्राणके निकलनेसे देह मृतक होती है॥

इस प्रमाणसे मैं 'प्राण' ही को जीव मानता हूँ ? ॥

(७८) उत्तरः—"प्राण" जड़ वायु तत्त्व है, वह कुछ चैतन्य जीव नहीं है ॥ तहाँ कहा है:—

"वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत् ॥"–ऐतरेयोपनिषद्, खण्ड२। मन्त्र ४॥

अर्थः–"प्राण" यह वायु तत्त्व है। वह नासिका द्वारा श्वास–उश्वास, अर्थात् भीतर–बाहर श्वास लेने–छोड़नेकी क्रिया करता है ॥

प्राण वायुका स्थान हृदयमें है; ऐसा पञ्चीकरणमें कहा है ॥

सुषुप्ति अवस्थामें (घोर निद्रा में) प्राण वायु जाग्रत् रहते हुए भी चोर धन, वस्त्रादि चुराते समय नहीं रोकती है, ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव है। प्राणायाम, योग, ध्यानादि साधन करनेवाले प्राण क्रियाको बन्द कर देते हैं। इसलिए प्राणवायु पराधीन है। शरीर रहे तक चैतन्य जीवोंके सत्ता-संयोगसे ही प्राणवायुकी क्रिया लोहारके भातीवत् (धौंकनीवत्) बराबर हुआ करती है। और मृत्यु पीछे वह बाहरके वायु तत्त्वमें मिल जाती है। सिर्फ सूक्ष्मप्राण मात्र ही सूक्ष्म देहमें रहती है। वही जीवके साथ अध्यासवश बन्धा हुआ गर्भवासमें चली जाती है ॥

इन प्रमाणोंसे प्राणरूप जड़ वायु तत्त्वको चैतन्य, सत्ताधारी जीव मानना, यह अविचारकी बात है। यह भी नास्तिक मत है, मानने योग्य नहीं है। ऐसा जान करके इस पक्षको भी अब छोड़ ही दीजिये ! ॥

प्रश्न (७६) यदि प्राण वायु चेतन जीव नहीं ठहरता है, तो जीव विषय और भी कहा है:—

"अस्य संसारवृक्षस्य, मनोमूलमिदं स्थितम् ॥ ३७ ॥"

॥ मुक्तिक उपनिषद्, अध्याय २ । मन्त्र-३७ ॥

अर्थः—इस संसाररूप वृक्षके स्थितिका कारण मुख्य "मन" है ॥

"मनसा ह्येव पश्यति मनसा शृणोति ॥ ३ ॥"

॥ बृहदारण्य उपनिषद्, अध्याय १ । ब्राह्मण ५ । मन्त्र-३ ॥

अर्थः—मन करके देखते और सुनते हैं ॥

इन दो प्रमाणोंसे मैं 'मन' को ही जीव मानता हूँ ? ॥

(७६) उत्तरः—मन जड़ है, कुछ चैतन्य जीव नहीं है ॥

मन विषय कहा है:—

"मनोऽनुभवति स यदा मनसा मनस्यति ॥ १ ॥"
॥ छान्दोग्य उपनिषद्, अध्याय ७ । खण्ड ३ । मन्त्र-१ ॥

अर्थः—सङ्कल्प-विकल्परूप मन अनुभवमें आता है। इसलिए अनुभव करनेवाला जीव मनसे न्यारा है ॥

वायु तत्त्वरूप 'मन' है, ऐसा पञ्चीकरणमें कहा है। मनको अष्टधा प्रकृतिमें और इन्द्रियमें गिना है। अथवा मन (कल्पित) परमात्मासे उत्पन्न हुआ, ऐसा कहा है; (तिसको पूर्वके प्रमाण प्रश्न ४६ में देखिये !) ॥

इन प्रमाणोंसे मन उत्पत्तिवाला होनेसे नाशवान् और जड़ है। मनको माननेवाला चैतन्य जीव तिससे न्यारा है। जीवके सत्ता-संयोगसे 'नेत्र' और 'कर्ण' इन्द्रियसे क्रमशः देखना, और सुनना होता है; केवल अकेले मन करके नहीं, ऐसा अनुभव प्रत्यक्ष है॥

सद्-गुरु श्रीकबीर साहेब भी मन विषय कहे हैंः—

साखीः—"मन माया तो एक है। माया मनहिं समाय ❀ ॥ १०५ ॥"
॥ बीजक, अर्द्ध साखी १०५ । टीकायुक्त ॥

❀ साखीः—"मन माया तो एक है। माया मनहिं समाय ॥
तीन लोक संशय परी। मैं काहि कहौं समुझाय ॥ १०५ ॥"

टीका गुरुमुखः—मन कहिये पाँच तत्त्व तीन गुण, ये आठ पसेरीका एकन्दर वजन ताको मन कहिये औ ताहीका स्वरूप जो दृष्टि गोचर सो माया कहिये काया, कायाका वजन सोई मन ब्रह्म; तो नाम-रूप, तन-मन, माया-ब्रह्म, दृष्ट-अदृष्ट, सगुण-निर्गुण, पिण्ड-ब्रह्माण्ड, आत्मा-जगत्, इनके नाम दो हैं, कुछ रूप दो नहीं, वस्तु एक ही है। अरे ! मायाका अधिष्ठान मन, औ माया बिना कछु मन नहीं। नाम सोई रूपका अधिष्ठान, रूप बिना कछु नाम नहीं। तन सोई मनका अधिष्ठान, तन बिना कछु मन नहीं। ब्रह्म मायाका अधिष्ठान, माया बिना कछु ब्रह्म नहीं। अदृष्ट दृष्टका अधिष्ठान, पर दृष्ट बिना कछु अदृष्ट नहीं। निर्गुण सगुणका अधिष्ठान, पर सगुण बिना कछु निर्गुण नहीं।

अर्थः—'मन' अर्थात् पाँच तत्त्व, तीन गुण, ये ही आठ पसेरीका 'वजन' है। और कायाका वजन कहिये केवल जड़को दृढ़ मानना वही 'ब्रह्म' है। इसलिए 'तन–मन' एक ही रूप है। क्योंकि तन है, सो मनका अधिष्ठान है। परन्तु तन बिना मन कुछ सिद्ध नहीं होता है ॥

इस प्रमाणसे मन द्वारा सङ्कल्प–विकल्प करनेवाला जीव मनसे न्यारा है ॥

बीजक, शब्द ६२ की टीकामें लिखी हुई है:—

"भक्ति, योग, और ज्ञानके अनुभवसे जो-जो ब्रह्म, ईश्वरादि मनुष्योंने दृढ़ माना है, सो 'मन' है। "नाम, रूप, माया, काया, कल्पनादि सबोंको दृढ़ माननारूप मन जड़ है।" और तिनको माननेवाला 'चैतन्य जीव' न्यारा है ॥

इन प्रमाणोंसे सङ्कल्प–विकल्परूप कल्पना, मानना, और तत्त्वरूप "मन" जड़ है। तिसको माननेवाला, अनुभव लेनेवाला, चैतन्य जीव मानना अन्याय है। यह भी नास्तिक मत है, इसको आप अब त्याग दीजिये ! ॥

प्रश्न (८०) यदि "मन" चेतन जीव नहीं ठहरता है, तो उस विषय और भी कहा है:—

श्लोकः—"कर्तृत्वभोक्तृत्वखलत्वमत्तताजड़त्वबद्धत्वविमुक्ततादयः ॥
बुद्धेर्विकल्पा न तु सन्ति वस्तुतः स्वस्मिन्परे ब्रह्मणि केवलेऽद्वये ॥५११॥
॥ विवेकचूड़ामणि, श्लोक–५११ ॥

ब्रह्माण्ड पिण्डका अधिष्ठान, पर पिण्ड बिना ब्रह्माण्ड नहीं। आत्मा जगत्का अधिष्ठान, पर जगत् बिना कछु आत्मा नहीं। तब मन–माया नाम दो, वस्तु रूप एक, परन्तु तीन लोकमें दूसरा है, ऐसी संशय परी है, दूसरा कछु है नहीं, मैं न्यारा करके क्या समझाऊँ ? तन मन एक ही है। ये अर्थ ॥ त्रिजासे बीजक साखी ॥१०५॥

अर्थः—शङ्कराचार्य कहते हैं कि, कर्तृत्त्व, भोक्तृत्त्व, कुटिलता, उन्मत्तता, जड़त्त्व, बद्धत्त्व, मोक्षत्त्व, ये सब बुद्धिके विकल्प हैं। क्योंकि केवल ब्रह्मस्वरूप हमारेमें ये उक्त धर्म नहीं हैं ॥

श्लोकः—"जाग्रत् स्वप्नः सुषुप्तं च, गुणतो बुद्धिवृत्तयः ॥ २७ ॥"

॥ भागवत, स्कन्ध ११ । अध्याय १३ । अर्द्ध श्लोक-२७ ॥

अर्थः—हंसावतार विष्णु ब्रह्मादिकोंसे कहते हैं कि, रज, सत्त्व, और तमोगुण, प्रकट होती हुई जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था बुद्धिकी वृत्तियाँ हैं ॥

"पुरुषस्य कर्तृत्वभोक्तृत्वसुखदुःखादिलक्षणश्चित्तधर्मः ॥ १ ॥"

॥ मुक्तिक उपनिषद्, अध्याय २ । मन्त्र-१ ॥

अर्थः—पुरुषके कर्तृत्त्व, भोक्तृत्त्व, सुख, दुःखादि चित्तके धर्म हैं ॥

इन प्रमाणोंसे मैं 'बुद्धि' और 'चित्त' ही को जीव मानता हूँ ? ॥

(८०) उत्तरः—'बुद्धि' और 'चित्त' दोनों जड़ हैं, वे कुछ चैतन्य जीव नहीं हैं ॥ तहाँ कहा हैः—

श्लोकः—"यो विजानाति सकलं, जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ॥
बुद्धितद्वृत्तिसद्भावमभावमहमित्ययम् ॥ १२८ ॥
यः पश्यति स्वयं सर्वं, यं न पश्यति कश्चन ॥
यश्चेतयति बुद्ध्यादिं, न तु यं चेतयत्ययम् ॥ १२९ ॥

॥ विवेकचूड़ामणि, श्लोक-१२८ । १२९ ॥

अर्थः—शङ्कराचार्य कहते हैं कि, जो जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, इन तीन अवस्थाओंकी और बुद्धि तथा बुद्धिकी वृत्तिका 'सत् भाव' और 'अभाव' इनको जानता है। जो स्वयं सबको देखता है, और जिसको जड़ पदार्थ नहीं देख सकते हैं। जो बुद्धि आदि जड़ पदार्थोंको चेताता है, या क्रियावान् बनाता है, उस चैतन्यको कोई नहीं चेताता है ॥

इस प्रमाणसे 'बुद्धि और चित्त' दोनों जड़ हैं। तिनको चेताने वाला चैतन्य जीव भिन्न है। जैसे जल, नवसादर, कोयला, रेशम, ताम्बेकी तार, इत्यादि पदार्थोंको चैतन्य मनुष्य संयोग करते हैं। तब बिजली प्रकट करके रेलमें तारका काम चलाते हैं। तैसे ही चैतन्य जीवके सत्ता-संयोगसे कर्तृत्त्व, भोक्तृत्त्व, सुख, दुःख, जड़तादि गुण देहमें प्रकट होते हैं। केवल जड़ बुद्धि और चित्तमें ये स्वयं गुण है नहीं। क्योंकि मृत्युके बाद मुर्दोंमें कोई भी उक्त गुण दिखलाई नहीं पड़ते हैं ॥

इस प्रकारसे 'बुद्धि' और 'चित्त' स्वयं जड़ हैं। तिनको चेतानेवाला और जाननेवाला चैतन्य जीव मानना सहज ही असिद्ध है। यह भी नास्तिक मत ही है, इसलिए आप इस नास्तिक मत को भी अब त्याग ही दीजिये ! ॥

प्रश्न (८१) यदि बुद्धि और चित्त ही चेतन जीव नहीं ठहरता है, तो जीव विषय और भी कहा है:—

"प्रियं मोदः प्रमोद आनन्दो ब्रह्म ❀ ॥"

॥ तैत्तिरीय उपनिषद् मध्ये ब्रह्मानन्दवल्ली (२) उपनिषद्, अनुवाक–१०॥

अर्थः—प्रिय (पदार्थ देखनेसे आनन्द), मोद (पदार्थ मिलनेसे आनन्द), और प्रमोद (पदार्थको भोगनेसे होता हुआ आनन्द है), ऐसा सर्व प्रकारसे एक, अखण्ड ब्रह्म आनन्दरूप ही है ॥

विचारसागरके चतुर्थ स्तरङ्गमें कहा ‡ है:—

"समाधि और सुषुप्तिमें विषयानन्द रहित स्वयं स्वरूपका ही

❀ "तस्य प्रियमेव शिरः ॥ मोदो दक्षिणः पक्षः ॥ प्रमोद उत्तरः पक्षः ॥ आनन्द आत्मा ॥ ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा ॥" तैत्तिरीयोप०, ब्र० वल्ली, अनुवाक–५ ॥

‡ विचारसागर, स्तरङ्ग ४, पृष्ठ १०१ से १०३ तक लिखा है ॥

आनन्द रहता है। अथवा विषयानन्द मेरा ही स्वरूपानन्द है; ऐसा जाननेसे ब्रह्मज्ञानीको विषयानन्दमें भी समाधि है ॥"

इन प्रमाणोंसे मैं आनन्द ही को जीव मानता हूँ ? ॥

(८१) उत्तरः—सर्व विषयके और निर्विषयके स्थूल-सूक्ष्म आनन्द देह सम्बन्धि रहनेसे जड़ हैं। वै जड़स्वरूप आनन्दवत् चैतन्य जीव कैसे होंगे ? ॥ तहाँ कहाँ भी है :—

साखीः—"आनन्द आनन्द सब कहैं। आनन्द जीवको काल ॥
पूरण पारख प्रकाश भौ। शरण कबीर दयाल ॥ ३२ ॥"
॥ बीजक टीका, अन्तस्तुति की साखी-३२ ॥

अर्थः—सद्गुरु श्रीपूरण साहेब कहते हैं कि, "हम आनन्द स्वरूप हैं" इस तरह अद्वैतमतवादि ब्रह्मज्ञानी कहते हैं। परन्तु वही आनन्द जीवोंको दुःखदाई, कालस्वरूप प्रकट हुआ है। क्योंकि चैतन्य जीव और मायारूपी जड़ देहोंके सम्बन्धमें सर्व आनन्द प्रकट होते हैं, और नाश हो जाते हैं। इन्द्रियोंके सम्बन्धमें बहिर्मुखसे वृत्तिकी स्थिरता होनेसे अल्प काल तक सर्व विषयानन्द प्रकट होते हैं। समाधि, सुषुप्ति, मूर्च्छादि आनन्द जगत्का लयरूप अन्तःकरणकी निर्विकल्प स्थितिमें अन्तर्मुख वृत्ति होनेसे विशेष काल तक प्रकट होते हैं। परन्तु चञ्चल वृत्ति होते ही फिर पूर्ववत् अनेक दुःख कायम रहते हैं। ऐसे अनेक विषय और निर्विषय, ये दोनों आनन्द परोक्ष जड़ हैं, वै चैतन्य जीव नहीं हैं। जीव स्वयं प्रकाश, ज्ञानस्वरूप और तीनों अवस्थाओंमें एकरस है। वे किसी जड़ पदार्थोंके जाननेका विषय नहीं है। हम दयालु पूर्ण पारखी सद्-गुरु श्रीकबीर साहेबरूप, सत्यन्यायी, पारखी साधु-गुरुरूप सद्-गुरुके शरण गये, तब पारख दृष्टिसे ब्रह्मानन्द,

विषयानन्दादि सर्व आनन्दोंकी कसरको पूर्णतासे जान गये कि, वे सब जड़ हैं ॥

पञ्चीकरणमें कहा ❀ है:—सर्व पदार्थोंमें "अस्ति, भाति, प्रिय, नाम और रूप" ऐसे पाँच भेद हैं। तिनमें 'नाम' और 'रूप' मायाका कार्य मिथ्या मानके 'अस्ति, भाति, प्रियरूप' से शुद्धब्रह्म सर्वत्र समानरूपसे व्यापक माना गया है। उस ब्रह्मको सच्चिदानन्द अर्थात् 'सत्, चित्, आनन्द', इन तीन लक्षणोंयुक्त माना है; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न १४ में देखिये !)। 'अस्ति' कहिये "है" सोइ 'सत्', 'भाति' कहिये "भान" होता है या 'जाना जाता' है, सोई "चित्" और 'प्रिय' कहिये "सुख रूप" सोई 'आनन्द' है। ऐसा 'सत्, चित्, आनन्दरूप', सोई साक्षी कूटस्थ आत्मा, और अस्ति, भाति, प्रियरूप सर्वत्र व्यापक ब्रह्म, ऐसी जीव-ब्रह्मकी एकता करके वेदान्त मतमें एक अद्वैत ब्रह्म सर्वत्र व्यापक माना है ॥

परन्तु "नाम-रूप" बिना "अस्ति, भाति, प्रिय" ये तीन पद सिद्ध ही नहीं होते हैं। जड़ पदार्थोंमें अस्तिरूपसे हैता मानी है; वह चैतन्य मनुष्य जीवोंने सिद्ध किया है। परन्तु जड़ पदार्थ ही 'हम जड़ रूपसे सत्य हैं' ऐसे सिद्ध नहीं करते हैं। तैसे ही भाति कहिये जड़का ज्ञान जड़ पदार्थोंको ही नहीं होता है। परन्तु मनुष्य जीव ही उनको जान सकते हैं। और पदार्थोंके अनुकूलतासे प्रियता भी मनुष्य जीव ही सिद्ध करते हैं। जड़-को-जड़-में प्रियता नहीं होती है। इसलिए नाम-रूपसे जगत्के सर्व पदार्थ अनादि कालसे हैं; तभी "अस्ति, भाति, प्रिय और सत्, चित्, आनन्द पद"

❀ पञ्चीकरण, पृष्ठ १३६-१४१ में लिखा है ॥

मनुष्य जीवोंसे सिद्ध होते हैं। इसलिए चेतन जीव जड़ आनन्द स्वरूप नहीं हैं। परन्तु देहोपाधिसे आनन्दको जानने-वाले और स्वरूपसे स्वयं ज्ञानमात्र अनेक ही हैं। सत्यन्यायी पारखी सद्गुरु श्रीकबीर साहेब कहे हैं:—

"रामानन्द राम रस माते। कहहिं कबीर हम कहि-कहि थाके ॥४॥७७॥"
॥ बीजक, शब्द-७७। टीकायुक्त ॥

अर्थः—विषयानन्द, जगदानन्द, योगानन्द, गन्धर्वानन्द, देवानन्द, त्रिगुणानन्द, प्रेमानन्दादि जितने आनन्द पूर्वमें प्रश्न १७ में कहे हैं, वे सब जहाँ लय हुए, सो रामानन्द (सर्वसे श्रेष्ठ ब्रह्मानन्द) उसी भासरूपी जड़ आनन्दमें भ्रमिक जीव उन्मत्त हुए हैं। परन्तु उक्त सर्व आनन्द हमारे सत्ताओंसे हैं; और हम कैसे आनन्दरूप बनते ? ऐसी समझ हुई नहीं। सद्-गुरु श्रीकबीर साहेब कहते हैं कि, जगत्में सबोंके माने हुए रामानन्दजीको और सर्व मनुष्योंको हम कहते-कहते थक गये; कोई इस धोखेको नहीं छोड़ते हैं। इसीसे अध्यासवश वे अनेक जन्म दुःख भोगते हैं॥

इन प्रमाणोंसे जड़ पदार्थोंमें सत्ता देकर इन्द्रियोंकी स्थिरतासे वा अन्तःकरणमें वृत्ति लय हो, स्पर्शके योगसे भासरूप आनन्दोंको प्रकट करनेवाले भासक जीव आनन्दसे भिन्न उसको जाननेवाले हैं। जैसे 'गुड़' और 'गुड़' के स्वादी भिन्न रहते हैं। तैसे ही चेतन जीव भी जड़ देहके आनन्दोंसे भिन्न हैं ॥

पूर्वोक्त प्रमाणोंसे स्पर्शके योगसे जितने देह सम्बन्धी आनन्द होते हैं, सो सब जड़ हैं। तिनको सत्ता देनेवाला और जाननेवाला चैतन्य जीव मानना मिथ्या बकवाद मात्र है। यह भी नास्तिक मत है, इस पक्षको भी आप अब त्याग ही दीजिये ! ॥

प्रश्न (८२) यदि आनन्द ही चेतन जीव नहीं ठहरता है, तो जीव विषय और भी कहा है:—

"तम आसीत्तमसा गूढमग्रे ॥"–ऋग्वेद मण्डल १० । सूक्त १२६ । मन्त्र–३॥

अर्थः—जगत्की रचनाके प्रथम अज्ञानरूपी मायासे शुद्ध–ब्रह्म आच्छादित था, अर्थात् ब्रह्म चेतन अज्ञानस्वरूप ही रहा ॥

श्लोकः—"आसीदिद[illegible] ॥ ५ ॥"

॥ मनुस्मृतिः, अध्याय १ । अर्द्ध श्लोक–५ ॥

अर्थः—न जाना जाय, ऐसा यह जगत् तमरूप अज्ञानमें या मायामें लीन रहा ॥

इन दो प्रमाणोंसे मैं अज्ञान वा माया ही को जीव मानता हूँ ? ॥

(८२) उत्तरः—मुख्य माया यह जड़ तत्त्वोंका कार्य देह है। और इन्द्रियोंके संस्कार दोषोंसे उत्पन्न जीवोंकी जड़ासक्ति वही अज्ञान है; (तिसको पूर्वके प्रमाण प्रश्न ४५ में देखिये !)। इसलिए जीवोंकी देहासक्ति वही अज्ञान और जड़ देह ही मुख्य माया है। वह कुछ ज्ञान गुणयुक्त चैतन्य जीव नहीं है। क्योंकि अनादि कालसे अहङ्कारयुक्त जीव देह व्यवहार करते हैं; (तिसको पूर्वका प्रमाण प्रश्न १२ में देखिये !)। जगत् किसी समय नहीं था, ऐसा नहीं है, प्रवाहरूप वह अनादि है। ऐसा वेद, शास्त्र, स्मृति आदि तथा सर्व महात्मा पुरुष कहते हैं; (तिनको पूर्वके प्रमाण प्रश्न ४७ में देखिये !) ॥

इस प्रमाणसे जगत् कोई समय नहीं था, ऐसा सिद्ध होता ही नहीं। जगत् कर्त्ता दर्शनके पूर्व प्रकरणके सर्व प्रश्नोंके प्रमाणोंसे जगत्का कोई कर्त्ता ठहरता ही नहीं। इसलिए जगत् प्रवाहरूप अनादि नहीं, किन्तु सदाकालसे ही अनादि है। अनन्त जीव और पाँच

जड़ तत्त्व स्वरूपसे अनादि हैं। और कारणरूप तत्त्वोंके कार्य पदार्थोंकी उत्पत्ति तथा लय प्रवाहरूपसे अनादि है। क्योंकि देह, वृक्ष, घर आदि अनेक पदार्थ उपजते—विनशते यह अनुभव सिद्ध है ॥

पूर्वोक्त कथनसे देहकी प्रीति, आसक्ति, ममता, अहङ्कार, यही नरजीवोंका दृढ़ माना हुआ अज्ञान कहाता है। और जड़ देह या ब्रह्माण्डका पाँच जड़ तत्त्व यही मुख्य माया है। तिस जड़रूप मायाको वा अज्ञानको चैतन्य जीव मानना बड़ी भूल है। यह भी नास्तिक मत है। इसलिए आप यह नास्तिक मतको भी अब सर्वथा छोड़ ही दीजिये ! ॥

प्रश्न (८३) यदि माया वा अज्ञान चेतन जीव नहीं ठहरता है, तो जीव विषय और भी कहा है:—

'ते च बौद्धाश्चतुर्व्विधया भावनया परमपुरुषार्थं कथयन्ति ॥ ते च माध्यमिकयोगाचारसौत्रान्तिकवैभाषिकसंज्ञाभिः, प्रसिद्धाः बौद्धा यथाक्रमं सर्व्वशून्यत्वबाह्यशून्यत्वबाह्यार्थानुमेयत्वबाह्यार्थप्रत्यक्षत्ववादानातिष्ठन्ते॥४॥'

॥ सर्वदर्शन संग्रहागत, बौद्धदर्शनम् ॥ ४ ॥

अर्थः—बौद्ध पण्डितगण चार प्रकारकी भावना द्वारा परम पुरुषार्थ कहते हैं। १. माध्यमिक, २. योगाचार, ३. सौत्रान्तिक, और ४. वैभाषिक, इन चार नामोंसे उक्त भावना चतुष्टय प्रसिद्ध है। माध्यमिक भावनामें सर्वशून्यत्त्व, योगाचार भावनामें बाह्यशून्यत्त्व, सौत्रान्तिक भावनामें बाह्यार्थ अनुमेयत्त्व, और वैभाषिक भावनामें बाह्यार्थ प्रत्यक्ष शून्यवादमें स्थित है ॥

इस प्रमाणसे 'माध्यमिक बौद्ध' सबको क्षणिक मानता है, अर्थात् क्षण—क्षणमें बुद्धिके परिणाम बदलनेसे पूर्व क्षणमें ज्ञात पदार्थ था, वह दूसरे क्षणमें नहीं रहता है। इसलिए सर्व

"क्षणिकरूप" (सर्वशून्य भावना), वह मानता है। प्रवृत्ति है, सो सब दुःखरूप है। प्राप्तिमें कोई सन्तुष्ट नहीं रहता है। एक वस्तुकी प्राप्तिमें दूसरेकी इच्छा बनी रहती है, ऐसा 'योगाचार बौद्ध' "बाह्यशून्य भावना" मानता है। सर्व पदार्थ अपने-अपने लक्षणोंसे लक्षित रहते हैं। गाय वा घोड़ेके चिह्नसे गाय वा घोड़ेका ज्ञान होता है। लक्षण लक्ष्य पदार्थमें सदा रहते हैं। ऐसा 'सौत्रान्तिक बौद्ध' बाह्य पदार्थोंमें अनुमान प्रमाण होनेसे "बाह्यशून्य भावना" मानता है। भावनामें "प्रत्यक्ष एक शून्य" ही पदार्थ है, ऐसा 'वैभाषिक बौद्ध' मानता है ॥

इन प्रमाणोंसे मैं शून्यको ही जीव मानता हूँ ? ॥

(८३) उत्तरः—आप अब विचार करके देखिये ! शून्य, स्थिरवृत्ति वा अभाव है, वह कुछ जीव नहीं हो सकता है। परन्तु शून्यको जाननेवाला, सिद्ध करनेवाला वह चैतन्य जीव उससे न्यारा ही रहता है ॥ तहाँ कहा भी हैः—

चौपाईः—"शून्यहि जानै शून्य न होई। जाननहार जीव है सोई ॥३८॥"
॥ निर्णयसार। चौपाई नं०-३८ ॥

अर्थः—पारख स्वरूप सद्गुरु श्रीपूरण साहेब कहते हैं कि, १. श्रुति नेति-नेति कहके स्थिर रह गई, सो शून्य माना है। २. श्रवण, मनन, निदिध्यासन, साक्षात्कार करके रह गया, सो शून्य माना है। ३. योग धारणा करके लय हुआ, सो शून्य माना है। ४. नित्य-अनित्यका विचार करके स्थिर रह गया, सो शून्य है। ५. बोलते-बोलते चुप हो गया, सो शून्य है, और ६. नीन्दमें सो गया या चोला छूटा बाकी रहा, सो शून्य माना है। शून्य एक लयरूप कल्पना रहित निर्विकल्प स्थिति है। परन्तु शून्यके

जाननेवाला नरदेहधारी जीव नहीं होवैं, तो शून्यका वर्णन कौन करै ? अर्थात् कोई भी नहीं ॥

इस प्रमाणसे शून्य एक जड़ भावना है। कुछ जनैया चैतन्य जीव नहीं है। 'माध्यमिक बौद्ध' त्तणिक बुद्धिका परिणाम जगत् मानता है। परन्तु त्तण–त्तणमें बुद्धिमें जगत्की उत्पत्तिका कोई कारण ही नहीं है। जगत्के पदार्थ भूत और भविष्यत् कालमें भी बने रहते हैं। शून्यका ज्ञाता जीव वस्तु और शून्य ज्ञात अवस्तु दोनों भिन्न हैं। केवल शून्यको अपना ज्ञान कहीं भी नहीं होता है ॥

यदि 'योगाचार बौद्ध' बाह्यशून्य मानता है, तो पहाड़ उसके भीतर ही होना चाहिये ? परन्तु देहमें पहाड़ रहनेके लिए जगह कहाँ है ? इसलिए देखे हुए पहाड़का स्मृति ज्ञान मनुष्योंको रहनेसे बाहर तिसकी प्रतीति होती है। जो कि यदि सर्व दुःख–ही–दुःख मात्र ही होता, तो सुख कुछ भी नहीं होना चाहिये ? 'सौत्रान्तिक बौद्ध' किसी पदार्थको प्रत्यत्त नहीं मानता, तो वह आप स्वयं और उसका वचन भी कल्पना या अनुमान होना चाहिये ? "यह घट आकारवान् सावयव है" ऐसा बोध प्रत्यत्त होता है, कुछ यह अनुमान नहीं है। 'वैभाषिक बौद्ध' बाह्य पदार्थोंको प्रत्यक्ष मानता है; परन्तु जहाँ ज्ञाता है, वहाँ ही ज्ञान प्रत्यक्ष होता है। प्रत्यत्तका विषय जो पदार्थ है, सो बाहर रहता है। परन्तु उसके नाम, रूप गुणादि ज्ञान इन्द्रियों द्वारा चैतन्य जीवको ही प्रत्यक्ष होता है। ऐसा न होवै, तो देखे, सुने, और अनुभव किये हुए पदार्थोंका स्मरण ज्ञाता जीवोंको रहना ही नहीं चाहिये ? सो स्मरण तो जीवको रहता ही है ॥

इस प्रकारसे शून्यका जाननेवाला शून्य यह ज्ञेय पदार्थ नहीं है। परन्तु ज्ञाते चैतन्य जीव सर्व मनुष्योंको सर्व अवस्थाओंमें प्रत्यक्ष ही हैं। अतएव यह भी नास्तिक मत ही है। आप इस नास्तिक बौद्ध मतको अब मत् मानिये ! ॥

प्रश्न (८४) यदि चेतन जीव शून्य नहीं ठहरता है, तो जीव विषय और भी कहा है:—

"आत्मज्योतिरहं शुक्रः सर्वज्योतिरसावदोम् ॥"–महावाक्य उपनिषद् ॥

अर्थः—मैं आत्मज्योति परमात्मा स्वयं शुक्ररूप (वीर्यरूप) रहनेसे सर्व भूत मात्रमें रससे परिपूर्ण तेजवान् हूँ ! ॥

"तेजस्तेजस्विनामहम् ॥" –भगवद्गीता, अध्याय १० । श्लोक-३६"॥

अर्थः–श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं कि, तेजवान् पदार्थोंमें तेज मैं हूँ ! ॥

इन प्रमाणोंसे देहमें मुख्य तेज वीर्यका ही है ॥

एक चार्व्वाक कहता है:—

"वीर्यब्रह्म दिव्य जानात्" ॥

अर्थः—देहमें वीर्य है, वही चैतन्य ब्रह्म है, ऐसा जानिये ! ॥

कोई कहता है कि, जैसे बीजोंकी अङ्कुरोंमें प्रथम दो पत्र निकलते हैं। तैसे ही वीर्यसे देह और जीव दोनों उत्पन्न होते हैं। कोई वृक्षके फलवत् एक जीवसे अनेक जीवोंकी उत्पत्ति मानते हैं॥

ऊपरके प्रमाण अनुसार वीर्य ही जीव ठहरता है। इसलिए वीर्य ही जीव अवश्य होगा ? ऐसा मैं दृढ़तासे मानता हूँ ? ॥

इन प्रमाणोंसे मैं वीर्य ही को जीव मानता हूँ ? ॥

(८४) उत्तरः—सुनिये ! वीर्य जड़ है, वह चैतन्य जीव कैसे होगा ? ॥ तहाँ कहा भी है:—

जाननेवाला नरदेहधारी जीव नहीं होवैं, तो शून्यका वर्णन कौन करै ? अर्थात् कोई भी नहीं ॥

इस प्रमाणसे शून्य एक जड़ भावना है। कुछ जनैया चैतन्य जीव नहीं है। 'माध्यमिक बौद्ध' क्षणिक बुद्धिका परिणाम जगत् मानता है। परन्तु क्षण—क्षणमें बुद्धिमें जगत्की उत्पत्तिका कोई कारण ही नहीं है। जगत्के पदार्थ भूत और भविष्यत् कालमें भी बने रहते हैं। शून्यका ज्ञाता जीव वस्तु और शून्य ज्ञात अवस्तु दोनों भिन्न हैं। केवल शून्यको अपना ज्ञान कहीं भी नहीं होता है ॥

यदि 'योगाचार बौद्ध' बाह्यशून्य मानता है, तो पहाड़ उसके भीतर ही होना चाहिये ? परन्तु देहमें पहाड़ रहनेके लिए जगह कहाँ है ? इसलिए देखे हुए पहाड़का स्मृति ज्ञान मनुष्योंको रहनेसे बाहर तिसकी प्रतीति होती है। जो कि यदि सर्व दुःख—ही—दुःख मात्र ही होता, तो सुख कुछ भी नहीं होना चाहिये ? 'सौत्रान्तिक बौद्ध' किसी पदार्थको प्रत्यक्ष नहीं मानता, तो वह आप स्वयं और उसका वचन भी कल्पना या अनुमान होना चाहिये ? "यह घट आकारवान् सावयव है" ऐसा बोध प्रत्यक्ष होता है, कुछ यह अनुमान नहीं है। 'वैभाषिक बौद्ध' बाह्य पदार्थोंको प्रत्यक्ष मानता है; परन्तु जहाँ ज्ञाता है, वहाँ ही ज्ञान प्रत्यक्ष होता है। प्रत्यक्षका विषय जो पदार्थ है, सो बाहर रहता है। परन्तु उसके नाम, रूप गुणादि ज्ञान इन्द्रियों द्वारा चैतन्य जीवको ही प्रत्यक्ष होता है। ऐसा न होवै, तो देखे, सुने, और अनुभव किये हुए पदार्थोंका स्मरण ज्ञाता जीवोंको रहना ही नहीं चाहिये ? सो स्मरण तो जीवको रहता ही है ॥

इस प्रकारसे शून्यका जाननेवाला शून्य यह ज्ञेय पदार्थ नहीं है। परन्तु ज्ञाते चैतन्य जीव सर्व मनुष्योंको सर्व अवस्थाओंमें प्रत्यक्ष ही हैं। अतएव यह भी नास्तिक मत ही है। आप इस नास्तिक बौद्ध मतको अब मत् मानिये ! ॥

प्रश्न (८४) यदि चेतन जीव शून्य नहीं ठहरता है, तो जीव विषय और भी कहा है:—

"आत्मज्योतिरहं शुक्रः सर्वज्योतिरसावदोम् ॥"-महावाक्य उपनिषद् ॥

अर्थः—मैं आत्मज्योति परमात्मा स्वयं शुक्ररूप (वीर्यरूप) रहनेसे सर्व भूत मात्रमें रससे परिपूर्ण तेजवान् हूँ ! ॥

"तेजस्तेजस्विनामहम् ॥" -भगवद्गीता, अध्याय १० । श्लोक-३६॥

अर्थः-श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं कि, तेजवान् पदार्थोंमें तेज मैं हूँ ! ॥

इन प्रमाणोंसे देहमें मुख्य तेज वीर्यका ही है ॥

एक चार्वाक कहता है:—

"वीर्यब्रह्म दिव्य जानात्" ॥

अर्थः—देहमें वीर्य है, वही चैतन्य ब्रह्म है, ऐसा जानिये ! ॥

कोई कहता है कि, जैसे बीजोंकी अङ्कुरोंमें प्रथम दो पत्र निकलते हैं। तैसे ही वीर्यसे देह और जीव दोनों उत्पन्न होते हैं। कोई वृक्षके फलवत् एक जीवसे अनेक जीवोंकी उत्पत्ति मानते हैं॥

ऊपरके प्रमाण अनुसार वीर्य ही जीव ठहरता है। इसलिए वीर्य ही जीव अवश्य होगा ? ऐसा मैं दृढ़तासे मानता हूँ ? ॥

इन प्रमाणोंसे मैं वीर्य ही को जीव मानता हूँ ? ॥

(८४) उत्तरः—सुनिये ! वीर्य जड़ है, वह चैतन्य जीव कैसे होगा ? ॥ तहाँ कहा भी है:—

साखीः—"बिन्दहि होवै जीव जो, तजि क्यों जात शरीर ? ❀॥"
॥ कबीरपरिचय साखी । अर्द्ध साखी–२४१ ॥

अर्थः—यदि वीर्य ही जीव होता, तो देहमें वीर्य रहते ही जीव देह छोड़ कर क्यों चले जाते हैं ? ॥

इस प्रमाणसे 'वीर्य' और 'जीव' दोनों एक ही स्वरूप नहीं हैं, जीव चैतन्य नित्य है, और देह जड़ अनित्य है; (तिसको प्रमाण पूर्वका प्रश्न ११में देखिये !) । अथवा और भी कहा है:-
"अन्नं वै प्रजापतिस्ततो ह वै तद्रेतस्तस्मादिमाः प्रजाः प्रजायन्त ॥ १४ ॥"
॥ प्रश्न उपनिषद्, प्रश्न १ । मन्त्र–१४ ॥

अर्थः—हे कात्यायन कबन्धी ! यह अन्न ही प्रजापति है। माता–पिताने भक्षण किया जो अन्न, तिससे रक्त और वीर्य उत्पन्न होते हैं। रक्त और वीर्यके संयोगसे देहकी उत्पत्ति होकर तिसमें जीव प्रवेश करके देहधारी प्रजा प्रकट होती है ॥

इस प्रमाणसे जड़ अन्नसे स्त्रीका रज और पुरुषका वीर्य बन कर शरीर उत्पन्न हुए हैं ॥

बीजोंके अङ्कुरोंमें प्रथम दो पत्र निकलते, वे एक ही जातिके रहते हैं। परन्तु नाशवान् जड़ शरीर और अविनाशी चैतन्य जीव, वे दोनों विजाति, केवल जड़ वीर्यसे कैसे उत्पन्न होवेंगे ? जड़ वृक्षके फलवत् एक चेतन जीवसे अनेक अविनाशी चेतन जीवोंकी उत्पत्ति नहीं होती है। क्योंकि वृक्ष और वृक्षके बीज सहित फल, दोनों सड़–गलके मिट्टीमें मिल जाते हैं। तैसी अविनाशी जीवोंकी स्थिति नहीं है। हरवख्त स्त्री–पुरुषके मैथुन समय रज–वीर्य गिर

❀ साखीः—"जो जिव होता बिन्द ही । कहैं विचार कबीर ॥
सङ्गति करते शक्ति सों । तब हीं तजत शरीर ॥२४१॥" क०प०॥

कर शरीरकी उत्पत्ति नहीं होती है। परन्तु और खानियाँ वा मनुष्य खानीमेंसे देहाध्यासवश सूक्ष्म देह सहित जीव आ करके वायुके साथ पुरुषके वीर्यमें प्रवेश किये बाद मैथुन कर्मद्वारा स्त्रीके गर्भ-स्थानमें गर्भकी स्थापना होती है। तिसको प्रमाण बीजक, साखी १६ "हंसा सरवर तजि चले" ❀ (इसकी टीकामें देखिये !)। वहाँ पर विस्तारसे इसका तात्पर्य समझाया है ॥

❀ साखीः—"हंसा सरवर तजि चले। देही परि गौ सून ॥
कहहिं कबीर पुकारिके। तेही दर तेहि थून ॥ १६ ॥"

टीका गुरुमुखः—हंसा कहिये जीव औ सरवर कहिये जीवकी मानन्दी ब्रह्म, ईश्वरादि नाना कल्पना, द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, ऐसी नाना मतकी मानन्दी सोई हंसका मान सरोवर स्त्री विषयादि नाना विषय सोई मान सरोवर, जो हंसका सुखका धाम सोई मान सरोवर। ये अर्थ। जबलग देह साबुत है, तबलग नाना सुख, नाना समाधि, नाना भोग, नाना कर्मोंका विलास हंस करता है। फिर जब देह छूटती है, तब सम्पूर्ण विषय विलास छूट जाता है, न समाधि रहती है, न कर्म, न ज्ञान, न योग, न विषय रहते हैं, सब नाश होते हैं। पर उनका अध्यास हंसके भीतर बीजरूपी रहता है, औ देह शून्य हो जाती है; तब सुषुप्ति अवस्था जीवको होती है। सो मानन्दी सरवर छोड़के मानन्दीका बीज लेके हंस सुषुमना नाड़ीके सङ्ग चले औ देह शून्य पड़ गई, लोग कहने लगे कि मर गया। सो जीव कहाँ है ? सब बाच्यांस पुकारते हो कि कोई विचार भी करके देखते हो। अरे ! तेही दर तेहि थून। अपने स्वरूपकी प्राप्ति बिना फिर जठर योनिमें गया। जैसा कर्मका दर बनाया, तैसा थून होके अध्यास हो गड़ि रहा। दर कहिये, दरार कहिये, भग कहिये, ताते जहाँसे सब पैदा हुए फिर वोही भगमें आसक्त हो रहे। ताते जब देह त्याग भई औ हंस जगत् तजि चले सुषुप्तिरूप होके सुषुमना पवनमें मिले; सो सुषुमना जाय मैथुन समय पुरुषकी सुषुमनामें मिली। पुरुषकी सुषुमना जड़ रेतमें मिली, ताते सुषुमनाने हंसको रेतमें मिलाय दिया, तब हंस रेत रूपी होके तेही दर भगदरमें चले। थून कहिये, थूनी कहिये लिङ्ग कहिये मैथुन कहिये,

इन प्रमाणोंसे जड़ अन्न–जलसे बना हुआ वीर्य जड़ है। उसको अविनाशी, चैतन्य जीव मानना यह अज्ञानता है। यह मत भी विषय लम्पट नास्तिकोंका है; यह मत कदापि ग्रहण करने लायक नहीं है। आप इस मतको अब त्याग ही दीजिये! ॥

प्रश्न (८५) यदि वीर्य चेतन जीव नहीं ठहरता है, तो जीव विषय और भी कहा है:—

"स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥ ७ ॥"

॥ कठ उपनिषद्, अध्याय २ । वल्ली ५ । मन्त्र–७ ॥

अर्थः—देहाभिमानी, अज्ञानी, मूढ़ पुरुष अपने–अपने कर्मानुसार वृक्षादि स्थावर भावको प्राप्त होते हैं ॥

श्लोकः—"तमसा बहुरूपेण, वेष्टिताः कर्महेतुना ॥
अन्तस्संज्ञा भवन्त्येतो, सुखदुःखसमन्विताः ॥ ४९ ॥"

॥ मनुस्मृतिः, अध्याय १ । श्लोक–४९ ॥

अर्थः—जो वृक्ष, बेलि–तृणादि अनेकरूप धारण किये हुए, विचित्र दुःख फल हैं जिनका, और कर्म–धर्म हैं कारण जिनका, ऐसे तमोगुणसे घिरे हुए हैं। और सुख–दुःखसेयुक्त अन्तःसंज्ञा वाले, अर्थात् वे भीतरसे ज्ञानयुक्त होते हैं ॥

अथवा जिस–जिस शाखारूप अवयवसे जीवका वियोग

सो मैथुन समय लिङ्ग द्वारेसे भग द्वारे होके गर्भवास प्राप्त भये। तो चाहे कर्म करे, चाहे योग करे, चाहे उपासना करे, चाहे ज्ञान अनुभव होय, चाहे जगत्की विस्मृति करके सदा समाधिस्थ रहै, परन्तु गर्भवास छूटता नहीं, पारखकी प्राप्ति हुए बिना। तो कर्म अध्यास, उपासना अध्यास, योग अध्यास, समाधि अध्यास, ये ही गर्भवासमें जानेका बीज है। ये अभिप्राय। ताते सम्पूर्ण बीज पारखसे त्याग होता है औ बिना पारख हंस बकु एक रङ्ग ब्रह्म हो रहे हैं, ताते गुरु परखाते हैं। ये अर्थ ॥ त्रिजासे बीजक साखी ॥ १६ ॥

होता है, सो-सो वृक्षका भाग सूख जाता है; (तिसको पूर्वका श्रुति प्रमाण प्रश्न ११ में देखिये !)। अथवा न्यायसिद्धान्त-मुक्तावलिके प्रथम परिच्छेदके कारिका ३८ में कहा है:—

"वृक्षोंमें प्राण होनेसे स्वयं बढ़ने और फूटने, गुमड़ा होने, एकका दूसरे पर कलम बन्ध जाने, और तिन पर बाँदा भी होता है। इसलिए वै देहधारी जीव हैं ॥"

इन प्रमाणोंसे स्थावरखानी वृक्षादि वनस्पति सर्व देहधारी जीव हैं, ऐसा मैं मानता हूँ ? ॥

(८५) उत्तरः—स्थावर या उद्भिज खानी वृक्षादिकोंकी जड़ तत्त्वोंके अनेक त्रसरेणु, अणु, परमाणुओंके मिलापसे उत्पत्ति हुई है ॥

तहाँ कहा है:—

चौ०-"उष्मज जैसे दुई अधारा। तैसे स्थावर तत्त्व पसारा ॥ २४८॥
जीवत भाव स्वतः तहाँ नाहीं। तत्त्वसंयुक्त प्रकाश दिखाहीं ॥२४९॥"
॥ गुरुबोध, पञ्चग्रन्थी ॥ चौपाई नं० २४८-२४९ ॥

अर्थः—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि, जैसे 'पिण्डज' और 'अण्डज' इन दो खानियोंमें देहके द्वारोंसे बहते हुए मल, मूत्र, पसीना इत्यादिकोंके सम्बन्धसे खटमल, चीलर, जूँ, कृमि आदि उष्मज खानीके जीव देह धरके प्रकट होते हैं। वै अन्य खानियोंसे आके तत्त्वों सहित गन्ध, रस, और रूपमें प्रवेश करके देहोंको धर लेते हैं। तैसे ही मुख्य पृथिवी, और जल, इन दो जड़ तत्त्वोंके विशेष सम्बन्धसे स्थावर खानी विशेष विस्तारसे प्रकट हुई है। वहाँ जाननेहारे, ज्ञानस्वरूप चैतन्य जीव नहीं हैं। केवल जड़ तत्त्वोंका प्रकाश हरापन वहाँपर देख पड़ता है। जैसे जड़ तत्त्वोंके संयोगसे दीपकका जड़ ज्योति प्रकाश दीखना।

तैसे ही अङ्कुरजोंका हरापन भी जड़ तत्त्वोंके जड़ प्रकाशमात्र ही है; ऐसा जानना चाहिये ॥

चौ०–"लोहू चर्म है चिखुर अधारा । जल पृथिवी अङ्कुरज को सारा॥४०॥
पाँच तत्त्वको उधमज आहीं । इनके भच्छे दोष कछु नाहीं॥४१॥"
॥ मानुषविचार पञ्चग्रन्थी ॥ चौपाई नं० ४०–४१ ॥

अर्थः—जैसे जल और पृथिवीका मुख्य भाग देहमें 'रक्त' और 'त्वचा' है। तिनके ही विशेष सम्बन्धसे देहमें केशोंकी उत्पत्ति हुई है। तैसे ही मुख्य 'पृथिवी' और 'जल' इन दो जड़ तत्त्वोंसे पृथिवी पर अङ्कुरज खानी अर्थात् वृक्ष, बेलि, तृणादि देहके जड़ बालोंवत् प्रकट हुई हैं। इसी सबब अनाज, कन्द, मूल, पत्र, फल–फूलादि सेवन वा भोजन करनेमें कुछ भी दोष नहीं लगता है, परन्तु अमनियाँ करके शुद्ध देख कर ग्रहण करना चाहिये !॥

वृक्षादि फूटना और बढ़ना, गुमड़ा होना, एकका दूसरे पर कलम बन्ध जाना, तिन पर बाँदा होना, इत्यादि जल तत्त्वमें स्वयं शक्तियाँ हैं; (तिसको पूर्वके प्रमाण प्रश्न ६४ में देखिये !)। इसलिए वृक्षादि स्थावर खानी देहधारी अनेक जीव नहीं हैं। परन्तु मुख्य पृथिवी और जल तत्त्वसे वह उत्पन्न हुई है, इसीसे वह जड़ है। जहाँ सुख–दुःखादि जानना 'धर्म', जाग्रत्, स्वप्न, और सुषुप्ति, ये तीन 'अवस्थाएँ' इन्द्रियों द्वारा चलन, बोलनादि 'क्रियाएँ' और इच्छा–अनिच्छादि 'शक्ति' प्रकट है, वहाँ ही चैतन्य जीवोंका निवास है। ऐसा देहधारी जीवोंका अनुभवसिद्ध लक्षण है। परन्तु इन सबोंका अभाव रहनेसे वृक्षादि स्थावर खानी केवल तत्त्वरूप जड़ हैं॥

प्रश्नके प्रमाणसे जैसे तत्त्वोंके कार्यरूप वृक्षादि अंकुरोंमें फूटना–बढ़नादि धर्म और वायु लेनी–छोड़नी, ये कर्म रहनेसे तिनमें

सुख-दुःखका अन्तरज्ञान माना है। तैसे वृक्षोंके कारणरूप सूखे बीजोंमें भी सुख-दुःखका अन्तरज्ञान मानना चाहिए ? और बढ़नेवाले पाषाण, धातु इत्यादि, वायुसे फूलनेवाले मुर्दे, पृथ्वी, जल, तेज, और वायु, ये कर्म-धर्मवाले तत्त्व और तिन तत्त्वोंके अनेक त्रसरेणु, अणु, परमाणुओंसे बढ़नेवाले अनेक कार्यरूप पदार्थोंमें भी अन्तरज्ञान मानना चाहिये ? सो प्रत्यक्ष अनुभवसे असिद्ध है। इसलिए कारणरूप तत्त्व सहित तिनके कार्य वृक्ष, पाषाणादि जड़ पदार्थ और अनेक चैतन्य जीव दोनों भिन्न धर्मवाले विजातीय हैं॥

प्रश्नके प्रमाणसे वृक्षोंकी डालियाँ सूखनेसे कुछ जीव निकल जाता है, और कुछ रहता है, ऐसा मानना, ये असम्भव बात अविनाशी जीवोंमें घट नहीं सकती है। इसलिए तत्त्वोंकी कला शून्य होनेसे अर्थात् वृक्षोंके जड़ोंको पूर्ण जल नहीं मिलनेसे डालियाँदि सूखनेका कारण है। वृक्षोंमें 'प्राण वायु' और 'जीव' नहीं है। परन्तु तिनमें चलनीवत् सूक्ष्म-सूक्ष्म अनन्त छिद्र रहनेसे जड़ों द्वारा अग्निकी सहायतासे सबमें जलका रस भर कर वे हरे-भरे रहते हैं। और जड़ोंका जल सूख जानेसे, तिनको घुन लगनेसे, वे सब सूख जाते हैं। ये ही अनाज, पेड़, तृण, बेलि आदि अङ्कुरज खानीकी व्यवस्था है। वृक्षोंमें, फल, फूल, पत्तियाँदिकोंमें देहधारी कृमि, कीटादि जीव अलगसे रहते हैं। तिनकी हिंसा शक्ति अनुसार जहाँ तक बने, तहाँ तक बचाना चाहिये। परन्तु केवल स्थावर खानी वृक्षादि देहधारी चेतन जीव नहीं है, ऐसा अब आप विवेक करके जान लीजिये !॥

पूर्वोक्त निर्णय कथनसे स्थावर वा उद्भिज वृक्षादि अङ्कुरज खानी सुख-दुःखके अन्तर ज्ञान रहित जड़ है। उसी खानीको

ज्ञान धर्मवाले, देहधारी, चैतन्य जीव मानना विवेक दृष्टिसे असिद्ध है। यह भी नास्तिक मत है; इसको भी त्यागने ही योग्य है। अतः आप अब इसे त्याग ही दीजिये ! ॥

प्रश्न (८६) यदि वृक्षादि स्थावर खानी देहधारी जीवयुक्त नहीं ठहरती; तो एक, सत्ताधारी चैतन्य जीवसे अनेक जीवोंकी उत्पत्ति होती है। तहाँ कहा भी है:—

"यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्त्येवमेवास्मादात्मनः सर्वे प्राणाः सर्वे लोकाः सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि व्युच्चरन्ति ॥"

॥ बृहदारण्य उपनिषद्, अध्याय २। ब्राह्मण १। मन्त्र-२०॥

अर्थः—जैसे अग्निसे अनेक सूक्ष्म-सूक्ष्म चिनगारियाँ निकलती हैं। तैसे ही परमात्मासे सर्व प्राण, सर्व लोक, सर्व देव, भूतजात उत्पन्न होते हैं॥

अथवा जैसे एक दियासे अनेक दिये लग जाते हैं; तैसे ही एक जीवसे अनेक जीव उत्पन्न होते हैं, ऐसा मैं मानता हूँ ? ॥

(८६) उत्तरः—एक, अखण्ड, शुद्ध चेतन जीवसे अनेक चेतन जीव उत्पन्न नहीं होते हैं। क्योंकि जितने कारणसे कार्य उत्पन्न होते हैं, वे अपने स्वरूपसे भिन्न नहीं रहते हैं; अर्थात् दोनों एक ही स्वरूप रहते हैं; (उसे पूर्वका प्रमाण प्रश्न १० में देखिये !)॥

इस प्रमाणसे अनेक परमाणुओंके समूहरूप अग्नि और दियाओंका ज्योति दोनों विशेष तेज जड़ तत्त्वरूप हैं। तिनके कार्य अनेक चिनगारियाँ और अनेक दिये उत्पत्ति-लय होनेवाले रहनेसे वे भी स्वयं जड़ हैं॥ परन्तु जीव विषय कहा है:—

"न जीवो म्रियत ॥"—छान्दोग्य उपनिषद्, अध्याय ६। खण्ड ११। मन्त्र ३॥

अर्थः—चेतन जीवका नाशरूप लय नहीं। वह अखण्ड, अमर

है; अर्थात् जीव किसीके कारण—कार्य नहीं है, अनादि अनन्त हैं ॥

श्लोकः—"जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ॥ २७ ॥"

॥ भगवद्गीता, अध्याय २ । अर्द्ध श्लोक–२७ ॥

अर्थः—जिस पदार्थको जन्म (उत्पत्ति) है; उसका मृत्यु नाशरूप लय निश्चयसे होता है ॥

अथवा जगत् प्रवाहरूप अनादि है; (तिसको बहुतसे पूर्वके प्रमाण प्रश्न ४७ में देखिये !) ॥

इन प्रमाणोंसे कार्य रहित, अखण्ड, अनादि, अविनाशी, अगणित चेतन जीव हैं। इसलिए अनेक खण्डयुक्त, जड़ तत्त्वोंके कार्यवत् शुद्ध, अखण्ड, एक चेतन जीवसे अनेक चेतन जीव न उत्पन्न हुए, न उत्पन्न होंगे ? क्योंकि उत्पत्तिवाला पदार्थ नाशवान् रहता है। यह भी नास्तिक मत है, इसको भी आप अब छोड़ ही दीजिये ! ॥

प्रश्न (८७) हे दयानिधे ! चेतन जीव अनेक हैं, ऐसा आप कहते हैं। परन्तु वह स्वरूपसे एक ही पदार्थ है, और उपाधि भेदसे अनेक दीखते हैं ॥ तहाँ कहा भी है:—

"आलोमभ्य आनखेभ्यः ॥" छान्दोग्य उपनिषद् । अ० ८ । खण्ड ८ । मन्त्र १ ॥

अर्थः—शिरके चोटीसे पगके नखोंतक चैतन्य सर्व शरीरोंमें उपाधि भेदसे वर्त्तते हैं। जैसे घटाकाश। जो उपाधि छूट गई, तो महाकाशवत् व्यापक, एक ही चैतन्य है ॥

"आभास एव च ॥ ५० ॥" व्यास ब्रह्मसूत्रः ५० । अध्याय २ । पाद–३ ॥

अर्थः—जैसे जलमें सूर्यका आभास (प्रतिबिम्ब) होता है; तैसे अन्तःकरणमें परमात्माका प्रतिबिम्ब जो जीव, वे उपाधि भेदोंसे अनेक हैं। और स्वरूपसे चैतन्य एक ही है। जैसे एक

घटमेंके जलका प्रतिबिम्ब कम्पनेसे दूसरे घटमेंका जल नहीं कम्पता है। तैसे एक जीवके कर्मको दूसरा जीव नहीं भोगता है। जिनके मतमें व्यापक नाना जीव हैं, तहाँ सर्व जीवोंका सर्व शरीरोंके साथ सम्बन्ध रहनेसे एक पुरुषके कर्मका फल दूसरे पुरुषको भोगना चाहिये ? ॥

इन दो प्रमाणोंसे मैं शुद्ध चेतन जीव स्वरूपसे एक ही मानता हूँ ?॥

(८७) उत्तरः—सुनिये ! अविनाशी, अखण्ड चेतन जीव किसीका कार्य नहीं रहनेसे अनादि कालसे अनेक ही हैं; तहाँ कहा भी है:—"एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो ॥ ६ ॥"

॥ मुण्डक उपनिषद् । मुण्डक ३ । खण्ड १ । मन्त्र-६ ॥

अर्थः—यह अतिसूक्ष्म जीवात्मा चित्तसे जानने योग्य है ॥

परन्तु चित्त स्वयं जड़ है, और चेतन मनुष्य जीव चित्त सहित सबको जानते हैं। चित्त जीवकी सत्तासे चेतनवत् भासता है। तथापि वह कुछ चेतन जीवको जाननेमें समर्थ नहीं है। जीवको अतिसूक्ष्म, तो स्थूल बुद्धि वाले पुरुषोंके लिये शास्त्रोंमें कहा गया है। कुछ जीव अतिसूक्ष्म परमाणुवत् नहीं है। वै तो निरे शुद्ध ज्ञानस्वरूप अनेक ही हैं। तिनको साकार वा निराकार कहना नहीं बनता है, इसको आगे कहेंगे ॥

शब्दः—"माई ! मैं दूनों कुल उजियारी" ❀ ॥ १ ॥ बीजक, शब्द-६२ ॥

❀ "एक नाम मैं बदिकै लेखों । कहहिं कबीर पुकारी ॥ ६२ ॥" बीजक ॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि एक आत्मा जो कहते हो, सो सदा बन्ध है, कबहीं मुक्त नहीं। भला ! जो आत्माको मुक्त मानिये, तो बन्ध किसको मानिये ? आत्मा तो एकदेशी नहीं, मुक्त तो एकदेशी होता है। सर्व देशमें तो नाना प्रकारके कष्ट भोगता है, औ अनेक बन्धनमें है। जो बन्धनमें नहीं होता, तौ नाना प्रकारका दुःख-सुखका पुकारा क्यों होता है ? औ नाना प्रकारका उपदेश

इसकी टीकामें पारखनिष्ठ सद्-गुरु श्रीपूरण साहेब लिखे हैं कि, सर्वदेशी (व्यापक) माने हुए ब्रह्म, ईश्वरादि कर्त्ता मानने-वालोंकी मुक्ति नहीं होती है। परन्तु एकदेशी माननेवालोंकी ही मुक्ति होती है; ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव है ॥

इन प्रमाणोंसे दृश्य-अदृश्य जड़ पाँच तत्त्वों और जड़ पदार्थोंसे भिन्न द्रष्टे (साक्षी-जाननेवाले) अगणित चेतन जीव एकदेशी ही हैं। जहाँ 'व्यापक' नित्य पदार्थ माना गया, तहाँ दूसरा 'व्याप्य' पदार्थ नित्य मानना अवश्य है। इसीसे "व्यापक-व्याप्य" दोनों पदार्थ एकदेशी ही सिद्ध होते हैं। जैसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु, इन चार अनादि तत्त्वोंके अनन्त, अखण्ड परमाणु, अणु और त्रसरेणु, परस्पर एकत्र मिल कर एक स्वरूप बन ही नहीं सकते हैं। परन्तु अपनी-अपनी आकर्षण शक्तिके संयोगसे मिश्रित भिन्न-भिन्न सर्वत्र स्थित हैं। सर्व परमाणुओंमें "स्नेहाकर्षण शक्ति" है; (उसे प्रमाण पूर्वक प्रश्न ६४ में देखिये !)। तैसे ही अनादि, अखण्ड, अविनाशी निरे ज्ञानाकार अनन्त चेतन जीव परस्पर मिल कर एक ही स्वरूप कैसे बन जायेंगे ? ऐसा कभी भी नहीं बन सकते हैं; अतः जीव एकदेशी ही हैं ॥

और खानियोंमें जीव कैसे जाते हैं, सो सुनियेः—

दृष्टान्तः—किसीने एक चूहा पकड़वा करके बड़ी मुँहवाली काँचकी बोतलमें डाल कर, काँचका ही डाँट लगा करके उसे बन्द कर दिया। फिर तुरन्त शीशा नामक धातु पिघला करके उसके

किसको होता है ? इसवास्ते जिस बातका अनुमान तुमने कर रक्खा है, सो कहाँ है ? जिससे सब अनुमान छूटै, सो गुरुपद जाको पारख कहते हैं। ये अर्थ ॥ त्रिज्यासे बीजक शब्द-६२ ॥

सन्धियोंमें भर दी गई। इससे क्या होगा? कि, बाहरकी हवा कम मिलनेसे तलमलाय-तलमलाय वह चूहा की मृत्यु हो गई। अब यह शङ्का होती है कि, उसका जीव बोतल फूटे तक वहाँ ही रहा? कि, बाहर निकल गया ?॥

तिसका समाधान ऐसा है कि, काँच ढारी गई है, तिनमें अनेक झीने-झीने गोलाकार त्रसरेणु, अणु, परमाणुओंका संयोग और चलनीवत् अति सूक्ष्म-सूक्ष्म अनेक, पोलाकार, अदृश्य छिद्र हैं। इसीसे वह फूटता है; फिर उसका बारीक-बारीक चूर्ण पीसके झीनी रज कण बना भी सकते हैं। सो उनमें सन्धियाँ होनेके कारणसे ही ऐसा होता है। अतएव तिनमेंके किसी छिद्र द्वारा अपनी वासनासे अध्यास वश अन्य खानियोंमें जाके फिर वह जीव स्थूल देह धारण करता है॥
इस दृष्टान्तसे जीव अखण्ड, एकदेशी अनेक ही हैं; यह सिद्ध हुआ॥

अब प्रत्यक्ष प्रमाण देकर कहते हैं:—जड़ पाँच तत्त्व और. अनेक देहधारी चेतन जीव ये छः पदार्थ भिन्न-भिन्न नित्य रहनेसे स्वरूपसे सर्व एकदेशी ही हैं। उक्त छः पदार्थ नित्य हैं; (उसे बीजक प्रमाण पूर्वके प्रश्न ५४ में देखिये!) किसी पदार्थमें सुख जानके आसक्तिसे वा भूलसे उसे ग्रहण करना, और उसमें दुःख देख कर उसे त्याग देना। ऐसी सर्व मनुष्य जीवोंमें अपनी-अपनी स्वयं शक्ति भी प्रत्यक्ष प्रतीत होती है। योगीजन देहके प्राणादि सर्व वायु सहित जीवोंकी सर्व वृत्तियोंको एकदेशी मस्तकमें चढ़ाय, शून्य समाधिस्थ हो जानेसे तिनकी देहें केवल मुर्दावत् बन जाती हैं। 'सुषुप्ति' और 'स्वप्न' अवस्थामें जीवोंके वृत्तियोंका बासा या लक्ष एकदेशी हृदय और कण्ठमें रहता है, ऐसा ज्ञानीजन

मानते हैं। मूर्च्छा, सुषुप्ति और मदिरादि विशेष नशाओंमें नर जीवोंको सर्व शरीर भरका ज्ञान ही नहीं रहता है। मन, बुद्धि, और दश इन्द्रियोंमें सबकी क्रियाएँ गिरनीके चक्रोंवत् एक ही साथ चलती नहीं। अन्तर्मुख–बहिर्मुख लक्ष (वृत्ति) होती रहती है॥

पूर्वोक्त लक्षणोंसे सर्व जीव एकदेशी ही हैं, तिनको देह भर व्यापक मानना यथार्थ नहीं। व्यापक मानना तो सिर्फ कल्पना मात्र, होनेसे अयुक्त है॥

अतिसूक्ष्म साकार वा निराकार परमात्माका प्रतिबिम्ब होना असिद्ध है; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न ५० में देखिये !)। प्रतिबिम्ब दृश्य, साकार, ज्ञान रहित केवल जड़ रहता है, यह भी प्रत्यक्ष है। सर्व जीवोंकी क्रियाएँ भिन्न, सुख–दुःखादि अनुभव भिन्न, राग–द्वेषादि विकार भिन्न–भिन्न ऐसी प्रत्यक्ष प्रतीति होती ही हैं। इन कारणोंसे नित्य जीव अनेक ही हैं। प्रत्यक्ष अनुभवसे देखिये ! तो "जहाँ इच्छाशक्ति, देहकी अनेक क्रियाएँ, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, ये तीन अवस्थाओंके भोग, पदार्थों और सुख–दुःखादि जाननेका ज्ञान, और तीनों कालकी सत्यतारूप अमरता, ❀ ये पाँच गुण दिखाई देते हैं। तहाँ ही देहधारी चेतन जीव हैं", और तत्त्वादि सर्व पदार्थ निर्जीव (जड़) हैं। ऐसा यथार्थ जानना चाहिये ! ॥

जिनके मतमें जीव व्यापक अनेक रहके भी स्वरूपसे एक ही व्यापक है, तो व्यापक एक ही चेतनमें देहरूप अनेक उपाधियाँ क्यों हो गई ? जड़ अनादि तत्त्व रहे बिना ग्रहण, त्याग, भ्रम, भूल, वासना, इच्छा, कर्मादि कैसे प्रकट होंगे ? देखिये ! सर्व

❀ साखीः—"इच्छा क्रिया अवस्था। ज्ञान अमरता होय॥
ये लक्षण जहाँ पाइए। जीव जानिये सोय॥ १॥"

शरीरोंसे एक स्वरूप व्यापक चैतन्यका सम्बन्ध रहनेसे एक जीवका कर्म एक जीव भोगेगा; अर्थात् एक जीव बद्ध रहेगा, तो सर्व मुक्त जीव भी बद्ध रहेंगे। एक को सुख वा दुःख हुआ, तो सर्व जीवोंको वैसे ही सुख और दुःख प्रतीत होने चाहिये ? परन्तु वैसे प्रतीत होते तो नहीं। इसलिए जिनके मतमें सत्यन्यायसे अनेक जीव एकदेशी और किसीका कार्य वै नहीं रहनेसे ज्ञानस्वरूपमें भी अनेक, अनादि, नित्य ठहरनेसे अपने-अपने कर्मोंके फल पृथक्-पृथक् सर्व जीव भोगेंगे, और मुक्तदशामें अनेक ही निज-निज स्वरूप स्थित रहेंगे। इसलिए यह कुछ दूषण (दोष) नहीं है। परन्तु भूषण (यथार्थ न्यायका कथन) है, ऐसा जानना चाहिये ! ॥

पूर्वोक्त निर्णय कथनसे अखण्ड चेतन जीव अनादि कालसे अनेक ही हैं। वै अनेक जीव स्वरूपसे न कभी एक हुए हैं, न कभी एक हो जावेंगे। नित्य, अनेक चेतन जीवोंको स्वरूपसे व्यापक, एक मानना मिथ्या कपोल कल्पना ही है। यह भी नास्तिक मत है, इस मतको भी आप ग्रहण नहीं करिये ! ॥

सत्य न्यायसे पारख विचार करके उक्त अयुक्त नास्तिक मतोंको अब आप दृढ़तासे परित्याग करिये ! ॥

अब अनेक मतवाले जड़ देहवादी वा जड़ पदार्थवादी नास्तिक गुरुवा लोग तथा कर्त्तावादी भ्रमिक गुरुवा लोग और संसारी विषयासक्त मनुष्य इनका सर्व पक्ष सत्य विवेक करके छोड़ ही दीजिये ! ॥

चारों वेद, षट् शास्त्र, स्मृति, पुराणादि कोई भी ग्रन्थ या कोई भी गुरु होवें, उसका पूर्वपक्षका सत्य उपदेश अर्थात् विवेक, वैराग्य, दया, क्षमा, शान्ति आदि शुद्ध रहनीका ग्रहण और स्त्री-सम्भोगादि विषयाशक्ति और अनाचारके सर्व कर्म हंसवत त्यागना:

उनको ग्रहण करने योग्य है। परन्तु अन्याययुक्त अनेक ग्रन्थोंके और गुरुवा लोगोंके उत्तरपक्ष (सिद्धान्तोंके पक्ष) सर्व छोड़ देने ही योग्य हैं। ऐसा आप अन्तःकरणमें अब धारण कर लीजिये ! ॥

॥ ❀ ॥ इति श्री पारखनिष्ठ सद्गुरु आचार्य्य श्रीकाशीसाहेब विरचित—
निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन सद्ग्रन्थे—नास्तिक मत दर्शन नामिका
द्वितीय प्रकरणम् परिसमाप्तम् ॥ २ ॥ ❀ ॥

प्रिय सन्त—महात्माओ ! तथा सज्जनवृन्दो !

अतिशय विचार पूर्वक सोच समझ कर देखिये ! कि, जो कोई "चेतन जीव और जड़ तत्त्वों" को छोड़ कर ईश्वर, ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, भगवान्, खुदा, बिस्मिल्ला, ईसा, ईट्ठल, विट्ठल, भूत, प्रेत, ब्रह्मपिशाच, चुड़ैल, देवी, देवता, सत्यलोक और वैकुण्ठ, कैलास आदि लोकोंको भ्रम—कल्पनासे मानते—मनाते हैं, सोई 'नास्तिक' हैं। जो चीज है ही नहीं, और उसको जो माने, सोई तो नास्तिक है, ऐसा जानिये ! ॥ कबीर परिचय साखीमें कहा हैः—

साखीः—"है ताको जानै नहीं। नाहीं को करै मान ॥
कहहिं कबीर पुकारिके। सो नास्तिक अज्ञान ॥ ७३ ॥"

इसके अलावे स्व-स्वरूप परिचय और बन्धनोंसे छूटनेके लिये तथा स्व-स्वरूपकी स्थितिके लिये विचार पूर्वक आगेके तृतीय प्रकरणको देखिये और सत्य पारख बोधको ग्रहण धारण कीजिये ! ॥

—सम्पादक ॥

॥ ❀ ॥ इति नास्तिक मत दर्शन प्रकरण सम्पूर्णम् ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

(पारखनिष्ठ सद्गुरु आचार्य्य श्रीकाशीसाहेब विरचित ।)

॥❀॥ निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन सद्ग्रन्थः ॥❀॥

जीवोंकेलक्षणमुक्तदशादिदर्शन

॥❀॥ अथ तृतीय प्रकरण प्रारम्भः ॥ ३ ॥❀॥

प्रश्न (८८) आपके सत्यन्यायको यथार्थ जानके सर्व भ्रमिक और नास्तिक मतवादी गुरुवा लोगोंका तथा अन्याययुक्त सर्व शास्त्रोंके सिद्धान्तोंका पक्ष अब मैंने छोड़ ही दिया है। और अनादि, अविनाशी चेतन जीव स्वरूपसे अनेक हैं; ऐसा मैंने निश्चय भी कर लिया है ॥

परन्तु ऐसे जाननेसे जगत् कर्त्ता माननेमें कौन-सा दोष आता है ? सो आप दया दृष्टिसे और भी समझा करके कहिये ? ॥

(८८) उत्तरः—अब आप ध्यान पूर्वक सुनिये ! जगत् कर्त्ता माननेमें दोषका कारण भी कहा हैः—

“सदकारणवन्नित्यम्॥ १॥”–वैशेषिक सूत्र १। अध्याय ४। आह्निक १॥

अर्थः—जो प्रत्यक्ष हो, जिसका कारण कोई भी न हो, वह “नित्य पदार्थ” है ॥

जिस पदार्थकी उत्पत्ति होती है, उसका नाश भी अवश्य होता है।(तिसको पूर्वका प्रमाण प्रश्न ८६ में देखिये !) ॥

इन दो प्रमाणोंसे अविनाशी पदार्थ स्वरूपसे अनादि और तत्त्वोंके कार्यरूप देह, वृक्ष, गृहादि उत्पत्तिवान् पदार्थ नाशवान् हैं; ऐसा सत्यन्याय ठहरता है। कार्य रहित, अविनाशी चेतन जीव ज्ञानस्वरूप, अनन्त हैं; (तिसको पूर्वके प्रमाण प्रश्न ८६ और ८७ में देखिये!)। देह रहे तक जाग्रत् और स्वप्न अवस्थामें आपके चेतन जीव स्वरूपके नाशका अनुभव प्रत्यक्ष किसी मनुष्यको होता नहीं है। क्योंकि जीव बिना पाप-पुण्यादि अनेक कर्म और पदार्थोंको जानना नहीं होता है। सुषुप्ति अवस्थामें (गाढ़ी नीन्दमें) सुखसे सोनेका भाव और जगत्का अभाव, ये दो स्मृतिज्ञान जाग्रत्में सर्व मनुष्योंको रहते हैं। इसलिए तीनों अवस्थाओंमें जीव अविनाशी हैं। ऐसी मनुष्योंको प्रत्यक्ष प्रतीति है। अथवा गर्भसे उत्पन्न हुए बालकोंको भी स्तन पान करना, नीन्द लेना, दुःखसे रोना, इत्यादि पूर्वजन्मोंके षट् पशुधर्मोंका संस्कार देखनेमें आते हैं। इसलिए देहधारी सर्व जीव पूर्व कालमें थे, और वे अनेक कर्मानुसार वासनावश बारम्बार पुनर्जन्म लेते हैं; (तिसको पूर्वका प्रमाण प्रश्न २७ में देखिये !)। इसीसे भूत, वर्त्तमान, और भविष्यत् इन तीनों कालोंमें जीव अनादि तथा नित्य हैं। अनन्त देहधारी जीव प्रत्यक्ष दीख रहे हैं। वे देहोंको धारण करते और छोड़ते, अर्थात् आवागमनके चक्रमें पड़े हैं; यह भी प्रत्यक्ष सिद्ध है। जैसा जलधाराका प्रवाह खण्डित नहीं होता; तैसा जीवोंके आवागमनका प्रवाह (शरीर धरने-छोड़नेका प्रवाह) अनादि कालसे चला आया है। देखिये ! प्रथम कालमें पुरुष है ?

कि स्त्री ?, बीज कि वृक्ष ?, दिन कि रात्रि ?, और कर्म कि प्रारब्ध ?, इसीका खोज या शोध, पता किसीको लगा ही नहीं। इसी सबब बहुतसे मतवादी जगत्को प्रवाहरूप अनादि, अर्थात् बारम्बार जगत्को उत्पत्ति—प्रलय करने वाला कर्त्ता मानते हैं, सो कल्पना मात्र है। (तिनको पूर्वके प्रमाण प्रश्न ४७ में देखिये !)। यदि किसीको जगत्की उत्पत्तिका अन्त नहीं लगा, तो उसके प्रलयका अन्त भी कैसे लगेगा ? इसलिए जगत् कर्त्ता मानना यह मिथ्या कल्पना है; (तिसको जगत् कर्त्ता दर्शन प्रकरणके सब प्रश्नोंको देखिये !)। देहके प्रारब्ध भोगोंको सम्पूर्ण भोगे बिना किसीका भी शरीर नहीं छूटता; (उसे पूर्वका श्रुति प्रमाण प्रश्न ३२ में देखिये !)। इसलिए जगत्का एक ही कालमें प्रलय होना, असम्भव दोषयुक्त है ॥ और भी कहा है सो सुनिये !:—

श्लोकः—"अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥ ४५ ॥"

॥ भगवद्गीता, अध्याय ६। अर्द्ध श्लोक-४५ ॥

अर्थः—अनेक जन्मोंका सत्सङ्ग और ज्ञानसाधनोंका अभ्यास रहनेसे नरजन्म लेते—लेते कोई एक मनुष्य जीव मुक्त हो जाता है ॥

इस प्रमाणसे एक ही मनुष्य जीवकी अनेक जन्म लेते—लेते मुक्ति हो जाती है। परन्तु दूसरे अनेक मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि अनन्त जीवोंके अनन्त शरीर तत्त्वोंके कार्यसे बने हैं। इसलिए कारणरूप जड़ पाँच तत्त्व या वास्तविक चार तत्त्व भी स्वरूपसे अनादि हैं। जिनके नित्य रहनेसे मनुष्यादि नित्य जीवोंके पेट पालनादि व्यवहार बराबर हुआ करते हैं। इस हेतुसे पाँच तत्त्वोंका सब भूगोलपिण्ड और सूर्य—चन्द्रादि खगोलपिण्ड, ये शरीरोंके निर्वाहके लिये अनादि ही ठहरते हैं। इन कारणोंसे अनन्त चेतन

जीव और पाँच तत्त्वका भूगोल (यह जगत्) का रूप तथा अनेक खगोलपिण्ड स्वरूपसे अनादि सिद्ध हैं ॥

जगत्में देहोंसे कर्म, और कर्मोंके वासना वश स्थूल शरीरोंको त्यागे हुए सूक्ष्म देहोंयुक्त वायुके साथ प्रथम पुरुषोंके वीर्योंमें प्रवेश करके फिर स्त्री-पुरुषोंके मैथुन समय वीर्य-रजके संयोगसे मनुष्य, पशु, पक्षी, ये पिण्डज और अण्डज खानियोंमें जीवयुक्त शरीर बनते हैं। उष्मज खानीके जीवोंके शरीर तत्त्वोंयुक्त शब्द, रूप, रस, और गन्धके साथ सूक्ष्मदेह सहित जीवोंके संयोगसे बनते हैं। शरीरोंकी उत्पत्तिका वर्णन विस्तारसे आगे होगा। वृक्ष, तृणादि अंकुरज और पाषाणादि स्थावर खानी, ये मुख्य पृथ्वी, जल इन दो जड़ तत्त्वोंके विशेष संयोगसे और अपने-अपने बीजोंमेंसे बनते हैं; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न ८५ में देखिये !)। जगत्के अनेक पदार्थ जड़ तत्त्वोंके अनेक त्रसरेणु, अणु, और परमाणुओंके संयोग-सम्बन्धसे बनते तथा मनुष्यादि देहधारी जीवोंके बनानेसे वे बन जाते हैं। जड़ तत्त्वोंमें अनेक पदार्थ बनानेकी "रसायनाकर्षण शक्ति" है; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न ६४में देखिये !)। अब कहिये ! जगत् कर्त्ता माननेसे वह क्या उत्पन्न करेगा ? ॥

पूर्वोक्त कथनसे जगत् कर्त्ता माननेमें बड़ा दोष आता है, ऐसा सत्य विवेकसे आप अब जान लीजिये ! ॥

प्रश्न (८६) हे दयानिधे ! यह भूगोल और अनेक खगोलपिण्ड सहित इस जगत्को आप अनादि, नाश रहित कहते हो ! परन्तु अनेक पदार्थ नाश होते हुए प्रत्यक्ष सब देख रहे हैं। सबसे कठिन लोहादि पदार्थ भी चूर्ण-चूर्ण हो जाते हैं ॥

यदि ऐसे अनेक पदार्थ नाश होते हैं, तो सर्व जगत्का प्रलय

अवश्य ही होगा। आप सम्पूर्ण जगत्के प्रलयको क्यों नहीं मानते ? उसका भी भेद यथार्थसे दिखाइये ? ॥

(८६) उत्तरः—सर्व जगत्का प्रलय नहीं माननेका कारण ऐसा है कि—सर्व देहधारी जीवोंने सम्पूर्ण प्रारब्ध कर्म भोगे विना एक ही समय पर सबोंके शरीर नहीं छूटते; (उसे पीछेका श्रुति प्रमाण प्रश्न ३२ में देखिये !)। इसलिए पाँच जड़ तत्त्व सहित अनेक चेतन जीव स्वरूपसे अनादि हैं। एक बर्त्तनमें जल लेकर पृथ्वीका अंश थोड़ी शक्कर या नमक तिसमें मिलाएँ, घुल जानेसे दोनों जल ही स्वरूप दिखलाई पड़ते हैं। परन्तु उसी जलको औंटाय, तिसकी सम्पूर्ण भाफ बनके वह जल, तेज और वायु द्वारा ऊपरके वातावरणमें उड़ गये बाद फिर पूर्ववत् शक्कर या नमक शेष रह जाते हैं; चाहे अन्दाज लीजिये ! इसलिए पृथ्वी, जलादि पाँच तत्त्वोंका भूगोलपिण्ड और सूर्य, चन्द्र, तारागणादि अनेक खगोलपिण्ड ऐसे नाश रहित पदार्थ स्वरूपसे अनादि हैं। क्योंकि परम्परासे शोध करनेसे वै ऐसे ही बने हैं; यह सबूती मिलती है। देहोंका तत्त्वोंमें लयरूप नाश देखके जगत्में प्रलय और महाप्रलयका अनुमान किया है, सो यथार्थ नहीं है। (उसे पूर्वका प्रमाण प्रश्न १७ में देखिये !)। देह भी जड़ तत्त्वोंका कार्य रहनेसे कारणरूप तत्त्वोंमें मिल जाती है। परन्तु कारणरूप पाँचों वा चारों तत्त्वोंका नाश देह रहे तक कभी देखे नहीं। प्रवाही पदार्थोंसे और भाफसे बने हुए अनेक तारे रोज ही रात्रिमें टूटके गिरते समय दिखाई देते हैं। तैसे ही वृक्षादि अंकुरज खानी, शहर, गाँव, बगीचे, नदियाँ, शरीरादि जड़ तत्त्वोंके संयोगसे बने हुए और जीवोंकी सत्तासे तत्त्वोंकी सहायता लेकर बनाये जाते हुए

कार्यरूप अनेक पदार्थ प्रवाहरूप अनादि हैं। अर्थात् कारणरूप जड़ तत्त्वोंमें बारम्बार मिलकर उपजते—विनशते चले आते हैं; ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव है। इसलिए कारणरूप पाँच वा चार जड़ तत्त्व स्वरूपसे अनादि हैं, तिनको उत्पन्न करनेवाला कर्त्ता कोई नहीं; (तिसको अनेक प्रमाण जगत् कर्त्ता दर्शनके सब प्रकरणमें देखिये !)। अविनाशी (अखण्ड) अनेक चेतन जीव स्वरूपसे अनादि हैं; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न ८६ और प्रश्न ८७ में देखिये !)। पाँच जड़ तत्त्व, और चैतन्य अनेक जीव, ये छः पदार्थ स्वरूपसे अनादि हैं;(उसे सद्-गुरु श्रीकबीर साहेबके बीजक ग्रन्थका प्रमाण पूर्वके प्रश्न ५४ में देखिये !) ॥

इस प्रकारसे अनादि और प्रवाहरूपसे अनादि पिण्ड—ब्रह्माण्ड की सर्व व्यवस्था है। सर्व जगत्का उत्पत्ति—प्रलय न कभी हुआ है, न आगे होगा ! ऐसा आप यथार्थसे अब जान लीजिये ! ॥

प्रश्न (९०) आपके जगत् अनादि माननेमें बड़ा दोष आता है; तहाँ कहा भी है:—

साखीः—"जो ठहरा अनादि जगत, तो अज्ञान अनादि ॥
गुरु आचार्य केहि कारणे, वेदादिक मतवादि ॥ १६३ ॥"

अर्थ स्पष्ट है ॥ ॥ कबीरपरिचय-साखी । साखी—१६३ ॥

इस प्रमाणसे चेतन जीवोंके और जड़ शरीरोंके सम्बन्धका प्रवाह अनादि रहनेसे अज्ञान भी अनादि ठहरता है ॥

इसलिए जगत्के मनुष्यादि सर्व जीव सदोदित अज्ञानी रहनेसे सद्-गुरु, सत्य उपदेश, और मुक्ति, तीनोंका अभाव सिद्ध होनेसे सर्व जीवोंके जन्म—मरणादि देह दुःख भी सदोदित बने रहेंगे, कभी छूटेंगे ही नहीं ? इसका यथार्थ निर्णय आप दिखाइये ? ॥

(६०) उत्तरः—जीवोंके देह दुःख छूटेंगे, सद्-गुरु मिलेंगे, और सत्य उपदेशसे मुक्ति भी कोई जिज्ञासु नर जीवोंकी अवश्य होगी। इसका कारण ऐसा है कि, पाँच तत्त्व, इन्द्रियादि अनेक जड़ पदार्थोंके द्रष्टे (देखनेवाले और जाननेवाले) चेतन जीव भिन्न हैं, ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव है। अज्ञानका आकारयुक्त कोई स्वतन्त्र स्वरूप नहीं है। परन्तु इन्द्रियोंके विषय संस्कार दोषोंसे उत्पन्न या मनुष्य जीवोंकी जड़ाशक्ति ही अज्ञान है; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न ४५ में देखिये !)। इसीसे जीवोंकी देह सम्बन्धसे जड़ाशक्ति, अध्यास वा दृढ़ करके जड़को मानना, यही अज्ञान है। भिन्न-भिन्न पाँच जड़ तत्त्व और देहधारी अनन्त चेतन जीव, ये स्वरूपसे अनादि और सर्व एकदेशी हैं, ऐसा पूर्वमें सिद्ध हो चुका है। चेतन जीवोंका सम्बन्ध करके तिनको बन्धनमें डालनेको जड़ तत्त्व समर्थ नहीं। क्योंकि तिनमें स्वयं ज्ञान नहीं; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न ३ में देखिये !)। परन्तु अनन्त जीव और अनन्त देहोंका सम्बन्ध अर्थात् एक स्थूल देह छोड़के अध्यास वश सूक्ष्म देहयुक्त दूसरी देह धर लेनी, ऐसे प्रवाहरूप जीवोंके भिन्न-भिन्न सम्बन्ध अनादि कालसे चले आए हैं। जगत् कोई समय नहीं था; और अनन्त, देहधारी जीव पाप-पुण्यादि कर्मोंमें कोई समय बन्धमान नहीं थे, सो कहा जाता नहीं; (तिसको अनेक महात्माओंके पूर्वके प्रमाण प्रश्न ४७ में देखिये !)। इसमें यह सिद्ध हुआ कि, सब मतवाले मनुष्योंकी जड़ासक्तिरूप अज्ञानको प्रवाहरूप अनादि मान कर, स्वरूप ज्ञानसे हम मनुष्य (चेतन जीव) त्रिकालमें सत्य हैं, ऐसा दृढ़ प्रतीतिका निश्चय हो जानेसे, सर्व अध्यासरूप जड़ासक्ति

छूटनेसे नरजीव जन्म–मरणादि जड़ दुःखोंसे निवृत्त होकर जीवन्मुक्त हो जाते हैं, ऐसा वर्णन किये हैं। परन्तु देहोंका और जीवोंका सम्बन्ध कौन-सा है? सो अब दिखाते हैं॥ तहाँ कहा भी है:–

"अन्यतरकर्मज उभयकर्मजः संयोगजश्च संयोगः॥ ६॥"

॥ वैशेषिक सूत्र–६। अध्याय ७। आह्निक २॥

अर्थः—"अन्यतरकर्मज, उभयकर्मज, और संयोगजसंयोग;" ऐसे तीन प्रकारके संयोग सम्बन्ध हैं। एकमें ही क्रिया होवै, वह "अन्यतरकर्मज" संयोग है। जैसे क्रियावान् पक्षीका वृक्षसे संयोग। दोनोंमें क्रियाएँ होवें, वह "उभयकर्मज" संयोग है। जैसे दो पहलवानोंका लड़नेमें संयोग, और एकका संयोग रह कर अन्यके साथ संयोग होवै, वह "संयोगजसंयोग" है। जैसे हस्तयुक्त देहका वृक्षके साथ संयोग होनेसे डालियाँ, पत्रादि सबोंके साथ संयोग॥

"इहेदमिति यतः कार्य्य कारणयोः समवायः॥ २६॥"

॥ वैशेषिक सूत्र–२६। अध्याय ७। आह्निक २॥

अर्थः—कार्यमें यह कारण है, ऐसा जानना, वह समवाय–सम्बन्ध है। जैसे वस्त्रका तन्तुओंके साथ समवाय–सम्बन्ध॥

श्लोकः—"घटादीनां कपालादौ, द्रव्येषु गुणकर्मणोः॥
तेषु जातेश्च सम्बन्धः, समवायः प्रकीर्तितः॥ ११॥"

॥ न्यायसिद्धान्तमुक्तावलि। प्रथम खण्ड। कारिका ११। परिच्छेद १॥

अर्थः—घटादि कार्योंका अपने कारण कपाल (घटके दो अर्द्ध भाग) आदिकोंके साथ सम्बन्ध और द्रव्योंके साथ गुण और कर्मोंका सम्बन्ध, वह समवाय सम्बन्ध है; जैसे 'गुण-गुणीका,' 'धर्म–धर्मीका,' 'क्रिया–क्रियावान्‌का,' 'अवयव–अवयवीका,' 'जाति और प्रत्येक व्यक्तिका' समवाय सम्बन्ध॥

"नित्यसम्बन्धः समवायः ॥" —तर्कसंग्रह, खण्ड–४ ॥

अर्थः—प्रत्यक्ष अनुभवमें आता हुआ नित्यसम्बन्ध ही समवाय सम्बन्ध है; जैसे अग्निमें उष्णता ॥ वेदान्तमतका सम्बन्धः—

"भिन्नत्वेसत्यऽभिन्नसत्ताकत्वं तादात्म्यं ॥"

॥ तत्त्वानुसन्धान, परिच्छेद १ । सूत्र–१ ॥ पृष्ठ ५० ॥

अर्थः—जो दो पदार्थ व्यवहारदृष्टिसे परस्पर भिन्न हुए, तो भी एक सत्ता वाले होवें, वह 'तादात्म्य–सम्बन्ध' है; जैसे गुण–गुणीका तादात्म्य ॥

परन्तु ब्रह्म सत्य और दृश्य जगत् मिथ्या मृगजलवत् मानके वेदान्तमें तादात्म्य सम्बन्ध कहना ही अन्याय है । 'तादात्म्य' और 'समवाय' सम्बन्ध नाममात्र दो; परन्तु विचारसे वह एक ही सम्बन्ध ठहरता है ॥

पृथिवी घटको 'आधार' और उसी पर स्थित घट 'आधेय' है, ऐसा एक "आधार–आधेय" सम्बन्ध माना है। परन्तु आधार–आधेय सम्बन्ध और कारणका कार्यरूप सम्बन्ध ये दोनों सम्बन्ध अनित्य हैं। जगत्में तत्त्वादि सर्व जड़ पदार्थ भिन्न–भिन्न एकदेशी रहनेसे तिनका संयोग–सम्बन्ध ही है। परन्तु माना हुआ व्याप्य–व्यापक सम्बन्ध अन्यायका कथन है। जैसा आकाश व्यापक और सर्व पदार्थ व्याप्य; ब्रह्म वा ईश्वर चेतन व्यापक, और चेतन जीव तथा सर्व जड़ पदार्थ व्याप्य, और भी बहुतसे सम्बन्ध माने हैं। परन्तु यहाँ पर तिनका कुछ प्रयोजन नहीं, इसी सबब तिनका वर्णन किया नहीं ॥

पूर्वोक्त सर्व सम्बन्धोंमें 'संयोग' और 'समवाय' ये दो सम्बन्ध ही मुख्य हैं। तिनमें जैसी अग्निमें उष्णता, शक्करमें मिठास,

फूलोंमें सुगन्ध, यह समवाय-सम्बन्ध (नित्य सम्बन्ध) है। तैसा अनेक शरीर और जीवोंका समवाय-सम्बन्ध नहीं है। क्योंकि दोनों विजातीय हैं। जैसा देहधारी, क्रियावान् चेतनपक्षी जड़ वृक्ष पर बैठनेसे दोनोंका "अन्यतरकर्मज" संयोग सम्बन्ध हुआ। तैसे ही सर्व जीवोंके पास स्थूल देहोपाधियोंसे अनेक अध्यासयुक्त अनेक सूक्ष्म देहें रहनेसे बारम्बार वै चार खानियोंमें अनेक स्थूल देहें धारण करते रहते हैं। वह भी स्थूल-सूक्ष्म देहोपाधिसे सर्व चेतन जीवोंका "अन्यतरकर्मज" संयोग सम्बन्ध होता है। अनेक भिन्न-भिन्न सूक्ष्म देहोंसे जीवोंके संयोग सम्बन्ध कभी छूटे ही नहीं, ऐसा अनादि नित्य सम्बन्ध प्रतीत होता है। परन्तु सर्व जीव बारम्बार अनेक देहाध्यास रखनेसे अनेक सूक्ष्म देहयुक्त देहोंकी अदला-बदला होके स्वरूपज्ञान पारख बिना चारों खानियोंमें वै भिन्न-भिन्न स्थूल देहें धरके भ्रमते ही रहते हैं। ऐसा देहोपाधि युक्त जड़ तत्त्वोंका और चेतन जीवोंका प्रवाहरूप अनादि संयोग सम्बन्ध अर्थात् अनेक बार शरीर धरने और छोड़ने, ऐसा सम्बन्ध चला ही आया है। परन्तु स्थूल वा सूक्ष्म देहोंका समवायवत् तिनका नित्य सम्बन्ध नहीं रहता है ॥

स्थूल-सूक्ष्म तत्त्वादि साकार, जड़ पदार्थोंको और निराकार, अनेक छिद्ररूप आकाश तत्त्वको जाननहार चेतन जीव तिनसे सदोदित भिन्न रहनेसे वै अनेक, शुद्ध ज्ञान मात्र (ज्ञानाकार) स्वयंप्रकाशी हैं, ऐसी मनुष्योंको प्रत्यक्ष प्रतीति है। चेतन जीवको तत्त्वादि जड़ पदार्थोंके जाननेका विषय नहीं, इसका विस्तारसे वर्णन आगे होगा। इसलिए चेतन जीवोंका और जड़ देहोंका विषय सुखोंकी सूक्ष्म हन्ता रखना, ऐसा "जड़ाध्यासरूप"

जड़ासक्तिरूप या दृढ़ माननारूप सम्बन्ध प्रवाहरूप अनादि कालसे चला ही आया है ॥ तहाँ कहा भी है:—

दोहा:—"प्राप्ति जीव इच्छा नहीं । केवल हन्त छुड़ाव ॥ ३५२ ॥"
॥ गुरुबोध, पञ्चग्रन्थी ॥ अर्द्ध दोहा–३५२ ॥ नं० ७६१ ॥

अर्थ:—स्वयंप्रकाशी (ज्ञानस्वरूप) अमर मनुष्यरूप हंस जीव अपनेको सब अवस्थाओंमें और सब समयोंमें स्वयं प्राप्त ही है । उसको अपने निज स्वरूप प्राप्तिकी इच्छा, अथवा ब्रह्म–ईश्वरादि कल्पित शुद्ध चेतन प्राप्तिकी इच्छा, करनेका कुछ प्रयोजन नहीं । केवल विषय सुखोंका सूक्ष्म हन्तारूप जड़ाध्यास या जड़ासक्ति यथार्थवक्ता सद्गुरुके सत्सङ्गसे छुड़ाना है ॥

परन्तु विचारसागरके प्रथम स्तङ्गमें ❀ लिखा है:—

"सर्व जीव स्वरूपसे अति आनन्दरूप हैं," यह कहना असम्भव बात है । क्योंकि नरजीवोंकी सत्तासे कुछ अल्प वा विशेष काल तक वृत्ति अन्तःकरणमें स्थिर करनेसे विषयानन्द, ब्रह्मानन्दादि आनन्द मनुष्योंको भासते, फिर चञ्चल वृत्तिमें अनेक दुःख प्रकट होते हैं । इसलिये सर्व आनन्द दुःखोंके बीज और अनित्य हैं । हाथमें सोनेका कड़ा रहके कभी मनुष्य विषय वह खो गया, ऐसा भ्रम होता है; फिर किसीके बतलानेसे वह मिल गया, ऐसा वही मनुष्य कहता है । ऐसी प्राप्त वस्तुकी प्राप्ति और निवृत्तिकी भी निवृत्ति मानी है, वह भी कहना अयुक्त है । क्योंकि मिथ्या भ्रमरूप मायाके जगत्में मिथ्या जड़ पदार्थका दृष्टान्त एक अखण्ड, व्यापक, निजस्वरूप शुद्ध चेतन विषय देना सम्भवता ही नहीं । देखिये ! शुद्ध चेतन जीव सदैव सबोंको प्राप्त

❀ विचारसागर, स्तरङ्ग १ । पृष्ठ १५–१७ में वर्णन किया है ॥

ही है, अर्थात् वह स्वयंस्वरूप ही है। परन्तु अनादि कालके जगत्में जड़ पदार्थों पर सदैव लक्ष रखनेसे विषय सुखोंके जड़ाध्यासी मनुष्य बने हैं; उसी अध्यासको सत्सङ्ग द्वारा छुड़ाना है ॥

देखिये ! जिन-जिन पदार्थोंका अध्यास, जड़ासक्ति वा दृढ़ मानना किसी मनुष्योंके दिलसे छूट गये हैं; तिनको वे प्राण जाय, तो भी ग्रहण नहीं करते हैं, ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव है। जैसे मांस, मदिरा, अफीमादि नशाओंके पदार्थ। इसमें यह सिद्ध हुआ कि, "मैं शुद्ध चेतन जीव (जड़-चेतनका निर्णय कर्त्ता मनुष्यरूप हंस जीव) जानमात्र सत्य हूँ!" ऐसा सत्सङ्ग द्वारा दृढ़ निश्चय हो जानेसे विवेकरूप निदिध्यासन करते-करते तत्त्वोंका विजाति अध्यासरूप सम्बन्ध बिलकुल छूटके जिज्ञासु मनुष्य देह बन्धनके दुःखोंसे मुक्त हो सकते हैं ॥ तहाँ कहा भी है:—

चौ०:-"अनजाने बन्धन गहि लीन्हा। जानि बूझि त्यागन सब कीन्हा ॥५॥"

अर्थ स्पष्ट है ॥ ॥ निर्णयसार ॥ चौपाई-नं० ५२० ॥

इस प्रमाणसे जैसे मनुष्य जीव पञ्च विषय, अनेक पदार्थादि अल्प सुखोंके अध्यास वश रहनेसे अपनी-अपनी इच्छाशक्तिसे स्त्री, पुत्र, धनादि अनेक पदार्थोंको ग्रहण करनेमें समर्थ हैं। तैसे ही तिन पदार्थोंके ग्रहण करनेमें बहुत दुःख हैं, ऐसे जान कर दृढ़ वैराग्य और विवेकसे त्यागनेमें भी मनुष्य जीव समर्थ हैं। इस रीतिसे धीरे-धीरे देहोपादिरूप सर्व बन्धनोंसे छूटके जिज्ञासु-जन मुक्त भी हो सकते हैं। क्योंकि प्रवाहरूप सम्बन्ध छूट सकता है। परन्तु अनादि सम्बन्ध स्वभावसिद्ध रहनेसे कभी छूट ही नहीं सकता है ॥ जीवोंके सूक्ष्म देह विषय कहा है:—

श्लोकः-"वागादिपञ्च श्रवणादिपञ्च, [illegible] पञ्च ॥
बुद्ध्याद्यविद्याऽपि च कामकर्मणी, पुर्य्यष्टकं सूक्ष्मशरीरमाहु ॥९८॥"

॥ विवेकचूड़ामणि, श्लोक-९८ ॥

अर्थः—१. वाचादि पाँच कर्मेन्द्रियाँ। २. श्रवणादि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ। ३. प्राणादि पाँच वायु। ४. आकाशादि सूक्ष्म पाँच तत्त्व, अर्थात् वास्तविक पृथिवी आदि चार तत्त्व। ५. बुद्धि आदि अन्तःकरण पञ्चक। ६. अविद्या। ७. इच्छाशक्ति। और ८. विषयोंकी सूक्ष्म वासना। इन अष्ट अङ्गोंका पुर्यष्टक अथवा सूक्ष्म शरीर रहता है; जैसे बड़े वृक्षका सूक्ष्म बीज ॥

इस प्रमाणसे स्थूल शरीर छूटे बाद जीवोंका अदृश्य सूक्ष्म शरीरोंसे संयोग–सम्बन्ध बना रहता है ॥ परन्तु उपनिषद् में कहा है:-

"पञ्चाग्नि योगतो जन्मः ॥" "य एतानेवं पञ्चाग्निन्वेद ॥"

॥ छान्दोग्य उपनिषद् अध्याय ५। खण्ड४से ८ तक, और खण्ड१०।मन्त्र१०॥

अर्थः—१. स्वर्ग, २. मेघ, ३. पृथ्वी, ४. पुरुष, और ५. स्त्री, इन पाँच अग्नि द्वारा मनुष्योंका पुनर्जन्म होता है। १. प्रथम सर्व मनुष्य जीव पुर्यष्टक सूक्ष्म देहके साथ स्वर्गलोकमें प्राप्त हों, वहाँका फल भोगनेके पीछे २. वर्षा द्वारा ३. पृथ्वीके अन्नमें प्राप्त होते हैं; फिर ४. पुरुषके वीर्यमें मिल कर ५. स्त्री की योनि द्वारा गर्भमें जानेसे स्थूल देह धर कर वे फिर दूसरा जन्म लेते हैं; ऐसा मानते हैं ॥

परन्तु ऊपर अधरमें स्वर्गलोक असिद्ध हैं; (तिसको पूर्वके प्रमाण प्रश्न ७ और १७ में देखिये !)। इसलिए मनुष्योंको उक्त पञ्चाग्नि द्वारा पुनर्जन्म होने असम्भव दोषयुक्त हैं ॥

पुनर्जन्म विषय सद्-गुरु श्रीकबीर साहेब कहे हैं:—

साखीः—"हंसा सरवर तजि चले। देही परिगौ सून ॥
कहहिं कबीर पुकारिके। तेही दर तेहि थून ❀ ॥ १६ ॥"

॥ बीजक, साखी–१६। टीकायुक्त ॥

❀ प्रश्न ८४ के उत्तरकी टिप्पणीमें यह साखी पूरा त्रिजा सहित लिखा है। देखिये ! पृष्ठ ३१६–३२० में आया है ॥

अर्थः—सद्-गुरु श्रीकबीर साहेब पुकारके कहते हैं कि, 'हंसा' कहिये मनुष्य जीव और 'सरवर' कहिये दृढ़ मानना, ब्रह्म, ईश्वरादि नाना कल्पना, नाना मत, स्त्री-सम्भोगादि नाना विषय, जो सुखका धाम सो 'मान सरोवर' है। जब लग देह साबूत है, तबलग नाना कर्मोंका विलास हंस करता है। परन्तु देहान्तमें सर्व छूट जाते हैं; और तिन कर्मोंका अध्यास सूक्ष्म बीजरूपसे हंसके पास बना रहता है, वही पुनर्जन्म लेनेमें कारण है। स्थूल देह छूटे पीछे सूक्ष्म देहको जीव साथ लेकर सुषुम्ना वायु द्वारा प्रथम पुरुषके वीर्यमें प्रवेश करके मैथुन कर्म समय स्त्रीकी योनि द्वारा गर्भमें जाता है ॥

इस प्रमाणसे सर्व मनुष्य, पशु तथा अण्डजखानीके जीव, 'पुरुष और स्त्री' ये दोनोंके द्वारा ही पुनर्जन्म लेते हैं। उष्मज खानीमें तत्त्वयुक्त गन्ध, रस, रूप और शब्द, इनके संयोग-सम्बन्धसे सूक्ष्म देहोंके साथ जीव पुनर्जन्म लेते हैं; इसका विस्तारसे वर्णन आगे होगा। वह वासना संस्कार या सूक्ष्म देह सहित जड़ कर्मोंकी आसक्तिरूप देह बन्धनसे मनुष्य जीव निज स्वरूपका पारख बोध होनेसे मुक्त हो सकते हैं, ऐसा अभी दिखाये हैं। परन्तु मनुष्योंको मुक्त होनेके लिये सद्-गुरुके यथार्थ उपदेशकी आवश्यकता है ॥

सद्गुरु कैसे प्रकट हुए ? तहाँ कहा है:—

श्लोकः—"प्रायेण मनुजा लोके लोकतत्त्वविचक्षणाः ॥
समुद्धरन्ति ह्यात्मानमात्मनैवाशुभाशयात् ॥ १६ ॥"
॥ भागवत, स्कन्ध ११। अध्याय ७। श्लोक-१६ ॥

अर्थः—कभी-कभी इस जगत्में सत्य तत्त्वके परीक्षक और शोधक पुरुष सत्य वस्तुको यथार्थ जान कर, आप ही स्वयं अपने जीवात्माको विषयोंकी वासना और जड़ देहके दुःखरूप बन्धनसे

निकाल लेते हैं, वे सद्-गुरुके उपदेशकी कुछ भी जरूरी नहीं रखते ॥

भागवतमें ❀ लिखा है:—दत्तात्रेयजी ने मनुष्य, पशु, जड़ तत्त्व; जड़ पदार्थादि चौबीस गुरु ‡ मान कर, तिनमेंका एक-एक गुण अपनी रहनीके लिये और सत्यासत्य निर्णयके लिये ग्रहण किये थे ॥

ऐसा ही सद्-गुरु श्रीकबीर साहेब भी कहे हैं:—

साखी:—"बहु बन्धनसे बाँधिया । एक बिचारा जीव ! ॥
की बल छूटै आपने ? की रे छुड़ावै पीव ! ॥ २११ ॥"
॥ बीजक, साखी —२११ । टीकायुक्त ॥

अर्थ:—अहो ! एक विचारा जीव वेद, शास्त्र, जाति, पाँति, रोग, पाँच विषय, देह, स्त्री, पुत्रादि कुटुम्ब, कल्पना, अनुमान, भास, अध्यासादि अनेक बन्धनोंमें बन्ध गया है । अब कोई सत्य शोधक मनुष्य स्वयं अनेक देह दुःखोंको देखकर यथार्थ सत्यात्यका विचार जैसा मैंने किया है, वैसा पारख करै, तब छूटै । अथवा साधु-गुरुरूपी पारखी सद्-गुरु सकल बन्धनोंको परखाय देवें, और जिज्ञासु मनुष्योंको सत्यन्यायकी धारणा होवै, तब वै मुक्त हो जावेंगे॥

इन प्रमाणोंसे एक कहावत है:—

"खुदा कैसे पहिचानना ? अकिलसे !" क्योंकि मनुष्य खानीमें वैखरी वाचा रहनेसे सत्सङ्ग द्वारा विषय सुखोंके सर्व जड़ाध्यास छूटके कोई मनुष्य जीवन्मुक्त हो सकते हैं; ऐसे महात्माजन कहते हैं । जैसे भूलसे अग्निमें पग गिरनेसे जलता है । अथवा साँप काटनेसे या जहर खानेसे मनुष्य मरते हैं; ऐसा

❀ भागवत, स्कन्ध ११ के अध्याय ७, ८, ९ तक वर्णन करके कहा है ॥
‡ भागवत, स्कन्ध ११ । अध्याय ७ । श्लोक ३३-३५ तकमें कहा है ॥

अनुभव किये बाद तिनसे बचानेको तथा औरोंको उपदेश देनेमें मनुष्य गुरु बन जाते हैं ॥

अथवा किसी साधुने निम्न साखी कहा है:—

साखी:—"रागी बागी पारखी, नाड़ी और न्याव ॥
ये पाँचोंके गुरु हैं, उपजे अङ्ग सुभाव ॥ १ ॥"

अर्थः—गायन विद्या, घोड़ेको चाल सिखाने, पदार्थोंकी परीक्षा करने, नाड़ी परीक्षा, और न्याय करने, ये पाँच विद्याओंके गुरु जगत्में हैं। परन्तु स्वयं अपने अङ्गके स्वभावसे किसीकी कम और किसीकी गुरुसे भी विशेष बुद्धि हो जाती है ॥

इस प्रमाणसे जगत्में वा हिन्दुस्तानमें अभी छापखाने, रेल, अगिनबोट, तार देना, (टेलीफोन,) फोनोग्राफ=गानादि वैसे ही शब्द सुनानेका यन्त्र, (रेडियो,) विमान, (वैलून, राकेट, रेड़ियम, टेलिष्कोप, दूरबीन, खुर्दबीन) इत्यादि पदार्थ मनुष्यों ने गुरुसे विद्या पढ़कर फिर अपनी-अपनी स्वयं बुद्धिसे निकाला है, सो प्रत्यक्ष जग जाहिर ही है। वैसे ही नरदेहमें मनुष्योंको अपने मा-बाप आदि परिवारके मनुष्य तथा अन्य मनुष्योंसे प्रथम अनेक पदार्थोंका ज्ञान होता है। फिर गुरुलोगोंसे अनेक विद्या, कला आदि पढ़ कर जगत्मेंके अनेक मतवालोंके यथार्थ सिद्धान्त जाननेकी बुद्धि प्राप्त होती है। फिर अपने स्वयं ज्ञान-बलसे सत्यासत्य का निर्णय करके किसी एक सिद्धान्तको सत्य जान कर वे उसी पर आरूढ़ हो जाते हैं। फिर अन्य मनुष्योंको कर्म, उपासना, योग, ब्रह्मज्ञानादि मार्गोंका उपदेश देनेमें वे पण्डित या गुरु बन जाते हैं। इसी तरह किसी विलक्षण बुद्धि

वाले पूर्वके नरदेहके शुद्ध संस्कारयुक्त बिरले मनुष्यने प्रथम ब्रह्मचर्य आश्रममें ही अनेक पदार्थ, विद्या, कलादि ज्ञान भिन्न-भिन्न गुरुओंसे प्राप्त कर लिया। फिर अपने स्वयं ज्ञान बलसे सत्य, असत्यका विवेक करके देह सम्बन्धी अनेक बन्धनों सहित अनेक दुःखोंके अनुभवसे उपराम हो, दृढ़ वैराग्यको धारण करके महा विरक्त दृढ़ वैराग्यवान् साधु बने। अनन्तर जगत्, ब्रह्म, ईश्वर, स्वर्ग, नरकादि सत्य वा कल्पित ज्ञेय पदार्थोंको स्थापन करने-वाला, "मैं ज्ञाता मनुष्यरूप 'हंसजीव' त्रिकालमें सत्य, अविनाशी हूँ" और देह तथा देह सम्बन्धी विषयादि सर्व व्यवहार देहके साथ नाश होनेवाले असत्य हैं; ऐसी निज चैतन्य स्वरूपकी यथार्थ पारख दृष्टिकी बुद्धि सदोदित एकरस रखनेसे देहके अनेक कर्मोंसे बनते हुए अनेक अध्यास, वासना या दृढ़मानना आपका छूटकर आप महात्मा पुरुष जीवन्मुक्त शान्ति स्थितिको प्राप्त हुए। आप पारखी, सत्यन्यायी सन्त आदि अनादि कालके जगत्में स्वयं सद्-गुरुरूपसे संसारमें प्रकट हुए। आप ही काशी निवासी साधु-गुरुरूप आदिगुरु पारख प्रकाशी सद्-गुरु श्रीकबीर साहेब हुए; आप पूर्ण परीक्षावान्, सत्यवक्ता और सत्यन्याय-युक्त पारख बोधके उपदेश दाता रहे। ऐसे ही गुरुकी दयासे पारख बोध प्राप्त कर भेषधारी साधु-गुरुमें भी कोई बिरले सत्यन्यायी, पारखी, जीवन्मुक्त होते हुए साधु-गुरुरूपी सद्-गुरु श्रीकबीर साहेबके परम्परागत अनुयायीरूपमें पारखी सन्त युग-युगसे उनके देह रहे तक जिज्ञासु मनुष्योंको सत्यबोध देते ही चले आते हैं। और तिनके ही सत्य उपदेशरूप पारख बोधसे निष्पक्ष, सत्यज्ञानके इच्छावान्, शोधक जिज्ञासु मनुष्य पूर्वमें

जीवन्मुक्त हो गये, अभी जीवन्मुक्त हुए हैं, और आगे भी उसी प्रकार जीवन्मुक्त हो जावेंगे ॥

इस प्रकारसे अनादि जगत्में जड़ासक्तिरूप अनादि पञ्च विषयोंका अध्यास अज्ञान और देह तथा देह सम्बन्धी बन्धन और जन्म–मरणादि जड़ अनेक दुःखोंसे छूट कर, कोई सत्यन्यायी जीवन्मुक्त, स्वयं साधु–गुरुरूपी पारखी सद्-गुरु सन्त ऊपर कहे अनुसार अनादि जगत्के भूत कालमें सद्-गुरु श्रीकबीर साहेब हो गये। फिर वैसे ही भेषधारी साधु–गुरु भी कोई बिरले जीवन्मुक्त, पारखी सन्त श्रीकबीर साहेबके परम्परागत युग–युगसे आज तक होते ही चले आते हैं। और तिनके सत्योपदेशसे प्रवाहरूप अनादि कालके जड़ाध्यासरूप वा अज्ञानरूप देह सम्बन्धसे जन्म–मरणादि अनेक दुःखोंमें पड़े हुए जिज्ञासु मनुष्य भी वैसे ही पारख दृष्टिसे अध्यासोंको त्याग कर जीवन्मुक्त हो गये, अभी जीवन्मुक्त हो रहे हैं, और आगे भी वैसे ही जीवन्मुक्त हो जावेंगे। ऐसे आप सत्यन्यायसे परीक्षा करके जान लीजिये ! तथा यथार्थ विवेकसे इस रहस्यको समझ लीजिये ! ॥

॥ ❀ ॥ जीवोंके गुण–लक्षणोंका वर्णन ॥ ❀ ॥

प्रश्न (६१) जगत्में सत्यन्यायी, पारखी, सद्-गुरु सन्त प्रकट हों, जिज्ञासुजन देह बन्धन और जन्म-मरणादि बन्धनोंसे छूटकर जीवन्मुक्त हो जावेंगे, ऐसा बोध मुझको अब हुआ है। पूर्वमें प्रश्न ५८ से ६४ तक अनादि पृथ्वी आदि चार जड़ तत्त्वोंमें स्वरूपसे "आकार, संयोग–सम्बन्ध, धर्म, गुण, शक्तियाँ, और क्रियाएँ हैं," इन षट् भेदोंका वर्णन आपसे हो चुका है। तैसे ही

पूर्वके प्रश्न ८७ और प्रश्न ९० में अनादि, अनन्त चेतन जीव स्वयं ज्ञानाकार रहनेसे तिनके संयोग—सम्बन्धका और अध्यासरूप सम्बन्धका वर्णन भी आपसे हो चुका है ॥

अब जड़ तत्त्ववत् नित्य, शरीरधारी और शरीर रहित सदैव मुक्त जीवोंमें कोई 'धर्म वा गुण' रहते या नहीं, तिसका भेद आप दया करके मुझे दिखलाइये ? ॥

(९१) उत्तरः—सुनिये ! उसका भेद भी मैं आपको समझाता हूँ ! ॥ चेतन जीवके स्वरूप विषय कहा हैः—

चौ०:—"जानहि मात्र जीव है सोई । जानते अधिक और नहिं कोई ॥४२॥"
॥ निर्णयसार ॥ चौपाई—नं० ४२ ॥

अर्थः—सद्गुरु श्री पूरण साहेब कहते हैं कि, स्वयं ज्ञानमात्र केवल ज्ञानस्वरूप ही चेतन जीव हैं; तिनसे श्रेष्ठ जगत्में और कोई पदार्थ नहीं है । परन्तु मनुष्य जीवोंकी जगत्में सबसे विशेषता है ॥

साखीः—"फहम आगे फहम पाछे । फहम दहिने डेरि ॥
फहम पर जो फहम करै । सो फहम है मेरि ❀ ॥ १८८ ॥"
॥ बीजक, साखी—१८८ ॥

❀ टीका गुरुमुखः—फहम कहिये, समझ कहिये, स्फुर्ती कहिये, याद कहिये, सो समझ तीन प्रकारकी; आदि, अन्त औ मध्य, तीन कालमें एक आत्मा, जो आदि सोई अन्त, सोई मध्य, "सुवर्णभूषण न्याय" ये समझ ब्रह्मज्ञानकी । सो ऐसी समझको जो समझती है, औ न्यारी रहती है; सो समझ है मेरी । फहम आगे कहिये जो कुछ होनेवाला है, महाप्रलय पर्यन्त भविष्यकी समझ औ स्फुर्ती, औ फहम पाछे कहिये जो उत्पत्ति आदिसे आज पर्यन्त गत वर्त्तमान भया, ताहीकी समझ औ स्फुर्ती कोई रखते हैं; सो 'भूतप्रतिबन्ध' कहिये । ऐसी 'भूतप्रतिबन्ध'की समझ जा समझसे मालूम होय, औ समझ सम्पूर्णकी कसर निकारे, सो मेरी समझ है । औ वर्त्तमानकी समझ जो अब वर्त्तता है, तामें दो प्रकार—एक दक्षिण मार्ग, एक वाम मार्ग । सो वाम मार्ग कहिये मलीन, दक्षिण

अर्थः—सद्गुरु श्रीकबीर साहेब कहते हैं कि, हमारे सामने ज्ञानके सिद्धान्त जो अब हैं, और पीछे प्रकट हुए हैं; अथवा डेरि = वाममार्ग; स्त्री–सम्भोग, मदिरा, मांसादि सेवनका मलिन मार्ग; दहिने = शुद्ध रहनीके सर्व मार्ग इत्यादि जितने ज्ञान और जितने सिद्धान्त जगत्में प्रसिद्ध हैं, तिन सबोंका निर्णय करनेवाला, जाननेवाला; हमारा स्वरूपज्ञान पारख ही मुख्य है ॥

इन प्रमाणोंसे जैसे औरोंको मारनेवाली तलवार आपको स्वयं मार नहीं सकती। सर्व रसोंका स्वाद लेनेवाली जीभ आपको स्वयं चख नहीं सकती। स्वयं प्रकाशमान् सूर्य आपको स्वयं प्रकाश नहीं कर सकता। अथवा सर्वको देखनेवाली नेत्रोंकी पुतलियाँ आपको स्वयं देख नहीं सकती। तैसे ही ज्ञानस्वरूप शुद्ध चेतन आप जीव तीनों अवस्थाओंमें सर्व मनुष्योंको स्वयं प्रत्यक्ष हैं। तिसको देहधारी चेतन जीवसे शक्तिमान् बनी हुई इन्द्रियाँ

मार्ग कहिये शुद्ध, ये ही दो प्रकारकी समझ औ स्फुर्ती; औ एक शुद्ध वर्त्तमान वेदान्तकी समझ, सो ताहूकी समझ जा समझसे मालूम होय, सो समझ मेरी है। भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान तीनों फहमन पर जो फहम करै, सो गुरुकी समझ फहम है। भूत फहम योग, भविष्य फहम कर्म, वर्त्तमान फहम ज्ञान, ये तीनों फहमन पर जो फहम करै औ सब फहमनपर जो फहम करै, सबकी कसर निकारै, सो पारख मेरी फहम है। ये अभिप्राय। औ भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान, त्रिकाल ज्ञान एक योगसे होता है, ऐसा माना है; सो योगको परखके तीनों फहमन पर जो फहम करै ताही फहमको गहिके स्थिर होना। औ फहम कहिये ज्ञान, सो तीन प्रकार का—एक शास्त्र ज्ञान, दूसरा परोक्ष ज्ञान, तीसरा अपरोक्ष ज्ञान। सो शास्त्र ज्ञान भूत, औ परोक्षज्ञान भविष्य, औ अपरोक्ष ज्ञान वर्त्तमान, सङ्कल्प–विकल्पात्मक फहम, और सविकल्प फहम, और निर्विकल्प फहम; इस प्रकार सब ज्ञानिनका ज्ञान और सब फहमन की फहम जासे होय सो मेरी फहम है। ये अर्थ ॥

॥ —त्रिजासे बीजक, साखी–१८८ ॥

तथा मन, बुद्धि, वाणी, वृत्ति और कोई भी जड़ पदार्थ जान नहीं सकते हैं। क्योंकि जड़में स्वयं ज्ञान नहीं है; (उसे पूर्वका प्रमाण प्रश्न ३ में देखिये !) । ऐसा देहोपाधि सहित या देह रहित चेतन हंसका ज्ञान ही 'स्वरूप' है ॥

वेदान्त मतमें यदि चेतनको ज्ञानस्वरूप माना है, सो वृत्तिके तरफसे माना है; नहीं तो वह स्वयं जड़ ही सिद्ध होता है। देखिये ! जैसे अक्रिय आकाशमें 'अनयन क्रिया' (चलनेकी क्रिया) प्रतीत होती है, वह घटकी उपाधिसे हैं। तैसे ही चेतनमें वृत्तिकी उपाधि करके ज्ञान धर्म माना है। क्योंकि ज्ञानकी सात अवस्था आभासकी कही हैं; तहाँ चेतनके प्रकाशसे जड़ बुद्धि चेतनको जानती है, ऐसा कहा है। इसीसे जड़में ही 'ज्ञान धर्म' माना है, यह सिद्ध होता है। यद्यपि सुषुप्ति अवस्थामें विषय रहित चेतनका ज्ञानधर्म माना है। तथापि अविद्याकी (अज्ञानकी) वृत्ति मानी है। इसलिए अन्तःकरण या अविद्याका परिणाम वृत्ति मानी है ॥

पूर्वोक्त जड़ देहकी इन्द्रियादि उपाधियुक्त जो ज्ञान सबको होता है, वह भी चेतन जीवके आश्रित है। जिस ज्ञानको जीवका नित्य गुण वा धर्म भी कहा है ॥ तहाँ प्रमाण सुनियेः—

"ज्ञानाधिकरणमात्मा ॥"—तर्कसंग्रह, खण्ड—१ ॥

अर्थः—ज्ञान जिसके आश्रयसे नित्य रहता है, वह चेतनात्मा ज्ञानगुणवाला है। और गुण—गुणीका समवाय सम्बन्ध (नित्य सम्बन्ध) रहता है ॥

"मानुष तेरा गुण बड़ा ❋ ॥ १६६ ॥" अर्थ स्पष्ट है ॥ बीजक, साखी—१६६ ॥

❋ साखीः—"मानुष तेरा गुण बड़ा। मासु न आवै काज ॥
हाड़ न होते आभरण। त्वचा न बाजन बाज ॥ १६६ ॥" बीजक ॥

"गुणिया तो गुण ही कहै ❀ ॥" अर्थ स्पष्ट है ॥ बीजक, साखी–२६३ ॥

इन साखियोंमें सद्गुरु श्रीकबीर साहेब भी जीवमें ज्ञान गुण है, ऐसा कहे हैं ॥

चौपाई:–"जानै जनावै पारख सोई ॥"–नं० १६०० । टकसार, पञ्चग्रन्थी ॥

अर्थः—आप चेतन हंस जीव इन्द्रियाँ, बुद्धि आदिकोंको सत्ता देकर सर्व जड़ पदार्थों, पाँच विषयों तथा भास, अध्यास, कल्पनादिकोंको आप जानै, और दूसरोंको जनाय देवै, वही 'पारख' है॥

इन प्रमाणोंसे चेतन जीवका "ज्ञानगुण वा धर्म" नित्य स्वयं स्वरूप है। जैसे 'अग्नि और उष्णता' नाममात्र दो, परन्तु वस्तु एक ही है। तैसे ही 'जीव वा ज्ञान' नाममात्र दो, परन्तु जीव चैतन्य पदार्थ एक ही है। कहीं ज्ञानको पारख, समझ, बोध, अकिल–कला, स्वयंप्रकाश, ऐसे और भी नाम महात्मा पुरुष धरे हैं ॥

मनुष्य जीवोंमें वैखरी वाचा तथा अपनी सत्तायुक्त ज्ञानेन्द्रियोंसे पदार्थादि जाननेका ज्ञान और बुद्धिसे सत्यासत्य निर्णय करनेका ज्ञान विशेष रहता है। वैसा ज्ञान पशु आदि अन्य खानियोंमें नहीं रहता है ॥ तहाँ कहा भी हैः—

चौपाई:–"छाजन भोजन मैथुन कर्मा । भय निद्रा मोह षट धर्मा ॥ ३ ॥
पशु पक्षी सबहिनको व्यापै । निशि बासर सो दावा दापै ॥ ४ ॥"
॥ मानुषविचार, पञ्चग्रन्थी ॥ चौपाई–नं० ३–४ ॥

टीका गुरुमुखः—सत्य, विचार, दया, शील, धीरज आदि जो गुण होय, सो मानुषकी अधिकताई है; ये गुण मानुषका बड़ा है। जासे निजपदकी प्राप्ति होती है, और कुछ वस्तु कामकी नहीं। हाड़नका कछु गहना बनता नहीं, औ चामका कछु नगारादि बाजा बनता नहीं, औ मांस भी कोई काममें नहीं आता, ताते मानुषने अपने मानुषगुणको जानके ग्रहण करना। ये अर्थ ॥–त्रिजासे बीजक साखी ॥१६६॥

❀ प्रश्न १११ के उत्तरमें साखी–२६३ टीकायुक्त रक्खा है, वहाँपर देख लीजिये ! ॥

अर्थः—छाजन वा छादन (देहको आच्छादन), भोजन, मैथुन, भय, निद्रा, और मोह, इन षट् धर्मोंका ज्ञान मनुष्य, पशु, पक्षी, आदि सर्व जीवोंको है। रात्रि और दिन तिनमें ही वे दुःखी बने रहते हैं ॥

इस प्रमाणसे उक्त षट् धर्मों और सुख-दुःखोंका, जीवोंका ज्ञान तथा काम, क्रोध, अहङ्कारादि विकार मनुष्यादि चार खानियोंमें समान हैं। परन्तु पाप-पुण्य, नाना विद्या, नाना कला, अनेक चतुराईके व्यवहार, ५ तत्त्व, ३ गुण, २५ प्रकृति, ५ विषय, ५ प्राण, मन, बुद्धि, जाति, वर्ण, आश्रम, अनेक पदार्थोंके नाम, रूप, गुण, विकार इत्यादि और स्मृतिज्ञान, ऐसे अनेक प्रकारसे जाननेका धर्म, मनुष्योंमें विशेष दिखलाई पड़ता है; सो सब देहोपाधि युक्त हैं। क्योंकि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और अन्तःकरण पञ्चकको सूक्ष्म देहयुक्त मनुष्योंके सत्ता संयोगसे पूर्वोक्त अनेक प्रकारसे ज्ञान होता है। सो ज्ञान हंस जीवोंका स्वयं धर्म है, तथा सर्व देहोपाधियाँ नाशवान् हैं ॥

शङ्काः—सर्व नित्य जीव एकदेशी, प्रत्यक्ष हैं, ऐसा पूर्वमें कहा है। इसलिए तिनको सब देह भरका और अनेक पदार्थोंका ज्ञान कैसे होगा? ॥

समाधानः—जैसे बिजलीका प्रकाश एक जगह पर प्रकट होते ही तुरन्त अति चपलतासे उसी क्षण क्रमशः सर्वत्र फैल जाता-सा मालूम पड़ता है। अथवा खानेके सौ पानके पत्ते इकट्ठे कहीं धरके तिन पर एक नोकदार खीला ठोकनेसे उसी क्षण सबोंमें एक ही बार छिद्र होते हुए मालूम पड़ता है; सो ऐसा नहीं होता है। परन्तु क्रम-क्रम से होता है। तैसे ही अनादि

कालसे प्रवाहरूप देह उपाधि जीवोंको रहनेसे वै विजलीवत् अति चपल हो गये हैं। इसलिए मन, बुद्धि, इन्द्रियादि सबोंका अपनी सत्तासे संयोग–सम्बन्ध अति वेगसे करके सब देह भरको और अनेक पदार्थोंको क्रम-क्रम से परन्तु उसी क्षणमें देहोपाधियुक्त, एकदेशी जीव जान जाते हैं ॥

सायन्समें (पदार्थ विज्ञान शास्त्रमें) लिखा है कि, एक सेकण्डमें (एक अङ्क गिने तक) शब्द ग्यारह सौ फुट (फीट) चलता है, और उतनी ही देरमें बिजलीका प्रकाश एक लाख छियासी सहस्र मील चलता है ॥

शङ्का:—मनुष्योंको अनेक पदार्थोंका और शब्दादि पाँच विषयोंका ज्ञान कैसे होता है ? ॥

समाधानः—अनादि कालसे देखे, सुने और भोग किये हुए पाँच विषयों सहित पदार्थोंके सुखाध्यास गुप्तरूपसे मनुष्योंके अन्तःकरणमें रहे हैं। तिनमेंके किसी पदार्थके सुखकी इच्छाके समय प्रथम चित्तसे स्फुरण, मनसे सङ्कल्प, बुद्धिसे निश्चय, और कर्त्तव्य कर्मके अहङ्कारका और देहधारी मनुष्य जीवोंका संयोग सम्बन्ध होकर सूक्ष्म अभिमान तिनको ग्रहण होता है। अनन्तर वातावरणमें पृथ्वी आदि चार तत्त्वोंके अनन्त त्रसरेणु, अणु, परमाणु रहे हैं; तिनसे मिश्रित मुख्य पृथ्वी–तत्त्वकी 'सुगन्ध' वा 'दुर्गन्ध' युक्त वायु क्रम–क्रमसे तिनको धक्के मारते–मारते नासिकाके समीप रहे हुए त्रसरेणु, अणु, और परमाणुओंका स्पर्श होते ही पदार्थों सहित अपान वायुयुक्त नासिका द्वारा सुगन्ध वा दुर्गन्धका ज्ञान मनुष्य जीवोंको होता है। तैसे ही प्राण वायुयुक्त हाथकी सहायतासे जीभको स्पर्श होते ही पदार्थ सहित जल तत्त्वके खट्टा,

मीठादि षट् रसोंके विषयका ज्ञान मनुष्य जीवोंको होता है। उदान वायु, नेत्र और उससे बिजलीवत् वेगसे निकला हुआ प्रकाश और बाहरके वायु द्वारा पदार्थका स्पर्श होते ही तिसका और तिसके रूप विषयका (रङ्ग और आकारका) ज्ञान मनुष्य जीवोंको होता है। समान वायु और त्वचाका संयोग—सम्बन्ध होके कठिन, शीत, उष्ण, और अतिकोमल गुणयुक्त क्रमसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु, इन तत्त्वोंयुक्त तिनका और तिनके कार्य पदार्थोंके स्पर्श द्वारा पदार्थों सहित स्पर्श विषयका ज्ञान मनुष्य जीवोंको होता है। व्यान वायु तथा ध्वनि और वर्णरूप शब्द गुणयुक्त बाहरके वायु द्वारा कानके समीप रहे हुए अनेक अणु, परमाणु, और त्रसरेणुओंका स्पर्श होते ही शब्दोच्चार करनेवाले मनुष्यादि जीव या जड़ पदार्थ सहित कान द्वारा शब्द विषयका ज्ञान मनुष्य जीवोंको होता है। उक्त प्रकारसे ज्ञानेन्द्रियोंसे पदार्थ सहित पाँच विषयोंका ज्ञान स्पर्श द्वारा मनुष्योंको अति चपलतासे होता रहता है।

शङ्काः—जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति; अथवा बाल, तरुण, वृद्ध; इन अवस्थाओंमें नर जीवोंका ज्ञान कम और अधिक हो जाता है, ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव है। ऐसी ज्ञानमें घट—बढ़ रहनेसे उसे जीवोंका नित्य ज्ञानधर्म कैसे कहना ? ॥

समाधानः—देखिये ! नेत्रोंका देखनेका धर्म है; परन्तु तिनको भिन्न—भिन्न काँचोंके चश्मे (ऐनक) लगानेसे कभी वैसे ही अक्षर और कभी बड़े अक्षर दीखते। अथवा अन्धेरा होकर अक्षर दीखते ही नहीं। इसीमें सूक्ष्म दृष्टिसे यथार्थ विचार किया जाय, तो चश्मोंकी उपाधि भेदसे भिन्न—भिन्न प्रकारके अक्षर देख पड़े। परन्तु नेत्रोंका देखनेका धर्म कुछ छूटा नहीं। तैसे ही जीवोंका

जाननेका धर्म नित्य ही है। परन्तु जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, अथवा बाल, तरुण, वृद्ध, इन अवस्थाओंकी उपाधि भेदसे वृत्ति और इन्द्रियों द्वारा कम और अधिक ज्ञान नरजीवोंको होता हुआ प्रतीत होता है। परन्तु चेतन जीवोंके स्वरूप–ज्ञानका किसी समय अभाव होता ही नहीं। इसलिए नित्य चेतन जीवोंका ज्ञान सदैव नित्य ही है ॥

पूर्वोक्त कथनसे देहधारी चेतन जीवोंको तत्त्व, पदार्थ, पाँच विषयादि इन्द्रियों द्वारा भाव और अभावोंका ज्ञान होता है, वह "बहिरप्रत्यक्ष ज्ञान" है। अन्तःकरण पञ्चक द्वारा तिनको होता हुआ सुख, दुःख, सङ्कल्प, कल्पना, स्मृति आदि "अन्तरप्रत्यक्ष ज्ञान" है। ये दोनों प्रकारके ज्ञान देहधारी चेतन जीवोंका नित्य धर्म है। जीवन्मुक्त पारखी सन्तोंकी देहान्तमें सर्व देहोपाधियाँ छूट जाती हैं। परन्तु जैसे स्वयंप्रकाशी सूर्यके स्थानमें अन्धकारका सदोदित अभाव रहता है, तैसे ही सदैव देह रहित विदेहमुक्तिमें मुक्त जीव निरुपाधि पारख धर्ममें (शुद्ध ज्ञान गुणमें) और देह बन्धन तथा जन्मादि दुःखोंसे रहित "स्वयंप्रकाशी" रहनेसे तिनको तमरूप जड़ तत्त्व, अनेक पदार्थ, पञ्च विषयादि जगत्के ज्ञानका अभाव रहता है। अर्थात् देहसाधन नहीं रहनेसे तिनको जगत्का ज्ञान नहीं रहता है ॥

पूर्वोक्त देहोपाधिसे होता हुआ ज्ञान और विदेहमुक्तदशाका निरुपाधि स्वयं ज्ञान दोनों प्रकारके ज्ञान चेतन जीवोंके 'स्वरूपज्ञान' हैं। इस प्रकारसे चेतनजीवोंमें 'ज्ञान गुण' या 'ज्ञान धर्म' नित्य है; ऐसा आप अब जान लीजिये ! ॥

प्रश्न (६२) मनुष्यादि देहधारी जीवोंमें इन्द्रियाँ और

अन्तःकरण पञ्चक द्वारा 'देहोपाधियुक्त ज्ञान' और विदेहमुक्त स्थितिमें 'निरुपाधि ज्ञान', ये दोनों ज्ञान, जीवोंका स्वरूप ज्ञान रहनेसे जगत्के 'भाव-अभाव' ये दोनों पदार्थ रहित विदेहमुक्त जीव स्वयं प्रकाशी (ज्ञान स्वरूप ही) रह जाते, ऐसा मैं अब जान लिया हूँ ! ॥

अब मनुष्य जीवोंका शरीरमें बासा कहाँ रहता है ? सो दर्शाइये ?॥

(६२) उत्तरः—सुनिये ! नर जीवोंका शरीरमें बासाका भेद भी हम आपको दिखाते हैं:—मनुष्य जीव देहोपाधियुक्त, एकदेशी रहनेसे हरवख्त वृत्ति द्वारा नेत्रोंसे देखके ही सर्व व्यवहारोंका कर्म किया करते हैं। इसलिए जाग्रत् अवस्थामें विशेष करके नरजीवोंका वृत्ति या लक्ष नेत्र स्थानमें रहता है। और देह भरके अनेक स्थानोंमें सामान्य वृत्ति द्वारा मनुष्य जीव अपना बासा या लक्ष करते रहते हैं ॥

नेत्रहीन अन्धे मनुष्योंके विशेष करके वृत्ति या लक्ष देहके कर्ण स्थानमें तथा सामान्यतया देह भरके त्वचादि अन्य स्थानोंमें वे वृत्ति द्वारा लक्ष रखके देहोंमें बासा किया करते हैं। बधिर और मूक मनुष्योंके विशेष करके वृत्ति नेत्रस्थानमें तथा सामान्य-रूप से देह भरके त्वचादि अन्य स्थानोंमें वे वृत्ति या लक्ष द्वारा देहोंमें बासा किया करते हैं ॥

सूक्ष्म हिता नामक एक नाड़ी कण्ठमें रहती है, ऐसा कहा है; तहाँ लक्ष स्थित रहकर जाग्रत्में देखे, सुने, और अनेक भोग किये हुए अनेक कर्मोंके वासना संस्कार अन्तःकरणमें गुप्त रहनेसे फोटो समान स्वप्नमें जाग्रत्वत् प्रत्यक्ष अनेक व्यवहारोंके भास मनुष्योंको होते रहते हैं; (तिसको पूर्वके प्रमाण प्रश्न ४२ में देखिये !)

इसलिए स्वप्न अवस्थामें कण्ठमें मनुष्य जीवोंका विशेषतया वृत्ति स्फुरित होनेका बासा रहता है ॥

गाढ़ी नीन्दमें (सुषुप्तिमें) सर्व व्यवहारोंके वासना संस्कारों–का सूक्ष्म बीज गुप्तरूपसे हृदय स्थानके अन्तःकरणमें रहके फिर स्वप्न और जाग्रत्के अनेक व्यवहार वहींसे प्रकट हुआ करते हैं; इसलिए सुषुप्ति अवस्थामें मनुष्य जीवोंका वृत्तिका लयरूप बासा हृदय ही में रहता है। जाग्रत् अवस्थामें वृत्ति चञ्चल रहनेसे मनुष्योंको विशेष ज्ञान होता, ऐसा भासता है। परन्तु तिनका सत्ता–संयोग–सम्बन्ध कम–अधिक अति चपलतायुक्त जहाँ–तहाँ देहोंमें हो जानेसे मनुष्योंको वैसी प्रतीति है। नहीं तो जाग्रतादि तीनों अवस्थाओंमें मनुष्योंका स्वरूप ज्ञान सदोदित एकरस है। तिसमें घट–बढ़ कभी होती नहीं; ऐसा पूर्वमें वर्णन हो चुका है ॥

तुरीय अवस्थामें योगीजनोंका देहोंमें विशेषतया वृत्तिकी बासा नाभि और मस्तकमें रहता है। साक्षी दशावाले ब्रह्मज्ञानियोंकी और सत्यन्यायी, पारखी सन्तोंकी स्थिर बुद्धि रहनेसे विशेष करके तिन जीवोंकी वृत्तिका बासा देहोपाधिसे हृदय देशमें रहता है। परन्तु पारखी सन्त अपने स्वरूप स्थितिमें ही अध्यास रहित विशेष स्थिर रहते हैं ॥

पञ्चीकरणमें भी ऐसे ही चार अवस्थाओंमें मनुष्य जीवोंके बासायुक्त स्थानोंका वर्णन किया है। परन्तु अवस्था भेदसे नरजीवोंका "लक्ष या वृत्ति"का ही स्थान विशेषमें बासाका अदल–बदल होता रहता है। न कि जीवका; देह सम्बन्धमें जीव तो सदा हृदय स्थानमें ही कायम रहता है; ऐसा जानना चाहिये ! ॥

और तुरीयातीत अवस्थामें (विज्ञान दशाकी धारणामें)

चराचर व्यापक, कल्पित अद्वैत ब्रह्म बोधका निश्चय रहनेसे ब्रह्मज्ञानी पुरुषोंको जगत् ही ब्रह्मरूप भासता है, और साक्षी दशा जाती रहती है ॥ तहाँ कहा भी है:—

छन्द:–"साक्ष्य नहीं इम साक्षि स्वरूप न, दृश्य नहीं दृक काहि जनावै ॥"
॥ विचारसागर, स्तरङ्ग ५ । छन्द १६० । पृष्ठ–२४५ ॥

अर्थः—साक्षी विषय दृश्य साक्ष्य प्रपञ्च है नहीं, तब साक्षी स्वरूप कहना ही नहीं बनता । दृश्य प्रपञ्च रहित यदि एक अद्वैत ब्रह्म स्वरूप है, तो दृक (द्रष्टा वा साक्षी) बनके ब्रह्मज्ञानी औरोंको कैसे उपदेश देवेंगे ? ॥

इस प्रमाणसे सर्व जगत् ही अखण्ड ब्रह्म स्वरूप की भावनारूप तुरीयातीत अवस्थाका अनुभव माना है । तहाँ भी भासक (अनुभव करनेवाले) विज्ञानियोंकी निर्विकल्परूपसे हृदयमें स्थिरता रहनेसे विशेष करके देहोंके हृदयोंमें ही तिनकी वृत्तिका बासा रहता है । और व्यवहारमें प्रवृत्तिरूप सहविकल्प स्थिति होनेसे देहोंमें संयोग सम्बन्धसे जहाँ–तहाँ लक्ष रखते हैं । किसी मतमें हृदय, नाभि या मस्तकमें ही सदोदित जीवोंका बासा माने हैं; सो यथार्थ नहीं है ॥

सर्वका तात्पर्य यह है कि, देहोपाधियुक्त जीव जहाँ–जहाँ इन्द्रियोंका संयोग करके कर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं, वहाँ ही उनका 'लक्ष या वृत्ति' विशेष करके रहता है, और शरीरोंमें लक्ष फैलाव वा ठहराव हो जाता है । क्योंकि सब इन्द्रियोंके कर्म और मनके सङ्कल्प–विकल्प एक ही समयमें नहीं होते हैं, ऐसा अनुभव मनुष्योंको है ॥

इस प्रकारसे शरीरोंमें जहाँ–जहाँ सुखके लिये सत्ता–संयोगसे

इन्द्रियाँदि द्वारा, कर्म करनेमें मनुष्य प्रवृत्त हुआ करते हैं, वहाँ ही तिनकी वृत्ति विशेषका बासा होता रहता है। और स्थिरतामें हृदयस्थानमें तिनका बासा होता रहता है। सदोदित शरीरमें एक नियमित बासाका स्थान मनुष्यादि सर्व जीवोंका खाश हृदयस्थानमें रहता है। किन्तु जीवोंके वृत्ति विशेष चञ्चल होनेसे हमेशा तिनकी लक्ष स्थिर होके रहता ही नहीं। परन्तु देहधारी, पारखी जीवन्मुक्त सन्त स्थिरतायुक्त चेतनदेश या स्वयं ज्ञानदेशमें विशेष करके रहते हैं, ऐसा आप अब जान जाइये ! ॥

प्रश्न (९३) शरीरमें सर्व मनुष्य तथा पारखी सन्तोंके बासाओंका बोध मुझको अब हुआ है ! ॥

अब देहोपाधियुक्त एकदेशी जीवोंमें जड़ तत्त्वोंवत् क्रियाएँ रहती हैं, अथवा अक्रिय हैं, यह भी समझाइये ? ॥

(९३) उत्तरः—सुनिये ! इसका भी भेद दिखाते हैंः—एकदेशी, देहधारी जीवोंका और इन्द्रियादिकोंका संयोग–सम्बन्ध होकर, अति चपलतासे तिनका और तत्त्व, अनेक पदार्थ, पाँच विषयादि अनेक प्रकारका ज्ञान देहोपाधिसे मनुष्योंको हुआ करता है; (उसे पूर्वका प्रमाण प्रश्न ९१ में देखिये !)। जीव देहोंको छोड़के पुनः नये शरीर धर लेते हैं; अथवा अनेक नरजन्म लेते–लेते किसी नरदेहमें वे जीवन्मुक्त हो जाते; (तिनको पूर्वके प्रमाण प्रश्न २७ और प्रश्न ८८ में देखिये !) ॥

इन प्रमाणोंसे जीवोंमें आवागमनकी क्रिया (चलनगति) है, वह देहोपाधियुक्त जीव बिना नहीं होती है। अभी शरीरोंमें चलना, बोलना, उठना, बैठना, सोवनादि अनेक क्रियाएँ, प्राण वायुकी चलनगति, नसोंमें रक्तके चलनेकी क्रिया और इच्छा वा

सङ्कल्पसे इन्द्रियों द्वारा होते हुए अनेक कर्म देहोपाधियुक्त जीव बिना नहीं होते हैं, ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव है। क्योंकि जीव रहित जड़ मुर्दोंमें उक्त क्रियाओंकी प्रतीति नहीं होती है। सदोदित विदेहमुक्त जीवोंमें किसी प्रकारकी देहोपाधियुक्त इच्छा और सङ्कल्पसेसंयोगवान् अनेक क्रियाएँ नहीं रहती हैं। वे स्वयंप्रकाशी (शुद्ध पारखस्वरूप) और तत्त्वोंके संयोग रहित निराधार रह जाते हैं॥

शङ्काः—यदि अनादि जीव एकदेशी देहोपाधियुक्त अनन्त और किसीके कार्य रहित स्वरूप ज्ञानसे भी अनन्त ही हैं, तो विदेहमुक्तिमें तिनमें क्रियाएँ क्यों नहीं रहेगी ?॥

समाधानः—यदि जीवोंमें स्वभावसे कोई भी क्रिया है, ऐसा माने; तो सुषुप्ति और मूर्च्छावत् स्थितिमें चलना, बैठनादि कोई भी क्रिया हम नहीं करते, ऐसा मनुष्योंको अनुभव होता है। और जाग्रत् अवस्थामें देहोपाधियुक्त जीवोंमें चलना या बैठ जाना, ये दोनों क्रियाएँ करनेकी स्वतन्त्रतासे शक्ति है; या तिनके स्वाधीनकी बात है; ऐसा भी सब जानते हैं। परन्तु अल्प सुखके लिए बारम्बार इच्छा करके विषयानन्दकी सूक्ष्म अहन्तामें (अध्यासमें) हम अनादि कालसे भूले हैं, ऐसे सत्सङ्ग द्वारा जो जिज्ञासुजन यथार्थसे जान गये हैं; वे फिर देह रहे तक उस भूलको पूर्णतासे छुड़ाय, विदेहमुक्त स्थितिमें तिन मुक्त जीवोंके पास देहकी उपाधियाँ इन्द्रियादि कुछ भी नहीं रहनेसे वे निराधार, अपने स्वरूप ज्ञानमें (पारखरूप स्वयंप्रकाशमें) सदोदित क्रिया रहित ही रह जाते हैं॥

देखिये ! जैसे कोई कर्म करनेमें अपनेसे गलती हुई, फिर पूर्ण परीक्षा हो जानेसे कोई मनुष्य तिस कर्मको करते ही नहीं।

तैसे पारख दृष्टिसे देहके अनेक बन्धन और दुःखोंकी सब हालतें और कसर विकारोंको देख–देखकर जान–बूझके छोड़ दिये बाद देह बन्धन रहित विदेहमुक्त जीवोंमें किसी प्रकारकी क्रिया रहती ही नहीं। ऐसा आप अब पूर्णतासे जान लीजिये ! ॥

प्रश्न (६४) देहधारी एकदेशी, सर्व जीवोंमें अनादि कालसे प्रवाहरूप देहोपाधि रहनेसे अनेक क्रियाएँ हैं। परन्तु देहोंमें अनेक क्रियाओंमें दुःखोंका अनुभव किये बाद जान–बूझके तिनको त्यागनेसे विदेहमुक्त जीव सदोदित अक्रिय, स्वयंप्रकाशी, निराधार रह जाते हैं; ऐसा मैं अब समझा हूँ ! ॥

अब जड़ तत्त्वोंके सदृश चेतन जीवोंमें कोई शक्ति है ? या शक्तिहीन है ? सो कहिये ? ॥

(६४) उत्तरः—इसका भी भेद बतलाता हूँ, सुनिये ! सब जीव प्रवाहरूप अनादिसे देहोपाधियुक्त हैं, तो भी आसक्तिवश कर्म करते रहनेसे तिनमें "स्फुरणाशक्ति" (इच्छाशक्ति) या सत्ता है। जिसे बल, जोर, और सामर्थ्य भी कहते हैं ॥

विचारसागरके षष्ठ स्तरङ्गमें ❀ लिखा है कि, "जैसी अग्निमें दाहक शक्ति (जलानेकी शक्ति) है। तैसे ही जड़ और चेतन, ये सर्व पदार्थोंमें भी अपनी–अपनी शक्तियाँ हैं," ऐसे जानना चाहिये। (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न ६३ में देखिये !) ॥

पञ्चग्रन्थीके पारख विचारमें लिखा है, कि "मैं देहमें सत्तामात्र हूँ ! जैसा मैंने देहयुक्त कोई कर्त्तव्य बनाया, तिसमें मेरी सत्ता रही और कर्त्तव्यका नाश हुआ, तब मेरी सत्ता मुक्तिमें मेरे पास है। अर्थात् देहसाधन रहित प्रकट हो ही नहीं सकती है ॥"

❀ विचारसागर, स्तरङ्ग ६। पृष्ठ ३६२–३६३ में लिखा है ॥

साखीः—"मन भरके बोइये ‡ ॥ १३६ ॥" –बीजक, साखी–१३६ ॥

‡ साखीः—"मन भरके बोइये । घुँघुचीभर नहिं होय ॥
कहा हमार माने नहीं । अन्तहु चले बिगोय ॥ १३६ ॥ बीजक ॥"

टीका गुरुमुखः—सन्तो ! देखो जो निर्जीव बिन्द मन भर बोय देव, तो वहाँ से कछु जीव बालक पैदा हो नहीं सकता । अगर मनभरको देह चाहै सभी गाड़ देव, इससे कछु पैदा हो सकनेका नहीं; औ जीवको जहाँ रोप देवोगे, तहाँ मन-भरका चोला पैदा करेगा । औ जीव बिना 'अहं ब्रह्म' ऐसा सिद्धान्त भी नहीं हो सकनेका, ताते ब्रह्म है ना कोऊ, सब मिथ्या धोखा । सबका आदि कारण जीव सोई ज्ञानरूप, परन्तु बिना पारख भ्रमता है, उसकी स्थिति कछु हो सकती नहीं । अरे ! एक जीवकी सत्तासे स्थूल, सूक्ष्म, कारणादि मनभरका रूप पैदा भया । परन्तु ये तीनों मनके बोयेसे कछु एक ज्ञानरूप उपज सकता नहीं । क्योंकि ये जड़ हैं, ताते एक ज्ञानसे ये तीनों उपज सकते हैं । क्योंकि ज्ञान चैतन्य है, ताते समर्थ है । सो ज्ञानको दोष गुरुने क्यों लगाया कि, सबका आदि कारण है, और अज्ञान क्लेश खानीका बीज है; ताते ज्ञानकी कछु स्थिति नहीं, यही दोष । ताते ज्ञानने सम्पूर्ण अभिमान छोड़के पारखकी शरण होना, औ पारखरूप हो रहना । पारख सोई ज्ञानकी भूमिका ता बिना ज्ञानकी स्थिति कहीं नहीं । इस प्रकारसे हमारा कहा कोई मानता नहीं, सब ज्ञान–अज्ञान जड़ धोखेमें बन्ध हो रहे हैं, ताते आखिरको खराब हो चले, गर्भबासमें, जड़रूप हो चले । ये अर्थ । अब ज्ञान सोई जीव, ये विचारमें ठहरा, परन्तु ज्ञान एक कि अनेक ? ये शङ्का । अरे ! ज्ञान कछु एक नहीं, जेते घट, तेते ज्ञान; परन्तु ज्ञानकी जाती एक, घट उपाधि ऐसे अनेक हो गया, सो कभी तीन कालमें एक हो सकता नहीं, एक मानना ये मिथ्या अध्यास है । ये अभिप्राय । तो भला ! सूर्य एक है, औ घट जल उपाधिसे अनेक मालूम होता है, ताको एक मानिये कि अनेक मानिये ? ये शङ्का । तो सूर्य एक न्यारा ऊपर है, ताते ताके प्रतिबिम्ब उपाधि सहित अनेक मालूम होते हैं । बिम्ब–प्रतिबिम्ब अनन्य भाव ताको एक मानिये । तैसा जीवके ऊपर कोई दूसरा बिम्ब नहीं, जो ताका प्रतिबिम्ब जीव अनन्यभाव मानिये । ये जीव आप ही स्वतन्त्र है; पर घट उपाधिसे अनेक नजर आता है, याको एक कैसा मानिये ? कोई एक मिथ्यावादी कहते हैं कि, ब्रह्म एक बिम्ब है, ताका घट बुद्धि

इसकी टीकामें लिखा है कि:—"जीवोंके सत्तासे ही मन भरकी देह पैदा हो जाती है ॥"

वर्त्तमानमें देहधारी जीवोंके सत्ता–संयोगसे ही मनसे अनेक सङ्कल्प और इन्द्रियाँ, प्राण वायु तथा सर्व नसोंमें रक्त फैलानेकी क्रियादि अनेक क्रियाएँ हो रही हैं; ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव है। यदि चेतन जीव अपनी सत्ता तिनको नहीं देवें, तो इन्द्रियाँ, मनादि शक्तिहीन स्थिर रह जाते हैं; जैसे मूर्च्छा, सुषुप्ति और योगियोंकी समाधिमें स्थिरता ॥

इन प्रमाणोंसे देहधारी जीवोंमें तीन प्रकारकी सत्ताएँ प्रतीत हो रही हैं। १. प्रथम सत्ताः—अन्न, जलादि सेवनसे शरीरमें रहता हुआ 'बल' है। २. दूसरी सत्ताः—पूर्वले जन्मके कर्मों द्वारा प्रारब्धके वेग तक श्वासकी 'चलनगति' है। ये दोनों सत्ताएँ देहके साथ सबोंकी छूट जाती हैं। ३. तीसरी सत्ताः—इच्छाशक्ति, सङ्कल्प वा 'स्फुरणसत्ता' है, जिसके द्वारा मन, इन्द्रियादिकोंसे अनेक क्रियाएँ सर्व जीव करते रहते हैं ॥

सहित जीव प्रतिबिम्ब अनेक मालूम होता है, सो मिथ्या भ्रम है। क्योंकि, जो प्रतिबिम्ब जीव होता, तो इसे कभी ज्ञान न होता, क्योंकि प्रतिबिम्बको कछु ज्ञान होता नहीं; औ जीवको ज्ञान होता है। औ ब्रह्म भी मानिये, तो ब्रह्म जीवका प्रतिबिम्ब है; क्योंकि प्रतिबिम्बको कछु बिम्बका ज्ञान नहीं औ बिम्बको प्रतिबिम्बका ज्ञान होता है। ब्रह्मको कछु जीवका ज्ञान नहीं औ जीवको ब्रह्मका ज्ञान है, ब्रह्म कछु जीवको प्रतिपादन करता नहीं औ जीव ब्रह्मको प्रतिपादन करता है। जैसे अपनी देह औ देहकी छाया, सो देहसे जीवको छायाका ज्ञान मालूम होता है, कछु छायासे देहका ज्ञान मालूम होता नहीं, तद्वत् जीवसे ब्रह्मका ज्ञान मालूम होता है, कछु ब्रह्मसे जीवका ज्ञान नहीं; तब ब्रह्म जीवका प्रतिबिम्ब मिथ्या भास, जीव सत्य। परन्तु जेते देह तेते जीव, सबकी जाति एक है, पर पृथक्–पृथक् रहते हैं। जो कभी पारख भूमिकाको पाया, तो ता भूमिका पर एक समान हो सकते हैं; औ जो भूमिका छोड़ते हैं, सो सब पृथक्–पृथक् हैं। ये अर्थ ॥ त्रिजासे बीजक साखी–१३६।

अब विचारना चाहिये कि, वह "इच्छाशक्ति" जड़ देहमें है? कि शुद्ध चेतन जीवमें है ? कि देह और जीव दोनोंके सम्बन्धमें है?। प्रथम पक्षः—यदि जड़ तत्त्वोंकी केवल देहमें ही इच्छाशक्ति माने, तो जड़में ज्ञान ही नहीं; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न ३ में देखिये !)। इसलिए अकेली जड़ देह इच्छा कर ही नहीं सकती है। दूसरा पक्षः—यदि शुद्ध चेतन वा मुक्त जीव ही इच्छा करके जड़ देहके कर्म बन्धनमें पड़ता है, ऐसा माने; तो मुक्त चेतन पुरुषमें इच्छा शक्ति प्रकट करके जड़ देह बन्धनमें पड़ना, यह अनादि रोग वा स्वरूपमें ही रोग सिद्ध होता है। इसलिए उपदेश, ज्ञानके साधन और मुक्ति भी असिद्ध ठहरती है। इस हेतु शुद्ध-चेतन जीवोंमें इच्छाशक्ति मानना अन्यायका पक्ष है। अब तीसरा पक्षः—देह और जीव इन दोनोंके सम्बन्धमें ही इच्छाशक्ति है, यह सिद्ध होता है। क्योंकि देहधारी अनेक चेतन जीव और पाँच जड़ तत्त्व सहित प्रत्यक्ष प्रतीत होता हुआ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अनादि कालसे ऐसा ही स्थित है। कोई समय जगत् नहीं था, यह कहा जाता नहीं। ऐसा पूर्वमें सिद्ध हो चुका है; (उसे प्रमाण प्रथम प्रकरणके जगत् कर्त्ता दर्शनके सब प्रश्नोंको देखिये !)। नरदेहमें सर्व प्रकारकी इच्छाएँ जड़ पदार्थोंमें रहे हुए पञ्च विषय सुखोंके लिए होती ही रहती हैं, ऐसा अनुभव है। इसलिए जड़ देह और चेतन जीवकी आसक्तिरूप सम्बन्धसे इच्छाशक्ति है; अर्थात् देहधारी जीवोंने विषयानन्दके सूक्ष्म अहन्तारूप अनेक अध्यासोंको अपने-अपने अन्तःकरणोंमें गुप्तरूप रखनेसे अनेक बार इच्छाएँ होती रहती हैं। जैसे मनुष्य जीव बारम्बार इच्छा करके जड़ देह बन्धनोंकी आसक्ति वा अध्यास दृढ़ करनेमें शक्तिमान् हैं। तैसे ही अनेक

देहके दुःखोंमें कष्ट जान कर पूर्ण दोष दृष्टिसे उन बन्धनोंकी आसक्ति या अभ्यासोंको त्यागनेके लिये भी वे शक्तिमान् हैं। इस रीतिसे धीरे-धीरे सर्व अभ्यासोंको छोड़के देहरूपी जड़ बन्धनसे मनुष्य जीवन्मुक्त हो सकते हैं ॥

शङ्काः—यदि देहधारी मनुष्य जीव अपनी-अपनी इच्छाशक्तिसे कोई भी क्रिया करनेमें स्वतन्त्र हैं, तो वे देह बन्धनसे छूटनेके कर्म क्यों नहीं करते हैं? ॥

समाधानः—प्रारब्धकर्म, जड़ तत्त्वोंके पाँच विषय और अनेक पदार्थोंमें दृढ़ करके माने हुए नाशवान, अनेक सुखोंके अभ्यास, देश, काल, शरीरादि भिन्न-भिन्न भेद अनादि कालसे बने हैं। और प्रवृत्तिरूप बन्धनसे परिणाममें दुःख देनेवाले अल्प सुखोंके अनेक कर्म नरजीवोंको विशेष प्यारे लगनेसे तिनकी जड़ासक्ति दृढ़ हो गई हैं। परन्तु सर्व विषय सुख अनेक दुःखोंके बीज हैं; ऐसी पूर्ण परीक्षा नहीं होनेसे जड़ देह बन्धनोंसे छूटनेके कर्म मनुष्य जीव नहीं करते हैं ॥

जड़ तत्त्वोंकी देहोंमें विषय सुखोंके लिये अनेक प्रकारकी इच्छा प्रगटाय, इन्द्रियादिकोंकी संयोग-सत्तासे अनेक कर्म करके अनेक पदार्थोंके विषयोंकी दृढ़ आसक्तिसे ही पुनर्जन्मादि अनेक दुःख बारम्बार हमको अवश्य भोगने पड़ते हैं। ऐसे कोई बिरले साधु और जिज्ञासु भक्तजन सत्सङ्ग द्वारा पारख दृष्टिसे पूर्ण जान गये हैं। वे देह रहे तक जीवन्मुक्त स्थितिमें अन्न, वस्त्रादि अवश्य प्रारब्ध कर्मोंके व्यवहारोंको दृढ़ वैराग्ययुक्त विवेकसे ही किया करते हैं। अन्य दुःखरूप कर्मोंमें जान-बूझके वे इच्छा करके विशेष सत्ता नहीं देते। अर्थात् अपनी देहोपाधियुक्त

इच्छाशक्तिको समेटके स्थिर (शान्त) रहते हैं। अन्य देहधारी, विषयासक्त, अज्ञानी नरजीव मन—माने वैसी अनेक प्रकारकी इच्छा प्रगटाय, इन्द्रियादिकोंको सत्ता देकर कर्म करके हमेशा ही अनेक, विशेष दुःख भोग रहे हैं। परन्तु देह साधन नहीं रहनेसे विदेहमुक्त जीव इच्छा रहित, निर्विकार, निराधार, स्वयंप्रकाशमें (ज्ञान प्रकाशरूप देशमें) सदैव स्थित रहते हैं॥

पूर्वोक्त प्रकारसे जड़ देह और चेतन जीव सहित "इच्छाशक्ति," अन्न—जलादि सेवनकी परिणामरूप "देहशक्ति" और श्वासवायुकी "चलनगतिरूप शक्ति," ये तीनों शक्तियाँ देहोपाधियुक्त रहनेसे नाशवान हैं। परन्तु विदेहमुक्त जीवोंमें ये तीनों शक्तियाँ छूट जानेसे आप स्वयं पारख स्वरूप या अपने ज्ञानगुण युक्त स्वयं प्रकाशरूप चेतन देशमें निर्विकार, निराधार, सदैव रह जाते हैं; ऐसा आप अब विवेकसे निश्चय कर लीजिये ! ॥

प्रश्न (९५) जीवन्मुक्त पुरुषादि देहोपाधियुक्त सर्व देहधारी जीव इच्छाशक्तिसे इन्द्रियादिकोंका संयोग करके अपनी—अपनी आसक्तिसे अनेक क्रियाएँ करनेमें और विवेक द्वारा छोड़नेमें शक्तिमान् हैं। परन्तु देहोपाधि रहित (देहसाधन नहीं रहनेसे) विदेहमुक्त जीव इच्छाशक्ति रहित, क्रिया रहित, पारख प्रकाशरूप चेतन देशमें सदैव स्थित रहते हैं, ऐसा मैं अब समझा हूँ ! । परन्तु नित्य जीव किसी पदार्थके कार्य नहीं रहनेसे वे देहोपाधि-युक्त एकदेशी, अनन्त और स्वरूपज्ञानसे भी अनन्त हैं; ऐसा पूर्वमें प्रश्न ८६ । ८७ और प्रश्न ९१ में आप कहे हैं ॥

इसलिए एकदेशी देहधारी जीवोंमें देह भरका और जगत्में नाना पदार्थोंका ज्ञान कैसे होता है? सो कृपा करके कहिये ? ॥

(६५) उत्तरः—हम पूर्व ही प्रश्न ६१ में कहे हैं कि, देहोपाधिसे सर्व जीव बिजलीवत् अति वेगवान् हो जानेसे बहुत ही चपलतासे इन्द्रियादिकोंका सत्ता-संयोग करके तुरन्त ही जगत्के अनेक पदार्थोंका और देह भरका ज्ञान वे कर सकते हैं ॥

अब और भी दिखाते हैं; सुनिये ! तहाँ कहा भी है:—

श्लोकः—"ऋषयः संयतात्मानः, फलमूलानिलाशनाः ॥
तपसैव प्रपश्यन्तित्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ २३७ ॥"
॥ मनुस्मृतिः, अध्याय ११ । श्लोक-२३७ ॥

अर्थः—वाचा, मन और कायासे नियमयुक्त फल, मूल, तथा निर्विकल्प समाधिमें केवल वायुका ही आहार करनेवाले ऋषि, योगी आदि तपसे ही एक स्थानमें बैठकर चराचररूप तीन लोकोंको पाप रहित अन्तःकरणसे देखते हैं ॥

अथवा दूरश्रवण, दूरदर्शन, ये सिद्धियाँ कल्पनासे गुरुवा लोगोंने माना है ॥ (तिनको प्रमाण पूर्वके प्रश्न २३ में देखिये !) ॥

इन दो प्रमाणोंसे दूरके पदार्थ देखने, दूरसे शब्द सुनने, सर्व पदार्थोंको पर्दा रहित जानने, ऐसे सिद्ध योगीजन एक ही जगह बैठके सबोंको जान लेते हैं । ऐसा गुरुवा लोगोंने माना है । (परन्तु दूरबीन, तार, टेलीफोन, खुर्दबीन, टेलीस्कोप, माइक्रोफोन, वायरलेश, रेड़ियो, लाउड़स्पीकर, इत्यादि साधनोंके द्वारा वर्त्तमानमें सब कोई दूर दर्शन, दूर श्रवणादि कर ही रहे हैं ।) स्वरोदय ज्ञान (ज्ञानसरोदा) पूर्णतासे जाननेवाले मनुष्य छः महीने या एक वर्ष आगे ही अपनी मृत्युका दिन बराबर कह देते हैं, और वैसे ही देखनेमें आता है, ऐसा वे कहते हैं । परन्तु कई बार उनका वैसा कहना गलत भी हो जाता है । उत्तम गणित

करनेवाले ज्योतिषी लोग सूर्य—चन्द्रके ग्रहणोंका दिन तथा पूँछवाले तारोंके उदय और अस्तोंके दिन बराबर लिख रखते हैं; गणित विद्या ठीक होनेसे वैसा देखा भी जाता है। परन्तु फलित-विद्याका फल कथन कल्पित होनेसे वे सरासर असत्य ही होते हैं। उत्तम वैद्य नाड़ी द्वारा दूसरे रोगियोंकी रोग परीक्षा करके बराबर रोग कह देते हैं। साधारण अज्ञानी, विषयासक्त मनुष्य भी एक स्थान पर बैठके मन द्वारा अनेक सङ्कल्प करना; नेत्र, कान, त्वचा, और मुख द्वारा क्रमसे देखना, सुनना, स्पर्श करना, और बोलना इत्यादि क्रियाएँ और बाहरके अनेक पदार्थोंको जान जाते हैं। पशु भी पुकारनेसे जान कर अपने पास आ जाते हैं। तोता, मैनादि पक्षीको भी बतलानेसे शब्द बोलनेके लिए सीख जाते हैं॥

इन प्रमाणोंसे अनादिसे देहधारी, एकदेशी, अनन्त जीवोंमें ही अनेक देशोंके अनेक पदार्थोंको और देह भरके हालको जाननेका नित्य धर्म है। परन्तु निराकार, अन्तर—बाहर व्यापक आकाशवत् ब्रह्म मानके जड़वत् बने हुए ब्रह्मज्ञानियोंमें और योगसिद्ध सर्वत्र व्यापक माने हुए कल्पित ईश्वररूप योगीपुरुषोंमें भिन्न-भिन्न अनेक पदार्थोंको साक्षीदशासे जानना, यह चेतन जीवोंका नित्य ज्ञानधर्म नहीं ठहरता, ऐसा अब आप निश्चय कीजिये ! ॥

प्रश्न (६६) अनादिसे देहधारी, अनन्त, एकदेशी, नित्य चेतन मनुष्यादि जीवोंमें देह भरके हालको और अनेक देशवाले अनेक पदार्थोंको जाननेका नित्य धर्म अति चपलतासे देहोपाधियुक्त सत्ता—संयोग—सम्बन्धसे है; ऐसा मैं अब जाना हूँ ! ॥

अब कहिये ! सत्यन्यायी सन्तोंने जीवोंके नामः—"जीव, चैतन्य, साक्षी और हंस क्यों धर दिये हैं ?" इसका भेद भी दर्शाइये ? ॥

(९६) उत्तरः—सुनिये ! इसका भी भेद कहते हैं:— चेतन जीव सदोदित जीते रहते हैं; अर्थात् उत्पत्ति-नाश रहित अमर हैं। अथवा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, ये तीन अवस्थाओंमें और भूत, वर्त्तमान, भविष्यत्, इन तीन कालोंमें हम जीव नित्य हैं, ऐसा मनुष्योंको अनुभव है। (तिनको पूर्वके प्रमाण प्रश्न ८६ और प्रश्न ८८ में देखिये !) ॥

अथवा मनुष्य खानीमें स्त्री, पुत्रादिकोंमें आसक्त तथा छाजन, भोजन, मैथुन, भय, निद्रा, मोह, ये षट् पशुधर्मोंमें गाफिल और काम, क्रोध, लोभ, भय, अहङ्कार, ममता, आशा, तृष्णा, सुख, दुःखादि अनेक जड़ विकारोंको दृढ़ माननेवाले मनुष्य तथा पशु, अण्डज, और उष्मज, इन चार खानियोंके अनेक, नित्य चेतन जड़ाध्यासी रहनेसे 'अज्ञानी जीव' कहाते हैं। अथवा वेद, शास्त्र, पुराणादि वाणी और अनेक मतवालोंकी भ्रमिक वाणीके प्रमाणसे अनेक स्वर्गलोक, यमलोक, तथा कल्पित भूत, ब्रह्म, ईश्वर, खुदादि जगत् कर्त्ता मानकर तिनके प्राप्तिके लिये वर्णाश्रम कर्म, उपासना, योग, तपस्या, मन्त्र, तीर्थ, व्रतादि अनेक साधनोंमें लगे हैं। वे वाणीके जड़ाध्यासी मनुष्य 'अज्ञानी जीव' कहाते हैं। इस हेतुसे पारखी सन्तोंने जीवोंका "जीव" ऐसा नाम धरा है॥

देहधारी मनुष्य जीव इच्छाशक्ति प्रगटाय, इन्द्रियादिकोंके संयोग करके सुखके लिये मन्त्रादि सामर्थ्य, नाना विद्याएँ, नाना कलाएँ, अनेक चतुराईके गुण अपने ज्ञानगुणसे प्रकट कर देते हैं। अथवा इच्छाशक्ति प्रगटाय इन्द्रियोंके संयोगसे जड़ तत्त्वोंके कार्यरूप पदार्थोंमें एक ही बार संयोग-सत्ता देकर, मनुष्य तिनमें समान-विशेष गति, शक्ति, शब्दादि गुण प्रकट कर देते हैं। जैसे

कलसे बजनेवाले बाजे (फोनोग्राफ इत्यादि) घड़ी, रेलके इञ्जनादि क्रियावाले अनेक यन्त्रादि जड़ पदार्थ। और देहसाधन रहित विदेहमुक्तिमें मुक्त जीव निर्विकार, निराधार, स्वयंप्रकाशी चेतनदेशमें स्थित रहते हैं; (देहधारी जीवोंमें शक्तिको प्रमाण पूर्वक प्रश्न ९४ में देखिये !)। अथवा इन्द्रियोंकी संयोग—सत्तासे अति चपलतासे देह भरको और अनेक जड़ पदार्थोंको जानना, यह देहधारी जीवोंमें "ज्ञानगुण" वा 'पारख धर्म' है; (उसे प्रमाण पूर्वक प्रश्न ९१ में देखिये !)। इस हेतुसे पारखी सन्तोंने जीवोंका "चैतन्य" ऐसा नाम धरा है॥

जीवके साक्षी नाम विषय कहे हैं:—

चौ०:-"त्रिगुण उपाधि नास्ति व्यवहारा। मैं साक्षी सब जाननहारा" ॥२५०॥
॥ निर्णयसार ॥ चौपाई ॥ नं०-२५० ॥

अर्थ:—सद्गुरु श्रीपूरण साहेब कहते हैं कि, देहकी सत्त्व, रज, और तमोगुणयुक्त जितनी क्रियाएँ हैं, और जितने जड़ तत्त्वोंके कार्यरूप पदार्थ हैं, वे सब नाशवान हैं। परन्तु मैं मनुष्य जीव सबोंको जाननेवाला साक्षी (द्रष्टा) रह कर सर्व जड़ पदार्थोंसे न्यारा हूँ!॥

"उदासीनत्वेसतिबोद्धा साक्षी॥"—तत्त्वानुसन्धान। परिच्छेद २॥ पृष्ठ ८०॥

अर्थ:—जो देहधारी मनुष्य विषयोंमें आसक्त न हों, दृढ़ वैराग्ययुक्त रह कर, उदासीनतासे देहके प्रारब्ध व्यवहारमें कार्यमात्र अपनी संयोग—सत्ता देके जगत्‌में जीवन्मुक्त विचरते हैं, वे जड़ तत्त्वों, जड़ पदार्थों और अनेक देहधारी चेतन जीवोंके साक्षी सबसे भिन्न हैं॥

देहोपाधिसे अनेक अध्यासयुक्त, सर्व देहधारी मनुष्यादि जीव साक्षीरूपसे ही बुद्धि द्वारा सर्व पदार्थोंको जानते हैं। परन्तु

देहरूप मुख्य मायाका मोह और विषयासक्तिसे अनेक जड़ पदार्थोंको सत्यरूप दृढ़तासे मानके अज्ञानमें भूले फिरते हैं। उक्त हेतुसे पारखी सन्तोंने जीवोंका "साक्षी" ऐसा नाम धरा है। यह साक्षी नाम देहाध्याससे देह सम्बन्धमें है। परन्तु विदेहमुक्तस्थितिमें मुक्त जीवके पास स्थूल-सूक्ष्मादि देह साधन नहीं रहनेसे उसे साक्षी कहा नहीं जाता है या साक्षी कहते नहीं बनता है॥

जीवके 'हंस' नाम विषय कहा है:—

साखी:—"हंस बगु देखा एक रङ्ग। चरें हरियरे ताल॥
हंस क्षीरते जानिये। बगुहि धरेंगे काल॥ १७॥"
॥ बीजक, साखी-१७। टीकायुक्त॥

अर्थः—जैसे हंसपक्षी जल मिश्रित दूधमेंसे दूधका ग्रहण और जलका त्याग करते हैं। तैसे ही 'क्षीर' कहिये देहधारी चैतन्य नरजीव और 'नीर वा जल' कहिये पाँच तत्त्व, तीन गुण, पाँच विषय, कल्पना, आनन्द, अहङ्कारादि जड़ देहका अनेक समुदाय, जिसमें नरजीव देहोपाधिसे देह मिश्रित प्रतीत हो रहे हैं। तिनका निर्णय करके भाग-त्याग-लक्षणासे चेतन जीवका ग्रहण और विषयसुखोंके देहाध्यासरूप सूक्ष्म अहङ्कारोंको बुद्धि द्वारा नाशवान जान कर, तिनका विशेष प्रेम हटाय, अर्थात् सर्व जड़ पदार्थ असार, नाशवान जानके तिनको दृढ़ मानना दिलसे छोड़ दिये हैं। और देह निर्वाहमात्र उदासीनतासे क्रियाएँ करते रहते हैं; वे पशु लक्षण रहित, शुद्ध चाल-चलनयुक्त मनुष्य जीव ही "हंस जीव" वा पारखी सन्त हैं। परन्तु जड़-चैतन्य, ज्ञानी-अज्ञानी, गदहा-सन्त, ऐसे एकत्र मिलाय—

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म॥" छान्दोग्य उपनिषद्, अध्याय ३।खण्ड१४।मन्त्र१॥

अर्थात् सर्व जगत् ही ब्रह्मरूप सबका अधिष्ठान है। ऐसा सिद्धान्त करनेवाले ब्रह्मज्ञानी बेपारखी बगुले हैं। परन्तु 'हरियरे ताल' कहिये संसार, सो दोनों यहाँ ही विचरते हैं। परन्तु गुण, लक्षणोंसे उनकी पारख कर लेना चाहिये !॥

इस प्रमाणसे त्रिकालमें "मैं चेतन मनुष्य जीव सत्य हूँ !," और देह, तत्त्व, अनेक पदार्थ, ये विजाति जड़ हैं, ऐसा बुद्धिसे प्रथम पक्का निश्चय कर लिये हैं। फिर दया, क्षमा, सत्य, धैर्य, विचार, शान्ति, सन्तोषादि शुद्ध गुणयुक्त प्रारब्धमात्र शुद्ध देह व्यवहार किया करते हैं; तिनका पारखी सन्तोंने "हंस" ऐसा नाम धरा है ॥

देहोपाधिमें 'ग्रहण और त्याग' रहनेसे जीवन्मुक्त सन्तोंका 'हंस वा पारखी' ऐसा नाम है। परन्तु देहोपाधि रहित विदेहमुक्तिमें पारखी सन्तोंका 'पारख स्वरूप स्वयंप्रकाशी' ऐसा एक ही नाम अन्यको उपदेश करनेके लिये कहा जाता है ॥

पूर्वोक्त पारखी सन्तोंने जीवोंके जीव, चैतन्य, साक्षी, और हंस मनुष्य वा सत्यन्यायी पारखी सन्त; ऐसे नाम मनुष्योंको समझानेके लिये धर दिये हैं, ऐसा भेद अब आप जान जाइये ! ॥

प्रश्न (६७) हे दयानिधे ! जड़ तत्त्वोंके और देहधारी चेतन जीवोंके परस्पर संयोगरूप मिलाप, आकार, धर्म, शक्तियाँ, क्रियाएँ, और गुण, ये षट् भेद दृढ़ताके लिये आप एक बार मुझको पुनः समझाइये ? ॥

(६७) उत्तरः—सो भी कहता हूँ, सुनिये ! १. जैसे अनादि कालके जगत्में पृथ्वी, जल, तेज, वायु, ये चारों नित्य, जड़ तत्त्व अनादि हैं; और तिनके गोलाकार, सूक्ष्म अनेक त्रसरेणु, अणु, और

परमाणुओंके सन्धियोंमें अनेक छिद्ररूपसे शून्यरूप, पोल, निराकार आकाश आप ही रहा है। परन्तु तिसका और अन्य तत्त्वोंका संयोग–सम्बन्ध नहीं है। और पृथ्वी आदि चारों तत्त्वोंकी "रसायनाकर्षण" शक्तियोंसे बनते हुए तिनके कार्यरूप, अनेक जड़ पदार्थोंका संयोग–सम्बन्ध प्रवाहरूप अनादि है। अर्थात् अनेक कार्यरूप पदार्थ अपने–अपने कारणरूप तत्त्वोंमें लय होकर फिर बारम्बार उत्पन्न होते ही रहते हैं। तैसे ही अनेक जड़ पदार्थोंके पाँच विषययुक्त अल्प सुखोंके दृढ़ मानन्दीरूप सूक्ष्म अहङ्कार कहिये अध्यास अनादि, अनन्त, देहोपाधियुक्त चेतन जीवोंने अपने–अपने अन्तःकरणोंमें गुप्तरूपसे रक्खे हैं। और निराकार, अनन्त छिद्ररूप आकाशतत्त्व, सूक्ष्माकार वायुतत्त्व, और स्थूल तथा सूक्ष्माकार पृथ्वी, जल, और तेज तत्त्व हैं। परन्तु जड़ तत्त्वोंके तुल्य साकार, निराकार ये दोनों आकार रहित, विजाति शुद्ध चेतन जीव केवल ज्ञानमात्र (पारख स्वरूपमात्र) ज्ञानाकारवाले हैं। इसलिए चेतन जीवोंका केवल विषय सुखोंकी सूक्ष्म अहन्तारूप वा अध्यासमात्र ही देह सम्बन्ध है। परन्तु स्थूल–सूक्ष्म ये दो देहोपाधियुक्त सर्व जीव अनादि कालसे रहनेसे एकदेशी, ज्ञानस्वरूप साकार ही माने जाते हैं। इसलिए साकार चेतन जीवोंके और साकार, विजाति, जड़ देहोंके संयोग–सम्बन्ध प्रवाहरूप अनादि हैं। अर्थात् बारम्बार स्थूल देह छोड़ कर अध्यासयुक्त सूक्ष्म देह सहित फिर स्थूल देह धरना, ऐसा प्रवाहरूप अनादि संयोग–सम्बन्ध सर्व जीवोंका चला आया है। परन्तु देह साधन सहित सत्सङ्ग द्वारा पारख दृष्टिसे जीवन्मुक्त सन्तोंका देहाध्यास छूट जानेसे देह साधन रहित विदेहमुक्तिमें तिनके पास देहाध्यास नहीं रहनेसे स्थूल और सूक्ष्म इन दोनों

देहोंका विजाति, प्रवाहरूप अनादि सम्बन्ध तिनका बिलकुल छूट जाता है। (जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्तिका वर्णन आगे होगा।) २. अनादि कालके जगत्में जड़ पाँच तत्त्वोंमें पोलाकार अर्थात् अनेक छिद्ररूप वा शून्यरूप निराकार आकाश तत्त्व है। पृथ्वी, जल, तेज, ये दृश्य तत्त्व 'स्थूलाकार' हैं। और अदृश्य, अनेक त्रसरेणु, अणु, परमाणुरूपसे वे मिश्रित 'सूक्ष्माकार' हैं। अदृश्य वायु तत्त्व केवल 'सूक्ष्माकार' है। क्योंकि उससे स्पर्श त्वचाको लगते, ऐसा अनुभव है। इस प्रकारसे जैसे निराकार आकाश तत्त्व छोड़के अनादि अन्य चार, जड़ तत्त्वोंके स्थूल–सूक्ष्म आकार स्वरूपसे अनादि हैं। तैसे ही अनादि, अनन्त चेतन जीवोंके पास स्थूल–सूक्ष्म ये दो देह प्रवाहरूप अनादि रहनेसे वे साकार, एकदेशी कहे जाते हैं। परन्तु देहोपाधियुक्त वा देहोपाधि रहित वे अपने–अपने स्वरूपसे सूक्ष्म, स्थूल आकार रहित, किसीके कार्य नहीं रहनेसे, केवल ज्ञानाकार (पारख स्वरूप) स्वरूपसे अनन्त और अनादि हैं। ३. जैसे अनादि कालके जगत्में अनादि पृथ्वी, जल, तेज, वायु, इन चार जड़ तत्त्वोंमें क्रमसे कठिनत्त्व, शीतत्त्व, उष्णत्त्व और अतिकोमलत्त्व, ये धर्म स्वरूपसे अनादि हैं। तैसे ही किसीके कार्य रहित, अनादि, ज्ञानाकार, अनेक मनुष्यादि जीवोंको अन्तःकरण पञ्चक द्वारा होता हुआ सुख, दुःख, स्मृति आदि "अन्तर प्रत्यक्ष ज्ञान" है, और इन्द्रियों द्वारा अनेक पदार्थोंका और पाँच विषयोंका तिनको होता हुआ "बहिर प्रत्यक्ष ज्ञान" है, सो चेतन जीवोंका अनादि 'धर्म' है। अर्थात् उक्त दोनों प्रकारके ज्ञानोंको देहोपाधि द्वारा जीव ही जानते हैं। जीवन्मुक्त सन्तोंकी देहान्तमें स्थूल–सूक्ष्म देहोपाधि छूट जानेसे

देहसाधन रहित विदेहमुक्त जीवोंका केवल "स्वरूपज्ञान" यह अनादि, स्वयंप्रकाशरूप तिनका ज्ञानधर्म रह जाता है। सो ज्ञानधर्म और धर्मी जीव स्वरूपसे एक ही पद है; जैसे 'शक्कर और मिठास' एक ही स्वरूप। ४. जैसे अनादि कालके जगत्में पृथ्वी आदि चार, अनादि जड़ तत्त्वोंमें अपनी–अपनी आकर्षण शक्तियाँ स्वरूपसे अनादि हैं। तैसे ही अनादि कालके जगत्में अनादि, अनन्त चेतन जीव देहोपाधियुक्त रहनेसे अनेक अल्प सुखोंके सूक्ष्म अहङ्काररूप अध्यास तिन्होंने अपने–अपने अन्तःकरणमें गुप्तरूपसे रक्खा है। इसलिए देहोंके अनेक व्यवहार करनेमें वे बारम्बार "इच्छा–शक्ति" प्रकट करते हैं। वह "इच्छा–शक्ति" प्रवाहरूप अनादि है; और देह साधन नहीं रहनेसे विदेहमुक्तिमें मुक्त जीव देहोपाधिके इच्छा-शक्ति रहित, स्वयं प्रकाशरूप चेतनदेशमें निराधार स्थित रहते हैं। ५. अनादि कालके जगत्में जैसे पृथ्वीमें पश्चिम(पच्छिम)से पूर्वकीओर घूमनेकी सदोदित चक्राकार चलन क्रिया, जलमें अधोगमन क्रिया, अग्निमें ऊर्ध्वगमन क्रिया, और वायुमें तिरछी चलन क्रिया, ऐसी अनादि, चारों जड़ तत्त्वोंमें अपनी–अपनी स्वयं क्रियाएँ अनादि हैं। तैसे ही देहोपाधि सहित अनादि, अनेक चेतन जीवोंमें बारम्बार "इच्छा–शक्ति" प्रगटाय, जड़ देह और जड़ पदार्थोंके सत्ता–संयोग द्वारा अनेक व्यवहार करनेकी और आवागमनादि क्रियाएँ प्रवाहरूप अनादि हैं। तथा देहसाधन रहित विदेहमुक्तिमें मुक्त जीव इच्छा–शक्ति रहित सदोदित अक्रिय ही रह जाते हैं। ६. अनादि कालके जगत्में जैसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु, ये अनादि, चारों जड़ तत्त्वोंमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, ये 'विषय वा गुण' स्वरूपसे अनादि हैं। तैसे ही

अनादि, अनेक चेतन जीवोंका 'पारख गुण' (ज्ञान गुण) "स्वयंप्रत्यक्ष सदोदित मैं हूँ !" ऐसी अपनी–अपनी स्वयं चेतन स्वरूपकी प्रतीति सबोंको प्रत्यक्ष ही है। क्योंकि जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, इन तीन अवस्थाओंमें मेरे चेतन स्वरूपका नाश हुआ, ऐसी प्रतीति किसीको होती नहीं। सुषुप्तिके भी विशेष सुखका स्मृति ज्ञान जाग्रत्में सबोंको रहता है। इसलिए नित्य चेतन जीवोंका देहोपाधियुक्त या देहसाधन रहित विदेहमुक्तिमें ज्ञानगुण समवाय–सम्बन्धसे (नित्य सम्बन्धसे) सदोदित नित्य रहा है। 'ज्ञान गुण' और 'ज्ञान गुणी' शुद्ध जीव कहने मात्र नाम दो हैं, परन्तु स्वरूपसे एक ही पदार्थ है। पूर्वोक्त षट् भेदोंके प्रमाण पूर्वके प्रश्नोंमें दिये गये हैं, इसीसे यहाँ पर तिनको फिर दर्शाये नहीं ॥

इस प्रकारसे अनादि कालके जगत्में अनादि, निराकार, अनेक छिद्ररूप वा शून्य स्वरूप आकाश तत्त्व छोड़के पृथ्वी, जल, तेज, वायु, इन चार, अनादि जड़ तत्त्वोंके और अनादि, अनन्त चेतन जीवोंके तथा देहोंके परस्पर मिलाप, आकार, धर्म, शक्तियाँ, क्रियाएँ, और गुण, ये षट्भेद अनादि और प्रवाहरूप अनादि कैसे हैं ? तिनका वर्णन आपको स्पष्ट रीतिसे पुनः हम समझाये हैं। अब आप भी इसे अच्छी तरहसे समझ लीजिये ! ॥

॥ ❀ ॥ अथ प्रत्यक्षादि अष्ट प्रमाण वर्णन ॥ ❀ ॥

प्रश्न (९८) विचारसागरके चतुर्थ स्तरङ्गमें कहा ❀ है:– "चार्वाक एक ही "प्रत्यक्ष प्रमाण" माने हैं। वैशेषिक शास्त्रके आचार्य कणादजी और सुगतमतके अनुसारी दूसरा और

❀ विचारसागर, स्तरङ्ग ४। पृष्ठ १६३ से १६५ तक लिखा है ॥

"अनुमान प्रमाण" माने हैं। सांख्य शास्त्रके आचार्य कपिलमुनि तीसरा और "शब्द प्रमाण" माने हैं। न्याय शास्त्रके आचार्य गौतमजी और तिनके मतके अनुसारी चौथा और "उपमान प्रमाण" माने हैं। पूर्वमीमांसा शास्त्र माननेवाले (एकदेशी भट्टके शिष्य प्रभाकर) पाँचवाँ और "अर्थापत्ति प्रमाण" माने हैं, और वेदान्त शास्त्रकर्त्ता व्यासजी तथा शङ्कराचार्यादि वेदान्ती तथा पूर्व मीमांसक भट्टादि छट्ठा और "अनुपलब्धि (अभाव) प्रमाण माने हैं ❀।" कहीं 'ऐतिह्य' तथा 'सम्भव प्रमाण' (भाव प्रमाण) ये दो और प्रमाण भी माने हैं ॥

इस प्रकारसे १. प्रत्यक्ष, २. अनुमान, ३. शब्द, ४. उपमान, ५. अर्थापत्ति, ६. अनुपलब्धि, ७. ऐतिह्य, और ८. सम्भव, इन अष्ट प्रमाणोंको जगत्में महात्मा ज्ञानीजन मानते हैं। तिन अष्ट प्रमाणोंमेंसे आप कितने प्रमाण मानते हैं, सो कहिये ? ॥

(६८) उत्तरः—सुनिये ! इसका खुलासा निर्णय भेद भी मैं कहता हूँ। मुख्य प्रमाण अपनी स्वयं प्रत्यक्ष प्रतीति (अविनाशी स्वयं चेतन जीव की प्रतीति) सदोदित मनुष्योंको अपरोक्ष (स्वयं प्रत्यक्ष) है। क्योंकि जाग्रत्, स्वप्न, और सुषुप्ति, इन तीनों अवस्थाओंमें अपने चेतन जीव स्वरूपका नाश नहीं। ऐसा ही सबोंको अनुभव है; वही मुख्य "प्रत्यक्ष प्रमाण" है। पूर्वोक्त अष्ट प्रमाण देहोपाधियुक्त नर जीवोंके सत्ता-संयोगसे सिद्ध होनेसे परोक्ष तथा देहान्तमें नाश होनेवाले हैं। तथापि जिज्ञासु मनुष्योंको जड़ पदार्थोंके विषयाध्यास सत्सङ्ग द्वारा छुड़ानेके लिए उक्त अष्ट प्रमाणोंको हम भी मानते हैं। यथार्थ

❀ तत्वानुसन्धान, परिच्छेद २। पृष्ठ-७७ में भी उक्त षट्प्रमाण लिखा है ॥

विचारसे देहोपाधि युक्त "प्रत्यक्ष प्रमाण" के भीतर ही अन्य सातों प्रमाण गिने जाते हैं, तिनका भेद हम आगे कहेंगे ॥

वेदान्तमें वृत्तिका लक्षण कहा है:—

"विषयचैतन्याभिव्यंजकोऽन्तःकरणाज्ञानयोः परिणामविशेषः वृत्तिः ॥"

॥ तत्त्वानुसन्धान, परिच्छेद २ । पृष्ठ—७२ ॥

अर्थः—ज्ञानके विषय जो घट—पटादि पदार्थ तिन उपाधियुक्त जो चेतन सो "विषय चेतन" है । तिस चेतनका अभिव्यञ्जक (अपरोक्ष व्यवहार) अन्तःकरणका वा अज्ञानका विशेष परिणाम, सो "वृत्ति" है ॥

वृत्तिप्रभाकरके सप्तम प्रकाशमें कहा है:—"विषय प्रकाशका हेतु अन्तःकरण या अविद्याका परिणाम 'वृत्ति' कहाती है ॥"

कितनेक ग्रन्थकार अज्ञानका नाशक परिणाम वृत्ति कहे हैं ॥

वेदान्तमें प्रत्यक्ष प्रमाण विषय कहा है:—

"विषयचैतन्याभिन्नप्रमाणचैतन्यं प्रत्यक्षप्रमा ॥"

॥ तत्त्वानुसन्धान, परिच्छेद २ । पृष्ठ—७७ ॥

अर्थः—विषय चैतन्यसे अभिन्न जो प्रमाण चैतन्य है, सो प्रत्यक्षप्रमा (प्रत्यक्षज्ञान) है ॥

वेदान्तमें यद्यपि 'प्रमा' नाम चेतनका है, वह नित्य माना है । इन्द्रियोंसे उत्पत्तिवाला नहीं, इसलिए इन्द्रियाँ प्रमाका कारण नहीं । तथापि चेतनमें प्रमाव्यवहार उत्पन्न होने वाली 'वृत्ति' भी 'प्रमा' कहाती है; और इन्द्रियाँ तिसके 'करण' है ॥

वेदके अर्थ जाननेवाले आचार्य उपाधि भेदसे चार ❀ चेतन माने हैं । तिनके नाम—"प्रमाताचेतन, प्रमाणचेतन,

❀ विचारसागर, स्तरङ्ग ४ । पृष्ठ १६९ से १७० तक लिखा है ॥

विषयचेतन, वही प्रमेयचेतन और प्रमाचेतन वही प्रमितिचेतन, माने हैं ॥" सर्व देहके मध्य स्थित मध्यम परिमाणवाला अन्तःकरणविशिष्ट चेतन भिन्न उपाधिवाले अन्तःकरण सहित या अन्तःकरणविशिष्ट चेतन "प्रमाताचेतन" माना है। जैसे तालाबमें भरा हुआ जल किसी छिद्र द्वारा निकल कर लम्बे नालेका आकार होके बगीचेके क्यारीमें जाकर उसीका ही आकार हो जाता है। तैसे ही अन्तःकरण नेत्रादि इन्द्रिय द्वारा निकलके जितने दूर घटादिक विषय हैं, उतना लम्बा परिणाम अन्तःकरणका होकर घटादिक विषयोंमें मिलके तिनके ही आकार हो जाता है। तहाँ शरीरसे लेके घटादिक विषयोंतक जो अन्तःकरणका नालेके समान लम्बा परिणाम (कार्य) वह वृत्तिज्ञान कहाता है। तिस उपाधियुक्त चेतनको "प्रमाणचेतन" माना है। ज्ञानके विषय घटादिक पदार्थ हैं, तिन विषयोंसे उपाधियुक्त चेतनको "विषयचेतन" माना है। और जैसे तालाबका जल क्यारीमें जाके क्यारीके समान आकारको प्राप्त हो जाता है। तैसे ही घटादिक विषयोंमें वृत्ति जाके तिनके समान आकारको प्राप्त हो जाती है। तिस उपाधियुक्त चेतनको "प्रमाचेतन वा फलचेतन" माना है। जैसे एक तालाबका जल, तिसमेंके छिद्र द्वारा निकलके नालेके लम्बे आकारवत् बना हुआ दूसरा जल, क्यारीमें प्रवेश किया हुआ तीसरा जल, और क्यारीके समानाकारको प्राप्त हुआ चौथा जल; यद्यपि उपाधि भेदसे भिन्न-भिन्न चार प्रकारके जल प्रतीत होते हैं; तथापि स्वरूपसे जल एक ही है। तैसे ही अन्तःकरणविशिष्ट वा अन्तःकरण उपाधियुक्त 'प्रमाताचेतन' आदि उक्त चारों चेतन उपाधि भेदसे भिन्न-भिन्न हैं। परन्तु

प्रत्यक्ष ज्ञान समय उक्त चारों जलवत् वे चारों चैतन्य स्वरूपसे एक हो जाते हैं ॥

दोहाः—"इन्द्रिय बिन प्रत्यक्ष नहिं, शिष्य! यह नियम न जान ॥
बिन इन्द्रिय प्रत्यक्ष है, जैसे सुख-दुःख ज्ञान ॥११८॥"
॥ विचारसागर, स्तरङ्ग ४ । दोहा-११८ । पृष्ठ-१८५ ॥

अर्थः—निश्चलदासजी कहते हैं कि, हे शिष्य! इन्द्रिय बिना प्रत्यक्ष ज्ञान होता नहीं, यह नियम नहीं । सुख-दुःखका ज्ञान इन्द्रिय बिना ही मनुष्योंको प्रत्यक्ष होता है। विषयोंमें वृत्तिका सम्बन्ध होकर विषयाकार वृत्तिसे प्रत्यक्षज्ञान होता है। वह वृत्तिका सम्बन्ध कहीं इन्द्रियों द्वारा, कहीं उपदेशके शब्दों द्वारा, कहीं अन्तःकरणका परिणाम सुख-दुःखाकार वृत्तिसे 'प्रत्यक्षज्ञान' होता है। पदार्थोंके योगसे सुख-दुःख पूर्वमें भोग लिये हैं, तिनके कुछ काल पीछे सुख-दुःखकी यादरूप वृत्ति स्मृतिरूप है, परन्तु प्रत्यक्ष नहीं। सो वृत्तिका ज्ञानकर्त्ता भासक साक्षी चेतन है। अन्तःकरण उपाधिरूप विद्या वृत्तिसे साक्षी प्रकाशता है, परन्तु साक्षी चेतन स्वयं अक्रिय है ॥

इस प्रकारसे साभास अन्तःकरणविशिष्ट चेतन "प्रमाता," पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ "प्रमाण," घटादिक विषय "प्रमेय," कहिये पदार्थ, और तिन विषयोंका वृत्तिज्ञान "प्रमा" है ॥

न्याय मतमें प्रत्यक्ष प्रमाण विषय कहा हैः—

"इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि
व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम् ॥ ४ ॥"-न्यायसूत्र-४ । अध्याय १ । आह्निक १ ॥

अर्थः—निराकार, विभु जीवात्माओंके साथ सूक्ष्म परमाणुवत् मनोंका संयोग रहके फिर पाँच ज्ञानेन्द्रियोंका घटादि विषयोंके

साथ आवरण रहित सम्बन्ध होकर जो ज्ञान होता है, वह "प्रत्यक्षज्ञान" कहाता है ॥

सांख्य मतसे अनेक निराकार, विभु पुरुष (चैतन्य जीव) अक्रिय हैं। परन्तु सबसे परे एक सर्वज्ञ पुरुषके समीप विभु प्रकृति रहनेसे उसका पुरुषमें प्रतिबिम्ब पड़ कर, उपाधि अविवेक द्वारा एक ब्रह्मावत् सिद्धपुरुष आकाररूप परिमाणको प्राप्त हो जानेसे वही सृष्टि रचता है। फिर सृष्टिमें अनेक विभु पुरुष जीवात्माओंको ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ही प्रत्यक्षज्ञान कहा है; (तिसको पूर्वका प्रमाण प्रश्न ३२ में देखिये !) ॥

प्रत्यक्ष प्रमाणमें सांख्यदिवाकरके प्रथम प्रकाशमें सात दोष कहे हैं:—१. अतिसमीपतासे नेत्रमें अञ्जनकी प्रतीति नहीं होना। २. अन्धता, बधिरता, यह ज्ञानेन्द्रियोंका घात। ३. मनका अनवस्थान, अर्थात् मनसे अन्य पदार्थोंका चिन्तन और अन्य इन्द्रियोंका सम्बन्ध। ४. परमाणुवत् अतिसूक्ष्मता। ५. दिवाल, वृक्षादि पदार्थोंका व्यवधान पर्दा। ६. अभिभव, अर्थात् सूर्यके किरणोंमें तारागणका तिरोधान (छिप जाना)। ७. समानाभिहार, अर्थात् मेघसे गिरे हुए बून्दोंका नदी आदि किसी जलमें मिलाप ॥

पहला:—वेदान्तमें १. कूटस्थ चेतन, २. बुद्धि, और ३. आकाशवत् व्यापक अन्तरके कूटस्थ चेतनका या बाहरके व्यापक ब्रह्मका बुद्धिमें पड़ा हुआ प्रतिबिम्ब, ये तीनों मिलाके 'जीव चेतन' माने हैं। परन्तु निराकार, व्यापकका प्रतिबिम्ब मानना असम्भव कथन है; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न ५० में देखिये !) ॥

दूसरा:—कूटस्थ चेतन, बुद्धिरूपी अन्तःकरण, और बुद्धिमेंका प्रतिबिम्ब, इन तीनोंको अवयव रहित शरीरमें नखसे शिखा तक

व्यापक ठहराये हैं। परन्तु जगत्में कोई व्यापक पदार्थ ही नहीं है। क्योंकि पाँच जड़ तत्त्व स्वरूपसे भिन्न-भिन्न रहनेसे एकदेशी ही हैं। ज्ञान स्वरूपसे अनन्त वा देहोपाधियुक्त, अखण्ड चेतन जीव किसीके कार्य नहीं रहनेसे एकदेशी अनन्त ही हैं; (उसको प्रमाण पूर्वके प्रश्न ८७ में देखिये !)। एक व्यापकमें वैसा ही अन्य व्यापक पदार्थ रह ही नहीं सकता; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न ६ में देखिये !)॥

तीसरा:—एकदेशी सूर्यके प्रकाशवत् शरीरभर व्यापक कूटस्थ चेतनके प्रकाशसे शरीर भर व्यापक अन्तःकरण बाहर निकलके दूर घटादिक विषयोंतक वृत्ति जाकर, तिनके आकार समान फैलके प्रत्यक्ष ज्ञान होता है, ऐसा मानना अयुक्त है। यदि घटादि विषयोंके आकार समान वृत्ति फैली भी है, ऐसा माने, तो तिन विषयोंके जो भाग मनुष्योंके सामने हैं, वही दीखते हैं, दूसरे तरफके भाग दीखते ही नहीं, यह सबको प्रत्यक्ष है। पहाड़ पर बहुत मनुष्य खड़े होवें, तो नीचे स्थित मनुष्योंको छोटे आकारोंके दीखते हैं। एक या अनेक वृक्षोंके सब पत्ते, डालियाँ, फल, तिन पर चढ़े हुए मनुष्य और वहाँ पर बैठे हुए पक्षी आदि, नीचेके या दूरके मनुष्योंको सम्पूर्ण दीखते ही नहीं, ये भी प्रत्यक्ष है। कितनेक कोशों पर तोप छूटनेसे बीचके मनुष्य, पक्षी आदिकोंके शब्द अपनेको सुननेमें आते ही नहीं, यह भी प्रत्यक्ष है। इसीसे वृत्तिका घटादि विषयोंके समान आकार फैल जाता है, ऐसा मानना अन्यायका कथन है। यदि पृथ्वीके सब जड़ रज कभी एक ही स्वरूप बनते नहीं, तो अखण्ड उक्त चारों चेतन एक ही स्वरूप बन जाते, ऐसा मानना भी अन्यायका कथन है। वेदान्त मतमें

चेतन जीवोंको "पराप्रकृति" अर्थात् जड़ स्वरूप ही माने हैं; (उसे पूर्वके भगवद्गीताका प्रमाण प्रश्न ५१ में देखिये !) । और कूटस्थ (साक्षी चेतन) माना हुआ भी जड़ ही ठहरता है; (उसे पूर्वका प्रश्न ६१ में देखिये !) । अन्तःकरण विशेषणयुक्त वा अन्तःकरण उपाधियुक्त "प्रमाताचेतन" मानना असम्भव दोषयुक्त है। क्योंकि अन्तःकरण और कूटस्थ चेतन दोनों निरवयव और सर्व देहोंमें व्यापक तथा भिन्न-भिन्न एकत्र रहना ही तिनका बनता नहीं ॥

यद्यपि वेदान्त मतमें चेतन ब्रह्मको कूटस्थ तथा साक्षी कहा है, तथापि व्यापक और साक्षी कहा है; (उसे पूर्वके प्रमाण प्रश्न ८ । ६ और प्रश्न १० में देखिये !) । साक्षीके आश्रित भ्रान्ति, संशय, और स्मृतिज्ञान कहा है; (तिसको प्रमाण विचारसागरके चतुर्थ स्तरङ्गमें ❀ देखिये !) । शुद्ध ब्रह्मको व्यापक अक्रिय और असङ्ग कहा है, (उसे पूर्वके प्रमाण प्रश्न ४ और प्रश्न ३६ में देखिये !) । शुद्ध ब्रह्ममें मायाको सत्ता-स्फुर्ति देना, इतनी ही शक्ति है, वह माया शुद्ध ब्रह्मके आधारसे नित्य रहती है, माया वा अज्ञान अग्निमें उष्णतावत् शुद्ध ब्रह्मकी शक्ति उसका स्वरूप रहते भी उसीको आच्छादित कर देती है; (इन सबोंका प्रमाण पूर्वके प्रश्न ४८ में देखिये !) । जगत्‌रूपी मायाको सत्-असत्‌से विलक्षण अनिर्वचनीय (देखने मात्र मिथ्या) रज्जुसर्पवत् कही है; (उसे पूर्वके प्रमाण प्रश्न ४७ में देखिये !) । वही मिथ्या माया असङ्ग शुद्ध ब्रह्ममें दुर्घट इच्छा उत्पन्न कराय, जगत्‌की उत्पत्ति मानी है । ऐसी अचिन्त्यशक्ति माया है; (उसे पूर्वका प्रमाण प्रश्न ४८ में देखिये !) ॥

❀ विचारसागर, स्तरङ्ग ४ । पृष्ठ १५६ से १६३ और १६६ में लिखा है ॥

पूर्वोक्त प्रमाणोंसे भ्रमिक मनुष्यवत् वेदान्ती मिथ्यावादी महात्मा पूर्वमें बक गये, और वर्त्तमानमें बक रहे हैं। परन्तु अनेक चेतन जीव सहित पाँच जड़ तत्त्वोंका दृश्य जगत् और सूर्य, चन्द्र, तारागणादि खगोल पिण्ड उत्पत्ति-प्रलय रहित अनादि ठहरे हैं; (तिसको जगत् कर्त्ता दर्शन प्रकरणके सब प्रश्नोंको देखिये !)। इसी सबब शुद्ध ब्रह्म और तिसकी शक्ति मानकर तिससे भिन्न मायारूप अज्ञान ठहराना मनुष्य जीवोंकी कल्पना ही सिद्ध है। जैसे केलेके पेड़के पिछले सब असार रहते हैं, तैसे ही वेदान्त मतमें यथार्थ न्यायसे सत्य विवेक हुआ ही नहीं। इसलिए प्रत्यक्षादि एक भी प्रमाण तिस मतका यथार्थ मानने योग्य नहीं है॥

न्याय मतमें देह भर व्यापक, निराकार, अनन्त चेतन जीवात्माओंको नित्य मानना असम्भव दोषयुक्त है। इसीसे निराकार जीवात्माओंको नित्य द्रव्य मानके अति सूक्ष्माकार वा निराकार जड़ मनके संयोगसे तिनको 'ज्ञानगुण' वाले मानने और सुषुप्ति तथा मुक्तिमें 'ज्ञानगुण' रहित मानने भ्रमका कथन है। तैसे ही जड़ बुद्धिको जीवात्माका ज्ञानगुण भी मानना अयुक्त है; (तिनको प्रमाण पूर्वके प्रश्न ३६ में देखिये !)। परन्तु जुगनूके प्रकाश-अप्रकाशवत् कभी जड़रूप कभी चेतनरूप, कभी संकोच-विकासरूप, ऐसे अनन्त जीवात्माओंको माननेवाले न्याय-मत वादी भी अन्यायी भ्रमिक ही हैं। इसलिए सूक्ष्म मन इन्द्रिय और व्यापक, निराकार जीवात्माके संयोगसे ज्ञान होने-वाला प्रत्यक्षादि एक भी प्रमाण न्यायमतका यथार्थ मानने योग्य नहीं है॥

सांख्य मतमें असङ्ग, निराकार, व्यापक, अनेक जीवात्मा

पुरुष नित्य माने हैं। परन्तु सबसे परे, सर्वज्ञ, सर्व सामर्थ्यवान् परपुरुषके समीप निराकार, व्यापक प्रकृति नित्य रही है। तिसके सत्ता-संयोगसे वह प्रकृति ज्ञानवान्, शक्तिमान् बन कर, अपना स्व-उपाधि-संयोग और अविवेकरूप बन्धन जीवात्मा पुरुषोंके मिटानेके लिये देहादि पाँच तत्त्वोंकी सृष्टि वही उत्पन्न करती है; (तिनको प्रमाण पूर्वके सांख्य मतके प्रश्न देखिये!)। परन्तु व्यापक चेतन निराकार पुरुष और तैसे ही व्यापक, निराकार, जड़ प्रकृति दोनोंका संयोग होकर सृष्टिकी उत्पत्ति मानना असम्भव दोषयुक्त है। इसलिए सांख्यवादीका प्रत्यक्षादि एक भी प्रमाण यथार्थ मानने योग्य नहीं है॥

अब सद्गुरु श्रीकबीर साहेबके प्रत्यक्षादि प्रमाणोंका भेद कहते हैं:—सुनिये! ब्रह्माण्डरूप पाँच तत्त्वोंका जगत् उत्पत्ति-प्रलय रहित अनादि है। देहाध्यासवश जीवोंके स्थूल-सूक्ष्म शरीरोंका संयोग-सम्बन्ध प्रवाहरूप अनादि कालसे चला आया है, (तिनको पूर्वके प्रमाण प्रश्न ९० में देखिये!)। देहोपाधियुक्त जीवोंमें सत्ता-संयोगसे इन्द्रियों द्वारा पदार्थों और पाँच विषयोंको जानना 'धर्म वा गुण' स्वयं है। विदेहमुक्तिमें निरुपाधि, स्वयं प्रकाश पारख धर्म वा गुण स्वयं है। (तिसको प्रमाण पूर्वके प्रश्न ९१ में देखिये!)॥

शब्द:—"झगरा एक बढ़ो राजाराम!॥" -बीजक, शब्द-११२॥

इसकी टीकामें लिखा है:—"जीवकी सत्ता-संयोग सामिलतासे पाँच इन्द्रियों द्वारा अनेक पदार्थ और पाँच विषयोंका ज्ञान चेतन मनुष्योंको होता है। अथवा:—अन्तःकरण आकाशका स्वभाव अर्थात् समानगतिवान् वायुकी कला, उसमें मनुष्य जीवकी सत्ता-सामिलतासे निर्विकल्प, विशेष आनन्दरूप ब्रह्म है, ऐसे ब्रह्मज्ञानी

लोग मानते हैं। चञ्चल वायुकी कला चित्त, उसमें नरजीवकी सत्ता–सामिलतासे सहविकल्परूप ब्रह्म है, ऐसा ज्ञानीजन अनुमान करते हैं। पृथ्वीकी कला बुद्धि, उसमें नरजीवकी सत्ता–सामिलतासे जैसे-का-तैसा एक अद्वैतरूप ब्रह्म है, ऐसा ज्ञानीजन निश्चय करते हैं। जलकी कला मन, उसमें नरजीवकी सत्ता–सामिलतासे दूसरा कर्त्ता स्वर्गलोकमें है, ऐसी मनुष्य कल्पना करते हैं। तेजकी कला अहङ्कार, उसमें नरजीवकी सत्ता–सामिलतासे प्रत्यक्ष प्रतीत होता हुआ सर्व जगत् ही ब्रह्मरूप है, ऐसा ब्रह्मज्ञानी, योगी व भक्तजन अध्यास रखते हैं॥"

इन प्रमाणोंसे पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ बाहरसे गोलाकार और लम्बाकार तथा भीतरसे वायुरूप सूक्ष्माकार बनी हैं। तिनमें "कान" मुख्य समान गतिवान् वायुका अंश, और "त्वचा" मुख्य चञ्चल वायुका अंश है। "नेत्र, जीभ, और नासिका" क्रमसे मुख्य तेज, जल और पृथ्वीका अंश है। तिनमें मनुष्य जीवोंकी सत्ता–संयोगसे पाँच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अनेक पदार्थ और पाँच विषयोंको नरजीव जानते, वह ज्ञान—"बहिर प्रत्यक्ष ज्ञान" है। अन्तःकरण, चित्त, मन, बुद्धि, अहङ्कार, यह अन्तःकरण पञ्चक द्वारा स्मृति, सुख, दुःख, पाप, पुण्य, सङ्कल्प, विकल्प, निश्चय, अनुसन्धान, अभिमान, अनेक कल्पना, भास, अध्यास, वासना, आशा, तृष्णा, काम, क्रोधादि अशुद्ध गुण; और दया, क्षमादि शुद्ध गुण इत्यादिकोंको मनुष्य जानते, वह—"अन्तर प्रत्यक्ष ज्ञान" है। और अनेक चेतन जीव देह सहित बद्ध वा देह अध्यास रहित मुक्त सदोदित रहते हैं, तिनका "स्वयं प्रत्यक्ष ज्ञान" अर्थात् अपने चेतन स्वरूपकी सदाकाल स्वयं प्रतीति सबको प्रत्यक्ष है। 'चेतन जीवोंको जड़

इन्द्रियाँ, वाचा, मन, बुद्धि, अन्तःकरणादि कोई भी जाननेमें समर्थ नहीं।' क्योंकि जड़ तत्त्वादि अनेक पदार्थोंमें ज्ञान वा जड़ासक्तिरूपी अज्ञान दोनोंको जाननेकी सत्ता नहीं; ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव है। अथवा जड़में ज्ञान ही नहीं; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न ३ में देखिये !) ॥

शङ्काः—यदि देहधारी मनुष्योंको जीव चेतनका स्वयंप्रत्यक्ष ज्ञान सदोदित प्रत्यक्ष ही है, अपने स्वरूपके अभावकी वा नाशकी प्रतीति किसीको नहीं, तो भ्रम वा भूल तिस विषय क्यों होती है ? और वह कैसे छूटेगी ? ॥

समाधानः—चेतन मनुष्यके 'स्वयं प्रत्यक्ष ज्ञान' में भूल नहीं है। परन्तु देहादि अनेक जड़ पदार्थोंके अनेक सुखोंके सूक्ष्म अहङ्काररूप अनेक अध्यास मनुष्य लोग अपने हृदयोंमें (अन्तःकरणोंमें) अनादि कालसे गुप्तरूपसे रक्खे हैं। इसलिए बारम्बार इच्छा करके अनेक नाशवान् अल्प सुखोंमें मनुष्य भूलते जाते हैं। अर्थात् जड़ पदार्थोंके अहङ्कार और ममत्त्व दृढ़ होकर मनुष्योंके लक्ष्य हमेशा तिन पदार्थों पर ही रहते हैं। इसीसे भ्रम वा भूल मनुष्योंमें सिद्ध होती है। जैसे अपने गलेमें पहिरे हुए अलङ्कारका लक्ष छूट कर "कहीं गुम हो (खो) गया" ऐसा जानके मनुष्य बाहर खोजने लगते हैं, और वह है अपने ही पास; उस पर वे पूर्ण लक्ष नहीं करते। फिर स्वयं विचार करके या किसीके बतलानेसे वह मनुष्य "अलङ्कार मिल गया," ऐसा कहता है। ऐसी बाहरकी प्राप्त वस्तुकी प्राप्ति भी मानी जाती है। तैसे ही विजाति जड़ देहादिकोंका आसक्तिरूप अध्यास सद्-गुरुके वा पारखी साधु—गुरुके सत्सङ्ग द्वारा और निज विवेकके बल

द्वारा पूर्ण पारख दृष्टि हो जानेसे सर्व जड़ पदार्थ निरस (असार) या फीके लगते; अर्थात् तिनके विशेष विषयोंके भासरूप अध्यास नाशवान् जानके छूट जाते हैं। ऐसी जीवन्मुक्त पारखी सन्तकी दृष्टि "मैं चेतन हंस" त्रिकालमें 'नित्य, सत्य, ज्ञान स्वरूप ही हूँ!' और देहादि सर्व कार्यरूप जड़ पदार्थ अनित्य (नाशवान्) हैं। ऐसी सदोदित दृढ़ पारख दृष्टि बन जानेसे विजाति जड़ अध्यासरूप भ्रम वा भूल छूट भी जाती है। इसको ही निज स्वरूपकी स्थिति प्राप्ति हुई, ऐसा जगत्में बोध हेतु कहा जाता है। नहीं तो आप चेतन हंस सर्वको स्वयं स्वरूप सदा प्राप्त ही है॥

इन प्रमाणोंसे उपदेश करके मनुष्योंके विजाति जड़ाध्यासोंको छुड़ानेके लिए प्रश्नमें कहे हुए अष्ट प्रमाणोंको सद्गुरु श्रीकबीर साहेब भी मानते हैं; (उसे प्रमाण बीजक साखी ३००:— "हंसाके घट भीतरे ॥" ❀ इसकी टीकामें देखिये !) ॥

❀ साखी:—"हंसाके घट भीतरे। बसै सरोवर खोट ॥
चलै गाँव जहवाँ नहीं। तहाँ उठावन कोट ॥३००॥बीजक॥"

टीका गुरुमुख:—हंसाके घटमें जो अनुभव बसता है, सो सब खोटा मिथ्या है। अरे! जहाँ गाँव बस्ती नहीं, तहाँ शून्यमें, स्वर्गमें कोट उठाने चले; तो मिथ्या भ्रान्ती। 'हंसा' कहिये जीवको, 'जीव' कहिये जाको कभी नाश न होय; मान सरोवर कहिये जीवकी मानन्दी। मानन्दी परोक्ष, प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमेय, शास्त्र, अर्थापत्ति, भाव, अनुभव। मानन्दी दो प्रकार; परोक्ष, अपरोक्ष; ताके आठ प्रमाण ताको अर्थ:—'प्रत्यक्ष' कहिये जो आँखोंसे देखनेमें आवै, सो स्थूल देह। 'अनुमान' कहिये जो देखनेमें न आवै, चित्तसे अनुसन्धान करै, जो ऐसा होयगा, सो सूक्ष्म। 'उपमेय' कहिये इसके सरीखा है; आकाश-सा, वायु-सा, तेज-सा, जल-सा, पृथिवी-सा, सो कारण। 'शास्त्र प्रमाण' कहिये जैसा शास्त्रमें, वेदमें लिखा होय, सो मानिये। 'अर्थापत्ती' कहिये जो अर्थ करके वस्तु ठहरे, सो मानिये। 'अभाव

पूर्वोक्त कथनसे देहोपाधियुक्त मनुष्य जीवोंकी सत्ता–सामिलता या संयोग–सम्बन्धसे ज्ञानेन्द्रियों द्वारा होता हुआ अनेक पदार्थ और पाँच विषयोंका, मनुष्योंका ज्ञान–"बहिर प्रत्यक्ष ज्ञान" है। अन्तःकरण पञ्चक द्वारा सुख, दुःख, स्मृति आदि मनुष्योंकी सत्ता–संयोगसे होता हुआ मनुष्योंका ज्ञान–"अन्तर प्रत्यक्ष ज्ञान" है; और मनुष्य (आप शुद्ध चेतन हंस) सबोंको—"स्वयं प्रत्यक्ष" ही है। अर्थात् अपरोक्ष अपने स्वरूपकी सबोंको सदोदित प्रत्यक्ष प्रतीति या "स्वयं प्रत्यक्ष ज्ञान" है। परन्तु मनुष्य भूलसे जड़ नाशवान् पदार्थोंको सत्य ही मानते जाते हैं, उसे परखके त्यागना वा भूल मिटाना चाहिये ॥

उक्त तीनों प्रकारके ज्ञानोंमें निज "चेतनका अपरोक्ष ज्ञान" (स्वयं प्रत्यक्ष ज्ञान वा स्वरूप ज्ञान) मुख्य है। और "बहिर प्रत्यक्ष" तथा "अन्तर प्रत्यक्ष" ये दोनों ज्ञान देहोपाधियुक्त मनुष्योंमें रहनेसे गौण वा 'परोक्षज्ञान' हैं। उक्त तीन प्रकारके प्रत्यक्ष प्रमाणके भीतर ही अन्य सात प्रमाण हैं; ऐसा आप अब जान लीजिये ! ॥

प्रश्न (६६) मैं तीन प्रकारके प्रत्यक्ष प्रमाणोंको अब सर्व प्रकारसे जान लिया हूँ !। परन्तु अन्य सात प्रमाण—प्रत्यक्ष

प्रमाण' कहिये काहू प्रमाणका, काहू वस्तुका भाव नहीं; सो भी कारण। 'भाव' कहिये सबका अभाव सुषुप्तिवत् औ अपना भाव सोई महाकारण तुरिया। 'अनुभव' कहिये निज समुझ जहाँ काहूका भाव नहीं और अपना भी भाव नहीं; भावातीत भाव, कैवल्य आत्मा सच्चिदानन्द। ये अष्ट प्रमाण कर–करके दो प्रकारकी मानन्दी हंसाके घटमें बसी, सो खोटी और बन्धन। सो परखके दूर करना। ये अर्थ ॥

॥—त्रिजासे बीजक, साखी—॥ ३०० ॥

प्रमाणके भीतर ही हैं, ऐसा आप अभी कहे हैं। इसलिए दूसरा 'अनुमान प्रमाण' किस प्रकारसे प्रत्यक्ष प्रमाणके भीतर ही है, सो भी समझाइये ? ॥

(६६) उत्तरः—सुनिये ! वेदान्त मतमें 'अनुमान प्रमाण' विषय कहा है:—"लिङ्गज्ञानजन्यज्ञानम् अनुमितिः ॥"

॥ तत्त्वानुसन्धान, परिच्छेद २ । पृष्ठ–८३ ॥

अर्थः—लिङ्ग कहिये व्याप्त पदार्थका आश्रय, तिसको देखके कारणका जो ज्ञान होता है, वह "अनुमिति ज्ञान" है; जैसे मिथ्या जगत् देखके ब्रह्म अधिष्ठानका अनुमान, धुआँवाला पर्वत देखके अग्निका अनुमान ॥

यहाँ धुआँका ज्ञान "अनुमान प्रमाण" अग्नि 'प्रमेय' कहिये पदार्थ, तिससे उत्पन्न अग्निका ज्ञान "अनुमान प्रमा" है। परन्तु ब्रह्म अधिष्ठानका अनुमान प्रमाण बनता ही नहीं। प्रथमः–प्रत्यक्ष धूआँ और अग्नि देखे हैं, पीछेसे धूवेंको देखके अग्निका अनुमान सिद्ध हुआ है। वैसा ही नेत्रोंसे देखके या विवेक द्वारा निर्णय करके ब्रह्म प्रत्यक्ष सिद्ध है ही नहीं। परन्तु उसे ठहरानेवाले मनुष्य जीव ही जगत्में प्रत्यक्ष हैं। दूसराः—जगत्का अधिष्ठान ब्रह्म मानना ही असिद्ध है; (तिसको वेदान्त मतके पूर्वके सब प्रश्नोंको देखिये !) ॥ न्याय मतसे अनुमान प्रमाणः—

"परामर्शजन्यंज्ञानमनुमितिः ॥"

"तज्जन्यंपर्वतोवह्निमानइतिज्ञानमनुमितिः॥" ॥–तर्कसंग्रह, खण्ड–२ ॥

अर्थः—व्याप्य देशके पदार्थको देखके उत्पन्न होता हुआ अन्य देशके पदार्थका ज्ञान अनुमिति है; जैसे "धूमवाला पर्वत" यहाँ धूम 'हेतु' पर्वत 'पक्ष' और अग्निका ज्ञान 'साध्य' है; वही

अग्निका ज्ञान "अनुमिति ज्ञान" है ॥

"प्रत्यक्षस्य पश्चान्मीयते ज्ञायते येन तदनुमानम् ॥" –सत्या०, समु० ३।१८॥

"अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववच्छेषवत् सामान्यतो दृष्टञ्च ॥ ५ ॥"

॥ न्याय सूत्र–५ । अध्याय १ । आह्निक १ ॥

अर्थः—जो प्रत्यक्ष पूर्वक अर्थात् जिसका कोई एक देश वा सम्पूर्ण पदार्थ किसी स्थान वा कालमें प्रत्यक्ष देखा हो, उसका दूर देशमें स्थित एक देशके प्रत्यक्ष होनेसे नहीं देखा हुआ पदार्थका ज्ञान 'अनुमान' है ॥

सो अनुमान "पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यदृष्ट (सामान्यतोदृष्ट), ये तीन प्रकारके हैं।" प्रथम—"पूर्ववत् अनुमान" कारणको देखके कार्यका अनुमान करना। जैसे बादलोंको देखके वर्षाका अनुमान, विवाहको देखके होने वाली सन्ततिका अनुमान। दूसरा—"शेषवत् अनुमान" कार्यको देखके कारणका अनुमान करना। जैसे नदीकी बाढ़ देखके तिसके उद्गमकी ओर वर्षाका अनुमान, पुत्रको देखके पिताका अनुमान, जगत्को देखके कर्त्ता ईश्वरका अनुमान। तीसरा—"सामान्यदृष्ट (सामान्यतोदृष्ट), अनुमान"–एकका दूसरेके साथ समान धर्म देखके अनुमान करना। जैसे चले बिना स्थानको नहीं पहुँचता, पढ़े बिना विद्या प्राप्ति नहीं होती है ॥

न्याय मतमें प्रत्यक्ष वस्तु देखके पीछेसे होता हुआ 'अनुमान प्रमाण' कहा है। परन्तु कार्यरूप जगत् मानके कारणरूप कर्त्ता ईश्वरका अनुमान करना मिथ्या कल्पना मात्र है; (तिसको अनेक प्रमाण प्रथम प्रकरणके जगत् कर्त्ता दर्शनके सब प्रश्नोंको देखिये!)॥

इन प्रमाणोंसे देखे, सुने, और पूर्वमें अनुभव किये हैं, उसी

प्रत्यक्ष प्रमाणके भीतर ही पूर्वोक्त तीनों 'अनुमान प्रमाण'का मनुष्योंको ज्ञान होता है। और जगत् कर्त्ताका अनुमान मिथ्या कल्पना मात्र है, ऐसा आपको हम प्रत्यक्ष दर्शाये हैं। सो अब आप भी जान लीजिये ! ॥

प्रश्न (१००) अनुमान प्रमाण भी प्रत्यक्ष प्रमाणके भीतर ही है, ऐसा निश्चय मुझे हुआ है। अब 'शब्द प्रमाण' और 'उपमान प्रमाण' ये दोनों कैसे प्रत्यक्ष प्रमाणके भीतर ही हैं, सो भी दिखलाइये ? ॥

(१००) उत्तरः—सुनिये ! 'शब्द प्रमाण' विषय वेदान्त मतमें कहा है:— "वाक्यकरणिकाप्रमा शाब्दीप्रमा ॥"

॥ तत्त्वानुसन्धान । परिच्छेद २ । पृष्ठ-६० ॥

अर्थः—यथार्थ वक्ताके वाक्योंका प्रमाण करना, वह 'शाब्दीप्रमा' (शब्द ज्ञान) है ॥

इस प्रमाणसे 'शब्द ज्ञान' सोई 'प्रमा,' शब्द ही 'प्रमाण,' और विषय पदार्थ 'प्रमेय' हैं ॥ न्याय मतसे शब्द प्रमाणः—

"आप्तोपदेशः शब्दः ॥ ७ ॥" न्याय सूत्र ७ । अध्याय १ । आह्निक-१ ॥

अर्थः—विवेकी यथार्थ वक्ताके अवाधित अर्थ; अर्थात् सत्य कल्याणरूप उपदेशके शब्द अथवा पूर्ण यथार्थ वक्ता परमेश्वरके उपदेशरूप वेद शब्द, वह "शब्द प्रमाण" है ॥

यही सूत्र सांख्य शास्त्रका भी है ॥

परन्तु वेद स्तुतियुक्त रहनेसे वेदादि संस्कृत वाणी और सर्व प्राकृत भाषा वाणी, ये मनुष्य कृत हैं। ईश्वर कर्त्ताकी असिद्धतासे उस कल्पित ईश्वर कृत नहीं; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न ३८ में देखिये !) ॥

वेदमत वादी 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्योंको 'शब्द प्रमाण' रहते भी प्रत्यक्ष प्रमाणमें गिनते हैं। परन्तु 'ईश्वर' कल्पित, और 'वेद' मनुष्य कृत ठहरनेसे वेदरूप शब्दोंको प्रत्यक्ष प्रमाणमें गिनना तिनका अन्याय है। प्रत्यक्ष यथार्थ विवेकी सत्यवक्ते पारखी साधु-गुरुरूप सद्गुरु पुरुष जो शब्द बोलते, ग्रन्थरूपसे जो शब्द लिख रक्खे हैं, तिनको प्रत्यक्ष प्रमाणके भीतर ही गिनना, यह सत्यन्याय है ॥

अथवाः—'आप्त' वा अन्य जाननेवाले पुरुषोंके हस्ताक्षरोंकी चिट्ठियाँ आईं, या कोई जानकार मनुष्य सन्देशा किसी मनुष्यके साथ भेजे, अथवा सादे वा रजिष्टरी किये हुए स्टाम्प, कागज लिख रक्खे हैं, या हमेशा लिखे जाते हैं, उन सर्व प्रकारके शब्दोंको भी प्रत्यक्ष प्रमाणके भीतर ही गिनना चाहिये ! ॥

वेदान्त मतसे 'उपमान' प्रमाणः—

"सादृश्यप्रमितिः उपमितिः ॥" -तत्त्वानुसन्धान। परिच्छेद २। पृष्ठ-८६॥

अर्थः—सादृश्य (समान विषय करनेवाला) ज्ञान, सो "उपमिति ज्ञान" है; जैसे गऊके सदृश गवय पशु (बन-गाय) ॥

इस प्रमाणसे सादृश्य ज्ञान 'उपमान प्रमाण', तिससे प्रकट हुआ ज्ञान 'उपमिति प्रमा' और विषय गवयादि 'प्रमेय' हैं ॥

न्याय मतसे उपमान प्रमाणः—

"प्रसिद्धसाधर्म्यात् साध्यसाधनमुपमानम्॥" न्याय सूत्र६, अध्याय१। आह्निक१॥

अर्थः—जो समान धर्मसे सिद्ध करने योग्य उपमा देते हैं, वह "उपमान प्रमाण" है। जैसे 'देवदत्त' के सदृश 'विष्णुपति' मनुष्य; 'घी' के समान 'चरबी' ॥

इन दो प्रमाणोंसे समान गुणवाले पदार्थ नेत्र इन्द्रियों द्वारा

देखे हैं; तिनका वर्णन सुने हैं, तिनकी ही उपमा देते हैं। इसलिए 'उपमान प्रमाण' भी प्रत्यक्ष प्रमाणमें गिना जाता है ॥

इस प्रकारसे 'शब्द' और 'उपमान' ये दोनों प्रमाण "प्रत्यक्ष प्रमाण" के ही भीतर हैं, ऐसा मैंने आपको दर्शाया है। सो अब आप भी जान लीजिये ! ॥

प्रश्न (१०१) 'शब्द और उपमान प्रमाण' दोनों प्रत्यक्ष प्रमाणके भीतर ही आ जाते हैं, ऐसा मैं अब समझ चुका हूँ ! अब बाकी रहे हुए "अर्थापत्ति, अनुपलब्धि (अभाव), ऐतिह्य, और सम्भव (भाव)" ये चार प्रमाण कैसे "प्रत्यक्ष प्रमाण" के भीतर ही हैं, सो भी दया करके कहिये ? ॥

(१०१) उत्तरः—सुनिये ! प्रथम 'अर्थापत्ति प्रमाण' के लिये वेदान्त प्रमाणः—

"[illegible]नकुपादकभूतार्थान्तरकल्पनं अर्थापत्तिप्रमा ॥"

॥ तत्त्वानुसन्धान । परिच्छेद २ । पृष्ठ–१२० ॥

अर्थः—प्रत्यक्ष प्रकट है, उस अर्थको देखके और अर्थकी कल्पना करनेसे होता हुआ ज्ञान—"अर्थापत्ति प्रमा" है। जैसे निराहारी पुरुषकी स्थूलता देखकर उस विषय अर्थ करके वह कोई समय भोजन करता है, ऐसा जानना ॥

इस प्रमाणसे पुरुषमें स्थूलताका ज्ञान "अर्थापत्ति प्रमाण" भोजन 'प्रमेय' तिससे उत्पन्न रात्रिमें भोजनका ज्ञान 'अर्थापत्ति प्रमा' है ॥ अथवाः—

"अर्थदापद्यते सा अर्थापत्तिः॥" –सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास ३।१८।पृष्ठ–५७॥

अर्थः—अर्थ करके जाना जाय, सो अर्थापत्ति प्रमा है; जैसे बादलोंके होनेसे वर्षाका ज्ञान, कारणके होनेसे उसके कार्यका ज्ञान॥

इन दो प्रमाणोंसे सिद्ध किया हुआ 'अर्थापत्ति प्रमाण' अनुमान प्रमाणमें घट जाता है। इसलिए उक्त 'अर्थापत्ति प्रमाण' मानना यथार्थ नहीं। परन्तु सुखी-दुःखी, धनवान्-गरीब, बुद्धिमान्-बुद्धिहीन, सुरूप-कुरूप, रागी-विरागी, सर्वाङ्गयुक्त और अन्धा, लूल्हा आदि अङ्गहीन, सत्त्व, रज, तमोगुणी आदि भिन्न-भिन्न स्वभाव मनुष्योंमें दिखलाई पड़ते हैं। अथवा कर्माध्यास-वश मनुष्य अन्य खानियोंमें देह धरते हैं, ऐसा प्रत्यक्ष देख कर-पूर्वके नरदेहोंमें किये हुए सञ्चित कहिये पाप-पुण्यरूप अनेक कर्मोंके फल अब उदय हुए हैं, ऐसा अर्थ करके जानना, यह "अर्थापत्ति प्रमाण" मानना यथार्थ है। यहाँ अनेक भिन्न-भिन्न गुण मनुष्योंमें दिखलाई पड़ते, तथा अन्य खानियोंमें अध्यासवश जाके नरजीव देह धरते, ऐसा ज्ञान 'अर्थापत्ति प्रमाण', पाप-पुण्योंके अनेक कर्म 'प्रमेय', तिनसे उत्पन्न सञ्चित कर्मफल 'अर्थापत्ति प्रमा', यह 'अर्थापत्ति प्रमाण' भी प्रत्यक्ष अनुभव किये ज्ञानके भीतर ही है॥ अब अभाव वा अनुपलब्धिका प्रमाणः-

'योग्यानुपलब्धिकरणिकाप्रमाअभावप्रमा' 'नञर्थोल्लिखितधीविषयःअभावः
॥ तत्त्वानुसन्धान। परिच्छेद २। पृष्ठ १३५। १३६॥

अर्थः—योग्य ऐसा अभावका ज्ञान जिसका कारण है, वह अभाव (अनुपलब्धि) प्रमा है॥ नहीं है वा नास्तिको विषय करनेवाला अभाव है॥

इन प्रमाणोंसे अभाव ज्ञान 'अनुपलब्धि प्रमा' है, अभाव अवस्तु 'प्रमेय' है, और 'अनुपलब्धि प्रमाण' है॥ अथवाः—

"न भवन्ति यस्मिन् सोऽभावः॥"-सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास ३।१८॥पृष्ठ-५८॥

अर्थः—जो नहीं है, सो 'अभाव' है। जैसे किसीने किसीसे

कहा; हाथी ले आओ ! तो उसका वहाँ पर अभाव देखके, जहाँ हाथी था, वहाँसे ले आया ॥

इन प्रमाणोंसे वस्तुओंके अभावका ज्ञान नेत्र द्वारा होनेसे वह प्रत्यक्ष प्रमाणके भीतर ही है ॥ अब 'ऐतिह्य' विषय प्रमाणः—

"न चतुष्ट्वमैतिह्यार्थापत्तिसम्भवाभावप्रामाण्यात् ॥ १ ॥"

॥ न्याय सूत्र–१ । अध्याय २ । आह्निक २॥

अर्थः—जो 'इति ह' अर्थात् इस प्रकारका था, उसने इस प्रकारसे बर्त्ताव किया, किसीके जीवनचरित्रका नाम ही "ऐतिह्य प्रमाण" (इतिहासरूप कथन) है ॥

यह भी किसी मनुष्यका प्रत्यक्ष अनुभव करनेसे प्रत्यक्ष प्रमाणमें ही घटता है ॥ अब सम्भव प्रमाणः—

"सम्भवति यस्मिन् स सम्भवः ॥"–सत्यार्थप्रकाश,समुल्लास ३।१८।पृष्ठ५८॥

अर्थः—सृष्टि क्रमसे अनुकूल हो, वही सम्भव (भाव) प्रमाण है॥

इनमें 'ऐतिह्य' प्रत्यक्ष प्रमाणमें और 'अर्थापत्ति, सम्भव, और अभाव,' ये तीन प्रमाण अनुमान प्रमाणमें गिनना, ऐसा न्यायमतवाले मानते हैं। परन्तु उक्त तीन प्रमाण भी प्रत्यक्ष प्रमाणके भीतर ही हैं, ऐसा आपको अभी दिखाये हैं। अब अभाव विषय कुछ और भी सुनियेः—'अनेक पदार्थोंका उत्पत्तिके पूर्व तत्त्वोंमें लयरूप अभाव रहा, बिलकुल नष्टरूप अभाव नहीं रहा। और वे पदार्थ पुनः भावरूप रूपवान उत्पन्न होकर तत्त्वोंमें लय हो गये, तब अभावरूप लय रहे, ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव है।' अनेक चेतन जीवोंका, जड़ पाँच तत्त्वोंका और सूर्य, चन्द्र, तारागणादि खगोल पिण्डरूप पदार्थोंका कभी अभाव होता ही नहीं, वे स्वरूपसे अनादि हैं; (तिनको प्रमाण पूर्वके प्रश्न ४८ में देखिये !)।

परन्तु अनेक स्थूल–सूक्ष्म जड़ शरीरोंका और अनेक चेतन जीवोंका संयोग–सम्बन्ध भाववत् अनादि कालसे प्रवाहरूप चला ही आता है, सो देह रहते ही सत्यज्ञानसे (पारख प्रकाशसे) उदासीनवत् वा अभावरूपसे वासना बीज "भर्जितबीज न्याय" नष्ट होकर, सदा कालके लिये चेतन नरजीव जड़ तत्त्वोंके शरीरोंसे भिन्न मुक्त हो सकते हैं; (तिसको प्रमाण पूर्वके प्रश्न ६० में देखिये !)। इसलिए भाव–अभावादि अष्ट प्रमाण वेदान्तादि मिथ्यावादी लोगोंके पक्षमें यथार्थ मानना उचित नहीं। क्योंकि प्रथम प्रकरणके सब प्रश्नोंमें जगत् कर्त्ता मानना असिद्ध ठहरा है। और सद्गुरु श्रीकबीर साहेबके सिद्धान्तमें अनेक चेतन जीव और जड़ तत्त्वादि जगत् अनादि ठहरनेसे मनुष्योंके विजाति जड़ाध्यास बन्धन छुड़ानेके लिये पूर्वोक्त अष्ट प्रमाण मानने ही योग्य हैं॥

इस प्रकारसे "अर्थापत्ति, अनुपलब्धि, ऐतिह्य, और सम्भव" ये अन्य चारों प्रमाण भी 'प्रत्यक्ष प्रमाण' के भीतर ही ठहरते हैं। पूर्वोक्त कथनसे तीन प्रत्यक्ष प्रमाणोंके भीतर ही अनुमानादि अन्य सात प्रमाण हैं, ऐसा आपको स्पष्टरूपसे दिखाया गया है। सो आप भी अब इसे अच्छी तरहसे जान लीजिये !॥

॥ ❀ ॥ अथ जीवोंके आवागमन वर्णन ॥ ❀ ॥

प्रश्न (१०२) मुख्य 'स्वयं प्रत्यक्ष' और 'अन्तर प्रत्यक्ष' तथा 'बहिर प्रत्यक्ष' इन तीन प्रत्यक्ष प्रमाणोंके भीतर अन्य अनुमानादि सात प्रमाण हैं, और तिनको जाननेवाले नरजीव हैं; यह निश्चय मुझे आपकी दयासे अब हुआ है॥

पूर्वमें प्रश्न ६० के बीजकके प्रमाणमें ऐसा कहे हैं कि,

'पिण्डज' और 'अण्डज' खानियोंके सर्व जीव स्थूल देहें छोड़के सूक्ष्म देहों सहित आ करके अनेक पिता—माताओंके वीर्य-रजके संयोगसे फिर स्थूल देहें धर लेते हैं ॥

अब अनेक कृमि, कीट इत्यादि छोटे—छोटे देहधारी जीव बिना माँ—बाप कैसे अनेक शरीर धर लेते हैं, सो कृपा करके दिखाइये ?॥

(१०२) उत्तरः—इसका भी भेद कहा है; सो सुनिये !:—

"तत्र शरीरं द्विविधं योनिजमयोनिजं च ॥ ५ ॥"

॥ वैशेषिक सूत्र—५ । अध्याय ४ । आह्निक २ ॥

अर्थः—योनिज (योनि द्वारा उत्पत्ति), और अयोनिज (योनि बिना उत्पत्ति), ऐसी दो प्रकारसे शरीरोंकी उत्पत्ति होती है ॥

इस प्रमाणसे जैसा कपूर जलके, उसकी सुगन्ध बाकी रह जाती है । तैसे अनेक पाप—पुण्य मिश्रित कर्मोंकी वासनारूप पूर्यष्टक, अदृश्य, सूक्ष्मदेह, स्थूलदेह, छोड़तेके साथ ही मनुष्य—जीवोंके पास रहनेसे फिर गन्ध गुण सहित पृथ्वीरूप रज-वीर्यको लेकर स्थूलदेह, वे धर लेते हैं; (पूर्यष्टक सूक्ष्मदेहको प्रमाण पूर्वके प्रश्न ६० में देखिये !) । पिण्ड—ब्रह्माण्डमें अनेक छिद्ररूप या पोलस्वरूप आकाश तत्त्व है । वायु, तेज, जल, और पृथ्वी, ये चारों तत्त्व परस्पर संयोगसे मिश्रित अनादिसे हैं; (तिनको पूर्वके प्रमाण प्रश्न ५९ से प्रश्न ६२ तक देखिये !) । तिनमें क्रमसे स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध, ये चारों विषय वा गुण हैं; (तिनको प्रमाण पूर्वके प्रश्न ६३ और प्रश्न ६४ में देखिये !) । तिन चारों गुणयुक्त तत्त्वोंके संयोगसे जगत्में सर्व जीव अध्यासवश शरीर धर लेते हैं; (तिसको प्रमाण बीजककी बिरहुलीकी टीकामें देखिये !) । तहाँ स्वर्गमें देवयोनि और वहाँ ही स्थित सिद्धयोनिकी 'वासना'

और 'इच्छा'से उत्पत्ति लिखी है, वह वेद प्रमाणसे गुरुवा लोगोंकी मानन्दीकी बात कही है। क्योंकि स्वर्गलोक और सिद्ध देवता असिद्ध हैं; (तिसको बीजकका प्रमाण पूर्वके प्रश्न ७ में देखिये!)। बिरहुलीमें शब्द संयोगसे मेघादिक—मेढ़क, जोंकादि जीव शरीर धारण करते, ऐसा कहा है। परन्तु परिणाम रहित और क्रिया रहित आकाशका गुण 'शब्द' नहीं, विशेष और समान गतिवान् वायुयुक्त अन्य चारों तत्त्वोंके संयोगसे 'शब्द गुण' है; (तिसको प्रमाण पूर्वके प्रश्न ६ और प्रश्न ६३ में देखिये!)। तिन चारों तत्त्वयुक्त शब्दोंके संयोगसे मृगशिराके नक्षत्रमें बर्फरूप स्थूलाकार जमें हुए बादलोंके परस्पर टक्करोंके गर्जनाओंके आवाजोंसे मुख्य वायु तत्त्वयुक्त उक्त जीवोंके शरीरोंकी उत्पत्ति होती हैं। इस हेतुसे चारों तत्त्वयुक्त पाँच विषयोंके या पाँच अवस्थाओंके कर्मोंसे 'चौरासी' कहिये चौ-राशिरूप चार खानियोंके अध्यास, अर्थात् विषयानन्दके सूक्ष्म अहङ्कार स्थूलदेहें छूटतीं समय नरजीवोंके साथ सूक्ष्म देहोंमें रहते हैं। और वे चार खानियोंमें जाके अध्यासके अनुसार शरीर धर लेते हैं; (तिसको बीजक प्रमाण ज्ञानचौंतीसा ६ "झझा अरुझि सरुझि कित जान" इसकी टीकामें देखिये!) ॥

जिन शरीरधारी जीवोंके 'कान' प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं; जैसे—मनुष्य, पशु, बन्दर, चूहे, गिलहरी इत्यादि वे "जरायुज" "(पिण्डज खानीके) जीव" हैं। सर्व पक्षी, साँप, मत्स्य (मछली), कछुवे, मगर इत्यादि "अण्डज खानीके जीव" हैं। इन दोनों वा तीनों खानियोंके जीव विशेष करके चञ्चल वायु तत्त्वके स्पर्श विषयके संयोगसे अनेक पिता-माताओंद्वारा अध्यासवश शरीर धर लेते हैं। तेजमें 'दाहक' (उष्णता) शक्ति और 'रूप विषय' है;

(तिसको प्रमाण पूर्वके प्रश्न ६३ में देखिये !)। उसी तेज तत्त्वयुक्त रूप विषय वा गर्मके संयोगसे सब अनाजोंमेंके कृमि, कीट आदि जीव अभ्यासवश शरीर धर लेते हैं। पेड़ोंके तथा फलोंके भीतर रसके निवासी और जल निवासी अनेक कृमि-कीट आदि जीव पसीनारूपी जलसे उत्पन्न खटमल, जूँ, चीलर, पिस्सु इत्यादि जीव और ब्रह्माण्डमें जल तत्त्वयुक्त रसोंके संयोगसे वृक्ष, बेलाँदिकोंके सेमोंके ऊपर प्रकट होनेवाले जीव, ऐसे सर्व जीव जल तत्त्वयुक्त रस विषयके संयोगसे अभ्यासवश शरीर धर लेते हैं। उक्त सर्व जीवोंके जल तत्त्वयुक्त रसोंके संयोगसे प्रथम छोटे-छोटे अण्डोंके आकार बन कर पीछेसे तिनमेंसे शरीर धरके वे रस निवासी जीव प्रकट होते हैं। फूल, पत्तियाँ इत्यादि सुगन्धी पदार्थों पर स्थिति वाले जीव; पेड़, घास, बेलि इत्यादि अङ्कुरज खानीके ऊपर रहने वाले जीव; तथा सूखे अनेक पदार्थ, बचनाग, सम्मल इत्यादि जहरीले पदार्थोंके भीतर स्थिति करने वाले जीव; अथवा गोबर, निकृष्ट मल, मूत्र, सड़े पदार्थोंकी दुर्गन्धमें ठहरे हुए जीव; इत्यादि सर्व जीव पृथिवी तत्त्वयुक्त गन्ध विषयके संयोगसे वैसे ही वासनावश शरीर धर लेते हैं। इस प्रकारसे चारों तत्त्वयुक्त शब्द, रूप, रस, और गन्ध, इन चार विषयोंके सम्बन्धोंसे उत्पन्न होनेवाले शरीरधारी उष्मज खानीके जीव बिना माता-पिताओंसे अभ्यासवश स्वयमेव शरीर धर लेते हैं। सर्व अङ्कुरज खानी = वृक्ष, बेलि, घास इत्यादि और स्थावर खानी = पाषाण, धातु इत्यादि जड़ पदार्थ हैं, वे पृथिवी आदि चारों तत्त्वोंके अनेक त्रसरेणु, अणु, और परमाणुओंके संयोग-सम्बन्धसे शरीर-के बालवत् जड़रूप प्रकट होते रहते, वे देहधारी जीव नहीं हैं।

अङ्कुरज खानीमें हरापन दियेकी ज्योतिवत् तत्त्वोंका ही जड़ प्रकाश रहता है; (तिसको प्रमाण पूर्वके प्रश्न ८५ में देखिये !) । इस रीतिसे पिण्डजमें 'मनुष्य खानी' और 'पशु खानी' तथा 'अण्डज' और 'उष्मज' ये दो खानियाँ मिलाके चार खानियाँ प्रत्यक्ष हैं । चौरासी लक्ष योनियोंकी संख्या बाँधना असम्भव बात है । 'चौरासी' कहिये चौ-राशीरूप उनमें अनेकों योनियाँ हैं, सो चार खानी के भीतर ही प्रत्यक्ष हैं; ऐसा जानना चाहिये ॥

इन प्रमाणोंसे 'मनुष्य' तथा 'पशु खानी' रूप "पिण्डज और अण्डज" खानियोंके 'योनिज' जीवोंको अध्यासवश शरीर धर लेनेमें तिनके अनेक पिता—माताएँ कारण हैं । और चार तत्त्वयुक्त, शब्द, रूप, रस, और गन्ध, विषयोंके संयोगसे शरीर धर लेनेवाले उष्मज खानीके जीव अनेक माता—पिता बिना 'अयोनिज' ही प्रकट होते हैं, ऐसा आप पूर्ण विचार करके देखिये ! ॥

प्रश्न (१०३) चार खानियोंके जीवोंका शरीर धर लेनेका उत्पत्ति भेद मैं जान गया हूँ । अब मनुष्य खानीके जीव पुनः मनुष्य खानीमें अथवा अन्य खानियोंमें जन्म लेनेमें क्या कारण है, सो भी दया करके कहिये ? ॥

(१०३) उत्तरः—इसका भी भेद कहता हूँ, सुनिये !:—

प्रथम पाँच अवस्था विषय प्रमाणः—

"जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुरीयतुरीयातीतोऽन्तर्यामी ॥"

॥ गोपालोत्तरतापिनी उपनिषद् । खण्ड २ । मन्त्र—१७ ॥

अर्थः—जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय, और तुरीयातीत, ये पाँच अवस्था हैं, तिनमें अन्तर्यामी परमात्माका बासा है ॥

अथवा बीजकका प्रमाणः—

"झझा अरुझि–सरुझि कित जान । अरुझनि हींड़त जाय परान ॥
कोटि सुमेरु ढूँढ़ि फिरि आवै । जो गढ़ गढ़ै गढ़ैया सो पावै ॥६॥"
॥ बीजक, ज्ञानचौंतीसा–६ । टीकागुरु ॥

अर्थः—'झ' कहिये संसार प्रपञ्च और 'झा' कहिये नाना मत, नाना वाणी, जो संसारमें उत्पन्न हुई। सद्गुरु श्रीकबीर साहेब कहते हैं कि, हे मनुष्यो ! तुम नाना वाणी, नाना मत, घर, स्त्री, पुत्र, धन इत्यादिकोंमें अरुझके कहाँ जाओगे ? चार खानियोंमें ही बन्धे रहोगे। "वाणी जाल" और "खानी जाल"में अरुझनेसे नाना योनियाँ हींड़ते–फिरते ही तुम्हारे प्राण जाते हैं। परन्तु न तुम्हें यथार्थ पारख मिलता है, न तुम्हारा भ्रम छूटता है। जो तुम वाणीके प्रमाणसे कोटि सुमेरु ढूँढ़के आओगे, परन्तु मान–मानके अध्यासरूप जो 'गढ़' गढ़ा है, वही तुमको प्राप्त होगा। "जहाँ आशा तहाँ बासा होता है।" अब कोई स्वर्ग, ब्रह्मादि मिलनेकी आशा करते हैं, तो पावेंगे कि, नहीं ? स्वर्ग, ब्रह्मादि भोग बाँझ स्त्रीके पुत्रोंके मिलापवत् मिथ्या हैं (कल्पना मात्र हैं), अतः वे कहाँसे प्राप्त होंगे ? इसलिए जो मनुष्य सर्वसाक्षिणी तुरीय अवस्थाके अध्याससे ज्ञानसाधनमें विशेष लक्ष रखकर देह छोड़ते, वे उत्तम 'मनुष्य' देहको प्राप्त होके 'ज्ञानी' होवेंगे। तुरीयातीत अवस्थाके अध्याससे 'अजगरादि जड़' योनि; सुषुप्ति अवस्थाके अध्याससे 'कृमि, कीट'की योनि; स्वप्न अवस्थाके अध्याससे 'पक्षी आदि अण्डज खानी'की योनि; और जाग्रत् अवस्थाके विषय मोहके अध्याससे 'पशु योनि'को प्राप्त होवेंगे ॥

इस प्रमाणसे मनुष्य खानीके जीवोंको मनुष्यादि चार खानियोंमें जन्म लेनेका कारण—जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय, और

तुरीयातीत, ये पाँच अवस्थाओंके कर्मोंके अध्यास हैं; ऐसा आप यथार्थसे अब जान जाइये ! ॥

प्रश्न (१०४) पाँच अवस्थाओंके लक्षण कैसे जानना ? और तुरीय अवस्थाका अध्यास रहनेसे पुनः मनुष्य ही जन्म प्राप्त होगा, ऐसा आप कहे हो !, तो कौनसे कर्मोंके आचरणसे फिर मनुष्योंको 'नरदेह वा मनुष्य देह' प्राप्त होगा, सो दिखलाइये ? ॥

(१०४) उत्तरः—इसका भी भेद दिखाते हैं, सो सुनिये !

तहाँ कहा भी हैः—

शब्दः—"हरि बिनु भर्म बिगुर्चेनि गन्दा ॥१॥ ३८॥" बीजक, शब्द–३८॥

इसकी टीकामें कथन किया है कि, स्थूल देहकी जाग्रत् अवस्था, रजोगुण, और पृथ्वी तत्त्व है। सूक्ष्म देहकी स्वप्न अवस्था, सत्त्वगुण, और जल तत्त्व है। कारण देहकी सुषुप्ति अवस्था, तमोगुण, और तेज तत्त्व है। महाकारण देहकी तुरीय अवस्था, शुद्ध सत्त्वगुण, और वायु तत्त्व वा चञ्चल पवन है। कैवल्य देहकी तुरीयातीत अवस्था, निर्गुण गुण, और आकाश तत्त्वरूप स्थिर गतिवान् वा समान पवन है ॥

नेत्रोंसे देख कर इन्द्रियोंद्वारा जाग्रत् अवस्थामें अनेक कर्म होते रहते। देखे, सुने और भोग किये हुए अनेक पदार्थोंके वासनारूप संस्कार फोटोवत् हृदयमें गुप्त रहनेसे 'स्वप्न' अवस्थामें कण्ठ देशमें जीवकी वृत्ति वा लक्षरूप वासना रह कर जगत्के अनेक व्यवहार तिनको प्रत्यक्ष भासमान स्वप्न दृश्य होते हैं; (तिसको प्रमाण पूर्वके प्रश्न ४२ में देखिये !)। इन्द्रियोंसे जाग्रत् अवस्थामें किये हुए अनेक कर्मोंके अध्यास बीजरूपसे हृदय स्थानमें लय रह कर गाढ़ी नीन्द, अन्न–जलके नशासे लग जाना, वह 'सुषुप्ति अवस्था'

है। तीनों अवस्था, तत्त्व, पदार्थ, अनेक कर्मादिकोंको बुद्धि द्वारा जाननेवाले नरजीवोंकी ज्ञानरूप 'साक्षी दशा या तुरीय अवस्था' है। एक अद्वैत, अखण्ड ब्रह्म चराचर व्यापक, सम्पूर्ण आप-ही-आप, ऐसी विज्ञान दशाकी धारणा 'तुरीयातीत अवस्था' मानी है। ऐसे पाँच अवस्थाओंके लक्षण हैं ॥ औरः—

"हहा हाय ! हाय ! में सब जग जाई ॥" —बीजक, ज्ञानचौंतीसा- ३३ ॥

इसकी टीकाके प्रमाणसे प्रथम 'महाकारण देहके तुरीय अवस्था'के कर्म सुनियेः—"जीव चेतन नित्य, और देह, "मैं" तथा देह सम्बन्धी 'मेरे' माने हुए अनेक पदार्थ अनित्य हैं; ऐसा दृढ़ निश्चय होना, यही "विवेक" है। सर्व जड़ पदार्थोंमें सुख अल्प और तिनकी प्राप्तिके लिये अनेक प्रयत्न करनेमें बहुत ही दुःख हैं; ऐसी दोषदृष्टि होकर तिनसे अप्रीति सदैव रखना, वह "वैराग्य" कहाता है। मनके अनेक प्रकारके माननाओंको हटा करके स्थिर रखना, वह "शम" है। पाँच ज्ञानेन्द्रियोंको विषयासक्तिसे फिराय, वर्त्तमान व्यवहारमें सन्तोषसे रहना, वह "दम" कहाता है। पाँच शब्दादि विषयोंमें परन्तु मुख्य स्त्री-सम्भोगसे ग्लानि सदैव रखना, वही "उपरति (उपराम)" कहे हैं ॥"

इस विषय कहा भी हैः—

श्लोकः—"मनसा कर्मणा वाचा, त्यज्यतां मृगलोचना ॥ ११ ॥"

॥ अवधूत गीता, अध्याय ८ । अर्द्ध श्लोक-११ ॥

अर्थः—काया, वाचा, मनसा, तीन प्रकारसे स्त्री-सम्भोगका अध्यास अन्तर-बाहरसे बिलकुल त्यागना ही चाहिये ! ॥

"चिन्ता, विलाप, त्याग कर दुःख-सुख, भूख-प्यास, मान-अपमानादि सहन करनेकी शक्ति, वह "तितिक्षा" है। सत्यासत्य

यथार्थ न्याययुक्त सत्शास्त्रोंके वचन देखने और सत्यन्यायी, यथार्थवक्ता पारखी सद्‌गुरुके निर्णयरूपी उपदेश सुननेकी विशेष अभिलाषा रहना, वही "श्रद्धा" है। स्वर्ग, नरक, ब्रह्म, ईश्वरादि कल्पित और "मैं शुद्ध चेतन जीव या मनुष्यरूप हंस ही मुख्य सत्य पदार्थ हूँ!" ऐसी सत्सङ्ग द्वारा स्थिर बुद्धि रहना, वह "समाधान" कहाता है। ये षट् सम्पत्तियुक्त एक ही ज्ञान-साधन माना गया है। देह सहित सब संसारके दुःखोंसे छूट कर मुक्त होनेकी विशेष ही इच्छा करना, वह "मुमुक्षुता" है। ऐसे पुरुषोंको "जिज्ञासु वा मुमुक्षु" कहते हैं। अनन्तर सद्‌गुरु और पारखी साधु-गुरु ही श्रेष्ठ जानके गुरुसेवायुक्त भक्ति सहित गुरु वाक्योंको सुन कर चैतन्य हंस आप ही यथार्थसे सत्य है, ऐसा निश्चय करना, वह "श्रवण" कहाता है। स्वयं चेतन हंसको युक्तियोंसे पारख दृष्टि द्वारा जड़ासक्तिसे छुड़ाय, सर्व जड़ पदार्थोंसे उसे सदोदित न्यारा करके जानना, वह "मनन" कहाता है। "मैं आप चेतन हंस स्वरूपसे अविनाशी सत्य हूँ!," और देह तथा देहके विषयादि अनेक विकार, भावना, मानना, भास, अध्यास, कल्पनादि नाशवान् हैं। ऐसी सदोदित बुद्धि दृढ़ रहनेका बहुत काल तक विवेक द्वारा प्रयत्न करते ही रहना, वह "निदिध्यासन" है। पीछेसे गुप्त काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहङ्कारादि विकारोंको छुड़ानेके लिये दया, क्षमा, सत्यभाषण, सत्यचलन, धैर्य, शान्ति, सन्तोष, दीनता, लीनता, गरीबी, पारख विचार, विवेक, वैराग्य, गुरुभक्ति आदि शुद्ध गुणोंको देह रहे तक रखना चाहिये! ॥"

इस प्रकारसे स्वयंस्वरूपके दृढ़ निश्चयकी विवेकरूपी बुद्धिसे सदोदित साक्षात्कार रहनेके लिए जगत्‌में कोई बिरले कर्मी,

उपासक, योगी, ज्ञानी, भेषधारी साधु आदि भीतर—बाहरसे स्त्री-सम्भोगकी विषय वासना त्याग देते हैं। फिर जहाँ तक बन सके तहाँ तक काया, वाचा, मनसे सर्व देहधारी छोटे-बड़े जीवों पर जीव दया रख कर शुद्ध रहनीसे चलते हैं। इन्द्रियोंको विषयोंके तरफसे हटानेके लिये स्वतः अनुभवसे अपने दुर्गुणोंको अनेक प्रकारसे जड़ पदार्थोंके दृढ़ माननादिकोंको देह रहे तक निकालते ही रहते हैं। परन्तु जड़ मायाकी सम्पूर्ण आसक्ति नहीं छूटनेसे साक्षात् पारखदृष्टिसे स्थिर बुद्धिकी स्थिति नहीं होनेके कारण बारम्बार मनुष्य देह धरके वे संसारमें गृहस्थीके नाशवान् ठाठमें भूलते ही नहीं; त्यागी वैराग्यवान् ही बनते रहते हैं। ऐसे नरदेह लेते—लेते कोई एक मनुष्यदेहमें जड़ मायाकी सर्व आसक्ति छूट कर अन्तमें देह बन्धन और जन्म—मरणादि अनेक दुःखोंसे छूट कर सदैवके लिये वे विदेहमुक्त हो जाते हैं। (तिसको प्रमाण पूर्वके प्रश्न ८८। ९३ और प्रश्न ९४ में देखिये !) ॥

पूर्वोक्त प्रकारसे मुख्य आप ही स्वयंस्वरूप चेतन हंस सत्य है, ऐसा स्थिर बुद्धियुक्त निश्चय सदोदित होनेके लिये और सर्व जड़ाध्यास छुड़ानेके लिये उक्त साधनोंमें और शुद्ध रहनीमें रहनेका निदिध्यासन रूप प्रयत्न जो मनुष्य करते रहते, तिनको स्वरूपज्ञान निश्चय होनेका स्थान, जो मनुष्य देह सो पुनः प्राप्त होनेकी तुरीय अवस्था ज्ञान भूमिका ही मुख्य कारण है, ऐसा आप अब निश्चय करके जान लीजिये ! ॥

प्रश्न (१०५) तुरीय अवस्थाके शुद्ध रहनीके कर्मों द्वारा स्त्री-सम्भोगका अन्तर—बाहरसे त्याग और स्वरूप ज्ञानका दृढ़ निश्चयरूप साक्षात्कार सदैव रहनेके लिये निदिध्यासनरूप प्रयत्न

करनेवाले मनुष्य, सर्व अध्यास रहित दृढ़ जीवन्मुक्त स्थिति नहीं होनेके कारण वे बारम्बार मनुष्य देह धरके त्यागी वा विरक्त बन कर किसी नरदेहमें मुक्त हो जाते हैं, ऐसा बोध मुझको अब हुआ है ॥

अब नर वा मनुष्य देहमें 'जाग्रत्' अवस्थाके कर्म कौन-से हैं? और उस अवस्थाके कर्माध्याससे मनुष्य जीव कौन खानीमें पुनर्जन्म लेवेंगे ? सो कहिये ? ॥

(१०५) उत्तरः—सुनिये ! उसका भी भेद दिखाते हैं:—

"हहा हाय ! हाय ! में सब जग जाई ॥" —बीजक, ज्ञानचौंतीसा– ३३ ॥

इसकी टीकाके प्रमाणसे जाग्रत् अवस्थाके कर्म सुनियेः—

"स्त्री, धन, पुत्र, परिवार, राग–रङ्ग, अच्छे–अच्छे षट् रस भोजन, देखनेको अच्छे–अच्छे रूप, सूँघनेको अच्छी–अच्छी सुगन्ध, स्पर्श करनेको रूपवान् अच्छी–अच्छी स्त्रियाँ, ऐसे पञ्च विषयोंके कर्मोंमें संसारी लोग आसक्त रहते हैं ॥" अथवा और कहा है:—

श्लोकः—"हा कान्ते ! हा धनं ! पुत्राः ! क्रन्दमानः सुदारुणम् ॥
मण्डूक इव सर्पेण, मृत्युना नीयते नरः ॥ ५५ ॥"
॥ शिवगीता, अध्याय ८ । श्लोक–५५ ॥

अर्थः—विषयासक्त, कर्मी मनुष्य—हे स्त्रिये ! हा प्रिये ! हे पुत्र ! हा पुत्रो ! हा धन ! ऐसे हाय ! हाय ! कर अति दुःखित हो, रोय–रोयके दारुण विलाप करते हुए देह छोड़ देते । जैसे साँप मेढ़कको पकड़ता है, वैसे ही वे मृत्युके मुखमें पड़ते हैं, अर्थात् मर जाते हैं ॥

इन दो प्रमाणोंसे जाग्रत् अवस्थाके कर्ममार्गसे चलनेवाले उत्तम गृहस्थ, मदिरा–मांसका सेवन, व्यभिचार, चोरी आदि

अनीतिके कर्म नहीं करते हैं। साँप, बिच्छू इत्यादि बड़े–बड़े देहधारी जीवोंकी जीवहिंसा वे बचाते हैं। परन्तु चींटियाँ, दीमक, अनेक कृमि इत्यादि छोटे–छोटे देहधारी जीवोंकी जीवहिंसा हमारे गृहस्थ धर्ममें बच ही नहीं सकती, ऐसा वे कहते हैं। स्त्री-सम्भोग तथा पेट पालनेके अनेक कर्मोंमें पशुओंसे भी विशेष आसक्त रह कर साँच–झूठ व्यवहार वे किया करते हैं। साधु-ब्राह्मणादिकोंको अन्न–वस्त्रादि दान–पुण्य भी वे करते रहते हैं। दूसरे मध्यम गृहस्थः—मदिरा–मांसमात्र त्याग दिये हैं। परन्तु साँप, बिच्छू, चींटियाँ, दीमकादि बड़े–छोटे देहधारी जीवोंकी हिंसा दिलसे बन सके तहाँ तक वे बचाते ही नहीं। चोरी, व्यभिचारादि अनाचार, पाप कर्म वे करते रहते हैं। बन पड़े तो कभी थोड़ा-सा दान–पुण्य भी वे किया करते हैं। तीसरे कनिष्ट गृहस्थः—सर्व प्रकारके अनाचार, पाप कर्म अर्थात् हिंसा, व्यभिचार, मदिरा, मांस सेवन, बलिदानादि कर्म वे किया करते हैं। वे दान–पुण्य कुछ समझते ही नहीं और दानादि करते ही नहीं। नाममात्र मनुष्य, नहीं तो पूँछ और सींङ्ग बिना प्रत्यक्ष नर पशु ही बने हैं॥

तिनमें उत्तम गृहस्थः—माया–मोहमें आसक्त, स्त्रीलम्पट, और झीने देहधारी जीवोंकी जीव हिंसा शक्ति अनुसार नहीं बचानेसे गाय, भैंस, बैल, घोड़ा, ऊँट, हाथी, बन्दर इत्यादि अहिंसक पशुखानियोंमें जन्म लेवेंगे। मध्यम गृहस्थः—बकरा, मेढ़ा (भेंड़ा), हरिण, साम्भर, चूहा, गिलहरी इत्यादि पशुखानियोंमें जन्म लेकर मारे भी जावेंगे। कनिष्ट गृहस्थः—सिंह, नाहर (बाघ), भेड़िया, सियार, कुत्ता, बिल्ली इत्यादि हिंसक पशुखानियोंमें जन्म लेवेंगे। मनुस्मृतिमें कहा हैः—

"हिंस्रा भवन्ति क्रव्यादाः ❀ ॥"–मनुस्मृतिः, अध्याय १२ । श्लोक–५९ ॥

अर्थः—जीव हिंसा करनेवाले मनुष्य हिंसक योनियोंमें जाते हैं ॥

पूर्वोक्त कथनसे मुख्य स्त्री-सम्भोगमें और पञ्च विषयोंमें पशुओंसे भी विशेष आसक्त तथा अनेक पापकर्मोंमें प्रवृत्ति, ऐसा अज्ञानी पशुवत् संसारी कर्मी लोगोंका लक्ष रहनेसे उत्तम, मध्यम, कनिष्ट कर्मानुसार वे उत्तम, मध्यम, कनिष्ट, ऐसी पशुदेहें धर लेवेंगे। इसका कारण ऐसा है कि, जाग्रत् अवस्था पशुवत् पञ्च विषयोंकी आसक्तिरूप "कर्मभूमिका" है, ऐसा आप अब जान लीजिये ! ॥

प्रश्न (१०६) जाग्रत् अवस्थाके कर्म मार्ग द्वारा जीवहिंसा नहीं बचानेसे और स्त्रीलम्पटादि पञ्च विषयोंके अनाचारी कर्मोंके अध्याससे संसारी मनुष्य पशुदेहें धर लेवेंगे, ऐसा मैं अब जान लिया हूँ ! ॥

अब नर वा मनुष्य देहमें 'स्वप्न' अवस्थाके कर्म कौन-से हैं ? और उस अवस्थाके कर्माध्याससे मनुष्य जीव पुनः कौन खानीमें जाकर पुनर्जन्म लेवेंगे ? सो कहिये ? ॥

(१०६) उत्तरः—इसका भी भेद दर्शाते हैं, सो सुनिये !:—

"हहा हाय ! हाय ! में सब जग जाई ॥" —बीजक, ज्ञानचौंतीसा– ३३ ॥

इसकी टीकाके प्रमाणसे 'स्वप्न अवस्था' के कर्म सुनियेः—

"स्वर्गलोक, देवता, मन्त्र, यन्त्रादि, प्राप्ति; राज्य, इन्द्रासन प्राप्ति; जारण, मारण, वशीकरणादि विद्याओंकी प्राप्ति इत्यादि लोभ वश होके संसारी लोग उपासना कर्ममें आसक्त रहते हैं ॥"

उपासना विषय और भी कहा हैः—

❀ प्रश्न १०६ की उत्तरके टिप्पणीमें देखिये ! यह श्लोक वहाँ पर सटीक रक्खा है ॥

श्लोकः—"उपसाविधयस्तत्र, चत्वारः परिकीर्तिताः ॥
सम्पदारोपसंवर्गाध्यासा इति मनीषिभिः ॥ १० ॥"
॥ शिवगीता, अध्याय १२ । श्लोक-१० ॥

अर्थः—उपासनाके मुख्य चार प्रकार हैं। १. अनन्त गुण विशिष्ट मूर्त्ति मानके ध्यान करना, वह "सम्पत उपासना" है। २. एक अङ्गमें आरोप करके ध्यान करना, वह "आरोप उपासना" कहाती है। ॐकारकी ऐसी ही उपासना करते हैं। ३. मूर्त्तियोंको विष्णुरूप तथा लिङ्गोंको शिवरूप मानना, वह "अध्यास उपासना" है। ४. कर्म योगसे अनेक देवताओंकी उपासना करना, वह "संवर्त्त उपासना" कहाती है ॥

इन दो प्रमाणोंसे स्वप्न अवस्थाके कर्म करनेवाले उपासक मनुष्य स्त्री–पुरुष दोनों एक मतसे गृहस्थाश्रमी रह कर, कल्पित वैकुण्ठ, कैलास, इत्यादि स्वर्गलोकोंमें सूक्ष्म वायुवत् देहधारी देवता विशेष सुख भोगनेवाले हैं, ऐसा कल्पनासे माने हैं। स्वर्गलोकोंमें देवताओंका निवास तथा उनको एक–से–एक सौ-सौगुणा विशेष सुख रहता है; ऐसा माना है। (तिनको प्रमाण पूर्वके प्रश्न १६ और प्रश्न १७ में देखिये !) । ऐसी विशेष सुखकी चाहना करके उपासक लोग कल्पित देवताओंकी उपासना करते हैं। तिनमें उत्तम गृहस्थाश्रमी उपासकः—स्त्री, पुत्र, धनादि प्राप्ति, अनेक विद्या, अनेक कला, अनेक मन्त्रादि प्राप्ति इत्यादि इस जगत्के नाशवान् सुखोंकी प्राप्तिके लिये उपासना किया करते हैं। मदिरा–मांस सेवन, हिंसा–व्यभिचारादि अनीतिके कर्म वे त्याग देते हैं। झीने देहधारी जीवोंकी हिंसा दिलसे वे बचाते ही नहीं। बहिरङ्ग उपासना जड़ प्रतिमा पूजनादि विशेष लक्षको

त्याग कर, किसी जड़ इष्टमूर्त्तिका या गुरुके जड़ देहका ध्यान करनेमें वे दृढ़ लक्ष लगाते हैं। अन्तमें हृदयमें अङ्गुष्ठमात्र प्रकाश–रूप भावनाकी मूर्त्ति–भासको देखके अपनी भावना प्रकट करके अपनी मनोकामनारूप मिथ्या कल्पना वे सिद्ध कर लेते हैं। बाहर साधु–ब्राह्मणादि चैतन्य मूर्त्तियोंको अन्न, वस्त्रादि दान–पुण्य भी वे किया करते हैं। मध्यम गृहस्थाश्रमी उपासकः—अनाचार कर्म तो छोड़ देते हैं। परन्तु किसी निमित्त कारणसे पराये वा अपने हाथसे जड़ देवताओंके सामने जीव वध (बलिदान) वे करते–करवाते रहते हैं। पाषाण, धातु आदि अष्ट प्रकारकी जड़ मूर्त्तियोंको (प्रतिमाओंको) वे देवता मानते हैं। नाम स्मरण, कथा, पूजनादि नवधा भक्ति सगुण उपासना वे करते रहते हैं। कभी किसी साधु, ब्राह्मणादिकोंको मान कर थोड़ा दान–पुण्य भी वे करते रहते हैं। तीसरेः—कनिष्ट गृहस्थाश्रमी, वाममार्गी, देवी आदि उपासक, मदिरा–मांस सेवन, व्यभिचार, जीवघात, श्मशानमें मन्त्रोंका जाप, भूत पूजन, जीवका होम, ऐसे–ऐसे अनेक पाप कर्म वे किया करते हैं; जिनके कर्म पशुसे भी महानीच रहते हैं॥

इन उपासकोंमें स्त्री–पुरुष सहित देह रहे तक एक मतसे विषयासक्त रहनेवाले और उत्तम उपासक मनुष्य अभ्यासवश वातावरणमें (अधरमें) उड़नेवाले तथा सदा नर–मादी दोनों जोड़ीसे रह कर चञ्चल स्वभाववाले राजहंस, तोता, मैना इत्यादि उत्तम अहिंसक अण्डज खानियोंमें जन्म लेवेंगे। दूसरे मध्यम उपासकः—मोर, साँप, तीतर, कबूतर, चिड़ियाँ, मुर्गे, मच्छ, इत्यादि मध्यम हिंसक अण्डज खानियोंमें जन्म लेकर मारे भी

जावेंगे। तीसरे कनिष्ट उपासकः—गिद्ध, चील, कौवे इत्यादि कनिष्ट हिंसक अण्डज खानियोंमें या नाना नीच योनियोंमें जन्म लेवेंगे ॥

इसका अभिप्राय ऐसा है कि, स्वर्गलोक और माने हुए सूक्ष्म वायुरूपी देवता, तथा भूत—प्रेत इत्यादि मनुष्य जीवोंकी मिथ्या भ्रम कल्पना ही ठहरनेसे वे असिद्ध हैं; (तिनको प्रमाण पूर्वके प्रश्न ७ और प्रश्न १७ में देखिये !)। इस हेतुसे जड़ देवताओंकी उपासना निष्फल हो जाती है। परन्तु उपासक गृहस्थोंकी स्त्री-सम्भोगादि माया—मोहरूपी पञ्च विषयोंकी आसक्ति-रूप चञ्चलतामात्र अध्यास बनी रहती है। और छोटे—बड़े देहधारी जीवोंकी जीव हिंसा भी वे बचाया नहीं करते हैं। इसीलिए अधर (वातावरण) में अपनी शक्ति और वायुकी सहायतासे उड़नेवाले विशेष चञ्चलरूप 'अण्डज खानी' में या नाना नीच योनियोंमें सर्व गृहस्थ उपासकलोग पुनर्जन्म लेते रहेंगे; ऐसा आप भी निर्णय करके देखिये ! ॥

प्रश्न (१०७) स्वप्न अवस्थाके उपासना मार्गसे चलनेवाले उपासक भक्तलोग स्त्री-सम्भोगादि विषयासक्त और छोटे—बड़े देहधारी जीवोंकी हिंसा बचानेमें असमर्थ और साधनोंमें विशेष चञ्चल स्वभाव और ऊपर कल्पित सूक्ष्म देवताओंके और भ्रम कल्पित मिथ्या भूतके गुप्त अध्यासको रखनेसे 'अण्डज खानी' में वे पुनर्जन्म लेते रहेंगे; ऐसा बोध मुझको अब हुआ है ॥

अब नर वा मनुष्य देहमें 'सुषुप्ति' अवस्थाके कर्म कौन-से हैं ? और उस अवस्थाके कर्माध्याससे मनुष्य जीव कौन खानीमें जाकर पुनर्जन्म लेते रहेंगे ? सो कहिये ? ॥

(१०७) उत्तरः—इसका भी भेद कहता हूँ, सो सुनिये!:—
"हहा हाय ! हाय ! में सब जग जाई ॥" —बीजक, ज्ञानचौंतीसा- ३३ ॥

इसकी टीकाके प्रमाणसे सुषुप्ति अवस्थाके कर्म सुनियेः—
"हठयोग, राजयोगसे समाधि प्राप्ति, खेचरी आदि मुद्राएँ, काया, वाचा, मनसासिद्धि आदि कल्पित तेईस प्रकारकी सिद्धियाँ प्रश्न २३ में कही हैं; तिनको प्राप्त करेंगे, और ज्योतिस्वरूप परमात्माका दर्शन करके आनन्दस्वरूप परमात्मामें मिल जायेंगे तो मुक्ति होगी, ऐसी भ्रम कल्पित आशासे योगीजन हाय ! हाय ! करते-करते अष्ट योगादि क्रियाओंकी साधनाओंमें बड़े कष्ट सहते रहते हैं ॥"

अथवा और कहा हैः—

"तस्याः शिखाया मध्ये परमात्मा व्यवस्थितः ॥ १३ ॥"

॥ नारायण उपनिषद्, अध्याय ३ । मन्त्र-१३ ॥

अर्थः—मस्तकके तालुस्थान (ब्रह्मरन्ध्र) में परमात्मा निवास करता है ॥

इन दो प्रमाणोंसे सुषुप्ति अवस्थाके योगकर्मके साधन करनेवाले गृहस्थ और विरक्त योगीजन होते हैं। तिनमें उत्तम राजयोगी माने गये हैं । वे श्वासमें ध्यान लगाय, धीरे-धीरे बहुत दिन बाद नाभिमें श्वासको स्थिर करके अर्द्धअङ्गुष्ठ ज्योतिस्वरूप अग्नितत्त्वके प्रकाशरूप भ्रम कल्पित परमात्माको देखते, फिर सुषुप्ति वा मूर्च्छा समान जड़, गाफिल बनके आनन्दमें मस्त हो जाते हैं। धोखारूप भ्रमके सिद्धियाँ प्राप्त होनेसे अनेक जीवोंको वे बहुत ही दुःख दिया करते हैं, ऐसी संसारमें मानन्दी है । दूसरे मध्यम हठयोगी हैं, वे देहमेंके छः चक्रोंको शुद्ध करके श्वास वायुको मस्तकमें चढ़ानेकी मलीन क्रियाएँ साधते हैं । पञ्चाग्नि तापना, जलशयन करना इत्यादि दुःखरूप कठिन तप भी वे करते रहते

हैं। कल्पित भ्रमरूप सिद्धियोंके मदमें भूलके अनेक नरजीवोंको वे बहुत दुःख देते, अन्तमें आप भी दुःख पाते हैं। तीसरे कनिष्ट अवघड़ योगी हैं:—वे श्मशानोंमें साधन करके जीवघात, जीवहोम, मदिरा–मांस सेवनादि मलीन क्रियाओंको साधते, सो वे जीते ही अघोरी 'राक्षस' बने हैं ॥

तिनमें उत्तम योगी अज्ञानी जड़स्वरूप गाफिल बने हुए शून्य निर्विकल्प स्थितिमें जड़ तत्त्वोंका प्रकाश या आनन्दरूप भासको वे अपना स्वरूप मान लिये हैं। कल्पित भ्रमरूप सिद्धियोंके मदसे श्राप देकर बहुत जीवोंको डरवाकर वे विशेष दुःख दिये; इसलिए अध्यासवश कुस्यारी कीट (रेशम बनानेवाले कीड़े) मकोड़ा, भौंरा, जुगनू, पतङ्ग, सुगन्धी पदार्थोंमेंके कीड़े इत्यादि उष्मज खानियोंमें वे जन्म लेवेंगे। मध्यम योगीः—पेड़, घास, फल, अनाजमेंके कीड़े इत्यादि उष्मज खानियोंमें वे जन्म लेवेंगे। कनिष्ट योगीः—निकृष्ट मल–मूत्र, गोबर, कीचड़, पसीना आदि दुर्गन्धी पदार्थोंमेंके कीड़े इत्यादि उष्मज खानियोंमें वे जन्म लेवेंगे। जिनकी केवल नाम-स्मरणरूप शब्दोंके अध्यासोंमें स्थिति है, वे मेंढ़क, साँप, हरिण, मोर, झिंगुर, मच्छरादि पशु, अण्डज, और उष्मज खानियोंमें अपने–अपने उत्तम, मध्यम, कनिष्ट कर्मानुसार जाकर जन्म लेवेंगे ॥

इसका अभिप्राय ऐसा है कि, मनुष्य जीव चेतन स्वरूप सबका जाननेवाला होके भी योगीजन समाधिमें उसे सुषुप्तिवत् अज्ञानी, जड़, गाफिल बना देते हैं। अथवा समाधि सुखकी इच्छासे जड़ साधनोंको करते रहते हैं। परन्तु तत्त्वोंका प्रकाश, तत्त्वोंका आनन्द, तत्त्वोंकी सुषुप्तिवत् समाधि देहके साथ सर्व

छूट जावेंगे। (तिसको प्रमाण पूर्वके प्रश्न ३९ में देखिये!)॥ और:-
"तीरथ गये तीन जना ❀॥" —बीजक, साखी-२१४॥
इसकी टीकामें कहे हैं कि, "योगीजन समाधिमें ज्योति प्रकाश

❀ साखी:—"तीरथ गये तीन जना। चित चञ्चल मन चोर॥
एकौ पाप न काटिया। लादिनि मन दस और॥२१४॥बीजक॥"

टीका गुरुमुख:—तीर्थ तीन प्रकारके, बाहिर तीर्थ गङ्गादि, पुष्करादिक, अन्तर तीर्थ इङ्गला, पिङ्गला, सुषुम्नादिक, तृतीय ज्ञानतीर्थ, सो तीन जन तीन तीर्थको गये। 'चित' कहिये ज्ञानी, सो ज्ञान तीर्थमें गये औ आत्मा बने, तो एकौ पाप काटा गया नहीं; सकल पापके अधिष्ठान भये, औ दश मन पाप अपने ऊपर लाद लिया। अरे! पहले एक देहमें थे, तो एक देहके पापके अधिकारी थे, औ आखिर आत्मा भये, तो सकल देहके पापके अधिकारी भये। 'दशों दिशामें मैं पूर्ण हौं' ऐसा माना, सोई दश मन पाप लाद लिया। पाप कहिये दुःख औ पाप कहिये कर्त्तव्य, सो एक भी कर्त्तव्य ज्ञानसे छूटा नहीं, जो सर्व आत्मा हुआ तो सकल कर्त्तव्य इसपर आये। ये अर्थ। औ 'चञ्चल' कहिये कर्मी, उपासक, रजोगुणी, सो बाहिर तीर्थनमें गये; तासे एक भी अभिमान औ कल्पना कटी नहीं। अभिमान, कल्पना सोई पाप, सो दश मन = चार वेद, छौ शास्त्र, इसकी मानन्दी औ अभिमान शिरपर चढ़ा एक भी कटा नहीं। कि हम बड़े उपासक, हम बड़े तीर्थ बासी, हम बड़े कर्मी, हम बड़े वैदिक, हम बड़े शास्त्री, हम बड़े मन्त्रिक, हम बड़े पवित्र, हम बड़े कुलीन, हम बड़े वैरागी, हम बड़े धर्मात्मा,-ये दश मन पाप ऊपर लाद लिया। ताते नाना दुःख भोगी भये, जैसा कर्त्तव्य करना वैसा भोग भोगना, ये पीछे लगा। ये अर्थ। औ 'चोर' कहिये योगी, जो सुषुम्ना तीर्थनको प्राप्त भये औ दश इन्द्रियोंकी मानन्दी सोई दश मन पाप शिरपर लाद लिया। इन्द्री, मन, औ प्रकृती, सब लय करना तब मुक्त, ऐसा मानके समाधि, प्राणायाम करने लगे, पवन चुराने लगे, ताते दश इन्द्रियोंकी वासना उनके भीतर रही, औ भीतरकी इन्द्रियोंसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि विषयनमें आसक्त भये। मुद्रादि रूप देखने लगे, अनहद शब्द सुनने लगे, अन्तःकरणादि स्पर्श करने लगे, अमृतादि रस चाखने लगे, अष्टपद्मादि गन्ध लेने लगे। इस प्रकारसे

देखना, अनहद बाजा सुनना, इत्यादि पाँच सूक्ष्म विषयोंको भोगते। इसलिए उन सबोंका सूक्ष्म अध्यास रहनेसे योगीजन फिर स्थूलदेह धरेंगे ॥"

पूर्वोक्त कथनसे मुद्रा, ध्यान, समाधि, और प्रकाशरूप परमात्मा देहका भास जड़, नाशवान् है। फिर कल्पित भ्रमरूप सिद्धियोंके मदमें योगियोंकी जीवदया भी छूट जाती है। इसलिए योगरूप सुषुप्तिका महाजड़ अज्ञानदशाका अध्यास योगीजनोंको रहनेसे वे जड़वत् खानियोंमें फिर जन्म लेवेंगे, ऐसा आप सत्यन्यायसे अब विचार कीजिये ! ॥

प्रश्न (१०८) सुषुप्ति अवस्थाके जड़ अज्ञान दशासे और सिद्धियोंके मदसे जीवदया छूट जानेसे योगीजन योगकर्मोंके अध्यासवश जड़वत् उष्मज खानियोंमें फिर जन्म लेवेंगे, ऐसा मुझे अब निश्चय हुआ है ! ॥

अब नर वा मनुष्य देहमें 'तुरीयातीत' अवस्थाके कर्म कौन-से हैं ? और उस अवस्थाके कर्माध्याससे मनुष्य जीव कौन खानियोंमें जाकर पुनर्जन्म लेवेंगे ? सो कहिये ? ॥

(१०८) उत्तरः—इसका भी भेद दर्शाते हैं, सो सुनिये!:-
"हहा हाय ! हाय ! में सब जग जाई ॥" —बीजक, ज्ञानचौंतीसा-३३ ॥

सूक्ष्म विषय भोक्ता भये; तो स्थूलसे सूक्ष्म, सूक्ष्मसे स्थूल वोतप्रोत दश प्रकारके विषय अपने ऊपर लादे। एक विषय भी इनसे कटा नहीं, ताते देह त्याग होय उपरान्त फिर गर्भवासका दुःख इनको बना है, कछु छूटा नहीं; पाप कहिये विषय। ताते ज्ञान, उपासना, योग, यही तीन मार्ग दुःख छूटनेको बनाये; परन्तु परखके देखो ! तो इनसे एक दुःख भी छूटा नहीं। ये अभिप्राय॥
॥—त्रिजासे बीजक, साखी-२१४॥

इसकी टीकाके प्रमाणसे 'तुरीयातीत' अवस्थाके कर्म कहे हैं:—

"मैं अद्वैत, मैं परमात्मा, मैं अधिष्ठान, स्थावर (जड़), जङ्गम (चैतन्य), सब जगत् मेरा स्वरूप, 'घट–मृत्तिका न्याय,' 'सुवर्ण-भूषण न्याय,' एक आत्मा बन कर महा आनन्दमें गाफिल हो के परमहंस लोग चार खानियोंके चौरासी योनियोंमें ही अनेक जन्म लेते रहेंगे ॥" अथवा और भी कहे हैं:—

" न पुण्यपापे मम नास्ति नाशो, न जन्म देहेन्द्रियबुद्धिरस्ति ॥"

॥ कैवल्य उपनिषद् । खण्ड २ । मन्त्र–२२ ॥

अर्थः—ब्रह्मवेत्ता पुरुष कहते हैं कि, मैं चराचर सम्पूर्ण आत्मास्वरूप, मेरा नाश नहीं; इसलिए मुझे पाप–पुण्य भी नहीं । मुझे जन्म नहीं, देह, इन्द्रिय, बुद्धि इन्हींको जन्म है ॥

श्लोकः—"यस्य नाहंकृतो भावो, बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ॥
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ॥ १७ ॥"

॥ भगवद्गीता, अध्याय १८ । श्लोक–१७ ॥

अर्थः—जो ज्ञानवान् पुरुष 'मैं कर्मका कर्त्ता हूँ !' इस भावनासे रहित है, उसकी बुद्धि कर्मसे लेपायमान नहीं होती । वह जो इन सर्व लोगोंको मार डाले, तो भी नहीं मारता । अथवा पाप कर्मके सम्बन्ध वाला नहीं होता ॥

श्लोकः—"न मानसं कर्म शुभाशुभं मे, न कायिकं कर्म शुभाशुभं मे ॥
न वाचिकं कर्म शुभाशुभं मे, ज्ञानामृतं शुद्धमतीन्द्रियोऽहम् ॥ ८ ॥"

॥ अवधूत गीता, अध्याय १ । श्लोक–८ ॥

अर्थः—दत्तात्रेयजी ! कहते हैं कि, मनसा, काया, वाचासे जो पुण्य–पापरूप (शुभ–अशुभ) कर्म होते हैं, सो मुझे बाधक नहीं । क्योंकि नित्य, शुद्ध, ज्ञानस्वरूप, बुद्धि, इन्द्रियोंका अविषय मैं ही हूँ!॥

इन प्रमाणोंसे तुरीयातीत अवस्थायुक्त कोई परमहंस होते

देखना, अनहद् बाजा सुनना, इत्यादि पाँच सूक्ष्म विषयोंको भोगते। इसलिए उन सबोंका सूक्ष्म अध्यास रहनेसे योगीजन फिर स्थूलदेह धरेंगे ॥"

पूर्वोक्त कथनसे मुद्रा, ध्यान, समाधि, और प्रकाशरूप परमात्मा देहका भास जड़, नाशवान् है। फिर कल्पित भ्रमरूप सिद्धियोंके मदमें योगियोंकी जीवदया भी छूट जाती है। इसलिए योगरूप सुषुप्तिका महाजड़ अज्ञानदशाका अध्यास योगीजनोंको रहनेसे वे जड़वत् खानियोंमें फिर जन्म लेवेंगे, ऐसा आप सत्यन्यायसे अब विचार कीजिये ! ॥

प्रश्न (१०८) सुषुप्ति अवस्थाके जड़ अज्ञान दशासे और सिद्धियोंके मदसे जीवदया छूट जानेसे योगीजन योगकर्मोंके अध्यासवश जड़वत् उष्मज खानियोंमें फिर जन्म लेवेंगे, ऐसा मुझे अब निश्चय हुआ है ! ॥

अब नर वा मनुष्य देहमें 'तुरीयातीत' अवस्थाके कर्म कौन-से हैं ? और उस अवस्थाके कर्माध्याससे मनुष्य जीव कौन खानियोंमें जाकर पुनर्जन्म लेवेंगे ? सो कहिये ? ॥

(१०८) उत्तरः—इसका भी भेद दर्शाते हैं, सो सुनिये!:-

"हहा हाय ! हाय ! में सब जग जाई ॥" —बीजक, ज्ञानचौंतीसा- ३३॥

सूक्ष्म विषय भोक्ता भये; तो स्थूलसे सूक्ष्म, सूक्ष्मसे स्थूल वोतप्रोत दश प्रकारके विषय अपने ऊपर लादे। एक विषय भी इनसे कटा नहीं, ताते देह त्याग होय उपरान्त फिर गर्भवासका दुःख इनको बना है, कछु छूटा नहीं; पाप कहिये विषय। ताते ज्ञान, उपासना, योग, यही तीन मार्ग दुःख छूटनेको बनाये; परन्तु परखके देखो ! तो इनसे एक दुःख भी छूटा नहीं। ये अभिप्राय॥

॥—त्रिजासे बीजक, साखी-२१४॥

इसकी टीकाके प्रमाणसे 'तुरीयातीत' अवस्थाके कर्म कहे हैं:—

"मैं अद्वैत, मैं परमात्मा, मैं अधिष्ठान, स्थावर (जड़), जङ्गम (चैतन्य), सब जगत् मेरा स्वरूप, 'घट-मृत्तिका न्याय,' 'सुवर्ण-भूषण न्याय,' एक आत्मा बन कर महा आनन्दमें गाफिल हो के परमहंस लोग चार खानियोंके चौरासी योनियोंमें ही अनेक जन्म लेते रहेंगे ॥" अथवा और भी कहे हैं:—

" न पुण्यपापे मम नास्ति नाशो, न जन्म देहेन्द्रियबुद्धिरस्ति ॥"

॥ कैवल्य उपनिषद् । खण्ड २ । मन्त्र-२२ ॥

अर्थः—ब्रह्मवेत्ता पुरुष कहते हैं कि, मैं चराचर सम्पूर्ण आत्मास्वरूप, मेरा नाश नहीं; इसलिए मुझे पाप-पुण्य भी नहीं । मुझे जन्म नहीं, देह, इन्द्रिय, बुद्धि इन्हींको जन्म है ॥

श्लोकः—"यस्य नाहंकृतो भावो, बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ॥
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ॥ १७ ॥"

॥ भगवद्गीता, अध्याय १८ । श्लोक-१७ ॥

अर्थः—जो ज्ञानवान् पुरुष 'मैं कर्मका कर्त्ता हूँ !' इस भावनासे रहित है, उसकी बुद्धि कर्मसे लेपायमान नहीं होती । वह जो इन सर्व लोगोंको मार डाले, तो भी नहीं मारता । अथवा पाप कर्मके सम्बन्ध वाला नहीं होता ॥

श्लोकः—"न मानसं कर्म शुभाशुभं मे, न कायिकं कर्म शुभाशुभं मे ॥
न वाचिकं कर्म शुभाशुभं मे, ज्ञानामृतं शुद्धमतीन्द्रियोऽहम् ॥ ८ ॥"

॥ अवधूत गीता, अध्याय १ । श्लोक-८ ॥

अर्थः—दत्तात्रेयजी ! कहते हैं कि, मनसा, काया, वाचासे जो पुण्य-पापरूप (शुभ-अशुभ) कर्म होते हैं, सो मुझे बाधक नहीं । क्योंकि नित्य, शुद्ध, ज्ञानस्वरूप, बुद्धि, इन्द्रियोंका अविषय मैं ही हूँ!॥

इन प्रमाणोंसे तुरीयातीत अवस्थायुक्त कोई परमहंस होते

हैं। वे बाल, पिशाच, मौन, जड़, और उन्मत्त दशा धारण करते हैं। वे सर्व जगत्के विषयानन्दको अपना ही ब्रह्मानन्द स्वरूप मानते; (तिसको प्रमाण पूर्वके प्रश्न ८१ में देखिये !)। हम अक्रिय, अभोक्ता, ब्रह्मरूप सर्वत्र व्यापक और साक्षी भी हैं, ऐसा कहते; (तिसको प्रमाण पूर्वके प्रश्न ८ में देखिये !)। इन्द्रियोंका कर्म इन्द्रियाँ ही करती हैं, ऐसा कहके जो चाहे सो शुभ वा अशुभ (अनाचार) पाप कर्म हो जावे, तो वे डर मानते ही नहीं; मनमाने बर्त्तते हैं; (तिसको प्रमाण विचारसागरके पञ्चम ❀ स्तरङ्गमें देखिये !)। जिनको देहका भी ज्ञान बराबर नहीं रहता; मद्यपि, नशेबाजतुल्य जड़वत् गाफिल पड़े रहते हैं ॥

पूर्वोक्त ज्ञानहीन, महाजड़, तुरीयातीत अवस्था वाले विज्ञानी परमहंस जड़वत् पड़े हुए अजगर, केंचुवादि योनियोंमें जाकर जन्म लेवेंगे; ऐसा आप यथार्थसे विवेक करके देखिये ! और अब इसका भेद जान लीजिये ! ॥

प्रश्न (१०६) जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, और तुरीयातीत, इन चार अवस्थाओंके कर्म मार्ग, उपासना मार्ग, योग मार्ग, और विज्ञानदशाकी धारणा करनेवाले परमहंसादि मनुष्य जीव अध्यास-वश अन्य पशु आदि तीन खानियोंमें जन्म लेवेंगे, ऐसा आप पूर्वमें प्रश्न १०५ से १०८ तक कहे हैं। इसलिए अन्य खानियोंमें

❀ "भोगै युवति सदा संन्यासी, शिषलखि यह अद्भुत संवाद ॥ १६५ ॥" "निज विषयनमें इन्द्रिय बर्तें, तिनते मेरो नाहीं सङ्ग। मैं इन्द्रिय नहिं मम इन्द्रिय नहिं, मैं साक्षी कूटस्थ असङ्ग ॥ त्यागहु विषय कि भोगहु इन्द्रिय, मोकूँ लगै न रञ्चक रङ्ग। यह निश्चय ज्ञानीको जाते, कर्त्ता दीखे करे न अङ्ग ॥ १६६॥"
॥ विचारसागर, स्तरङ्ग ५। पृष्ठ—२४८—२४६ में लिखा है ॥

पाप विशेष बढ़ जानेसे उनको फिर नरदेह मिलनेका कारण रहा ही नहीं ॥

अब वे सर्व जीव पुनः मनुष्य देहें कैसे धारण करेंगे ? सो भी समझा कर कहिये ? ॥

(१०६) उत्तरः—सुनिये ! इस विषय कहे हैं:—

"पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन ॥ १३ ॥"

॥ बृहदारण्य उपनिषद् । अध्याय ३ । ब्राह्मण २ । मन्त्र-१३ ॥

अर्थः—पुण्य कर्मसे पुण्य योनि और पाप कर्मसे पाप-योनि प्राप्त होती है ॥

श्लोकः—"ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था, मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ॥
जघन्यगुणवृत्तिस्था, अधो गच्छन्ति तामसाः ॥ १८ ॥"

॥ भगवद्गीता, अध्याय १४ । श्लोक-१८ ॥

अर्थः—सत्त्व गुणमें सदा लक्ष रखनेवाले मनुष्य विशेष ज्ञान प्राप्तिके मनुष्य योनिमें, रजोगुणमें आसक्त मनुष्य मध्यम पशु आदि योनियोंमें और तमोगुणमें आसक्त मनुष्य कनिष्ट कृमि आदि योनियोंमें जन्म लेते हैं ॥

इन प्रमाणोंसे मनुष्य देह—यह स्वरूप ज्ञानके निश्चय होनेका स्थान है। सत्सङ्ग करके वैखरीवाचासे परस्पर बोध करनेकी जगह है। पाँच ज्ञानेन्द्रियोंमें और बुद्धि द्वारा यहाँ ही विशेष ज्ञान हो सकता है। दया, क्षमा, धीर, विचार, सन्तोष, वैराग्य, गुरुभक्ति आदि शुद्ध लक्षणोंकी यहाँ पूर्णतासे धारणा हो सकती है। ऐसी नरदेह बड़े भागसे अर्थात् सदा दृढ़ स्वरूपज्ञान होनेमें विशेष लक्ष रख कर स्त्री-सम्भोगका अभ्यास अन्तर-बाहरसे सम्पूर्ण छूट जावे, तब प्राप्त होती है; (तिसको पूर्वका प्रमाण

प्रश्न १०४ में देखिये !)। नरजन्म ज्ञान खानी और 'कर्म भूमिका' है । इसलिए मनुष्य खानीमें ही पाप—पुण्य (अशुभ—शुभ) कर्म होते हैं । और उन्हीं कर्मानुसार मनुष्य खानी वा अन्य खानियोंमें सर्व जीव देह धरके अपने—अपने किये हुए पाप—पुण्य कर्मोंके फलोंको भोगते हैं । अन्य पशु आदि खानियोंके जीवोंको पाप—पुण्यका ज्ञान है नहीं; केवल आहार, निद्रा, भय, मैथुनादि षट् पशु—धर्मका ही ज्ञान रहता है । इसलिए तिन कर्मोंके फलोंको वे भोगते ही नहीं । नरजन्ममें प्राप्त हुए जीवोंकी माताओंके उदरोंमें कभी मृत्यु होती है । अर्थात् गर्भ गिर जाते हैं। अथवा बालकोंके जन्म लिए बाद ३—४ वर्षोंतक उनको दूसरे जीवोंको सुख—दुःख देनेरूप पुण्य—पापका ज्ञान रहता ही नहीं । उसी आयुके भीतर ही पाप—पुण्योंके ज्ञान रहित पशुवत् दशाओंमें यदि उन बालकोंके शरीर छूटेंगे, तो नवीन कर्म बनते ही नहीं । इसके बाद पूर्व मनुष्य देहके पुण्य सञ्चित कर्म रहनेसे वे बालक दूसरे ही जन्ममें नरजन्म लेकर पाप—पुण्य कर्मोंके अध्यासवश अन्य खानियोंमें जन्म लेते रहेंगे ॥

कोई महापापी मनुष्य अन्य तीनों खानियाँ सम्पूर्ण भोगके पुनः तमोगुणी = चमार, भङ्गी, बसोड़, कसाई आदि नीच जीव—हिंसक कङ्गाल जातियोंमें मनुष्य जन्म लेते हैं । 'पाप' कम और 'पुण्य' अधिक किये हुए मनुष्य थोड़े पाप कर्मोंके अनुसार अन्य थोड़ी खानियाँ भोग कर धनवान् साहूकार, उत्तम ब्राह्मणादि जातियोंमें या सत्त्वगुणी मनुष्योंमें वे जन्म लेते हैं । 'पुण्य' कम और 'पाप' उससे अधिक किये हुए मनुष्य अन्य खानियाँ अधिक भोग कर, मध्यम कुलमें साधारण रजोगुणी धनवानोंके घरोंमें

वे नरजन्म लेते हैं। जैसे तेल, घी, और जलके भरे हुए बर्त्तन सब खाली किये तो भी कुछ अंश उनके बने रहते हैं। वैसे ही नर वा मनुष्य देहोंमें किये हुए पाप-पुण्य कर्मोंके सञ्चित अंश अन्य खानियोंमें मनुष्य देह छोड़के जीव गये, तो भी उनके अध्यास बने रहते हैं। इसलिए वे सर्व मनुष्य जीव अपने-अपने कर्मानुसार अन्य खानियाँ सम्पूर्ण वा आधी, तिहाई, चौथाई आदि भोगकर पुनः मनुष्य देहमें जन्म लेते हैं। यह नरदेह सर्व अध्यास छूटके जीवन्मुक्त होनेकी जगह 'कर्मभूमिका' है। और अन्य खानियाँ पाप-पुण्य कर्मोंसे मुक्त होनेके स्थान नहीं; परन्तु वे कर्म भोगोंको भोगनेका स्थान हैं; ऐसा जानना चाहिये ॥

अन्धे, लूल्हे, लङ्गड़े, कोढ़ी, रोगी, निरोगी, तेजबुद्धि, मन्दबुद्धि इत्यादि अनेक प्रकारके मनुष्य देखनेमें आते हैं; सो भी अन्य खानियोंमें जानेके प्रथम नरदेहोंमें किये हुए अनेक पाप-पुण्य कर्मोंके ही फल हैं ॥ तहाँ कहा भी है:—

श्लोक:—"ततः कर्मानुसारेण, भवेत्स्त्रीपुन्नपुंसकम् ॥ २१ ॥"

॥ शिवगीता, अध्याय ११ । अर्द्ध श्लोक-२१ ॥

अर्थः—अपने-अपने कर्मोंके अनुसार ही जीवोंको स्त्री, पुरुष, और नपुंसक शरीर प्राप्त होते हैं ॥

इस प्रमाणसे स्त्रियोंका पुरुषोंके शरीरोंपर और पुरुषोंका स्त्रियोंके शरीरोंपर विशेष लक्ष सहित प्रेमका अध्यास विषय भोगके वास्ते रहनेसे "नीम-कृमि-कीट-न्याय" पुरुषोंको स्त्री की देह और स्त्रियोंको पुरुषोंकी देह भी कभी-कभी पुनर्जन्ममें प्राप्त हो जाती है। किसी पुरुषोंको शृङ्गारयुक्त स्त्रीरूप बनाय, नाचने-गानेका अध्यास विशेष रहनेसे तिनको अन्य जन्ममें नपुंसक देहें भी

प्राप्त हो जाती हैं। स्त्रियाँ व्यभिचार कर्मोंसे गर्भ गिराय 'बालहत्या' करती हैं, उसीसे फिर नरदेह लेते समय वे बाँझ रहती हैं। वहाँ उनके उदरोंमें विशेष गर्मी अथवा योनि कमलोंके मुख नीच, ऊँच रहनेके फेर रहते, इसलिए पुरुषोंके वीर्य तिनमें ग्रहण नहीं होनेसे उनको गर्भ ठहरते ही नहीं ॥

इसीका विस्तारसे कथन मनुस्मृतिः, अध्याय १२, श्लोक-५६ से श्लोक-८१ तक ❀ कहा है। अथवा गर्भावलि, कोकशास्त्र,

❀ "हिंस्रा भवन्ति क्रव्यादाः कृमयोऽभक्ष्यभक्षिणः ॥ परस्परादिनःस्तेनाः-प्रेतान्त्यस्त्रीनिषेविणः ॥ ५६ ॥ संयोगं पतितैर्गत्वा परस्यैव च योषितम् ॥ अपहृत्य च विप्रस्वं भवति ब्रह्मराक्षसः ॥ ६० ॥"—जो प्राणियोंके वध करनेवाले हैं, वे कच्चे मांसके खानेवाले बिल्ली आदिकी योनिमें उत्पन्न होते हैं; और जो अभक्ष्यभक्षी हैं, वे कृमि होते हैं; और जो महापातकियोंसे भिन्न चोर हैं, वे आपसमें मांस खानेवाले होते हैं; और जो चाण्डाल आदिकी स्त्रीमें गमन करनेवाले हैं, वे प्रेत नामक प्राणि विशेष होते हैं ॥ ५६ ॥ जितने कालमें पतितके संयोगसे पतित होता है, उतने कालतक ब्रह्मघाती आदि अनाचारिके साथ संसर्गको करके और औरोंकी स्त्रीमें गमन करके और ब्राह्मणके सुवर्णसे भिन्न अन्य वस्तुको चुराके एक-एक पाप करनेसे ब्रह्मराक्षस नामक प्राणि विशेष होता है ॥६०॥ "मणिमुक्ताप्रवालानि हृत्वा लोभेन मानवः ॥ विविधानि च रत्नानि जायते हेमकर्तृषु ॥ ६१ ॥ धान्यं हृत्वा भवत्याखुः कांस्यं हंसो जलं प्लवः ॥ मधु दंशः पयः काको रसं श्वा नकुलो घृतम् ॥ ६२ ॥" —माणिक्य आदि मणियोंको, मोती-मूँगोंको और नाना प्रकारके वैदूर्य, हीरा आदि रत्नोंको, अपनेके श्रम बिना लोभसे चुरा करके सुवर्णकारकी योनिमें उत्पन्न होता है। कोई तो हेमकार पक्षीको कहते हैं ॥६१॥ धान्यको चुरा करके मूसा होता है, और काँसेको चुरा करके हंस होता है, और जलको चुरा करके प्लव नामक पक्षी होता है; और शहद चुरा करके डांस, और दूध चुरा करके कौआ, और विशेष करके कहे हुए गुड़, नोन आदिसे भिन्न ईख आदिके रसको चुरा करके कुत्ता होता है, और घी चुरा करके न्योला होता है ॥६२॥ "मांसं गृध्रो वपां मद्गुस्तैलं तैलपकः खगः ॥ चीरिवाकस्तु लवणं बलाका शकुनि

दधि ॥ ६३ ॥ कौशेयं तित्तिरिर्हृत्वा क्षौमं हृत्वा तु दर्दुरः ॥ कार्पासतान्तवं क्रौञ्चो गोधां गां वाग्गुदो गुडम् ॥ ६४ ॥"—मांस चुरा करके गीध होता है, और वसा (चरबी) को चुरा करके मद्गु नामक जलचर पक्षी होता है, और तेल चुरा करके तैलपायिक नामक पक्षी, और नोन चुरा करके चीरीवाक नामक ऊँचे स्वरवाला कीट, और दही चुरा करके बलाका नामक पक्षी होता है ॥ ६३ ॥ रेशमी वस्त्र चुरा करके तीतर नामक पक्षी होता है, और क्षौमसे बने हुए वस्त्रको चुरा करके मेढ़क, और कपासके बने हुए वस्त्रको चुरा करके क्रौंच नामक प्राणी, और गौको चुरा करके गोह, और गुड़को चुरा करके वाग्गुद नामक पक्षी होता है ॥ ६४ ॥ "छुच्छुन्दरिः शुभान्गन्धान्पत्रशाकं तु बर्हिणः ॥ श्वाविल्कृतान्नं विविधमकृतान्नं तु शल्यकः ॥ ६५ ॥ बको भवति हृत्वाग्निं गृहकारी ह्युपस्करम् ॥ रक्तानि हृत्वा वासांसि जायते जीवर्जीविकः ॥ ६६ ॥" — कस्तूरी आदि सुगन्ध द्रव्योंको चुरा करके छुछुन्दरी होता है। बथुआ आदि पत्र-शाकोंको चुरा करके मोर, और लड्डू, शत्तू आदि नाना प्रकारके सिद्ध अन्न चुरा करके श्वाविध नामक प्राणी, और बिना सिद्ध किये हुए अन्न धान, जव आदि चुरा करके शल्यक नामक प्राणी होता है ॥६५॥ अग्निको चुरा करके बक नामक पक्षी होता है, और घरके उपयोगी सूप,मूसल आदि चुरा करके भीति आदिमें मिट्टीका घर बनानेवाला परों करकेयुक्त कीट अर्थात् कुम्हारकीड़ा होता है। कुसुंभ आदिसे रंगे वस्त्रोंको चुरा करके चकोर नामक पक्षी होता है ॥६६॥ "वृको मृगेभं व्याघ्रोऽश्वं फलमूलं तु मर्कटः ॥ स्त्रीमृक्षःस्तोककोवारि यानान्युष्ट्रः पशूनजः ॥६७॥ यद्वा तद्वा परद्रव्यमपहृत्य बलान्नरः ॥ अवश्यं याति तिर्यक्त्वं जग्ध्वा चैवाहुतं हविः ॥ ६८ ॥" — मृग अथवा हाथीको चुरा करके भेड़िया नामक हिंसक पशु होता है, और घोड़ा चुरा करके व्याघ्र होता है, और फल-फूल चुरा करके बन्दर होता है, और स्त्रीको चुरा करके रीछ होता है, और पीनेके लिये जल चुरा करके चातक नामक पक्षी होता है, और शकट आदि यानोंको चुरा करके ऊँट होता है, और कहे हुए पशुओंसे अन्य पशुओंको चुरा करके बकरा होता है ॥६७॥ यत्किंचित् असार भी पराई वस्तुको इच्छासे चुरा करके और बिना होम हुए पुरोडाश आदिको खा करके मनुष्य निश्चय तिर्यक् योनिमें प्राप्त होता है ॥ ६८ ॥ "स्त्रियोऽप्येतेन कल्पेन हृत्वा दोषमवाप्नुयुः ॥ एतेषामेव जन्तूनां भार्यात्वमुपयान्ति ताः ॥ ६९ ॥ स्वेभ्यः

स्वेभ्यस्तु कर्मभ्यश्च्युता वर्णा ह्यनापदि ॥ पापान्संसृत्य संसारान्प्रेष्यतां यान्ति शत्रुषु ॥ ७० ॥” —स्त्रियाँ भी इसी प्रकारसे इच्छा करके पराई वस्तुको चुरा करके पापको प्राप्त होती हैं, और उस पापसे कहे हुए जीवोंकी स्त्री होती हैं॥६९॥ इस भाँति निषिद्ध काम करनेके फलोंको कहके अब कहे हुएको न करनेके फलका परिपाक कहते हैं। ब्राह्मण आदि चारों वर्ण आपत्तिके बिना पञ्चकर्मोंके त्याग करनेसे आगे कही हुई कुत्सित योनियोंको प्राप्त हो तिस पीछे दूसरे जन्ममें शत्रुके दासभावको प्राप्त होते हैं॥ ७० ॥ “वान्ताश्युल्कामुखः प्रेतो विप्रो धर्मात्स्वकाच्च्युतः॥ अमेध्यकुणपाशी च क्षत्रियः कटपूतनः॥ ७१ ॥ मैत्राक्षज्योतिकःप्रेतो वैश्यो भवति पूयभुक् ॥ चैलाशकश्च भवति शूद्रोधर्मात्स्वकाच्च्युतः ॥ ७२ ॥” —अपने कर्मसे भ्रष्ट और वांतका खानेवाला ब्राह्मण ज्वालामुख नामक एक भाँतिका प्रेत होता है, और अपने कर्मसे नष्ट क्षत्रिय विष्ठा खानेवाला कटपूतन नामक एक भाँतिका प्रेत होता है॥ ७१ ॥ अपने कर्मसे भ्रष्ट वैश्य, मैत्राक्षज्योतिक नामक पीवका खानेवाला दूसरे जन्ममें प्रेत होता है, और अपने कर्मसे भ्रष्ट शूद्र चैलाशक नामक प्रेत होता है॥ ७२ ॥ “यथा यथा निषेवन्ते विषयान्विषयात्मकाः॥ तथा तथा कुशलता तेषां तेषूपजायते॥ ७३ ॥ ते ऽभ्यासात्कर्मणां तेषां पापानामल्पबुद्धयः॥ संप्राप्नुवंति दुःखानि तासु तास्विह योनिषु ॥ ७४ ॥” —विषयोंमें लोभी, जैसे शब्द आदि विषयोंको सदा सेवन करते हैं; तैसे–तैसे उनकी विषयोंमें प्रवीणता होती है॥ ७३ ॥ वे अल्पबुद्धिवाले उन निषिद्ध विषयोंमें उपभोगके अभ्याससे उन–उन निन्दिततर और निन्दिततम तिर्यक् आदि योनियोंमें दुःखको भोगते हैं॥ ७४ ॥ “तामिस्रादिषु चोग्रेषु नरकेषु विवर्त्तनम् ॥ असिपत्रवनादीनि बन्धनच्छेदनानि च ॥ ७५ ॥ विविधाश्चैव संपीड़ाः काकोलूकैश्च भक्षणम् ॥ करम्भवालुकातापान्कुम्भीपाकांश्च दारुणान् ॥७६॥” —तामिस्र आदि चौथे अध्यायमें कहे हुए घोर नरकोंमें दुःखके अनुभवको प्राप्त होते हैं। तैसे ही असिपत्रवन आदि बन्धन छेदनरूप नरकोंको प्राप्त होते हैं॥ ७५ ॥ नाना प्रकारकी पीड़ाओंको और कौवा, उलूक आदिसे खाया जाना, और तप्तवालुका आदि तथा कुंभीपाक आदि दारुण नरकोंमें प्राप्त होते हैं॥ ७६ ॥ संभवांश्च वियोनीषु दुःखप्रायासु नित्यशः॥ शीतातपाभिघातांश्च विविधानि भयानि च ॥७७॥ असकृद्गर्भवासेषु वासं जन्म च दारुणम् ॥ बन्धनानि

कर्मविपाक, गरुड़ पुराणादि ग्रन्थोंमें भी लिखे हैं। वहाँ पर देखकर कोई अपना विशेष समाधान कर लेवें ॥

पूर्वोक्त प्रथम नरदेहोंमें रहे हुए मनुष्य जीव समान, न्यून, और विशेष पाप-पुण्योंके कर्मानुसार अन्य पशु आदि खानियाँ

च कष्टानि परप्रेष्यत्वमेव च ॥ ७८ ॥"—जिनमें दुःख बहुत है, ऐसी तिर्यक् आदि योनियोंमें उत्पन्न होना, उन शीत-घाम आदिकी पीड़ा आदिसे नाना प्रकारके दुःखों और भयोंको प्राप्त होते हैं ॥ ७७ ॥ बारम्बार गर्भस्थानोंमें बसनेको और योनियन्त्र आदिकोंसे दुःख देनेवाली उत्पत्तिको और सङ्कल आदिसे वन्धनेकी पीड़ाको प्राप्त होते हैं ॥ ७८ ॥ "बन्धुप्रियवियोगांश्च संवासंचैव दुर्जनैः ॥ द्रव्यार्जनं च नाशं च मित्रामित्रस्य चार्जनम् ॥ ७९ ॥ जरां चैवाप्रतीकारां व्याधिभिश्चोपपीडनम् ॥ क्लेशांश्च विविधांस्तांस्तान्मृत्युमेव च दुर्जयम् ॥ ८० ॥" —बान्धवों और मित्रोंसे वियोगोंको, और दुष्टोंके साथ एक स्थानमें रहनेको, और धन जोड़नेके श्रमको, और धनके नाशको, और कष्टसे मित्रके अर्जनको, और शत्रुके प्रकट होनेको प्राप्त होते हैं ॥ ७९ ॥ जिसकी चिकित्सा नहीं, ऐसी वृद्धअवस्थाको, और रोगोंसे तथा भूख-प्यास आदिसे पीड़ित होनेको, और नाना प्रकारके क्लेशोंको, और जो रुक ही नहीं सकती, ऐसी मृत्युको प्राप्त होते हैं ॥८०॥ "यादृशेन तु भावेन यद्यत्कर्म निषेवते ॥ तादृशेन शरीरेण तत्तत्फलमुपाश्नुते ॥८१॥"

॥ मनुस्मृतिः, अध्याय-१२ । श्लोक-५९ से ८१ तक ॥

—जिस प्रकारके सात्त्विक, राजस, अथवा तामस चित्तसे स्नान, दान, योग आदि जिस कर्मको करता है, वैसे ही सत्त्व अधिक, रज अधिक, अथवा तम अधिक, शरीरसे उस स्नान आदिके फलको भोगता है ॥ ८१ ॥

नोटः—मनुस्मृतिः आदिमें किस प्रकार आवागमन तथा कर्म फल भोग माने हैं, वह दर्शानेके लिए ही उनके मानन्दीका कथन यहाँ पर रख दी गयी है। कल्पना करके ही स्वर्ग-नरकादि लोक तथा देवी-देवता, भूत-प्रेतादि योनियाँ, और अमुक कर्मका अमुक फल हुआ वा होता है, ऐसा कहे हैं; सो यथार्थ नहीं है। पारखी सद्गुरुके सत्य निर्णयका सिद्धान्त ही यथार्थ मानने योग्य है, ऐसा जानना चहिये।—सम्पादक ॥

सम्पूर्ण, आधी, तिहाई, चौथाई या कुछ कम कर्म भोगके फिर मनुष्य खानीमें जन्म लेनेको आ जाते हैं; ऐसा सब प्रकारसे आप भी अब जान लीजिये ! ॥

प्रश्न (११०) जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, और तुरीयातीत, इन चार अवस्थाओंके कर्म करनेवाले मनुष्य अन्य खानियोंमें अनेक जन्म लेते–लेते पुनः नरदेहमें फिर कैसे जन्म लेते हैं, सो मैं अब जान चुका हूँ ! ॥

अब संसारी गृहस्थोंको दूसरे ही जन्ममें फिर मनुष्यदेह मिलनेकी आशा है कि नहीं, सो दिखाइये ? ॥

(११०) उत्तरः—ध्यानपूर्वक सुनिये ! इसका भेद ऐसा है कि, पूर्वके प्रश्न १०४ में कहा है:—"भीतर–बाहरसे स्त्री-सम्भोगकी विषयासक्ति छोड़के जीवहिंसा झीनी दृष्टिसे बचाय, जड़ासक्ति रहित जीवन्मुक्त स्थिति होनेके लिये सदा स्वरूपज्ञानमें विशेष लक्ष रखनेवाले त्यागी साधुकी पूर्ण स्थिति नहीं होनेसे दूसरे ही जन्ममें नरदेह धारण कर, नरजन्म लेते–लेते किसी मनुष्य जन्ममें वे जीवन्मुक्त हो जाते हैं ॥"

इस प्रमाणसे देखनेमात्र संसारी गृहस्थ बने हैं। परन्तु स्त्री-सम्भोगकी आसक्ति भीतर–बाहरसे जिनकी दिलसे छूटी है। साधु–सन्तोंकी सेवामें काया, वाचा, मनसे वे तत्पर रहते हैं; सत्यन्यायी पारखी साधु–गुरुमें (सद्गुरुमें) सच्ची निष्ठा रख कर, सत्सङ्ग करनेमें और सत् शास्त्रोंको देखनेमें वे विशेष प्रेम रखते हैं ॥ तहाँ कहा भी है:—

चौकड़ी:–"गुरु पूजा सन्तन सनमान । गुरु सन्त एकै सम जान ॥३०॥
प्रत्यक्ष देव सन्त गुरु मान । मान महातम भरम भुलान ॥३१॥
जा मुख निर्णय लखै विशेष । ते गुरुसम न और कोइ लेख ॥३२॥"
॥ चौकड़ी ॥ सारशब्द निर्णय, गुरुबोध, पञ्चग्रन्थी ॥ ३०–३२ ॥

अर्थ स्पष्ट है ॥

इस प्रमाणसे केवल त्यागी साधु–गुरुमें ही विशेष प्रेम और निष्ठा रखनेको साधु और शिष्योंको कहा है। परन्तु विचारसागरके ‡ तृतीय स्तरङ्गमें तथा तत्त्वानुसन्धानके ❀ चतुर्थ परिच्छेदमें कहे हैं:—"याज्ञवल्क्य, जनक, उद्दालक इत्यादि आत्मज्ञानी संसारी गृहस्थ थे, तो भी वे आचार्य–गुरु माने गये॥"

परन्तुः—विषय लम्पट, लोभी गृहस्थ सत्यन्यायसे आचार्य गुरु ठहरते ही नहीं। वे ब्रह्मज्ञानी हम कर्म करके अकर्त्ते, भोग–भोगके अभोक्ते बने हुए जड़–चैतन्य, ज्ञानी–अज्ञानी, अखण्ड जीवोंको सर्वत्र व्यापक, शुद्ध चैतन्य, अद्वैत ब्रह्म सिद्ध करके अन्यायी बने थे। ऐसे गृहस्थ गुरुसे कोई मनुष्य जीवन्मुक्त हो ही नहीं सकते हैं। इसलिए उक्त गृहस्थ गुरुओंको त्यागके जड़–चेतनका सत्य निर्णय करनेवाले, विवेकी, पारखी विरक्त वा वैराग्यवान् साधु–गुरुकी या कोई भी त्यागी पारखी सन्तोंकी भक्तियुक्त सेवा संसारी गृहस्थोंको माया–मोह छूट कर अन्तःकरण शुद्ध होनेके लिए करना उचित ही है। और पेट निर्वाहमात्र शुद्ध रहनी तथा नीतिसे व्यवहार रख कर, जहाँ तक बन सके तहाँ तक भीनी दृष्टिसे जीवहिंसा बचाय गृहस्थ भी हो, पुनः दूसरे ही जन्ममें नरजन्मको प्राप्त हो जावेंगे। इसका कारण ऐसा है कि, हमेशा जड़ाध्यास छूटनेके ज्ञानसाधनोंमें विशेष लक्ष रखनेसे पुनः ज्ञानसाधन बढ़ा करके मुक्त होनेके लिए तिन मनुष्योंको बारम्बार नरजन्म प्राप्त होते ही रहते हैं, ऐसा अभी दिखाये हैं॥

‡ विचारसागर, स्तरङ्ग ३। सोरठा–१७। पृष्ठ–६० में लिखा है॥

❀ तत्त्वानुसन्धान, परिच्छेद ४। पृष्ठ–१८६ में लिखा है॥

परन्तु कोई संसारी गृहस्थ स्त्री-सम्भोग किया करते हैं। संसारके स्त्री, पुत्र, धन, परिवारादि माया—मोहमें और अनेक जीवहिंसादि पापकर्म तथा भ्रम कल्पनामें आसक्त रहके नाममात्र गुरुके शिष्य कहलाते हैं। 'निगुरा' कभी रहना नहीं, ऐसा कहीं सुन कर देखादेखी मन्त्रदीक्षा लेके किसी बानामात्रके (भेषधारी) लोभी गुरुके वे शिष्य बने हैं, सत्शास्त्र पढ़नेमें, साधु—गुरुकी भक्ति और सत्सङ्ग करनेमें कभी प्रेम वे रखते ही नहीं; ऐसे संसारी नाममात्र भक्तोंको और अन्य विषयलम्पट तथा अनाचारी, पापी मनुष्योंको फिर दूसरी ही बार मनुष्य जन्म मिलनेकी कोई आशा और आधार नहीं है; ऐसा जानिये! जहाँ तक हो ज्यादा-से-ज्यादा पुण्य करना, कुछ जीवहिंसा बचाय दया पालना, कुछ परोपकार करना, कुछ नीतिसे चलना, ऐसे कुछ शुद्ध कर्म करनेसे चौ-राशीकी योनियाँ आधी, तिहाई, चौथाई आदि अपने—अपने कर्मानुसार वे काट सकते हैं। परन्तु दूसरे ही जन्ममें वे नरदेह प्राप्त कर ही नहीं सकते हैं॥

पूर्वोक्त सच्चे निष्ठावन्त गृहस्थरूप गुरुभक्त स्त्री-सम्भोगकी आसक्ति अन्तर—बाहरसे त्याग दिये हैं। जहाँ तक बने, तहाँ तक झीनी दृष्टिसे जीवहिंसा बचानेमें लक्ष रखते हैं। वे बारम्बार नरदेह धरके विरक्त बन कर किसी नरजन्ममें अवश्य जीवन्मुक्त हो सकते हैं; ऐसा आप यथार्थसे अब जान लीजिये!॥

॥ ❀ ॥ अथ षट् पशुमनुष्योंका लक्षण वर्णन ॥ ❀ ॥

प्रश्न (१११) सब देहधारी मनुष्य फिर नरजन्ममें अथवा अन्य खानियाँ भोगके फिर नरजन्ममें कैसे आ जाते हैं?, और चौरासी योनियोंमें कौन-से कर्मोंके अध्याससे जाते हैं? सो बोध

पूर्णतासे आपकी दयासे मुझको अब हुआ है ॥

अब जगत्‌में पशुलक्षणोंके समान कौन-से मनुष्य रहतेहैं, सो कहिये?॥

(१११) उत्तरः—सो भी कहता हूँ, सुनियेः—

इसके विषयमें बीजकमें कहा हैः—

साखीः-"गुणिया तो गुण ही कहै। निर्गुणिया गुणहि घिनाय ॥
बैलहि दीजे जायफर। क्या बूझै? क्या खाय? ॥२६३॥"

॥ बीजक, साखी–२६३ । टीकायुक्त ॥

अर्थः—'गुणिया' कहिये विचारवान् सन्त जो कुछ कहेंगे, सो यथार्थ विचारकी बातें कहेंगे। और 'निर्गुणिया' कहिये अविचारी, पक्षपाती, सत्यासत्यका निर्णय करनेमें अन्यायी जो मनुष्य हैं, उनको विचार अच्छा लगता नहीं। अर्थात् सत्य निर्णय सुनके घिनाते हैं; उन्हें यथार्थ विचार कभी कहना ही नहीं। पढ़ना भी बहुत जानते हैं, और यथार्थ विचार नहीं करते, वे बैल माफिक केवल 'पशु' ही हैं। देवताओंके पक्ष लेवें, सो 'सुरपशु' वेदके पक्षपाती 'वेदपशु' और बड़े-बड़े मनुष्योंका अन्यायसे पक्ष लेवें, वे 'नरपशु' हैं। शास्त्रोंके और पुराणोंके पक्षपाती मनुष्य 'शास्त्रपशु' तथा 'पुराणपशु' हैं। स्त्रियोंसे विषय लम्पट रहें और स्त्रीका पक्ष लेवें, वे 'स्त्रीपशु' हैं। ऐसे छः प्रकारके "पशुमनुष्य" जगत्‌में रहते हैं; उन्हें सत्य विचार बताओगे, तो वे क्या बूझेंगे? और क्या ग्रहण करेंगे? जैसे बैलके आगे 'जायफल' रक्खे, तो वह क्या बूझेगा? और क्या खायेगा? इसलिए निष्पक्ष होके मुक्त होनेकी श्रद्धा जिनको होवे, सो तिन मनुष्योंसे यथार्थ विचार कहना ॥

इस प्रमाणसे—"१. वेदपशु, २. शास्त्रपशु, ३. पुराणपशु, ४. सुरपशु (देवपशु), ५. नरपशु, और ६. स्त्रीपशु; ऐसे छः पक्षपाती पशु = सत्यासत्यके निर्णय करनेमें अन्यायी, पक्षपाती

मनुष्य जगत्में रहते हैं; ऐसा आप अब जान लीजिये ! ॥

प्रश्न (११२) मनुष्योंमें "वेदपशु, शास्त्रपशु और पुराणपशु" ये तीन पक्षपाती, अन्यायी, अविचारी पशुमनुष्योंके गुण–लक्षण कैसे जानना ? सो दया करके कहिये ? ॥

(११२) उत्तरः—इनके लक्षण भी कहते हैं, सुनिये !:—पूर्वके प्रश्न ११ के श्रुति प्रमाणसे कल्पित परमात्मा स्वयं प्रकाशी 'व्यापक' और 'साक्षी' शुद्ध स्वरूप कहा है। परन्तु 'बन्ध्या-पुत्रवती' समान यह 'व्याघात-दोष'का कथन है। जगत् देखने मात्र = मिथ्या (मृगजलवत्) किंवा कल्पित कहा है; (उसे पूर्वके श्रुति प्रमाण प्रश्न ४६ में देखिये !)। फिर अत्यन्त दुःखोंकी निवृत्ति होनेके लिए नाना साधन भी किया करते हैं। अन्तमें वर्त्तमान, भूत, भविष्यत्, इन तीनों कालोंमें एक अद्वैत चैतन्य आत्मा मुक्तरूप, चराचरमें अन्तर–बाहर परिपूर्ण व्यापक ठहराये हैं; (तिसको पूर्वके श्रुति प्रमाण प्रश्न २ और प्रश्न ३९ में देखिये !)। परन्तु जैसे पृथ्वी, जल, ये दृश्य स्थूल तत्त्व और समानरूप तेज, वायु, ये अनन्त परमाणुरूपसे अदृश्य सूक्ष्म तत्त्व, ऐसे चारों तत्त्व परस्पर संयोगसे एकत्र अनादि कालसे हैं; (तिनको प्रमाण पूर्वके प्रश्न ५९ से प्रश्न ६२ तक देखिये !)। वैसे ही व्यापक परमात्मा अनादि तत्त्वोंमें अन्तर–बाहर अनादि रहनेसे 'समवाय वा तादात्म्य-सम्बन्ध' वत् अनादि कालसे वह रोगी ठहरता है। 'परमात्मा' भी मनुष्योंने ही कल्पना करके मान लिया है। क्योंकि प्रथम प्रकरणके सर्व प्रश्नोंमें जगत् कर्त्ता कोई सिद्ध हुआ नहीं। इसलिए ऐसे भ्रमिक अन्यायी, अविचारी वेदके अद्वैत पक्षपाती वेदान्ती सर्व महात्मा पुरुष प्रत्यक्ष "वेदपशु" कहाते हैं ॥

"१. मीमांसा, २. वैशेषिक, ३. न्याय, ४. योग, ५. सांख्य, और ६. वेदान्त," ये छः शास्त्र बने हैं। इन शास्त्रोंके सूत्रोंके प्रमाणोंसे 'मीमांसक' "कर्म" से ही मुक्ति मानते हैं। और अन्य दो 'वैशेषिक और न्याय' शास्त्र कर्त्ते 'ईश्वर' न्यारा मानके "द्वैतवादी" बने हैं। अन्य शेष शास्त्रवादी क्रमसे—"ज्योति स्वरूप परमतत्त्व परमात्मा, प्रकृति-पुरुषका विवेक, और अद्वैत, व्यापकरूप शुद्ध परमात्मा" सिद्ध किये हैं। ऐसे छः शास्त्रवादी 'द्वैत' और 'अद्वैत' ये दो मुख्य मत प्रकट करके आपसमें लड़ते-झगड़ते चले आते हैं; (इन शास्त्र वादियोंका निर्णय पूर्वके प्रथम प्रकरणमें देखिये!)। परन्तु कल्पित ईश्वर या परमात्माको अन्तर-बाहर सर्वत्र व्यापक सिद्ध करनेसे यथार्थ जड़-चेतनका निर्णय तिनसे हुआ नहीं। क्योंकि अखण्ड चेतन जीवोंको "कहीं अंश, कहीं प्रतिविम्ब, कहीं परारूप जड़ प्रकृति, कहीं देहोपाधिसे अनेक और स्वरूपसे एक, कहीं व्यापक अगणित" ऐसे भिन्न-भिन्न प्रकारसे मान लिए हैं। इसलिए "सर्व शास्त्रवादी अविचारी, अन्यायी, पक्षपाती रहनेसे वे प्रत्यक्ष शास्त्रवादी अविचारी, "शास्त्रपशु" बन गये, और अभी बने भी हैं॥"

"कहीं विष्णु, शिव, शक्ति, गणेश इत्यादि कल्पित सिद्ध अनेक देवता हमारे उत्पत्ति, पालन, प्रलय कर्त्ता और बुद्धि दाता स्वर्गमें हैं, ऐसे ठहराये हैं, जिनका जीते तक किसीको दर्शन नहीं होता है, स्वर्गमें अमृतपान, पुष्पशैय्या, अप्सराओंके साथ सम्भोग, तिनका नाच-गाना आदि विशेष सुख वर्णन किये हैं। और देह छूटे बाद स्वर्गमें जावेंगे, ऐसा लिखे हैं; जिसका जीते तक किसीको अनुभव होता ही नहीं। ऐसे कल्पित देवता और स्वर्ग प्राप्तिके लिए अठारह (१८) पुराण और अठारह उपपुराणादि

वाणी बनाई हुई प्रसिद्ध ही हैं। अपने—अपने भिन्न—भिन्न देवता इष्ट ठहरा करके जड़ प्रतिमा पूजन, ध्यान, नाम-स्मरणादि दासभाव लेके भक्ति करनेके 'द्वैत' सिद्धान्तमें उपासक पक्षपाती बनके परस्पर लड़ते—झगड़ते चले आते हैं। इसलिए सर्व उपासक पक्षपाती मनुष्य भ्रमिक, अविचारी प्रत्यक्ष "पुराणपशु" कहाते हैं ॥"

इस प्रकारसे अन्यायी, अविचारी, पक्षपाती 'वेदपशु', 'शास्त्रपशु', और 'पुराणपशु' वाले मनुष्योंका अन्याययुक्त पशु—लक्षण मैंने आपको स्पष्ट करके दिखाया है। सो आप भी अब इसे अच्छी तरहसे जान लीजिये ! ॥

प्रश्न (११३) हे सद्गुरुदेवजी ! अब बाकी रहे हुए "सुरपशु (देवपशु), नरपशु, और स्त्रीपशु" ये तीन प्रकारके मनुष्य कौन-से लक्षणोंसे अन्यायी, अविचारी, पक्षपाती पशु कहाते हैं, सो भी समझा करके कहिए ? ॥

(११३) उत्तरः—इनका भी भेद दिखाते हैं, सुनिये !:— "कोई एक महा ऐश्वर्यवान् "ईश्वर" बुद्धि प्रेरक कल्पनासे माना है; (उसे पूर्वका श्रुति प्रमाण प्रश्न ५३ में देखिये !) । अथवा धातु, काष्ठ, पाषाणादि प्रतिमा मूर्त्ति पृथ्वी आदि तत्त्वोंका कार्य जड़ रहके सगुण देवता मूर्त्तियोंको इष्ट मान लिये हैं। प्रत्यक्ष चारों धाम आदि पूज्यस्थान ठहराय, तहाँ हरसाल वा प्रबन्ध किये हुए समयोंपर मेले लग जाते हैं। ऐसे भ्रमिक, अन्यायी, द्वैतवादी "देवपशु" वा "सुरपशु" बने हैं। अथवा निराकार मायाधीश एक कल्पित व्यापक ईश्वर सर्व ब्रह्माण्डका उत्पत्ति, पालन, और प्रलय करनेवाला कर्त्ता है; अल्पज्ञ, मायावश अनेक जीव हैं; और त्रिगुणोंकी समान अवस्थारूप प्रकृति है। ऐसे तीन

पदार्थ अनादि आर्यमतमें माने हैं; (तिसको प्रमाण पूर्वके प्रश्न ३७ में देखिये!)। परन्तु नित्य पदार्थोंमें अनन्त जीव और प्रकृतिको एकदेशी और ईश्वरको वे व्यापक बताते हैं। गुणी पदार्थको छोड़के "तीन गुणरूप प्रकृति पदार्थ" इस मतमें नित्य मानते हैं। अल्पज्ञ, अनेक जीव कभी मुक्त, कभी अमुक्त, ऐसे सदैव अमुक्त रह कर वे बारम्बार जन्म-मरण चक्रमें घूमा करते हैं। ऐसे असम्भव दोषयुक्त बात दयानन्द स्वामीजीके मतवादी आर्यसमाजी कहते हैं। ऐसे ही रामानुजादि भक्तजन भी मानते हैं। यह अज्ञान-ज्ञान मिश्रित "विशिष्टाद्वैतमत" है। परन्तु प्रथम प्रकरणके प्रश्नोंमें जगत् कर्त्ता ईश्वरादि असिद्ध ठहरा है। इसलिए उक्त मत भी मिथ्या पक्षपातका है। इस प्रकारसे वे अन्यायी, भ्रमिक, पक्षपाती "देवपशु (सुरपशु)" कहाते हैं ॥"

"कर्मी, भक्त, योगी, ब्रह्मज्ञानी, परमहंस इत्यादि जड़ मानन्दी करनेवाले अनुमान, कल्पना, भास, अध्यासको लेकर माया-मोहमें फँसे हुए लोगोंने बाजीगरवत् कुछ तमाशा-चमत्कार दिखला कर अबोध लोगोंको भुला-भ्रमा रक्खे हैं। इसलिए उन्हें बड़े महात्मा सिद्ध अवतारी महापुरुष मानकर अज्ञ लोग उन्हींका ही अन्धाधुन्ध मिथ्या पक्ष पकड़कर 'नरपशु' बन जाते हैं। क्योंकि बिना विचारसे बड़े-बड़े पुरुषोंका मिथ्या महिमा बढ़ा-चढ़ा कर जो हर बातमें उनका ही पक्ष लेकर लड़ते-झगड़ते रहते हैं। सत्यन्याय निर्णय पर ध्यान ही नहीं देते हैं। वे कहते हैं कि हमारे पुरुषाके बड़े-बूढ़े लोग जैसा नियम चला गये हैं, और जैसा कुछ भी वे लोग लिख गये हैं, उसीको ही हम अक्षरशः सत्य मानते हैं। उसमें विवेक-विचार करनेका हमको कोई अधिकार नहीं है;

इत्यादि कह कर मिथ्या पक्ष लेनेवाले हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी आदि लोग विवेकहीन नररूपमें अविचारी 'पशु' ही बने हैं। अथवा नरपति, भूपति, देशपति, राष्ट्रपति, बने हुए राजे, महाराजे, चक्रवर्त्ती, या शाह, बादशाह, शाहंशाह कहलानेवाले लोग राज्य-मदमें उन्मत्त होकर बारम्बार अन्याय अविचारसे नाना प्रकारके पाप कर्म भी करते रहते हैं, तो भी उनके पक्षपाती लोग उनके ही प्रशंसा करनेमें तत्पर रहते हैं। क्योंकि राजाको देवता वा ईश्वरावतार रूपमें ही मानते हैं॥ तहाँ कहा भी है किः—

श्लोकः—"बालोऽपि नावमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः॥
महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति॥ ८॥"
॥ मनुस्मृतिः, अध्याय ७। श्लोक-८॥

अर्थः—'मनुष्य है' इस बुद्धिसे वा अपने समान समझ करके छोटी उमरवाले राजाका भी अपमान नहीं करना, क्योंकि कोई यह महान देवता ही नररूप करके प्रतिष्ठित रहती है॥

रामायणमें भी कहा हैः—

"समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं। रबि पावक सुरसरि की नाईं॥ ४॥"
॥ रामायण, बालकाण्ड, दोहा-६८ के बाद चौपाई-४॥

परशुराम, राम, कृष्णादिकोंने उचित-अनुचित रीतिते अनेकों मनुष्यादि जीवोंकी हिंसा वा घात किये; ऐसा पुराणोंमें वर्णन किया ही है। (तिसको प्रमाण पूर्वके प्रश्न २६ में देखिये !)। तथापि उनके भक्त लोग उन्हें समर्थ ईश्वरावतार निर्लिप्त मुक्त करनेवाले ही मानते हैं। उनके विषय लीला वा युद्धादि किये हुए हिंसादिकी लीला गाने, कहने, सुननेमें पुण्य ही मानते हैं। उनके हर बातको उचित निर्दोष ही बतलाते हैं। यही हाल समस्त मत-पन्थोंके लोगोंमें है॥

इस प्रकार अवतारी माने गये मनुष्योंके तथा ऋषि, मुनि, पीर, पैगम्बर, रसूल, औलिया, सिद्ध, मत-पन्थ प्रवर्तक बड़े-बड़े मनुष्योंके अथवा किसी भी मनुष्योंके अवगुणोंको ही गुण बता कर अविचार अन्यायसे जो पक्ष पकड़ लेते हैं; सो उनके सब बातोंका बोझा ढोनेवाले अन्यायी मनुष्य प्रत्यक्षमें "नरपशु" बने हैं।" ऐसा विवेक करके जान लीजिये ! ॥

"स्त्रीलम्पट विषयासक्त मनुष्य स्त्री-मदमें भूले हैं। स्त्री-विषय सुख, स्त्रियोंके स्वरूप तथा नाच-तमाशा देखनेमें, स्त्रियोंके शृङ्गार रसगायन सुननेमें या स्वयं उसीको गानेमें बहुत ही सुख मानते हैं। व्यभिचारी, वेश्यागमन करनेवाले मनुष्योंकी सङ्गति वे किया करते हैं। ऐसे स्त्री-सम्भोगमें पशुओंसे भी विशेष आसक्त अज्ञानी, मूर्ख लोग, अर्थात् देवता, ऋषि, मुनि, राम, कृष्णादि अवतारी मनुष्य, वाममार्गी, संयोगी नाममात्रके साधु और सर्व स्त्रीलम्पट संसारी गृहस्थ प्रत्यक्ष नरकगामी स्त्री-पक्षपाती "स्त्रीपशु" कहाते हैं ॥"

इस प्रकारसे अन्यायी, अविचारी, पक्षपाती, "सुरपशु (देवपशु), नरपशु, और स्त्रीपशु" वाले मनुष्योंका पशुलक्षण मैंने आपको प्रत्यक्ष स्पष्ट करके दिखाया है। सो आप भी विचार करके अब इसे अच्छी तरहसे जान लीजिये ! ॥

॥ ❁ ॥ अथ अष्टमद वर्णन ॥ ❁ ॥

प्रश्न (११४) जगत्‌में छः प्रकारके पशुमनुष्योंका लक्षण मैं जान गया हूँ। अब संसारमें बिन्दकला खानीके और परमार्थमें नादकला वाणीके मुख्य बन्धन कौन-से हैं? सो दया करके कहिये ?॥

(११४) उत्तरः—उनके भी भेद विषय कहते हैं, सुनिये !:—

"सबहीं मद माते कोई न जाग ! ॥ १ ॥"—बीजक, बसन्त-१० ॥
अथवाः—"जाका गुरु है आँधरा ❀ ॥"—बीजक, साखी-१५४ ॥

इनकी टीकाओंमें कहे हैं कि, जगत्में बन्धनरूप "अष्ट मद" हैं ॥ तिनमें:—१-देहमद, २-यौवनमद या स्त्रीमद, ३-धनमद, और ४-राजमद, ये चार मद संसारी गृहस्थोंमें 'बिन्दकला' खानीके मुख्य बन्धन हैं। ५-विद्यामद, ६-तपमद, ७-सिद्धिमद, और ८-ज्ञानमद, ये चार मद परमार्थी भेषधारियोंमें 'नादकला' वाणीके मुख्य बन्धन हैं; ऐसा जानिये ! ॥

साखीः— "जाका गुरु है आँधरा। चेला काह कराय ? ॥
अन्धे अन्धा पेलिया। दोऊ कूप पराय ॥ १५४ ॥ बीजक ॥"

टीका गुरुमुखः—जाका गुरु अन्धा है, ताका चेला पक्का अन्धा। 'अन्धा' कहिये पारखहीन; सो वेद आदि पक्षके जेते गुरुवा भये, सो सब ही पारखहीन। औ संसारी जीव ये तो आदिके पारखहीन; ताते पारखहीनसे-पारखहीनअन्धे मिले, औ दोनों भ्रमकूपमें परे। अथवा अन्धा कहिये ग्रेही, सो जाका गुरु ग्रेही है, सो ताका चेला आदि ग्रेही है; तो ग्रेही-से-ग्रेही मिले, फिर विषयासक्त हो करके भग कूपमें परे। 'ग्रेही' कहिये स्त्री, धन, जाति, पाँति, कुल, कुटुम्ब, घर, गाँव, जागा, वतन, वेद बानी, कर्म, उपासना, वर्णाश्रम आदि कल्पना जाको ग्रहण होय सोई ग्रेही, सोई अन्धा है। जो धनमदमें अन्धा भया। औ राजमद, विद्यामद, ज्ञानमद, यौवनमद, देहमद, तपमद, सिद्धिनके मदमें अन्धा भया। ये अष्ट मदमें गुरुवा लोग अन्ध, तिनको ग्रेही जन्म अधे मिले; तो अन्धेको अन्धेने ठेल दिया, उपदेश दिया; ताते दोनों कल्पना कूप, चौरासी कूपमें परे। अथवा विषय अन्ध वाममार्गी तिनके उपदेशमें जगत् अन्धे जीव गये। सो उनको उपदेश देके माया अन्ध कूपमें दोनों परे। अथवा अन्ध कहिये जाको अपना स्वरूप दिखाता नहीं, सोई गुरुवालोग औ चेले जगत् जीवने क्या करना ? ये तो कभी स्वरूपकी वार्ता ही जानते नहीं। स्वरूपको जाननेके वास्ते गुरुवालोगोंके शरणमें गये, सो वें गर्भ अन्धे, भ्रमका उपदेश देके दोनों प्रपञ्च कूपमें परे। ये अर्थ ॥

॥—त्रिजासे बीजक, साखी- ॥ १५४ ॥

प्रश्न (११५) बिन्दकलाके खानीमें "देहमद, यौवनमद वा स्त्रीमद, धनमद, और राजमद" ये चारों मद, संसारी गृहस्थोंको कैसे बन्धनरूप हैं, सो कृपा करके कहिये ? ॥

११५) उत्तरः—इनका भी भेद कहते हैं, सुनिये !:—

देहमें 'रस' और 'स्पर्श' इन दो विषयोंका सुख वर्त्तमान व्यवहारमें सदा विशेष रहता है। इसलिए संसारमें गृहस्थ लोग बालकोंको लड़कपनसे तरुण अवस्था तक दूध, दही, मलाई, घी, मेवा, मिठाई, पकवान इत्यादि अनेक पुष्ट पदार्थ, वक्तपर भोजन, चना-चबेनादि जलपान, नहाना, धोना, वस्त्रादि अच्छी व्यवस्था रखकर लड़काओंसे वे कसरत करवाते हैं। इस प्रकारसे लड़कोंके शरीरको तैय्यार करके पुष्ट बनाते हैं, तब "देहमद" वा "यौवनमद" चढ़ता है। दो-चार आदमी मेरे सामने क्या कर सकते हैं ? सहजमें ही मैं ढकेल दूँगा, तो वे गिर पड़ेंगे, या तिनको मारके भगा दूँगा। ऐसे जवान लड़के अपने देह बलका, अभिमान रख कर, झगड़ा, तूफान कसरत आदि करनेमें हमेशा खुश रहते हैं। फिर मा-बाप लड़कोंका विवाह कर देते हैं। कुछ काल बीते उपरान्त स्त्री-पुरुष तरुण हुए बाद वीर्यकी पुष्टतासे पुरुषोंका मदन (काम) जगनेपर रोक नहीं सकनेसे महामलीन स्त्री-सम्भोग विषय सुखमें आसक्त हों, चामके कीड़े बन जाते हैं॥ तहाँ कहा भी हैः—

चौ०:-"मीठे बैन जहरयुत लड़वा। खाय गमाय बुद्धि ह्वै भड़वा॥
और कछू सुपनहु नहिं देखै। कामअन्ध इक कामिनि लेखै॥५७॥
धनकछु मिलै जु बाहिरघरमें। सो सब खरचै कामिनि धरमें॥
भूषण वस्त्र ताहि पहिरावै। गुरुपितु मात न यादिहु आवै॥५८॥
पायस पान मिठाई मेवा। देय भक्तितैं तिय निज देवा॥५९॥"

॥ विचारसागर, स्तरङ्ग ५। चौपाई-५७-५९। पृष्ठ-१९८॥

अर्थ स्पष्ट है। 'घरमें' कहिये देहमें और 'पायस' कहिये दूध है॥

इस प्रमाणसे स्त्रीको इष्ट देवता (कल्पित स्वर्गकी अप्सरा), बड़ी महारानी मान कर, उसके प्रेमवश पुरुष हो जाते हैं। ऐसे "स्त्रीमद"में पुरुष लोग विशेष आसक्त बने रहते हैं। माँ, बाप, गुरु, इनका स्मरण भी वे नहीं करते। गहना, अच्छे वस्त्र, खानेको उत्तम पदार्थ वे उसे दिया करते हैं। स्त्री जो हुक्म करती है, सो सब माननेमें हाजिर रह कर वे उसके प्रत्यक्ष गुलाम बन जाते हैं। कुछ काल बीते बाद लड़के पैदा होनेसे तिनका मोह पुरुषोंको विशेष बढ़ जाता है। सबोंका उदर निर्वाह होनेके लिए धन कमानेमें बड़ी मेहनत, छल, प्रपञ्च और जीवघात भी वे किया करते हैं। अनीतिसे या पाप कर्मसे द्रव्य बढ़ाय, जब बहुत धन इकट्ठा हुआ, तब धनवान् बनके तिनको "धनमद" चढ़ता है। धनमदसे अज्ञानी, अन्ध, गाफिल बनकर, मद्य-मांसादि अभक्ष-भक्षण, व्यभिचार, ख्याल, तमाशे, नाच-गानके राग-रङ्गमें अनेक कुकर्म वे करते रहते हैं, और दान-धर्मको छोड़ देते हैं। प्रत्यक्ष श्वान, शूकरके समान वे विषयासक्त पशु बन जाते हैं॥

किसीको राज्य प्राप्त होनेसे सब विषय भोगोंके ऐश्वर्यका सुख विशेष मिलता है, तब "राजमद" चढ़ता है। मेरा राज-ऐश्वर्य भोग छूटने नहीं पावै, और प्रजाजनोंका पालन होवै, इस हेतुसे तलवार, बन्दूक, तोप, बर्छी, भाला, कट्यारी (कटारी) इत्यादि शस्त्र, और हाथी, घोड़े, ऊँट, तम्बू, सिपाही, घोड़सवार इत्यादि सेना, राजालोग पास रखते हैं। फाँसी देना, काला पानी (कहीं दूर टापूमें भेजना), कैद करना, बेंत मारना इत्यादि प्रजाओंको न्याय-अन्यायसे दण्ड दुःख वे देते ही रहते हैं। खेतोंका और

नाकोंका पैसा, अनेक 'कर' बैठाये हुए (टेक्सके) पैसे लेना, ऐसा प्रजाजनोंको समयानुसार दण्ड देना पड़ता है। शिकार खेलनेमें पशु आदि जीवोंको दुःख देके वे उनका प्राण लेते हैं। लड़ाईमें हजारों जीव परस्पर कट–कट कर मर जाते, और मारते हैं। अपने स्वार्थ बुद्धिसे लोभमें पड़के वे सत्यन्याय नहीं करते हैं, और अनेक अनाचार कर्म करते ही रहते हैं। चोर, जार, हत्यारे, डाकू, ऐसे बारम्बार अपराध करनेवाले (आततायी मनुष्य) इत्यादिकोंको दण्ड देने और अपने भी सत्यन्यायसे चलने यथार्थ राजनीति कहाती है, वैसी चाल भी वे चलते नहीं हैं ॥

इस प्रकारसे "देहमद, यौवनमद (स्त्रीमद), धनमद, और राजमद" इन चारों मदोंमें संसारी लोग हमेशा गाफिल रहते हैं ॥

स्त्री, पुत्र, धन, प्राप्तिः रोग रहित शरीर होना, बहुत दिन आयु रहना, ऐसे संसारके नाशवान् सुखोंको सब चाहते हैं। निज स्वरूपके सत्यज्ञानका निश्चय कर, जन्म, मरण, गर्भवासादि दुःखोंसे छूटनेको कोई संसारी गृहस्थ चाहते ही नहीं। कोई बिरले जिज्ञासुजन ही मुक्तिकी चाहना करते हैं ॥ तहाँ कहा भी हैः—

श्लोकः—"मनुष्याणां सहस्रेषु, कश्चिद्यतति सिद्धये ॥ ३ ॥"

॥ भगवद्गीता, अध्याय ७ । अर्द्ध श्लोक–३ ॥

अर्थः—सहस्रोंमें कोई एक मनुष्य पूर्ण सत्यज्ञान प्राप्त होनेका प्रयत्न करता है ॥

ऐसा आप बिन्दकला संसारके चारों मदोंको अब जान लीजिये ! ॥

प्रश्न (११६) हे सद्गुरुदेवजी ! बाकी रहे हुए 'नादकला' वाणीमें "विद्यामद, तपमद, सिद्धिमद, और ज्ञानमद" ये चारों मद परमार्थी भेषधारी साधुओंमें कैसे बन्धनरूप हैं, सो भी दया करके कहिये ? ॥

(११६) उत्तरः—इनका भी भेद कहते हैं, सुनिये !:—बालपनसे लड़के मदरसामें लिखना–पढ़ना करके वे गणितादि विद्या भी पढ़ लेते हैं। अनन्तर कोई संसारी पण्डित, विरक्त साधु, संन्यासी वा परमहंस स्वामीजीके पास व्याकरण, वेद, शास्त्र, स्मृति, भाषा ग्रन्थ इत्यादि वाणी पढ़ चुकते हैं। फिर गृहस्थ वा विरक्त ब्रह्मचारी साधु बनके जगत्में बड़े पण्डित वक्ते कहलाते हैं। अथवाः—कोई अल्प विद्या भी पढ़ कर अनाड़ी, अनपढ़ लोगोंमें पण्डित कहाते, ऐसा "विद्यामद्" चढ़ जाता है। विद्याके बलसे कोई एक मतका झूठा पक्ष पकड़के अन्य मतवालोंका प्रौढ़ीवादसे खण्डन भी किया करते हैं। उपदेश करके शिष्य भी बहुत बनाय लेते हैं। मान–बड़ाईमें फूलके पण्डितलोग वाणी जालमें भूले फिरते हैं। निज चेतन स्वरूपका यथार्थ निर्णय वे करते ही नहीं। ऐसे उन्हें "विद्यामद्" विशेष हो जाता है ॥

कहीं आशारूप फल प्राप्तिकी कल्पित वाणी सुनी कि, तप करनेसे राज्यप्राप्ति, स्वर्गप्राप्ति, वाचादि अनेक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। तब कोई मनुष्य जलशयन, धूम्रपान करने लगे; कोई 'चौरासी–धुनी या पञ्चाग्नि' तापने लगे; कोई ठाढ़ेश्वरी, ऊर्ध्वबाहु, मौनी इत्यादि स्वाँग करनेवाले बने। ऐसे–ऐसे अनेक दुःखरूप कर्मोंमें मनुष्य प्रवृत्त हुए। विभूति लगाय, जटा बढ़ाय, नङ्गे वा लङ्गोटी कसाय, मृगछाला वा बाघम्बरोंके आसनोंपर बैठे हुए जगत्में महात्मा तपसी बने; तब "तपमद्" चढ़ गया। शिष्य भी वे बहुत बना लिये। कोई तपसी धन प्राप्तिके लिये हठसे अड़ङ्गे लगाने लगे। मरे–मारनेका वे डर छोड़ दिये। अपनेको राजावत् श्रेष्ठ समझके मान–बड़ाई, शिष्य–शाखारूप मायामें उन्मत्त पड़े रहते हैं।

साखीः—"बनते भागि बेहड़े परा ❀ ॥" —बीजक, साखी–४४ ॥
इसकी टीकामें 'तप साधन बन्धन रूप है', ऐसा कहा है ॥

कहीं ऐसी आशारूप कल्पित वाणी सुनी कि, योग-समाधि सिद्ध होनेसे परमात्माका दर्शन हो, अनेक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। तब कोई मनुष्य वनमें जाके कन्द, मूल, फलोंका आहार करने लगे; और वे मरनेका डर छोड़ दिये। आसन, प्राणायाम, मुद्रा, ध्यान, देहोंके षट् चक्रोंको साफ करनेके लिए मलीन क्रियाएँ वे साधने लगे। कोई योगी ध्यान करते–करते बहुत काल बीत गये बाद मन–पवनकी गाँठ बन्धनेसे धीरे–धीरे श्वासवायु स्थिर होकर नाभिमें वा मस्तकमें वह लय हुई। बहुत दिन मनकी एकाग्रता होनेसे भ्रमसे मनमानी कल्पित सिद्धियोंकी भावनाएँ प्राप्त हुई। तब मन-मानन्दीसे सिद्ध योगीको "सिद्धिमद" चढ़ गया। जगत्में जादूवत् अनेक कला-कौशल, चमत्कार, करामात (यन्त्र शक्ति) इन्द्रजालके तमाशा देखाने और वैसे ही बात बतानेसे तिनका बड़ा माहात्म्य अज्ञानी लोगोंमें फैल गया। कल्पित भ्रमरूप सिद्धियोंके ऐश्वर्यमें फूलके अज्ञ लोगोंको भय देके वे 'श्राप और आशीष' देने लगे। परन्तु धोखारूप सिद्धियाँदि सब मायारूप देहके साथ ही छूट जायगी। और प्रकाशरूप माना हुआ कल्पित परमात्मा श्वास लय करके जो देखा है, 'सो नाद-बिन्दका या तत्त्वोंका प्रकाश' है; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न १३ में देखिये !)। सो भी देहके साथ ही नष्ट होगा। ऐसी पारख बोध सिद्धयोगियोंको हुई नहीं। नाहक सिद्ध कहानेवाले योगीजन धोखारूप सिद्धियोंके मदमें भूले फिरते हैं। वे सिद्धियाँदि माया जाल बन्धनरूप है, ऐसाः—

❀ निर्पक्ष० स० द० प्रश्न १३४ के उत्तरमें इसकी टीका लिखी है, वहाँ देखिये

साखीः—"आगि जो लागि समुद्रमें । टूटि-टूटि खसे झोल ॥"
इसकी टीकामें कहा है ॥ ॥ बोजक, साखी-२०६ ॥ और:—

कहीं ऐसी कल्पित वाणी सुनी कि, परमात्मा सच्चिदानन्द स्वरूप, सर्वत्र व्यापक, निर्गुण, निराकार है। वैसी ही दशा धारण होनेसे जीव 'ब्रह्म स्वरूप' बनके मुक्त हो जाते हैं। तब कोई जिज्ञासु मनुष्य वेद-वेदान्तादि वाणी बारम्बार श्रवण किये। फिर मनन, निदिध्यासन दृढ़ करके उसी कल्पनाके अनुभव लेके जगत्में परमहंस बने। विधि-निषेधरूप सब कर्म छोड़के जगनिन्दित अनेक अनाचार पाप कर्मोंके डर भी वे छोड़ दिये। बाल, पिशाच, मूक, जड़, उन्मत्त दशा वे धारण किये; तब उनको "ज्ञानमद" चढ़ गया। इन्द्रियोंसे और त्रिगुणरूप मायासे देहके आप-ही-आप सब व्यवहार हुआ करते हैं, ऐसे मानके वे आप अकर्त्ते अभोक्ते बन कर शरीरोंका भी भान छोड़ दिये। जान—बूझके वे मद्यपी समान गाफिल बन जाते हैं। परन्तु चराचर अन्तर—बाहर व्यापक कल्पित परमात्मा माननेसे तिनकी जड़—चेतनकी ग्रन्थी छूटी नहीं। हमको चौ-राशी योनियोंमें अपने आप ही अनेक देह धरके दुःख भोगने पड़ेंगे, ऐसी पारख तिनको हुई नहीं। परमात्मा वा परब्रह्म चराचरमें 'व्यापक' माना है; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न २ और प्रश्न १६ में देखिये !)। इस प्रकारसे परमार्थमें नादकला वाणीके "विद्यामद, तपमद, सिद्धिमद, और ज्ञानमद" ये चार मद बन्धनरूप हैं। मान—बड़ाई और शिष्य—शाखाओंका अभिमान और नाना वाणीका पक्ष छोड़के सत्यन्यायी, पारखी श्रीसद्गुरुका शोध कर देह बन्धनके दुःखोंसे छूटके मुक्त होनेकी सच्ची श्रद्धा किसको है ? कोई सत्यशोधक बिरला साधु होवै, तो उन अष्टमदोंको

छोड़के पारखी श्रीसद्गुरुकी काया, वाचा, मनसे सेवा करके पारख दृष्टिसे ज्ञानाकार चेतन हंसके तरफ जड़ाध्यास मिटाय, सदैव स्थिर बुद्धि रक्खेगा, तो जीवन्मुक्त होगा। ऐसा नहीं बने, तो सर्व परमार्थी भेषधारी साधु पुनर्जन्मरूप चौ-राशी योनियोंके चक्करमें पड़ेंगे, ऐसा आप सत्य निर्णय करके अब जान लीजिये ! ॥

॥❀॥ अथ स्थूलदेहमें नाना विध मानना वर्णन ॥❀॥

प्रश्न (११७) मुझे 'अष्ट मद' बन्धनरूप हैं, ऐसा आपकी दयासे बोध हुआ है। अब स्थूल देहमें मनुष्योंने मुख्य-मुख्य मानना कौन प्रकारसे मान लिया है? जिससे वे जल्दी देह बन्धनोंसे छूट नहीं सकते, सो भी दया करके कहिये ? ॥

(११७) उत्तरः—इनका भी भेद दिखाते हैं, सुनिये!:—

१. रज-वीर्यसे बने हुए स्त्री, पुरुष, नपुंसक, इन शरीरोंकी 'देह भावना' विशेष करके मनुष्योंने दृढ़ मानी है। २. देहके सम्बन्धसे माता-पितादि देहका अनेकों 'नाताएँ' मनुष्योंने मान लिया है। ३. पद्मिनी, चित्रिनी, हस्तिनी, शङ्खिनी, नागिनी, डङ्खिनी, ये छः प्रकारकी स्त्रियाँ; और शशा, मृग, घोड़ा, गदहा, बैल, और भैंसा, ये छः प्रकारके पुरुष; ऐसे स्त्री-पुरुषोंके 'देह भेदोंको' मनुष्योंने मान रक्खा है। ४. ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ये 'चार वर्ण' और ५. ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास, ये 'चार आश्रम' मनुष्योंने माना है। ६. शरीरोंके केशव, नारायण, दामोदर, दास इत्यादि 'नाम'; ७. ब्राह्मण, कुरमी इत्यादि 'जाति', और ८. उत्तम, मध्यम, कनिष्ट, ऐसे 'कुलके भेदोंको' मनुष्योंने माना है। ९. काला, गोरा, पीलादि 'देहके रङ्ग', १०. बवना, नाटा, मँझोला, लम्बा, ये 'देहकी गढ़न', और ११. अन्धा, लङ्गड़ा, कोढ़ी आदि 'कुरूप

और सुरूप शरीर' मनुष्योंने माना है। १२. हिन्दू, मुसलमानादि 'देह सम्बन्धी धर्म'; १३. गोसाँई, बैरागी, उदासी आदि 'भेषरूप जातियाँ' मनुष्योंने मान रक्खी हैं। १४. जन्म, मरण, क्षुधा, तृषा, शोक, मोह, ये शरीरकी 'षट् ऊर्मियाँ' अपना ही स्वरूप मनुष्योंने मान लिया है। १५. गर्भवास, जन्म, बाल, तरुण, वृद्ध, मृत्यु, ये 'देहके षट् विकार' चेतनका ही स्वरूप मनुष्योंने माना है। १६. छाजन, भोजन, मैथुन, भय, निद्रा, मोह, ये 'पशुवत् षट् धर्म' मनुष्योंने देहमें दृढ़ मान रक्खा है ॥

ऐसे १६ प्रकारसे स्थूल देहको दृढ़ करके मनुष्योंने मान रक्खा है; और कुटुम्ब, परिवार, मित्र, पशु, पक्षी आदि देहधारी जीव, और अनेक संग्रह किये हुए जड़ पदार्थोंको मनुष्य लोग अलग ही मान रहे हैं ॥ तहाँ कहे भी हैं:—

दोहा:—"जाति वर्ण कुल देहकी, सूरत-मूरत नाँव ॥
उपजे बिनसे देह सो, पाँच तत्त्व को गाँव ॥ १ ॥"

अर्थ स्पष्ट है ॥ ॥ दोहा ॥ ज्ञान स्वरोदय ॥

साखी:—"हंस न नारी पुरुष है, ये सब कालको फन्द ॥
गाँस भास सो मेटिके, साहेब शरण आनन्द ॥१३६॥"
॥ टकसार, पञ्चग्रन्थी। साखी-१३६। नं०-६३१ ॥

अर्थः—चेतन हंस कुछ नारी-पुरुषकी देह नहीं है। देहके अनेक भासरूप जड़ाध्यासोंको निकालनेवाले, सत्यन्यायके उपदेश देनेवाले, पारखी सद्गुरुके शरणमें जाके पारख दृष्टि ग्रहण करके जड़ाध्यास मिटाय, जिज्ञासु मनुष्योंको जीवन्मुक्तिके सुखमें रहना चाहिये ॥

इन प्रमाणोंसे देहाध्यासरूप जड़ पदार्थोंका सब प्रकारसे दृढ़ मानना नहीं छूटा, तो सर्व मनुष्य बारम्बार जन्म-मरणरूप चक्रमें सदैव रहकर अनेक दुःख भोगते रहेंगे। ऐसा आप अब जान लीजिये !!!

॥ ❀ ॥ अथ षट् पशुधर्म लक्षण वर्णन ॥ ❀ ॥

प्रश्न (११८) मनुष्योंमें स्थूल देहके सर्व प्रकारके माननेको जान गया हूँ ?। उनमें—१–छाजन, २–भोजन, ३–मैथुन, –भय, ५–निद्रा, और ६–मोह, ये 'षट् पशुधर्म' आप वर्णन किये हैं। तिनमें प्रथम—'छाजन,–भोजन,' इन दो पशुधर्मोंको नुष्योंको कैसे सुधारना चाहिए ? सो दया करके कहिये ? ॥

(११८) उत्तरः—सो भी वर्णन करके कहता हूँ, सुनिये !:–

इनमें 'छाजन' विषय कहा है:—

ौ०:—"छाजन सो मतलब है सङ्गा। करै सुसङ्ग छाड़ि मतिभङ्गा ॥२२॥"
॥ मानुषविचार, पञ्चग्रन्थी ॥ चौपाई, नं०–२२ ॥

अर्थ स्पष्ट है ॥ 'छाजन' कहिये देह ढाँकनेको कपड़ा, और ाड़ासक्ति निकालनेके लिए सत्सङ्गति चाहिये ॥

इस प्रमाणसे अपने निर्वाहमात्र सदा पहिरे जावें, उतने ही कपड़े मनुष्योंको अपने पास रख छोड़ना चाहिये। किसी नुष्योंने अच्छा कीमती कपड़ा मोल लेके पहिरे बिना वैसे ही उसे घरमें धर रक्खा। यदि कदाचित् उस मनुष्यने उसी कपड़ेमें ासना रखके देह छोड़ दी, तो वहाँ ही कीड़ेका जन्म लेके उसे रहना पड़ेगा ॥ तहाँ कहा भी है:—

चौ०:—"जो जहाँ प्रीति अटल है जाके। बासा तेई तहाँ है ताके ॥"
अर्थ स्पष्ट है ॥ ॥ टकसार, पञ्चग्रन्थी ॥ चौपाई, नं०–१८३६ ॥

अथवा मनुष्योंपर मायाका आच्छादन वा जड़ासक्तिरूप माननेका पर्दा अनेक तरहसे पड़ा है। इसीसे ब्राह्मण, साधु आदि अन्यायी मनुष्योंका कुसङ्ग त्यागके सत्यन्यायी–पारखी साधु-गुरुका (सद्गुरुका) सत्सङ्ग करते रहना चाहिये। जिससे देहादि सर्व

और सुरूप शरीर' मनुष्योंने माना है। १२. हिन्दू, मुसलमानादि 'देह सम्बन्धी धर्म'; १३. गोसाँई, बैरागी, उदासी आदि 'भेषरूप जातियाँ' मनुष्योंने मान रक्खी हैं। १४. जन्म, मरण, क्षुधा, तृषा, शोक, मोह, ये शरीरकी 'षट् ऊर्मियाँ' अपना ही स्वरूप मनुष्योंने मान लिया है। १५. गर्भवास, जन्म, बाल, तरुण, वृद्ध, मृत्यु, ये 'देहके षट् विकार' चेतनका ही स्वरूप मनुष्योंने माना है। १६. छाजन, भोजन, मैथुन, भय, निद्रा, मोह, ये 'पशुवत् षट् धर्म' मनुष्योंने देहमें दृढ़ मान रक्खा है ॥

ऐसे १६ प्रकारसे स्थूल देहको दृढ़ करके मनुष्योंने मान रक्खा है; और कुटुम्ब, परिवार, मित्र, पशु, पक्षी आदि देहधारी जीव, और अनेक संग्रह किये हुए जड़ पदार्थोंको मनुष्य लोग अलग ही मान रहे हैं ॥ तहाँ कहे भी हैं:—

दोहा:—"जाति वर्ण कुल देहकी, सूरत–मूरत नाँव ॥
उपजे बिनसे देह सो, पाँच तत्त्व को गाँव ॥ १ ॥"

अर्थ स्पष्ट है ॥ ॥ दोहा ॥ ज्ञान स्वरोदय ॥

साखी:—"हंस न नारी पुरुष है, ये सब कालको फन्द ॥
गाँस भास सो मेटिके, साहेब शरण आनन्द ॥१३६॥"
॥ टकसार, पञ्चग्रन्थी । साखी–१३६ । नं०–६३१ ॥

अर्थः—चेतन हंस कुछ नारी–पुरुषकी देह नहीं है। देहके अनेक भासरूप जड़ाध्यासोंको निकालनेवाले, सत्यन्यायके उपदेश देनेवाले, पारखी सद्गुरुके शरणमें जाके पारख दृष्टि ग्रहण करके जड़ाध्यास मिटाय, जिज्ञासु मनुष्योंको जीवन्मुक्तिके सुखमें रहना चाहिये ॥

इन प्रमाणोंसे देहाध्यासरूप जड़ पदार्थोंका सब प्रकारसे दृढ़ मानना नहीं छूटा, तो सर्व मनुष्य बारम्बार जन्म–मरणरूप चक्रमें सदैव रहकर अनेक दुःख भोगते रहेंगे। ऐसा आप अब जान लीजिये !॥

॥ ❀ ॥ अथ षट् पशुधर्म लक्षण वर्णन ॥ ❀ ॥

प्रश्न (११८) मनुष्योंमें स्थूल देहके सर्व प्रकारके माननेको मैं जान गया हूँ ? । उनमें—१–छाजन, २–भोजन, ३–मैथुन, ४–भय, ५–निद्रा, और ६–मोह, ये 'षट् पशुधर्म' आप वर्णन किये हैं। तिनमें प्रथम—'छाजन,–भोजन,' इन दो पशुधर्मोंको मनुष्योंको कैसे सुधारना चाहिए ? सो दया करके कहिये ? ॥

(११८) उत्तरः—सो भी वर्णन करके कहता हूँ, सुनिये !:–

इनमें 'छाजन' विषय कहा है:—

चौ०:—"छाजन सो मतलब है सङ्गा । करै सुसङ्ग छाड़ि मतिभङ्गा ॥२२॥"
॥ मानुषविचार, पञ्चग्रन्थी ॥ चौपाई, नं०–२२ ॥

अर्थ स्पष्ट है ॥ 'छाजन' कहिये देह ढाँकनेको कपड़ा, और जड़ासक्ति निकालनेके लिए सत्सङ्गति चाहिये ॥

इस प्रमाणसे अपने निर्वाहमात्र सदा पहिरे जावें, उतने ही कपड़े मनुष्योंको अपने पास रख छोड़ना चाहिये। किसी मनुष्योंने अच्छा कीमती कपड़ा मोल लेके पहिरे बिना वैसे ही उसे घरमें धर रक्खा । यदि कदाचित् उस मनुष्यने उसी कपड़ेमें वासना रखके देह छोड़ दी, तो वहाँ ही कीड़ेका जन्म लेके उसे रहना पड़ेगा ॥ तहाँ कहा भी है:—

चौ०:—"जो जहाँ प्रीति अटल है जाके । बासा तेई तहाँ है ताके ॥"
अर्थ स्पष्ट है ॥ ॥ टकसार, पञ्चग्रन्थी ॥ चौपाई, नं०–१८३६ ॥

अथवा मनुष्योंपर मायाका आच्छादन वा जड़ासक्तिरूप माननेका पर्दा अनेक तरहसे पड़ा है । इसीसे ब्राह्मण, साधु आदि अन्यायी मनुष्योंका कुसङ्ग त्यागके सत्यन्यायी–पारखी साधु-गुरुका (सद्गुरुका) सत्सङ्ग करते रहना चाहिये । जिससे देहादि सर्व

मायाका आसक्ति छूटके मनुष्य जड़ाध्याससे छूटकर जीवन्मुक्त हो जावेंगे ॥ अब भोजनमें प्रमाणः—

साखीः—"अङ्कुरज भखै सो मानवा। मांस भखै सो श्वान ॥
जीव बधै सो काल है। सदा नरक परवान ॥ ५ ॥"

अर्थ स्पष्ट है ॥ ॥ मानुषविचार, पञ्चग्रन्थी ॥ साखी–५ । नं०–४४ ॥

इस प्रमाणसे अनाज पत्तियाँ (शाकादि), फूल, फल, कन्द, मूल इत्यादि अङ्कुरज मात्र यानी पृथ्वीमेंसे पैदा हुए शुद्ध सात्त्विक पदार्थ मात्र भोजन मनुष्योंको करना चाहिये। क्योंकि वृक्ष, बेलि आदि अङ्कुरज खानी तत्त्वरूप जड़ हैं; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न ८५ में देखिये !)। परन्तु एक या दो वख्त अल्प भोजन कर लेना चाहिये। जिससे न शरीर जड़ होगा, न आलस्य और न विशेष निद्रा व्यापेगी। यह नियम विरक्त मनुष्योंको रखना चाहिये ॥ ऐसाः—

"युक्ताहारविहारस्य० ❀ ॥"—भगवद्गीता, अध्याय ६। श्लोक–१७ ॥

इसकी टीकामें कहा है ॥ और खजूर, ताड़ इन वृक्षोंके रस, मदिरा, अफीम, गाँजा, धतूरा, तमाखू इत्यादि जड़ अमली पदार्थ, जो अङ्कुरज खानीसे उत्पन्न होते हैं, जिनके अमलमें मनुष्य गाफिल (उन्मत्त) हो जाते हैं, उनको त्याग देना चाहिये। जीवहिंसा करके मांसका भोजन कभी करना नहीं ॥ तहाँ मनुस्मृतिमें कहा हैः—

श्लोकः—"अनुमन्ता विशसिता, निहन्ता क्रयविक्रयी ॥
संस्कर्ता चोपहर्ता च, खादकश्चेति घातकाः ॥ ५१ ॥

❀ "युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ॥
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥१७॥" भ० गीता, अ०–६॥

—यह दुःखोंका नाश करनेवाला योग तो यथायोग्य आहार और विहार करनेवालेका तथा कर्मोंमें यथायोग्य चेष्टा करनेवालेका और यथायोग्य शयन करने तथा जागनेवालेका ही सिद्ध होता है ॥ १७ ॥

श्लोकः—स्वमांसं परमांसेन, यो वर्धयितुमिच्छति ॥
अनभ्यर्च्य पितृन्देवांस्ततोऽन्यो नास्त्यपुण्यकृत् ॥ ५२ ॥"
॥ मनुस्मृतिः, अध्याय ५ । श्लोक–५१ । ५२ ॥

अर्थः—१. बकरादि जीव मारनेको सलाह देनेवाला २. । उसके अङ्ग–अङ्गको काटके अलग करनेवाला । ३. उसे मारनेवाला । ४. उसे बेचनेवाला । ५. उसे खरीदनेवाला । ६. उसे पकानेवाला । ७. उसे परोसनेवाला । और ८. उसे खानेवाला । ये आठ पशुवधमें घातक कहलाते हैं । परन्तु विशेष पातकी उसे मारनेवाला है ॥ ५१ ॥ जो पुरुष दूसरे देहधारी जीवोंके मांससे देवता–पितर, इनके अर्चन किये बिना उसके सेवनसे अपने मांसको बढ़ानेकी इच्छा करता है, उसके सरीखा दूसरा पापी कोई नहीं; अर्थात् वह महापापी है ❀ ॥ ५२ ॥ परन्तु बीजकमें कहे हैंः—

शब्दः—"धर्म करे जहाँ जीव बधतु है । अकर्म करे मोरे भाई ! ॥५॥
जो तोहरा को ब्राह्मण कहिये । तो काको कहिये कसाई ? ॥६॥"
॥ बीजक, शब्द–४६ ॥

अर्थः—सद्गुरु श्रीकबीर साहेब कहते हैं कि, कल्पित देवताओंके नामोंसे बलिदान और यज्ञमें धर्मके स्थानोंपर बकरा, गाय, घोड़ादि जीवोंका वधरूप अकर्म–कर्म करनेवाले ब्राह्मणोंको ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण कहना, तो कसाई किसको कहना ? जो पशुको मारे-मरावै सोई प्रत्यक्ष कसाई है । ऐसा यथार्थ जानिये ! ॥ और सुनिये !ः—

❀ मनुस्मृतिः, अध्याय–५ के उक्त ५२ वें श्लोक मांस भक्षण करनेवाले पक्षपाती लोगोंका कथन है । वह सिर्फ उनके मानन्दी दर्शाकर परखानेके लिए ही यहाँपर कहा गया है; नहीं तो देवता–पितरोंको अर्चन करके मांस खानेवालोंको भी पापका दोष तो लगता ही है । ऐसा जानना चाहिए ॥ —सम्पादक ॥

साखीः—"रामहि सुमिरे रण भिरे । फिरै और की गैल ॥
मानुष केरी खोलरी । ओढ़े फिरत हैं बैल ॥२८४॥"
॥ बीजक, साखी–२८४ । टीकायुक्त ॥

अर्थः—यहाँ सद्गुरु श्रीकबीर साहेब कहते हैं कि, संसारी-लोग सर्वका मालिक परमात्मा मानकर भक्त बनके रामका नाम 'स्मरण' करते हैं। वेदान्ती ब्रह्मज्ञानी आकाशवत् सबमें रमा, सो 'परमात्मा' कहते हैं । परन्तु देहधारी रामरूप जीवोंका भेद उन्होंने नहीं जाना । राम, कृष्ण, परशुरामादि अवतारी माने हुए देवता और पाण्डवादि क्षत्रिय भक्त, रणमें युद्ध करके रामरूप मनुष्यादि-कोंके गलेको काट कर उन्हें विशेष दुःख देके मार दिये। तो उनको रामका बैरी कहना? कि, ज्ञानी भक्त कहना ? और वाममार्गी या संसारीलोग बलिदान करके, अथवा ऐसे ही बकरे आदिकोंका जीववध करके मांस खाते हैं । वे सर्व ज्ञानी और भक्त इत्यादि मनुष्योंकी खाल ओढ़े हुए प्रत्यक्ष पशु, घातकी, काल बने थे, और अभी वैसे ही बने हैं, वे अपने आपके वचनको ही नहीं पालते हैं ॥

इन प्रमाणोंसे जीवहिंसा करके तिनको दुःख देकर मांसका भोजन निर्दयी पशुवत् क्रूर कर्म कभी करना नहीं। जहाँ तक बन सके तहाँ तक कृमि—कीट आदि छोटे—बड़े सर्व देहधारी जीवोंपर काया, वाचा, मनसे दया धारण करना चाहिये । यदि कोई मनुष्य पूरी जीव दया सर्व जीवोंपर रक्खेगा, तो अन्य देहधारी जीव भी बैरभाव छोड़ देवेंगे ॥

इस प्रकारसे मनुष्योंको "छाजन" और "भोजन" इन दो पशुधर्मोंको अच्छी तरहसे सुधारके व्यवहारमें शुद्धता लाना चाहिये!॥

प्रश्न (११९) अब मनुष्योंको मैथुनकर्म कैसे सुधारना

चाहिये ! सो कहिये ? ॥

(११६) उत्तरः—सुनिये ! मैथुनकर्म विषय कहे हैंः—

"साँप बिच्छूका मन्त्र है। माहुरहू झारा जाय ॥
विकट नारिके पाले परे। काढ़ि कलेजा खाय ❀ ॥" बीजक, साखी–१४३॥

अर्थः—साँप और बिच्छूका जहर–"शब्दरूप मन्त्रसे" उतरता है, ऐसा लोगोंने माने हैं। सो यथार्थ नहीं है। परन्तु 'मन्त्र' कहिये सलाह, उपदेश या प्रयत्नसे उपयुक्त उपचार, दवाका प्रयोग करनेसे साँप–बिच्छू आदियोंका विष भी उतर जाता है। यह तो सबोंको विदित ही है। और अन्य स्थावर जहर भी औषधियोंसे विष मारणका उपायसे उतर जाते हैं। परन्तु स्त्रीके विषयाध्यासका विष उतरना बड़ा कठिन है। सर्व जीवोंका कलेजारूप सत्यपद है, उस सत्यादि हंस पदको सद्गुणोंके सहित काटके स्त्री खा गई। अर्थात् विषयासक्त ज्ञानहीन नरोंको बनाई, ऐसी वह बड़ी 'विषधर' है ॥

इस प्रमाणसे मैथुन कर्ममें मनुष्योंको बालपनसे विरक्त रहना सबसे श्रेष्ठ है। क्योंकि देहमें वीर्यकी पुष्टता रहनेसे दृढ़ वैराग्यवान् बनके परमार्थ सर्व प्रकारसे जल्दी सिद्ध हो, मनुष्य जीव जीवन्मुक्त हो सकते हैं ॥

अथवाः–धर्म नीति प्रमाण कन्याके साथ विवाह कर एक पुत्रके उत्पत्ति निमित्त ही स्त्री-सम्भोग करना ॥ उस विषय कहा भी हैः—

❀ टीका गुरुमुखः—जगत्में साँप–बिच्छूका जहर इनका उतार है, ये उतर जाता है; परन्तु 'नारीका' और 'वाणीका' विष बड़ा विकट है। याका उतार एक पारख बिना दूसरा नहीं। जो कोई याके पाले पड़े, ताका कलेजा काढ़के खाय गई। स्त्रीका जहर जाको चढ़ा, ताका जीव सकल सम्पत्ति सहित खाय लिया; परन्तु स्त्रीका जहर किसीसे उतरा नहीं। बिना पारख स्त्रीका विष उतरना कठिन है। ये अर्थ ॥ ॥ —त्रिजासे बीजक, साखी–१४३ ॥

'तस्यां प्रतिरूपः पुत्रो जायते ॥"—बृहदारण्य उ०, अ० ४, ब्राह्मण १, मन्त्र-६॥
'आत्मा वै पुत्रनामासि ॥"—कौषीतकि ब्राह्मण उ०, अध्याय-२, मन्त्र-११॥

अर्थः—गृहस्थोंने एक पुत्र उत्पन्न किए बाद पति ही पुत्र देह धरके स्त्रीरूप माताका स्तन पान करने लगा, इसीसे वह स्त्री मातावत् हो गई ❀ ॥

वैद्यक ग्रन्थमें कहा हैः—चालीस (४०) रक्तोंके बून्दोंका वीर्यका एक बून्द बन जाता है। और स्त्री-सम्भोगके समय बीस (२०) से अधिक वीर्यके बून्द देहसे गिर जाते हैं। अर्थात् आठ सौ बून्दोंसे भी अधिक रक्त एक ही समय मैथुनकर्म द्वारा देहसे निकल जाता है। इसलिए पुरुषका दहिना श्वास (सूर्यरूप पिङ्गला नाड़ी) और स्त्रीका बाँया श्वास (चन्द्ररूप इङ्गला या इड़ा नाड़ी) मैथुन समय चलने लगे तब स्त्रीको गर्भ रहनेसे पुत्र ही उत्पन्न होता है; ऐसा माने हैं। ऐसा पुरुषोंको देखके वैसे ही उत्तम समय और दोनों रोग रहित होवैं, तब १। २ पुत्रोंके उत्पत्ति निमित्त ही स्त्री-सम्भोग करना योग्य है। फिर स्त्री-सङ्गको त्यागकर जड़ विषयोंकी आसक्ति रहित स्वरूपज्ञानका दृढ़ निश्चय होनेके लिए वैराग्य धारणकर दृढ़तासे पुरुषोंको विवेकरूप प्रयत्न करते रहना चाहिये। परन्तु अष्ट मैथुनोंको जीतना चाहिये ! ॥ तहाँ कहा हैः—

❀ मैथुन विषय भोगोंमें ग्लानि करके उसे त्यागनेके लिये ही उक्त उपनिषदोंका वचन हैं। वास्तवमें चैतन्य जीव अखण्ड, अविनाशी होनेसे उसका टुकड़ा होकर गर्भमें नहीं जाता है। किन्तु अध्यासी जीव वासनावश अन्य खानियोंसे अलग-अलग स्वतन्त्र ही आकर पुरुषोंके वीर्योंके साथ होकर स्त्रियोंके रजोंका सम्बन्ध करके गर्भोंमें जाते हैं। ऐसा जानना चाहिये ॥ —सम्पादक ॥

श्लोकः—"ब्रह्मचर्यं सदा रक्षेदष्टधा रक्षणं पृथक् ॥
स्मरणं कीर्तनं केलिः, प्रेक्षणं गुह्यभाषणं ॥ ३१ ॥"
"सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च ॥
एतन्मैथुनमष्टांङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ३२ ॥"
॥ दक्षस्मृतिः, अध्याय ७ । श्लोक-३१ । ३२ ॥

अर्थः—जिसकी रक्षा आठ प्रकार की है, इस कारण उस ब्रह्मचर्यकी सदा रक्षा करै कि, १. स्मरण = स्त्रियोंका चिन्तन करना। २. कीर्तन = स्त्रियोंके गुणोंका वर्णन। ३. केलिः = स्त्रियोंके साथ चौसरादि खेल खेलना। ४. प्रेक्षण = भोग बुद्धिसे स्त्रियोंको देखना। ५. गुह्यभाषण = एकान्तमें स्त्रियोंसे बोलना। ६. सङ्कल्प = स्त्रियोंके प्राप्तिकी इच्छा करना। ७. अध्यवसाय = स्त्रियोंके प्राप्तिका बुद्धिमें निश्चय होना। और ८. क्रियानिष्पत्ति = स्त्रियोंसे सम्भोग करना; ऐसे अष्ट प्रकारका मैथुन बुद्धिमानोंने त्यागनेको कहा है। तिनको अन्तर-बाहरसे त्यागना चाहिये। जिससे मनुष्योंकी मैथुनकर्मकी आसक्ति अन्तर-बाहरसे सम्पूर्ण छूट जावेगी ॥

दोहाः—"ज्ञान हरै क्रिया हरै। बल वीर्य हरै लाज ॥
यश लक्ष्मी कीरति हरै। हरै तप मुक्ति समाज ॥ ८१ ॥"
॥ वैराग्यशतक, दोहा-८१ ॥

अर्थः—सद्गुरु श्रीपूरण साहेब कहते हैं कि १-ज्ञान, २-क्रिया, ३-शक्ति, ४-वीर्य, ५-लज्जा, ६-यश, ७-धन, ८-कीर्ति, ९-तप, और १०-विवेक-वैराग्यादि मुक्तिका समाज, ये दश गुण मैथुन कर्मसे स्त्री नाश कर देती है ॥

अथवाः—दोनों नेत्र, मुख, दोनों स्तन, और भग, ये स्त्री देहोंके षट् स्थानोंमें सदा लक्ष रहनेसे "कमल-भ्रमर न्याय" मनुष्य भगलम्पट (चामके कीड़े) बन जाते हैं। वैसे ही स्त्रियोंका

परस्पर बोलना, देखना, चलना, उठना, बैठना, और आलिङ्गन-देना, इन षट् क्रियाओंको देख कर मनुष्यकी बुद्धि विषयासक्त हो जाती है। हाड़, मांस, रक्त, लार, मूत्र, विष्ठा इत्यादि दुर्गन्धी पदार्थोंसे स्त्री देह बनी है, रङ्ग दी हुई चिकनी दिवालवत् ऊपर चामसे मढ़ी हुई अनेक बालयुक्त रहके उसे सुन्दर स्वरूप कोई कहते हैं। हर महीनेमें ऋतु समय योनि द्वारा (चार दिन विशेष और बारह दिन सामान्यरूपसे ऐसे-) १६ दिन रक्त बहा करता है। उसीको अच्छे-अच्छे कपड़े पहिराय, सोना, चाँदी, मोती, नग इत्यादिकोंसे सुशोभित करके मूर्ख, विषय-लम्पट लोग तिस विषय रीझते हैं। उसीसे सन्तान उत्पन्न हुए बाद उसके नरक, मूत्रको प्रतिदिन साफ करती हुई स्त्री प्रत्यक्ष भङ्गीन बन जाती है॥

केवल स्त्रियोंके जड़ देहोंपर पुरुषोंका लक्ष और पुरुषोंके जड़ देहोंपर स्त्रियोंका लक्ष सदोदित लगा रहता है। चेतन जीवोंका ज्ञान-विचार कौन देखते हैं ? साँप समान स्त्रीके काटनेसे उसका जहर पुरुषोंके सर्व अङ्गमें चढ़ा है, तो भी विषयासक्त मनुष्य स्त्रीके विरह-वियोगमें अग्निके तुल्य जल रहे हैं। जैसे नरकके कीड़े नरक ही में उत्पन्न हों, वहाँ ही सुख मानके मरते हैं। तैसे ही मनुष्य भी योनिरूप नरकमेंसे उत्पन्न हों, वहाँ ही अल्प विषयानन्द भोग कर देह छोड़के अध्यासवश वहाँ ही जाके फिर गर्भवास दुःख भोगते रहते हैं॥

इस प्रकारसे जीवन्मुक्तिके लिए मैथुन-कर्मकी आसक्ति मनुष्योंको अन्तर-बाहरसे छोड़ ही देना चाहिये। ऐसा मैथुनकर्म सुधारके मनुष्योंको मुक्तिके मार्ग पर चलना उचित है; सो जानिये !॥

प्रश्न (१२०) हे सद्गुरुदेवजी ! विवाह करके स्त्रीसे एक वा दो लड़के उत्पन्न हुए बाद स्वरूपज्ञान सदोदित निश्चय होनेके लिए

स्त्री-सङ्ग त्यागके पुरुषको वैराग्य धारण करना चाहिये, ऐसा आप कहते हैं। परन्तु आर्यसमाजके आचार्य दयानन्द सरस्वतीजी (सत्यार्थप्रकाशके चतुर्थ समुल्लास पृष्ठ १२० में) पुनर्विवाह (नियोग) करके स्त्रीसे दश सन्तान उत्पन्न करनेके लिए वेदका प्रमाण देते हैं:-

"इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु ॥
दशास्यां पुत्राना धेहि पतिमेकादशं कृधि ॥ ४५ ॥"
॥ ऋग्वेद मण्डल १० । सूक्त ८५ । मन्त्र-४५ ॥

अर्थः—हे वीर्य सिञ्चनेवाले समर्थ पुरुष ! तू इस विवाहित स्त्री वा विधवा स्त्रियोंको श्रेष्ठ पुत्रयुक्त और सौभाग्ययुक्त कर। इस विवाहित स्त्रीमें दश पुत्र उत्पन्न करके ग्यारहवीं स्त्रीको मान। हे स्त्री ! तू भी विवाहित पुरुष वा नियुक्त पुरुषोंसे दश सन्तान उत्पन्न कर, और ग्यारहवें पतिको समझ ॥

इस प्रमाणसे विवाहित स्त्री-पुरुष, अर्थात् एक पति और एक ही स्त्री मिलकर दश सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं॥ परन्तु सत्यार्थ-प्रकाशके चतुर्थ समुल्लासमें लिखा ❀ है:—"सन्तति नहीं होनेसे पुनर्विवाह वा नियोग विधिसे स्त्री आपके लिए दो सन्तान, और अन्य चार पतियोंके लिए आठ सन्तान, ऐसे दश सन्तान उत्पन्न कर सकती है। वैसे ही पुनर्विवाह वा नियोग विधिसे पुरुष पुनर्विवाहित स्त्री में आपके लिए दो सन्तान, और अन्य चार स्त्रियोंके लिए आठ सन्तान, ऐसे दश सन्तान उत्पन्न कर सकता है। पुनर्विवाहमें (नियोगमें) स्त्री और पुरुष अपने घर ही में रहें। हर महीनेमें ऋतुदान समय दोनों एक वख्त एकत्र होवें। दूसरा—गर्भ जिस दिन स्त्री को रहा, उसी दिन दोनोंका नियोग

❀ सत्यार्थप्रकाश, स० ४, प्रश्न-३५, पृष्ठ-११९-१२० और १२४ में लिखा है॥

सम्बन्ध टूट जाता है। पुरुषके लिए यदि स्त्री सन्तान उत्पन्न किये होवें, तो वह स्त्री दो–तीन वर्षों तक उनका पालन करके फिर वे पतिको दे देवै। ऐसे प्रथम विवाहमें सन्तति नहीं होनेसे स्त्री ११ पुरुष तक, और पुरुष ११ स्त्री तक नियोग कर सकते हैं॥"

इन प्रमाणोंसे विवाहित वा पुनर्विवाह किये हुए स्त्री–पुरुषोंको दश–दश सन्तान उत्पन्न किये बिना स्वरूपज्ञान निश्चय होनेके लिए वैराग्य धारण करनेकी विधि वेदमें नहीं; इसका भेद भी यथार्थ न्यायसे आप दिखाइये ?॥

(१२०) उत्तरः—इसका भी भेद दिखाते हैं, आप सुनिये! प्रश्नमें जो वेदका प्रमाण दिया है, उसमें विवाहित स्त्री–पुरुषोंको दश सन्तान उत्पन्न करनेके लिए कहा है; सो भी विषयलम्पट, मन्दबुद्धिवाले पामर पुरुषोंको दश सन्तान उत्पन्न करके फिर वैराग्य धारण करनेमें ही तात्पर्य है। कुछ विधवा स्त्री वा विवाहित स्त्री की मृत्यु बाद मृतस्त्रीके पुरुषोंको ग्यारह (११) बार अथवा पुरुषके मृत्यु बाद विधवा स्त्रियोंको ग्यारह (११) बार बारम्बार नियोग करके दश सन्तान उत्पन्न करनेके लिए कहा नहीं है। वैसे ही नियोग (पुनर्विवाह) हुए बाद दो सन्तान उत्पन्न हुए पीछे अथवा स्त्री–पुरुष प्रत्येकके लिए दो–दो सन्तान, ऐसे चार सन्तान उत्पन्न हुए पीछे विधवा स्त्री और मृतस्त्रीके पुरुषका नियोग सम्बन्ध छूट जाता है; ऐसा भी कहा नहीं है। अथवाः—उस वेदके प्रमाणसे दश सन्तानोंके उत्पत्तिमें स्त्रीने १० सन्तान और ११ पति मिलके २१ को मान, और पुरुषने १० सन्तान और ११ स्त्रियाँ मिलके २१ को समझ, ऐसा भी कहा नहीं है। ऐसे पशुवत् विवाहोंके आचरण सदैव धर्म नीतिसे वर्जित हैं॥

वेदमें मनुष्य ही आत्मज्ञान दृढ़ प्राप्त करनेमें समर्थ हैं। ऐसा जान कर स्त्री–पुरुष मिलके एक ही पुत्र उत्पन्न हुए पीछे वैराग्य लेनेके लिए कहा है; (उसको पूर्वके उपनिषदोंके प्रमाण प्रश्न ११६ में देखिये !) ॥ अथवाः—

"पतिर्भार्यां संप्रविश्य० ❀ ॥"—मनुस्मृतिः, अध्याय ६ । श्लोक–८ ॥

इसमें भी वही कथन है ॥ नियोग विषय कहा हैः—

श्लोकः—"नान्यस्मिन्विधवा नारी, नियोक्तव्या द्विजातिभिः ॥
अन्यस्मिन्हि नियुञ्जाना, धर्मं हन्युः सनातनम् ॥ ६४ ॥
नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु, नियोगः कीर्त्यते क्वचित् ॥
न विवाहविधावुक्तं, विधवावेदनं पुनः ॥ ६५ ॥
अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः, पशुधर्मो विगर्हितः ॥
मनुष्याणामपि प्रोक्तो, वेने राज्य प्रशासति ॥ ६६ ॥"
॥ मनुस्मृतिः, अध्याय ६ । श्लोक–६४ । ६५ । ६६ ॥

अर्थः—'द्विजाति' अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य, इन तीन वर्णोंमें विधवा स्त्री, अन्य पुरुषमें नियुक्त करना नहीं। अन्य पुरुषोंमें नियुक्त की हुई स्त्रियाँ सनातन धर्मका नाश करती हैं ॥ ६४ ॥ "आर्य्यमणंनुदेवं" इत्यादि विवाहके मन्त्रोंके किसी शाखामें नियोग अर्थात् दूसरे पुरुषसे पुनर्विवाह कर, स्त्रीको पुत्रकी उत्पत्ति कर लेना, ऐसा नहीं कहा है; और न कहीं विवाहके विधान करने–

❀ श्लोकः—"पतिर्भार्यां संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते ॥
जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः ॥ ८ ॥"
॥ मनुस्मृतिः, अध्याय ६ । श्लोक –८ ॥

—पति शुक्ररूपसे भार्यामें प्रवेश करके गर्भभावको प्राप्त हो, उस भार्यामें पुत्ररूपसे उत्पन्न होता है। तथा च श्रुतिः–"आत्मा वै पुत्रनामासि" इति ॥ जायाका वही जायात्व है, जिससे इसमें पति फिर उत्पन्न होता है ॥ ८ ॥

वाले शास्त्रोंमें दूसरे पुरुषके साथ विवाह कहा है ॥ ६५ ॥ जिससे यह पशु-सम्बन्धी मनुष्योंका व्यवहार विद्वानोंसे निन्दित है। अधर्मी भ्रातृभार्यागामिनी (भाईकी स्त्रीके साथ व्यभिचार करनेवाले) "वेन" नामक राजाके राज्यके समय उसीने यह नियोग-विधि करना, ऐसा कहा है। इसलिए 'वेन' राजासे यह अधर्म प्रवृत्त हुआ है, इसीसे निन्दा किया जाता है ॥ ६६ ॥

इन प्रमाणोंसे नियोग-विधि (पुनर्विवाह) द्विजातिको (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यको) धर्मशास्त्रसे मना किया गया है ॥

परन्तुः—सत्यार्थप्रकाशके चतुर्थ समुल्लासमें कहा ❀ हैः— "जब पति सन्तानोंकी उत्पत्तिमें असमर्थ होवै, तब स्त्री दूसरा नियोग करै। अथवा स्त्री रोगादि दोषोंसे ग्रस्त होकर सन्तानोंकी उत्पत्तिमें असमर्थ होवै, तब स्त्रीकी आज्ञासे पति दूसरी स्त्रीसे नियोग करके सन्तानोंकी उत्पत्ति कर सकता है। विवाहित स्त्रीका "पति" धर्मके अर्थ ‡ परदेश गया हो, तो ८ वर्ष, विद्या और कीर्तिके लिए वह गया हो, तो ६ वर्ष, धनके लिये वह गया हो, तो तीन वर्षों तक राह देखके फिर स्त्री दूसरा नियोग करके सन्तानोंकी उत्पत्ति कर लेवै, और पति आए बाद नियोगवाला पति छूट जावै। वैसे ही स्त्री बन्ध्या † होवै, विवाहसे ८ वर्ष तक स्त्रीको गर्भ नहीं रहै, उसे सन्तान होकर मर जावै, उसे कन्या ही होवै, पुत्र न हो। तो ११ वर्ष तक रहके अथवा स्त्री अप्रिय

❀ सत्यार्थप्रकाश, स० ४, प्रश्न ३६, पृष्ठ—१२५—१२६ और १२८ में लिखा है ॥

‡ "प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः ॥
विद्यार्थं षड् यशोर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान् ॥ ७६ ॥" मनु० ९ ॥

† यह ~~कथन~~ मनुस्मृतिः, अ० ९ । ८१ का है। निर्पक्ष० पृष्ठ ४५९ में श्लोक है; देखिये ॥

बोलनेवाली होवै, तो उसी समय उसको छोड़के पति दूसरी स्त्रीसे नियोग करके सन्तानोंकी उत्पत्ति कर लेवै। पुरुष अत्यन्त दुःखदायक हो, तो उसको छोड़के स्त्री दूसरे पुरुषसे नियोग कर सन्तानोंकी उत्पत्ति कर लेवै।" "स्त्रीको गर्भ रहे बाद एक वर्ष स्त्रीसे एकत्र होना धर्मसे मना है। परन्तु पतिसे नहीं रहा जाय, तो वह नियोग करके अन्य स्त्रीके लिये सन्तानोंकी उत्पत्ति करै॥"

पूर्वोक्त एक ही समय पुरुषने स्त्रीको ऋतुदान देने पर उसे गर्भ रहे या न रहे, परन्तु उससे अलग रहे; यह नियम वर्त्तमानमें रहा नहीं। इसलिए वेश्यागमनवत् विषयलम्पट व्यवहार चारों वर्णके मनुष्यविषय दयानन्द स्वामीजी लिखे हैं। यह गृहस्थोंको अधिक विषयासक्त बनानेके लिये सिखाये हैं, ऐसा प्रत्यक्ष जाना जाता है॥ परन्तु मनुस्मृतिमें कहा है:—

श्लोकः—"यस्या म्रियेत कन्याया, वाचा सत्ये कृते पतिः॥
तामनेन विधानेन, निजो विन्देत देवरः॥ ६९॥"
॥ मनुस्मृतिः, अध्याय ९। श्लोक–६९॥

अर्थः—जिस कन्याका वाग्दान, अर्थात् वाचासे पति का निश्चय किया हो, और वह मर जाय, तो उसको पतिका सगाभाई ब्याह लेवै। अन्य पुरुष दूसरा वर नहीं हो सकता। क्योंकि एकको वाणीसे निश्चय करके कन्या देकर फिर दूसरेको देनेवाला दोषको प्राप्त होता है॥

अथवा मनुस्मृतिः, अध्याय ९, ❀ श्लोक–८१ और ८२ में

❀ श्लोकः—"वन्ध्याष्टमेऽधि वेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा॥ एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी॥ ८१॥ या रोगिणी स्यात्तु हिता सम्पन्ना चैव शीलतः॥ सानुज्ञाप्याधिवेत्तव्या नावमान्या च कर्हिचित्॥ ८२॥"
॥ मनुस्मृतिः, अध्याय ९। श्लोक–८१। ८२॥

कहा हैः—"प्रथम ऋतुकालसे यदि ८ वर्ष तक सन्तति न होवै, जिसकी प्रजा मर जाती होवै, कन्याओंको जननेवाली होवै, तो ग्यारहवें वर्षमें उस स्त्रीके जीते रहते ही पुत्र उत्पत्तिके लिये पति दूसरा विवाह कर लेवै ॥

अथवा मनुस्मृतिके अध्याय ९, ‡ श्लोक–९१ में कहा हैः—"जो यथोक्त कालमें कुमारी कन्या पितादिकों करके न ब्याही जावै, तो वह स्वयं आप ही पतिको बर लेवै, उसमें न कन्याको न पतिको ही पाप लगता है ॥"

इन प्रमाणोंसे पतिको अन्य कन्याके साथ स्त्री रहते ही ब्याह करनेको द्विज वर्णमें कहा है। वैसे ही वाचादान हो, पति मर जानेसे उस कन्याको पतिका सगा भाई देवरके साथ ब्याह कर देनेको कहा है, ऐसा धर्म शास्त्रमें आज्ञा है ॥

परन्तुः—हमारे विचारमें ऐसा आता है कि, यदि कन्या ऋतुमती होनेके पूर्व या उसके ३० वर्षोंकी आयु तक उसे सन्तति न होते ही उसका विवाहित पति मर जावै, तो जिस पुरुषकी विवाहित स्त्री बिना सन्तति हुए मर गई हो, और ४० वर्षोंतक उसकी आयु होवे। ऐसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ये द्विजातिमें और शूद्र जातियोंमें एक बार अपने-अपने जातियोंमें पुनर्विवाह करा देना, और दोनों एक ही घरमें रहें। ऐसी धर्मशास्त्रकी चाल वर्त्तमानमें चल जाय, तो बहुत ही उत्तम है। प्रथम,

‡ श्लोकः—"अदीयमाना भर्तारमधिगच्छेद्यदि स्वयम् ॥
नैनः किञ्चिदवाप्नोति न च यं साऽधिगच्छति ॥ ९१ ॥"
॥ मनुस्मृतिः, अध्याय ९ । श्लोक–९१ ॥

चाणक्य नीतिमें कहा ❀ हैः—"पुरुषसे अष्टगुणा मदन (काम) का जोर स्त्रियोंमें विशेष रहता है।" दूसरे, वंश खण्डित होता है। तीसरे, तरुण विधवा स्त्रियाँ और मृतस्त्रीके पुरुष व्यभिचारी बन जाते हैं। चौथे, कभी-कभी कुसङ्गतिसे स्त्रियोंको गर्भ रह कर गिरा देनेसे भ्रूणहत्या (गर्भके अपूर्ण बालककी हत्या) और बालहत्या लगके वे अपने-अपने कुलोंको कलङ्क लगाती हैं। पशुवत् व्यभिचारी कर्मोंकी निवृत्ति और अनाचार बन्द होनेके लिए पुनर्विवाह चारों वर्णोंमें एक बार होना ही योग्य है। और ऐसा ही यथार्थ न्याय होना चाहिये ! ॥

इस राहसे विवाहित वा पुनर्विवाहित स्त्रियोंमें चारों वर्णोंके मनुष्योंने एक वा दो पुत्र उत्पन्न कर लेना। फिर स्त्रीका सङ्ग छोड़ कर स्वरूपज्ञान प्राप्तिका निश्चय करनेके लिए पुरुषोंने वैराग्य धारण कर लेना चाहिये। केवल पशुवत् स्त्री-लम्पट रहनेके लिए मनुष्य जन्म मिला हुआ नहीं है। वैसे ही पुरुषोंने वैराग्य लेकर त्यागी हुई स्त्रियोंने अपने-अपने पुत्रोंको संसारका सर्व व्यवहार स्वाधीन करके आपको घरमें वा कहीं भी त्याग वृत्तिसे रहना चाहिये। अनन्तर स्त्री और पुरुषको अन्तरसे 'अष्ट मैथुन' कर्मकी आसक्ति छोड़ना ही उचित है। यदि पूर्ण स्वरूप ज्ञान दृष्टिकी दृढ़ धारणा नहीं होगी, तो बारम्बार नरजन्म लेते-लेते किसी

❀ "आहारो द्विगुण स्त्रीणां लज्जाचापि चतुर्गुणा ॥
साहसं षड्गुणंश्चैव कामश्चाष्टगुणः स्मृत ॥ चा० १ । १७ ॥"
—स्त्रियोंमें पुरुषोंसे आहार दुगुना, लाज चौगुना, साहस छैः गुना, और काम-वेग आठ गुना अधिक होता है ॥ १७ ॥

नरदेहमें स्त्रियाँ और पुरुषोंको सच्ची पारख दृष्टि पारखी श्रीसद्गुरुसे ग्रहण होकर वे जीवन्मुक्त हो जावेंगे ॥

जो वैराग्य धारण करना वेद और धर्मशास्त्रोंमें नहीं होता, तो दयानन्द स्वामीजी संन्यासी वा ब्रह्मचारी लड़कपनसे क्यों रहे ? संन्यासी बनकर नियोग (पुनर्विवाह) ११ बार करने चाहिये ? ऐसे पशुवत् अनाचारके उपदेश आप देते ही फिरते थे। इसलिए आपके भीतर भी सूक्ष्मरूपसे अष्ट मैथुनकी वासना बनी रही। इसीसे विषयलम्पट गृहस्थोंके आप पक्षपाती रहे, ऐसा जाना जाता है। आप भी सत्यन्यायसे इसका निर्णय करके अब विवेक दृष्टिसे देखिये ! ॥

प्रश्न (१२१) हे सद्गुरुदेवजी ! अब बाकी रहे हुए "भय, निद्रा, और मोह" ये तीन पशु धर्म मनुष्योंको कैसे सुधारना चाहिये ? सो कहिये ? ॥

(१२१) उत्तरः—सुनिये ! इनके भेदमें 'भय' विषय कहा है:-

साखीः—"जो पद एकौ थीर नहीं। सो भय मानुष नाहिं ॥
समुझहु बादर गगनके। उपजहिं तुरित बिलाहिं ॥ ८ ॥"
॥ मानुषविचार, पञ्चग्रन्थी । साखी–८ । नं०–७६ ॥

अर्थः—जब तक मनुष्योंको पारख दृष्टिसे सत्य चेतन हंसपदमें स्थिरता हुई नहीं, तब तक वे यथार्थ दृढ़ ज्ञानवान् मनुष्य नहीं बने। पशुवत् जड़ासक्त रहके आवागमन चक्रके घेरामें भयभीत हैं। जैसे ऊपर वातावरणमें बद्दल उत्पन्न हों, बिलाय जाते हैं, वैसे ही वे अध्यासवश अनेक शरीर धरते–छोड़ते रहते हैं ॥

इस प्रमाणसे सब भयोंमें मरणका भय सबोंको विशेष है। हमारा नुक़सान हुआ, ऐसा सर्व मनुष्य कहते हैं। परन्तु स्त्री, पुत्र, धनादि कोई

पदार्थ मनुष्य न साथ ले आए हैं, न साथ ले जावेंगे। देह और देह सम्बन्धी सर्व पदार्थ नाशवान् हैं। उनमें चेतन हंसका क्या नुक़सान होगा? क्योंकि जीवोंका मरण नहीं, वे सदोदित अविनाशी हैं; (उसे पूर्वका श्रुति प्रमाण प्रश्न ८६ में देखिये!)। अथवा आपकी नित्यताकी प्रतीति सर्व अवस्थाओंमें मनुष्योंको है, ऐसा सत्य निर्णय करके धैर्य धारण करना चाहिये। शरीरकी आयु क्षण-क्षणमें घटती ही जाती है। तत्त्वोंका जड़ शरीर छोड़ना एक दिन सबोंको है। अन्तमें देह और देह सम्बन्धी पाँच विषयोंके अल्प सुख विलास सर्व छूट जावेंगे। ऐसा जानके सत्सङ्ग द्वारा दृढ़ वैराग्य धारण करना; अर्थात् सर्व विषय सुखोंकी विशेष हन्ता त्याग देना चाहिये। अनन्तर यथार्थ पारख करके मरणका डर छोड़ देना चाहिये। तबहीं मनुष्य जीवन्मुक्त हो सकते हैं॥

दूसरे निद्रा विषय कहा है:—

चौ०:-"पँचयें निद्राको निरुवारै। जहाँ सुषुप्ति स्वप्न बिडारै॥८०॥
जागृति स्वप्न सुषुप्ति तुरिया। सो सब जुइनी यमकी कुरिया॥८१॥
॥ मानुषविचार, पञ्चग्रन्थी। चौपाई, नं०-८०-८१॥

अर्थः—पाँचवाँ पशुधर्म निद्रा (गाफिली) है; उसे सुधारना चाहिये। भ्रमिक गुरुवा लोगोंके स्थितिका घर-चराचर व्यापक, कैवल्यरूप, अद्वैत परमात्मा-सबका अधिष्ठान जगत् कर्त्ता है; ऐसा दृढ़ माना गया है, वही 'मुख्य निद्रा' है। उसके अभ्याससे जगत्में नरजीव स्वप्नसे जाग्रत्वत् बारम्बार जन्म लेते रहते हैं। अथवाः— जिस प्रकारसे जाग्रत्-स्वप्नका बीज सुषुप्तिमें रहिके 'बिडारै' नाम पुनः स्वप्न और जाग्रत् अवस्था होती है। ऐसे वेद वाणीके प्रमाणसे ब्रह्मज्ञानियोंने कर्त्ता प्राप्तिके लिये "कर्म, उपासना, योग,

नरदेहमें स्त्रियाँ और पुरुषोंको सच्ची पारख दृष्टि पारखी श्रीसद्गुरुसे ग्रहण होकर वे जीवन्मुक्त हो जावेंगे ॥

जो वैराग्य धारण करना वेद और धर्मशास्त्रोंमें नहीं होता, तो दयानन्द स्वामीजी संन्यासी वा ब्रह्मचारी लड़कपनसे क्यों रहे ? संन्यासी बनकर नियोग (पुनर्विवाह) ११ बार करने चाहिये ? ऐसे पशुवत् अनाचारके उपदेश आप देते ही फिरते थे। इसलिए आपके भीतर भी सूक्ष्मरूपसे अष्ट मैथुनकी वासना बनी रही। इसीसे विषयलम्पट गृहस्थोंके आप पक्षपाती रहे, ऐसा जाना जाता है। आप भी सत्यन्यायसे इसका निर्णय करके अब विवेक दृष्टिसे देखिये ! ॥

प्रश्न (१२१) हे सद्गुरुदेवजी ! अब बाकी रहे हुए "भय, निद्रा, और मोह" ये तीन पशु धर्म मनुष्योंको कैसे सुधारना चाहिये ? सो कहिये ? ॥

(१२१) उत्तरः—सुनिये ! इनके भेदमें 'भय' विषय कहा है:-

साखीः—"जो पद एकौ थीर नहीं। सो भय मानुष नाहिं ॥
समुझहु बादर गगनके। उपजहिं तुरित बिलाहिं ॥ ८॥"
॥ मानुषविचार, पञ्चग्रन्थी । साखी–८ । नं०–७९ ॥

पदार्थ मनुष्य न साथ ले आए हैं, न साथ ले जावेंगे। देह और देह सम्बन्धी सर्व पदार्थ नाशवान् हैं। उनमें चेतन हंसका क्या नुक़सान होगा? क्योंकि जीवोंका मरण नहीं, वे सदोदित अविनाशी हैं; (उसे पूर्वका श्रुति प्रमाण प्रश्न ८६ में देखिये!)। अथवा आपकी नित्यताकी प्रतीति सर्व अवस्थाओंमें मनुष्योंको है, ऐसा सत्य निर्णय करके धैर्य धारण करना चाहिये। शरीरकी आयु क्षण-क्षणमें घटती ही जाती है। तत्त्वोंका जड़ शरीर छोड़ना एक दिन सबोंको है। अन्तमें देह और देह सम्बन्धी पाँच विषयोंके अल्प सुख विलास सर्व छूट जावेंगे। ऐसा जानके सत्सङ्ग द्वारा दृढ़ वैराग्य धारण करना; अर्थात् सर्व विषय सुखोंकी विशेष हन्ता त्याग देना चाहिये। अनन्तर यथार्थ पारख करके मरणका डर छोड़ देना चाहिये। तबहीं मनुष्य जीवन्मुक्त हो सकते हैं॥

दूसरे निद्रा विषय कहा है:—

चौ०:-"पँचयें निद्राको निरुवारै। जहाँ सुषुप्ति स्वप्न बिडारै॥ ८०॥
जागृति स्वप्न सुषुप्ति तुरिया। सो सब जुइनी यमकी कुरिया॥ ८१॥
॥ मानुषविचार, पञ्चग्रन्थी। चौपाई, नं०-८०-८१॥

अर्थः—पाँचवाँ पशुधर्म निद्रा (गाफिली) है; उसे सुधारना चाहिये। भ्रमिक गुरुवा लोगोंके स्थितिका घर-चराचर व्यापक, कैवल्यरूप, अद्वैत परमात्मा-सबका अधिष्ठान जगत् कर्त्ता है; ऐसा दृढ़ माना गया है, वही 'मुख्य निद्रा' है। उसके अध्याससे जगत्में नरजीव स्वप्नसे जाग्रत्वत् बारम्बार जन्म लेते रहते हैं। अथवा:— जिस प्रकारसे जाग्रत्-स्वप्नका बीज सुषुप्तिमें रहिके 'बिडारै' नाम पुनः स्वप्न और जाग्रत् अवस्था होती है। ऐसे वेद वाणीके प्रमाणसे ब्रह्मज्ञानियोंने कर्त्ता प्राप्तिके लिये "कर्म, उपासना, योग,

नरदेहमें स्त्रियाँ और पुरुषोंको सच्ची पारख दृष्टि पारखी श्रीसद्गुरुसे ग्रहण होकर वे जीवन्मुक्त हो जावेंगे ॥

जो वैराग्य धारण करना वेद और धर्मशास्त्रोंमें नहीं होता, तो दयानन्द स्वामीजी संन्यासी वा ब्रह्मचारी लड़कपनसे क्यों रहे ? संन्यासी बनकर नियोग (पुनर्विवाह) ११ बार करने चाहिये ? ऐसे पशुवत् अनाचारके उपदेश आप देते ही फिरते थे। इसलिए आपके भीतर भी सूक्ष्मरूपसे अष्ट मैथुनकी वासना बनी रही। इसीसे विषयलम्पट गृहस्थोंके आप पक्षपाती रहे, ऐसा जाना जाता है। आप भी सत्यन्यायसे इसका निर्णय करके अब विवेक दृष्टिसे देखिये ! ॥

प्रश्न (१२१) हे सद्गुरुदेवजी ! अब बाकी रहे हुए "भय, निद्रा, और मोह" ये तीन पशु धर्म मनुष्योंको कैसे सुधारना चाहिये ? सो कहिये ? ॥

(१२१) उत्तरः—सुनिये ! इनके भेदमें 'भय' विषय कहा हैः-

साखीः—"जो पद एकौ थीर नहीं। सो भय मानुष नाहिं ॥
समुझहु बादर गगनके। उपजहिं तुरित बिलाहिं ॥ ८॥"
॥ मानुषविचार, पञ्चग्रन्थी। साखी–८। नं०–७६ ॥

अर्थः—जब तक मनुष्योंको पारख दृष्टिसे सत्य चेतन हंसपदमें स्थिरता हुई नहीं, तब तक वे यथार्थ दृढ़ ज्ञानवान् मनुष्य नहीं बने। पशुवत् जड़ासक्तर हके आवागमन चक्रके घेरामें भयभीत हैं। जैसे ऊपर वातावरणमें बद्दल उत्पन्न हों, बिलाय जाते हैं, वैसे ही वे अध्यासवश अनेक शरीर धरते–छोड़ते रहते हैं ॥

इस प्रमाणसे सब भयोंमें मरणका भय सबोंको विशेष है। हमारा नुक़सान हुआ, ऐसा सर्व मनुष्य कहते हैं। परन्तु स्त्री, पुत्र, धनादि कोई

पदार्थ मनुष्य न साथ ले आए हैं, न साथ ले जावेंगे। देह और देह सम्बन्धी सर्व पदार्थ नाशवान् हैं। उनमें चेतन हंसका क्या नुक़सान होगा? क्योंकि जीवोंका मरण नहीं, वे सदोदित अविनाशी हैं; (उसे पूर्वका श्रुति प्रमाण प्रश्न ८६ में देखिये!)। अथवा आपकी नित्यताकी प्रतीति सर्व अवस्थाओंमें मनुष्योंको है, ऐसा सत्य निर्णय करके धैर्य धारण करना चाहिये। शरीरकी आयु क्षण-क्षणमें घटती ही जाती है। तत्त्वोंका जड़ शरीर छोड़ना एक दिन सबोंको है। अन्तमें देह और देह सम्बन्धी पाँच विषयोंके अल्प सुख विलास सर्व छूट जावेंगे। ऐसा जानके सत्सङ्ग द्वारा दृढ़ वैराग्य धारण करना; अर्थात् सर्व विषय सुखोंकी विशेष हन्ता त्याग देना चाहिये। अनन्तर यथार्थ पारख करके मरणका डर छोड़ देना चाहिये। तबहीं मनुष्य जीवन्मुक्त हो सकते हैं॥

दूसरे निद्रा विषय कहा है:—

चौ०:-"पँचयें निद्राको निरुवारै। जहाँ सुषुप्ति स्वप्न बिडारै॥८०॥
जागृति स्वप्न सुषुप्ति तुरिया। सो सब जुइनी यमकी कुरिया॥८१॥
॥ मानुषविचार, पञ्चग्रन्थी। चौपाई, नं०-८०-८१॥

अर्थः—पाँचवाँ पशुधर्म निद्रा (गाफिली) है; उसे सुधारना चाहिये। भ्रमिक गुरुवा लोगोंके स्थितिका घर-चराचर व्यापक, कैवल्यरूप, अद्वैत परमात्मा-सबका अधिष्ठान जगत् कर्त्ता है; ऐसा दृढ़ माना गया है, वही 'मुख्य निद्रा' है। उसके अध्यासँसे जगत्में नरजीव स्वप्नसे जाग्रत्वत् बारम्बार जन्म लेते रहते हैं। अथवाः— जिस प्रकारसे जाग्रत्-स्वप्नका बीज सुषुप्तिमें रहिके 'बिडारै' नाम पुनः स्वप्न और जाग्रत् अवस्था होती है। ऐसे वेद वाणीके प्रमाणसे ब्रह्मज्ञानियोंने कर्त्ता प्राप्तिके लिये "कर्म, उपासना, योग,

ज्ञान, और विज्ञान" ये पाँच मार्ग निकाले हैं। सो "जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय, तुरीयातीत," ये पाँच अवस्थाओंके कर्म हैं। उनमें क्रमसे "विषयानन्द, प्रेमानन्द, योगानन्द, ज्ञानानन्द, ब्रह्मानन्द," ऐसे वृत्तिकी स्थिरतासे शरीर सम्बन्धी पाँचों आनन्दोंके सूक्ष्म अहङ्काररूप अध्याससे मनुष्य जीव चारों खानियोंमें अनेक जन्म–दुःख भोगा करते हैं। चारों खानियोंमें जानेका बीज गुरुवा लोगोंका उपदेश है। (इनका वर्णन पूर्वके प्रश्न १०३ से प्रश्न ११० तक हुआ है!) ॥

इस प्रमाणसे जड़ देह और देह सम्बन्धी मनुष्यादि चेतन जीव और अनेक जड़ पदार्थोंके सुख प्राप्तिसे सुखोंके अहङ्काररूप अध्यास गुप्तरूपसे मनुष्योंमें रह जाते हैं। ऐसा जानके सत्सङ्ग द्वारा विवेक करके दृढ़ वैराग्यसे धीरे–धीरे सर्व पञ्च विषयोंके कर्मोंकी दृढ़ आसक्ति मनुष्योंको छोड़ देना चाहिये। अनन्तर प्रारब्धानुसार देह निर्वाहमात्र व्यवहार रखकर उनको जीवन्मुक्त हो जाना चाहिये। जीवन्मुक्तदशामें "जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति," ये तीन अवस्था तो उनकी बनी रहेगी, परन्तु तिन कर्मोंके अध्यास रहित रहेगी ॥

विरक्त योगीजनोंको योग साधनके लिये दो घण्टोंसे तीन घण्टों तक प्रतिदिन नीन्द लेना बहुत है; ऐसा शास्त्रमें कहा है। अन्य भेष धारी, विवेकी, जीवन्मुक्त पुरुषोंको चार-से-पाँच घण्टोंतक दिन–रात्रिमें नीन्दकी आवश्यकता है। परन्तु आहार–व्यवहार कम रखना चाहिये। और संसारी, मेहनती, मनुष्योंको छः से आठ घण्टों तक प्रतिदिन नीन्दकी जरूरी है। जिससे इन्द्रियोंकी थकावट दूर होकर शरीरकी प्रकृति बराबर अच्छी रह सकती है ॥

अब मोह विषय कहा है:—

चौ०:-"छठयें मोह माया परचण्डा। कुल परिवारको नाना दण्डा ॥६४॥
सो परिवार स्वप्नको साथी। झूठा नेह देह कुल जाती ॥६५॥"

अर्थ स्पष्ट है ॥ —मानुषविचार, पञ्चग्रन्थी। चौपाई, नं०-६४-६५ ॥

इस प्रमाणसे मोहमें ऐसा विचार करना कि, "दिन-रात, स्त्री-पुत्रादि, कुल-परिवारके माया-मोहमें फँस कर, उनके उदर निर्वाहके लिये धन कमानेमें हम संसारी लोग बड़ा परिश्रम उठाते हैं। परन्तु देहके अन्त समय कोई साथ चलनेवाले हैं नहीं। माया-मोहकी वासना रखनेसे अकेले हमको ही पशु आदि अनेक देहोंको धर कर गर्भवास जन्म-मरणादि अनेक दुःख सहने पड़ेंगे।" धनमें विशेष आसक्त रहनेसे सर्पदेह धरके, जहाँ धन गाड़ रक्खा है, वहाँ पर बैठके उसी धनकी रखवाली वे जीव किया करते हैं; ऐसा शास्त्रका प्रमाण है। इसलिए कुल, परिवार, धन, घर, अनेक पशु, पक्षी, सुन्दर पदार्थ, तथा शरीरका भी विशेष मोह जीते तक छोड़कर, जीवन्मुक्त स्थितिमें प्रारब्धानुसार मनुष्योंको विचरते रहना चाहिये। अथवा निर्बन्धयुक्त अपनी स्थिरतासे कहीं भी अनुकूलके जगहमें रहना चाहिये ! ॥

इस प्रकारसे 'भय, निद्रा, मोहादि' षट् पशुधर्मोको सुधारके जीवन्मुक्त हो जाना, यही सर्व मनुष्योंका मुख्य निजधर्म (स्वधर्म) है; ऐसा आप विवेकसे अब जान लीजिये ! ॥

॥ ❀ ॥ अथ मुख्य अज्ञानोंका वर्णन ॥ ❀ ॥

प्रश्न (१२२) पशुवत् षट्धर्म मनुष्योंको कैसे सुधारना चाहिये ? सो बोध आपकी दयासे पूर्णतासे मुझको अब हुआ है ॥

अब जगत्में 'मुख्य अज्ञान' कितने प्रकारके हैं ? तथा

ज्ञान, और विज्ञान" ये पाँच मार्ग निकाले हैं। सो "जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय, तुरीयातीत," ये पाँच अवस्थाओंके कर्म हैं। उनमें क्रमसे "विषयानन्द, प्रेमानन्द, योगानन्द, ज्ञानानन्द, ब्रह्मानन्द," ऐसे वृत्तिकी स्थिरतासे शरीर सम्बन्धी पाँचों आनन्दोंके सूक्ष्म अहङ्काररूप अध्याससे मनुष्य जीव चारों खानियोंमें अनेक जन्म-दुःख भोगा करते हैं। चारों खानियोंमें जानेका बीज गुरुवा लोगोंका उपदेश है। (इनका वर्णन पूर्वके प्रश्न १०३ से प्रश्न ११० तक हुआ है!) ॥

इस प्रमाणसे जड़ देह और देह सम्बन्धी मनुष्यादि चेतन जीव और अनेक जड़ पदार्थोंके सुख प्राप्तिसे सुखोंके अहङ्काररूप अध्यास गुप्तरूपसे मनुष्योंमें रह जाते हैं। ऐसा जानके सत्सङ्ग द्वारा विवेक करके दृढ़ वैराग्यसे धीरे-धीरे सर्व पञ्च विषयोंके कर्मोंकी दृढ़ आसक्ति मनुष्योंको छोड़ देना चाहिये। अनन्तर प्रारब्धानुसार देह निर्वाहमात्र व्यवहार रखकर उनको जीवन्मुक्त हो जाना चाहिये। जीवन्मुक्तदशामें "जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति," ये तीन अवस्था तो उनकी बनी रहेगी, परन्तु तिन कर्मोंके अध्यास रहित रहेगी ॥

विरक्त योगीजनोंको योग साधनके लिये दो घण्टोंसे तीन घण्टों तक प्रतिदिन नीन्द लेना बहुत है; ऐसा शास्त्रमें कहा है। अन्य भेष धारी, विवेकी, जीवन्मुक्त पुरुषोंको चार-से-पाँच घण्टोंतक दिन-रात्रिमें नीन्दकी आवश्यकता है। परन्तु आहार-व्यवहार कम रखना चाहिये। और संसारी, मेहनती, मनुष्योंको छः से आठ घण्टों तक प्रतिदिन नीन्दकी जरूरी है। जिससे इन्द्रियोंकी थकावट दूर होकर शरीरकी प्रकृति बराबर अच्छी रह सकती है ॥

अब मोह विषय कहा है:—

चौ०:-"छठयें मोह माया परचण्डा। कुल परिवारको नाना दण्डा ॥६४॥
सो परिवार स्वप्नको साथी। झूठा नेह देह कुल जाती ॥६५॥"

अर्थ स्पष्ट है॥ —मानुषविचार, पञ्चग्रन्थी। चौपाई, नं०-६४-६५॥

इस प्रमाणसे मोहमें ऐसा विचार करना कि, "दिन-रात, स्त्री-पुत्रादि, कुल-परिवारके माया-मोहमें फँस कर, उनके उदर निर्वाहके लिये धन कमानेमें हम संसारी लोग बड़ा परिश्रम उठाते हैं। परन्तु देहके अन्त समय कोई साथ चलनेवाले हैं नहीं। माया-मोहकी वासना रखनेसे अकेले हमको ही पशु आदि अनेक देहोंको धर कर गर्भवास जन्म-मरणादि अनेक दुःख सहने पड़ेंगे।" धनमें विशेष आसक्त रहनेसे सर्पदेह धरके, जहाँ धन गाड़ रक्खा है, वहाँ पर बैठके उसी धनकी रखवाली वे जीव किया करते हैं; ऐसा शास्त्रका प्रमाण है। इसलिए कुल, परिवार, धन, घर, अनेक पशु, पक्षी, सुन्दर पदार्थ, तथा शरीरका भी विशेष मोह जीते तक छोड़कर, जीवन्मुक्त स्थितिमें प्रारब्धानुसार मनुष्योंको विचरते रहना चाहिये। अथवा निर्बन्धयुक्त अपनी स्थिरतासे कहीं भी अनुकूलके जगहमें रहना चाहिये!॥

इस प्रकारसे 'भय, निद्रा, मोहादि' षट् पशुधर्मोंको सुधारके जीवन्मुक्त हो जाना, यही सर्व मनुष्योंका मुख्य निजधर्म (स्वधर्म) है; ऐसा आप विवेकसे अब जान लीजिये!॥

॥ ❁ ॥ अथ मुख्य अज्ञानोंका वर्णन ॥ ❁ ॥

प्रश्न (१२२) पशुवत् षट्धर्म मनुष्योंको कैसे सुधारना चाहिये? सो बोध आपकी दयासे पूर्णतासे मुझको अब हुआ है॥ अब जगत्में 'मुख्य अज्ञान' कितने प्रकारके हैं? तथा

उनके लक्षण और निवृत्तिके साधन कौनसे हैं, सो दया करके कहिये ?॥

(१२२) उत्तरः—उसका भी निर्णयक हते हैं, सुनिये !:—
विचारसागरके प्रथम स्तरङ्गमें ❀, "मल, विक्षेप, और आवरण, ये अन्तःकरणके तीन दोष कहे हैं।" वही जड़ासक्ति, दृढ़ मानना, और अध्यासरूप तीन प्रकारके अज्ञान कहाते हैं॥

तिनमें प्रथम—"मल अज्ञानका" लक्षण कहते हैं:—

जैसी कोई मोरी, कीचड़, सड़े पदार्थ, मल, मूत्र, इत्यादि मलसे भरी रहती है, जब बहुत जलसे धोइये, तब वह साफ निर्मल हो जाती है। वैसे ही मनके अनेक सङ्कल्पसे इन्द्रियोंद्वारा अनेक कर्म करके मनुष्य जड़ासक्तिमें (अज्ञानरूप मायाके मलमें) गाफिल हुए हैं॥

जब मनुष्य परस्त्री-सम्भोग, वेश्यागमन, मदिरा, मांस, और अमली पदार्थोंका सेवन, छोटे-बड़े देहधारी जीवोंकी हिंसा शक्ति अनुसार नहीं बचाना, चोरी करना, जूवा खेलना, झूठ बोलना, कपट, ठगाई, शृङ्गाररस-गायन, नाटक, ख्याल, तमाशे देखने, ऐसे-ऐसे सब अशुभ कर्म (अनाचार पाप कर्म) छोड़ देवेंगे। ऋतु समय विवाहित स्त्रीसे गमन, सत्य भाषण, सर्व देहधारी जीवोंपर शक्ति अनुसार दया, शान्त, सरल स्वभाव धारण करेंगे। विद्या पढ़कर राजनीति, संसारनीति इत्यादिके ग्रन्थ पढ़ेंगे। अन्धे, लङ्गड़े, लूल्हे इत्यादि मनुष्य और पशु, पक्षी आदि अनाथ, गरीब, अङ्गहीन जीव; अथवा सुपात्र मनुष्य देख कर

❀ दोहाः—"मल विक्षेप जाके नहीं, किन्तु एक अज्ञान॥
है चव साधन सहित नर, सो अधिकृत मतिमान॥ ११॥"
॥ विचारसागर, स्तरङ्ग १, पृष्ठ—३—४ में दोहा—११॥

अन्न, जल, वस्त्रादि दान–पुण्य वे नित्य करते रहेंगे। नित्य स्नान करना, कपड़े धो डालना, घर शुद्ध रखना, जल छानके पीना, सत्त्वगुणी अन्न रस सहित सेवन करना; इस प्रकार शुद्ध चालसे चलने लगेंगे। तब वे मनुष्य जीवोंको दुःखदेनारूप पापकर्मोंसे अन्तरमें सदा डरते ही रहेंगे। और जीवोंको सुखदेनारूपी पुण्य कर्मोंको करते हुए शुद्धतासे चला करेंगे ॥

इस प्रकार मनुष्य लोग शुभकर्मरूप पुण्यमार्गसे चलके पाप कर्मोंकी आसक्ति वा 'मलरूप प्रथम अज्ञानको' निवृत्त कर सकते हैं ॥

दूसरे—"विक्षेप अज्ञान" विषय कहा है:—

"प्रपञ्चोत्पत्ति हेतुः विक्षेपशक्तिः ॥"–तत्त्वानुसन्धान, परिच्छेद १ ॥ पृष्ठ २८ ॥

अर्थः—लोभवश अनेक जड़ पदार्थोंको दृढ़ मानके और सङ्कल्परूप मनके चञ्चलतासे अनेक अध्यास रह कर जड़ तत्त्वोंकी देहरूप प्रपञ्चकी उत्पत्तिका कारण दूसरी 'विक्षेप शक्ति' वा "विक्षेप अज्ञान" है ॥

इस प्रमाणसे जैसे पेड़ोंके पत्ते वायुके वेगसे सदैव हिलते ही रहते हैं। वैसे ही शरीरमें मनुष्य जीवोंके सत्तासे दिन–रात्री, स्त्री, पुत्र, धनादि अथवा भूत, वर्त्तमान, भविष्यत्के अनेक प्रकारसे माननारूप सुख–दुःखके सङ्कल्प मन द्वारा उठते ही रहते हैं। वही 'विक्षेप अज्ञान' अर्थात् मायाकी चञ्चलतारूप 'बड़ी गाफिली' है ॥

कहीं शिव, शक्ति वा अन्य देवी आदि उपासक मनुष्य, जीवोंका होम, जीवोंका बलिदान तथा वाममार्गमें अनेक स्त्रियोंसे सम्भोग, मदिरा-मांसादि वे सेवन किया करते हैं। कहीं जारण, मारण, उच्चाटन, वशीकरण, आकर्षण, स्तम्भन, मोहनादि दुःखदायक कुविद्याओंको पढ़कर, श्मशानोंमें या देवी आदि मूर्त्तियोंके

पास नाना मन्त्रोंके जप, मन्त्र, तन्त्रादि कर्म-कुकर्म करके जीव बधादि अनेक पाप कर्म वे किया करते हैं। कोई उपासक मनुष्य पीतल, पाथर, काष्ठादि अष्ट प्रकारके जड़ मूर्त्तियोंकी उपासनारूप भक्ति करते रहते। अथवा कोई कबर, मसजिद, पादुका, गादियाँ, ग्रन्थ, अग्नि, तीर्थादि जल, इत्यादि जड़ पूजन किया करते हैं। ऐसी सर्व जड़ भक्तिरूप पाखण्डकी चञ्चलता मनुष्य जब छोड़ देवेंगे। अनन्तर वे सत्यन्याय, सत्यनीति आदिके ग्रन्थ पढ़ेंगे। उनके तात्पर्यको जानके भक्ति, वैराग्य और सत्यज्ञानके कथनरूप वे भजन किया करें। चैतन्य मूर्त्तियाँ अर्थात् न्याय-नीतिसे चलनेवाले ब्राह्मण, सज्जन, साधु-गुरु और अन्तमें सत्यन्यायी पारखी श्रीसद्गुरुमें वे पूर्ण निष्ठा रक्खें। अन्न, वस्त्र, धनादि नाशवान् पदार्थ यथाशक्ति खर्च करके काया, वाचा, मनसे उन्होंकी सेवा करके सत्सङ्ग वे हमेशा करते रहें ॥

ऐसी चैतन्य उपासनारूप भक्ति विधियुक्त करनेसे संसारीलोग जिज्ञासु (ज्ञानके अधिकारी) बन जाते हैं। और मन तथा इन्द्रियों द्वारा होनेवाली चञ्चलतारूप संसारकी विशेष आसक्ति तिनकी छूट जाती है। पूर्वोक्त "विक्षेप अज्ञान" या विशेष चञ्चलताकी आसक्ति 'चैतन्य उपासनारूप भक्तिसे' निवृत्त होकर मनुष्योंको स्थिरता आ जाती है ॥

तीसरे—"आवरण अज्ञान" विषय कहा हैः—

"नास्ति न प्रकाशते इति व्यवहारहेतुः आवरणशक्तिः ॥"

॥ तत्त्वानुसन्धान, परिच्छेद-१ । पृष्ठ-२८ ॥

अर्थः—चैतन्य न कहीं है, न भासता है, इस प्रकारका अज्ञान रहना, सो आवरण शक्ति वा तीसरा "आवरण अज्ञान" है ॥

इस प्रमाणसे जैसे धूल दर्पणके काँचको ढाँप देती है। तब शुद्ध मुख नजर नहीं आता है। तैसे ही पाँच विषयोंके विशेष सुखोंके सूक्ष्म अहङ्कार, वही अध्यासरूप चेतन जीवोंका और जड़ शरीरोंका सम्बन्ध प्रवाहरूप अनादि कालसे चला आता है। वह ही मनुष्योंको आवरणरूप भूल है। संसार प्रवाहरूप अनादि है; (उसे बहुतसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न ४७ में देखिये !) ॥

मनुष्य सबको जाननहार (ज्ञान स्वरूप) चैतन्य होकर, सूर्यके ग्रहणवत् आवरणरूप जड़ाध्यासी वा अज्ञानी नजर आते हैं। इसलिए १. जब कहीं स्वर्गोंमें 'अनेक देवता वा यमलोक' हैं। २. काशीमें 'भैरव' या कहीं 'यमराज' दण्ड कर्त्ता है। ३. कहीं अनेक 'ब्रह्माण्ड' हैं। ४. कहीं 'ईश्वर वा परमात्मा' उत्पत्ति, पालन, प्रलय कर्त्ता निराकार वा राम, कृष्णादि साकार अवतार 'ईश्वररूप' हैं। ५. कहीं कर्त्ता 'धनवत् व्यापक' 'व्यापक और न्यारा' 'स्वयंप्रकाशक' और 'साक्षी' 'सच्चिदानन्दरूप, सर्वशक्तिमान्, ज्ञानी, प्रेरक, अतिसूक्ष्म ज्योतिस्वरूप, असङ्ग, चेतन, परन्तु मायाको आधार देनेवाला सबका आप ही अधिष्ठान है'। ६. कहीं "माया (अज्ञान) सत्-असत्से विलक्षण अनिर्वचनीय मिथ्या (देखनेमात्र) तथा परमात्मामें इच्छा प्रकटानेवाली अचिन्त्य शक्तिवती है।" ७. जड़ माया और मायाका कार्य जगत् प्रवाहरूप अनादि मानके 'प्रलय और महाप्रलय' मानना। ८. ऊपर वातावरणमें रहनहार तत्त्वोंके अनेक त्रसरेणु, अणु, और परमाणुओंमें सूक्ष्म देहयुक्त मुक्त जीवोंका बासा तथा बहुत काल सुख भोगकर फिर बारम्बार 'पुनर्जन्म' मानना। ९. मनके संयोगसे नरदेहधारी, ज्ञान स्वरूप हंसमें ज्ञानकी उत्पत्ति मानना। १०. प्रकृतिकी समीपतासे

पुरुषका तिसमें प्रतिबिम्ब पड़कर चेतन पुरुषोंको 'अविवेक' और 'दुःखोंका कारण' ठहराना। ११. बुद्धिका 'प्रेरक ईश्वर' मानना। १२. वर्षा, रात्रि—दिन, तीन समय, छः ऋतु होने, तथा ग्रह, तारागणादि घूमने इत्यादि ब्रह्माण्डकी अनेक क्रियाओंको 'कर्त्ता' मानना। १३. देह, तत्त्व, इन्द्रिय, मन, चित्त, बुद्धि, वीर्य, शून्य, आनन्द, प्रकाशादि जड़ वस्तुओंको चेतन स्वरूप मानना। १४. 'बीज—वृक्ष न्याय,' 'अग्नि चिनगारियाँ न्याय' वत् अखण्ड चेतन जीवोंकी उत्पत्ति मानना। १५. घटाकाशवत् देहोपाधिसे अनेक चेतन जीव मानकर मुक्तिमें सर्व 'एक स्वरूप व्यापक' मानना। इस प्रकारसे अनेक भ्रमिक और नास्तिक गुरुवा लोगोंको श्रेष्ठ मानकर, उनके उपदेशरूप आवरणको मनुष्य छोड़ देवेंगे। अनन्तर यथार्थवक्ते सत्यन्यायी, पारखी सत्य उपदेशक सर्व श्रेष्ठ प्रत्यक्ष साधु—गुरुके वा श्रीसद्गुरुके सत्सङ्ग द्वारा चेतन, अविनाशी, सर्व जीव सत्य हैं। परन्तु बुद्धि द्वारा निश्चय करनेवाले मनुष्यरूप हंसजीव सबसे श्रेष्ठ हैं। देह तथा देहसे उत्पन्न कल्पना, मानना, भास, अध्यास, स्थूल—सूक्ष्म पञ्च विषयादि सर्व देह व्यवहार नाशवान् हैं। जब ऐसी पूर्णतासे परीक्षा दृष्टि करके बुद्धिसे मनुष्य सत्यबोध ग्रहण करेंगे, तब नरजीवोंका और शरीरोंका—"बीज—वृक्ष न्यायवत्" सर्व सुखोंके विशेष, सूक्ष्म अध्यासरूप बीजका और स्थूल देहरूप वृक्षोंका प्रवाहरूप सम्बन्ध जो अनादि कालसे चला आता है; सो छूट जायेगा। और वे जगत्में सबसे निराश होकर जीवन्मुक्त—स्थितिमें मनुष्यके शुद्ध रहनीसे विचरते रहेंगे। ऐसा जड़ाध्यासरूप आवरण अज्ञान छूट कर सत्य पारख बोधमें सदैव दृढ़ बुद्धि रहनेसे जीवन्मुक्त पारखी सन्त जड़ देह बन्धनसे मुक्त हो सकते हैं॥

ब्रह्मचर्य व्रतमें 'योगसूत्र साधनपादे' सूत्र—३० और ३२में❀ "यम और नियम" रखनेके लिये कहा है:—"१. अहिंसा = किसीसे बैर नहीं रखके हिंसाका त्याग करना। २. अस्तेय = चोरी त्यागना। ३. सत्य बोलना, और सत्य व्यवहार रखना। ४. ब्रह्मचर्य ‡, अर्थात् पूर्वके प्रश्न ११६ में कहे प्रमाणसे अष्ट मैथुनोंको जीतके रहना। और ५. अपरिग्रह = संग्रहका अभाव, अत्यन्त आसक्ति छोड़ कर अभिमान रहित वर्त्तना। ये पाँच 'यम' हैं॥ १. शौच = स्नानादि क्रियाओंसे पवित्र रहना। २. सन्तोष = हर्ष-शोक नहीं करना। ३. स्वाध्याय = पढ़ना और पढ़ाना। ४. तप = कष्टसे सेवा करके धर्मयुक्त कर्मका पालन। और ५. ईश्वर-प्रणिधान = प्रत्यक्ष ईश्वररूप श्रीसद्गुरुदेवकी भक्तिमें काया, वाचा, मन अर्पण करना; ये पाँच 'नियम' हैं॥"

मनुस्मृतिःके अध्याय २, श्लोक—१७७ से १८० तक लिखा † है:—

"शहद, मदिरा, मांस, गन्ध, माला, रस, स्त्री—पुरुषका सङ्ग, सब प्रकारकी खटाई, प्राणियोंकी हिंसा, अङ्गोंका मर्दन, बिना निमित्त लिङ्ग इन्द्रियका स्पर्श, अञ्जन, जूते, और छत्रको धारण,

---

❀ "अ[illegible] यमाः ॥३०॥" "शौच[illegible]—श्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥३२॥" पातञ्जलयोगदर्शन, साधनपाद—२।सूत्र—३०। ३२॥

‡ "कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा। सर्वत्र मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते॥
॥ गरुड़ पुराण, पूर्वार्द्ध, आचार०—२३८। ६॥

† श्लोकः—"वर्जयेन्मधु मांसं च गन्धं माल्यं रसान्स्त्रियः॥ शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम्॥ १७७॥ अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्र-धारणम्॥ कामं क्रोधं च लोभं च नर्त्तनं गीतवादनम्॥ १७८॥ द्यूतं च जनवादं च परीवादं तथानृतम्॥ स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च॥ १७९॥ एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित्॥ कामाद्धि स्कन्दयन्रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः॥ १८०॥" —मनुस्मृतिः, अध्याय—२। श्लोक—१७७—१८०॥

लोभ, काम, क्रोध, मोह, भय, शोक, हर्ष, द्वेष, नाच-गाना, बाजे बजाना, खेल, जिस किसीकी कथा, निन्दा, मिथ्या भाषण, स्त्रियोंका दर्शन, दूसरोंकी हानि इत्यादि कुकर्मोंको ब्रह्मचारी सदा छोड़ देवै। वह सर्वत्र एकाकी सोवै, वीर्य स्खलित (हस्त क्रियासे वीर्य गिराना) कभी न करै। जो कामनासे वह वीर्य स्खलित कर दे, तो जानो कि, उसने अपने ब्रह्मचर्यका नाश कर दिया ॥"

मनुस्मृतिःके द्वितीय अध्यायमें और कहा हैः—

"भवति भिक्षां देहि" ऐसा ❀ ब्रह्मचारी ब्राह्मण कह कर अपने जातिमें बहुत जनोंसे भिक्षा माँग लावै। क्षत्रिय "भिक्षां भवति देहि" और वैश्य "भिक्षां देहि भवति" ऐसे कहके भिक्षा माँग लावे। गुरुके पास शिष्य छोटा-सा आसन तथा शैय्यामें बैठे, परन्तु गुरुको देखके वह पाँव पसारना आदि न करै। वह गुरुकी आज्ञामें दिन-रात्रि बिताता रहै। वह गुरुका उपहास (निन्दा) न करै, अथवा गुरुकी निन्दा होती होवै, तो वह उसे सुने नहीं, वहाँसे चल धरै ॥"

वसिष्ठस्मृतिःके सप्तम अध्यायमें लिखा † हैः—

"ब्रह्मचारीने भिक्षा माँगके लाया हुआ अन्न, प्रथम सब गुरुदेवको अर्पण कर, आज्ञा ले, पीछेसे आप भोजन करै ॥"

❀ श्लोकः—"भवत्पूर्वंचरेद्भैक्ष्यमुपनीतो द्विजोत्तमः ॥ भवन्मध्यं तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम् ॥ ४९ ॥ नीचं शय्यासनं चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ ॥ गुरोस्तु चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत् ॥ १९८ ॥ नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम् ॥ न चैवास्यानुकुर्वीत गतिभाषितचेष्टितम् ॥ १९९ ॥ गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा वापि प्रवर्त्तते ॥ कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः ॥ २०० ॥"

॥ मनुस्मृतिः, अध्याय-२ । श्लोक-४९ । और श्लोक-१९८ से २०० तक ॥

† "सर्वभैक्ष्यं निवेद्य तदनुज्ञया भुंजीत ॥" —वसिष्ठ स्मृतिः, अध्याय-७ ॥

हारीतस्मृतिःके तृतीय अध्यायमें कहा ‡ हैः—

"ब्रह्मचारी मेखला (मूँजका करधना), दण्ड, कमण्डलु, मृगछाला रखके जनेऊ धारण करै। जीतेन्द्रिय रहके ग्राममें निवास करै। गुरु, गुरुके पुत्र, गुरुके शिष्य, अथवा गुरुकुलमें निष्ठा रखनेवाले ब्रह्मचारीको विवाह करना और संन्यास लेनेको कहा नहीं। ऐसे ब्रह्मचारी पुनर्जन्म रहित मुक्त हो जाते हैं।" ऐसा लिखा है; परन्तु सो अयुक्त है ॥

दक्षस्मृतिःके प्रथम अध्यायके अष्टम श्लोकमें "ब्रह्मचारी † दो प्रकारके कहे हैं। एक–उपकूर्वाणक = जो फिर गृहस्थाश्रम करै, और दूसरा–नैष्ठिक = जो जन्मसे लेकर मरण तक ब्रह्मचर्य ही में स्थित रहै ॥"

अब गृहस्थाश्रम विषय मनुस्मृतिःके तृतीय अध्यायके प्रथम श्लोक-से-श्लोक सात ❀ तक लिखे हैंः—"एक, दो वा चारोंवेद

---

‡ श्लोकः—"अजिने दंडकाष्ठं च मेखलाञ्चोपवीतकम् ॥ धारयेदप्रमत्तश्च ब्रह्मचारी समाहितः ॥ ६ ॥ अधीत्य च गुरोर्वेदान्वेदौ वा वेदमेव वा ॥ गुरवे दक्षिणां दद्यात्संयमी ग्राममावसेत् ॥ १२ ॥ तस्मिन्नेव नयेत्कालमाचार्य्ये यावदायुषम् ॥ तदभावे च तत्पुत्रे तच्छिष्ये वाथवा कुले ॥ १४ ॥ न विवाहो न संन्यासो नैष्ठिकस्य विधीयते ॥ इमं यो विधिमास्थाय त्यजेद्देहमतंद्रितः ॥ १५ ॥ नेह भूयोऽपि जायेत ब्रह्मचारी दृढव्रतः ॥ १६ ॥"

॥ हारीतस्मृतिः, अध्याय–३ । श्लोक–६ । १२ । १४ से १६ तक ॥

† "द्विविधो ब्रह्मचारी स्यादुपकुर्वाणको ह्यथ ॥ द्वितीयो नैष्ठिकश्चैव तस्मिन्नेव व्रते स्थितः ॥ ८ ॥" —दक्षस्मृतिः, अध्याय–१ । श्लोक–८ ॥

❀ श्लोकः—"[illegible] चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम् ॥ तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा ॥ १ ॥ वेदानधीत्यवेदौ वा वेदं वापि यथा क्रमम् ॥ अविप्लुत-ब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत् ॥ २ ॥ तंप्रतीतं स्वधर्मेण ब्रह्मदायहरं पितुः ॥

पढ़कर ब्रह्मचर्य खण्डित न हुआ ब्रह्मचारी गुरुकी गौदानादि विधिसे पूजन करै। फिर आपके गृहमें समावर्त्तन विधि (स्नानादि विधि) करके, शुभ लक्षण युक्त अपने जातिकी कन्यासे वह विवाह करै। परन्तु 'माता' और 'पिता' के गोत्रकी वह न हो, विवाहमें दश कुल त्याग देने चाहिये ! ॥"

गौतमस्मृतिःके चतुर्थ अध्यायमें ❀, और वसिष्ठस्मृतिःके अष्टम अध्यायमें † कहा है:—"पिताके बन्धुओंसे सातवीं पीढ़ीके ऊपर और माताके बन्धुओंकी पाँचवीं पीढ़ीके ऊपरकी कन्यासे पुरुष विवाह करै ॥"

शङ्खस्मृतिःके चतुर्थ अध्यायमें अष्ट प्रकारके विवाह ‡ कहे हैं:—

स्त्रग्विणं तल्प आसीन मर्हयेत्प्रथमं गवां ॥ ३ ॥ गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथा विधि ॥ उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥ ४ ॥ असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ॥ सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥ ५ ॥ महान्त्यपि समृद्धानि गोजाविधनधान्यतः ॥ स्त्रीसंबन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥ ६ ॥ हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम् ॥ क्षय्यामयाव्य-पस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च ॥७॥" –मनुस्मृतिः, अध्याय ३ । श्लोक–१ से ७ तक ॥

❀ "ऊर्ध्वं सप्तमात् [illegible] मातृबन्धुभ्यः पञ्चमात् ॥"

॥ गौतमस्मृतिः, अध्याय–४ । १ ॥

† "पञ्चमीं मातृबन्धुभ्यः सप्तमीं पितृबन्धुभ्यः ॥"–वसिष्ठस्मृतिः, अध्याय–८ । १ ॥

‡ "विंदेत विधिवद्भार्यामसमानार्षगोत्रजाम् ॥ मातृतः पंचमीं चापि पितृतस्त्वथ सप्तमीम् ॥ १ ॥ ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः ॥ गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ २ ॥ एभ्यो म्मधर्म्यास्तु चत्वारः पूर्वं ये परिकीर्तिताः ॥ गान्धर्वो राक्षसश्चैव क्षत्रियस्य तु शस्यते ॥ ३ ॥ संप्रार्थितः प्रयत्नेन ब्राह्मस्तु परिकीर्तितः ॥ यज्ञस्थायर्त्विजे दैव आदायार्षस्तु गोद्वयम् ॥ ४ ॥ प्रार्थितः संप्रदानेन प्राजापत्यः प्रकीर्तितः ॥ आसुरो द्रविणादानाद्गान्धर्वः समयान्मिथः ॥ ५ ॥ राक्षसो युद्धहरणात्पैशाचः कन्यकाच्छलात् ॥ ६ ॥

"१. बड़े प्रयत्न और प्रार्थनासे विवाह हो, वह "ब्राह्म विवाह" है। यही विवाह सब गृहस्थोंको करना उचित है। २. कन्या यज्ञमें बैठ कर वहाँके ब्राह्मणोंमें किसीको दी जाय, उसे "दैव विवाह" कहते हैं। ३. बर से दो गौवें लेके जो कन्या ब्याही जावै, वह "आर्ष विवाह" कहाता है। ४. धर्मसे चलने निमित्त बर की प्रार्थना करके कन्या उसे दे देना, सो "प्राजापत्य विवाह" है। ऐसे चार 'सुर-विवाह' (धर्म विवाह) कहे हैं। ५. धन लेके विवाह करना, वह "आसुर विवाह" है, और ६. कन्या और बर की सम्मतिसे विवाह करना, उसे "गान्धर्व विवाह" कहते हैं। ७. युद्धमें हरणकी हुई कन्याके साथ विवाह करना, "राक्षस विवाह" है, और ८. छल—कपट करके विवाह करना, सो "पैशाच विवाह" कहाता है ॥"

मनुस्मृतिःके अध्याय ३, श्लोक—२४ में कहा ❀ हैः—
"ब्राह्मणको प्रथम 'चार विवाह,' क्षत्रियको 'एक राक्षस विवाह' और वैश्य तथा शूद्रको 'आसुर विवाह' करना श्रेष्ठ है ॥"

मनुस्मृतिःके अध्याय ९, श्लोक—९४ में लिखा † हैः—
"३० वर्षोंका पुरुष, १२ वर्षोंकी कन्यासे ब्याहै, और २४ वर्षोंका पुरुष ८ वर्षोंकी कन्यासे ब्याहै; इससे विरुद्ध अल्प आयुमें ब्याह करनेसे धर्म बिगड़ता है ॥"

॥ शङ्खस्मृतिः, अध्याय—४। श्लोक—१ से ६ तक ॥ मनुस्मृतिः, अध्याय— ३। श्लोक—२१ से ३४ तक भी उक्त आठ विवाहोंके लक्षण कहा है ॥

❀ "चतुरो ब्राह्मणस्याद्यान्प्रशस्तान्कवयो विदुः ॥ राक्षसं क्षत्रियस्यैकमासुरं वैश्यशूद्रयोः ॥ २४ ॥" —मनुस्मृतिः, अध्याय ३। श्लोक—२४ ॥

† "त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम् ॥ त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः ॥ ९४ ॥"—मनुस्मृतिः, अध्याय—९। श्लोक—९४ ॥

मनुस्मृतिःके अध्याय १, श्लोक–८८ से ९१ तक ❀ लिखे हैं:–

"अध्ययन–अध्यापन = वेद पढ़ना–पढ़ाना; यजन–याजन = 'होम और यज्ञ' करना–कराना; दान–प्रतिग्रह = दान देना, और दान लेना; ये नित्य षट् कर्मोंका अधिकार ब्राह्मणोंको है। अध्ययन, यजन, दान, प्रजापालन, विषयोंमें आसक्ति रहित रहने, ये क्षत्रियोंके कर्म हैं। अध्ययन, यजन, दान, पशुओंकी रक्षा, व्यापार, खेती करने, ब्याज लेने, ये वैश्योंके कर्म हैं। दान देने, तीनों वर्णोंकी सेवा, निन्दा रहित रहने, ये शूद्रोंके कर्म हैं॥"

श्लोकः—"पञ्च सूना गृहस्थस्य, चुल्ली पेषण्युपस्करः॥
कण्डनी चोदकुम्भश्च, बध्यते यास्तु वाहयन्॥ ६८॥
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः, पितृयज्ञस्तु तर्पणम्॥
होमो दैवो बलिर्भौतो, नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥ ७०॥"
॥ मनुस्मृतिः, अध्याय ३। श्लोक–६८। ७०॥

अर्थः—"१. चूल्हा, २. चक्की, ३. झाड़ू, ४. उखली–मूसल, और ५. जलका घड़ा, ये पाँच स्थान गृहस्थके हिंसाके हैं॥ ६८॥ उनसे होनेवाले पापोंसे निवृत्तिके लिए वेदादिको पढ़ना–पढ़ाना, सो "ब्रह्मयज्ञ" है। जलसे तर्पण, सो "पितृयज्ञ" है। अग्निमें चावल, घृतादिकोंसे बलि वैश्वदेव = होम करना, अथवा नित्य शाम–सबेरे अग्निमें हवन करना, सो "देवयज्ञ" है। दुर्बल

❀ "अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा॥ दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥ ८८॥ प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च॥ विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः॥ ८९॥ पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च॥ वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिरेव च॥ ९०॥ एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्॥ एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया॥ ९१॥"
॥ मनुस्मृतिः, अध्याय–१। श्लोक–८८ से ९१ तक॥

मनुष्य या पशु, पक्षी, कृमि, कीट, चींटी आदि जीवोंको अन्न देना, सो "भूतयज्ञ" कहाता है। अतिथि, अभ्यागतको अन्नसे सत्कार करना, सो "मनुष्ययज्ञ" है। ऐसे पाँच यज्ञ ब्राह्मण, क्षत्रिय, ये द्विजातिको नित्य करने चाहिये ! ॥ ७० ॥"

त्रिकाल स्नान, सन्ध्या, पूजा, जप,—ये भी और नित्य कर्म द्विजातिको कहे हैं ॥

मनुस्मृतिःके तृतीय अध्यायमें कहा ❀ है:—"स्त्री रजस्वला होने बाद प्रथम चार और ग्यारवीं, तेरहवीं रात्रि, ऐसे छः रात्रियाँ छोड़कर दश रात्रियाँ मैथुनमें प्रशस्त (योग्य) हैं। क्योंकि उन्हीं रात्रियोंमें स्त्रियोंको गर्भकी स्थापना होती है। परन्तु रोगी शरीर, पर्वणी, व्यतिपात, श्राद्धदिन, कुयोग, ये सब रात्रियाँ वर्जित हैं। 'सम' रात्रियाँ, अर्थात् छठी, आठवीं, दशवीं, बारहवीं, इन रात्रियोंमें पुरुष स्त्री-सम्भोग करै, तो पुत्र उत्पन्न होता है। और इससे विपरीत 'विषम' रात्रियाँ, अर्थात् पाँचवीं, सातवीं आदि रात्रियोंमें कन्या उत्पन्न होती है। परन्तु स्त्रीको गर्भ स्थापन हुए पीछे और सन्तति होने बाद मैथुनको एक वर्ष तक त्याग देना चाहिये;" ऐसा लिखा है ॥ और:—

❀ "तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या ॥ त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः ॥ ४७ ॥ युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ॥ तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्तवे स्त्रियम् ॥ ४८ ॥ पुमान्पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः ॥ समे पुमान्पुंस्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्ययः ॥ ४९ ॥ निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन् ॥ ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥ ५० ॥—मनुस्मृतिः, अध्याय–३। श्लोक–४७ से ५० तक ॥

गर्भ उपनिषद्में कहा ❀ हैः—"स्त्रीका रज (रक्त) विशेष होनेसे 'कन्या,' और पुरुषका वीर्य गर्भ स्थापन समय अधिक होनेसे 'पुत्र' पैदा होता है ॥" अथवा अध्यासवश ही जीव स्त्री–पुरुषोंका शरीर धारण कर लेता है; ऐसा यथार्थ मानना ही ठीक है ॥

श्लोकः—'वैवाहिको विधिः स्त्रीणां, संस्कारो वैदिकः स्मृतः ॥
पतिसेवा गुरौ वासो, गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया ॥ ६७ ॥"
॥ मनुस्मृतिः, अध्याय–२ । श्लोक–६७ ॥

अर्थः—"स्त्रियोंको 'विवाहविधि' यह 'जनेऊ' समान संस्कार है । 'पतिकी सेवा' ही वेदाध्ययनरूप गुरुकुलमें निवास है । और घरका 'काम–काज' करना यही प्रातः-सायं होम (अग्निकी सेवा) है ॥

स्त्रियाँ और शूद्रोंको वेद पढ़नेका अधिकार नहीं † । स्त्रीको उपदेश देनेमें पति ही गुरु (आचार्य) हैं । और ब्राह्मणादि गुरु (आचार्य) शूद्रोंको धर्म नीतिका उपदेश करें ‡ ॥"

पूर्वके प्रश्न ११६ के श्रुति प्रमाणसे एक ही पुत्र स्त्रीमें

❀ "पितू रे[illegible] रेतोऽतिरेकात्स्त्री उभयोर्बीजतुल्यत्वान्नपुंसको भवति ॥" गर्भोपनिषद्, मन्त्र–३ ॥

† "स्त्रीशूद्रौनाधीयातामिति श्रुतेः ॥"

‡ "उपनीय तुः यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्द्विजः ॥ सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥ १४० ॥ एकदेशं तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुनः ॥ योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते ॥१४१॥ निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि ॥ संभावयति चान्नेन स विप्रो गुरुरुच्यते ॥ १४२ ॥"—मनुस्मृतिः, अध्याय–२ । श्लोक–१४०से–१४२ तक ॥–जो ब्राह्मण शिष्यका यज्ञोपवीत करके 'कल्प' कहिये यज्ञविधि और 'रहस्य' कहिये उपनिषद् सहित सब वेदकी शाखाको पढ़ाता है, उसको 'आचार्य्य' कहते हैं ॥ १४० ॥ वेदके एकदेश अर्थात् मन्त्र वा ब्राह्मणको और वेदके अङ्ग व्याकरण आदिको जीविकाके लिए जो पढ़ाता है, वह

उत्पन्न हुए पीछे मैथुन कर्म बिलकुल त्यागनेको कहा है। परन्तु विष्णुस्मृतिःके प्रथम अध्यायमें लिखा ❀ है:—"चौथा पुत्र स्त्रीमें उत्पन्न हो गये उपरान्त गृहस्थ होके भी जान बूझके ब्रह्मचर्य ही रक्खे॥

मनुस्मृतिःमें लिखा † है:—"ब्राह्मण चार प्रकारके होते हैं। एक, आत्मज्ञानपर, दूसरे, प्राजापत्यादि तपःप्रधान = तप करनेवाले, तीसरे, तप और अध्ययनपर, और चौथे, यागादिपर = यज्ञादि करनेवाले, ऐसे जानना! ॥"

मनुस्मृतिःके अध्याय ४, श्लोक–५। ६ और ७ में लिखा ‡ है:—

"ब्राह्मण गृहस्थोंकी शरीर पोषण वृत्ति इस प्रकार है—एक,

'उपाध्याय' कहा जाता है॥ १४१ ॥ जो गर्भाधान आदि संस्कारोंको विधिपूर्वक करता है, और अन्नसे बढ़ाता है, वह ब्राह्मण 'गुरु' कहा जाता है। गर्भाधान करनेसे यहाँ पिता ही को गुरु कहा है॥ १४२ ॥ "यदि स्त्री यद्यवरजः श्रेयः किंचित्समाचरेत् ॥ तत्सर्वमाचरेद्युक्तो यत्र वास्य रमेन्मनः ॥ २२३ ॥" मनुस्मृतिः, अध्याय–२ ॥—जो स्त्री अथवा शूद्र कुछ 'श्रेय' अर्थात् अच्छा काम करै, तो उसको भी मन लगाके करै; अथवा शास्त्र करके नहीं मने किये हुए जिस काममें इसका मन लगे, उसको भी करै॥ २२३ ॥

❀ "पुत्रे जातेऽनृतौ गच्छन्संप्रदुष्येत्सदा गृही ॥ चतुर्थे ब्रह्मचारी च गृहे तिष्ठन्न विस्मृतः ॥ २६ ॥"—विष्णुस्मृतिः, अध्याय–१। श्लोक–२६ ॥

† "ज्ञाननिष्ठा द्विजाः केचित्तपोनिष्ठास्तथापरे ॥ तपःस्वाध्यायनिष्ठाश्च कर्मनिष्ठास्तथापरे ॥ १३४ ॥" मनु०, अध्याय–३ ॥ "ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः ॥ कृतबुद्धिषु कर्त्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः ॥९७॥" मनुस्मृतिः, अध्याय–१। श्लोक–९७॥

‡ "ऋतमुञ्छशिलंज्ञेयममृतं स्यादयाचितम् ॥ मृतं तु याचितं भैक्षं प्रमृतं कर्षणं स्मृतम् ॥ ५ ॥ सत्यानृतं तु वाणिज्यं तेन चैवापि जीव्यते ॥ सेवा श्ववृत्तिराख्याता तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ ६ ॥ कुशूलधान्यको वा स्यात्कुम्भीधान्यक एव वा ॥ त्र्यहैहिको वापि भवेदश्वस्तनिक एव वा ॥ ७ ॥"

॥—मनुस्मृतिः, अध्याय–४। श्लोक–५ से ७ तक ॥

"शिलोञ्छ वृत्ति" = खेतोंमें वा रास्तोंमें पड़े हुए अन्नको ब्राह्मण बीन कर लावै, उसे "ऋत" कहा है। दूसरी, "अयाचित वृत्ति" = बिना माँगे बैठे जगह अन्नकी प्राप्ति, उसे "अमृत" कहते हैं। तीसरी, माँगी हुई भिक्षा "मृत वृत्ति" कहाती है। चौथी, खेती करना, यह "प्रमृत वृत्ति" कहाती है। पाँचवीं, बनियेकी वृत्ति = "सत्यानृत वृत्ति" है। छट्ठी, सेवा वृत्तिको = "कुत्तेकी वृत्ति" कहा है, वह नौकरी है; उसे ब्राह्मण वर्जित करै। "कुशूल धान्य" = तीन वर्षोंका अन्न संग्रह; "कुम्भी धान्य" = एकवर्षके निर्वाह योग्य धान्य, "त्र्यहैहिक" = तीन दिनका अन्न; "सद्यःप्रक्षालक" = श्वस्तनिक एक दिनका अन्न, संग्रह करनेवाले ऐसे चार प्रकारके ब्राह्मण श्रेष्ठ कहाते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, इन गृहस्थ द्विजोंने—गर्भाधान, मुण्डन, यज्ञोपवीत = जनेऊ पहिरनेकी विधि, विवाह, मरण बाद उत्तर क्रियादि १६ संस्कार ❀ करने चाहिये। गृहस्थने प्रतिदिन वा

❀ हिन्दू धर्मशास्त्रके अनुसार द्विजातियोंके कुल १६ संस्कार माने गये हैं। यथाः—"गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो जातकर्म च ॥ नामक्रियानिष्क्रमणेऽन्नाशनं वपनक्रिया ॥ १३ ॥ कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारम्भक्रियाविधिः ॥ केशान्तः स्नानमुद्वाहो विवाहाग्निपरिग्रहः ॥ १४ ॥ त्रेताग्निसंग्रहश्चेति संस्काराः षोडश स्मृताः ॥ नवैताः कर्णवेधान्ता मन्त्रवर्जं क्रियाः स्त्रियाः ॥ १५ ॥"

॥ —व्यासस्मृतिः, अध्याय–१ । श्लोक–१३–१५ ॥

अर्थः—१ गर्भाधान, २ पुंसवन, ३ सीमन्त, ४ जातकर्म, ५ नामकरण, ६ निष्क्रमण, ७ अन्नप्राशन, ८ मुण्डन, ॥ १३ ॥ ९ कर्णवेध, १० यज्ञोपवीत, ११ वेदारम्भ, १२ केशान्त (ब्रह्मचर्य समाप्त होनेपर १६वें वर्षमें क्षौर), १३ स्नान (समावर्त्तन अर्थात् ब्रह्मचर्यकी समाप्ति करके यथाशास्त्र स्नान करना), १४ विवाह, १५ विवाहकी अग्निका ग्रहण, ॥ १४ ॥ १६ त्रेता (दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य, और आहवनीय इन तीन) अग्नि (अग्निहोत्र) का ग्रहण; यह

हरअमावास्याके दिन और वार्षिक श्राद्ध † यथाविधि करना, ऐसा लिखे हैं ॥"

परन्तुः—मनुस्मृतिःके अध्याय ५, श्लोक-२८ । ४१ और ३५ में लिखे ❀ हैं:—"ब्रह्माने ही भक्षणके योग्य पशु, पक्षी इत्यादि जीव और उन्हें भक्षण करनेवाले मनुष्य उत्पन्न किये हैं । मधुपर्क पूजाविधि, यज्ञ और श्राद्ध, इनमें विधिसे पशु मारकर मांस खानेको मनुजी कहते हैं । श्राद्ध वा मधुपर्कमें यथाशास्त्रसे जो मांसको नहीं खाता, सो २१ जन्म तक पशुयोनिमें जन्मता है ॥" ऐसा कहा है, किन्तु यह कथन अन्यायका है ॥

वहीं मनुस्मृतिःके पञ्चम अध्यायमें ‡ अनेक पशु और पक्षियोंका मांस खानेमें विधि बता करके स्वर्गादि प्राप्तिका बड़ा फल बताया है; ऐसा मांस खानेपर जोर दिया है, सो अयुक्त है; मांस भक्षकोंका वैसा कथन मानने योग्य नहीं है ॥

गर्भाधानादि सोलह संस्कार कहे हैं । कर्णवेधतक जो नौ संस्कार हैं, वह स्त्रीके बिना मन्त्र होते हैं ॥ १५ ॥

[मनुस्मृतिः, अध्याय २ में भी इनका वर्णन किया है ।] ॥

† "पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रश्चेन्दुक्षयेऽग्निमान् ॥ पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यान्मासानुमासिकम् ॥ १२२ ॥" "सावित्रान् शान्तिहोमांश्च कुर्यात् पर्वसु नित्यशः ॥ पितृंश्चैवाष्टकास्वर्चेन्नित्यमन्वष्टकासु च ॥ १५० ॥"

॥ —मनुस्मृतिः, अध्याय—३ । श्लोक—१२२ ॥ अध्याय—४ । श्लोक—१५० ॥

❀ "प्राणस्यान्नमिदं सर्वं प्रजापतिरकल्पयत् ॥ स्थावरं जङ्गमं चैव सर्वं प्राणस्य भोजनम् ॥ २८ ॥ मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि ॥ अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः ॥ ४१ ॥ नियुक्तस्तु यथान्यायं यो मांसं नात्ति मानवः ॥ स प्रेत्य पशुतां याति संभवानेकविंशतिम् ॥ ३५ ॥" मनु०, अ० ५ ॥

‡ "यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥ यज्ञस्य भूत्यै सर्वस्यतस्माद्यज्ञे वधोऽवधः ॥ ३९ ॥ ओषध्यः पशवो वृक्षास्तिर्यञ्चः पक्षिणस्तथा ॥ यज्ञार्थं

व्यासस्मृतिःके अध्याय ३, श्लोक—५५ और ५६ में लिखा ‡ है:—"ब्राह्मण यज्ञ और श्राद्धमें मांस भोजन न करै, तो पतित (पापी) बनता है। क्षत्रिय शिकार करके लाये हुए मांसको पितर, देवताओंका पूजन कर उनमेंसे आप भी भोजन करै, और उनमेंसे बारहवें भागको मोल लेकर वैश्य भी आप खा ले, तो अधर्म नहीं है ॥"

इन प्रमाणोंसे ब्रह्मवेत्ता कर्मी ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य, ये सब पूर्वमें मांस भक्षक प्रत्यक्ष 'राक्षस या पशुहिंसक काल' बने थे। वैसे ही उनके वंशधर अभी भी जीव हिंसक काल बने ही हैं। आपके समान सर्व देहधारी जीवोंके दुःखोंको उन्होंने नहीं जाना। अब तक वैसा ही विधि और अविधिसे पशु आदिकोंकी हिंसा करके मांस खानेकी चाल चली ही आती है ॥

मनुस्मृतिःके अध्याय २, श्लोक—११ में लिखा ❀ है:—"श्रुतिः—चारों वेद, और स्मृतियोंके वचनोंको नहीं माननेवाले नास्तिक, वेद द्रोही, निन्दक हैं; वे साधु भी होवें, बाहर निकाल देने चाहिये ! ॥"

इस प्रमाणसे ब्राह्मण लोग वेदों तथा शास्त्रोंके पक्षपाती बने थे, और

निधनं प्राप्ताः प्राप्नुवन्त्युत्सृतीः पुनः ॥ ४० ॥" इत्यादि—॥

॥ —मनुस्मृतिः, अध्याय—५ । श्लोक— ३९ । ४० ॥

‡ "नाश्नीयाद्ब्राह्मणो मांसमनियुक्तः कथंचन। क्रतौ श्राद्धे नियुक्तो वा अनश्नन्पतति द्विजः ॥ ५५ ॥ मृगयोपार्जितं मांसमभ्यर्च्य पितृदेवताः ॥ क्षत्रियो द्वादशोनं तत्क्रीत्वा वैश्योऽपि धर्मतः ॥५६॥"व्यासस्मृतिः,अ० ३ । श्लोक—५५ । ५६॥

❀ "योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः ॥ स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ॥ ११ ॥" —मनुस्मृतिः, अध्याय—२ । श्लोक—११ ॥

अभी हैं। वे सत्य न्यायसे यथार्थ विचार–विवेक करते ही नहीं॥

मनुस्मृतिःके अध्याय ८, श्लोक–२७१ और २७२ में ❀ लिखा हैः—"जो शूद्र होकर ब्राह्मणको, 'रे! तू!' ऐसे वचन कहै, तो उसके मुखमें तपाया हुआ लोहेका दश अङ्गुलका खीला राजा डरवावे॥ और शूद्र थोड़ा ज्ञान पाय ब्राह्मणको "धर्मका आचरण कर!" ऐसे कहे, तो उसके 'मुखमें' और 'कानोंमें' जरता हुआ तेल राजा डरवावै॥"

मनुस्मृतिःके अध्याय ११, श्लोक–१३५से १४४ तक † लिखे हैंः—

❀ "नामजातीग्रहं त्वेषामभिद्रोहेण कुर्वतः॥ निक्षेप्योऽयोमयः शङ्कुर्ज्वल–न्नास्ये दशांगुलः॥ २७१॥ धर्मोपदेशं दर्पेण विप्राणामस्य कुर्वतः॥ तप्तमासेचयेत्तैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः॥ २७२॥"

॥ –मनुस्मृतिः, अध्याय–८। श्लोक–२७१। २७२॥

† "घृतकुम्भं वराहे तु तिलद्रोणं तु तित्तिरौ॥ शुके द्विहायनं वत्सं क्रौंचं हत्वा त्रिहायणम्॥ १३५॥ हत्वा हंसं बलाकां च बकं बर्हिणमेव च॥ वानरं श्येनभासौ च स्पर्शयेद्ब्राह्मणाय गाम्॥ १३६॥ वासो दद्याद्धयं हत्वा पञ्च नीलान्वृषान्गजम्॥ अजमेषावनड्वाहं खरं हत्वैकहायनम्॥ १३७॥ क्रव्यादांस्तु मृगान्हत्वा धेनुं दद्यात्पयस्विनीम्॥ अक्रव्यादान्वत्सतरीनुष्ट्रं हत्वा तु कृष्णलम्॥१३८॥ जीनकार्मुकबस्तावीन्पृथग्दद्याद्विशुद्धये॥ चतुर्णामपि वर्णानां नारीर्हत्वाऽनव–स्थिताः॥ १३९॥ दानेन वधनिर्णेकं सर्पादीनामशक्नुवन्॥ एकैकशश्चरे–त्कृच्छ्रं द्विजः पापापनुत्तये॥ १४०॥ अस्थिमतां तु सत्त्वानां सहस्रस्य प्रमापणे॥ पूर्णे चानस्यनस्थ्नां तु शूद्र हत्याव्रतंचरेत्॥ १४१॥ किञ्चिदेव तु विप्राय दद्यादस्थिमतां वधे॥ अनस्थ्नां चैव हिंसायां प्राणायामेन शुद्धयति॥ १४२॥ फलदानां तु वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्छतम्॥ गुल्मवल्लीलतानां च पुष्पितानां च वीरुधाम्॥ १४३॥ अन्नाद्यजानां सत्त्वानां रसजानां च सर्वशः॥ फलपुष्पोद्भ–वानां च घृतप्राशो विशोधनम्॥ १४४॥

॥ –मनुस्मृतिः, अध्याय–११। श्लोक–१३५ से १४४ तक॥

"सूवर, बकरा, गदहा इत्यादि पशु; और मोर, तीतर, तोता इत्यादि पक्षीकी हिंसा करनेवाले मनुष्य, ब्राह्मणोंको पयार, घी, तिल, बछड़ा, गऊ, बैल, वस्त्र इत्यादि दान करें, तो पापोंसे वे निवृत्त हो जावेंगे ॥

मनुस्मृतिःके अध्याय ११, श्लोक–१४२ और १४४ ❀ में लिखे हैं:—"जूँवाँ, खटमलादि प्रत्येकके वधमें प्राणायाम और अन्न, गूड़ादि रस, गूलरके फल और महुवादि फूलोंमेंके प्राणियोंके वधमें 'घी खाना' पापका शोधन है ॥"

ऐसे पक्षपाती, आपस्वार्थी, (अपस्वार्थी), अधर्मी, अन्यायी ब्राह्मण बने थे, और अभी बने हैं। साँच–झूठका विवेक वे करते ही नहीं हैं ॥

मनुस्मृतिःके ३ । ४ । ५ । ११ अध्यायोंमें और भी लिखे † हैं:—"गृहस्थने रजस्वलागमन, अथवा परस्त्री, वेश्या,

---

❀ यह दोनों श्लोक, पृष्ठ ४८४ के टिप्पणीमें आ चुका है, वहाँ देखिये ! ॥

† "नोपगच्छेत्प्रमत्तोऽपि स्त्रियमार्तवदर्शने ॥ समानशयने चैव न शयीत तया सह ॥ ४० ॥" —मनुस्मृतिः, अध्याय–४ । श्लोक–४० ॥ "अमानुषीषु पुरुषउदक्यायामयोनिषु ॥ रेतःसिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥ ॥ १७४ ॥ [illegible] भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च ॥ पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात्साम्यं तु गच्छति ॥१७६॥ —मनुस्मृतिः,अध्याय–११ । श्लोक–१७४ । १७६॥ "न कन्यायाः पिता विद्वान्गृह्णीयाच्छुल्कमण्वपि ॥ गृह्णञ्छुल्कं हि लोभेन स्यान्नरोऽपत्यविक्रयी ॥ ५१ ॥ स्त्रीधनानि तु ये मोहादुपजीवन्ति बान्धवाः ॥ नारीयानानि वस्त्रं वा ते पापा यान्त्यधोगतिम् ॥ ५२ ॥" "ये स्तेनपतितक्लीबा ये च नास्तिकवृत्तयः ॥ तान्हव्यकव्ययोर्विप्राननर्हान्मनुरब्रवीत् ॥ १५० ॥" ॥ —मनुस्मृतिः,अध्याय–३ । श्लोक–५१ । ५२ । और १५० ॥ "नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित् ॥ न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥४८॥ समुत्पत्तिं च मांसस्य वधबन्धौ च देहिनाम् ॥ प्रसमीक्ष्य निवर्तेत सर्वमांसस्य

अभी हैं। वे सत्य न्यायसे यथार्थ विचार–विवेक करते ही नहीं॥

मनुस्मृतिःके अध्याय ८, श्लोक–२७१ और २७२ में ❀ लिखा हैः—"जो शूद्र होकर ब्राह्मणको, 'रे! तू!' ऐसे वचन कहै, तो उसके मुखमें तपाया हुआ लोहेका दश अङ्गुलका खीला राजा डरवावे॥ और शूद्र थोड़ा ज्ञान पाय ब्राह्मणको "धर्मका आचरण कर!" ऐसे कहे, तो उसके 'मुखमें' और 'कानोंमें' जरता हुआ तेल राजा डरवावै॥"

मनुस्मृतिःके अध्याय ११, श्लोक–१३५से १४४ तक † लिखे हैः—

❀ "नामजातीग्रहं त्वेषामभिद्रोहेण कुर्वतः॥ निक्षेप्योऽयोमयः शङ्कुर्ज्वलन्नास्ये दशांगुलः॥ २७१॥ धर्मोपदेशं दर्पेण विप्राणामस्य कुर्वतः॥ तप्तमासेचयेत्तैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः॥ २७२॥"

॥ –मनुस्मृतिः, अध्याय–८। श्लोक–२७१। २७२॥

† "घृतकुम्भं वराहे तु तिलद्रोणं तु तित्तिरौ॥ शुके द्विहायनं वत्सं क्रौंचं हत्वा त्रिहायणम्॥ १३५॥ हत्वा हंसं बलाकां च बकं बर्हिणमेव च॥ वानरं श्येनभासौ च स्पर्शयेद्ब्राह्मणाय गाम्॥ १३६॥ वासो दद्याद्धयं हत्वा पञ्च नीलान्वृषान्गजम्॥ अजमेषावनड्वाहं खरं हत्वैकहायनम्॥ १३७॥ क्रव्यादांस्तु मृगान्हत्वा धेनुं दद्यात्पयस्विनीम्॥ अक्रव्यादान्वत्सतरीमुष्ट्रंहत्वा तु कृष्णलम्॥१३८॥ जीनकार्मुकबस्तावीन्पृथग्दद्याद्विशुद्धये॥ चतुर्णामपि वर्णानां नारीर्हत्वाऽनवस्थिताः॥ १३९॥ दानेन वधनिर्णेकं सर्पादीनामशक्नुवन्॥ एकैकसश्चरेत्कृच्छ्रं द्विजः पापापनुत्तये॥ १४०॥ अस्थिमतां तु सत्त्वानां सहस्रस्य प्रमापणे॥ पूर्णे चानस्यनस्थ्नां तु शूद्र हत्याव्रतंचरेत्॥ १४१॥ किञ्चिदेव तु विप्राय दद्यादस्थिमतां वधे॥ अनस्थ्नां चैव हिंसायां प्राणायामेन शुद्ध्यति॥ १४२॥ फलदानां तु वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्छतम्॥ गुल्मवल्लीलतानां च पुष्पितानां च वीरुधाम्॥ १४३॥ अन्नाद्यजानां सत्त्वानां रसजानां च सर्वशः॥ फलपुष्पोद्भवानां च घृतप्राशो विशोधनम्॥ १४४॥

॥ –मनुस्मृतिः, अध्याय–११। श्लोक–१३५ से १४४ तक॥

"सूवर, बकरा, गदहा इत्यादि पशु; और मोर, तीतर, तोता इत्यादि पक्षीकी हिंसा करनेवाले मनुष्य, ब्राह्मणोंको पयार, घी, तिल, बछड़ा, गऊ, बैल, वस्त्र इत्यादि दान करें, तो पापोंसे वे निवृत्त हो जावेंगे ॥

मनुस्मृतिःके अध्याय ११, श्लोक–१४२ और १४४ ❀ में लिखे हैं:—"जूँवाँ, खटमलादि प्रत्येकके वधमें प्राणायाम और अन्न, गूड़ादि रस, गूलरके फल और महुवादि फूलोंमेंके प्राणियोंके वधमें 'घी खाना' पापका शोधन है ॥"

ऐसे पक्षपाती, आपस्वार्थी, (अपस्वार्थी), अधर्मी, अन्यायी ब्राह्मण बने थे, और अभी बने हैं। साँच–झूठका विवेक वे करते ही नहीं हैं ॥

मनुस्मृतिःके ३ । ४ । ५ । ११ अध्यायोंमें और भी लिखे † हैं:—"गृहस्थने रजस्वलागमन, अथवा परस्त्री, वेश्या,

---

❀ यह दोनों श्लोक, पृष्ठ ४८४ के टिप्पणीमें आ चुका है, वहाँ देखिये ! ॥

† "नोपगच्छेत्प्रमत्तोऽपि स्त्रियमार्तवदर्शने ॥ समानशयने चैव न शयीत तया सह ॥ ४० ॥" —मनुस्मृतिः, अध्याय–४ । श्लोक–४० ॥ "अमानुषीषु पुरुषउदक्यायामयोनिषु ॥ रेतःसिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥ ॥ १७४ ॥ चण्डालान्त्यस्त्रियोगत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च ॥ पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात्साम्यं तु गच्छति ॥१७६॥ —मनुस्मृतिः, अध्याय–११ । श्लोक–१७४ । १७६॥ "न कन्यायाः पिता [illegible] ॥ गृह्णञ्छुल्कं हि लोभेन स्यान्नरोऽपत्यविक्रयी ॥ ५१ ॥ स्त्रीधनानि तु ये मोहादुपजीवन्ति बान्धवाः ॥ नारीयानानि वस्त्रं वा ते पापा [illegible] ॥ ५२ ॥" "ये स्तेनपतितक्लीबा ये च नास्तिकवृत्तयः ॥ [illegible] ॥ १५० ॥" ॥ —मनुस्मृतिः, अध्याय–३ । श्लोक–५१ । ५२ । और १५० ॥ "नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित् ॥ न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥४८॥ समुत्पत्तिं च मांसस्य वधबन्धौ च देहिनाम् ॥ प्रसमीक्ष्य निवर्तेत सर्वमांसस्य

भक्षणात् ॥ ४६ ॥" —मनुस्मृतिः, अध्याय–५ । श्लोक–४८ । ४६ ॥ "यो राज्ञः प्रतिगृह्णाति लुब्धस्योच्छास्त्रवर्तिनः॥ स पर्यायेण यातीमान्नरकानेकविंशतिम् ॥८७॥" ॥ — मनुस्मृतिः, अध्याय–४ । श्लोक–८७ ॥ "नान्नमद्यादेकवासा न नग्नः स्नानमाचरेत् ॥ न मूत्रं पथि कुर्वीत न भस्मनि न गोव्रजे ॥ ४५ ॥" "सर्वं च तिलसंबद्धं नाद्यादस्तमिते रवौ ॥ न च नग्नः शयीतेह न चोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत् ॥ ७५ ॥ न फालकृष्टे न जले न चित्यां न च पर्वते ॥ न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन ॥ ४६ ॥ न ससत्त्वेषु गर्त्तेषु न गच्छन्नापि च स्थितः ॥ न नदीतरिमासाद्य न च पर्वतमस्तके ॥ ४७ ॥ न कुर्वीत वृथाचेष्टां न वार्यञ्जलिना पिबेत् ॥ नोत्सङ्गे भक्षयेद्भक्ष्यान्न जातु स्यात्कुतूहली ॥ ६३ ॥" ॥ —मनुस्मृतिः, अध्याय–४ । श्लोक–४५ । ७५ । ४६ । ४७ और ६३ ॥ "सुवासिनीः कुमारीश्च रोगिणो गर्भिणीस्तथा ॥ अतिथिभ्योऽग्र एवैतान्भोजयेद–विचारयन् ॥ ११४ ॥ अदित्वा तु य एतेभ्यः पूर्वं भुंक्ते विचक्षणः ॥ स भञ्जानो न जानाति श्वगृध्रैर्जग्धिमात्मनः ॥ ११५ ॥ भुक्तवत्स्वथ विप्रेषु स्वेषु भृत्येषु चै व हि ॥ भुञ्जीयातां ततः पश्चादवशिष्टं तु दम्पती ॥११६॥ ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदार निरतः सदा ॥ पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रतिकाम्यया ॥ ४५ ॥"—मनुस्मृतिः, अध्याय–३ । श्लोक–११४ । ११५ । ११६ । और ४५ ॥ "मैथुनं तु समासेव्य पुंसि योषिति वा द्विजः ॥ गोयानेऽप्सु दिवा चैव सवासाःस्नानमाचरेत् ॥१७५॥" ॥–मनुस्मृतिः,अध्याय–११ । श्लोक–१७५ ॥"संप्राप्ताय त्वतिथये प्रदद्यादासनोदके ॥ अन्नं चैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥ ९९ ॥ तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता ॥ एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥ १०१ ॥" ॥ –मनुस्मृतिः, अध्याय–३ । श्लोक–९९ । १०१ ॥ "आसनाशनशय्याभिर–द्भिर्मूलफलेन वा ॥ नास्य कश्चिद्वसेद्गेहेशक्तितोऽनर्चितोऽतिथिः ॥ २९ ॥" ॥ –मनुस्मृतिः, अध्याय–४ । श्लोक–२९ ॥ "योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्म–सुखेच्छया ॥ स जीवंश्च मृतश्चैवनक्वचित्सुखमेधते ॥ ४५ ॥ यो बन्धनवध–क्लेशान्प्राणिनां न चिकीर्षति ॥ स सर्वस्य हितप्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते ॥ ४६ ॥ यद्ध्यायति यत्कुरुते धृतिं बध्नाति यत्र च ॥ तदवाप्नोत्ययत्नेन यो हिनस्ति न किंचन ॥ ४७ ॥" –मनुस्मृतिः, अध्याय–५ । श्लोक–४५ । ४६ । ४७ ॥ "स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन्होमैर्देवान्यथाविधि ॥ पितॄन् श्राद्धैश्चनॄनन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा ॥ ८१ ॥ कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा ॥ पयोमूलफलैर्वापि

चाण्डाल स्त्री या पशुसे गमन, कन्याका धन लेके विवाह करना, स्त्री-धन (गहना) लेकर पेट पालना, चोरी, गायको बेचना, जिभ्याके स्वादसे हिंसा करके मांस और मदिराका सेवन करना, राजाका दान इत्यादि सर्व निषिद्ध कर्म त्यागने योग्य हैं। तिन कर्मोंको अनेक 'प्रायश्चित्त' कर्म और 'राजदण्ड' भी कहे हैं। तथा नग्नस्नान, नग्नशयन, मार्गमें वा जलमें विष्ठा–मूत्रका त्याग, अञ्जलीसे जल पीना, अतिथि–अभ्यागत और छोटे बालक इत्यादिकोंने भोजन किये बिना दोनों स्त्री–पुरुषोंने भोजन करना, ऐसे और भी कर्म त्यागने चाहिये। गृहस्थने ऋतुकालके नियमानुसार स्त्री-सम्भोग, मैथुनके पीछे स्नान, अतिथि-अभ्यागतकी सदा सेवा करके उनको बैठाना, भोजनसे सत्कार, दया धारण करके हिंसाका बचाव, तीर्थ, व्रत, दान, स्नान, जप, होम, पूजादि नित्य कर्म तथा श्राद्धादिक नैमित्तिक कर्मोंमें अपने धर्मसे चलने चाहिये ! ॥"

मनुस्मृतिःके अष्टम अध्यायमें कहा ❀ हैः—"बहुत धन, पिता, और भाईके अभिमानसे पतिको छोड़ स्त्री व्यभिचार कर्म करै, तो उसे राजा बीच बाजारमें कुत्तोंसे खवावै। ऐसी व्यभिचारिणी

पितृभ्यः प्रीतिमावहन् ॥ ८२ ॥"–मनुस्मृतिः, अध्याय–३ । श्लोक–८१ । ८२ ॥ "अग्निहोत्रं च जुहुयादाद्यन्ते द्युनिशोः सदा ॥ दर्शेनचार्धमासान्ते पौर्णमासेन चैव हि ॥ २५ ॥"–मनुस्मृतिः, अध्याय–४ । श्लोक–२५ ॥

❀"भर्तारं लंघयेद्या तु स्त्री ज्ञातिगुणदर्पिताः ॥ तां श्वभिः खादयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते ॥ ३७१ ॥ पुमांसं दाहयेत्पापं शयने तप्त आयसे ॥ अभ्यादध्युश्च काष्ठानि तत्र दह्येत पापकृत् ॥ ३७२ ॥"

॥ –मनुस्मृतिः, अध्याय–८ । श्लोक–३७१ । ३७२ ॥

स्त्री दूसरे ही जन्ममें कुत्ती, गधी आदि जन्मको प्राप्त होती है। पुरुष परस्त्रीगमन करनेवाला (व्यभिचारी जार) होवै, तो लोहेके सेज पर सुलाके बहुत लकड़ियोंसे राजा उसे जला देवै ॥"

मनुस्मृतिःके अध्याय ८, श्लोक—३५२ में लिखा ❀ है:—
"पराई स्त्रियोंके भोगोंमें प्रवृत्त मनुष्योंके समूहके नाक, ओठ, काटकर राजा अपने देशसे उन्हें निकाल देवें ॥"

ऐसी व्यभिचार कर्ममें धर्मशास्त्रकी सक्त मनाई है। परन्तु चार वर्णोंके व्यभिचार ही से अनेक जातियाँ उत्पन्न हुईं, ऐसा मनुस्मृतिःके दशम अध्यायमें लिखा † है ॥

❀ परदाराभिमर्शेषु प्रवृत्तान्नृन्महीपतिः ॥ उद्वेजनकरैर्दण्डैश्छिन्नयित्वा प्रवासयेत् ॥ ३५२ ॥ —मनुस्मृतिः, अध्याय—८ । श्लोक—३५२ ॥

† "शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः ॥ वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च ॥ ४३ ॥ पौण्ड्रकाश्चौड्रद्रविडाः काम्बोजा यवनाः शकाः ॥ पारदापह्लवाश्चीनाः किराताः दरदाः खशाः ॥ ४४ ॥"—ये वक्ष्यमाण क्षत्रिय आदि जातें यज्ञोपवीत आदि क्रियाओंके लोपसे और ब्राह्मण याजन, अध्यापन और प्रायश्चित्त आदिके न होनेके कारण हौले—हौले (धीरे-धीरे) लोकमें शूद्रताको प्राप्त हुए ॥ ४३ ॥ पौंड्रक, औड्र, द्रविड़, काम्बोज, यवन, शक, पारद, अपह्लव, चीन, किरात, दरद, खश, ये सब क्रियाके लोपसे शूद्रताको प्राप्त हुए ॥ ४४ ॥

"मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो बहिः ॥ म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे तेदस्यवः स्मृताः ॥ ४५ ॥ ये द्विजानामपसदा ये चापध्वंसजाः स्मृताः ॥ ते निन्दितैर्वर्त्तयेयुर्द्विजानामेव कर्मभिः ॥ ४६ ॥"

॥ —मनुस्मृति; अध्याय—१० । श्लोक—४३ से ४६ तक ॥

—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रोंकी जो जातियाँ हैं, वे क्रियाके लोप आदिसे बाह्य हो गईं और म्लेच्छभाषाके अथवा आर्यभाषाके बोलनेवाले वे सब दस्यु कहे जाते हैं ॥ ४५ ॥ द्विजोंकी अनुलोमतासे उत्पन्न हैं ये छः अपसद कहे गये हैं, उनका भी पितासे नीचताके कारण अपसद शब्द कर पहले कहनेसे जानना चाहिये और जे अपध्वंसज प्रतिलोमज हैं, वे भी द्विजातिके उपकारक ही आगे कहे हुए निन्दित कामोंसे जीवैं ॥ ४६ ॥

पूर्वोक्त प्रमाणोंसे 'वेद' और 'शास्त्र'में ब्रह्मचर्य व्रतधारी, स्त्री-सङ्ग त्यागी, विरक्त शिष्यको पिता वा गृहस्थ गुरु (आचार्य) ठहराय, अर्थ सहित वेदविद्या पढ़नेकी चाल अन्यायकी है। क्योंकि पिता वा गृहस्थ आचार्य (गुरु) रहनेसे माता, बहिन, भाई इत्यादि अपने कुलके मनुष्योंका 'मोह' ब्रह्मचारीको बना रहेगा। दूसरे, ब्राह्मण गृहस्थको 'आचार्य' माननेसे गुरु—स्त्री, गुरु—पुत्र, गुरु—कुलके मनुष्य इत्यादिकोंका 'मोह' उसे लग जायेगा। तथा वेद अर्थ सहित पढ़ जानेके बाद फिर ब्रह्मचारीको गृहस्थाश्रम करनेकी आज्ञा देनेसे वेद विद्या उदर निर्वाहके हेतु ही पढ़ना—पढ़ाना है। वर्त्तमानमें ब्रह्मचर्य रहनेकी चाल बन्द हो गई है; और वह बहुत ही कम दिखाई देती है। अभी अल्पकाल तक 'ब्राह्मण' ब्रह्मचर्य रखते हैं। 'क्षत्रिय' और 'वैश्य' इन द्विजातियोंमें ब्रह्मचर्यसे रहते ही नहीं, पहिला:—गृहस्थाश्रम सबसे विशेष बढ़ा है। इसका कारण ऐसा है कि, स्त्री-सम्भोग 'विषयानन्द' ही को "ब्रह्मानन्द" माना है। क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु, महेश, वसिष्ठादि ऋषि, मुनि, जनकादि राजे ऐसे—ऐसे सर्व ब्रह्मज्ञानी गृहस्थ रहके मुक्त तथा आचार्य गुरु माने गये। दूसरा:—वेदके अद्वैत ब्रह्म सिद्धान्तमें इन्द्रियों-का तथा त्रिगुणोंका कर्म जड़ इन्द्रियाँ और त्रिगुणरूप जड़ प्रकृति स्वयं करती है; ऐसा ठहरा करके आप अकर्त्ता, अभोक्ता मुक्त पुरुष (पूर्वके गृहस्थ) आचार्य वा गुरु बने थे, और अभी वे विशेष ही बने हैं। उनको पाप—पुण्योंके अनेक कर्म स्पर्श नहीं करते, कमलपत्रवत् सदा संसारसे अलिप्त रहते, ऐसा माने हैं; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न १०८ में देखिये !) ऐसा भ्रमसे ही ठहराये हैं ॥

इस प्रकारसे 'भ्रमिक और नास्तिक' वेदान्त मतवादी पूर्वमें

बने थे, और अब हैं। कछुक चाल तो अच्छी है, परन्तु जीवहिंसामें बड़ा अधर्म है। इसलिए शरीर रहे तक ब्रह्मचर्य धारण कर जीवन्मुक्तिके लिए दृढ़ वैराग्यवान् (विरक्त) सत्यन्यायी, पारखी श्रीसद्गुरु वा साधु—गुरुके चरणोंकी शरणमें जाकर सत्योपदेश सुनके, मुक्तिके साधनमें शुद्ध रहनीसे चलना उत्तम मार्ग है। यदि ऐसा नहीं रहा जाय, तो प्रथम अपने-अपने पिताओंसे वा वेद-विद्या पढ़ानेवाले गृहस्थ गुरुलोगोंसे उदर निर्वाहमात्र अथवा व्यवहार, धर्मनीति, और वर्णाश्रमोंके कर्म जाननेके लिए उनसे ब्रह्मचारी ब्राह्मण वेद-विद्या पढ़ें। पश्चात् अपने—अपने जातिकी उत्तम कुलकी कन्यासे विवाह कर ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रम करै। 'कंन्या' और 'वर' दोनोंकी आयुका प्रमाण मनुस्मृतिःके प्रमाणसे ❀, प्रथम ही कहा है; उस राहसे सर्वजातियोंमें विवाह होने चाहिये। अनन्तर 'एक वा दो सन्तान' उत्पन्न हुए बाद गृहस्थ स्त्रीको त्याग कर विरक्त बनै। फिर यथार्थवक्ता, सत्यन्यायी पारखी श्रीसद्गुरुके उपदेशसे सत्यन्यायका निर्णय करके ज्ञानमार्गमें शुद्ध चालकी रहनीसे चलै। ऐसे चलनेसे बारम्बार नरजन्म लेते—लेते किसी नरदेहमें वे गृहस्थ लोग फिर 'पूर्णत्यागी साधु' बनकर सर्व अध्यासोंको मिटाकर अवश्य जीवन्मुक्त हो जावेंगे ॥

इस प्रकारसे 'ब्रह्मचर्य' और 'गृहस्थ' इन दो आश्रमोंके सब विधि-युक्त कर्म आपको दिखाये हैं। सो आप भी अब जान लीजिये ! ॥

प्रश्न (१२४) हे दयानिधे ! बाकी रहे हुए 'वानप्रस्थ' और 'संन्यास' इन दो आश्रमोंके विधियुक्त कर्म कौन-से हैं ? सो भी दिखाइये ? ॥

❀ मनुस्मृतिः, अध्याय ६, श्लोक—६४ में है। निर्पक्ष० पृष्ठ ४७६ में देखिये ! ॥

(१२४) उत्तरः—इनके भी कर्म दिखाते हैं; सुनिये !:—मनुस्मृतिःके षष्ठ अध्यायमें लिखा ❀ हैः—"जब गृहस्थाश्रममें पुरुष अपनेको जरायुक्त देखै, अर्थात् बाल सफेद हो गये, देहकी चमड़ी भी ढीली पड़ गई, पुत्र–को–पुत्र भी हुआ, ऐसा देखै; तब घरकी सर्व सम्पत्ति छोड़ कर, स्त्रीकी रक्षाके लिए पुत्रको स्वाधीन करै। अथवा उसके साथ ही वह वनमें निवास करै, वह "वानप्रस्थ आश्रम" कहाता है। वनमें निवास करनेवालोंको 'मुनि' कहे हैं। वानप्रस्थ—वनमें जितेन्द्रिय रहके मृगचर्मसे वा वल्कलसे (वृक्षोंकी छालोंसे) शरीर ढाँप लेवै, फटे वस्त्र पहिरनेको विष्णुस्मृतिःमें कहा है। मस्तक पर जटा तथा मूँछ, दाढ़ी, नख, इनको धारण करै। शाक, कन्द, मूल, फूल, फलादि वनके अन्नका सेवन कर शाम–सबेरे वह होम करता रहै। जो मनुष्य आश्रमपर आवेंगे उनसे

❀ "गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः ॥ अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥ २ ॥ संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम् ॥ पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा ॥ ३ ॥ अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्निपरिच्छदम् ॥ ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः ॥ ४ ॥ वसीत चर्म चीरं वा सायं स्नायात्प्रगे तथा ॥ जटाश्च बिभृयान्नित्यं श्मश्रुलोमनखानि च ॥ ६ ॥ यद्भक्ष्यं स्यात्ततो दद्याद्बलिं भिक्षांच शक्तितः ॥ अम्मूलफलभिक्षाभिरर्चयेदाश्रमागतान् ॥७॥ स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः ॥ दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानु–कम्पकः ॥ ८ ॥ वैतानिकं च जुहुयादग्निहोत्रं यथाविधि ॥ दर्शमस्कन्दयन्पर्व–पौर्णमासं च योगतः ॥ ९ ॥ वर्जयेन्मधु मांसं च भौमानि कवकानि च ॥ भूस्तृणं शिग्रुकं चैव श्लेष्मातक फलानि च ॥ १४ ॥ नक्तं चान्नं समश्नीयाद्दिवा वाहृत्य शक्तितः ॥ चतुर्थकालिको वा स्यात्स्याद्वाप्यष्टमकालिकः ॥ १९ ॥ चान्द्रायणविधानैर्वाशुक्लकृष्णे च वर्तयेत् ॥ पक्षान्तयोर्वाप्यश्नीयाद्यवागूं क्वथितां

श्रद्धावान् रहके वह प्रियभाषण करै। उनको प्रतिदिन जल, मूल, भिक्षादिकोंसे वह पूजै। वह वेदाध्ययन करै, तथा गृहस्थाश्रमके षट् कर्म, पञ्च यज्ञादि नित्य, नैमित्तिक कर्म भी वह करता रहै। वानप्रस्थ आश्रमवाले ब्राह्मण स्त्री-सम्भोग, मांस, मदिरा, शहद, ये त्याग देवें। सायङ्काल भोजन, अथवा एक दिन उपासे रह कर दूसरे दिन सायङ्काल वे भोजन करें। अथवा तीन दिन उपवास रहके चौथे दिनके रात्रिमें वे भोजन करें। वे 'चान्द्रायण व्रत' अर्थात् क्रमसे 'शुक्ल पक्ष' और 'कृष्ण पक्षमें' एक–एक ग्रास अन्न "बढ़ाते और घटाते' जावें। अथवा वे 'अमावास्या' और 'पूर्णिमा'को यतागू (लपसी) पकाकर खावें। ऐसा वानप्रस्थका भोजन विधि कहा है। वनमें अन्न न मिलै, तो प्राण रक्षणके इतनी ही भिक्षा वनमें रहनेवाले ब्राह्मणोंसे वानप्रस्थाश्रमी माँग लावें, और उसके ८ कौर बनाय, दोनामें वा मिट्टीके पात्रमें एक हाथ ही से वे खावें। शरीरमें व्याधि होवै, तब वे उपाय न करें, ईशान्य दिशाका आश्रय कर 'वायु' और 'जल'का वे आहार करें; इस प्रकारसे वे देह छूटे तक करें। ऐसे 'शोक' और 'भय'से मुक्त हुए "वानप्रस्थ" ब्राह्मण ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं।" ऐसा वर्णन है॥

सकृत् ॥ २० ॥ अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारी धराशयः ॥ शरणेष्वममश्चैव वृक्षमूल-निकेतनः ॥ २६ ॥ तापसेष्वेव विप्रेषु यात्रिकं भैक्षमाहरेत् ॥ गृहमेधिषु चान्येषु द्विजेषु वनवासिषु ॥ २७ ॥ ग्रामादाहृत्य वाश्नीयादष्टौ ग्रासान्वने वसन् ॥ प्रतिगृह्य पुटेनैव पाणिना शकलेन वा ॥ २८ ॥ अपराजितां वास्थाय व्रजेद्दिशमजिह्मगः ॥ आनिपाताच्छरीरस्य युक्तो वार्यनिलाशनः ॥ ३१ ॥ आसां महर्षिचर्याणां त्यक्त्वान्यतमया तनुम् ॥ वीतशोकभयो विप्रो ब्रह्मलोके महीयते ॥ ३२ ॥"
॥ मनुस्मृतिः, अध्याय–६ । श्लोक–२से४।६–६।१४।१६–२०।२६–२८।३१–३२ ॥

वसिष्ठस्मृतिःके नवम अध्यायमें लिखा ❀ हैः—"वानप्रस्थ ब्राह्मण ग्राममें न प्रवेश करै, हलसे जोते हुए अन्नको वह न खाय, बिना जोते हुए अन्न, तथा फल, मूल इत्यादि वह इकट्ठा करता रहै, ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर, वह पृथ्वी पर शयन करै, छः महीनेके उपरान्त 'अग्नि' और 'स्थान'को वह त्याग दे ॥"

विष्णुस्मृतिःके तृतीय अध्यायमें कहा ‡ हैः—"वानप्रस्थ वनका इकट्ठा किया हुआ अन्न, कुवाँर महीनेमें दान कर दे, 'वर्षाऋतु' में खुले, ऊँचे स्थानमें वह रहै; शीत समयमें वह

❀ "वानप्रस्थो जटिलश्चीराजिनवासा ग्रामं च न विशेत् । न फालकृष्टमधितिष्ठेत् । अकृष्टं मूलफलं संचिन्वीत । उर्ध्वरेताः क्षमाशयो मूलफलभैक्षेणाश्रमागतमतिथिमर्चयेत् । दद्यादेव न प्रतिगृह्णीयात् । त्रिषवणमुदकमुपस्पृशेत् । श्रावणकेनाग्निमाधायाहिताग्निः स्याद्वृक्षमूलिकः । उर्ध्वे षड्भ्यो मासेभ्योऽनग्निरनिकेतो दद्याद्देवपितृमनुष्येभ्यः स गच्छेत्स्वर्गमानंत्यमानंत्यम् ॥"

॥ (इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे नवमोऽध्यायः) वसिष्ठस्मृतिः, अध्याय–९ ॥

‡ "सचितं तु यदारण्यं भक्तार्थं विधिवद्वने ॥ त्यजेदाश्वयुजे मासि वन्यमन्यत्समाहरेत् ॥ ४ ॥ आकाशशायी वर्षासु हेमन्ते च जलाशयः ॥ ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थो भवेन्नित्यं वने वसन् ॥ ५ ॥ कृच्छ्रं चांद्रायणं चैव तुलापुरुषमेव च ॥ अतिकृच्छ्रं प्रकुर्वीत त्यक्त्वा कामाञ्छुचिस्ततः ॥ ६ ॥ त्यजञ्छरीरसौहार्दं वनवासरतः शुचिः ॥ १० ॥ चतुःप्रकारं भिद्यंते मुनयः शंसितव्रता ॥ अनुष्ठानविशेषेण श्रेयांस्तेषां परः परः ॥ ११ ॥ वार्षिकं वन्यमाहारमाहृत्य विधिपूर्वकम् ॥ वनस्थधर्ममातिष्ठन्नयेत्कालं जितेन्द्रियः ॥ १२ ॥ भूरिसंवार्षिकश्चायं वनस्थः सर्वकर्मकृत् ॥ आदेहपतनं तिष्ठेन्मृत्युं चैव न कांक्षति ॥ १३ ॥ षण्मासांस्तु ततश्चान्यः पञ्चयज्ञक्रियापरः ॥ काले चतुर्थे भुंजानो देहं त्यजति धर्मतः ॥ १४ ॥ त्रिंशद्दिनार्थमाहृत्य वन्यान्नानि शुचिव्रतः ॥ निर्वर्त्य सर्वकार्याणि स्याच्च षष्ठेन्नभोजनः ॥ १५ ॥ दिनार्थमन्नमादाय पञ्चयज्ञक्रियारतः ॥ सद्यःप्रक्षालको नाम चतुर्थः परिकीर्तितः ॥ १६ ॥" –विष्णुस्मृतिः, अध्याय–३ । श्लोक–४ से १६ तक॥

'जलशयन' करै; 'ग्रीष्मऋतु'में पञ्चाग्निके मध्यमें बैठके वह तप करै; वह कठिन व्रतोंको निष्काम होके करै, वह शरीरकी प्रीति छोड़ दे, ऐसे आचरणसे अन्तमें वह स्वर्गको प्राप्त होता है। वानप्रस्थके चार भेद हैं। १. पहिलाः—इन्द्रियोंको जीतके गृहस्थाश्रममें कहे प्रमाण वनके अन्नको साल भरके लिये संग्रह कर अपनी आयुका समय बिताता रहै, सो "भूरिसंवार्षिक वानप्रस्थ" है। २. दूसराः—मरण काल तक वनमें रहके मृत्युकी इच्छा वह नहीं करै, छः महीने खर्चने लायक अन्नका संग्रह करै। वह 'पञ्चयज्ञ' करता रहै, और चौथे कालमें भोजन करके वह शरीरको त्यागै। ३. तीसराः—शुद्ध व्रत हो एक महीनेके लिये वह अन्नका संग्रह करै, सम्पूर्ण कर्मोंको करके दिनके छठएँ भागमें वह भोजन करै। ४. चौथाः—एक दिनके लिए अन्नका संग्रह करके पञ्च यज्ञ कर्मोंमें वह तत्पर रहै, यह 'सद्यःप्रक्षालक वानप्रस्थ' कहाता है॥"

इस प्रकारसे अविनाशी, परन्तु देहोंके जड़ाध्यासी तथा सुख–दुःखादि जाननेवाले अपने जीवोंको महाकष्ट देकर, अन्तमें स्वर्गलोक प्राप्तिके लिए 'वानप्रस्थाश्रम' ठहराया है। परन्तु अनेक स्वर्गलोक हैं नहीं। और जीते तक किसीको तिनका दर्शन नहीं होनेसे वे केवल कल्पनामात्र हैं; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न–७ और प्रश्न–१७ में देखिये !)। इसलिए वानप्रस्थ आश्रमका सर्व कष्ट वृथा ही है। जो अपने ही जीवोंपर सर्व जड़ाध्यास छोड़ने की जीवदया नहीं हुई, तो और जीवोंपर सत्यदया (परदया) वानप्रस्थ ब्राह्मणोंसे कैसी हो सकती है? अर्थात् ये 'मुनि' (तप करनेवाले) ब्राह्मण, मनुष्योंको भ्रमानेवाले भ्रमिक बने रहे। अल्प अन्नका आहार हरदिन रखकर, नियमयुक्त स्त्री-सम्भोगादि

पञ्च विषयोंसे इन्द्रियोंको जीतके वैराग्य धारण कर, शुद्ध चालसे चलके कहीं ग्राममें वा ग्रामके पास वे रहते, तो क्या हानि थी ? पशुवत् अकेले जङ्गलमें रहकर, नरजन्म जो सत्यज्ञानके निश्चय करनेका स्थान, सो स्वर्ग प्राप्तिकी वृथा कल्पनामें वे गमाय दिये। वर्त्तमानमें 'वानप्रस्थ आश्रम' बिलकुल बन्द हुआ है। कहीं बिरले योगी, तपसी पहाड़ोंके कन्दराओंमें बैठे हुए दिखाई देते हैं ॥

अब "संन्यास आश्रम" विषय कहा है, सुनिये !:—

श्लोकः—"प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं, सर्ववेदसदक्षिणाम् ॥
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य, ब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहात् ॥ ३८ ॥"
॥ मनुस्मृतिः, अध्याय–६ । श्लोक–३८ ॥

अर्थः—यजुर्वेदके कथन प्रमाण सर्वस्व दक्षिणावाली इष्टि (यज्ञ) करके, उसके विधानके अनुसार अपने आत्मामें ही अग्निको मान कर, वानप्रस्थ आश्रमसे फिर ब्राह्मण "संन्यास" ग्रहण करै ॥

श्लोकः—"चतुर्विधा भिक्षुकाः स्युः कुटीचक बहूदकौ ॥ ११ ॥"
"हंसः परमहंसश्च, पश्चाद्यो यः स उत्तमः ॥ १२ ॥"
॥ विष्णुस्मृतिः, अध्याय–४ । श्लोक–११ । १२ ॥

अर्थः—संन्यासी चार प्रकारके होते हैंः—"कुटीचक, बहूदक, हंस, और परमहंस," इनमें जो–जो पिछला है, वही–वही उत्तम है ॥

तिन संन्यासियोंका लक्षण विष्णुस्मृतिःके चतुर्थ अध्यायमें ❀,

❀ "एकदण्डी भवेद्वापि त्रिदण्डी वापि वा भवेत् ॥ १२ ॥ त्यक्त्वा सर्वसुखास्वादं पुत्रैश्वर्यसुखं त्यजेत् ॥ अरण्येषु वसेन्नित्यं ममत्वं यत्नतस्त्यजेत् ॥१३॥ नान्यस्य गेहे भुंजीत भुंजानो दोषभाग्भवेत् ॥ कामं क्रोधं च लोभं च तथेर्ष्यांसत्यमेव च ॥ १४ ॥ कुटीचकस्त्यजेत्सर्वं पुत्रार्थं चैव सर्वतः ॥ भिक्षाटनादिकेऽशक्तो यतिः पुत्रेषु संन्यसेत् ॥ १५ ॥ कुटीचक इति ज्ञेयः परिव्राट् त्यक्तबान्धवः ॥ त्रिदण्डं कुंडिकां चैव भिक्षाधारं तथैव च ॥ १६ ॥ सूत्रं तथैव गृह्णीयान्नित्यमेव बहूदकः ॥

कहा है:—"१. प्रथम संन्यासी=त्रिदण्ड वा एक दण्ड धारण कर, सम्पूर्ण सुखोंके स्वादोंको त्याग, पुत्रको समस्त वस्तु वह छोड़ दे। बाहर भिक्षा न माँगके पुत्रसे ही वह शरीर निर्वाहकी सेवा करवावै। वह घरमें ही नित्य भोजन करै। काम, क्रोध, लोभ, ईर्षा, झूठ, इनको वह छोड़ दे, उस संन्यासीको "कुटीचक" कहते हैं। २. दूसरा संन्यासी=अपने बन्धुओंको त्यागके त्रिदण्ड, कुण्डी और भिक्षाका पात्र तथा जनेऊ वह धारण करै। वह 'प्राणायाम' करके गायत्री जपता रहै, हृदयमें भगवान्का ध्यान कर वह इन्द्रियोंको जीते, सो "बहूदक" संन्यासी कहाता है। परन्तु केवल वस्त्रोंको गेरुवा करके एक संन्यासीका चिह्न

प्राणायामेऽप्यभिरतो गायत्रीं सततं जपेत् ॥ १७ ॥ विश्वरूपं हृदि ध्यायन्नयेत्कालं जितेन्द्रियः ॥ ईषत्कृतकषायस्य लिंगमाश्रित्य तिष्ठतः ॥ १८ ॥ अन्नार्थं लिंगमुद्दिष्टं न मोक्षार्थमिति स्थितिः ॥ त्यक्त्वा पुत्रादिकं सर्वं योगमार्गं व्यवस्थितः ॥ १९ ॥ इन्द्रियाणि मनश्चैव कर्षन्हंसोऽभिधीयते ॥ कृच्छ्रैश्चान्द्रायणैश्चैव तुलापुरुष-संज्ञकैः ॥ २० ॥ अन्यैश्च शोषयेद्देहमाकांक्षन्ब्रह्मणः पदम् ॥ यज्ञोपवीतं दंडं च वस्त्रं जन्तुनिवारणम् ॥ २१ ॥ अयं परिग्रहो नान्यो हंसस्य श्रुतिवेदिनः ॥ आध्यात्मिकं ब्रह्म जपन्प्राणायामांस्तथाचरन् ॥ २२ ॥ वियुक्तः सर्वसंगेभ्यो योगी नित्यं चरेन्महीम् ॥ आत्मनिष्ठः स्वयं युक्तस्त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥ २३ ॥ चतुर्थोऽयं महानेषां ध्यानभिक्षुरुदाहृतः ॥ त्रिदंडं कुंडिकां चैव सूत्रं चाथ कपालिकाम् ॥ २४ ॥ जंतूनां वारणं वस्त्रं सर्वं भिक्षुरिदं त्यजेत् ॥ कौपीनाच्छाद-नार्थं च वासोऽघश्च परिग्रहेत् ॥ २५ ॥ कुर्यात्परमहंसस्तु दंडमेकं च धारयेत् ॥ आत्मन्येवात्मना बुद्ध्या परित्यक्तशुभाशुभः ॥ २६ ॥ अव्यक्तलिंगोऽव्यक्तश्च चरेद्भिक्षुः समाहितः ॥ प्राप्तपूजो न संतुष्येदलाभे त्यक्तमत्सरः ॥ २७ ॥ त्यक्ततृष्णः सदा विद्वान्मूकवत्पृथिवीं चरेत् ॥ देहसंरक्षणार्थं तु भिक्षामीहेद्द्वि-जातिषु ॥ २८ ॥ पात्रमस्य भवेत्पाणिस्तेन नित्यं गृहानटेत् ॥ २९ ॥"

॥ —विष्णुस्मृतिः, अध्याय–४। श्लोक–१२ से २९ तक ॥

बनाते हैं, वह अन्नके ही निमित्त है, कुछ मोक्षके निमित्त नहीं, ऐसी मर्यादा है। ३. तीसरा संन्यासी = सम्पूर्ण पुत्र, धनादिकोंको त्याग करके योगके मार्गमें स्थिर रह कर इन्द्रियाँ और मनको वह वश करै। वह चान्द्रायणादि कठिन व्रतोंको आचरण कर ब्रह्मपदकी इच्छा करता हुआ, अपने शरीरको सुखा दे। जनेऊ, दण्ड, और जिससे मक्खी आदि जीव शरीर पर न गिरें, ऐसा वस्त्र वह धारण करै। उक्त वेदके ज्ञाता संन्यासीको "हंस" कहते हैं। ४. चौथा संन्यासी = अपने आत्मारूप व्यापक ब्रह्मको ॐकारसे जपता हुआ और प्राणायामको करता हुआ सर्व गृहादिकोंके सम्बन्धसे रहित, आत्मामें स्थित वह नित्य पृथ्वीपर विचरै। इन चारोंमें बड़ा यह "ध्यानभिक्षु परमहंस" संन्यासी कहा है। त्रिदण्ड, कुण्डी, जनेऊ, भिक्षाका पात्र, कपालिका, जन्तुओंको निवारण करने योग्य वस्त्र, इन सबोंको संन्यासी त्याग दे। कौपीन, ओढ़नेका वस्त्र, इतना ही केवल 'परमहंस' धारण करै, और वह एक दण्ड धारण करै। वह अपनी बुद्धिसे सर्व शुभाशुभ कर्मोंको त्यागके हर्ष-शोक छोड़, गूँगेके समान मौन धारण करके पृथ्वी पर भ्रमण करै। भिक्षुकका (संन्यासीका) पात्र हाथ ही है। उसीसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, इन तीन जातियोंमें वह अन्नकी भिक्षा माँगे॥"

हारीतस्मृतिःके षष्ठ अध्यायमें ❀ लिखा हैः—

❀ "त्रिदंडं वैष्णवं सम्यक् संततं समपर्वकम्॥ वेष्टितं कृष्णगोवालरज्जुमच्चतुरंगुलम्॥ ६॥ शौचार्थमासनार्थं च मुनिभिः समुदाहृतम्॥ कौपीनाच्छादनं वासः कंथां शीतनिवारिणीम्॥ ७॥ पादुके चापि गृह्णीयात्कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम्॥ एतानि तस्य लिङ्गानि यतेः प्रोक्तानि सर्वदा॥ ८॥"

॥ —हारीतस्मृतिः, अध्याय—६। श्लोक—६। ७। ८॥

"चार अङ्गुलका कपड़ा और काली गऊके बालोंकी रस्सी लपटी हो, जिसमें ग्रन्थी सम हो, ऐसा बाँसका त्रिदण्ड संन्यासी ग्रहण करै। शौच और आसनके लिए कौपीन, शीतको दूर करनेवाली गुदड़ी तथा खड़ाऊँ वह ग्रहण करै, यह संन्यासीका सदाके लिए चिह्न है ॥"

संवर्त्तस्मृतिःमें लिखा ‡ है:—"विचारवान् संन्यासी आठ, सात वा पाँच घरोंमें भिक्षा माँग लावै, उस पर जल छिड़कके सावधानीसे वह भोजन करै। फिर जन रहित वनमें अकेले ही बैठके मन, बच, कर्मसे ब्रह्मका ही वह विचार करता रहै। वह जीने-मरनेका डर छोड़ देवै। जितेन्द्रिय हो, क्रोधको जीतकर, चारों आश्रमोंको सेवन करके, वेद और शास्त्रके अर्थको जाननेवाला ब्राह्मण 'ब्रह्मलोक'को जाता है ॥"

इस प्रमाणसे चारों आश्रम 'एक ब्राह्मण'के लिए हैं। 'क्षत्रिय' और 'वैश्य'के लिए 'ब्रह्मचर्य' और 'गृहस्थाश्रम' ये दो ही आश्रम ठहराये हैं। गृहस्थाश्रममें ही वे अन्तमें इन्द्रियजीत बनके ब्रह्मज्ञानमें स्थित होकर शरीर त्यागनेको कहा है ॥

शङ्खस्मृतिःके सप्तम अध्यायमें कहा ❀ है:—"जब ग्रामवासी

‡ "अष्टौ भिक्षाः समादाय स मुनिः सप्त पञ्च वा ॥ अद्भिः प्रक्षाल्य ताः सर्वा भजीत सुसमाहितः ॥ १०७ ॥ अरण्ये निर्जने तत्र पुनरासीत मुक्तवत् ॥ एकाकी चिंतयेन्नित्यं मनोवाक्कायकर्मभिः ॥ १०८ ॥ मृत्युं च नाभिनन्देत जीवितं वा कथंचन ॥ कालमेव प्रतीक्षेत यावदायुः समाप्यते ॥ १०६ ॥ संसेव्य चाश्रमान्सर्वाञ्जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥ ब्रह्मलोकमवाप्नोति वेदशास्त्रार्थ-विद्द्विजः ॥ ११० ॥"—संवर्त्तस्मृतिः, श्लोक–१०७ । १०८ । १०६ । ११० ॥'

❀ "विधूमे न्यस्तमुसले व्यंगारे भुक्तवज्जने ॥ अतीते पात्रसंपाते नित्यं भिक्षां यतिश्चरेत् ॥ सप्तागारांश्चरेद्भैक्ष्यं भिक्षितं नानुभिक्षयेत् ॥ २ ॥ न व्यथेच्च तथाऽलाभे यथालब्धेन वर्तयेत् ॥ न स्वादयेत्तथैवान्नं नाश्नीयात्कस्यचिद्गृहे ॥३॥' ॥ —शङ्खस्मृतिः, अध्याय–७ । श्लोक–२ । ३ ॥

मनुष्य भोजन कर चुके हों, मूसलका आवाज तथा जल पात्रोंका लेना-देना बन्द हुआ हो; तब संन्यासी सात (७) घरोंसे भिक्षा माँगे। एक दिन जिस घरमें भिक्षा मिली, वहाँ वह फिर न माँगे। संन्यासी भिक्षा नहीं मिलनेसे दुःखित न हो। जो कुछ भिक्षामें मिल जाय, उसीमें वह उदर निर्वाह करै, अन्नको स्वादिष्ट न करै तथा किसीके यहाँ वह भोजन न करै ॥"

परन्तुः—अत्रिस्मृतिःके श्लोक-१५९ में † और मनुस्मृतिःके अध्याय ६ में लिखा ‡ हैः—"संन्यासी 'भँवरा' समान वृत्तिका अवलम्बन करै, म्लेच्छके घरका अन्न भी भक्षण करै। परन्तु एक ही स्थानका अन्न नित्य न लेवै ॥" "शून्य गृहमें, वृक्षकी छायामें, अथवा जहाँ सायङ्काल हो जाय, वहाँ ही घर मानके वह निवास करै ॥ चारों ओर देखके संन्यासी पैर रक्खै, वस्त्रसे छानके जल पीवै, मनसे सत्य पवित्र आचरण करै। सर्व प्राणियोंका मित्र बनकर सबको वह समान दृष्टिसे देखै। धन, पाषाण, ढेला, इनको वह एक-ही-सा समझै, 'ध्यान' और 'योग'में वह रत रहै। ऐसा आचरण करनेवाला संन्यासी ब्रह्मरूप परमगति वा मुक्तिको प्राप्त होता है ॥"

वसिष्ठस्मृतिःके दशम अध्यायमें लिखा ❀ हैः—

---

† "चरेन्माधुकरीं वृत्तिमपि म्लेच्छकुलादपि ॥ एकान्नं नैव भोक्तव्यं बृहस्पति-समो यदि ॥ १५९ ॥" —अत्रिस्मृतिः, श्लोक-१५९ ॥

‡ "कपालं वृक्षमूलानि कुचेलमसहायता ॥ समता चैव सर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्य लक्षणम् ॥ ४४ ॥ दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ॥ सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥ ४६ ॥" —मनुस्मृतिः, अध्याय-६। श्लोक-४४। ४६॥

❀ "परिव्राजकः सर्वभूताभयदक्षिणां दत्त्वा प्रतिष्ठेत् ॥" "अथाप्युदाहरन्ति। न शब्दशास्त्राभिरतस्य मोक्षो न चापि लोकग्रहणे रतस्य ॥ न

"जो संन्यासी केवल खान-पान, वस्त्र-पात्रादिकोंमें आसक्त रहता है; उत्तम मठ, मन्दिर, सुन्दर ग्रामादिकोंमें तत्पर रहता है; उसका मोक्ष नहीं होता है। ज्यौतिष विद्या, वैद्यकीय, औषधी, तेजी-मन्दी बताना, पत्रिकाका फल, प्रायश्चित्तोंका कथन इत्यादि अनेक व्यवहारके 'हर्ष' और 'शोक'में जो रहता है; जो भिक्षावृत्ति ही रखता है, तथा इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त रहता है, सो 'संन्यासी' भी हो, कभी 'मुक्त' नहीं होता है। इन कर्मोंसे वर्जित जो संन्यासी कुटीमें, जलमें, दूसरोंके सङ्गमें, वस्त्रके ऊपर वा घरमें, आसनके ऊपर शयन नहीं करता, वह मोक्षतत्त्व जाननेवाला तत्त्वज्ञ, मोक्षगामी 'संन्यासी' है। 'संन्यासी' ब्राह्मणोंके घरसे भिक्षा माँगे, वहाँसे जो मिलै, सो वह भक्षण करै। मीठा (शक्कर, गुड़ादि), मांस, घी, इनको वह त्याग दे। अपने गृहमें स्थित संन्यासी अन्य साधुओंको प्रसन्न होकर तृप्त करता रहै। वह ग्राममें निवास कर कपटी न हो, शरण न रक्खै, दुर्जन न हो, लिङ्ग इन्द्रियका संयोग न करै, सर्व प्राणियोंकी हिंसा और अनुग्रहको त्यागके

भोजनाच्छादनतत्परस्य न चापि रम्यावसथप्रियस्य ॥ न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्रांगविद्यया ॥ अनुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हिचित् ॥ अलाभे न विषादी स्याल्लाभेचैव न हर्षयेत् ॥ प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रासंगाद्विनिर्गतः ॥ न कुट्यां नोदके संगे न चैले न त्रिपुष्करे ॥ नागारे नासने शेते यः स वै मोक्षवित्तमः ॥ ब्राह्मणकुले वा यल्लभेत्तद्भुंजीत सायं मधुमांससर्पिः-परिवर्जं यतीन्साधून्वा गृहस्थान्सायंप्रातश्च तृप्येत् । ग्रामे वा वसेत् अजिह्मः अशरणः असंकसुकः । नचेन्द्रियसंयोगं कुर्वीत केनचित् । उपेक्षकः सर्वभूतानां हिंसानुग्रहपरिहारेणपैशुन्यमत्सराभिमानाहं[illegible]-मोहक्रोधविवर्जनं [illegible] धर्म इष्टो यज्ञोपतीत्युदककमण्डलुहस्तः शुचिर्ब्राह्मणो-वृषलान्नपानवर्जो न हीयते ब्रह्मलोकाद्ब्रह्मलोकात् ॥" —वसिष्ठस्मृतिः, अध्याय—१०॥

उपेक्षा करता रहै। चुगलपन, ईर्षा, अभिमान, अहङ्कार, अश्रद्धा, कठोरता, मनका शोक, निन्दा, दम्भ, लोभ, मोह, क्रोध, इन सबोंको वह त्याग दे। चारों आश्रमवालोंका इष्ट धर्म कहा है कि, 'जनेऊ' धारण कर रहें, वे जलका कमण्डल हाथमें रक्खें, पवित्र रहें, शूद्रके अन्नको त्याग दें। इस प्रकारसे आचरण करनेवाला ब्राह्मण ब्रह्मलोकसे भ्रष्ट नहीं होता ॥"

मनुस्मृतिःके षष्ठ अध्यायमें लिखा ❀ हैः—"संन्यासीका पात्र 'लड़की' वा 'मिट्टीका' रहै। अथवा 'तुम्बा' छिद्र रहित होवै। शरीरके नाना रोग; अथवा कुत्ता, सियार इत्यादि अनेक योनियोंमें गमन करनेमें कर्म दोषोंका वह विचार करता रहै; वह 'प्राणायाम' करके रागादि दोषोंको जलावै। "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसी ब्रह्म-स्वरूपकी धारणा करके पापोंको और नाशवान् गुणोंको ज्ञानसे वह भस्म कर देवै; ऐसा ब्रह्म साक्षात्कारयुक्त संन्यासी कर्मसे बन्ध नहीं होता। वह काम्यकर्मोंको तथा हिंसाको त्यागै, क्षुधा, तृषा,

❀ "अतैजसानि पात्राणि तस्य स्युर्निर्व्रणानि च ॥ तेषामद्भिःस्मृतं शौचं चमसानामिवाध्वरे ॥ ५३ ॥ अलाबुं दारुपात्रं च मृन्मयं बैदलं तथा ॥ एतानि यतिपात्राणि मनुःस्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥ ५४ ॥ देहादुत्क्रमणं चास्मात्पुनर्गर्भे च संभवम् ॥ योनिकोटिसहस्रेषु सृतीश्चास्यान्तरात्मनः ॥ ६३ ॥ प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्बिषम् ॥प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥७२॥ सम्यग्दर्शनसंपन्नः कर्मभिर्न निबध्यते ॥ दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ॥७४॥ अहिंसयेन्द्रियासंगैर्वैदिकैश्चैवकर्मभिः॥तपसश्चरणैश्चोग्रैः साधयन्तीह तत्पदम्॥७५॥ जरा शोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् ॥ रजस्वलमनित्यं च भूतावासमिमं त्यजेत् ॥ ७७ ॥ अनेन विधिना सर्वांस्त्यक्त्वा संगाञ् शनैः शनैः ॥ सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ॥ ८१ ॥"

॥—मनुस्मृतिः, अ० ६, श्लोक—५३ । ५४ । ६३ । ७२ । ७४ । ७५ । ७७ । ८१ ॥

शीत, उष्णको वह सहता रहै। इस विधिसे धीरे-धीरे सर्व सङ्गोंको परित्याग कर, मान-अपमानादि द्वन्द्व भावसे मुक्त हुआ संन्यासी ब्रह्म भावको प्राप्त होता है ॥"

इस प्रकारसे संन्यास आश्रममें कुछ अच्छी रहनी और अति त्याग "परमहंस संन्यासी" को बताया है। "जैसे वृक्षके तले वा एकान्त वनमें निवास, सदा भ्रमण करके एक बार भिक्षा लिये हुए घरका अन्न फिर ग्रहण नहीं करना। एक कौपीन और वस्त्र, तुम्बादि पात्र रहित इत्यादि।" ये विचारवान् ज्ञानीके निवृत्तिरूप लक्षण नहीं है। परन्तु अपने ही जीवोंको दुःखके हेतु हैं। कहीं ग्राममें वा ग्रामके समीप छोटी-सी कुटीमें रहते, तो संन्यासीको संसारी लोग क्या भ्रमाते थे? अन्य मनुष्योंपर उपदेशरूप दयाधर्म उनका सदैव होता ही रहता। वहाँ जो अयाचित वृत्तिसे अन्न मिलता, सो सुपात्र मनुष्य देखकर वे ग्रहण किया करते। अथवा एक-दो वस्त्र अधिक रखते, तो उनकी कौन-सी हानि होती? परन्तु प्रथमः—ब्रह्मज्ञान साक्षात्कार हुए बाद शुभाशुभ कर्म बन्धनको कारण नहीं होते, ऐसा मानके ही म्लेच्छादि नीच, मांसाहारी मनुष्योंके घरोंका भी अन्न खानेको कहा है, सो अनाचाररूप अयुक्त कर्म है। दूसराः—ब्रह्मलोक माना हुआ, है नहीं; (तिसको स्वर्गलोकोंकी असिद्धिके प्रमाण पूर्वके प्रश्न—७ और प्रश्न—१७ में देखिये!)। यदि ब्रह्मलोक भी कल्पनासे माने, तो स्वर्ग निवासी ब्रह्मलोकादि निवासी सर्व देवता और ब्रह्मा भी अपने-अपने 'पुण्यफल' भोगे बाद कल्प-कल्पमें और महाप्रलयमें नाश होकर सबोंको पुनर्जन्म है; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न—१७ में देखिये!)। परन्तु सत्यन्यायसे देखिये! तो ब्रह्म कुछ वस्तु

ही नहीं, मनुष्योंकी धोखारूप भ्रम कल्पनामात्र है। अथवाः—देहकी भासरूप वृत्तिकी स्थिरतासे होता हुआ 'आनन्द' वा दिखाता हुआ तत्त्वोंका 'प्रकाश' और श्वासवायुमें ही पञ्च मात्रा मिलाकर ॐकार ब्रह्म सर्वत्र प्रकाशरूप माना हुआ नाशवान् जड़ है; (ॐकारको प्रमाण पूर्वके प्रश्न–३८ में देखिये !)। स्वजाति, विजाति, स्वगतभेद (अवयवका भेद) रहित, अखण्ड, सम्पूर्ण व्यापक अर्थात् जड़–चेतन, ज्ञान–अज्ञान, पशु–सन्त ऐसे एक अद्वैतरूप ब्रह्म वे ठहराये हैं; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न–५१ में देखिये !)। परन्तु 'व्याप्य पदार्थ' नित्य चाहिये ? तब 'व्यापक' सिद्ध होता है। इसलिए 'जड़ तत्त्व' और अनेक 'चेतन जीव' अनादि कालके रहनेसे द्वैत ही सिद्ध हैं; इसीसे सत्सङ्ग द्वारा जीवन्मुक्ति भी हो सकती है ॥

पूर्वोक्त चार आश्रमोंके कर्मोंकी चाल चलनेवाले सर्व ब्राह्मण कल्पित, 'व्यापक ब्रह्म' बनके अनेक योनियोंमें जन्म लेते ही रहेंगे, वे कभी मुक्त नहीं होंगे। सबसे श्रेष्ठ माने हुए "परमहंस संन्यासी" जड़दशा धारण किये हुए अजगरादि जड़वत् योनियोंमें जन्म लेवेंगे; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न–१०८ में देखिये !) ॥

इन प्रमाणोंसे श्रुतिः (वेद), स्मृतिः (धर्मशास्त्र), इनमें यथार्थ मुक्तिका बोध और सत्यशोध नहीं हुआ। परन्तु ब्रह्मज्ञान केवल भ्रमज्ञानरूप एक 'नास्तिक मत' ही प्रकट हुआ है। और अनादि कालके जगत्में सद्गुरु श्रीकबीर साहेबरूप पारख बोध दाता पारखी सन्त आदिगुरु जड़–चेतनका न्यारा–न्यारा निर्णय करके पारख दृष्टिसे शुद्ध चेतन हंस स्वरूपमें सदैव स्थितिरूप जीवन्मुक्तिका बोध अधिकारी मनुष्योंको देते ही आते हैं, वे ही

सबोंमें श्रेष्ठ हैं; (उसे प्रमाण पूर्वक प्रश्न—२८ में देखिये !)। ऐसा आप भी अब निश्चय करके जान लीजिये ! ॥

॥ ❀ ॥ अथ श्रीकबीरपन्थमें आश्रम वर्णन ॥ ❀ ॥

प्रश्न (१२५) चार आश्रमोंके विधियुक्त सर्व कर्मोंका बोध मुझको अब आपकी दयासे हुआ है ॥

अब चारों आश्रमोंमेंसे श्रीकबीरपन्थमें कितने 'आश्रम' माने जाते हैं ? सो भी दया करके कहिये ? ॥

(१२५) उत्तरः—सो भी कहते हैं, सुनिये !:—

प्रथम "कबीरपन्थ" ऐसा नाम क्यों धरा है; सो दिखाते हैं:— अखण्डरूप, अनेक, ज्ञानगुणवाले चारों खानियोंके सर्व 'चेतन जीव' हैं। उनको ही कायाबीर (देहमें व्यवहार करनेवाले) "कबीर" कहे हैं; (उसे प्रमाण पूर्वक प्रश्न—२८ में देखिये !)। तिनमें 'पशु, अण्डज, और उष्मज,' इन तीन खानियोंके देहधारी जीव नरदेहोंमें किये हुए कुछ सञ्चित कर्मोंके फल ही भोगने-वाले हैं। तिनमें भोजन, मैथुनादि षट् पशु धर्म, और काम, क्रोध, लोभ, भय, अहङ्कार इत्यादि उठाना, इतना ही जाननेका 'ज्ञानगुण' रहता है। परन्तु पाप—पुण्यादि अनेक कर्मोंके गुण—दोष, नाना विद्या, नाना कला, अनेक व्यवहार इत्यादि विशेष जाननेका ज्ञान और मुख्य चेतन हंस ज्ञानस्वरूप हैं। ऐसा दृढ़ निश्चय होके 'जीवन्मुक्त' होनेका स्थान नरदेहधारी सर्व हंस जीव सर्वसे श्रेष्ठ हैं। ऐसा चेतन हंसरूप कबीरका जो पारख—गुणरूप 'ज्ञान' और हंसको देह रहे तक सन्तोष, दया, क्षमा, धैर्य, विवेक, वैराग्य, गुरुभक्ति आदि शुद्ध लक्षण धारण करनेको बतानेवाला

जो पन्थ है, वह "कबीरपन्थ" कहाता है। वही 'चेतन-पन्थ' सत्यन्यायरूप है। कबर = अर्थात् जड़ देह तथा जड़ देहसे उत्पन्न कल्पना, भास, पञ्च विषयादि अनेक विकारोंको तथा अनेक पदार्थोंको दृढ़ माननारूप जड़ाध्यासी—कर्मी, उपासक, योगी, ज्ञानी, विज्ञानी आदि नाना मतवाले और विषयासक्त संसारी मनुष्य इत्यादि अन्याययुक्त, नाशवान्, जड़ पक्षपातियोंका जड़ "कबरपन्थ" कहाता है। ऐसे जगत्में 'जड़' और 'चेतन' ये दो ही 'पन्थ' प्रवाहरूप अनादि कालसे चले आते हैं। "चेतनरूप सर्व जीव अविनाशी, सत्य हैं;" ऐसा बुद्धिसे पक्का निश्चय करके, पारखदृष्टिसे सदाकाल जड़ासक्ति रहित स्थिर रहना। अर्थात् जगत्के देहादि जड़ पदार्थोंको नाशवान्, रस रहित असार, जानते रहना। अथवाः— सर्व नाशवान् सुखोंके सूक्ष्म अहङ्काररूप अध्यासोंको दिलसे उतार देना या सर्व नाशवान् सुखोंसे उदासीन रहना। और वर्त्तमान व्यवहारमें शुद्ध रहनीयुक्त जगत्में जीवन्मुक्त हो के विचरना, सो "कबीरपन्थ" कहा है॥

ऐसा रहनीपर स्थिर रहनेवालोंको सद्गुरु श्रीकबीर साहेब यथार्थ 'मनुष्य वा हंस' कहे हैं। जगत्में पक्षपाती, अविचारी, "वेद, शास्त्र, पुराण, देव, नर, और स्त्री" ऐसे छः प्रकारके 'पशु' कहाते हैं; (उनके लक्षणोंके प्रमाण पूर्वके प्रश्न—१११ और प्रश्न—११२ में देखिये!) ॥ यथार्थ मनुष्य विषय कहा हैः—

"सदा एक सम बुद्धि प्रकाशा। भाखै वचन न कल्पित आशा॥३॥
अस विवेक शिष्य! जेहि घट आवा। सो गुण मानुष केर कहावा॥४॥

॥ गुरुबोध, पञ्चग्रन्थी। चौपाई—३—४। नं०—३७३—३७४॥

अर्थः—पारखदृष्टिसे सदोदित जिनकी बुद्धि शुद्ध चेतन

जीव सत्य है; ऐसा निश्चय करके, काया, वाचा, मनसे सर्व देहधारी जीवोंपर शक्ति अनुसार पूर्ण दयादृष्टि रखकर जो स्थिर हैं। नाशवान् कल्पित सिद्धियाँ, स्त्री, पुत्र, धनादि प्राप्तिके जड़ पदार्थोंकी आशा, वे किसीको नहीं लगाते। स्वर्ग, देवता, भूत, प्रेत, ईश्वर, ब्रह्म, ऐसे-ऐसे कल्पित पदार्थ मिलनेके वचन भी वे कभी नहीं बोलते हैं। हे शिष्य ! ऐसा यथार्थ निर्णय जिन अधिकारी पुरुषोंको धारण हुआ है, वे ही यथार्थ ज्ञानवान् (पारखी मनुष्य) पारखी सन्त हैं। नहीं तो देखनेमात्र या केवल नाममात्र सर्व मनुष्य हैं। इसलिए वे पक्षपाती, अविचारी, जड़ासक्तरूप अज्ञानी, पशुलक्षणयुक्त 'पशुमनुष्य' कहाते हैं ॥

'श्रीकबीरपन्थ' विषय बीजकमें कहा है:—

साखी:—"राह विचारी क्या करे ? जो पन्थि न चले विचार ॥
आपन मारग छोड़िके ! फिरे उजार-उजार ॥ १६१ ॥"

॥ बीजक, साखी-१६१ । टीकायुक्त ॥

अर्थ:—सद्गुरु श्रीपूरण साहेब कहते हैं कि, पारखी सद्गुरुने जो 'राह' बताई, उस राहसे 'पन्थी' चलनेवाले, वे विचारसे न चलें, तो राहने क्या करना ? पन्थीके चलनेके लिए सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबने कबीरपन्थ (चेतनपन्थ) दिखाये हैं। परन्तु विचारसे चलेगा, तो 'पारख गुरुपद'को दृढ़ बुद्धिसे धारण करेगा, और ब्रह्म, ईश्वरादि प्राप्तिके लिए वेद प्रमाणोंसे कर्म, उपासना, योग, ज्ञान, विज्ञान, ये पञ्च कोशरूप वाणीके साधनमें रहनेसे 'उजार-उजार' कहिये, भ्रम ही में सर्व मनुष्य रहेंगे। अर्थात् आकाशवत् कल्पित व्यापक ईश्वर या ब्रह्म मानकर, जगत्में आवागमनके चक्रमें पड़के वे चारों खानियोंमें अनेक दुःख भोगते ही रहेंगे।

आप 'चेतन' और अपना मार्ग 'पारख विचार,' सो जिन्होंने छोड़ा, वे भ्रममें पड़े ॥

इन प्रमाणोंसे "कबीरपन्थ" में जो छुटपनसे 'भेषधारी' विरक्त बनके अन्तःकरण शुद्धिके लिये पारखी साधु–गुरुकी काया, वाचा, मनसे सेवा करनेमें तत्पर और ब्रह्मचर्य व्रत धारण किये रहते हैं, वै "ब्रह्मचारी साधु" हैं। गृहस्थाश्रममें रहके गुरु मर्यादा प्रमाण गुरुका सत्योपदेश लेके 'कण्ठी (माला), तिलक' धारण कर, शिष्य वा सेवक बनके शुद्ध रहनीसे चलके स्त्री-सम्भोगकी आसक्तिको जो धीरे–धीरे छोड़ देते हैं, वे मन्द वैराग्यवान् "गृहस्थाश्रमी" संसारी लोग हैं। संसारको बन्धनरूप जानके स्त्री, पुत्र, घर, धनादि संसारकी माया–मोहको जिन्होंने त्याग दिया है। अनन्तर गुरु मर्यादा प्रमाण पारखी श्रीसद्‌गुरुकी शरणमें आकर गुरु द्वारा प्रदत्त टकसारी भेष लेकर मुक्तिके लिये साधुका भेष धारण कर, "कण्ठी वा एक ही मणकारूप हीरा, कौपीन, अचला, देह निर्वाहमात्र वस्त्र, लोटा, तुम्बादि पात्र रखके, तीव्र वैराग्यसे जो 'कबीरपन्थी' भेषधारी साधु बनते हैं;" वै कुछ अंशमें "संन्यास आश्रमवत्" त्यागी साधु हैं। वै सफेद वस्त्र, सफेद खड़ा तिलक, अचला, कफ़नी आदि शुद्ध श्वेत भेष जैसा सद्‌गुरुसे मिला है, वैसा ही जीवन पर्यन्त स्वच्छ रक्खा करते हैं। वै जल छानके पीते, और शुद्ध निर्मलतासे बना हुआ अन्न पावते (खाते) हैं। मदिरा, मांस, चोरी, व्यभिचारादि सर्व निषिद्ध पापकर्म वे त्याग देते हैं। ऐसी बहिरङ्ग शुद्धि रखनेसे ही उनका अन्तरङ्गसे हृदय शुद्ध होता है। गुरुभक्ति दीनता सहित सत्सङ्गके प्रभावसे दया–विचारादि शुद्ध लक्षण सद्‌गुणयुक्त वे पारखी सन्त हंसवत्

संसारमें विचरते या कहीं निरुपाधि अनुकूल जगहमें वे रहते हैं ॥
"भेष विषय" कहा हैः—

साखीः—"यतिके चिह्न लङ्गोट है, दया चिह्न उर माल ॥
राज तिलक है अदलका, शोभै परगट भाल ॥ ७५ ॥"
॥ टकसार, पञ्चग्रन्थी । साखी–७५ । नं०–१५० ॥

अर्थः—मैथुन कर्म (अष्ट मैथुनों) को अन्तर–बाहरसे त्यागकर संसारसे विरक्त बने, वह उनका विरक्तका चिह्न "लङ्गोट वा कौपीन" है। काया, वाचा, मनसे जीवोंपर दया रखके निर्वैर रहना, सो कण्ठमें माला वा मणका रूप "हीरा" धारण किया हुआ उनका 'बहिरङ्ग चिह्न' है। कपालमें चन्दनका खड़ा सफेद तिलक शोभा देता है, सो न्याययुक्त विचारसे चलनेका उनका "राज तिलक" रूप बहिरङ्ग चिह्न है ॥ "कण्ठी तिलक, इत्यादि भेष पारखी सन्त रक्खा करते हैं;" ऐसाः—

"हीरा परा बजारमें० ❀ ॥" —बीजक, साखी–१७१ ॥
इसकी टीकामें सद्गुरु श्रीपूरण साहेबजी भी लिखे हैं ॥ औरः—

❀ साखीः—"हीरा परा बजारमें । रहा छार लपटाय ॥
केतेहिं मूरख पचि मुये । कोइ पारखि लिया उठाय ॥ १७१ ॥"

टीका गुरुमुखः—ज्ञान सिद्धान्त जगत् बजारमें परा है, सो उसके ऊपर विषय, कर्म, उपासनारूपी छार–माटी लगी है, तामें लपटा मालूम होता है; ताते किसीको प्राप्त होता नहीं। केते ही मूर्ख पचिके मर गये; कोई पारखी जनोंने परखके उठाय लिया। ये अभिप्राय। या हीरा पारखी सन्त जगत् बजारमें पड़े हैं, जगत्के देखनेमें जगत् सरीखे बर्तते हैं। उत्तम भोजन, उत्तम जलपान, करते हैं; कण्ठी-तिलक आदि भेष भी रखते हैं। ताते संसारको ग्रेहीवत् मालूम होते हैं। परन्तु मूर्ख उनका भेद नहीं पाते, ताते नाहक धोखेमें पचि–पचिके मरते हैं, कोई पारखीजन उनको परख लेते हैं। ये अर्थ ॥ त्रिजासे बीजक, साखी–१७१॥

चौ०:—"टोपी कफ़नी कुरता राजै। परख विलास सबै शुभ साजै ॥ ७ ॥"

॥ टकसार, पञ्चग्रन्थी। चौपाई-७। नं०-१९६८ ॥

अर्थः—टोपी, कफ़नी, कुरता रक्खें या नहीं रक्खें, पारख-विलासी सन्त होवें, तो उन्हें सब शोभा देता है। यदि ऊपरसे भेषकी बहुत शोभा दिखाई; परन्तु पारखदृष्टिकी रहनी या सर्व जड़ाध्यास रहित पूर्णतासे पारखदृष्टि ग्रहण नहीं हुई, तो उन सन्तोंकी जीवन्मुक्ति नहीं होगी, बारम्बार नरजन्मादि लेने ही पड़ेंगे।

इस प्रकारसे गुरुभक्ति दीनता सहित बालपनसे ब्रह्मचर्य व्रतधारी साधु, गृहस्थाश्रमी शिष्य लोग और कुछ संन्यास-आश्रममें मिलित त्यागी साधु, ऐसे—"ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, और संन्यास" ये तीन ही आश्रम कबीरपन्थमें माने जाते हैं। इस पन्थमें "वानप्रस्थ आश्रम" माना नहीं। त्यागी पारखी सन्तोंको ही परमहंस (सबसे श्रेष्ठ जीवन्मुक्त सन्त) कहे हैं; इस प्रकारसे आप भी अब श्रीकबीरपन्थमेंका आश्रमोंका भेद जान जाइये! ॥

॥❀॥ अथ दान देनेमें सुपात्र-कुपात्र लक्षण वर्णन ॥❀॥

प्रश्न (१२६) श्रीकबीरपन्थमें ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, और कुछ अंशमें त्यागी साधुरूप संन्यास, ये तीन ही आश्रम माने जाते हैं, ऐसा मैं अब जान चुका हूँ ? ॥

अब दान देनेमें 'सुपात्र' और 'कुपात्र' ब्राह्मण तथा साधु-गुरुरूप श्रीसद्गुरुदेव तिनके लक्षण कैसे जानना ? सो भी दया करके कहिये ? ॥

(१२६) उत्तरः—सुनिये !'सुपात्र' और 'कुपात्र' ब्राह्मणोंके भेद विषय कहा हैः—

श्लोकः—"धर्मध्वजी सदा लुब्धश्छाद्मिको लोकदम्भकः ॥
बैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसन्धकः ॥ १९५ ॥
अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकःस्वार्थसाधनतत्परः ॥
शठो मिथ्याविनीतश्च बकव्रतचरो द्विजः ॥ १९६ ॥
॥ —मनुस्मृतिः, अध्याय-४ । श्लोक-१९५ । १९६ ॥

अर्थः—जो धर्म करके लोगोंमें प्रसिद्ध करता है, सो "धर्मध्वजी" है । परधनकी अभिलाषा करनेवाला, छली–कपटी, दाम्भिक, हिंसक, पराये गुणको सहन न करनेवाला, उस द्विजको "बिडाल व्रती (बिल्लीकी वृत्ति)" जानना ॥ विनय प्रसिद्धिके लिये सदैव नीचे देखनेवाला, निष्ठुरतासे चलनेवाला, स्वार्थसाधनमें तत्पर, शठ–कुटिल, झूठ विनय, ऐसा जो द्विज है, उसे "बक वृत्ति" जानना । इनको जलका दान तक न देवें, कोई भी सत्कार न करें ॥

मनुस्मृतिःके चतुर्थ अध्यायमें और लिखा ❀ हैः—

"जो 'द्विज' वेद-विद्या और तपसे रहित है, उसको 'हव्य' = (देवताओंके निमित्तका अन्न) और 'कव्य' = (पितरोंके निमित्तका अन्न) दान दिया हुआ नष्ट होता है। यदि अविद्वान् ब्राह्मण 'सुवर्ण' और 'अन्नदान' लेवें, तो आयुका नाश, 'भूमिदान' लेनेसे शरीरका, घोड़ेसे नेत्रका, वस्त्रसे त्वचाका, घृतसे तेजका, और तिलके दान लेनेसे उसके प्रजाका नाश होता है ॥"

❀ "अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः ॥ अम्भस्यश्मप्लवेनेव सह तेनैव मज्जति ॥ १९० ॥ हिरण्यमायुरन्नं च भूर्गौश्चाप्योषतस्तनुम् ॥ अश्वश्चक्षुस्त्वचं वासो घृतं तेजस्तिलाः प्रजाः ॥ १८९ ॥ त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाप्यर्जितं धनम् ॥ दातुर्भवत्यनर्थाय परत्रादातुरेव च ॥ १९३ ॥ यथा प्लवेनौपलेन निमज्जत्युदके तरन् ॥ तथा निमज्जतोऽधस्तादज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ ॥ १९४ ॥"
॥ —मनुस्मृतिः, अध्याय ४ । श्लोक-१९० । १८९ । १९३–१९४ ॥

परन्तुः—ऐसे वचन भयानक हैं, कुछ यथार्थ न्यायके नहीं है। वेदवेत्ता ब्राह्मण श्रेष्ठ ठहरा करके तिन विषय कहे हैंः—

मनुस्मृतिःके अध्याय-१०, श्लोक-६२ में लिखा † हैः—

"मांस, लावा (फुली), और नमक बेचनेवाला ब्राह्मण तत्काल पतित होता है, और दूध बेचनेवाला ब्राह्मण तीन दिनमें ही शूद्र हो जाता है ॥"

अत्रिस्मृतिःके श्लोक-३७६ और ३७८ में लिखा ‡ हैः—

"जो ब्राह्मण लाख, लवण, कुसुम्भ, घी, मिठाई, दूध, और मांसको बेचा करता है, उसे "शूद्र-ब्राह्मण" कहते हैं॥ जो ब्राह्मण वेद और परमात्माके तत्त्वको कुछ नहीं जानता, केवल जनेऊके बलसे ही अत्यन्त अभिमान करता है, उसे 'पशु-ब्राह्मण' कहते हैं ॥

इन दोनों प्रकारके ब्राह्मणोंको दान देनेमें योग्य नहीं ॥"

व्यासस्मृतिःके अध्याय ४, श्लोक ७० में लिखा ❀ हैः—

"जो पंक्तिमें भेद करता हो; अर्थात् सर्वको सब पदार्थ न परोसे, वृथा पाकी = बलि-वैश्वदेव (होम) नित्य न करै, अपने लिये ही अन्न पकावे, ब्राह्मणोंकी निन्दा करै, जो आज्ञाको करता हो, वेदको बेचै, अर्थात् द्रव्यके लोभसे पढ़ावै वा जप करै, ये

---

† "सद्यःपतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ॥ त्र्यहेण शूद्रोभवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् ॥ ६२ ॥" —मनुस्मृतिः, अध्याय-१० । श्लोक-६२ ॥

‡ "लाक्षालवणसंमिश्रं कुसुंभं क्षीरसर्पिषः ॥ विक्रेता मधुमांसानां स विप्रः शूद्र उच्यते ॥ ३७६ ॥ ब्रह्मतत्त्वं न जानाति ब्रह्मसूत्रेण गर्वितः ॥ तेनैव स च पापेन विप्रः पशुरुदाहृतः ॥ ३७८ ॥" -अत्रिस्मृतिः, श्लोक-३७६ । ३७८ ॥

❀ "पंक्तिभेदी वृथापाकी नित्यं ब्राह्मणनिंदकः ॥ आदेशी वेदविक्रेता पंचैते ब्रह्मघातकाः ॥ ७० ॥ —व्यासस्मृतिः, अध्याय-४ । श्लोक-७० ॥

श्लोकः—"धर्मध्वजी सदा लुब्धश्छाद्मिको लोकदम्भकः ॥
वैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसन्धकः ॥ १९५ ॥
अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकःस्वार्थसाधनतत्परः ॥
शठो मिथ्याविनीतश्च बकव्रतचरो द्विजः ॥ १९६ ॥
॥ —मनुस्मृतिः, अध्याय-४ । श्लोक-१९५ । १९६ ॥

अर्थः—जो धर्म करके लोगोंमें प्रसिद्ध करता है, सो "धर्मध्वजी" है । परधनकी अभिलाषा करनेवाला, छली-कपटी, दाम्भिक, हिंसक, पराये गुणको सहन न करनेवाला, उस द्विजको "बिडाल व्रती (बिल्लीकी वृत्ति)" जानना ॥ विनय प्रसिद्धिके लिये सदैव नीचे देखनेवाला, निष्ठुरतासे चलनेवाला, स्वार्थसाधनमें तत्पर, शठ-कुटिल, झूठ विनय, ऐसा जो द्विज है, उसे "बक वृत्ति" जानना । इनको जलका दान तक न देवें, कोई भी सत्कार न करें ॥

मनुस्मृतिःके चतुर्थ अध्यायमें और लिखा ❀ है:—

"जो 'द्विज' वेद-विद्या और तपसे रहित है, उसको 'हव्य' = (देवताओंके निमित्तका अन्न) और 'कव्य' = (पितरोंके निमित्तका अन्न) दान दिया हुआ नष्ट होता है। यदि अविद्वान् ब्राह्मण 'सुवर्ण' और 'अन्नदान' लेवें, तो आयुका नाश, 'भूमिदान' लेनेसे शरीरका, घोड़ेसे नेत्रका, वस्त्रसे त्वचाका, घृतसे तेजका, और तिलके दान लेनेसे उसके प्रजाका नाश होता है ॥"

❀ "अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः ॥ अम्भस्यश्मप्लवेनेव सह तेनैव मज्जति ॥ १९० ॥ हिरण्यमायुरन्नं च भूर्गौश्चाप्योषतस्तनुम् ॥ अश्वश्चक्षुस्त्वचं वासो घृतं तेजस्तिलाः प्रजाः ॥ १८९ ॥ त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाप्यर्जितं धनम् ॥ दातुर्भवत्यनर्थाय परत्रादातुरेव च ॥ १९३ ॥ यथा प्लवेनौपलेन निमज्जत्युदके तरन् ॥ तथा निमज्जतोऽधस्तादज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ ॥ १९४ ॥"
॥ —मनुस्मृतिः, अध्याय ४ । श्लोक-१९० । १८९ । १९३-१९४ ॥

परन्तुः—ऐसे वचन भयानक हैं, कुछ यथार्थ न्यायके नहीं है। वेदवेत्ता ब्राह्मण श्रेष्ठ ठहरा करके तिन विषय कहे हैं:—

मनुस्मृतिःके अध्याय–१०, श्लोक–९२ में लिखा † है:—

"मांस, लावा (फुली), और नमक बेचनेवाला ब्राह्मण तत्काल पतित होता है, और दूध बेचनेवाला ब्राह्मण तीन दिनमें ही शूद्र हो जाता है ॥"

अत्रिस्मृतिःके श्लोक–३७६ और ३७८ में लिखा ‡ है:—

"जो ब्राह्मण लाख, लवण, कुसुम्भ, घी, मिठाई, दूध, और मांसको बेचा करता है, उसे "शूद्र-ब्राह्मण" कहते हैं॥ जो ब्राह्मण वेद और परमात्माके तत्त्वको कुछ नहीं जानता, केवल जनेऊके बलसे ही अत्यन्त अभिमान करता है, उसे 'पशु-ब्राह्मण' कहते हैं ॥

इन दोनों प्रकारके ब्राह्मणोंको दान देनेमें योग्य नहीं ॥"

व्यासस्मृतिःके अध्याय ४, श्लोक ७० में लिखा ❀ है:—

"जो पंक्तिमें भेद करता हो; अर्थात् सर्वको सब पदार्थ न परोसे, वृथा पाकी = बलि-वैश्वदेव (होम) नित्य न करै, अपने लिये ही अन्न पकावै, ब्राह्मणोंकी निन्दा करै, जो आज्ञाको करता हो, वेदको बेचै, अर्थात् द्रव्यके लोभसे पढ़ावै वा जप करै, ये

---

† "सद्यःपतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ॥ त्र्यहेण शूद्रोभवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् ॥ ९२ ॥" —मनुस्मृतिः, अध्याय–१० । श्लोक–९२ ॥

‡ "लाक्षालवणसंमिश्रं कुसुंभं क्षीरसर्पिषः ॥ विक्रेता मधुमांसानां स विप्रः शूद्र उच्यते ॥ ३७६ ॥ ब्रह्मतत्त्वं न जानाति ब्रह्मसूत्रेण गर्वितः ॥ तेनैव स च पापेन विप्रः पशुरुदाहृतः ॥ ३७८ ॥" –अत्रिस्मृतिः, श्लोक–३७६ । ३७८ ॥

❀ "पंक्तिभेदी वृथापाकी नित्यं ब्राह्मणनिंदकः ॥ आदेशी वेदविक्रेता पंचैते ब्रह्मघातकाः ॥ ७० ॥ —व्यासस्मृतिः, अध्याय–४ । श्लोक–७० ॥

पाँचों 'ब्रह्महत्यारेब्राह्मण' दान देनेसे वर्जित हैं ॥"

व्यासस्मृतिःके अध्याय–४, श्लोक–५२ और ६४–६५ में लिखा ❀ हैः—"वेदसे पूर्ण तृप्त ब्राह्मणको जिमावै। परन्तु निराहारी छः रात्रियोंके उपासे मूर्ख ब्राह्मणको कदापि न जिमावै॥ शूद्रका अन्न उदरमें रह कर जो ब्राह्मण मर जाता है, वह शूकरकी योनिमें वा शूद्रकुलमें जन्म लेता है ॥"

"वह १२ जन्म तक गीध, ७ जन्म तक शूकर, और ७ जन्म तक कुत्ता होता है, ऐसा मनुजीका वचन है ॥" —व्यास स्मृतिः ॥

परन्तुः—परमहंस श्रेष्ठ संन्यासीको म्लेच्छ शूद्रादिकोंके घरोंका पकाया हुआ अन्न खानेको कहा है; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न–१२४ में देखिये !) । वे किस प्रकारसे मुक्त होंगे? अर्थात् पशु आदि योनियाँ वे जरूर भोगते रहेंगे ॥

'वसिष्ठ' गणिका पुत्र; 'व्यास' धीमरकी कन्याका पुत्र;शूद्रिणीसे 'भारद्वाज' ऋषि; पासीके पुत्र 'वाल्मीकि' मुनि; गौतनुसे 'गौतम' ऋषि; हरिणीपुत्र 'शृङ्गि' ऋषि; ऐसे–ऐसे शूद्र और पशुओंसे ब्राह्मण उत्पन्न हुए; ऐसा † पुराण, इतिहासोंमें वर्णन है;

❀ वेदपूर्णमुखं विप्रं सुभुक्तमपि भोजयेत् ॥ न च मूर्खं निराहारं षड्रात्रमुपवासिनम् ॥ ५२ ॥ शूद्रान्नेनोदरस्थेन यदि कश्चिन्म्रियेत यः ॥ स भवेत्सूकरो नूनं तस्य वा जायते कुले ॥ ६४ ॥ गृध्रो द्वादश जन्मानि सप्तजन्मानि सूकरः ॥ श्वानश्च सप्तजन्मानि इत्येवं मनुरब्रवीत् ॥ ६५ ॥"

॥ —व्यासस्मृतिः, अध्याय–४ । श्लोक–५२ । ६४ । ६५ ॥

† "पुनर्ज्जातिरिति चेत्तर्हि अन्यजातेः समुद्भवा बहवो महर्षयः सन्ति। ऋष्यशृङ्गो मृग्याम्, कौशिकः कुशास्तरणे, गौतमः गौतनो, वाल्मीको वल्मीके, व्यासः कैवर्तकन्यायाम्, वसिष्ठ उर्वश्याम्, विश्वामित्रः क्षत्रियायाम्, अगस्त्यः कलशाज्जातः, माण्डुकः, मंडूकीगर्भोत्पन्नः, मातंगो मतंगपुत्रः, पराशरश्चण्डाली–

इसलिए इनकी भी मुक्ति नहीं हुई होगी। अथवाः—चराचर, (जड़—चेतनरूप), एक अद्वैत ब्रह्म मानके सब ब्रह्मज्ञानी चौ-राशि योनियोंमें जन्म लेते ही रहेंगे; ऐसा सत्यन्यायसे ठहरता है ॥

परन्तुः—मनुस्मृतिःके अध्याय–३, श्लोक–९६, और ९८ † में, तथा अध्याय–४, श्लोक–१८६ में ❀, और अध्याय–७ श्लोक–८५ में लिखा ‡ हैः—"बहुत अन्न न होवै, तो ग्रासमात्र भी अन्न व्यञ्जनादिकोंसेयुक्त करके अथवा जलसे भरा हुआ पात्र गन्ध, पुष्प, फल इनसेयुक्त करके वेदार्थके जाननेवाले ब्राह्मणके अर्थ देवै॥"

"विद्या और तपसेयुक्त ब्राह्मणके मुखमें हवन किया हुआ अन्न, राजभय, चोरभय, व्याधिभय, तथा महान् पापोंसे तिराय देता है ॥" "जो विद्या, तप, और आचारसेयुक्त ब्राह्मण दान लेनेमें समर्थ है; तो भी बार–बार प्रतिग्रह (दान) लेनेसे उन ब्राह्मणोंका ब्रह्मतेज नष्ट हो जाता है ॥" "ब्राह्मण सिवाय औरोंमें दान दिया

गर्भोत्पन्नः, अनुचरो हस्तिनीगर्भोत्पन्नः, भारद्वाजः शूद्रिणीगर्भोत्पन्नः, द्रोणाचार्य्यः द्रोणोद्भवः, नारदो दासीपुत्रः, ब्रह्मा कमलोद्भव इति श्रूयते पुराणे। एतेषां जात्या विनापि सम्यक् ज्ञान विशेषाद् ब्राह्मण्यमत्युत्तमं श्रूयते। तस्माज्जातिः ब्राह्मण्यहेतुर्न्न भवति ॥ ५ ॥" —वज्रसूची उपनिषद् ॥

† "भिक्षामप्युदपात्रं वा सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥ वेदतत्त्वार्थविदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥ ९६ ॥ विद्यातपः समृद्धेषु हुतं विप्रमुखाग्निषु ॥ निस्तारयति दुर्गाच्च महतश्चैव किल्विषात् ॥ ९८ ॥" –मनु०, अध्याय–३ । श्लोक–९६ । ९८॥

❀ "प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसंगं तत्र वर्जयेत् ॥ प्रतिग्रहेण ह्यस्याशु ब्राह्मं तेजः प्रशाम्यति ॥ १८६ ॥" —मनुस्मृतिः, अध्याय–४ । श्लोक–१८६ ॥

‡ "सममब्राह्मणे दानं द्विगुणंब्राह्मणब्रुवे ॥ प्राधीते शतसाहस्रमनन्तं वेदपारगे ॥ ८५ ॥" —मनुस्मृतिः, अध्याय–७ । श्लोक–८५ ॥

हुआ समान पुण्य होता है। क्रिया करके नष्ट है, और "मैं ब्राह्मण हूँ" इतना ही कहता है, उसे दान देनेमें दुगुना फल है, वेद पढ़े हुए ब्राह्मणको दान देनेमें लाख गुना फल, और वेदवेत्ता ब्राह्मणके दान देनेमें अनन्त गुना फल है; ऐसी सत्पात्रकी विशेषता देखके दान देना चाहिये ॥"

इस प्रकारसे विशेष 'माहात्म्य' और श्रेष्ठतासे ब्रह्मज्ञानियोंकी और 'ब्राह्मण जाति'की ही बड़ाई की है, सो यथार्थ नहीं है ॥

संवर्त्तस्मृतिःके श्लोक—८१ और ८० में लिखा ‡ हैः—

"सम्पूर्ण दानोंमें अन्नका दान ही श्रेष्ठ है। क्योंकि सर्व प्राणियोंका 'जीवन' अन्न ही से है, और तत्काल तृप्ति होती है। वैसी धनादि दानसे किसीकी भी तृप्ति नहीं होती ॥ जो मनुष्य 'अन्नका' और 'जलका' दान करता है, सो 'नित्य पुष्ट' तथा सम्पूर्ण कर्मोंसेयुक्त और सुखी रहता है ॥"

दक्षस्मृतिःके अध्याय—३, श्लोक—१६ और १७ में लिखा ❀ हैः—

"माता, पिता, गुरु, मित्र, नम्र, उपकारी, दीन, अनाथ, और सज्जन, इनको दान देना 'सफल' है ॥ और धूर्त्त, बन्दीवान्, मल्ल, कुवैद्य, कपटी, शठ, चाटु, चारण, और चोर, इनको दान देना 'निष्फल' है ॥"

---

‡ "सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतम् ॥ सर्वेषामेव जंतूनां यतस्तज्जीवितं परम् ॥ ८१ ॥ अन्नदस्तु भवेन्नित्यं सुतृप्तो निभृतः सदा ॥ अंबुदश्च सुखी नित्यं सर्वकर्मसमन्वितः ॥ ८० ॥" —संवर्त्तस्मृतिः, श्लोक—८१ । ८० ॥

❀ "मातापित्रोर्गुरौ मित्रे विनीते चोपकारिणि ॥ दीनानाथविशिष्टेषु दत्तं तत्सफलं भवेत् ॥ १६ ॥ धूर्त्ते बन्दिनि मल्ले च कुवैद्ये कितवे शठे ॥ चाटुचारण-चोरेभ्यो दत्तं भवति निष्फलम् ॥ १७ ॥"—दक्षस्मृतिः, अ०—३ । श्लोक—१६।१७॥

विष्णुस्मृतिःके द्वितीय अध्यायमें ❀ लिखा हैः—

"जो दिन वा रात्रि समय अभ्यागत आवेगा, उसको आसन, भूमि, जल, वाणीसे भलीभाँति गृहस्थाश्रमी मनुष्य आदर सत्कार करै। कोमल वाणीसे दीनता पूर्वक भाषण करके उसको सन्तुष्ट करै, उनसे विद्यादिक विचार करै ॥"

"पहिले पहल उसको शयन करा कर उसकी आज्ञा ले पीछेसे आप शयन करै। जो भिक्षाके लिए योगी आवै, तो उसके सन्मुख बैठ कर उसीका नित्य पूजन न करै, तो गृहस्थ पापका भागी होता है ॥"

मनुस्मृतिःके 'तृतीय' † और 'चतुर्थ' अध्यायोंमें लिखा ‡ हैः—

"गृहस्थ हररोज अतिथिको भोजन करावै। 'संन्यासी' तथा 'ब्रह्मचारी'को विधिपूर्वक भिक्षा देके फिर आप भोजन करै। काष्ठ, जल, अन्न, शाक, दूध, दही, फल, फूल इत्यादि बिना माँगे

❀ "दिवा वा यदि वा रात्रौ अतिथिस्त्वाव्रजेद्यदि ॥ ९ ॥ तृणभूवारिवाग्भिस्तु पूजयेत्तं यथाविधि ॥ कथाभिः प्रीतिमाहृत्य विद्यादीनि विचारयेत् ॥ १० ॥ संनिवेश्याथ विप्रं तु संविशेत्तदनन्तरम् ॥ यदि योगी तु संप्राप्तो भिक्षार्थी समुपस्थितः ॥ ११ ॥ योगिनं पूजयेन्नित्यमन्यथा किल्बिषी भवेत् ॥ १२ ॥"
॥ —विष्णुस्मृतिः, अध्याय–२। श्लोक–९ से १२ तक ॥

† "कृत्वैतद्बलिकर्मैवमतिथिं पूर्वमाशयेत् ॥ भिक्षां च भिक्षवे दद्याद्विधिवद्-ब्रह्मचारिणे ॥९४॥ यत्पुण्यफलमाप्नोति गां दत्वा विधिवद्गुरोः॥ तत्पुण्यफलमा-प्नोति भिक्षां दत्वाद्विजो गृही ॥९५॥"—मनुस्मृतिः,अध्याय–३।श्लोक–९४।९५॥

‡ "एधोदकं मूलफलमन्नमभ्युद्यतं च यत् ॥ सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्मध्वथाभय-दक्षिणाम् ॥ २४७ ॥ गुरून्भृत्यांश्चोज्जिहीर्षन्नर्चिष्यन्देवतातिथीन् ॥ सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्न तु तृप्येत्स्वयं ततः ॥ २५१ ॥ गुरुषु त्वभ्यतीतेषु विना वा तैर्गृहे वसन् ॥ आत्मनो वृत्तिमन्विच्छन्गृह्णीयात्साधुतः सदा ॥ २५२ ॥ आर्धिकःकुलमित्रं च गोपालो दासनापितौ ॥ एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत् ॥ २५३ ॥"
॥ —मनुस्मृतिः, अध्याय–४। श्लोक–२४७। श्लोक–२५१ से २५३ तक ॥

(अयाचित वृत्तिसे) कोई देवै, तो उसे ब्राह्मण ले लेवै; पीछे लौटाय न देवै । ब्राह्मण क्षुधासे पीड़ित हो, अथवा अभ्यागतके पूजन अर्थ सबोंसे दान ग्रहण करके या भिक्षासे अपना निर्वाह करै । दास, नाई, अपना खेती करनेवाला या कुलका मित्र, गोपाल हो, इन सबोंका अन्न ब्राह्मणोंको भोजन करने लायक है।।"

इन प्रमाणोंसे नाममात्र ब्राह्मण अथवा ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणोंको श्रेष्ठ ठहरा करके उनको दान देनेका विशेष फल कहा है । परन्तु वे ही स्वयं मुक्त नहीं; भ्रम कल्पनासे चराचर व्यापक ईश्वर या शुद्धब्रह्म मानके जड़ाध्यासी बन कर भ्रममें पड़े हैं; वे अन्य मनुष्योंको कैसे मुक्त करेंगे ? इसलिये ब्राह्मणोंका माहात्म्य करके दान देनेमें विशेष फल नहीं है । भूखे जान कर ब्राह्मणादि कोई जातिवाले होवें; अथवा अङ्गहीन, अन्धे, लूल्हे, दुर्बल मनुष्य होवें या पशु, पक्षी, चींटियाँदि सर्व जीवोंको यथायोग्य अन्न, वस्त्र, और जल, शक्ति अनुसार देना, ये गृहस्थ लोगोंका धर्म ही है । सर्व जीवोंपर दया रखनेसे ही तिनके अन्तःकरण शुद्ध हो जाते हैं । अनन्तर मुक्तिके लिये सत्यासत्यके विचारवान त्यागी साधु-गुरु वा पारखी सन्त, इनका अन्न, वस्त्र, जलादिकोंसे दान देनेमें विशेष फल है । वे ही सच्चे मनुष्य पारखी सन्त श्रीसद्गुरु हैं; ऐसे जानने चाहिये । (तिसको प्रमाण पूर्वके प्रश्न–११० में देखिये !) ।। और:—

"वस्तू अन्तै खोजे अन्तै० ❀ ।।" बीजक, साखी–२४६ ।।

❀ साखीः–"वस्तू अन्तै खोजे अन्तै । क्योंकर आवै हाथ ? ।।
सज्जन सोई सराहिये । जो पारख राखै साथ ! ।।२४६।। बीजक ।।"

टीका गुरुमुखः—वस्तु तो और जगहपर, और खोजता और जगह पर है, तो

इसकी टीकामें सद्गुरु श्रीपूरण साहेब लिखे हैं:—

"पारखी स्थितिवान् सन्तोंकी कीर्ति करना, उनकी ही स्तुति करना, उनकी सङ्गति करना, उनकी सेवा करना, तन, मन, धन, सर्व खर्च करके उनके साथ विचार करना, उन्हींसे पारखस्थिति मिलैगी ॥"

इन प्रमाणोंसे सत्यन्यायी श्रीसद्गुरुरूप पारखी सन्त-गुरु यथार्थ विवेकसे या पारखदृष्टिसे जड़—चेतनका निर्णय करके सर्व जिज्ञासु—मनुष्योंको पारखका सत्यबोध देते हैं। उन त्यागी सन्तोंका माहात्म्य करके गृहस्थोंको अपने चित्तशुद्धि निमित्त उनको ही दान देनेमें 'विशेष फल' है ॥

मांसाहारी, गृहस्थधर्मी, वेदपाठी, विषयासक्त पण्डित वा ब्राह्मण अथवा विरक्त साधु बनकर फिर गृहस्थ—संयोगी बने हुए नाममात्र साधु, ये सर्व दान देनेमें 'कुपात्र' हैं। तिनको दान देनेमें दान देने वालोंकी बुद्धि माया मलसे कभी निर्मल नहीं होगी ॥

परन्तुः—जो केवल जीवमात्रोंपर दयादृष्टि रखके झीनी दृष्टिसे शक्ति अनुसार जीव—हिंसा बचाते हैं। भूखा, प्यासा,

कैसे हाथ लगै ? सज्जन विवेकी सोई जाके पास पारख होय, ताही को सराहिये; औ बेपारखी गाफिलको क्या सराहिये, जो भ्रमचक्रमें परा है। अरे ! वस्तु जीव तो देहमें है, औ पोथिनमें, पथरनमें, पानिनमें, धातु-मूरतिनमें, काष्ठनमें, स्वर्गादिकनमें, खोजते हो, तो जीव वस्तु कैसे मालूम होवेगी। ताते पारखी सन्तनकी तारीफ है, कि जहाँ वस्तु है वहाँसे उठाय लेते हैं। जानते हैं कि एक पारख बिना सब भ्रममें पड़े हैं; पारख बिना साँची—झूठी वस्तु कैसे मालूम होवेगी ? ताते जो पारख पास रखते हैं, सो पारखी पारखरूप स्थितिवान् सन्त। उनकी कीर्ति करना, उनकी स्तुति करना, उनकी सङ्गति करना, उनकी सेवा करना, तन, मन, धन, सब खर्च करके उनके साथ विचार करना, उन ही से पारख स्थिति मिलेगी। ये अर्थ ॥

॥ —त्रिजासे बीजक, साखी—२४६ ॥

मनुष्य, पशु, पक्षी आदि कोई देहधारी जीव होवें, उनको यथाशक्ति अन्न—जलका दान सदोदित दिया करते, वे मनुष्यके निजधर्मको यथार्थ जानते हैं, ऐसा जानिये ! । फिर वे जीव—हिंसक, चोर, जार, मदिरा—मांस सेवन करनेवाले इत्यादि कैसे भी क्रियावाले होवें, उनका कर्मफल वे भोगेंगे, कुछ दान देने वालोंको नहीं लगेगा । परन्तु अन्न, जलको छोड़कर धन—द्रव्य आदि दान वैसे अनधिकारियोंको देना नहीं चाहिये ! ॥

मकान बाँधकर जहाँ साधु, सन्त, अतिथि, अभ्यागत, गरीब, अङ्गहीन जीवोंपर अन्न, जल, वस्त्रादि परोपकार होता है; अथवा संसारके स्त्री-सम्भोगसे विरक्त त्यागी बने हुए ब्रह्मचारी, संन्यासी, योगी, भेषधारी ऐसे साधुओंको, अथवा विवेकी सन्तोंको कोई अन्न, वस्त्र, द्रव्य, आदि दान दिया करें, तो यथार्थ उसका फल होता है । अर्थात् ऐसा ही दान 'सत्यदान' कहाता है, इसीसे मनुष्योंकी बुद्धि शुद्ध होगी; ऐसा जानना चाहिये ! ॥

इस प्रकारसे दान देनेमें ब्राह्मण, साधु आदि "सुपात्रों" और "कुपात्रों" का लक्षण मैंने आपको दिखाया है । सो आप भी अब इसे ठीक तरहसे जान लीजिये ! ॥

॥ ❋ ॥ अथ नाम—स्मरण वर्णन ॥ ❋ ॥

प्रश्न (१२७) दान देनेमें ब्राह्मण, साधु आदि "सुपात्रों और कुपात्रोंका लक्षण" आपके दयासे मैं जान गया हूँ ? ॥

अब संसारमें कोई "सोहं, ॐ, और राम," ये मुख्य तीन प्रकारके नाम—स्मरण करनेसे अन्तमें मुक्ति मानते हैं; तिनका भेद कैसे जानना ? सो दया करके दिखाइये ? ॥

(१२७) उत्तरः—सुनिये! उक्त नाम-स्मरण विषय कहा हैः—

साखीः—"श्वासा सो सोहं भया। सोहंसे ॐकार॥
ॐकारसे ररा भया। पण्डित! करो विचार॥ १८५॥"

अर्थ स्पष्ट है॥ टकसार, पञ्चग्रन्थी। साखी-१८५। नं०-६४४॥

भावार्थ ऐसा है कि, प्राणरूप भीतर-बाहर चलनेवाला श्वास, सो वायु तत्त्वरूप जड़ है; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न-७८ में देखिये!)। जब नासिका द्वारा 'श्वास भीतर नाभि तक' गया, तब "सो" अक्षरकी उत्पत्ति और 'श्वास नासिकासे बाहर निकला,' तब "हं" अक्षरके उत्पत्तिकी कल्पना करके "सोहं" नाम-स्मरण सिद्ध किया है। उसे "अजपाजाप" अर्थात् बिना जपे आप-ही-आप जप होता है, ऐसा माने हैं॥ तहाँ कहा भी हैः—

"सहस्र एकईस छौसै दिन रात। पल षट् श्वासा गिनति गिनात॥ २१॥"

॥ समष्टिसार, पञ्चग्रन्थी। चौकड़ी-२१। नं०-२६६॥

अर्थः—अच्छे प्रकृतिके मनुष्यकी 'एक बार नेत्रकी पलक' गिरती है, उतनी देरमें 'षट् श्वास' होते हैं। और रात-दिन मिलके 'एकईस हजार छः सौ श्वासका जाप होता है,' ऐसा योगीजन कल्पनासे प्रमाण बाँधे हैं॥

पहिलाः—महादेवादि योगी यही "सोहं" 'अजपाजाप' जपते-जपते श्वासवायु मस्तकमें लय करके वहाँ कुछ काल तक स्थिर रहनेसे अनेक सिद्धियाँ प्राप्त कर लिये; ऐसा गुरुवालोग कल्पना किये हैं। ऐसा 'सोहं शब्द' रूप नाम-स्मरण जड़ वायु तत्त्वरूप श्वास ही में सिद्ध किये हैं॥

दूसराः—प्रणवरूप 'ॐकार' का नाम-स्मरण ठहराया है। वह "अकार, उकार, मकार, अर्द्धमात्रा, और बिन्दु," ये पाँच मात्रा ही

एकत्र मिलाय 'ॐकार शब्द' सिद्ध किये हैं। ये मात्राएँ क्रमसे "मस्तक, नाभि, हृदय, कण्ठ, और त्रिकुटी; तथा त्रिकुटी, कण्ठ, हृदय, नाभि, और मस्तक;" ऐसा उलट-पुलट पाँच स्थानोंपर श्वासवायुकी कुछ विशेष गति होकर श्वासचक्रमें ही "ॐकार" शब्द प्रकट होता है; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न-३८ में देखिये !)। ऐसा 'ॐकारका नाम-स्मरण' जड़ वायु तत्त्वरूप श्वासमें ही सिद्ध किये हैं। ॐकारका जाप ब्रह्मादिक ब्राह्मण, ब्रह्मचारी, और संन्यासी, पूर्वमें जपते रहे, और अब जपते जाते हैं। ब्राह्मण 'प्रणवरूप ॐकार'का ध्यान त्रिकुटीमें किया करते; तथा कर्म-मार्गमें 'ॐकार' ही 'बीजमन्त्र' माना गया है ॥

तीसराः—'रँ-रँ' वा 'र-रा' शब्द (सूक्ष्म अनहद शब्द), नादरूप सदैव मस्तकमें होता ही रहता है। दोनों कानोंके छिद्र अङ्गुलियोंसे बन्द किये बाद वे झीने नादरूपी शब्द वा आवाज मस्तकमें सुनाई देते हैं। वह अनहद बाजा—१. दुन्दुभी, २. भेरी, ३. घण्टा, ४. मृदङ्ग, ५. झाँझ, ६. शङ्ख, ७. शहनाई, ८. सितार, ९. वीणा, और १०. बाँसुरी, ऐसे मुख्य दश प्रकारके कहे हैं; उसेप्रमाणः—

"चुम्बक लोहे प्रीति है० ❀ ॥" —बीजक, साखी-३१८ ॥

❀ साखीः—"चुम्बक लोहे प्रीति है। लोहे लेत उठाय ॥
ऐसा शब्द कबीरका। कालसे लेत छुड़ाय ॥ ३१८ ॥ बीजक ॥"

टीका मायामुखः—माया जीवनको उपदेश करती है कि, हे जीव ! 'चुम्बक' कहिये गुरुका शब्द और 'लोहा' कहिये सुर्त, जैसा चुम्बक लोहेको उठाय लेता है, ऐसे सो गुरुका शब्द है। 'गुरुका शब्द' कहिये 'अनहद,' सो अनहद दश प्रकारका—पहिले दुन्दुभी, घण्टा, मृदङ्ग, झाँझ, नफिरी, शङ्ख, शहनाई, वीणा, भेरी, बाँसुरीनाद, इस प्रकारके अनेक तरहके नाद, तामें मुख्य दश नाद, तामें बाँसुरी-नाद, अन्तमें ब्रह्माण्डके विषय शब्द उठता है। ता शब्दमें सुर्त प्रवेश

इसकी टीकामें कहा है ॥ वही अनहद 'रँ–रँ वा राँ–राँ' आवाजको बाहर 'रा' और 'म' ये दो स्थूल अक्षर कल्पना करके 'राम–नाम'का नाम–स्मरण सिद्ध किये हैं। परन्तु वह भी चञ्चल श्वास मस्तकमें समानरूपसे स्थिर करके ही माना गया है। उसका जप विष्णु और वैष्णवादि भक्त लोग ठहराये हैं ॥

उक्त तीनों नाम–स्मरणोंमें श्वासवायुके साथ लक्ष दृढ़ लगनेसे बाहरकी देह, इन्द्रियाँ, पदार्थादिकोंका अभाव होकर थोड़ी-सी स्थिरता प्राप्त हो जानेसे आनन्दरूप वृत्ति हो जाती है। परन्तु सर्व जड़ाध्यास छूटके मुक्तिके लिए उक्त तीनों जड़ शब्दरूप नाम–स्मरणोंका कोई फल नहीं है। उक्त नाम–स्मरण 'अजपा'के जाप करते रहने पर भी जड़ाध्यासवश मनुष्योंको आवागमनके दुःख सदोदित बने रहेंगे; ऐसा सत्य निर्णयसे जानिये ! ॥

इस प्रकारसे मुख्य "सोहं, ॐ, और राम" ये तीनों नाम–स्मरण 'चञ्चल' और 'स्थिररूप' जड़ श्वासवायुमें ही कल्पना किये हुए नाशवान् हैं। शरीर छूटने समय प्राणवायुके वा श्वासवायुके साथ वे जाप आप ही छूट जावेंगे, और मनुष्य जीव जड़ाध्यासवश आवागमनके चक्करमें घूमा करेंगे; ऐसा आप सत्य विवेक करके पारख दृष्टिसे अब देख लीजिये ! ॥

होयगी, तब बाँसुरी शब्द इसको लक्ष अपनेमें मिलाय लेवेगा। तब पिण्डाण्डका विश्व अभिमान छूट जायगा। माया कहती है कि, 'ऐसा शब्द कबीरका, कालसे लेत छुड़ाय।' 'कबीर' कहिये गुरु, योगी लोगोंका शब्द उपदेश ऐसा है कि, कर्म–कालसे छुड़ायके ब्रह्माण्डमें स्थिर करता है। ये अर्थ ॥

॥ —त्रिजासे बीजक, साखी–३१८ ॥

॥❀॥ अथ सञ्चित, क्रियमाण, प्रारब्ध कर्म वर्णन ॥❀॥

प्रश्न (१२८) "सोहं, ॐ, और राम" ये मुख्य तीन नाम—स्मरणोंका यथार्थ भेद आपके परखानेसे अब मैं समझा हूँ ? ॥

अब यह शङ्का है कि, विचारसागरके सातवें स्तरङ्गमें ❀ "सञ्चित, आगामी (क्रियमाण), और प्रारब्ध, ये तीन कर्म कहे हैं ।" उन तीनोंके वासना बीज जीवन्मुक्त पुरुषोंके कैसे नाश होते हैं ? सो दया करके दिखाइये ? ॥

(१२८) उत्तरः—सुनिये ! जीवन्मुक्त स्थितिमें पारखी सन्तोंके 'सञ्चित' और 'क्रियमाण' कर्मोंके बीज ज्ञानाग्निसे जल जाते । परन्तु प्रारब्ध कर्म सम्पूर्ण भोगनेसे ही देहान्तमें नाश हो जाते हैं । उनका भेद अब दिखाते हैंः—जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, और तुरीयातीत, अवस्थाओंके कर्ममार्ग, उपासनामार्ग, योगमार्ग, और विज्ञानमार्ग, इन कर्मोंके अध्यासरूप संस्कारोंके या वासनाओंके अनुसार नरदेहधारी जीव पशु, अण्डज, उष्मज और जड़दशावाले अजगरादि योनियोंमें जन्म लेते हैं । फिर अपने—अपने पाप—पुण्य कर्म कम—अधिक रहनेसे वे सर्व जीव उक्त योनियाँ भी कम—अधिक वा सर्व भोगकर, नरजन्ममें भोगने योग्य कुछ सञ्चित कर्म बाकी रहनेसे फिर सत्त्व, रज, तमोगुणी तथा धनवान्, दरिद्री आदि मनुष्योंमें वे जन्म लेते हैं; (तिनको प्रमाण पूर्वके प्रश्न—१०४ से प्रश्न—१०९ तक देखिये !) । पशु आदि अन्य खानियोंमें जानेके प्रथम नरदेहोंमें कर्म करके भोगनेको बाकी रहे हुए अनेक "संचितकर्म" हैं । अथवाः—किसी ब्रह्मचारी, संन्यासी वा विरक्त साधुओंको

❀ विचारसागर, स्तरङ्ग—७ । पृष्ठ—४४१—४४३ में लिखा है, देख लीजिये ! ॥

स्वयं पारख स्वरूपज्ञानके निश्चयकी दृढ़, एकरस स्थिति नहीं होनेसे तिनके ज्ञानसाधनके संस्कार बने रहते हैं। इसलिए पूर्व देहोंके ज्ञानसाधनोंकी वासनानुसार बारम्बार नरदेह धारण करके वे विरक्त साधु बनकर, ज्ञानसाधनोंमें अधिक–अधिक लक्ष रखने–वाले होते रहते; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न–१०४ में देखिये !)। वे पूर्व नरजन्मोंके वा इस जन्मोंके धर्मनिष्ठासे किए हुए कर्म अपने फलको नहीं देनेसे बाकी रहे हुए "सञ्चितकर्म" हैं॥तहाँ कहा भी है:–

श्लोकः—"ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं, तमाहुः पण्डितं बुधाः ! ॥ १६ ॥"

॥ भगवद्गीता, अध्याय–४। अर्द्ध श्लोक–१६ ॥

अर्थः—ज्ञानाग्निसे जिन्होंने तमरूप सर्व कर्म भस्मीभूत (नाश) किये हैं, तिनको बुद्धिमान् 'पण्डित' कहते हैं ॥

इस प्रमाणसे जिन पारखी सन्तोंको "मैं चेतन हंस नित्य सत्य हूँ !" ऐसा बुद्धिसे दृढ़ निश्चय हो जानेसे विशेष सुखोंके सूक्ष्म अहङ्काररूप अध्यासका प्रवाहरूप अनादि अर्थात् सूक्ष्म–स्थूल शरीरोंके संयोग–सम्बन्धके जितने सञ्चित कर्म हैं, वे ज्ञानाग्निरूप पारख बोधसे जलकर नाश हुए हैं। शरीरसे प्रगटते हुए खानी–वाणीरूप कर्मोंके अष्ट मदोंके सुखोंको दृढ़ माननारूप सर्व अध्यास छूट जानेसे भूने बीजवत् पुनः क्रियमाण (आगामी) कर्मोंका वासना बीज तिनका बन ही नहीं सकता है। क्योंकि वे सदा शुद्ध रहनीसे पारख दृष्टियुक्त निर्णयसे सर्व कर्म किया करते हैं ॥ और:–

"तदधिगम उत्तरपूर्वाघयोरश्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशात् ॥ १३ ॥"

॥ व्यास ब्रह्मसूत्र–१३। अध्याय–४। पाद–१ ॥

इस सूत्रमें ऐसा ही कहा है:—"ज्ञानीके 'सञ्चित कर्म' नाश हो जाते हैं। और 'आगामी कर्म' बन नहीं सकते हैं। परन्तु नरजन्मके

पुण्य—पाप वा धर्म—अधर्मरूप कर्मोंके संस्काररूप वासनासे यह देह बनी है, सो 'प्रारब्ध कर्म' बाकी रहे हैं। अतः वे सुख—दुःख भोगके आयुके अन्तमें देहके साथ एक दिन आप ही छूट जावेंगे॥"

देहके प्रारब्ध कर्म भोगनेसे ही पारखी सन्तोंकी देह पतन होके सदैव 'विदेहमुक्ति' बनी रहती है॥ ऐसा हीः—

"सुर नर मुनि औ देवता। सात द्विप नौ खण्ड ❀॥" बीजक, साखी—२६५॥

इसकी टीकामें कहे हैं॥ तथा और कहा हैः—

श्लोकः—"अवश्यमेवभोक्तव्यं, कृतंकर्मशुभाशुभम्॥
नाभुक्तंक्षीयतेकर्म, कल्पकोटिशतैरपि॥ १॥"

॥ तत्त्वानुसन्धान, परिच्छेद—१। पृष्ठ—५३॥

अर्थः—पूर्वजन्मके नरदेहमें शुभ—अशुभरूप किये हुए सर्व कर्म अवश्य भोगे बिना अनन्त वर्षों तक वे कर्म नहीं छूटेंगे॥

❀ साखीः—"सुर नर मुनि औ देवता। सात द्वीप नौ खण्ड॥
कहहिं कबीर सब भोगिया। देह धरेको दण्ड॥२६५॥बीजक॥"

टीका गुरुमुखः—देह कर्मनसे पैदा होता है, कर्मके आधारसे रहता है, और कर्म नाशे नाश होता है। मैथुन कर्मसे 'पैदा' होता है, उद्योग कर्मनसे 'पालन' होता है, संहार कर्मनसे 'नाश' होता है। जैसा कर्त्तव्य जीव करता है, तैसा देह जीवको प्राप्त होता है, फिर वह कर्त्तव्यका भोग सोई दण्ड जीवको होता है। सो दण्ड देव-देवादि, नर, मुनि, सब भोगते हैं; जब भोग सरा तब देह छूट जाता है। कर्म तीन प्रकारका; संचित, प्रारब्ध, क्रियमाण। 'संचित' कहिये—जो अनेक जन्मका कर्म भोगते—भोगते बाकी रहा; औ 'प्रारब्ध' कहिये पिछले जन्मके कर्म अब भोगता है, सोई कर्मनकारूप ये देह। कर्मके जोरसे भोगके वास्ते खड़ा है, कर्म भोगे बिना मिटते नहीं, जब भोग हो चुका तब कर्म मिट गया, जब कर्म मिटा तब देह छूटा, ये प्रारब्ध कर्म। तीसरे क्रियमाण कर्म—जो अब मानन्दी करके कर्म होता है, सो क्रियमाण, आगे देह होनेका कारण, देह होनेका बीज कर्म है। ये तीन प्रकार-के कर्म जीवको दण्ड हैं। सो सुर, नर, मुनि, और देवता आदि जेते देहधारी भये, सो सबनने देह धरेका दण्ड भोगे। दण्ड भोगे बिना छूटते नहीं। तब

इन प्रमाणोंसे पारखी सन्तोंके अन्न, वस्त्र, जलादिक जितने शरीर निर्वाहके अवश्य कर्म हैं, तिनमें पारखदृष्टिसे अपनेको भी जड़ाध्यास बन्धन नहीं लगने देने, तथा मनुष्यके कर्त्तव्यरूप सहज दया स्वभावसे अन्य जिज्ञासु मनुष्योंको भी सर्व अध्यास छूटनेके साधन और युक्तियोंको परखाने, ऐसे ही जीवन्मुक्त ज्ञानीके शुद्ध रहनीयुक्त सर्व कर्म होते रहेंगे। जो विशेष कर्मोंमें प्रवृत्ति ज्ञानियोंकी होवै, तो और भी नरजन्म लेकर पारख दृष्टिकी दृढ़ बुद्धि एकरस हो जानेसे तिनके सर्व प्रारब्ध कर्म देहोंके अन्त तक भोगनेसे आप ही छूट जावेंगे ॥

परन्तुः—तत्त्वानुसन्धानके प्रथम परिच्छेदमें कहा ❀ हैः—"कमल पत्र समान ब्रह्मज्ञानी अलिप्त रहनेसे पाप–पुण्यके कर्म उनको बन्धन नहीं होते ॥" ऐसा श्रुतिःमें भी कहा हैः—

"सुहृदःसाधुकृत्यं द्विषंतःपापकृत्यं ॥" –इति श्रुतिः ॥

विचार करनेकी और सत्सङ्ग करनेकी विशेषताई क्या है ? ये शङ्का। "विचार और सत्सङ्ग"की विशेषता ऐसी है कि, गुरु विचार उदय होनेसे संचित कर्मका नाश होता है, और क्रियमाण कर्म हो सकता नहीं, क्योंकि विचारसे मानन्दी सब मिथ्या ठहरी, ताते मानन्दी कर्म भी मिथ्या ठहरा, ताते हो सकता नहीं। जब क्रियमाण नहीं, तब आगे देह भी नहीं; जब बीजनाश हुआ, तब वृक्ष भी नहीं। अब रहा प्रारब्ध, सो ताका रूप देह बना है, सो भोगेसे नाश होवैगा, फिर आगे कछु नहीं; ये विचारकी विशेषताई। तो भला ! ये ही तरह ब्रह्मज्ञानी वेदान्ती भी बोलते हैं ? ये शङ्का। तो बोलते तो हैं, परन्तु गुरुपद पारख स्थितिको प्राप्त भये नहीं, ये कसर है, ताते बीज है; कसर सोई बीज। ताते फिर देह होता है, ये कसर पारख प्राप्त होय तो रहित होय। ये अर्थ ॥ –त्रिजासे बीजक, साखी–२६५॥

❀ "यथापुष्करपलाश आपोनश्लिष्यत एवमेवंविदिपापंकर्म न श्लिष्यते ॥"
॥ –तत्त्वानुसन्धान, परिच्छेद १। पृष्ठ–५४ में लिखा है ॥

अर्थः—तत्त्ववेत्ता ब्रह्मज्ञानी पुरुषोंकी सेवा करनेवालोंको तिनके क्रियमाण पुण्य कर्मोंकी प्राप्ति होती है। और उनका द्वेष करनेवाले निन्दकजनोंको तिनके पाप कर्मोंकी प्राप्ति होती है॥

परन्तुः—यह यथार्थ न्यायका वचन नहीं है। वह तो अन्यायका ही कथन है। मनुष्य जीवोंकी इच्छाशक्तिरूप सत्ता बिना जड़ देहोंसे कोई भी 'पुण्य' और 'पापोंके कर्म' आप-ही-आप कैसे बन जायेंगे? प्रारब्ध कर्मोंकी बेगार कैसी तो भी देहके अन्त तक पहुँचाना है; ऐसे जानकर, पूर्ण पारखी (दृढ़ वैराग्यवान् सन्त) बुद्धिसे "चेतन हंस ही एक सत्य पदार्थ है," ऐसा दृढ़ निश्चय रखकर, सदोदित जाग्रत्रूप सावधान और जगत्से उदासीन रहते, वे कभी माया-मोहमें भूलते ही नहीं॥

इस प्रकारसे "सञ्चित, क्रियमाण (आगामी)" इन दो कर्मोंके सर्व बीज जीवन्मुक्त स्थितिमें पारखी सन्तोंके पारख बोधरूप ज्ञानाग्निसे नाश हो जाते हैं, और "प्रारब्ध कर्म" देहान्त तक भोगके आप ही नष्ट हो जाते हैं; ऐसा आप अब यथार्थ जान लीजिये!॥

प्रश्न (१२६) जीवन्मुक्त पुरुष सदोदित जाग्रत्रूप सावधान रहते हैं, ऐसा आप कहते हो? परन्तु सर्व मनुष्योंवत् सुषुप्ति अवस्थारूप गाढ़ी नीन्दमें वे अपने स्वरूपसे अवश्य गाफिल ही होते रहेंगे; कभी जीवन्मुक्त नहीं होंगे। इसीका यथार्थ भेद आप निर्णय करके बतलाइये?॥

(१२६) उत्तरः—इसका भी भेद कहते हैं, सुनिये!:—ज्ञानीके स्थूल, सूक्ष्म, और कारण, इन तीन देहोंका नाश सर्व प्रारब्ध कर्म भोगनेसे ही होता है; (उसे पूर्वका श्रुतिः प्रमाण प्रश्न-३२ में देखिये!)। इसीसे जाग्रत्, स्वप्न, और सुषुप्ति, ये तीन

अवस्थाएँ क्रमसे स्थूल, सूक्ष्म, और कारण, इन तीन देहोंकी हैं। सो जीवन्मुक्त पुरुषोंकी आयु तक ही रहेंगी, और देहान्तमें सर्व प्रारब्ध कर्म नाश हो जानेसे वे अवस्थाएँ आप ही छूट जावेंगी॥

तहाँ कहा भी है:—

रमैनी:—"परखै रूप अवस्था जाय। आन विचार न ताहि समाय॥५॥"

॥ पञ्चग्रन्थी। चौपाई–५। २७ रमैनीमेंकी–रमैनी–१६। नं०–१५३॥

अर्थ:—जो विचारवान् जीवन्मुक्त पारखी सन्त हैं, वे पारखदृष्टिसे जानते हैं कि, जैसे जाग्रत् होते ही स्वप्न अवस्थाका भासमान व्यवहार नाश हो जाता है। वैसे ही स्वप्न अवस्थावत् जाग्रत् अवस्था भी है। जाग्रत्के स्त्री, पुत्र, धनादि अनेक पदार्थ, नाना वाणी, कर्म, उपासनादि साधन, माया, ममता, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहङ्कारादि विकार, ५ तत्त्व, २५ प्रकृति, १० इन्द्रियाँ, अन्तःकरण पञ्चक, ५ प्राण, पञ्च विषयोंके और देहोंके सुख–दुःख तथा भास, अध्यास, मानना, कल्पना इत्यादि देह सहित सर्व देह व्यवहार एक दिन देहान्त समय आप ही नाश हो जावेंगे। वैसे ही अन्न-जलकी नशारूप और देहव्यवहारमात्र इन्द्रियोंकी विश्रान्तिरूप सुषुप्ति अवस्था (गाढ़ी नीन्द) है; सो भी देह रक्षण मात्र ४ से ५ घण्टोंतक हरदिन लेना अवश्य है। परन्तु देहान्त समय सो भी आप ही नाश हो जायेगी। इसलिए पारखी सन्त जड़ देहोंकी तीनों अवस्थाएँ भोगकर पारख–विचारमें सदा 'जाग्रत्' 'सावधान' ही रहते हैं॥

जब जाग्रत् और स्वप्नके विशेष संस्काररूप कर्मोंके वृक्षका नाश ज्ञानाग्निसे पारखी सन्त कर दिये हैं, तो सामान्य देह व्यवहार-मात्र सुषुप्तिरूप गाढ़ी नीन्दका बीज भी सहज ही देहान्तमें नाश

हो जायेगा। सुषुप्तिमें भी 'आनन्दका भावरूप ज्ञान' और देह सहित 'जगत्‌का अभावरूप ज्ञान,' ये दो ज्ञान, जाग्रत्‌में स्मृतिरूपसे सर्व मनुष्योंको रहते हैं, ऐसा प्रतिरात्रिका अनुभव सबोंको प्रत्यक्ष ही है। इसलिए 'हंसका स्वरूपज्ञान' तीनों अवस्थाओंमें सदैव एकरस है। ऐसे बीज—वृक्ष सहित वासना और कर्मरूप तीनों अवस्थाओंका अध्यास पारखबोधरूप ज्ञानाग्निसे नाश हो जानेसे जीवन्मुक्त पुरुष पारखदृष्टिमें एकरस स्थित रहते हैं। उनको देहनिर्वाहमात्र प्रारब्ध कर्मोंको भोगकर, शुद्ध रहनीयुक्त आयुकी समाप्ति करना बाकी रहा है॥

इस प्रकारसे पारखी, जीवन्मुक्त, स्थितिवान् सन्त, सुषुप्ति अवस्थारूप गाढ़ी नीन्दको भून्ने बीजवत् देहनिर्वाहके लिये रख-कर पारखदृष्टिसे जड़ मायाके अध्यास रहित सदोदित चेतन स्वरूप शुद्ध ही बने रहते हैं। कभी जड़ पदार्थोंमें आसक्त (गाफिल) नहीं होते हैं। ऐसा आप भी पूर्णतासे अब जान लीजिये!॥

प्रश्न (१३०) अब प्रारब्धकर्म जीवन्मुक्त पुरुष सहित सर्व संसारी मनुष्य क्यों भोगते? और किस प्रकारसे भोगते? सो कहिये?॥

(१३०) उत्तरः—इसका भी भेद कहता हूँ, सुनिये!:— जैसे अपने ही हाथसे कुल्हाड़ी मारके चूकसे अपने पगमें घावकर लिये, और फिर दवा भी आप ही करने लगे। परन्तु जब तक अपना पग अच्छा नहीं होगा, तब तक उसका दुःख और पाँवका घाव मिट जानेके पीछे उसका सुख, ये दोनों आप ही को भोगने पड़ेंगे! क्योंकि 'कुल्हाड़ी' मारना, और 'दवा' करना, ये दोनों कर्त्तव्य आप ही स्वयं किये हैं। वैसे ही पूर्वके नरजन्ममें आप ही अध्यासवश किये हुए शुभाशुभरूप पुण्य—पापोंके कर्म हैं। सो इस जन्ममें क्रमसे 'सुख' और 'दुःख'रूपसे अपनेको ही अवश्य

भोगने पड़ेंगे। उनके साथी स्त्री, पुत्र, साधु—गुरु आदि दूसरे कोई भी नहीं होते, ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव है। इसलिए 'ज्ञानी' और अज्ञानी (विषयासक्त मनुष्य) अपने—अपने प्रारब्ध कर्म भोगते रहते हैं। अब पारखी जीवन्मुक्त सन्त (ज्ञानी सन्त) अपने—अपने प्रारब्ध कर्म कैसे भोगते हैं ? तहाँ कहे भी हैं:—

"चक्रभ्रमणवद्धृत शरीरः ॥" —सांख्य सूत्र—८२। प्रकाश अध्याय—३ ॥

अर्थः—जैसा कुम्हारने चाक परसे घड़ा उतार लिया; परन्तु जब तक वेग रहता है, तब तक चाक घूमता ही रहता है॥ और:—

दोहाः—"भ्रमण करत ज्यों पवन ते, सूखो पीपर पात ॥
शेष कर्म प्रारब्धते, क्रिया करत दरशात ॥ २ ॥"
॥ विचारसागर, स्तरङ्ग—७। दोहा, नं०—२। पृष्ठ—४३८ ॥

अर्थः—जैसे गिरे हुए सूखे पीपल वृक्षके पत्र वायुके वेगसे उड़ते जाते हैं; वैसे ही पूर्व नरजन्ममें किये हुए कर्मोंसे आयुका वेग है, तब तक सुख—दुःखरूप प्रारब्ध भोग ज्ञानियोंको होते ही रहते हैं; और देहकी शुद्ध क्रिया वे करते रहते हैं ॥

अथवाः—कोई वृक्ष जड़से काट गिराया, तो भी वह सूखे तक हरा ही रहता है ॥

इन प्रमाणोंसे आयुके वेग तक शरीरोंके सुख—दुःख सबोंको भोगने ही अवश्य हैं। परन्तु इतना फेर है, अज्ञानी (संसारी मनुष्य) रोय—रोयके, 'हाय ! हाय !' कर-करके देहोंके दुःख भोगते रहते हैं। और ज्ञानी जीवन्मुक्त पारखी सन्त देह वर्त्तमानके व्यवहारानुसार शुद्ध रहनीयुक्त और विचार करके उनके कर्म भोगते हैं। इसीसे वे देहोंके दुःखोंमें घबराते नहीं, और उनको देह दुःख भी कम मालूम होते हैं ॥

उनकी अन्न, वस्त्र, और जलकी आशा क्यों छूटी नहीं ? ऐसा कहोगे, तो 'अन्न' और 'जल'के रससे रज-वीर्य उत्पन्न होकर

सर्व मनुष्योंके शरीर माताओंके गर्भमें बढ़कर तैय्यार हुए हैं। इसलिए अनाज, कन्द, मूल, फल, पत्तियाँ इत्यादि जीव-हिंसा बचाय, कोई अङ्कुरज मात्र 'अन्न' और 'जल' जठराग्निको देने ही चाहिए। यदि वे नहीं देवें, तो दुःखमें उनके शरीर छूट जावेंगे, और जैनियोंके समान उपास करते—करते देह छोड़नेवाले, आत्मघाती काल बनेंगे। जड़ मुर्दे नहीं बने हैं, 'शीतता' और 'उष्णता' शरीरोंमें व्यापती है; इसीसे देहनिर्वाहमात्र वस्त्र भी रखना चाहिये!!।

'अन्न और वस्त्रोंके लिए वे गृहस्थोंकी आशा करते हैं।' ऐसा कहोगे? तो गृहस्थ भी कुछ दान—पुण्य करके उनके फल सुख मिलेंगे, ऐसी आशासे तथा 'ज्ञान' और 'मुक्ति'के हेतु वे ब्राह्मण, साधु—सन्त इत्यादिकोंकी अन्न—वस्त्रादिकोंसे सेवा कर रहे हैं। जगत्‌में कोई 'शुभ' वा 'अशुभ' कर्म आशा बिना नहीं होते हैं। "निष्काम कर्म होते हैं," ऐसे कहनेवाले सर्व झूठे हैं; वहाँ भी अन्तःकरणकी शुद्धिरूप 'सूक्ष्म आशा' बनी है॥

जीवन्मुक्त पारखी ज्ञानी सन्त जो शुद्ध कर्म करते हैं, सो अपना मनुष्यका 'निज धर्म' जीवदया रख कर करते हैं। इसलिए उनके कर्म प्रारब्ध भोग भोगनेसे आप ही देहान्तमें नष्ट हो जाते हैं; और जीते ही ज्ञानाग्निसे जल जाते हैं। अथवा नित्यकर्मोंमें जो झीने देहधारी जीवोंकी जीव-हिंसा शक्तिके बाहर होनेसे अनजानके हिंसा जो वे नहीं बचाय सकते, इस हेतु अन्य मनुष्योंको 'दयाधर्म' रख कर सत्योपदेश सदोदित वे देते रहते हैं। इसलिए उनके कर्म भी ज्ञानाग्निसे जल जाते हैं। वे फिर जन्म नहीं लेते, देहान्तमें सदैवके लिए 'विदेहमुक्त' हो जाते हैं। और अज्ञानी (संसारी जन) पाप—पुण्योंके सञ्चितकर्म संस्कारोंकी वासनाएँ रखकर गर्भवास,जन्म, मरण, त्रय तापादि अनेक देहदुःख बारम्बार देह धरके भोगते रहतेहैं॥

इस प्रकारसे "प्रारब्ध कर्म" जीवन्मुक्त सन्त सहित सर्व संसारी मनुष्य 'क्यों ? और कैसे भोगते ?' इसका भेद अब आप यथार्थ जान लीजिये ! ॥

॥ ❀ ॥ अथ वैराग्य लक्षण वर्णन ॥ ❀ ॥

प्रश्न (१३१) "सञ्चित, आगामी, और प्रारब्ध"—ये तीनों कर्म भोगकर 'ज्ञानी पारखी सन्त' कैसे मुक्त हो जाते हैं ? यह बोध विवेक दृष्टि मुझको अब आपकी दयासे हुई है ॥

अब जगत्में वैराग्य क्यों धारण करना चाहिये ? और वैराग्य कितने प्रकारके हैं ? सो भी दया करके कहिये ? ॥

(१३१) उत्तरः—सुनिये ! 'वैराग्य विषय' कहा हैः—

दोहाः—"दोष दृष्टि जबहीं भई । तब उपजो वैराग ❀ ॥"

॥ वैराग्यशतक, अर्द्ध दोहा–२६ ॥

अर्थः—जगत्में शब्दादि पाँच विषयोंके सुख परिणाममें दुःखरूप हैं, ऐसा विचार करके जब सर्व जड़ पदार्थोंमें दोष-ही-दोष दिखाई देते हैं। ऐसी दोषदृष्टि दृढ़ होनेसे उनसे चित्त उपराम होकर वैराग्य उत्पन्न होता है ॥ वैराग्यका भेद और स्पष्टतासे सुनियेः—

"जाका गुरु है आँधरा० ‡ ॥"—बीजक, साखी–१५४ ॥

इसकी टीकामें कहा हैः—"जो मनुष्य स्त्री, पुत्र, धन, जाति, पाँति, कुटुम्ब, घर, पशु, खेती, बाड़ी, गाँव, जागिरी, कर्म, उपासना, वर्ण, आश्रमादिकोंको दृढ़ करके मानना, ऐसी आशा ग्रहण किये हुए सर्व गृहस्थ हैं ॥"

ऐसे गृहस्थलोग माया–मोह, स्त्री–सम्भोग, खान, पान, कपड़े,

❀ दृढ़ निर्वेद जाको भयो । सोई मुमुक्षु बड़ भाग ॥ २६ ॥ –वैराग्यशतक ॥

‡ प्रश्न ११४के उत्तरकी टिप्पणीमें त्रिजासहित यह साखी रक्खा है। पृष्ठ ४३८में देखिये !

गहने इत्यादि पाँच विषयोंके विशेष सुखोंके लालचमें बन्धे रहते हैं। खेती, व्यापार, नौकरी इत्यादि पेट पालनेके धन्धाओंमें भाड़ेके टट्टूवत् बहुत ही कष्ट करके वे विशेष द्रव्य कमानेमें रात-दिन 'हाय! हाय!' किया करते हैं। टण्टे, उपाधियोंसे कचहरी, दरबारोंमें, अच्छे-अच्छे मकान बाँधनेमें, लड़के-लड़कियोंके विवाहोंमें, जाति-पाँतियोंमें, कमाया हुआ धन खर्च करते हैं। घरके कुटुम्बियोंके शरीरोंसे रोगोंमें दुःखी होकर औषधियाँ करनेमें धन उठाते हैं। मान-बड़ाई, हुरमतकी डर लगी है। सारांश-संसार महाजञ्जालका घर है; जल्दी टूटता नहीं, और 'प्रपञ्च खटखट' छूटती नहीं। त्रिविधि ताप, जन्म, मरण, गर्भवासादि दुःख हम गृहस्थ (संसारी लोग) भोगेंगे। ऐसी 'दोषदृष्टि' होनेसे सर्व दुःखोंसे छूटकर सदैव मुक्तिके लिये सत्सङ्गके प्रभावसे वे वैराग्य धारण कर लेते हैं। राजा, बाबू आदि कुछ-न-कुछ वैराग्यवान होते ही रहते हैं। यानी क्षणिक वैराग्य उनको हुआ ही करता है॥

तत्त्वानुसन्धानके द्वितीय परिच्छेदमें कहा † है:—

"पर" और "अपर" ऐसे मुख्य दो प्रकारके 'वैराग्य' हैं। उसमें 'अपर" वैराग्य चार प्रकारके हैं। १. संसारमें सार-असारका विवेक करके वर्त्तमान भोगोंमें सन्तोषसे रहना, वह "यतमान वैराग्य" है। २. राग-दोषोंमें कितने छूट गये? और कितने शेष रहे हैं? ऐसे जानके तिनके निवृत्तिका प्रयत्न करना, वह "व्यतिरेक वैराग्य" है। ३. मनमें विषयोंकी इच्छा अध्यासरूपसे रही है; उसके निरोधका उदासीन रहके प्रयत्न करना, सो "एकेन्द्रिय वैराग्य" कहाता है। और ४. यह लोक और कल्पित स्वर्गलोकोंके विषय सुखोंको नाशवान् जानके विशेष उदासीन हों, तिनको त्यागनेकी

† तत्त्वानुसन्धान, परिच्छेद-२। पृष्ठ-१०३ में लिखा है॥

इच्छासे प्रयत्न करना, सो "वशीकार वैराग्य" जानिये ! ॥

"दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् ॥ १५ ॥"

॥ पातञ्जलयोगदर्शन । योग सूत्र–१५ । समाधिपादे–१ ॥

अर्थः—वशीकार वैराग्य = १ मन्द, २ तीव्र, और ३ तीव्रतर, ऐसे तीन प्रकारके हैं। १. स्त्री, पुत्र, धनादि प्रिय पदार्थोंके वियोग हुए इस संसारको धिक्कार है; ऐसा जानके विषयोंको धीरे-धीरे त्यागनेकी इच्छा सो "मन्द वैराग्य" है। यही वैराग्य संसारी गृहस्थोंको हमेशा होता रहता है। दोषदृष्टि हो फिर विषयोंसे सम्यक बुद्धि करना, सो 'मन्द वैराग्य' है; (ऐसा विचारसागरके षष्ठ स्तरङ्गमें ❀ भी कहा है)। २. इस जन्ममें स्त्री, पुत्र, धनादि दुःख देनेवाले पदार्थ फिर मुझे प्राप्त नहीं होवै; ऐसी स्थिर बुद्धिसे तिन सर्व विषयोंको त्यागनेकी इच्छा, सो "तीव्र वैराग्य है"। और पुनरावृत्ति = पुनर्जन्म प्राप्ति करके जगत्के सर्व सुख स्वर्गादियुक्त तथा ब्रह्मलोक पर्यन्तका सर्व सुख मुझे प्राप्त होवै; ऐसी इच्छासे मुनिवत् वनमें जाके दृढ़ वैराग्ययुक्त साधन करनेवालेका "तीव्रतर वैराग्य" कहा है ॥

अब "पररूप दृढ़ ज्ञान-वैराग्य" विषय कहा है; सुनिये !:—

दोहा:—"आशा तृष्णा ना मिटी। मिटेउ न मन अनुराग ॥
कलह कल्पना ना गई। तबलग नहिं वैराग ॥ ६ ॥
सोई अखण्ड समाधि है। जहाँ अखण्ड वैराग ॥
सोई सन्त सोई साधु है। सोई सिद्ध बड़ भाग ॥ ७ ॥"

॥ वैराग्यशतक, दोहा–६ । ७ ॥

अर्थः—'आशा' अर्थात् धन, स्त्री, पुत्रादि प्राप्ति; सिद्धियाँ, स्वर्ग, देवताओंकी प्राप्ति; सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य, ये चार मुक्तियाँ, ईश्वर वा ब्रह्म प्राप्ति इत्यादि हैं। 'तृष्णा' अर्थात्

❀ विचारसागर, स्तरङ्ग–६ । पृष्ठ–३८६ में लिखा है ॥

राज्यादि ऐश्वर्य प्राप्त हो, तो भी सन्तोष नहीं । परन्तु भीतरसे और—और विशेष सुख मिलनेकी चाहना बढ़ती ही जावै, ऐसी 'आशा' और 'तृष्णा' छूटी नहीं । मनसे दृढ़ मानके प्रेम सहित खानी—वाणीके विषयोंमें लक्ष फैला हुआ हटा नहीं । स्वर्ग, ईश्वर, ब्रह्मादि अनेक कल्पना नाश हुई नहीं । मान, बड़ाई, ईर्षा, देहाभिमान, अष्टमद, अथवा अन्यायसे नाना मतोंको ठान कर परस्पर विवाद करना, ऐसी सर्व उपाधियाँ दिलसे छूटी नहीं । प्रारब्धके वर्त्तमानमात्र व्यवहारमें सन्तोष रखकर पूर्ण पारख स्थितिकी दृढ़ता हुई नहीं; अर्थात् दया, क्षमा, शान्ति, धैर्य इत्यादि शुद्ध लक्षणोंकी धारणा हुई नहीं । "नित्य चेतन हंस सत्य हैं" ऐसी धारणा और देहादि जड़ अनित्य पदार्थोंका उदासीनतासे अभाव हुआ नहीं, तब तक शुद्ध "ज्ञान वैराग्य" (पर वैराग्य) हुआ नहीं, ऐसे जानना ॥ ६ ॥ जहाँ पारखदृष्टिकी दृढ़ धारणा हुई है, वे ही 'साधु' सबको साधनेवाले, वे ही स्थितिवान् सन्त, और वे ही बड़े भाग्यवान् मनुष्य हैं । क्योंकि नरजन्मके सच्चे स्वार्थरूपी दृढ़ पारखदृष्टिको उन्होंने ही साधा है ॥ ७ ॥

पूर्वोक्त प्रकारसे वैराग्य क्यों धारण करना ? तथा उनके सर्व भेद आपको पूर्णतासे दर्शा दिये हैं । सो आप भी अब जान लीजिये ! ॥

॥ ❀ ॥ अथ जीवन्मुक्ति-विदेहमुक्ति वर्णन ॥ ❀ ॥

प्रश्न (१३२) मैं वैराग्यके सर्व भेदोंको अब आपकी दयासे जान गया हूँ ? अब 'जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति' ऐसी दो मुक्तियाँ मैंने सुनी हैं, उनके लक्षण कैसे जानना ? सो भी दया करके कहिये ? ॥

(१३२) उत्तरः—अच्छा, उनका भेद भी कहते हैं, सुनिये !:—

"जीवन्मुक्ति" विषय कहे हैं:—

"विमुक्तश्च विमुच्यत (स जीवन्मुक्तते) ॥ १ ॥"

॥ कठ उपनिषद्, अध्याय-२। वल्ली-५। मन्त्र-१ ॥

अर्थः—नाना प्रकारकी खानी-वाणीरूप जड़ मायाके बन्धनोंसे निवृत्त, भ्रान्तिरूप सर्व बन्धनोंसे मुक्त, तथा स्वरूपसे "मनुष्यरूप हंस सत्य है !" ऐसा सदोदित दृढ़ निश्चय किये हुए पारखी सन्त 'जीवन्मुक्त' कहाते हैं ॥

"क्लेशरूपत्वाद्‌बन्धो भवति। तन्निरोधनं जीवन्मुक्तिः ॥ १ ॥"

॥ मुक्तिक उपनिषद्, अध्याय-२। मन्त्र-१ ॥

अर्थः—"अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश,"-ये पाँच क्लेश हैं; (तिनके लक्षणोंके प्रमाण पूर्वके प्रश्न-३६ में देखिये !)। तिन पञ्च क्लेशोंमें सर्व देहधारी जीव बन्धमान हुए हैं। यथार्थ वक्ताके (पारखी श्रीसद्‌गुरुके) उपदेशसे दृढ़ वैराग्य धारण करके चेतन हंस सत्य और देह तथा देह सम्बन्धी सर्व व्यवहार असत्य (नाशवान्) हैं; ऐसे जानकर पाँचों क्लेशोंको त्यागके सदोदित विवेकसे प्रारब्ध कर्मोंके वर्त्तमान स्थितिमें शुद्ध चालसे वर्त्तते, वे सन्त जीवन्मुक्त हैं ॥ विदेहमुक्ति विषय भी कहा हैः-

"उपाधिविनिर्मुक्तघटाकाशवत्प्रारब्धक्षयाद्विदेहमुक्तिः ॥ १ ॥"

॥ मुक्तिक उपनिषद्, अध्याय-२। मन्त्र-१ ॥

अर्थः—सर्व कर्मोंकी वासना और मनसे माननारूप अनेक सङ्कल्परूपी उपाधि छूटकर, "चेतन हंस सत्य है," ऐसा बुद्धिसे सदैव दृढ़ निश्चय रखके स्वरूप बोधसे जीवन्मुक्त विचरते हुए वा कहीं ठहरते हुए पारखी सन्त प्रारब्धका क्षय होनेसे देहान्तके पीछे सदाकाल स्वरूप ज्ञानमें ही स्थित रहते हैं; सो "विदेहमुक्ति" है। जैसे घटका नाश, परन्तु आकाश स्थित। आकाश—ज्ञान गुण रहित शून्य पोल; और जीव ज्ञान गुण सहित अखण्ड

ठोस, वे विदेहमुक्तिमें सर्वदा एकदेशी स्थित रहते हैं ॥

कोई इसीका ऐसा अर्थ कहते हैं कि, ब्रह्मानन्दमें मग्न रहनेसे देहके शुभाशुभ कर्मोंकी विस्मृति सदा रहे, सो जीते ही 'विदेहमुक्ति' है। परन्तु यह अन्यायका कथन है। क्योंकि देह रहते ही पत्थरवत् या मुर्दावत् पदार्थोंके ज्ञान रहित और इच्छारूप स्फूर्ति रहित महा जड़दशा जीवोंकी शरीरोंसे अध्यासका सम्बन्ध है, तब तक विदेहमुक्ति कैसी होगी? इसलिए प्रारब्ध क्षय हुए बाद देहान्तके पीछे ही देहोपाधि रहित विदेहमुक्ति मानना सयुक्तिक है ॥

इन प्रमाणोंसे खानी—वाणीके पूर्व कहे हुए अष्ट मदोंके सूक्ष्म अहङ्काररूप अध्यास या अनेक पदार्थोंका दृढ़ मानना छूटकर जिनको दृढ़ वैराग्य धारण हुआ है। अनादि कालसे प्रवाहरूप स्थूल—सूक्ष्म शरीरोंके संयोग—सम्बन्धसे पाँच विषयोंके विशेष सुखोंका वासनारूप सूक्ष्म बीज जो रहा था, सो सत्यन्यायी पारखी श्रीसद्गुरुके सत्य पारखबोधसे जिनका छूटा है। कार्य रहित चेतन हंस स्वरूपसे अनेक, अविनाशी, पुराण पुरुष, सत्य हैं। और देह सहित देहके सर्व भोग नाशवान्; दुःखरूप हैं, ऐसा पूर्णतासे सदोदित दृढ़ निश्चय करके जो पारखी सन्त सर्व बन्धनोंसे निराश निर्बन्ध हुए। देह निर्वाहमात्र शुद्ध कर्म रखके सदा विवेकयुक्त पारख दृष्टिसे सावधान, शान्त, सन्तोषयुक्त रहते हैं, वे पारखी सन्त जीवन्मुक्त हैं। तिनके देहोंके प्रारब्ध भोग आप ही छूटकर, देह छूटे उपरान्त स्थूल—सूक्ष्म देहोंकी उपाधियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, अन्तःकरण पञ्चक, तिनसे होता हुआ सुख—दुःख देहके अनेक पदार्थ इत्यादि सब छूट जावेगी, और इच्छाशक्ति रहित, क्रिया रहित, जगत्के तत्त्वादि अनेक पदार्थोंके साक्षी रहित, शुद्ध 'चेतन गुणी' और 'पारखरूप गुण' या स्वयं ज्ञान

प्रकाशरूप नित्य गुण, ऐसे दोनों एक ही स्वरूप मुक्त जीव सदैव-के लिए, चेतन देशमें स्थित रहेंगे; वह 'विदेहमुक्ति' है। ऐसी विदेहमुक्ति जीवन्मुक्त पारखी सन्तोंकी ही होती है ॥

इस प्रकारसे आप "जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति" का भेद अब यथार्थ जान लीजिये ! ॥

॥ ❀ ॥ अथ साधुओंके चार प्रकार वर्णन ॥ ❀ ॥

प्रश्न (१३३) मैं जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्तिके लक्षणोंको यथार्थसे आपके कृपासे समझ चुका हूँ ? ॥

अब शङ्का ऐसी है कि, विचारसागरके द्वितीय स्तरङ्गमें ❀ कहा है:-"जगत्में १. पामर, २. विषयी, ३. जिज्ञासु और ४. मुक्त, ऐसे चार प्रकारके पुरुष रहते हैं। जो शास्त्र संस्कारसे रहित और पञ्च विषयोंमें विशेष आसक्त रहते हैं, वे "पामर पुरुष" हैं। यह लोक और कल्पित स्वर्गलोकोंके विषय भोग प्राप्ति निमित्त कर्म करनेवाले "विषयी पुरुष" हैं। शरीरके सर्व दुःखोंसे निवृत्ति और परमानन्द प्राप्तिरूप मुक्तिके लिए शम, दमादि ज्ञानचतुष्टयके साधनोंमें लगे हैं, वे "जिज्ञासु (ज्ञानके अधिकारी) पुरुष" हैं, और पूर्वके प्रश्न १३२ के प्रमाणसे कोई बिरले "जीवन्मुक्त पुरुष" हैं ॥

इस प्रकारसे "पामर, विषयी, जिज्ञासु (ज्ञानके अधिकारी), और मुक्त पुरुष," ऐसे चार प्रकारके मनुष्य जगत्में हैं। तैसे ही इन चारों लक्षणवत् साधुओंके लक्षण कैसे जानना ? सो दया करके समझाकर लखाय दीजिये ? ॥

(१३३) उत्तरः—सुनिये ! साधुओंमें भी "पामर, विषयी, जिज्ञासु, और मुक्त" ये चार लक्षणयुक्त—"महाकनिष्ट, कनिष्ट,

❀ विचारसागर, स्तरङ्ग-२ । पृष्ठ-४६ से ५२ तक लिखा है ॥

मध्यम, और उत्तम" ऐसे चार प्रकारके साधु होते हैं। तिनमें प्रथम महाकनिष्ट (पामर) साधुओंके लक्षण सुनिये !:—जगत्में पामर पुरुष समान महाकनिष्ट साधु तीन प्रकारके हैं ॥ उनमेंसे:-

प्रथम साधुः—संसार गृहस्थाश्रमकी स्त्री, पुत्र, धनादि माया छोड़कर साधुका भेष लेके विरक्त बने; परन्तु स्त्री-सम्भोगकी गुप्त वासना पूर्ण नहीं छूटनेसे फिर किसी भी वर्णकी स्त्रीसे वे विवाह किये। अथवा कोई स्त्री दासीवत् घरमें या बाहर रखकर स्त्रीरूप नरक कुण्डमें विषयलम्पट होकर वे पड़े ही रहते हैं। ऐसे संयोगी नाममात्रके साधु वर्णभ्रष्ट, जातिभ्रष्ट कहाते हैं। फिर पूर्ववत् गृहस्थाश्रमकी स्त्री, घर, पुत्र, धनादि सर्व माया वे इकट्ठी कर लेते हैं। बैरागी-बैरागिनी, अवधूत-अवधूतानी, महन्त-महन्तानी, पण्डित-पण्डितानी, फकीर-फकिरानी इत्यादि नामोंसे संसारमें भीख माँगकर अथवा अपनी-अपनी पण्डिताईसे उपदेश करके अपने सर्व परिवारको वे पालते हैं। कहीं विशेष माया जोड़के वे धनवान् बने हैं। खेती-व्यापारादि कर्म भी वे किया करते। परन्तु ऐसे जाति-भ्रष्ट, संयोगी (गृहस्थ) नाममात्रके साधुओंका सङ्गति कभी किसी मनुष्यने नहीं करना चाहिये। स्याही वा कीचड़को लेकर उससे कपड़े धोनेसे कभी दाग भी छूटते हुए देखे हैं ? वैसे ही उक्त मतिभ्रष्ट नकली साधुओंकी सङ्गतिसे मनुष्योंके मायारूपी प्रपञ्चके विषय दाग कभी छूटेंगे नहीं। ऐसे संयोगी नाममात्रके साधु, न घोड़ेमें न गधेकी गिनतीमें हैं; तीसरे खच्चरवत् भिन्न जातिके निकले हैं। अर्थात् 'न गृहस्थ न विरक्त' परन्तु अधबीचके सभङ्गी हुए हैं ॥

दूसरे साधुः—भेषधारी विरक्त तो बन गये; परन्तु कोई तरुण स्त्री चेली बनाकर, मकानका धन्धा करनेको उसे हमेशाके लिये वे रख दिये। फिर कुछ काल पीछे उसके साथ वे फँसके सभङ्गी,

संयोगी (नाममात्रके साधु) नहीं तो बड़े उपाधु वे बन जाते हैं। पूर्वोक्त दोनों प्रकारके संयोगी नकली साधु पशु आदि चौ-राशिके योनियोंमें जन्म लेकर अनेक दुःख भोगते रहेंगे ॥

तीसरे साधुः—महात्यागी 'परमहंस' बने हैं। वे नङ्ग धड़ङ्ग वा कोई थोड़ा-सा कपड़ा लपेटे और बाल बढ़ाये हुए, तुम्बादि पात्रसे रहित वृक्षकी छायामें, श्मशानमें, ग्राममें, अथवा कहीं भी पड़े रहते या घूमते-फिरते हैं। कहींका सड़ा हुआ दुर्गन्धरूप जल भी वे पी लेते। वे किसीसे अन्न माँगते, या नहीं भी माँगते, हाथरूपी पात्रमें वे अन्न लेते हैं। अथवाः—उनको किसीने अन्न खिलाया तो खाते या कोई जल पिलाया तो पी लेते। मल, मूत्रादि शरीरका कोई अवयव वे कभी धोते नहीं। वे कहीं भी बालकवत् झाड़ा फिरते (मल त्याग करते), और पिशाब (लघुशङ्का) किया करते। उनकी सेवा करके चाहे उनको शुद्ध रक्खें वा नहीं रक्खें, वे कुछ समझते ही नहीं। हम अकर्त्ते, अभोक्ते, ब्रह्मरूप हैं, हमको न विधि, न निषेध, न पाप, न पुण्य; ऐसे मानके जिनको अपने शरीरोंकी भी बराबर खबर नहीं रहती है। वे मद्यपीके नशावत् गूँगे, बावले कहीं पड़े रहते हैं। वे बाल, पिशाच, जड़ादि-दशा धारण किया करते; (तिनको प्रमाण पूर्वके प्रश्न-११६ और प्रश्न-१२४में देखिये !)। ऐसे परमहंस जड़वत् पड़े हुए अजगरादि योनियोंमें जन्म लेवेंगे; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न-१०८ में देखिये !) ॥

पूर्वोक्त तीनों प्रकारके साधु "पामर पुरुषवत् महाकनिष्ट" हैं। प्रथम दोनों प्रकारके नाममात्र संयोगी साधुरूप गृहस्थोंको कुपात्र जानके धनादि दान कोई देवें नहीं। अपने सामने रोटी खावें, या बनायके पावें, तो तिनको भूखे जानकर आटादि सामग्री

मध्यम, और उत्तम" ऐसे चार प्रकारके साधु होते हैं। तिनमें प्रथम महाकनिष्ट (पामर) साधुओंके लक्षण सुनिये !:—जगत्में पामर पुरुष समान महाकनिष्ट साधु तीन प्रकारके हैं ॥ उनमेंसे:-

प्रथम साधुः—संसार गृहस्थाश्रमकी स्त्री, पुत्र, धनादि माया छोड़कर साधुका भेष लेके विरक्त बने; परन्तु स्त्री-सम्भोगकी गुप्त वासना पूर्ण नहीं छूटनेसे फिर किसी भी वर्णकी स्त्रीसे वे विवाह किये। अथवा कोई स्त्री दासीवत् घरमें या बाहर रखकर स्त्रीरूप नरक कुण्डमें विषयलम्पट होकर वे पड़े ही रहते हैं। ऐसे संयोगी नाममात्रके साधु वर्णभ्रष्ट, जातिभ्रष्ट कहाते हैं। फिर पूर्ववत् गृहस्थाश्रमकी स्त्री, घर, पुत्र, धनादि सर्व माया वे इकट्ठी कर लेते हैं। बैरागी-बैरागिनी, अवधूत-अवधूतानी, महन्त-महन्तानी, पण्डित-पण्डितानी, फकीर-फकिरानी इत्यादि नामोंसे संसारमें भीख माँगकर अथवा अपनी-अपनी पण्डिताईसे उपदेश करके अपने सर्व परिवारको वे पालते हैं। कहीं विशेष माया जोड़के वे धनवान् बने हैं। खेती-व्यापारादि कर्म भी वे किया करते। परन्तु ऐसे जाति-भ्रष्ट, संयोगी (गृहस्थ) नाममात्रके साधुओंका सङ्गति कभी किसी मनुष्यने नहीं करना चाहिये। स्याही वा कीचड़को लेकर उससे कपड़े धोनेसे कभी दाग भी छूटते हुए देखे हैं ? वैसे ही उक्त मतिभ्रष्ट नकली साधुओंकी सङ्गतिसे मनुष्योंके मायारूपी प्रपञ्चके विषय दाग कभी छूटेंगे नहीं। ऐसे संयोगी नाममात्रके साधु, न घोड़ेमें न गधेकी गिनतीमें हैं; तीसरे खच्चरवत् भिन्न जातिके निकले हैं। अर्थात् 'न गृहस्थ न विरक्त' परन्तु अधबीचके सभङ्गी हुए हैं॥

दूसरे साधुः—भेषधारी विरक्त तो बन गये; परन्तु कोई तरुण स्त्री चेली बनाकर, मकानका धन्धा करनेको उसे हमेशाके लिये वे रख दिये। फिर कुछ काल पीछे उसके साथ वे फँसके सभङ्गी,

संयोगी (नाममात्रके साधु) नहीं तो बड़े उपाधु वे बन जाते हैं। पूर्वोक्त दोनों प्रकारके संयोगी नकली साधु पशु आदि चौ-राशिके योनियोंमें जन्म लेकर अनेक दुःख भोगते रहेंगे ॥

तीसरे साधुः—महात्यागी 'परमहंस' बने हैं। वे नङ्गे धड़ङ्ग वा कोई थोड़ा-सा कपड़ा लपेटे और बाल बढ़ाये हुए, तुम्बादि पात्रसे रहित वृक्षकी छायामें, श्मशानमें, ग्राममें, अथवा कहीं भी पड़े रहते या घूमते-फिरते हैं। कहींका सड़ा हुआ दुर्गन्धरूप जल भी वे पी लेते। वे किसीसे अन्न माँगते, या नहीं भी माँगते, हाथरूपी पात्रमें वे अन्न लेते हैं। अथवाः—उनको किसीने अन्न खिलाया तो खाते या कोई जल पिलाया तो पी लेते। मल, मूत्रादि शरीरका कोई अवयव वे कभी धोते नहीं। वे कहीं भी बालकवत् झाड़ा फिरते (मल त्याग करते), और पिशाब (लघुशङ्का) किया करते। उनकी सेवा करके चाहे उनको शुद्ध रक्खें वा नहीं रक्खें, वे कुछ समझते ही नहीं। हम अकर्त्ते, अभोक्ते, ब्रह्मरूप हैं, हमको न विधि, न निषेध, न पाप, न पुण्य; ऐसे मानके जिनको अपने शरीरोंकी भी बराबर खबर नहीं रहती है। वे मद्यपीके नशावत् गूँगे, बावले कहीं पड़े रहते हैं। वे बाल, पिशाच, जड़ादि-दशा धारण किया करते; (तिनको प्रमाण पूर्वके प्रश्न-११६ और प्रश्न-१२४में देखिये !)। ऐसे परमहंस जड़वत् पड़े हुए अजगरादि योनियोंमें जन्म लेवेंगे; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न-१०८ में देखिये !) ॥

पूर्वोक्त तीनों प्रकारके साधु "पामर पुरुषवत् महाकनिष्ट" हैं। प्रथम दोनों प्रकारके नाममात्र संयोगी साधुरूप गृहस्थोंको कुपात्र जानके धनादि दान कोई देवें नहीं। अपने सामने रोटी खावें, या बनायके पावें, तो तिनको भूखे जानकर आटादि सामग्री

केवल जीव दया रखके संसारी लोग दे देवें। जो उक्त तीनों प्रकारके कुपात्र साधुओंको द्रव्यादि दान कोई देवेंगे, तो गृहस्थादि सर्व मनुष्य पापके भागी होंगे। और तिनकी उन्नति करनेवाले बनके वे अन्यायी दोषी ठहरेंगे; (दान देनेमें प्रमाण पूर्वके प्रश्न–१२५ में देखिये !) ॥

इस प्रकारसे पामर समान "महाकनिष्ट" तीन प्रकारके सर्भङ्गी, भेषधारी साधुओंका भेद आपको मैंने प्रत्यक्ष दिखाया है। आप भी उक्त 'ज्ञानगधे' तीनों प्रकारके साधुओंकी सङ्गति बिलकुल अब छोड़ ही दीजिये ! ॥

प्रश्न (१३४) हे दयानिधे ! अब दूसरे कनिष्ट, विषयी, भेषधारी साधुओंका भेद कैसा है ? सो लक्षण सहित आप दिखाइये ? ॥

(१३४) उत्तरः—सुनिये ! 'विषयी साधु' विषय कहा हैः–

साखीः—"(माया) सुन्दरी न सोहै। सनकादिकके साथ ॥
कबहुँक दाग लगावै। कारी हाँड़ी हाथ ॥ ६६ ॥"
॥ बीजक, रमैनी–६६ की, साखी–६६ ॥

अर्थः—१. स्त्री, धन, खेती, बगीचे, पशु, बड़े मन्दिर वा मठ, अनेक शिष्य, मान–बड़ाई, ईर्षा, राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, अहङ्कार, आशा, तृष्णादि स्वार्थरूप "मोटी माया" है। और २. कल्पित ईश्वर वा अन्य कर्त्ता, स्वर्ग, अनेक देवता मानके मन्त्र, यन्त्र, तीर्थ, व्रत, पूजन, नाम-स्मरणादि अनेक काम्य कर्म (फल प्राप्तिकी आशाके कर्म), और देवताओंकी उपासना किया करना, कल्पित ऋद्धि–सिद्धि आदि प्राप्तिके लिए मुद्रा, ध्यान, समाधि आदि योगसाधन और चराचर व्यापक माने हुए अद्वैतरूप ब्रह्मज्ञानमें ठहरना, ऐसी परमार्थरूप "झीनी माया" है। इन दोनों प्रकारकी माया विरक्त (वैराग्यवान्) सन्तोंको

ग्रहण करनेमें शोभा नहीं देती। सुखाध्याससे मुक्तिके लिए बन्धनरूप है। जैसी हाथमें काली हाँड़ी रखकर, उससे कितना ही कोई बचेगा, तो भी किसी समय उसका दाग अवश्य लग ही जायेगा। वैसी ही 'मोटी' और 'झीनी' दोनों प्रकारकी माया मनुष्योंके पास रहनेसे उनके अनेक सुख-दुःखोंके अध्यासरूप दाग उनको जरूर लग ही जावेंगे॥

साखीः—"बनते भागि बेहड़े परा। करहा अपनी बान॥
बेदन करहा कासो कहै? को करहा को जान?॥ ४४॥"
॥ बीजक, साखी-४४। टीकायुक्त॥

अर्थः—'बन' कहिये वाणी वा संसार, 'बेहड़ा' कहिये खाँच, 'करहा या खरहा' कहिये शशा, सो सब संसारी मनुष्य हैं। जब गृहस्थ लोग संसाररूप खाँचमें बहुत दुःख भोगे, और देखा कि, हमारे काम, क्रोध, लोभ, मोहादि मायाके विकार नहीं छूटते; तब कर्त्ताके प्राप्ति निमित्त गुरुवा लोगोंके उपदेश प्रमाण भेषरूप बड़ी खाँचमें पड़े। गोसाँई, बैरागी आदि कोई एक वे भेष धारण किये। संसारमें घरकी फिकर थी, यहाँ मठ वा मन्दिरकी फिकर लगी। वहाँ बेटा-बेटीका मोह, यहाँ चेला-चेलीका मोह; वहाँ उदर पोषण निमित्त गृहस्थोंकी टहल, यहाँ भेषकी टहल; वहाँ धन्धाकी फिकर, यहाँ भीख मिलनेकी फिकर; वहाँ जगत् विषयकी उपाधि, यहाँ भेष विषयकी उपाधि तिनको लगी। सर्व भेषधारी वाणीके प्रमाणसे भेषरूप खाँचमें पड़कर, तीर्थाटन, पञ्चाग्नि तापना, जलशयन, अन्न छोड़के दूध, कन्द, मूल, फलोंका आहार करना इत्यादि अनेक साधन वैराग्ययुक्त करने लगे। संसार खटपट छोड़के भेषमें उनको दूना दुःख प्राप्त हुआ। अब अपना दुःख तो छूटता नहीं, और जगत्में किसीसे कहें, तो लोग हँसी तथा अपनी प्रतिष्ठा हलकी होकर

अज्ञानता ठहरती है। इसलिए शरमसे अनेक साधनोंमें वे पच-पचके मरते हैं। अब उनका दुःख सत्य विचारवान् (पारखी) सन्त बिना कौन जानता है ? जैसा 'शशा' जङ्गलमें खुला था, तब कहीं भागनेको उसे जगह थी, परन्तु खाँचमें गिरनेसे जङ्गलका जानवर उसे मारके खा गया। वैसे ही गृहस्थ लोगोंको मायाकी ओट लेकर छिपनेको जगह थी, परन्तु भेषरूप खाँचमें पड़कर "प्रेमानन्द, योगानन्द, ब्रह्मानन्द"के अध्याससे वे अज्ञानी जड़रूप आसक्त बने। सत्यज्ञानको खोय बैठे और गर्भवासका दुःख भोगने लगे ॥

"जो जीव भगजुगनी समतूला। छिन चमकै छिन धुन्ध बेसूला ॥ ३ ॥"

॥ मानुषविचार, पञ्चग्रन्थी। चौपाई-३। नं०-१३६ ॥

अर्थः—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि, जैसा जुगनुका प्रकाश मूलद्वारके स्थानसे रात्रि समय चमकता है; और दिनमें नहीं। वैसे ही 'संसारके खाँचमें पड़े हुए गृहस्थ' और 'वाणीके खाँचमें पड़े हुए भेषधारी साधु,' जब थोड़े देर तक सत्सङ्गमें यथार्थ विचार सुनते हैं, तब बुद्धियुक्त अपने स्वरूपज्ञानका सत्य निश्चय होकर अपने-अपने कर्मोंसे लजाते हैं। वे कहते हैं कि, शुद्ध रहनीसे चलके यथार्थ, पक्ष रहित "मैं हंस सत्य हूँ !" ऐसी निश्चय करनेकी बुद्धि सदाकाल एकरस हुए बिना मनुष्य जड़ बन्धनोंसे मुक्त नहीं होते। परन्तु फिर अपने-अपने कर्मोंका अल्प सुख तिनसे छोड़ा जाता नहीं। 'खानी' और 'वाणी'के पक्षपाती बनकर, मायाके अध्यासवश धुन्ध (गाफिल) वे पड़े ही रहते हैं ॥

इन प्रमाणोंसे कनिष्ट, विषयी साधु दो प्रकारके होते हैं। उनमेंसेः—

प्रथम साधुः—गृहस्थाश्रम छोड़ या बालपनसे भेष धारणकर, पञ्जाधारी वा साधुओंके बैठाये हुए अथवा मकानधारी, 'महन्त'

बने। फिर अधिकारी, कोठारी, खजाञ्ची, भण्डारी, पुजारी, पहरेवाले, छड़ीदार इत्यादि मठोंके सहायक उनको बनाय, उनकी पूजाकी मर्यादा भी भिन्न-भिन्न बाँध रक्खी है। बैल, घोड़े, ऊँट, हाथी, आदिकोंके चरवाह और पशुओंकी बराबर व्यवस्था रखनेवाले साधु बना लिए हैं। खेतियाँ, बगीचे और जागिरी भी लगी हैं। वे मठ, मन्दिर वा देवालय बनाये हैं। उनको रङ्गवा करके आईने, काँचकी हण्डियाँ, तसबीरें, काँचके झाड़, लैम्प, खसकी टट्टियाँ इत्यादि लटका करके वे शोभायमान किये हैं। गादियाँ, तकिये, पलङ्ग, कुर्सियाँ, गलीचे आदि वे धर रक्खे हैं। पालकियाँ, गाड़ियाँ, गौवें, भैंसियाँ इत्यादि रखकर बहुत रुपैया आदि द्रव्य वे इकट्ठा किये हैं। ऐसे राजावत् ऐश्वर्यका ठाट वे साधु जमाय लिये हैं॥

कहीं बड़े-बड़े छाते रखकर वे 'धुनी' ताप रहे हैं। कहीं वे रङ्गाये कपड़े पहिरे हैं। कहीं नखधारी, जटाधारी, विभूति रमाये हुए, नागे (नङ्गे), अवधूत इत्यादि अनेक प्रकारके भेष वे बनाये हैं। कहीं जरतारी वा रेशमी कपड़े, सोना, रुपाओंके अलङ्कार पहिरे हुए भी वे 'त्यागी महात्मा' बने हैं। गाँजा, भाँग, अफीम, तमाखू इत्यादि अमल भी वे किया करते हैं। उत्तम-उत्तम वस्त्र और अनेक जेवरसे सुशोभित की हुईं जड़ मूर्त्तियाँ, कीमती, शोभायमान, जरतारी वा रेशमी कपड़ोंसे ढाँके हुए जड़ ग्रन्थ, जड़ कबरें, जड़ पादुकाएँ, जड़ गादियाँ, बड़े-बड़े जड़ निशान, गङ्गा जल, ताजिये इत्यादि जड़का पूजन, ध्यानादि कल्पित, नाशवान् स्वर्गादि सुखकी प्राप्तिके लिये वे करते-करवाते रहते हैं। विशेष करके मूढ़ अन्त्यज अनपढ़ अज्ञानी चेले-चेलियाँ गाँव-गाँवोंमें बहुतसे वे बनाय लेते हैं। उन्हीं शिष्योंमें हरसाल रामत करके युक्तियोंसे पुजवाय, चेतन हंस छोड़के अन्य झूठ कल्पनाके

उपदेश देकर बहुत ही द्रव्य, शिष्योंसे वे खैंच लाते हैं। मेवे, मिठाई, दूध, दही, फल, अनेक प्रकारके पकवान इत्यादिकोंसे जिनके भण्डारे हो रहे हैं। सुगन्धी फूलों, अतरों वस्त्रों, द्रव्यादिकोंसे जिनकी पूजा हो रही है। एक 'स्त्री' नहीं, बाकी सर्व मायारूपी ऐश्वर्यका ठाट वे जोड़ रक्खे हैं। जो संसारी लोगोंको भी सहजमें नहीं मिले ॥

कहीं कर्त्ता प्राप्तिके कारण भक्ति, योग, तपादि वे साधन भी किया करते हैं। अर्थ जाने बिना प्रेमसे भजन गानेमें, ताल, स्वर, आलाप, लय मिलित आवाजोंमें कीर्त्तन करनेमें, नाम-स्मरणमें वे गलतान (लीन) हो रहे हैं। 'रासलीला' उत्सव, और अनेक राग-रङ्गमें जिनकी विशेष प्रीति लगी है। ऐसे इस जगत्के और परलोक (स्वर्गादि) के भोगोंको मानके वे दोनों प्रकारकी मायामें भूले हैं। ऐसे प्रथम प्रकारके "कनिष्ट विषयी" साधु हैं ॥

दूसरे साधुः—पूर्व कही हुई मायामें आसक्त रह कर कभी गुप्तरूपसे चेलियाँ वा अन्य स्त्रियाँ, अथवा रण्डियोंसे वे सम्भोग कर रहे हैं। अष्ट मैथुनोंमें स्त्रीकी देहभावना प्रकट होकर जिनकी स्वप्नमें धातु भी गिर जाती है; (अष्ट मैथुनको पूर्वका प्रमाण प्रश्न-११९ में देखिये !)। चोरी करके पकड़ जानेसे कोई कैदमें पड़े हैं। वे "दण्ड, मुगदर, कसरत" करते, और लाठी चलाय परस्पर मारते-मरवाते हैं। और खून करके राजदण्ड सहा करते हैं। तलवार, भाले इत्यादि शस्त्र भी वे पास रखते हैं। जड़ निशानोंको प्रथम नहवाना, ऐसा हठ बाँधके गोसाँई, बैरागी आदि भेषधारी साधु चढ़ावोंपर (कुम्भ मेलेपर) परस्पर तलवार चलाय एक-दूसरेसे कट-कटके मर जाते, और दूसरोंको भी वे मार डालते हैं। गोसाँई, वाममार्गी आदि साधु मदिरा-मांस भी सेवन किया करते हैं।

मठों, मन्दिरोंमें कृमि, कीट, चींटियाँ, साँप इत्यादि जीव-हिंसाको वे शक्ति अनुसार दिलसे नहीं बचाते। पूर्वोक्त मायामें फँसे हुए तमोगुणी दूसरे प्रकारके विषयी 'कनिष्ट साधु' हैं। ये साधु हत्या करनेवाले हिंसक योनियोंमें और 'प्रथम साधु' पशु, पक्षी आदि योनियोंमें नाना जन्म धर-धरके अनेक दुःख भोगेंगे; (तिनको प्रमाण पूर्वके प्रश्न-१०६ और प्रश्न-१०७ में देखिये !) ॥

इस प्रमाणसे संसारी विषयी लोगोंके समान मायामें भूले हुए दो प्रकारके "कनिष्ट, विषयी भेषधारी" साधुओंका भेद मैंने आपको स्पष्ट करके दिखाया है। ऐसे मायामें विशेष भूले हुए विषयी साधुओंका भी आप कुसङ्गति अब सर्वथा त्याग ही दीजिये ! ॥

प्रश्न (१३५) हे दयानिधे ! अब तीसरे जिज्ञासु (मुक्तिके अधिकारी) मध्यम साधुओंका भेद आप दया करके दिखाइये ? ॥

(१३५) उत्तरः—सुनिये ! जिज्ञासु (ज्ञानके अधिकारी) "मध्यम साधु" विषय कहा हैः—

श्लोकः—"कृषिं साध्विति मन्यन्ते, सा वृत्तिः सद्भिगर्हिता ॥
भूमिं भूमिशयांश्चैव, हन्ति काष्ठमयोमुखम् ॥ ८४ ॥"
॥ मनुस्मृतिः, अध्याय-१० । श्लोक-८४ ॥

अर्थः—कोई खेतीसे जीविकावृत्ति उत्तम मानते हैं, सो सज्जनोंके लिये निन्दित है। क्योंकि लोहमुखकाष्ठ, अर्थात् लोहा बैठाये हुए हल, कुदाली, खुरपी आदि द्वारा पृथ्वीको खोदना, इन कर्मोंसे भूमिके ऊपर और भूमिमें भीतर स्थित अनेक जीवोंकी हिंसा होती है ॥

श्लोकः—"दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं, वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ॥
सत्यपूतां वदेद्वाचं, मनःपूतं समाचरेत् ॥ ४६ ॥"
॥ मनुस्मृतिः, अध्याय-६ । श्लोक-४६ ॥

अर्थः—साधु हाड़, मल, मूत्र, और छोटे-छोटे देहधारी जीवोंको दृष्टिसे देखके पाँव रक्खै, वस्त्रसे छानके जल पीवै, सत्य वचन बोलै, और मनसे पाप रहित पवित्रता धारणकर व्यवहार करै ॥

चौ०:—"नाना रूप जीव कृमि होई । जल थल अङ्कुरज रहा समोई॥१८॥
दुःख दिये ते बड़ अपराधा । दया विचारमें होवै बाधा ॥१९॥"
॥ मानुषविचार, पञ्चग्रन्थी । चौपाई-१८-१९ । नं०-४२-४३ ॥

अर्थः—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि, कृमि, कीट, चींटियाँ, दीमक इत्यादि छोटे-छोटे देहधारी जीव 'जलमें' तथा 'थलमें' अर्थात् पृथिवी, अनाज, लकड़ियाँदि अनेक पदार्थोंमें और अङ्कुरज अर्थात् घास, बेलि, वृक्ष, पत्र, फूल, फल, कन्द, मूल, शाक, हरे पदार्थ इत्यादिकोंमें निवास करते हैं । तिनकी हिंसाकर जान-बूझके तिनको दुःख देनेसे अहिंसा, जो धर्मका मूल 'दया' और 'विचार' ये छूट जाते हैं, और मनुष्य पापके भागी (बड़े अपराधी) बनते हैं॥

साखीः—"जीव मति मारो बापुरा । सबका एकै प्राण ॥
हत्या कबहुँ न छूटि है । जो कोटिन सुनो पुराण ॥२१२॥"
॥ बीजक, साखी-२१२ । टीकायुक्त ॥

अर्थः—सर्व जीव अपने गाफिलीसे अनेक पशु आदि शरीर धरके परवश, लाचार हुए हैं । उन्हें आपके जीववत् स्वजाति जानके मारो मत् ! उनकी हत्या करके दुःख मत देओ । यदि आप जीव हत्या करोगे, तो करोड़ों जड़ पुराणोंकी जड़ वाणी सुननेसे चेतन जीवोंका बदला कभी छूटैगा नहीं, इसलिए बन सके तहाँ तक जीव दया धारण करो । जैसे आप दया, वा वैर-घात रक्खोगे, तैसे ही आप पर भी दया, वा वैर-घात होगा ॥

इन प्रमाणोंसे 'विरक्त जिज्ञासु' (ज्ञानके अधिकारी) मध्यम साधु तीन प्रकारके हैं ॥ उनमेंसेः—

प्रथम 'जिज्ञासु साधु' विषय कहा है:—

शब्दः—❀ "शिष्य सिखापन गुरुकी माने । गुरु साधुनके आज्ञाकारी॥३॥"
तेई मुक्ति पदारथ पावै । यमते रहनि निन्यारी ॥४॥
सत्य भेष सत्य रहनि साधुकी । सन्त दरश अविकारी ॥५॥
ते अधिकारी गुरु पारखके । निर्जिव धोख निवारी † ॥६॥
॥ गुरुबोधका शब्द–३ । पञ्चग्रन्थी । नं०–५७४–५७७ ॥

अर्थः—'यम' अर्थात् जगत् कर्त्ता प्राप्तिके लिये अनेक कर्मोंका बन्धन देनेवाले 'गुरुवालोग' और विषयरूप मायामें फँसानेवाली यमरूप मुख्य 'स्त्री' है; और अर्थ सब स्पष्ट है ॥

भावार्थ यह है कि, जो जिज्ञासु विरक्त साधु मकानोंमें वा कोई भी उपाधि रहित जगहोंमें रहते हैं। सत्यन्यायी पारखी साधु-गुरुके उपदेशानुसार स्त्री-सम्भोगके अष्ट मैथुनोंको बाहर–भीतरसे जिन्होंने त्याग दिया है ! (अष्ट मैथुनको प्रमाण पूर्वक प्रश्न–११६ में देखिये !) । चोरी, जुवा खेलना इत्यादि दुर्व्यसन, और गाँजा, भाँग, तमाखू इत्यादि सब अमल जिन्होंने छोड़ दिया है । केवल शरीर निर्वाहमात्र अन्न, जल, वस्त्रका ही अमल वे रखते हैं । जीव-हिंसासे ही शरीरमेंसे मांस प्राप्त होता है, और वह पशु, पक्षी आदिकोंका खाद्य होनेसे 'अभक्ष' है; ऐसा जान कर मांस भक्षण पशु चाल वे नहीं चलते । विशेष जीव-हिंसा होनेवाले मदिरा, शहद, गुल्लर, बड़, पीपल आदिके फल, ऐसे–ऐसे पदार्थ और

❀ शब्दः—हंसा ! ऐसो गुरुमत भारी ॥ टेक ॥ १ ॥ ५७२ ॥
लखे ते भवमें आवत नाहीं । भवके बहोत बेगारी ॥ २ ॥ ५७३ ॥

† गुरुमुख सुख अनुमान रहित पद । बसै आनन्द अटारी ॥ ७ ॥ प्रेम भाव साधुन सेवकाई । कहहिं कबीर पुकारी ॥ ८ ॥ दोहाः–निर्णय यथा प्रमाण जिन । लहै दृष्टि निजु सोय॥ ते शिष्य! हन्ता क्यों परै? रहै अपन पद जोय ॥५८१॥गुरु०पं०॥

चमड़ेमें धरा जाता हुआ हींग, चामके कूपाओंका घी आदि चमड़ायुक्त पदार्थोंको वे त्याग देते हैं। मृगछाला, बाघम्बरादि प्रत्यक्ष चाम स्वरूप पदार्थ और हाड़ स्वरूप शङ्ख, सीपी, बटनादि तथा हाड़ोंके बेंट बैठाये हुए चक्कू, छूरी आदि पदार्थ वे ग्रहण नहीं करते हैं। जलमें शक्कर, गुड़, छान लिये बिना तिनको और वैसे ही शक्कर, गुड़, जलमें छाने बिना बनती हुई मिठाई वे त्याग देते हैं। साँप, बिच्छू, चूहे, खटमल, मच्छर, चींटियाँ, दीमक इत्यादि बड़े—छोटे देहधारी जीवोंकी हिंसा बने तहाँ तक वे बचाते रहते हैं। कपड़ोंमें उत्पन्न होनेवाले चीलर जीवोंकी हिंसा बचानेके लिये वर्त्तमानमात्र रक्खे हुए कपड़े हमेशा धोकर वे शुद्ध रखते हैं। जूवोंकी उत्पत्ति और हिंसाका बचाव करनेके लिये बड़े—बड़े केश और जड़ाव (जटा) वे नहीं रखते हैं। नखोंका विष बचानेके लिये तिनको वे काटते वा कटाते रहते हैं। मकानोंमें अपने आसनोंकी जगहोंको छोड़कर सर्व मकान बहारना, लीपना, चौका लगाना, लकड़ी फाड़ना इत्यादि जीव-हिंसाके कर्म आप स्वतः नहीं करते, किसी गृहस्थोंसे वे काम कराय लेते हैं। क्योंकि उन्होंने पेट पालनेका वही धन्धा उठाया है। यदि किसी मकानोंमें वे रहें, तो अन्न बीनना, शाक—भाजी अमनियाँ करना, लकड़ियाँ धरके चूल्हा बारना, अपने जूठे बर्त्तन मलना, और जल छानके अपने निर्वाहमात्र वे रसोई बनाय लेते हैं। विरक्त साधु शुद्ध निर्मलतासे रसोई बनावें, तो वह भोजन वे कर लेते हैं। अथवा नहाय, धोय, जलछानके जो कोई शुद्ध चालसे चलनेवाले शिष्य वा गृहस्थ भक्त होवें, तिनके हाथकी पक्की रसोई वे ग्रहण करते हैं। यदि यह भी व्यवस्था नहीं होवै, तो दूध छानके और फलोंका आहार; अथवा पूर्वोक्त कही हुई मिठाई, गुड़—शक्करको वे ग्रहण करते हैं। वे जूते नहीं

पहिरते, यदि तिनको धूपकालमें पहिरें, तो वे कपड़ेके जूते पहिरते; और बरसातमें वे छाते भी रखते हैं। गाड़ी, घोड़ेपर वे चढ़ते ही नहीं। शरीरमें तेल मर्दन करना तथा सर्व प्रकारकी खटाई पावना वे त्याग देते हैं। वे बाल बनवाते या कटवाय २। ४ अङ्गुल तक बढ़ाय रखते हैं। बने तहाँ तक शौच (झाड़ा) फीरे बाद वे स्नान कर लेते या शरीर ठीक नहीं रहनेपर लङ्गोटा तक भी वे बदल लेते हैं। पिशाब (लघुशङ्का) समय इन्द्री धोनेको वे जल ले जाते हैं। जिसमें मदिरा और मांसके अर्क मिले हैं, ऐसी रोग समय डाक्टरोंकी, दवाइयाँ वे नहीं लेते हैं। रात्रिको भोजन जीव-हिंसा बचानेके लिये वे करते नहीं। रात्रिको पक्के कण्डिल, भीतर झीने देहधारी जीव नहीं घूसने लायक अपने व्यवहारके लिये वे काममें लाते हैं। हमेशा दो ग्रास कम या युक्त भोजन वे किया करते हैं, और नीन्द ४। ५ घण्टोंतक वे लेते रहते हैं। कोई प्रयोजनमात्र ही वे द्रव्य ग्रहण करते, परन्तु एक पैसा भी वे पास रखते नहीं। सत्यन्यायी पारखी सन्तोंके पास सत्सङ्ग और सत्यन्यायके सद्ग्रन्थ पढ़नेके लिये वे नित्य जाते रहते। अथवा काया, वाचा, मनसे, पारखी- साधुगुरुकी भक्ति सहित सेवा करके जगत्के सर्व सिद्धान्तोंका और ग्रन्थोंका तात्पर्य देखकर, सत्यन्यायके ग्रन्थ पढ़के सत्यन्यायको वे परख कर जान लेते हैं। परन्तु वहाँ भी सब जीव-हिंसाके कर्मोंसे वे बचे रहते हैं। कोई सुपात्र, निष्पक्ष, बुद्धिवान् साधु देखकर उनको "बीजक, पञ्चग्रन्थी" आदि सत्यन्यायके सद्ग्रथः वे पढ़ाय भी देते हैं। देह व्यवहारके लिये चलना, सोवना, बैठनादि सर्व कर्मों में झीने देहधारी जीवोंकी हिंसा नहीं होनेपर जिनका विशेष लक्ष रहता है। दया, गरीबी, सरल स्वभाव, सन्तोष, क्षमादि सद्गुणयुक्त शुद्ध रहनी, सत्य बोलना, सत्य ही चाल वे धारण किये रहते हैं॥

पूर्वोक्त ऐसे साधुओंकी रहनी जगत्के अन्य भेषधारी साधुओंसे भिन्न ही रहती है। अपने शरीरोंके विकारयुक्त अध्यास या जड़को दृढ़ माननारूप अनेक भ्रम, धोखादि निकालनेका वे सदोदित प्रयत्न करते रहते हैं। वे ही पारखी श्रीसद्गुरुके सत्यज्ञानका दृढ़ निश्चय करनेके अधिकारी हैं ॥

इस प्रकारसे मध्यम, जिज्ञासु साधुओंमें उक्त प्रथम साधु हैं। वे इसी जन्ममें सर्व अध्यास रहित जीवन्मुक्त हो जावेंगे। अथवा पारखदृष्टिकी दृढ़ बुद्धि सदोदित एकरस नहीं बननेसे विशेष ज्ञान साधनके वासनानुसार एक वा दो अन्य नरजन्म लेके वे जीवन्मुक्त हो जावेंगे। ज्ञान साधनोंका संस्कार दृढ़ रहनेसे अनेक बार नरजन्म लेते-लेते कोई मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाते हैं; (उसे प्रमाण पूर्वके प्रश्न—८८ में देखिये !) ॥

दूसरे साधुः—मठ वा मन्दिरोंमें रहनेवाले महन्त, अधिकारी, कोठारी इत्यादि सर्व विरक्त साधु, प्रथम प्रकारके जिज्ञासु साधुओंके समान जहाँ तक बने, तहाँ तक सर्व प्रकारकी जीव-हिंसा बचा करके चलें। वे अपने हाथोंसे खेती करें नहीं, या स्वयं खड़े भी न हों, और स्वयं खड़े होकर किसी साधुओं, नौकरों आदिकोंसे वे खेती करवावें नहीं। खेती तैय्यार करनेमें हल, कुदाली आदिसे भूमिपर या भूमिमें स्थित करोड़ों जीवोंकी जीव-हिंसा होती है; ऐसा वे ध्यानमें रक्खें। यदि पास खेती होवें, तो किसी किसानोंको हरसालके पैसेका ठहराव करके वे दे देवें। ❁ क्योंकि उन्होंने

❁ राज्योंके कानूनोंका बदलाव होनेके कारणोंसे यदि दूसरे किसानोंको खेती नहीं लगाया जा सकता हो वा लगानेमें विशेष उपाधि—आपत्ति होती हो, तो वैसी अवस्थामें फिर जैसा उचित जान पड़े, वैसा वे विचारसे करें ॥ —सं० ॥

अपने निर्वाहके लिये खेतीका ही धन्धा उठाया है। मिट्टी खोदना, जगह पूरना, लकड़ी फाड़ना, शाक बोवना इत्यादि जीव-हिंसायुक्त सर्व कर्म, वे त्याग देवें। यदि ये कर्म वे कराना चाहें, तो नौकर रखके परभारे होते रहें। सूक्ष्म देहधारी जीवोंको दृष्टिसे देख-देखके धीरे-धीरे पग रखके वे चलें। जूते नहीं पहिरना यह उत्तम है; यदि वे पहिरें, तो नाल, खीले तिनको वे नहीं ठोकावें। वे वस्त्रसे जल छान कर पीवें, और जलछक्कामेंके जीवोंको जलके स्थिर जगह पर वे धो लेवें या जलके पात्रमें धोकर वह जल वहाँ ही वे छोड़ देवें। यदि जलमें जीव होवैं, तो नहाते, और कपड़े धोते समय वे जल छान लेवें। दूध, घी, तेलादि सर्व पतले पदार्थ छानके वे ग्रहण करें। धनियाँ, हल्दी, मेथी इत्यादि सर्व पदार्थ अच्छे बीनके वे ग्रहण करें। वे गुड़ और शक्करको जलमें छानके लेवें। क्योंकि तिनमें चीटियाँदि सूक्ष्म देहधारी जीवोंके पग, झीनी हड्डियाँदि मिले रहते हैं। प्रतिदिन खर्चमें आते हुए अनाजोंमेंके कीड़े बाहर नहीं निकलने लायक पात्रोंमें वे रक्खें। ऐसे ही तिनको छोड़नेसे चींटियाँ घसीटके ले जातीं वा पक्षी बीन कर खा जाते हैं। फिर वही जातियोंके सेर वा दो सेर अनाज धरी हुई हाँड़ियोंमें वे तिनको रख कर, चींटियोंसे बचानेके लिए ढकनियोंसे तिनको ढाँकके तिनके मुखोंको कपड़ेसे बाँधकर कहीं छायामें वे धर देवें। यही चाल भक्त सद्गृहस्थोंको भी चलना उचित है। बरसातमें वे विशेष अनाज रक्खें नहीं। क्योंकि तिनमें विशेष कीड़े होनेका सम्भव रहता है ॥

सायन्समें लिखा है:—"सर्व अनाजोंमें 'राख' और 'जायफलोंके चूर्ण' या 'कपूरका जल' छिड़कनेसे, और चावलोंमें चूना मिला करके रखनेसे तिनमें जीव नहीं होते हैं। अथवा टीनके

डब्बाओंमें चावल रख कर तिनके मूँहोंको झालकर या बन्दकर रखनेसे कीड़े होते नहीं; ऐसा हमको अनुभव है। इस प्रकारसे सर्व अनाज वे बरसातमें वा हमेशा रक्खा करें ॥

पूर्वके प्रश्न—१२३ में मनुस्मृतिःका वचन है कि—"चूल्हा, चक्की, झाड़ू, उखली, मूसल, और जलके घड़े" ये पाँच गृहस्थोंके जीव-हिंसाके स्थान हैं। इसलिए जहाँ तक बने तहाँ तक बहारना, लीपना, मिट्टीसे भण्डारका चौका देना, कूटना, पीसना इत्यादि जीव-हिंसाके काम नौकर रखके तिनके स्थानोंमें होते रहें। क्योंकि नौकरोंने वही धन्धा उठाया है। लकड़ियाँ, कपडे जीव रहित देखके भण्डारकी जगहोंमें जीव-हिंसासे चेत रखके दिनको ही एक बार वे रसोई बनावें, रात्रीमें विशेष जीव-हिंसा होनेका सम्भव रहता है; इसलिए रात्रीमें रसोई बनावें नहीं। जलके घड़ादि पात्र, छोटी लकड़ीकी तिपाईपर वे धर देवें, और नीचे टपकता हुआ जल किसी पात्रोंमें धरके हरदिन वे बाहर फेंका करें। पक्के, बिना छिद्रोंके फानूस (चौकोर लालटेन) आदि लेकर तिनमें नित्य वे दिये जलावें। कपड़े धोने, सोने, बैठने, उठने, चलने इत्यादि देहव्यवहारके कार्योंमें जीव-हिंसा नहीं होनेकी दृष्टि वे रखके चलें। गाय, भैंस, बैल, घोड़ा, कुत्ता, बिल्ली, तोता, मैना आदि किसी जीवोंको वे पालें नहीं। क्योंकि तिनके पालनेकी व्यवस्था रखनेमें बहुत ही जीव-हिंसा होती है। मकानोंमें ऊपरसे मकरी, चींटियाँदि देहधारी जीव और धूल गिरती है, इसलिए जलके घड़े और चूल्होंपर थैला (बोरा) आदि चाँदनी वे लगा देवें। यही चाल भक्त सद्गृहस्थोंको भी रखना उचित है ॥

शुद्ध चालसे चलनेवाले सेवक आदि सद्गृहस्थ होवें, तो नहाय, धोय, चौका दे, अन्न उत्तम बीनके, चलनीसे आटा, वस्त्रसे

जल, दूध, घी, तेल और जलमें शक्कर, गुड़ छानके पक्की रसोई बना करके साधुओंको पवावें, तो उनके घरोंमें अन्न पावनेको उन्होंको कोई हरकत नहीं। परन्तु विशेष स्वच्छ शुद्धता होना चाहिये ॥

साधु-गुरु बनके गृहस्थोंके यहाँ याचना करना 'गुरुधर्म' नहीं। प्रारब्धानुसार अयाचित वृत्तिसे (बिना माँगे) अपने जगहोंपर जो अन्न, वस्त्रादि मिले, उसीमें सन्तोषसे दृढ़ वैराग्यवान् साधुओंको रहना चाहिये। यदि खेती, जागिरी मकानोंको लगी होवें, तो उसीसे मकानधारी सर्व सन्तोंके जीविकाका निर्वाह होता रहेगा। अथवा छोटी-सी कुटीमें निवासी कोई पारखी सन्त रहते होवें, परन्तु वहाँपर आनेवाले साधुओंके लिए अन्न, वस्त्रादि व्यवस्था नहीं रहेगी, तो आपको इष्ट गुरुदेव माननेवाले साधु बस्तीमेंसे आटादि सामान माँगके लावें, अथवा उपदेश द्वारा वे अन्न, वस्त्रादि प्राप्ति कराय, अपनी और श्रीसद्गुरुकी प्रेम भक्ति सहित सेवा किया करें। वे सत्सङ्ग तथा सत्यन्यायके ग्रन्थोंद्वारा अपनी बुद्धिको बढ़ावें ॥

यदि कोई सेवक या नेमी-प्रेमी भक्त सत्सङ्गके लिए स्वयं बुलावै, पत्र वा आदमी भेजै, तो उसकी भक्ति देखके, 'महन्त' और जितने साधु वह बुलावै, तिनके आने-जानेके खर्चाकी प्रथम वह व्यवस्था कर देवै। तिसके यहाँ गये बाद झाड़ू देना, लीपना, चौका देना, अन्न बीनके लकड़ियाँ धरके चूल्हे बारना, बर्त्तन माँजना इत्यादि टहल करके सबोंको वह प्रेमसे रक्खे। साधु केवल बीने हुए अन्नको ही अच्छा देखके रसोई बना करके, साधुओंको पवावना, इतनी ही मेहनत उठावेंगे। ऐसे श्रद्धायुक्त गृहस्थके यहाँ रामतको जानेमें उन्होंको कोई हरकत नहीं। यदि मकानधारी साधु रामत ही करना उचित समझें, तो गाड़ी, बैल, गाड़ीवान् वे भाड़ेसे कर लेवें। या शिष्योंके पाससे वे

डब्बाओंमें चावल रख कर तिनके मूँहोंको झालकर या बन्दकर रखनेसे कीड़े होते नहीं; ऐसा हमको अनुभव है। इस प्रकारसे सर्व अनाज वे बरसातमें वा हमेशा रक्खा करें॥

पूर्वके प्रश्न—१२३ में मनुस्मृतिःका वचन है कि—"चूल्हा, चक्की, झाड़ू, उखली, मूसल, और जलके घड़े" ये पाँच गृहस्थोंके जीव-हिंसाके स्थान हैं। इसलिए जहाँ तक बने तहाँ तक बहारना, लीपना, मिट्टीसे भण्डारका चौका देना, कूटना, पीसना इत्यादि जीव-हिंसाके काम नौकर रखके तिनके स्थानोंमें होते रहें। क्योंकि नौकरोंने वही धन्धा उठाया है। लकड़ियाँ, कण्डे जीव रहित देखके भण्डारकी जगहोंमें जीव-हिंसासे चेत रखके दिनको ही एक बार वे रसोई बनावें, रात्रीमें विशेष जीव-हिंसा होनेका सम्भव रहता है; इसलिए रात्रीमें रसोई बनावें नहीं। जलके घड़ादि पात्र, छोटी लकड़ीकी तिपाईपर वे धर देवें, और नीचे टपकता हुआ जल किसी पात्रोंमें धरके हरदिन वे बाहर फेंका करें। पक्के, बिना छिद्रोंके फानूस (चौकोर लालटेन) आदि लेकर तिनमें नित्य वे दिये जलावें। कपड़े धोने, सोने, बैठने, उठने, चलने इत्यादि देहव्यवहारके कार्योंमें जीव-हिंसा नहीं होनेकी दृष्टि वे रखके चलें। गाय, भैंस, बैल, घोड़ा, कुत्ता, बिल्ली, तोता, मैना आदि किसी जीवोंको वे पालें नहीं। क्योंकि तिनके पालनेकी व्यवस्था रखनेमें बहुत ही जीव-हिंसा होती है। मकानोंमें ऊपरसे मकरी, चींटियाँदि देहधारी जीव और धूल गिरती है, इसलिए जलके घड़े और चूल्होंपर थैला (बोरा) आदि चाँदनी वे लगा देवें। यही चाल भक्त सद्गृहस्थोंको भी रखना उचित है॥

शुद्ध चालसे चलनेवाले सेवक आदि सद्गृहस्थ होवें, तो नहाय, धोय, चौका दे, अन्न उत्तम बीनके, चलनीसे आटा, वस्त्रसे

जल, दूध, घी, तेल और जलमें शक्कर, गुड़ छानके पक्की रसोई बना करके साधुओंको पवावें, तो उनके घरोंमें अन्न पावनेको उन्होंको कोई हरकत नहीं। परन्तु विशेष स्वच्छ शुद्धता होना चाहिये ॥

साधु-गुरु बनके गृहस्थोंके यहाँ याचना करना 'गुरुधर्म' नहीं। प्रारब्धानुसार अयाचित वृत्तिसे (बिना माँगे) अपने जगहोंपर जो अन्न, वस्त्रादि मिले, उसीमें सन्तोषसे दृढ़ वैराग्यवान् साधुओंको रहना चाहिये। यदि खेती, जागिरी मकानोंको लगी होवें, तो उसीसे मकानधारी सर्व सन्तोंके जीविकाका निर्वाह होता रहेगा। अथवा छोटी-सी कुटीमें निवासी कोई पारखी सन्त रहते होवें, परन्तु वहाँपर आनेवाले साधुओंके लिए अन्न, वस्त्रादि व्यवस्था नहीं रहेगी, तो आपको इष्ट गुरुदेव माननेवाले साधु बस्तीमेंसे आटादि सामान माँगके लावें, अथवा उपदेश द्वारा वे अन्न, वस्त्रादि प्राप्ति कराय, अपनी और श्रीसद्गुरुकी प्रेम भक्ति सहित सेवा किया करें। वे सत्सङ्ग तथा सत्यन्यायके ग्रन्थोंद्वारा अपनी बुद्धिको बढ़ावें ॥

यदि कोई सेवक या नेमी-प्रेमी भक्त सत्सङ्गके लिए स्वयं बुलावै, पत्र वा आदमी भेजै, तो उसकी भक्ति देखके, 'महन्त' और जितने साधु वह बुलावै, तिनके आने-जानेके खर्चाकी प्रथम वह व्यवस्था कर देवै। तिसके यहाँ गये बाद झाड़ू देना, लीपना, चौका देना, अन्न बीनके लकड़ियाँ धरके चूल्हे बारना, बर्त्तन माँजना इत्यादि टहल करके सबोंको वह प्रेमसे रक्खे। साधु केवल बीने हुए अन्नको ही अच्छा देखके रसोई बना करके, साधुओंको पवावना, इतनी ही मेहनत उठावेंगे। ऐसे श्रद्धायुक्त गृहस्थके यहाँ रामतको जानेमें उन्होंको कोई हरकत नहीं। यदि मकानधारी साधु रामत ही करना उचित समझें, तो गाड़ी, बैल, गाड़ीवान् वे भाड़ेसे कर लेवें। या शिष्योंके पाससे वे

व्यवस्था करवावें। स्वयं साधु गाड़ी हाँके नहीं, तथा बैलोंको युक्तिसे वे चलवावें; जिससे कि, मारे नहीं। साधुओंके पूजाका निश्चित नियम वे बाँधे नहीं। शिष्य वा नेमी–प्रेमी भक्तोंके इच्छानुसार अपनी पूजा होने देवें॥

शिष्य बनाते समय सुपात्र देखकर, जीव-हिंसा त्याग, अहिंसा धर्म शक्ति अनुसार पालनेको; मदिरा, मांस, शहद, गुल्लर, बड़, पीपलादि वृक्षोंके जीवयुक्त फल त्यागनेको, और स्त्री-सम्भोगकी आसक्ति या दो लड़के होने बाद स्त्रीको छोड़नेके लिए वह कबूल करै, तो गुरुमर्यादा प्रमाण वे उसे उपदेश देवें। माला = कण्ठी, और तिलक वे उसको दे देवें। उन्होंने उसी समय बाजे सहनाई आदि बजानेको लगाकर साधुओंकी पूजा, भेंट, और शक्ति अनुसार रसोई सबकी उसीसे करावें। वैसे ही वे 'विरक्त भेषधारी साधु' बनाते समय शिष्य पक्ष रहित सुपात्र देखें। सर्व शुद्ध चाल आचरण करनेके लिये शिष्य कबूल करै। स्त्री-विषय वासनासे रहित, साधु–गुरुमें निष्ठावान्, लिखने–पढ़नेको जाननेवाला तथा जिज्ञासु शिष्य होवै, तो भेषकी मर्यादा प्रमाण उसको कण्ठी वा एक ही मणका–रूप हीरा, तिलक, लङ्गोटा, अचला वे देकर भेषधारी साधु बनाय लेवें। सदोदित शुद्ध व्यवहारकी चाल चलनेको तिसको वे बताया करें॥

वे 'उपवास' करें नहीं, परन्तु 'आहार' और 'नीन्द'को संयमसे रक्खें। जीव-हिंसक मनुष्योंके घरोंमें रसोई बनाय वे भोजन नहीं करें, तिनसे सूखा अन्न लेनेमें तिनको कोई दोष नहीं है। रेशमके कपड़े मोल लेके या कोई दान देवें, तो महन्त पहिरें नहीं। महन्त और साधुजन 'कोरदार' अचले, रेशम, और जरतारके कपड़े कभी पहिरें नहीं। महन्त और साधु चाँदी, सोना, मोती, नग आदि अलङ्कारोंको पहिरना त्याग देवें। प्रतिदिन वे स्नान करें। परन्तु

विमारीमें हाथ–पग ही धोय डारें। हमेशा दिशा (शौच) हो लिये बाद वे स्नान करें या केवल लङ्गोटा ही बदल लेवें। वे पिशाब (लघुशङ्का) समय जलसे इन्द्री धोय डारें। क्योंकि मल–मूत्र दोनों अपवित्र दुर्गन्धके ही स्वरूप हैं। यही चाल भक्त सद्गृहस्थोंको भी चलना चाहिये। चोरी, व्यभिचार, जूवा खेलना, नाच–गाना, राग रङ्गादि वे सब छोड़ देवें। वे अष्ट मैथुन कर्मोंकी वासनासे रहित होवें॥

सद्गुरुदेवकी स्तुति = बीजक पाठ तथा सन्ध्यापाठ और अर्थ जानके वे भजन करते रहें। जड़ मूर्त्तियाँ, जड़ ग्रन्थ इत्यादि सर्व जड़का पूजन वे छोड़ देवें। चेतन–मूर्त्ति साधु-गुरु ही इष्टदेव प्रत्यक्ष हैं। और पारखी सन्त ही जड़ देहबन्धन छुड़ानेवाले हैं। ऐसा जानकर, बने तहाँ तक अन्न, वस्त्र, जल उनको देके, तन, मन, धनसे ऐसे ही पारखी सन्तोंकी वे सेवा करें। और उनसे वे मीठे कोमल वचन बोलें। मठ वा मन्दिरोंमें जो भूलसे जीव-हिंसाका पाप होता है, सो उनकी सेवासे नष्ट होकर हमारी बुद्धि शुद्ध होगी, ऐसा हृदयमें वे धारण करें॥

प्रतिदिन भण्डारेमेंके रसोईका अन्न, दूध, घी, मिष्टान्नादि जो वर्त्तमानमें मिले, सो सब साधुओंको वे बराबर परसें, परन्तु वे पंक्तिभेद करें नहीं। महन्त आप ही खाने, पीने, कपड़े आदि मौज करेंगे, ऐसी केवल स्वार्थ बुद्धि रक्खें नहीं। मैं उत्तम और सर्व त्यागी साधु नीच हैं, ऐसा अहङ्कार महन्त और साधु कोई ने भी रक्खें नहीं। सत्यन्यायका उपदेश, सत्यकी रहनी, सत्य बोलना, सत्य निर्णय सहित भेष, ऐसा सर्व सत्य–ही–सत्य व्यवहार अन्तर–बाहरसे वे रक्खें। प्रतिदिन सत् शास्त्रोंको पढ़ना–पढ़ाना, और नियमसे हरदिन सब मिलके सत्सङ्ग वे करते रहें। सर्व साधु मिलके सत्यन्यायके "बीजक, पञ्चग्रन्थी" आदि सद्ग्रन्थः, समय

ठहरा करके अर्थ सहित पढ़ते रहें। वहाँपर चढ़ता हुआ धन पारखी साधु-गुरुमें वे परमार्थ करते रहें। चाहे वे उसे अल्प संग्रह रक्खें, परन्तु वे विशेष इकट्ठा नहीं करें। दया, क्षमा, धैर्य, विचार, सन्तोषादि शुभ गुणोंको वे धारण करें ॥

पूर्वोक्त हंसके शुद्ध चाल चलनेवाले जिज्ञासु (ज्ञानके अधिकारी) दूसरे प्रकारके मध्यम साधु हैं। इनको मायाका विशेष अभ्यास रहनेसे प्रथम जिज्ञासु साधुओंसे ये कुछ अधिक नरजन्म लेते–लेते बुद्धिसे एकरसरूप पारखदृष्टिकी स्थिरताको प्राप्त होकर, अन्तमें किसी नरदेहमें वे जीवन्मुक्त हो जावेंगे ॥

तीसरे साधुः—मठ, मन्दिरोंमें रहनेवाले 'विरक्त साधु' हैं। वे लिखना–पढ़ना कछु जानते नहीं। परन्तु गुरुसेवासे तिनकी बुद्धि शुद्ध होगी ? इस हेतुसे कहीं उनको भेषधारी साधु बनाय लिये हैं। तिनमें जिनकी स्त्री-सम्भोगकी अष्ट मैथुनोंकी वासना भीतर–बाहरसे छूटी है। सब प्रकारकी जीव-हिंसाको शक्ति अनुसार बचा करके साधु-गुरुकी सेवामें जिनकी निष्ठा है। अपने बुद्धि प्रमाण कुछ सत्सङ्ग भी वे किया करते हैं। ऐसे तीसरे प्रकारके मध्यम, 'जिज्ञासु साधु' हैं। उक्त दोनों साधुओंसे ये साधु विशेष अज्ञानी जड़ासक्त रहनेसे दूसरे प्रकारके मध्यम, जिज्ञासु साधुओंसे कुछ अधिक नरजन्म लेते–लेते किसी नरदेहमें बुद्धिमें सदोदित एकरस पारखदृष्टिकी दृढ़ता करनेसे अन्तमें वे जीवन्मुक्त हो जावेंगे ॥

इस प्रकारसे तीन प्रकारके मध्यम, जिज्ञासु (ज्ञानके अधिकारी) साधुओंके भेद आपको स्पष्ट करके हम दिखाये हैं। सो अब आप भी अच्छी तरहसे जान लीजिये ! ॥

प्रश्न (१३६) हे दयानिधे ! अब उत्तम जीवन्मुक्त साधुओंका भेद भी मुझे दया करके समझाइये ? ॥

(१३६) उत्तरः—जीवन्मुक्त साधुओंका भेद भी मैं आपको दर्शाता हूँ; सो सुनिये ! 'जीवन्मुक्त साधु' विषय कहे हैंः—

साखीः—"साधु साधु सबहीं बड़े। अपनी अपनी ठौर ॥
शब्द विवेकी पारखी। ते माथेके मौर ॥ ६० ॥"
॥ टकसार, पञ्चग्रन्थी। साखी–६०। नं०–१८१ ॥

अर्थः—श्रीरामरहस साहेब कहते हैं कि, भक्त, योगी, संन्यासी, परमहंस, नाना मतवाले भेषधारी सर्व साधु अपने-अपने सिद्धान्तोंमें और मान-मर्यादाओंमें बड़े श्रेष्ठ कहलाते हैं। परन्तु जगत् कर्त्ता ईश्वरादि ठहराना यह मनुष्योंकी कल्पना मिथ्या ही है। और जड़ तत्त्वोंका प्रकाश वा निर्विकल्परूप आनन्दमात्र व्यापक माना हुआ शुद्ध आत्मा वा ब्रह्म चार खानियोंमें अन्तर-बाहर व्यापक परिपूर्ण ठहरानेसे वे सर्व साधु आवागमनके अधिकारी हैं; (ऐसा पूर्वके प्रथम प्रकरणमें अनेक प्रकारसे कहा है।) परन्तु जो सन्त (चेतन हंसरूप मनुष्य जीव) खानी-वाणीके 'प्रवृत्ति' और 'निवृत्ति'रूप व्यवहार, नाना मत, नाना सिद्धान्त प्रकट करनेवाले सर्व देहधारी जीवोंमें श्रेष्ठ हैं। ऐसा सत्य विवेक करके दृढ़ वैराग्यवान् और पारखमें बली हैं। अर्थात् जिनको बुद्धिसे सदोदित पारखदृष्टिकी धारणा एकरस हुई है। वे ही पारखी सन्त (जीवन्मुक्त हंस) जगत्में सबके शिरमौर (परमपूज्य श्रेष्ठ) सद्गुरुरूप हैं। और सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहे हैं किः—

साखीः—"कर बन्दगी विवेककी, भेष धरे सब कोय ॥
सो बन्दगी बहि जान दे, जहाँ शब्द विवेक न होय ❀ ॥२६४॥"
॥ बीजक, साखी–२६४ ॥

❀ टीका गुरुमुखः—'विवेक' कहिये जो साँच-झूठ दोनों मिले रहे हैं; जड़ और चैतन्य, ताको न्यारा-न्यारा करके समुझै, ता समुझका नाम विवेक है, ताही

अर्थः—साधुका भेष कोई भी मनुष्य धर लेते हैं। परन्तु जहाँ देहधारी, यथार्थ सत्यासत्य विचारवान् मनुष्य हंस सबसे श्रेष्ठ हैं; ऐसा निर्णय करके बुद्धिसे सदाकाल एकरस, पारखदृष्टि जिनको धारण हुई है। और खानी-वाणीके सर्व जड़ाध्यास जिनके छूट गये हैं, वे ही पारखी विवेकी सन्त 'जीवन्मुक्त' हैं। उनकी सेवा, बन्दगी, टहल करके पारखदृष्टिकी धारणा करो; और जहाँ वेद, शास्त्र, तत्त्वमसि, सच्चिदानन्द, व्यापकादि शब्दोंका यथार्थ विवेक नहीं हुआ, केवल पक्षपात रखते हैं; ऐसे साधुओंका सङ्गति त्याग देओ। वहाँ सत्यन्यायका बोध और जीवन्मुक्तिका कार्य सिद्ध नहीं होगा ॥

इन दो प्रमाणोंसे जो सन्त जड़-चेतनका यथार्थ निर्णय करके चेतन हंस पदमें पारखदृष्टिसे एकरस, समबुद्धि धारण किये हैं। देह और देहका सर्व व्यवहार अन्तमें नाशवान् है। ऐसी दृढ़ता जिनकी सदैव बनी रहती है, इसलिए किसी प्रकारके जड़ खानी-वाणीके मायामें वे आसक्त नहीं रहते हैं ॥ और भी कहा हैः—

दोहाः—"सज्जनते जाँचै नहीं। दुर्जन ढिग नहिं जाय ॥
प्रारब्ध वर्त्तमान जो। बरतै सो बरताय ॥ ३० ॥"

अर्थ स्पष्ट है ॥   ॥ वैराग्यशतक, दोहा—३० ॥

इस प्रकारसे पारखी जीवन्मुक्त सन्त कहीं भी रहें; वे अपने

समुझकी बन्दगी करना। क्योंकि समुझेसे समुझ होती है, और समुझसे जीवका कारज है, कछु भेषसे जीवका कारज नहीं। भेष तो सब कोई धर लेता है, तासे कछु जीवका कारज नहीं। ताते सो बन्दगी जामें जीवका कारज नहीं, ताको पहिचान नहीं। जहाँ शब्दका विवेक समुझ नहीं, ताकी बन्दगीमें कछु फायदा नहीं। बेफायदेकी बन्दगी बहि जाने दे, जो आप ही तृप्त नहीं है, सो दूसरेको क्या तृप्त करेगा ? । ये अर्थ ॥ —त्रिजासे बीजक, साखी—२६४ ॥

देहोंका निर्वाहमात्र अन्नादि व्यवहार निराश वृत्तिसे बिना माँगे जो मिल जाय, सो विचारयुक्त ग्रहण करते हैं। अपने ही भोजनमात्र प्रतिदिन जो अन्न मिलेगा, सो स्वयं अपने हाथसे बनाते। अथवा शुद्ध चालसे चलनेवाले भक्त सद्गृहस्थोंके हाथका बना–बनाया भोजन दिनमें एक बार वे ग्रहण करते हैं। अधिकारी देखके भेषधारी साधु वा गृहस्थोंको उपदेशरूप दान दया–दृष्टिसे वे दिया करते हैं। नाशवान् कोई भी वस्तु किसीको वे देते नहीं, न पास रखते हैं। वे ही पारखी सन्त 'जीवन्मुक्त' हैं। इसी नरदेहमें अभी वे जीवन्मुक्त हैं; तिनको फिर आवागमन नहीं। भर्जित (भूँजा हुआ) बीजवत् देहके प्रारब्ध व्यवहार अर्थात् देहके सुख-दुःख, अन्न-वस्त्रादि व्यवहारके अवश्य भोग तिनके बाकी रहे हैं। वे देहके साथ आप ही छूटके विदेहमुक्तिमें वे पारख प्रकाशी (ज्ञानमात्र शुद्ध चेतन) ही सदैव रह जावेंगे। तिनमें देहोपाधिसे या देह साधनसे होनेवाले सुख, दुःख, शक्तियाँ, क्रियाएँ, साक्षीदशा, ये सब नहीं रहेंगे; (इनका वर्णन पूर्वमें इसी प्रकरणमें किया गया है। और जीवन्मुक्ति तथा विदेहमुक्तिका प्रमाण पूर्वके प्रश्न–१३१ में देखिये !) ॥

इस प्रकारसे जीवन्मुक्त पारखी उत्तम साधुओंका भेद मैंने आपको दिखाया है। आप भी पूर्वोक्त चारों प्रकारके साधुओंके 'लक्षण' और 'रहनी'का यथार्थ निर्णय कीजिये ! और शुद्ध चाल–चलन संयुक्त जगत्में व्यवहार रखकर, सर्व जड़ाध्यास रहित जीवन्मुक्त हो जाइये ! ॥

॥❀॥ जीवन्मुक्त सन्तोंकी स्पष्टतासे रहनी और स्थिति वर्णन ॥❀॥

प्रश्न (१३७) उत्तम, मध्यम, कनिष्ट, और महाकनिष्ट, ये चार प्रकारके साधुओंके भेदोंको मैं पूर्णतासे निर्णययुक्त आपकी कृपासे अब समझ लिया हूँ ! ॥

अब जीवन्मुक्त सन्त देह रहेतक जगत्में कैसे व्यवहार रखके चलते ? सो फिर भी दृढ़ताके लिए आप समझाइये ? ॥

(१३७) उत्तरः—सुनिये ! जीवन्मुक्त सन्तोंके देह व्यवहार विषय कहे हैंः—

"सत्यमेव जयते नानृतं ॥" –मुण्डक उ० । मुण्डक ३ । खण्ड १ । मन्त्र–६॥

अर्थः—जो यथार्थवक्ते सत्यन्यायके वचन कहनेवाले, सत्यचलन अर्थात् चेतन हंसपदको अविनाशी निश्चय करके भीतर-बाहरसे जीवदयादि सत्य व्यवहार रखते हैं, वे ही जयवान, "जीवन्मुक्त" पुरुष हैं। झूठ भाषण, कपट, कुटिलता, अर्थात् किसीको मिथ्या कल्पना तथा जड़ बन्धनोंमें फँसाना, ऐसे-ऐसे असत्य व्यवहारसे चलनेवाले पुरुष जय रहित, अमुक्त, चौ-राशि योनियोंमें अनेक देहोंको धरके दुःख भोगनेके अधिकारी हैं ॥

श्लोकः—"धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं, शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो, दशकं धर्मलक्षणम् ॥ ९२ ॥"
॥ मनुस्मृतिः, अध्याय–६ । श्लोक–९२ ॥

अर्थः—१. धृतिः = सन्तोष वा धैर्यको धारण करना। २.क्षमा = अपराधका सहना। ३. शम-दम = मनको शान्त रखना, इन्द्रियोंको विषयोंसे रोकना । ४. अस्तेय = चोरी नहीं करना । ५. शौच = देह और बुद्धि शुद्ध रखना । ६. इन्द्रियनिग्रह = इन्द्रियोंकी शुभ कार्योंमें प्रवृत्ति तथा अशुभ कार्योंसे रोकना । ७. धी = बुद्धि प्रकाश करके आत्मज्ञानसे जड़ासक्ति रहित शुद्ध चेतनकी सत्यताका बुद्धिमें दृढ़ निश्चय। ८. विद्या = सद्विद्यासे निर्णय द्वारा शास्त्रोंके सारासारका ज्ञान। ९. सत्य = अन्तर-बाहरसे सत्य सरल व्यवहार। १०. अक्रोध = सर्व जीवोंसे क्रोध रहित निर्वैरत्व; ये दश लक्षण धर्मके हैं ॥

श्लोकः—"न चैवासिस्तथा तीक्ष्णः, सर्पो वा दुरधिष्ठितः ॥
यथाक्रोधो हि जन्तूनां, शरीरस्थो विनाशकः ॥ ४ ॥
मातृवत्परदारांश्च, परद्रव्याणि लोष्टवत् ॥
आत्मवत्सर्वभूतानि, यः पश्यति स पश्यति ॥ ११ ॥"
॥ आपस्तम्ब स्मृतिः, अध्याय–१० । श्लोक–४ । ११ ॥

अर्थः—तलवार भी ऐसी तीक्ष्ण नहीं, तथा सर्प भी ऐसा भयङ्कर नहीं; जैसा कि प्राणियोंके शरीरोंमें क्रोध, उनका नाश करनेवाला है। इसलिए क्रोध मनुष्योंको त्यागना चाहिये। क्रोधसे ही जीव-हिंसादि पापकर्म हुआ करते हैं ॥ ४ ॥ जो माताके तुल्य सर्व जगत्की स्त्रियोंको, ढेलेवत् सर्व धनको, और देहधारी सकल प्राणीमात्रको अपने समान दयादृष्टिसे स्वजाति देखते हैं, वे ही विरक्त पुरुष यथार्थ देखनेवाले ज्ञानी हैं ॥ ११ ॥

भगवद्गीताके द्वितीय अध्यायके श्लोक–५६ से ६१ ❀ तक

❀ श्लोकः—"दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ॥ वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ ५६ ॥" —तथा दुःखोंकी प्राप्तिमें उद्वेगरहित है मन जिसका, और सुखोंकी प्राप्तिमें दूर हो गई है स्पृहा जिसकी, तथा नष्ट हो गये हैं राग, भय और क्रोध जिसके, ऐसा मुनि स्थिरबुद्धि कहा जाता है ॥ ५६ ॥ "यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ॥ नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५७ ॥" —और जो पुरुष सर्वत्र स्नेहरहित हुआ, उस–उस शुभ तथा अशुभ वस्तुओंको प्राप्त होकर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है, उसकी बुद्धि स्थिर है ॥ ५७ ॥ "यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ॥ इन्द्रियाणी-न्द्रियार्थेभ्य स्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५८ ॥" और कछुआ अपने अङ्गोंको जैसे समेट लेता है, वैसे ही यह पुरुष जब सब ओरसे अपनी इन्द्रियोंको इन्द्रियोंके विषयोंसे समेट लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर होती है ॥ ५८ ॥ "विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ॥ रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥५६॥" —यद्यपि इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंको न ग्रहण करनेवाले पुरुषके भी केवल विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, परन्तु राग नहीं निवृत्त होता है; और इस पुरुषका तो

कहा हैः—"जो पुरुष दुःखमें उदासीन और सुखमें प्रसन्न नहीं होते। राग, भय, क्रोधसे आसक्ति रहित, शान्त चित्त, विषयोंके तरफसे इन्द्रियोंको वश किये हुए, वे स्थिरबुद्धियुक्त जीवन्मुक्त पुरुष हैं। अभिमान और पर पीड़ा रहित, सरल स्वभाव, गुरुकी सेवा, पवित्रता, दृढ़ता, विषयोंसे वैराग्य, अहङ्कार रहित, जन्म, मरण, वृद्ध अवस्था, और अनेक दुःखोंके दोषोंको देखनेवाले; पुत्र, स्त्री, घर, धनादि जड़ पदार्थोंसे आसक्ति रहित, अनिष्टके प्राप्तिमें सदोदित चित्तकी समानता, उपाधिवाले लोगोंके सङ्गतिसे अप्रीति, ये सब लक्षण ज्ञानी जीवन्मुक्त पुरुषोंके रहते हैं॥"

तत्त्वानुसन्धानके चतुर्थ परिच्छेदमें ❀ जीवन्मुक्त संन्यासीके

राग भी परमात्माको साक्षात् करके निवृत्त हो जाता है॥ ५९॥ "यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः॥ इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥ ६०॥" —और हे अर्जुन! जिससे कि यत्न करते हुए बुद्धिमान् पुरुषके भी मनको यह प्रमथन स्वभाववाली इन्द्रियाँ बलात्कारसे हर लेती हैं॥ ६०॥ "तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः॥ वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥ ६१॥"

॥ श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय–२। श्लोक–५६ से ६१ तक॥

—इसलिए मनुष्यको चाहिये कि उन सम्पूर्ण इन्द्रियोंको वशमें करके समाहित-चित्त हुआ मेरे परायण स्थित होवे, क्योंकि जिस पुरुषके इन्द्रियाँ वशमें होती हैं, उसकी ही बुद्धि स्थिर होती है॥ ६१॥

❀ श्लोकः—"अजिह्वः षंडकः पङ्गुरन्धो बधिरएव च॥ मुग्धश्चमुच्यतेभिक्षुः षड्भिरेतैर्नसंशयः॥ १॥"—१. अजिह्व, २. षंडक, ३. पङ्गु, ४. अन्ध, ५. बधिर, ६. मुग्ध; इन षट् धर्मोंके सेवन करनेसे संन्यासी जीवन्मुक्तिको प्राप्त होता है॥ १॥ "इदमिष्टमिदंनेति योऽश्नन्नपिनसज्जते॥ हितंसत्यंमितंवक्ति तमजिह्वंप्रचक्षते॥ २॥"—जो संन्यासी अन्नादिकोंको भक्षण करता हुआ भी यह अन्न स्वादु है, यह अन्न अस्वादु है, इस प्रकारका वचन कहता नहीं; तथा हितकारी सत्य प्रमित इस प्रकारके वचनको उच्चारण करता है, सो संन्यासी 'अजिह्व' कहा जाता है॥ २॥ "अद्यजातांयथानारीं तथा षोडशवार्षिकीम्॥

लक्षण कहे हैं:—१. अजिह्व = अन्नके स्वादमें आसक्ति रहित, अर्थात् देह निर्वाहमात्र अन्न सेवन । २. षण्डक = बालिका, तरुण, वृद्ध, ऐसे सर्व स्त्रियोंके भोग-विलासकी काम वासना रहित । ३. पङ्गु = भिक्षा, भोजन, मल-मूत्र त्याग निमित्त गमन; अथवा दिनमें चार कोशोंसे अधिक गमन रहित । ४. अन्ध = बैठते, चलते समय (१६). सोलह हाथोंके भीतर ही तिनका लक्ष ।

शतवर्षांचयोदृष्ट्वा निर्विकारःसषंडकः ॥ ३ ॥"—जैसे आज दिनको जन्मी हुई अति बालिका स्त्रीको देख करके तथा शतवर्षकी अतिवृद्ध स्त्रीको देख करके कामरूप विकार उत्पन्न होता नहीं । तैसे जो संन्यासी षोड़शवर्षकी युवा स्त्रीको देखके भी कामरूप विकारसे रहित होता है, सो संन्यासी 'षंडक' (नपुंसक) कहा जाता है ॥ ३ ॥ "भिक्षार्थमटनंयस्य विरामूत्रकरणाय च ॥ योजनी नपरंयाति सर्वथापङ्गुरेवसः ॥ ४ ॥"—जिस संन्यासीका भिक्षाकेवास्ते ही गमन होता है । तथा विष्ठा-मूत्रके परित्याग करनेवास्ते गमन होता है । अन्य किसी प्रयोजन-वास्ते गमन होता नहीं । तथा जो संन्यासी एक योजनसे अधिक मार्ग चलता नहीं, सो संन्यासी 'पङ्गु' कहा जाता है ॥ ४ ॥ "तिष्ठतोव्रजतोवापि यस्यचक्षु-र्नदूरगम् ॥ चतुर्युगां भुवंत्यक्त्वा परिव्राट्सोऽन्धउच्यते ॥ ५ ॥"—जिस संन्यासीका स्थित हुए वा चलते हुए चक्षु इन्द्रिय चतुर्युग (सोलह हाथ) भूमिको छोड़के दूर नहीं जाता है; सो संन्यासी 'अन्ध' कहा जाता है ॥ ५ ॥ "हिताहितंमनोरामं वचःशोकावहंचयत् ॥ श्रुत्वापिनश्रृणोतीयो बधिरः सप्रकीर्त्तितः ॥ ६ ॥" —जो संन्यासी हर्षकी प्राप्ति करानेवाले अनुकूल वचनको तथा शोककी प्राप्ति करानेवाले प्रतिकूल वचनको श्रवण करके भी नहीं श्रवण करता है । अर्थात् हर्ष-शोकको प्राप्त होता नहीं; सो संन्यासी 'बधिर' कहा जाता है ॥ ६ ॥ "सान्निध्येविषयाणां च समर्थोऽविकलेंद्रियः ॥ सुप्तवद्वर्त्ततेनित्यं सभिक्षुर्मुग्ध-उच्यते ॥७॥"—तत्त्वानुसन्धान, परिच्छेद-४ । पृष्ठ-१६६-२०० में श्लोक-१-७ लिखा है ॥ —विषयोंके समीप प्राप्त हुए जो संन्यासी समर्थ हुआ भी तथा सर्व इन्द्रियों करके सम्पन्न हुआ भी तिन विषयों विषे प्रवृत्त होता नहीं । किन्तु सुषुप्त पुरुषकी न्याईं तिन विषयोंसे उपराम रहता है । सो संन्यासी 'मुग्ध' कहा जाता है ॥ ७ ॥

५. बधिर = हर्ष, शोक, स्तुति, निन्दामें दुर्लक्ष । ६. मुग्ध = सर्व विषय प्राप्त होते भी तिनकी वासनाओंसे रहित। ऐसे छः लक्षणोंकी धारणायुक्त जीवन्मुक्त ज्ञानी वर्त्तते हैं ॥ और:—

चौ०:-"परख परखावन जीवन केरा । यह व्यवहार यथार्थ निबेरा॥२०॥"

॥ गुरुबोध, पञ्चग्रन्थी । चौपाई-२० । नं०-१८८ ॥

अर्थ:—जो पुरुष जड़-चेतन, ज्ञान-अज्ञान, साँच-झूठ, मानना-कल्पना, आरम्भ-परिणाम, इत्यादि सबोंकी परीक्षा आप स्वयं करते हैं । जीवदया, शील-स्वभाव, दृढ़ वैराग्य और चेतन हंसके नित्यताकी दृढ़ पारखदृष्टि बुद्धिसे आप सदोदित एकरस रखते हैं। ऐसी ही यथार्थ न्याययुक्त सार-असारकी (ग्रहण-त्यागकी) परीक्षा, पक्ष रहित, मोक्षके श्रद्धावान् जिज्ञासु मनुष्योंको वे परखाय देते हैं। अथवा किसी भी प्रकारके कर्मवादी मनुष्य मिलें, तैसे ही तिनके सिद्धान्तोंमें मिलकर, तिनके कर्मोंमें गुण-दोषोंकी पारख वे दिखाय देते हैं । ऐसा जीवन्मुक्त पारखी-सन्तोंका सत्य-न्याययुक्त, निवृत्तिरूप, यथार्थ देहव्यवहार प्रारब्ध वर्त्तमानमें रहता है॥

चौ०:—"वर्त्तमानमें बर्त्तो भाई ! भूत भविष्य सब देउ बहाई ॥३१॥"

॥ निर्णयसार । चौपाई-३१ । नं०-५८३ ॥

अर्थ:—सद्-गुरु श्रीपूरण साहेब कहते हैं कि, हे पारखीजन ! देहके सुख-दुःखादि नाशवान् व्यवहारोंमें आसक्त मत होओ ! "मैं चेतन हंस अविनाशी सत्य हूँ !" ऐसा बुद्धिसे दृढ़ निश्चय करके सदोदित शुद्ध चालसे पारखदृष्टि रखकर प्रारब्धके वर्त्तमान व्यवहारमें वर्त्तो । भूत, भविष्यत्के अनेक कर्मोंके और अनेक पदार्थोंके सङ्कल्प करके चिन्तन करना दूर बहाओ (त्याग देओ)। तिनमें लक्ष रहनेसे मनुष्योंका चञ्चल स्वभाव होनेसे स्थिरबुद्धि कभी नहीं रहती है ॥

"अम्मृत केरी पूरिया, बहु विधि दीन्हा छोरि ॥
आप सरीखा जो मिलै, ताहि पियावहु घोरि ❀॥"–बीजक, साखी–१२१॥

अर्थः—सद्गुरु श्रीकबीर साहेब कहते हैं कि, 'अम्मृत' कहिये अविनाशी चेतन हंस और उसकी स्वरूपस्थिति, पारखदृष्टि (स्वयंप्रकाश ज्ञानस्वरूप गुण नित्य) है। सत्य, विचार, शील, दया, धैर्य, विवेक, वैराग्य, गुरुभक्ति आदि लक्षण सहित शुद्ध रहनी रखके खानी–वाणीके सर्व जड़ाध्यास (सुखोंकी सूक्ष्म अहन्ता), त्याग देओ। ऐसा बहुत प्रकारसे स्पष्ट करके मैंने आपको समझाया है। अब हे पारखी सन्त हो! जो कोई आपके सरीखे पक्ष रहित जिज्ञासुजन मिलैं; तिनको जीवन्मुक्तके गुण–लक्षण सहित सत्यन्यायकी पारखदृष्टि यथार्थसे समझाय देओ! ॥

इन प्रमाणोंसे और प्रश्न–१३५ में प्रथम प्रकारके जिज्ञासु साधु तथा प्रश्न–१३१ और प्रश्न–१३६ में जीवन्मुक्त सन्तोंकी रहनी कही है। तिन प्रमाणोंसे जो सन्त खान–पान, वस्त्र, स्नानादि शुद्ध व्यवहार रक्खा करते हैं। जीव-हिंसा बचानेके लिये शक्ति अनुसार काया, वाचा, मनसे सर्व छोटे–बड़े देहधारी जीवोंपर विशेष दया रखकर, पारखी जीवन्मुक्त सन्त आप सब जड़ाध्यासोंसे मुक्त होकर, अन्य ज्ञानाधिकारी मनुष्योंको वैसा ही उपदेश देते हुए जगत्में विचरते रहते हैं; या कहीं निरुपाधि अनुकूल जगहमें वे रहते हैं ॥

सबका भावार्थ ऐसा है कि, जो सन्त निर्भय, सन्तोषी,

❀ टीका गुरुमुख:–अमृत कहिये जीव, ताकी स्थिति पारख, तो बहुत प्रकारसे खोलिके समुझाय दिया। अब हे पारखी हो! जो कोई तुम्हारे सरीखा सत्शिष्य मिलै, ताको सकल निरुवारा करके समझाय देओ। ये अर्थ॥–त्रिजासे बीजक, साखी–१२१ ॥

इन्द्रियजीत, लोभ, आशा, अष्ट मदोंकी मोह—मायासे रहित, कोमल भाषण, सरल स्वभाव, सर्व जीवोंपर समदृष्टिसे दयावान् रहते हैं। खानीके पक्षपाती 'संसारी गृहस्थ' और वाणीके पक्षपाती 'भेषधारी साधु' इनके अन्यायका पक्ष वे नहीं लेते हैं। सर्व शुद्ध सद्गुणोंको धारण कर, जगत्के देह-सम्बन्धी सर्व आनन्द दुःखोंके बीज हैं, ऐसे वे जानते हैं। "चेतन हंस सत्य है," ऐसी पूर्णतासे बुद्धिकी दृढ़ता रखके सदोदित जड़ मायामें वे नहीं भूलते हैं। खानी—वाणीकी सब आसक्ति या अनेक प्रकारसे जड़ पदार्थोंको सत्य माननेका अभाव, प्रारब्ध व्यवहारोंमें उदास और निराश, निष्पक्ष तथा जिज्ञासु मनुष्योंको दयास्वभावयुक्त सत्यन्यायका उपदेश देनेमें तत्पर; ऐसे जीवन्मुक्त पारखी सन्त जगत्में अपनी आयुका काल बिताते हुए, एक ही स्थान पर वा कहीं भी रहके जड़ाध्यास रहित सदोदित पारखदृष्टिसे जगत्में विचरते रहते हैं॥

इस प्रकारसे 'जीवन्मुक्त' पारखी सन्तोंका जगत्में देहोंके प्रारब्ध व्यवहारोंमें कैसा आचरण रहता है ?; और कौन रहनीसे विचरते रहते हैं ?; सो सब गुण—लक्षण सहित आपको मैंने यथार्थतासे स्पष्ट करके समझाया है॥

प्रश्न (१३८) जीवन्मुक्त पारखी सन्त देह रहे तक प्रारब्धके व्यवहारोंमें किस रहनीसे और शुद्ध लक्षणोंसे पारखदृष्टि दृढ़ रखके चलते? इसकी यथार्थ बोधका निश्चय, आपकी दयासे मुझे अब हुआ है॥

अब सर्व साधुओंके वर्त्तमान व्यवहार कितने प्रकारके हैं ? और तिनके लक्षण कैसे जानना ? सो भी दया करके दिखाइये ?॥

(१३८) उत्तरः—सुनिये ! साधुओंके वर्त्तमान व्यवहार विषय कहा हैः—

साखीः—"जो तू चाहै मूझको। छाँड़ सकलकी आस॥
मुझ ही ऐसा होय रहो। सब सुख तेरे पास॥ २६८॥"
॥ बीजक, साखी—२६८। टीकायुक्त॥

अर्थः—सद्गुरु श्रीकबीर साहेब कहते हैं कि, हे जिज्ञासु मनुष्यो ! जो तू मुझे (पारखको) चाहता है; तो पुत्र, धन, स्त्री, घर, कुटुम्ब, राज, काज, अनाज, वस्त्र, जल, ऋद्धि, सिद्धि, स्वर्ग, देवता, ब्रह्म प्राप्तिके जड़ाध्यासी कर्म, उपासना, योग, ज्ञानमार्ग, केवल सायुज्यमुक्ति या निर्गुणमुक्ति, देहादि आशामात्र सब छोड़ दे ! 'आशा' सोई बन्धन और 'बन्धन' सोई आवागमन-का और दुःखका कारण है। जबलग तू सुखकी आशा करेगा, तबलग तुमको दुःख होगा। यदि सुख-दुःख, ब्रह्म-जगत्, खानी-वाणी इत्यादि सबोंकी आशा छोड़ेगा, तो जड़ाध्यास रहित हंसको जीवन्मुक्तिका पारखसुख तुझे प्राप्त होगा। आशा-बासा छोड़कर जो बुद्धिसे दृढ़ निश्चय करके स्वयंप्रकाशी (जड़ाध्यास रहित) शान्त हुआ, सो गुरुरूप, सोई पारखी सन्त हैं। जो गुरुके जीवन्मुक्तिका सुख है, सोई उसका सुख है। जगत्में १. "स्वइच्छा वर्त्तमान" योगियोंका। २. "परइच्छा वर्त्तमान" भक्तोंका। ३. "अनइच्छा वर्त्तमान" ब्रह्मज्ञानियोंका। और ४. "निराश वर्त्तमान" पारखी सन्तोंका है। जहाँ कोई वर्त्तमानकी आशा नहीं, सो निराश वर्त्तमान है। अर्थात् प्रारब्धानुकूल देहके अन्न, वस्त्रादि भोग अवश्य मिल ही जावेंगे, ऐसा निश्चय करके दृढ़ वैराग्य-युक्त सर्व जड़ पदार्थों और सुख-दुःखोंसे आसक्ति रहित वर्त्तना ॥

इस प्रमाणसे उक्त चारों वर्त्तमान व्यवहारोंका भेद सुनियेः—बुद्धिका तथा माने हुए अनेक ब्रह्माण्डोंका प्रेरक कल्पित ईश्वर हैं; (उसे पूर्वके प्रमाण प्रश्न-५३ में देखिये !)। ऐसा जगत् कर्त्ता ईश्वर कल्पनासे मानके दासवत् भक्त बने हुए, साधु कहते हैं कि, जैसे काष्ठकी अनेक पुतलियोंको सूत्रधारी (डेरेमें बैठके सूतोंको

हिलानेवाला पुरुष) नचाता है। वैसे ही ईश्वर सर्व जीवोंकी बुद्धिमें प्रेरणा करके अनेक कर्मोंसे नचाता है। वह जिस स्थितिमें रक्खे, वैसे ही हम भक्तोंको उसके आधीन होकर रहने चाहिये। ऐसा संसारी भक्त और वैष्णवादि साधुओंका "परइच्छा वर्त्तमान" है॥

पूर्वके प्रश्न—२३ में २३ सिद्धियाँ कही हैं, तिन प्रमाणोंसे योगीजन अपनी कल्पित योग कलासे पृथ्वीपर कहीं भी प्रकट होके ऐसे ही जहाँ—तहाँ वे विचरते रहते हैं; और योगमदसे अनेक मनुष्योंको शाप (श्राप) देके अनेक दुःख देते या हिंसादि कर्म भी वे करते हैं। समदृष्टिसे सर्व जीवोंपर जीवदया वे नहीं रखते। कहीं कोई योगी किसी मनुष्योंकी सेवासे प्रसन्न होकर उसे आशीष देके सुख देते; ऐसा कल्पनासे माना है। तिन योगी साधुओंका "स्वइच्छा वर्त्तमान" व्यवहार रहता है, ऐसा कहते हैं॥

पूर्वके प्रश्न—१०८ और प्रश्न—११६ के प्रमाणोंसे ब्रह्मज्ञानी कोई परमहंस हम अकर्त्ता, अभोक्ता, चराचर अन्तर—बाहरसे परिपूर्ण व्यापक ब्रह्मरूप हैं, ऐसे मानन्दीसे ठहरा करके, इन्द्रियोंका कर्म इन्द्रियाँ आप ही करती हैं। अथवा त्रिगुणरूपी मायासे हमारे देहके सब कर्म आप-ही-आप हो रहे हैं। हमको विधि—निषेधरूप पुण्य—पापोंके कर्म स्पर्श नहीं करते, ऐसा मान लिये हैं। फिर स्त्री-सम्भोग, मदिरा—मांसका सेवन, जीवहत्यादि अशुभ कर्मोंको करनेमें नहीं डरनेवाले, बाल, पिशाच, मूक, जड़, और उन्मत्त दशाएँ वे धारण करते हैं। ऐसे मद्यपीवत् देहका भान भी भूले हुए परमहंस (ब्रह्मरूप महात्मा) साधुओंका "अनइच्छा वर्त्तमान" व्यवहार रहता है। ऐसा उनके मतवादियोंने माना है॥

पूर्वके प्रश्न—१३७ के प्रमाणसे प्रारब्ध कर्मोंका क्षय होने तक नाशवान शरीर एक दिन आप ही छूट जायेगा। ऐसा दृढ़ बुद्धिसे

जिनको निश्चय हुआ है। जगत्के सर्व विषय भोगोंमें वैराग्ययुक्त उदासीन रहकर, हंसके शुद्ध चाल रखके चेतन हंसके सत्यताका जो पारखदृष्टिसे बुद्धिमें सदोदित दृढ़ निश्चय रखते हैं। देहोंके प्रारब्ध-भोगोंके अन्न-वस्त्रादि अवश्य व्यवहार या देहोंके सुख-दुःखादि भोग यहाँ ही रहेंगे, ऐसा निश्चय करके, तिनमें आसक्ति रहित, सन्तोषयुक्त, शान्त रहनेवाले, सत्यन्यायी पारखी सन्तोंका "निराश वर्त्तमान" व्यवहार रहता है, यही व्यवहार उनका यथार्थ प्रत्यक्ष सत्य होता है॥

इस प्रकारसे "परइच्छा, स्वइच्छा, अनइच्छा, और निराश," ऐसे चार प्रकारसे जगत्के साधुओंके देहोंका वर्त्तमान व्यवहारोंके लक्षण और तिनके धारणा सहित भेद आपको हम दिखाये हैं। सो अब आप भी अच्छी तरहसे जान लीजिये!॥

प्रश्न (१३६) जगत्के सर्व साधुओंमें "स्वइच्छा, परइच्छा, अनइच्छा, और निराश" ये चार प्रकारसे देहोंके प्रारब्ध-भोगोंमें वर्त्तमानमात्र व्यवहार कैसा रहता है? ऐसा भेद अब मुझको आपकी कृपासे जाननेमें आया। अब एक शङ्का और बाकी रही है, सो भी मैं आपसे विनय पूर्वक कहता हूँ किः—

निर्णयसार ग्रन्थमें सद्गुरु श्रीपूरण साहेब कहे हैंः—

चौ०:-"पारखमें हम तुम हैं एका। देहभावते भिन्न विवेका॥ १२॥
पारखमें समता ह्वै जाई। शिष्य भाव ना रहै गुरुवाई॥ ६॥"
अर्थ स्पष्ट है॥ निर्णयसार। चौपाई-१२। ६। नं०-५६४। ५६१॥

इस प्रमाणसे जैसे ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मज्ञानी चेतन जीव और चेतन ब्रह्मकी एकता करके व्यापक, अक्रिय, मुक्तरूप मानते हैं। तैसे ही जीवन्मुक्त सर्व पारखी सन्त विदेहमुक्तिमें एक ही शुद्ध चेतन-स्वरूप बनके कौनसे स्थानपर स्थित रहते? और तिनमें शक्ति तथा

क्रिया रहती है या नहीं ? इसका भेद भी आप कृपा करके दिखाइये ? ॥

(१३९) उत्तरः—सुनिये ! आपको विदेहमुक्तिका बोध अभी बराबर हुआ नहीं; अब उसका भेद हम फिर दिखाते हैं ॥

तहाँ कहा भी हैः—

"न जीवो म्रियत ॥"—छान्दोग्य उपनिषद्, अ० ६ । खण्ड ११ । मन्त्र-३ ॥

अर्थः—"चेतन जीव नाश रहित अमर हैं ॥"

इस प्रमाणसे जगत्में सर्व जीव 'अमर' हैं । अथवाः— जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, इन तीन अवस्थाओंमें 'सुख और दुःख' जाननेवाले हम मनुष्य जीव नित्य हैं; ऐसी प्रतीति सबोंको है । अनादि कालसे देहधारी सर्व जीव पाप-पुण्य कर्मोंके वासनाओंसे अनादि प्रवाहरूपसे अनेक देह धरते चले आते हैं । अब वर्त्तमानमें हम देहधारी मनुष्य जीव प्रत्यक्ष हैं; और आगे भविष्यत्कालमें, भी कर्मोंके वासनाबीज रखनेसे हम फिर देह धरेंगे । ऐसी भूत, वर्त्तमान, भविष्यत्, ये तीनोंकालकी भी अपने चेतन जीवोंकी नित्यतारूप सत्यस्वरूपकी प्रतीति मनुष्योंको अनुभवसे आती है । यद्यपि चार खानियोंमें अनेक देहधारी जीव अमर रहनेसे किसी चेतनके कार्य रहित, अखण्डरूप, वे सदाकाल अनेक ही हैं । इसलिए परस्पर एक चेतन जीवमें अन्य चेतन जीव न कभी मिलते हैं, और न मिलेंगे । इसीसे चेतन-में-चेतन मिलकर एक स्वरूप ही बन जाते; ऐसा ब्रह्मज्ञानियोंका मानना केवल भ्रम अध्यासमात्र असत्य है ॥

देहधारी सर्व जीवोंमें मुख्य 'इच्छाशक्ति' है, सो पाँच विषय सुखोंकी सूक्ष्म अहन्तारूप अनेक अध्यास सबोंके हृदयोंमें गुप्तरूप रहनेसे सुखके ही लिये मनुष्यादि जीव अनेक इच्छा करके अनेक

क्रियाएँ हमेशा करते रहते हैं। और सुख–दुःख तथा अनेक पदार्थोंको परखते हैं, सो सब देहसाधनसे (देहोपाधिसे) हैं। विदेहमुक्त शुद्ध जीवोंमें 'इच्छाशक्ति' और अनेक 'क्रियाएँ' दोनों रहती नहीं; (तिनको प्रमाण पूर्वके प्रश्न–९३ और प्रश्न–९४ में देखिये !)। वहाँपर विस्तारसे इसका वर्णन किया है ॥

देहधारी चेतन जीवोंके और जड़ देहोंके, दृढ़तासे मानना, आसक्ति या अध्यासरूप देह सम्बन्ध हैं। सो अध्यास वा जड़ पदार्थोंकी आसक्ति छूटनेके लिये दृढ़ वैराग्यसे "मैं चेतन हंस स्वरूपसे त्रिकालमें सत्य हूँ!" ऐसी सदोदित एकरस पारखदृष्टिसे बुद्धिका दृढ़निश्चय, हो जानेसे सर्व जड़ाध्यास पारखी सन्तोंके छूट जावेंगे। फिर मनुष्यरूप हंसजीव जीवन्मुक्त दशामें जगत्से उदासीन रहकर, देहके प्रारब्ध व्यवहारोंको शुद्ध लक्षणयुक्त बेगारवत् चलावेंगे। फिर आप ही देह छूटे बाद वे सदैवके लिये विदेहमुक्त स्थित रहेंगे। विदेहमुक्त शुद्ध जीव चेतनदेशके स्वयं पारख प्रकाशमें या निज ज्ञान स्वरूप देशमें निराधार रह जाते हैं। तहाँ वे "गुणी शुद्ध जीव" और तिनका "ज्ञान गुण" नाम कहनेको दो हैं, परन्तु स्वरूपसे एक ही पद है। जैसे "सूर्य" और उसका "स्वयंप्रकाश" नाम 'दो' और वस्तु 'एक' ही है ॥

जगत्में किसी जड़ वा चेतन पदार्थका 'व्यापक' नाम धरा कि, दूसरा 'व्याप्य' पदार्थ भी नित्य अवश्य ही मानना चाहिये ? इसलिए देहोपाधि सहित एकदेशी या ज्ञानस्वरूपसे सर्व नित्य चेतन जीव भिन्न–भिन्न एकदेशी अनेक हैं। तैसे ही नित्य जड़ साकार चार तत्त्व एकदेशी, और निराकार आकाश या पोलरूपमें

अवकाश, ऐसे पाँच तत्त्व अनादि कालसे हैं, ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव है ॥

ब्रह्म, ईश्वर, खुदादि जगत् कर्त्ता, स्वर्ग, अनेक देवता, यमपुरी, 'भूत-प्रेतगण' इत्यादि माने हुए अनेक पदार्थ मनुष्योंकी कल्पनामात्र है। क्योंकि मनुष्य जीव जगत्में नहीं होवें, तो नाना कल्पना, नाना प्रकारकी वाणी, नाना विद्या, नाना कला, नाना मत, नाना सिद्धान्त कौन सिद्ध करेंगे ? ऐसा विचार कीजिये ! ब्रह्म पदार्थ है नहीं। वह तो केवल कल्पनामात्र है; तब फिर स्वयं प्रत्यक्ष जीव चेतन और कल्पित ब्रह्म चेतन भ्रमसे मानके दोनोंकी एकता करना, और उसको मुक्त, व्यापक, तथा अक्रिय ठहराना, केवल धोखाज्ञान है; ऐसा आप सत्य विवेक कीजिये ! ॥

(इसका विशेष विस्तार प्रथम प्रकरणके वेदान्त मतमें देखिये !) ॥

हम दयास्वभावसे आपको स्वजाति चेतन हंस या जिज्ञासु मनुष्य जानकर, जीवन्मुक्ति तथा सदाकाल विदेहमुक्त स्थितिके यथार्थ सत्यन्यायरूप पारख बोधके लक्षण, गुण तथा रहनीयुक्त पूर्णतासे समझाये हैं। अब आप शूर वीर, सत्यन्यायी, पारखी, साधु–गुरुरूप सद्गुरु श्रीकबीर साहेबके समान जड़ाध्यास रहित जीवन्मुक्त स्थितिको धारण कीजिये ! और "वाणीके पक्षपाती, सर्व मतवाले भक्त, योगी, ब्रह्मज्ञानी आदिकोंके" और "खानीके पक्षपाती, विषयासक्त संसारी गृहस्थोंके" अन्यायरूप विषयोंकी आसक्ति जो है, सो ऐसे "वाणी जाल" और "खानी जाल" में आप कभी भूलना नहीं। यही हमारा अन्तिम उपदेश आपको है ॥

ग्रन्थके अन्तमें पारखी, सत्यन्यायी, प्रत्यक्ष परमपूज्य, सद्गुरुरूप साधु–गुरुकी धन्यतारूप स्तुति मैं दीन, अधीन "काशीदास" बालकरूपसे करता हूँ !:—

॥❀॥ अथ अन्त श्रीसद्गुरु स्तुति ॥❀॥

॥ ❀ ॥ कवित्तः—॥ ❀ ॥

परखगुरु कबीर धन्य !, धन्य ! रामरहस भौ ॥
पूरण साहेब धन्य !, सत्यवक्ते हो गये ॥
परख दृष्टि दाता धन्य !, रामसुख गुरु मेरे ॥
त्राता बन्दिछोर धन्य !, सत्यन्यायि जग ठये ॥
अन्य कर्त्ता स्वर्गलोक, देव न ईश कोउ ॥
यमलोक दूत भैरव, नाम न जहाज है ॥
तत्त्व रु जीव अनादि, वस्तु अन्य प्रवाहरूप ॥
'काशीदास' बोध देके, कियो मम काज है ॥ १ ॥

अर्थ इसका स्पष्ट ही है ॥

॥ ❀ ॥ दोहाः—॥ ❀ ॥

सत्यबोध सद्गुरु दियो, दास कृतारथ कीन ॥
तन मन धन वारों सबै, है अतिदीन अधीन ॥२॥

अन्वयः—सद्गुरु, सत्यबोध, दियो, दास कृतारथ कीन, (इसीसे) तन, मन, धन, सबै वारों, (अब) अतिदीन अधीन है (जगत्में रहौं) ॥

अर्थः—(सद्गुरु सत्यबोध दियो) सर्व जगत्का कोई दूसरा कर्त्ता नहीं। नाना कर्मोंके कर्त्ते, अविनाशी, चार खानियोंके

देहधारी अनेक चेतनजीव प्रत्यक्ष ही हैं। तिनमें नरखानीके 'मनुष्य' पाप-पुण्योंके कर्म करके तिनकी वासनाओंसे बारम्बार अनेक देह धरते चले ही आते हैं। जीवोंके स्थूल-सूक्ष्म शरीर सदोदित प्रवाहरूप अनादि रहनेसे तिनको एकदेशी कहते हैं। वे किसीके कार्य रहित अनादि, अखण्ड रहनेसे ज्ञानस्वरूपसे भी अनन्त, एकदेशी हैं। जीवोंके आकार, सुख, इच्छाशक्ति, क्रियाएँ, ये चारों देहोपाधियुक्त नाशवान् हैं। मनुष्य ज्ञानेन्द्रियोंद्वारा पाँच विषय और अनेक पदार्थोंको जानते हैं, सो "बहिरप्रत्यक्ष ज्ञान" है। अन्तःकरण पञ्चक द्वारा सुख, दुःख, साक्षीदशा, स्मृति आदि मनुष्योंका "अन्तर प्रत्यक्ष ज्ञान" है। ये दो ज्ञान हंस जीवका "स्वरूप ज्ञान" है। देहोपाधि छूटके विदेहमुक्तिमें शुद्ध चेतन "जीव-गुणी' और तिनका स्वयं पारख 'धर्म वा ज्ञान गुण' दोनों एक ही स्वरूप रहते; जैसे 'अग्नि और उष्णता' एक स्वरूप। वे विदेहमुक्तिमें जड़ाध्यास रहित, निराधार, चेतनदेशमें सदाकालके लिये स्थित रहते, उनका जन्म-मरणका दुःख मिट जाता है।

पाँच जड़ तत्त्व भी स्वरूपसे अनादि हैं। तिनमें 'आकाश' तत्त्व केवल अनन्त छिद्ररूपसे पोलस्वरूप है। अन्य 'पृथ्वी, जल, तेज, वायु' इन चारों तत्त्वोंमें तिनके सूक्ष्म तथा स्थूलरूपः—१. आकार, २. संयोग-सम्बन्ध, ३. धर्म, ४. गुण, ५. शक्तियाँ, ६. क्रियाएँ, ये षट् भेद स्वरूपसे अनादि हैं। ब्रह्माण्डमें स्थित, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, तारागणादि स्वरूपसे अनादि हैं। ऐसा सत्यबोध, आप सत्यन्यायी पारखी सद्गुरु! मेरे बुद्धिको प्रकाश करके पूर्णता और स्पष्टतासे मुझे समझाय दिये हो! ॥

(दास कृतारथ कीन) अब सब संशय रहित इस दीनदासको (काशीदासको) आप कृतारथ किये हो !, अर्थात् काया, वाचा, मनसे जहाँ तक बने, तहाँ तक जीवमात्र सबोंपर दया धारण करवाय, सर्व प्रकारके हंसके या मनुष्य जीवके शुद्ध गुण—लक्षण और रहस्य संयुक्त रहनी बताय दिये हो ! सर्व खानी—वाणीरूप मायामल रहित, शुद्ध, प्रकाशरूप आपके स्वयं पारखरूप ज्ञानकी और आपकी धन्यता मैं कहाँ तक वर्णन करूँ !! ॥

(इसीसे तन, मन, धन, सबै वारों) अब तन, मन, धनादि सर्व नाशवान् पदार्थ मैं आपको निछावर करके अर्थात् तिन सबोंका अध्यास त्याग कर, अब देहके प्रारब्ध भोगरूप वर्त्तमानमें ही शुद्ध चालसे रहूँगा । अथवाः—'तन' (स्थूलदेह), सूक्ष्म दृढ़ माननारूप वा सङ्कल्प—विकल्परूप 'मन' है । उसीसे कल्पना करके नाशवान् शरीरके नाना भास ब्रह्म, ईश्वरादि जड़ धन, अर्थात् सत्य पदार्थ मैं मानता रहा । अथवाः—स्त्री, पुत्रादि देहभावना, और नाशवान् धन, घरादि अनेक जड़ पदार्थोंकी आसक्तिरूप अध्यास; उसी धनको मैं मानता रहा । तिनको अब सद्गुरुदेवके चरणोंमें मैं निछावर कर देता हूँ ! क्योंकि ये सब नाशवान् बन्धन परखा करके प्रथम आप ही तिनको छुड़ाय मुझे भेषधारी कबीरपन्थी साधु बनाय पावन कर लिये हो ! ॥

(अब अतिदीन अधीन ह्वै जगत्में रहौं) अर्थात् अब देह रहे तक काया, वाचा, मनसायुक्त दीनता, गरीबीसे आपके आधीन होकर, अथवा आपके समान निष्पक्ष साधु-गुरुरूप सद्गुरुकी शक्ति अनुसार सर्व जीवोंकी हिंसा बचाय, सेवा करता रहूँगा । अथवा

अकेला ही आपके सत्यन्यायरूप पारखदृष्टिसे जगत्में कहीं भी विचरता रहूँगा ! ॥

उक्त प्रकारसे मेरा लक्ष अखण्ड बना रहै; ऐसा सर्व सद्गुरु-रूप साधु-गुरुसे मैं दयारूप आशीष माँगता हूँ ! यह मन्दबुद्धि "काशीदास"को सर्व मिलके पूर्ण दयादृष्टि रखकर, सब जड़ बन्धनोंसे छूटनेकी पारखरूप निर्मल दृष्टिकी दृढ़ बुद्धि सदोदित रहै, ऐसा दृढ़ वैराग्यवान् कर दीजिये ! अन्तमें अब मैं सर्व पारखी सन्तरूप सद्गुरु श्रीकबीर साहेबोंको साष्टाङ्ग-दण्डवत् या "त्रयबार साहेब बन्दगी !!! ३" सत्य प्रेम भावसे करता हूँ ! मेरे सर्व अपराधोंको आप क्षमा कीजिये ! और इस दीन दासपर दयादृष्टि राखिये ! यही मेरा अन्तका माँगना है ॥

॥ ❀ ॥ इति श्री पारखनिष्ठ सद्गुरु आचार्य्य श्रीकाशीसाहेबजी विरचित—निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन सद्ग्रन्थे—जीवोंके लक्षण मुक्त दशादि दर्शन—नामिका तृतीय प्रकरणम् सम्पूर्णम् शुभम् ॥ ३ ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ इति निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन सद्ग्रन्थः ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ श्री सद्गुरुकी दयासे सम्पूर्णम् ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

पारखस्वरूप सद् गुरु आचार्य्य श्रीकाशीसाहेबजी कृतः—

॥अथ लिख्यते "जड़-चेतन भेद प्रकाश" ग्रन्थः प्रारम्भः॥

॥ ❀ ॥ मङ्गलाचरण—दोहाः—॥ १ ॥ ❀ ॥

साहेब सत्य कबीर गुरु ! ज्ञानिनमें शिरताज ! ॥
'काशीदास' वन्दत चरण । ज्ञान पुष्टिके काज ॥ १ ॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग—१ ॥ चौ० १२ । दोहा—२ हैं ॥ ❀ ॥

भूमि जल तेज वायु आकाशा । पाँच तत्त्व जड़ सदा निवाशा ॥ २ ॥
चेतन जीव मिलि षट् वस्तु हैं । अस संसार अनादि स्वयं है ॥ ३ ॥
मनुष्य पशु अण्डज तनधारी । उष्मज खानि राशि हैं चारी ॥ ४ ॥
नर पशु अण्डज खानीयोनिज । उष्मज माँ-बाप रहितअयोनिज॥ ५ ॥
उद्भिज अङ्कुरज अरु पाषाणा । तत्त्वन संयोगसु उतपाना ॥ ६ ॥
ज्ञान क्रिया न अवस्था ताहीं । याते सब निर्जीव रहाहीं ॥ ७ ॥
बीज-वृक्ष सह सड़ि गलि जावें । अङ्कुरज जड़, न चेतन गावें ॥ ८ ॥
कपूर जलै गन्ध रहि ताकी । कर्मवासना तस रहि बाकी ॥ ९ ॥
सूक्ष्म देह वह अन्तमें रहहीं । ताते स्थूल देह जिव धरहीं ॥१०॥
अनादि प्रवाह देह सम्बन्धा । परवश जीव सब होगये अन्धा॥११॥
देहोपाधिसु जीव एकदेशी । बोध हेतु कहैं सब उपदेशी ॥१२॥
निर्णयसे है जीव एकदेशी । ताते बोध करैं सब सन्तविवेकी ॥१३॥

॥ ❀ ॥ दोहाः—॥ २ ॥ ३ ॥ ❀ ॥

सम्बन्ध जीव शरीरका । अध्यास मात्रहि आहि ॥
संयोग सम्बन्ध कहते हैं । देहोपाधिसु ताहि ॥१४॥
कार्य रहित अखण्ड जिव । अजर अमर अनन्त ॥
ज्ञान है ताकर नित्य गुण । कहैं पारखी सन्त ॥१५॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग–२ ॥ चौ० ९ । दोहा–२ हैं ॥ ❀ ॥

अनित्यसबस्थिरवृत्तिविषयसुख । परिणाम तासु सदा लहैं दुःख ॥१६॥
जीवन्मुक्तिसुखअनित्यपिछानो । सुखस्वरूप जीव नहिं जानो ॥१७॥
नभ निराकार शून्य कहत हैं । अन्यचारि तत्त्व सूक्ष्मस्थूलहैं ॥१८॥
साकार-निराकार नहिं दोई । ज्ञानाकार जिव जानै कोई ॥१९॥
सुखमें सूक्ष्म हन्ता होई । अध्यास लक्षण जानहु सोई ॥२०॥
सुखाध्यासवश जिव सब आहीं । इच्छाशक्ति बहु क्रियाकराहीं ॥२१॥
शक्ति अन्न-जल परगट होई । प्राण चलन प्रारब्धसु जोई ॥२२॥
इच्छाशक्तियुत क्रिया अनेका । चलब बैठब आदिक देखा ॥२३॥
देहोपाधियुतशक्ति क्रिया सब । विदेह मुक्त ह्वै रहै न एकौ तब ॥२४॥

॥ ❀ ॥ दोहाः—॥ ४ ॥ ५ ॥ ❀ ॥

आकार सुख शक्ति क्रिया । देहोपाधियुत जान ॥
विदेहमुक्त हंस होय जब । चारों छूट निदान ॥२५॥
देह तजि हंस मुक्त रहा । चेतन देश ठिकान ॥
पारख गुण चेतन गुणी । एक स्वरूप न आन ॥२६॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग–३ ॥ चौ० १० । दोहा–२ हैं ॥ ❀ ॥

तन अरु जड़ वस्तु रहीं अनेका । तिनके साक्षी नर सब देखा ॥२७॥
विदेहमुक्त हंस जब होई । साक्षीभास जड़ छूटे सोई ॥२८॥
रविके पास कभी तम नाहीं । स्वयंप्रकाशी सदा रहाहीं ॥२९॥
मुक्त चेतन तस अकेला तहिया । परखप्रकाश स्वरूपहि रहिया ॥३०॥
नेत्र आपको नाहीं देखत । जीभ निजस्वाद कभी न लेवत॥३१॥
जीवज्ञान तस नित्य सुभाविक । नहिं जड़ जानेबुद्धि इन्द्रियादिक॥३२
'बहिरप्रत्यक्ष' ज्ञान इन्द्रिनका । 'अन्तरज्ञान' ह्वै बुद्धिआदिकका॥३३
नरजीव' तिनको सत्ता देवैं । विषय दुःख-सुख जानि सब लेवैं॥३४

मुक्तिमें देहोपाधि नशाई। स्वयं ज्ञानयुत हंस रहाई ॥३५॥
देहयुत हंस चपल बिजलीसम। क्रमसे जानै तुरत न कहीं कम ॥३६॥

॥ ❀ ॥ दोहाः—॥ ६ ॥ ७ ॥ ❀ ॥

स्वरूप ज्ञान चेतनका। सदा एकरस जोय ॥
देहोपाधिसु ज्ञानमें। घट-बढ़ भासै सोय ॥३७॥
विषय सुखोंकी हन्ता। माया मुख्य यह आहि ॥
परख दृष्टि दृढ़ राखिके। त्यागै मुक्त ह्वै जाहि ॥३८॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग-४ ॥ चौ० ९। दोहा-२ हैं ॥ ❀ ॥

'पोल-शून्य' आकाशको जानो। 'स्थूलाकार' क्षिति-जल पहिचानो ॥३९
वायु-तेज ये 'सूक्ष्म स्वरूपा'। हलुक सूक्ष्म वै क्रमसे रूपा ॥४०॥
तत्त्वन परमाणु अतिशय झीने। सदा संयोग परस्पर कीने ॥४१॥
स्थूल-सूक्ष्म तत्त्वकारण नित्या। हैं सब कार्य पदार्थ अनित्या ॥४२॥
बारम्बार पदार्थ सब उपजे। पुनि कारणमें लय ह्वै निपजे ॥४३॥
ऐसो प्रवाहरूप संसारा। अनादिकालसे चली यह धारा ॥४४॥
सूर्य चन्द्र नक्षत्र तारादिक। अनादि ये भी पदार्थ स्वाभाविक ॥४५
परमाणुदेश नित्य तत्त्वोंका। ज्ञानदेश अगणित जीवोंका ॥४६॥
आकाश व्यापक तिनमें नाहीं। एकदेशी बाहिर सो आही ॥४७॥

॥ ❀ ॥ दोहाः—॥ ८ ॥ ९ ॥ ❀ ॥

परमाणुओंके मेलमें। तत्त्वोंका जहाँ बास ॥
प्रत्यक्ष पोल छिद्रनसों। है आकाश निवास ॥४८॥
निराकार आकाशका। कछु परिणाम न होय ॥
प्रतिबिम्ब तासु असम्भव। नहीं शब्द ध्वनि कोय ॥४९॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग-५ ॥ चौ० ८। दोहा-२ हैं ॥ ❀ ॥

धर्मगुणक्रियाशक्तिस्वाभाविक। चारि तत्त्वोंमें नित हैं तात्विक ॥५०॥

पृथ्वी, जल दुइमें गनि लेहू । कठिन, शीत जानु धर्म येहू ॥५१॥
प्रकाशन धर्म तेजकर जानो । धर्म अतिकोमल वायु पिछानो॥५२॥
गतिवान वायु विशेष–समाना । शब्द तासु गुण तैसा जाना ॥५३॥
अनहदध्वनियहसमानपवनका । वर्ण ध्वनिशब्दवायु विशेषका ॥५४॥
वायुसु धक्के परमाणुनसे । लगि, सुनिपरत शब्द काननसे॥५५॥
ऊँची भूमि सो शब्द रुकि जावै । प्रतिध्वनि ह्वै फिर पीछे आवै ॥५६॥
उष्ण शीत कठिन अरु कोमल । चार स्पर्श हैं वायुमें चल ॥५७॥

॥ ❀ ॥ दोहाः—॥ १० ॥ ११ ॥ ❀ ॥

कोमल स्पश मुख्य है । वायूका गुण जोय ॥
कठिन शीत उष्ण जो ये । अन्य तत्त्वनके होय ॥५८॥
वायु तत्त्वमें स्पर्श गुण । रूप तेज गुण मान ॥
जल रस पृथ्वी गन्ध सो । विषय वही गुण जान ॥५९॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग–६ ॥ चौ० ८ । दोहा–२ हैं ॥ ❀ ॥

क्षितिक्रियाखड़ेचाकसमजानो । अधोक्रिया जल लेहुपिछानो ॥६०॥
ऊर्ध्वगमनसु अग्नि नित करई । सदा वायु तिरछी गति चलई ॥६१॥
क्रिया वायुमें ऐसी होई । आँधी बौडर आवैं जोई ॥६२॥
वनस्पति हिलें वस्तु मिलावे । पत्ते धूल कण झीन उड़ावे ॥६३॥
तत्त्वयुत शब्द गन्धादि गुणोंको । इन्द्रिन समीप लावैं सोंको ॥६४॥
आगि जरावै लहर उठाहीं । बहुत क्रिया अस वायु कराहीं ॥६५॥
वायुकि शक्ति अस परधाना । वृक्ष झुकाय गिरावै नाना ॥६६॥
मुर्दे फुलाय डारत तोरे । छत्तें खपरौं दूर ले डारे ॥६७॥

॥ ❀ ॥ दोहाः—॥ १२ ॥ १३ ॥ ❀ ॥

कफ पित्त वात नाड़िन गति । श्वास चलन नित होय ॥
रस पहुँचाय तन दै बल । शक्ति वायुकी जोय ॥६८॥

वेगसु चलन भस्म करन । जल अरु अन्न पकाय ॥
पिघले सूखे जलन गर्म । शक्ति तेजमें पाय ॥६९॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग-७ ॥ चौ० ६ । दोहा-२ हैं ॥ ❀ ॥

अस लच्चण जलशक्तिकोआही । तुरन्त शीतल नरम कराही ॥७०॥
पदार्थ भिगाय पिण्ड बन्धावै । तृप्त करि जिलाय प्यासमिटावै॥७१॥
जल घी जमें, मोती स्वातीमें । कपूर जमें, मणि-फणि हाथीमें॥७२॥
वृत्त तृणादि अङ्कुरज जामें । पत्र फूल फल उपजे तामें ॥७३॥
बाँदा है अरु कलम लागिजाई । सदैव अस जल शक्ति रहाई ॥७४॥
'गुरुत्त्वाकर्षण' 'धारणाशक्ति' । दोनों शक्तिसु चितिमें वर्ती ॥७५॥
भूमि चन्द्र सूर्यादि खिंचावा ।"गुरुत्त्वाकर्षण"शक्तिहिगावा॥७६॥
वस्तु छोट-बड़ जो जग माहीं । इसी शक्तिसे ठहर रहाहीं ॥७७॥
कोई पदार्थ डिग नहिं देवै । धसे न भीतर नित थमि लेवै ॥७८॥

॥ ❀ ॥ दोहाः—॥ १४ ॥ १५ ॥ ❀ ॥

दूजी धारणाशक्ति यह । पृथ्वी जलमें होय ॥
फिरत भूमि निशिदिन रहै । गिरत न मानुष कोय ॥७९॥
बड़ पृथ्वीके सामने । जिव चींटी सम जान ॥
बिन घबराहट कर्म है । उलट-सीध नहिं ज्ञान ॥८०॥

॥ ❀ ॥ चौपाई ॥ भाग- ८ ॥ चौ० ६ । दोहा-२ हैं ॥ ❀ ॥

परमाणु चारि तत्त्वके जामें । 'रसायनशक्ति' रही है तामें ॥८१॥
वही शक्ति सब वस्तु बनावै । तत्त्वोंका नित मेल मिलावै ॥८२॥
धातु सोनादि अभ्रक पारा । रत्न पाषाण कोयला कारा ॥८३॥
सोरा गन्धक बहुविधि चारा । बेली पेड़ तृणादि पसारा ॥८४॥
तत्त्वसों पदार्थ उपजते जेते । ताहि शक्तिसे जानहु तेते ॥८५॥
'स्नेहाकर्षण' नामक जाती । तत्त्वोंके परमाणुनमें शक्ति ॥८६॥

सबका मेल वह शक्ति मिलावै । नहिं तो वस्तु बने कस पावै ? ॥८७॥
सदा परमाणु न्यारे रहहीं । देख न पड़ै जगत यह कबहीं ॥८८॥
तत्त्व मेल आकार गुण धर्मा । वर्णन किये शक्ति औ कर्मा ॥८९॥

॥ ❀ ॥ दोहाः—॥ १६ ॥ १७ ॥ ❀ ॥

तत्त्वोंके षट् भेद अस । स्वयं अनादी जोय ॥
कर्त्ता है नहीं जगतका । क्यों भरमत सब कोय ? ॥९०॥
'काशीदास' विनवै प्रभु ! पारखी सन्त दयाल ! ॥
पारखगुरु मम हृदय बसो । बर यह माँगत बाल ! ॥९१॥

॥ ❀ ॥ इति जड़-चेतन भेद प्रकाश सद्ग्रन्थः मूल समाप्तम् ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ अथ सत्य रहनीके शब्दादि वर्णन ॥ शब्द ॥ १ ॥ ❀ ॥

सन्तोंकी चाल और रहनी । सकल दुनियाँसे न्यारी है ॥ टेक ॥

खेति बाड़ी नाना धन्धे । तजे सब भेष लेते ही ॥
विवेक वैराग्यमें प्रीती । सदा जिन्होंने धारी है ॥ १ ॥

भूत भविष्यका चिन्तवन । छोड़ दीन्हा जिन दिलसे ॥
वर्तमान प्रारब्ध भोगोंमें । शील सन्तोष करारी है ॥ २ ॥

देहधारी जीव बड़े-छोटे । स्वजाति जानि सम अपने ॥
भरसक काय वच मनसे । दया निर्बैर विचारी है ॥ ३ ॥

तत्त्व जड़ जीव सब चेतन । नित्य हैं स्वरूपसे दोनों ॥
परख ज्ञान गुरू बलसे । दिव्यदृष्टि उघारी है ॥ ४ ॥

विषय आनन्दकी हन्ता । हेतु है जन्म लेनेमें ॥
जानमात्र पद मुक्ति । स्थिरता सदा निकारी है ॥ ५ ॥

'काशी' है दास सन्तोंका । गुरुपद परख जिन दीन्हा ॥
सुभाविक बोधकर दाता । सद्गुरुकी बलिहारी है ॥ ६ ॥

॥ ❀ ॥ कव्वाली ॥ शब्द ॥ २ ॥ ❀ ॥

सच्चे कबीरपन्थी साधु ! होना सहज नहीं ॥
तजत पच्छ सब न्याय देखी । बिरले जानो कहीं ॥टेक॥
चोरी झूठ औ नारिको । छोड़िके सच्चे चले ॥
जिनके दिलमें बन्धे कभी । जड़का अध्यास नहीं ॥ १ ॥
मान बड़ाई जगतमें । सबको लगी रहे ॥
उसपर जिनकी किसी समय । बिलकुल नजर नहीं ॥ २ ॥
भूले हैं जीव मानके । विषयानन्दको सदा ॥
पारख दृष्टि धारिके ही । तिनका असर नहीं ॥ ३ ॥
सत्सङ्गति उनकी सदा । भक्त जो कोई करै ॥
खानि-वाणी भूल मिटै । गुरु कबीर यों कही ॥ ४ ॥
'काशी' कहै खोजि देखो ! कर्त्ता कहीं न और है ॥
साँच हंस पदको गहो ! न्यायसे करो सही ॥ ५ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ३ ॥ ❀ ॥

शीश दिया फिर रोना क्या रे ? आसक हुवा फिर सोना क्या रे ?॥टेक॥
अन्न-वस्त्र प्रारब्धसे मिलि हैं। अब याचक फिर होना क्या रे ? ॥१॥
गुरुगम पढ़ि-गुनि परख दृढ़ गहा। ग्रन्थनको फिर ढोवना क्या रे ?॥२॥
हंस सत्यकी बुद्धि भई दृढ़ । माया मोहमें फिर भूलना क्या रे ?॥३॥
पारखि गुरुसे भूल मिटी जब । अध्यास छुटे फिर रागी क्या रे ? ॥४॥
जड़ हन्ता तजि शीलसु वर्ते । निर्दया फिर गहना क्या रे ? ॥५॥
काशीकहैपरखदृष्टि ह्वै जाग्रत् । जीवन्मुक्ति सुखफिर जोहना क्यारे?॥६॥

॥ ❀ ॥ झूलना ॥ १ ॥ शब्द ॥ ४ ॥ ❀ ॥

वैराग्यको आसन विवेककि माला। शान्ति हिये दृढ़ धरना जी ! ॥

परख करु मणका सुरतका धागा। नास्ति मायाको फेरना जी ! ॥
"परख प्रकाशी हंस सत्य है" । जाप सो हरदम जपना जी ! ॥
कायाबीर तब कबीर कहावै । बीजकका यहि कहना जी ! ॥१॥

॥ ❀ ॥ इति जड़–चेतन भेद प्रकाश सद्ग्रन्थः सत्य रहनीके शब्द, कव्वाली, शब्द, झूलना सहित सम्पूर्णम् ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ५ ॥ ❀ ॥

सब सिद्धान्त कौन कियो जगमें, आदम मानुष तुम्हीं तो हो ॥
ईश्वर खुदा जगत्का कर्त्ता, कल्पना किया सो तुम्हीं तो हो ॥टेक॥
वेद शास्त्र विद्या कलादिक, वाणी बनाया तुम्हीं तो हो ॥
कर्म उपासना योग ज्ञानादिक, मारग चलाया तुम्हीं तो हो ॥१॥
खानि वाणी स्त्री पुत्र धनादिक, मायामें फँसता तुम्हीं तो हो ॥
विषयानन्द अध्यास छोड़िके, मुक्त होनहारा तुम्हीं तो हो ॥२॥
पारखि गुरुकी खोज लगाके, निज पारख पाया तुम्हीं तो हो॥
'काशी' कहै कहाँ लों कहिये, सब जाननहारा तुम्हीं तो हो ॥३॥

॥ ❀ ॥ साखीः— ॥ ❀ ॥

जीव अखण्ड अनन्त हैं । देहधारि चौ खान ॥
जड़ाध्यास बन्धन कहै । भूल विवश हैरान ॥ १ ॥

जड़ रु चेतन अनादि है । समझै नहीं सो भूल ॥
खानि वाणि प्रिय मानिके । बहुतक सहे सो शूल ॥ २ ॥

गुरुकी दया परखा सकल । स्वयं स्वरूप स्थिति कीन्ह ॥
पारख पद सर्वोपरि । जीवन्मुक्तिको चीन्ह ॥ ३ ॥

कबीर साहेब पूरण । काशी निर्णय सोय ॥
रामस्वरूप पारखी गुरु । बन्दनीय मम होय ॥४॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ अथ पञ्च कोशोंका कोष्ठक वर्णनम् प्रारम्भः ॥ ❀ ॥

संख्या ।	कोश ।	अन्नमय कोश ।	प्राणमय कोश ।	मनोमय कोश ।	ज्ञानमय कोश ।	विज्ञानमय कोश ।
१	देह ५	स्थूल	सूक्ष्म	कारण	महाकारण	कैवल्य
२	काण्ड ५	कर्म	उपासना	योग	ज्ञान	विज्ञान
३	आश्रम ५	ब्रह्मचर्य	गृहस्थ	बानप्रस्थ	संन्यास	परमहंस
४	चिह्न ५	आचार	गुरुमय	जङ्गम-आत्मलिङ्ग	शिवलिङ्ग	प्रसाद
५	प्रलय ५	नित्य	नैमित्तिक	विश्व	महा	एकान्त
६	दशा ५	बाल	पिशाच	उन्मत्त	मूक	जड़
७	अवस्था ५	जाग्रत्	स्वप्न	सुषुप्ति	तुरिया	उन्मुनि
८	साधन ५	श्रवण	मनन	निदिध्यासन	साक्षात्कार	सहजारूप
९	मुक्ति ५	सालोक्य	सामीप्य	सारूप्य	सायुज्य	(निर्गुण) जीवन्मुक्ति
१०	अभिमान ५	विश्व	तैजस	प्राज्ञ	प्रत्यगात्मा	निरञ्जन
११	दीक्षा ५	कोऽहं	वोऽहं	शिवोऽहं	सोऽहं	अनामयोऽहं
१२	आनन्द ५	विषयानन्द	योगानन्द	अद्वैतानन्द	विदेहानन्द	ब्रह्मानन्द
१३	निर्णय ५	क्षर	अक्षर	क्षेत्रज्ञ	आत्मा	कूटस्थ
१४	देवता ५	गणेश	मार्तण्ड	रुद्र	ईश्वर	निरञ्जन

द्रव्य	इच्छा	ज्ञान	परा वा ऋ
काम	मन्द	बड़वा (ज्ञान)	ब्रह्म
द्वितीय (भुवः)	तृतीय (स्वः)	चतुर्थ (माया)	पञ्चम (ब्रह
भूचरी	चाचरी	अगोचरी	सर्वसाक्षि
मध्यमा	पश्यन्ती	परा	अनिर्वाच
उकार	मकार	इकार (अर्द्धमात्रा)	यङ्कार (वि
सत्त्वगुण	तमोगुण	शुद्ध सत्त्वगुण	निर्गुण
विष्णु	रुद्र	ईश्वर	शिवदेव वा
कण्ठ	हृदय	मूर्धनि	ब्रह्मरन्ध्र
जिह्वा	मुख	नाभि	शिखा
अङ्गुष्ठ	अर्द्ध अङ्गुष्ठ	मसूर	परिमाण ह
दण्डक	कुण्डल्य	अर्द्धचन्द्र	बिन्दु
श्रीहट	गोहाट	औटपीठ	भ्रमरगु
पश्चिम	दक्षिण	उत्तर	ऊर्ध्व
वरुण	यम	कुबेर	ब्रह्मा
पालन	प्रलय	सूर्य	चन्द्र

ऊर्ध्व	मध्य	सर्व	महा
श्वेत	लाल	हरा	काला वा
दीर्घ	कल्पत्या (प्लुत)	अर्द्धमात्रा	अनिर्वा
यजुर्वेद	अथर्वणवेद	ऋग्वेद	सुसंवेद (
जल	तेज	वायु	आकाश
नैऋत्य	आग्नेय (अग्नि)	वायव्य	अध

नैऋत्य	अग्नि	वायु	विष्
झाँझ	शङ्ख	मृदङ्ग	बंशी
उदान	प्राण	समान	व्यान
मठाकाश	महदाकाश	चिदाकाश	निजा
श्याम औ रक्त,	रक्त औ श्वेत,	श्याम औ शुद्ध पीत,	पीत औ
विहङ्गम मार्ग	कपि मार्ग	मीन मार्ग	शेष
वामदेव	सत्पुरुष	ईश्वर	अघ
धूर्मी	ज्योति	ईश्वर	कलातीत (
वैकुण्ठ	कैलास	ज्वाला	निरा
उन्मीलनी	शाम्भवी	आत्मभावनी	पूर्णबो
नाग	कूर्म	कृकल	धनञ्

४८ अन्तःकरण— पञ्चक ५	(विकार)	अहं (अहङ्कार)	मन	बुद्धि	चित्त	अन्तःकरण
४६ अ० पं० का— विषय ५		अहंतव्य	मन्तव्य	बोधव्य	चिन्तन	निर्विकल्प
५० अ० पं०— का देवता ५		रुद्र	चन्द्रमा	ब्रह्मा	वासुदेव (नारायण)	महाविष्णु
५१ भूमिका ५		क्षिप्रा	गतागत	सौलेष्टना	सुलीन	अभाव
५२ अभाव ५		प्रध्वंसा	प्राग्	अन्योऽन्य	अत्यन्ता	भावातीत
५३ भोग ५		स्थूल	सूक्ष्म	आनन्दमय	आनन्दाभास (ईश्वरमय)	ब्रह्ममय
५४ ज्ञान इन्द्रियाँ ५		नाक (नाशिका),	जिभ्या (रसना),	नेत्र (चक्षु),	त्वचा (त्वक्),	कान (श्रोत्र)
५५ ज्ञानेन्द्रियोंके देवता ५		अश्विनी कुमार,	वरुण,	सूर्य	वायु	दिशा
५६ ज्ञानेन्द्रियों— के विषय ५		गन्धका ग्रहण,	रसका ग्रहण,	रूपका ग्रहण,	स्पर्शका ग्रहण,	शब्दका ग्रहण,
५७ कर्म इन्द्रियाँ ५		गुदा,	लिङ्ग (उपस्थ),	पाँव (पाद)	हाथ (पाणि)	मुख (वाक्)
५८ कर्म इन्द्रियों— के देवता ५		मृत्यु (यम),	प्रजापति (ब्रह्मा),	विष्णु (वामन उपेन्द्र),	इन्द्र (शक्र),	अग्नि (वह्नि),
५६ कर्म इन्द्रियों— के विषय ५		मल त्यागना,	मूत्र त्यागना, अथवा मैथुन,	गमन करना (चलना)	वस्तुका ग्रहण (लेना–देना)	बोलना (वाणी उच्चारण)

॥ ❀ ॥ इति पञ्च कोशोंका कोष्ठक वर्णनम् सम्पूर्णम् ॥ ❀ ॥

॥ प्रिय ! मुमुक्षुगण ! तथा सन्त-महात्माओ !
इन पञ्च कोशोंको अपना स्व-स्वरूप नहीं समझेंगे। इन पञ्च कोशोंको जाननेवाला मैं चैतन्य जीव उससे न्यारा सत्य हूँ ! पञ्च कोश चैतन्य जीवोंसे न्यारा है, जड़ है, ऐसा समझेंगे। इसका भेद पारखी सन्तोंसे सत्सङ्ग विचार करके अच्छी तरहसे एक-एक करके समझ बूझ लेना चाहिये ! तभी सत्य बोध होगा ॥

मूल पञ्चग्रन्थीके समष्टिसारमें नीचे लिखे बातोंके विवरण आया है। समष्टिसारमें वह विषय पद्यमें होनेसे सबको समझना कठिन है। सद्गुरुसे भेद पाये बिना अर्थ नहीं जाना जाता है। इसलिए सुभीतासे जाननेके लिए, हमने वह यहाँ पर वर्णन कर दिया है। सो विचार करके जान लीजिये ! ॥ इस विषयके प्रकरणमें जहाँ-जहाँ पर आकाशका नाम आवै, उसको समान वायु या थीर पवनके रूपमें जानना चाहिये ! ॥ आकाश (थीर पवन) का स्वरूप 'व्यान' और 'धनञ्जय' है। अर्थात् जहाँ-जहाँ नीचे लिखे प्रकरणोंमें आकाशका नाम आवै, उस आकाशको यहाँ प्रकरण भेदसे 'धनञ्जय' वायु और 'व्यान' वायु जान लेना चाहिये। 'समान' वायु और 'कृकल' वायु सो दोनों वायुका मुख्य स्वरूप हैं। 'प्राण वायु और कूर्म वायु' सो अग्निका मुख्य स्वरूप है। 'उदान वायु और नाग वायु' सो जलका मुख्य स्वरूप है। तथा 'अपान वायु और देवदत्त वायु' को पृथ्वी तत्त्वका मुख्य स्वरूप समझ लेना चाहिये ! ॥

धनञ्जय वायु, विज्ञानमें बल देती है; तिसका देवता या तिसी वायुको निरञ्जन के रूपमें जानिये ! कृकल वायु, ज्ञानमें बल देती है; तिसका देवता या तिसी वायुको महेश या महादेवके रूपमें जानिये ! कूर्म वायु, उपासनामें बल देती है; तिसका देवता या तिसी वायु को विष्णुके रूपमें जानिये ! नाग वायु, योगमें बल देती है; तिसका देवता या तिसी वायु को ब्रह्माके रूपमें जानिये ! और देवदत्त वायु, कर्ममें बल देती है; तिसका देवता या तिसी वायुको माया या शक्तिके रूप में कहते हैं। जैसे नीचे कोष्ठक वा खाने के अन्दर देखिये। उपरोक्त बातोंका स्मरण इस कोष्ठकरूप खानेसे कर लीजियेगा:—

संख्या।	तत्त्व पञ्चक।	पिण्डकी वायु।	ब्रह्माण्डकी झीनी वायु।	झीनी वायुका इसमें बल देना।	झीनी वायुका देवता।
१	आकाश	व्यान	धनञ्जय	विज्ञान	निरञ्जन
२	वायु	समान	कृकल	ज्ञान	महादेव
३	अग्नि	प्राण	कूर्म	उपासना	विष्णु
४	जल	उदान	नाग	योग	ब्रह्मा
५	पृथ्वी	अपान	देवदत्त	कर्म	शक्ति (माया)

अथइन्द्रियादिऔरप्रकृत्यादिकी जीवकीसत्तासेउत्पत्ति वर्णन प्रकरणम्प्रारम्भः

कारणरूप थीर पवनसे नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय वायुकी उत्पत्ति हुई, ऐसा जानिये ! ॥

नीचे लिखे पहिले घरके अन्दर पिण्डका "थीर पवन" और ब्रह्माण्डकी "धनञ्जय वायु" यह दोनों मिलके जीवकी सत्तासे अन्तःकरणकी उत्पत्ति हुई, तिस अन्तः-करणका विषय "निर्विकल्प" है। इसी तरह सबोंकी उत्पत्ति जान लीजियेगा ! ॥

सं०	पिण्डका तत्त्व	ब्रह्माण्डकी वायु	अन्तःकरण पञ्चक	अ०पं०का विषय
१	आकाश (थीर पवन)	धनञ्जय	अन्तःकरण	निर्विकल्प
२	वायु (चञ्चल पवन)	धनञ्जय	चित्त	अनुसन्धान
३	तेज (अग्नि)	धनञ्जय	अहङ्कार	अहं करतूत
४	जल	धनञ्जय	मन	सङ्कल्प-विर्किल्प
५	पृथ्वी	धनञ्जय	बुद्धि	निश्चय

नीचे लिखे हुए पहिले घरके अन्दर पिण्डका "थीर पवन" और ब्रह्माण्डकी "कृकल वायु"–यह दोनों मिलके जीवकी सत्तासे "व्यान वायु" की उत्पत्ति हुई,तिस व्यानवायुका बासा सर्वशरीर भरमें है। इसी तरह सबोंकी उत्पत्ति जान लीजियेगा!॥

	पिण्डका तत्त्व	ब्रह्माण्डकी वायु	पिण्डकी पञ्चवायु	पि० की पं०वायुकी बासा
१	आकाश(थीरपवन)	कृकल	व्यान	सर्व शरीर
२	वायु चञ्चल)	कृकल	समान	नाभि
३	तेज (अग्नि)	कृकल	प्राण	हृदय
४	जल	कृकल	उदान	कण्ठ
५	पृथ्वी	कृकल	अपान	गुदा

नीचे लिखे हुए पहिले घरके अन्दर पिण्डकी "व्यान वायु" और ब्रह्माण्डकी "कूर्म वायु"—यह दोनों मिलके जीवकी सत्तासे "कान"की उत्पत्ति हुई, तिस कान का विषय "सुनना" है। इसी तरह सबोंकी उत्पत्ति जान लीजियेगा ! ॥

सं०	पिण्डकी वायु	ब्रह्माण्डकी वायु	ज्ञान इन्द्रिय	ज्ञानेन्द्रियोंका विषय
१	व्यान	कूर्म	श्रवण (कान)	सुनना
२	समान	कूर्म	त्वचा (त्वक्)	स्पर्श
३	प्राण	कूर्म	नेत्र (चक्षु)	देखना
४	उदान	कूर्म	जिभ्या (रसना)	रस ग्रहण
५	अपान	कूर्म	नाक (नासिका)	गन्ध ग्रहण

नीचे लिखे हुए पहिले घरके अन्दर पिण्डकी "व्यान वायु" और ब्रह्माण्ड की "देवदत्त वायु"—यह दोनों मिलके जीवकी सत्तासे "वाक्" कहिये "मुख" इन्द्रियकी उत्पत्ति हुई, तिस मुखका विषय "बोलना" है। इसी तरह सबोंकी उत्पत्ति जान लीजियेगा ! ॥

	पिण्डकी वायु ।	ब्रह्माण्डकी वायु ।	कर्म इन्द्रिय ।	कर्मेन्द्रियोंका विषय ।
१	व्यान	देवदत्त	वाक् (मुख)	बोलना
२	समान	देवदत्त	हाथ (हस्त)	लेन-देन
३	प्राण	देवदत्त	पाद (पैर)	चलना
४	उदान	देवदत्त	शिश्न (लिङ्ग)	मैथुन या मूत्र त्याग
५	अपान	देवदत्त	गुदा	मल त्याग

नीचे लिखे हुए पहिले घरके अन्दर पिण्डकी "व्यान वायु" और ब्रह्माण्ड की "नाग वायु"—यह दोनों मिलके जीवकी सत्तासे "शब्द" की उत्पत्ति हुई। इसी तरह सबोंकी उत्पत्ति जान लीजियेगा ! ॥

संख्या । पिण्डकी वायु । ब्रह्माण्डकी वायु । पञ्च विषय ।
१ व्यान, नाग, शब्द । २ समान, नाग, स्पर्श । ३ प्राण, नाग, रूप । ४ उदान, नाग, रस । ५ अपान, नाग, गन्ध ।

नीचे लिखे हुए पहिले घरके अन्दर पिण्डकी "व्यान वायु" और ब्रह्माण्ड की "धनञ्जय वायु"—यह दोनों मिलके जीवकी सत्तासे "लोभ" की उत्पत्ति हुई। इसी तरह सबोंकी उत्पत्ति जान लीजियेगा ! ॥

संख्या । पिण्डकी वायु । ब्रह्माण्डकी वायु । समान वायुकी पाँच प्रकृति ।
१ व्यान, धनञ्जय, लोभ । २ समान, धनञ्जय, काम । ३ प्राण, धनञ्जय, क्रोध । ४ उदान, धनञ्जय, मोह । ५ अपान, धनञ्जय, भय ।

नीचे लिखे हुए पहिले घरके अन्दर पिण्डकी "व्यान वायु" और ब्रह्माण्ड की "कृकल वायु"—यह दोनों मिलके जीवकी सत्तासे "पसारन" की उत्पत्ति हुई। इसी तरह सबोंकी उत्पत्ति जान लीजियेगा ! ॥

संख्या । पिण्डकी वायु । ब्रह्माण्डकी वायु । चञ्चल वायुकी प्रकृति ।
१ व्यान, कृकल, पसारन । २ समान, कृकल, धावन । ३ प्राण, कृकल, बोलन । ४ उदान, कृकल, सिकोरन (सङ्कोचन) ! ५ अपान, कृकल, चलन ।

नीचे लिखे हुए पहिले घरके अन्दर पिण्डकी "व्यान वायु" और ब्रह्माण्ड की "कूर्म वायु"—यह दोनों मिलके जीवकी सत्तासे "निद्रा" की उत्पत्ति हुई। इसी तरह सबोंकी उत्पत्ति जान लीजियेगा ! ॥

संख्या । पिण्डकी वायु । ब्रह्माण्डकी वायु । तेज तत्त्वकी प्रकृति ।
१ व्यान, कूर्म, निद्रा । २ समान, कूर्म, मैथुन । ३ प्राण, कूर्म, आलस्य । ४ उदान, कूर्म, तृषा । ५ अपान, कूर्म, क्षुधा ।

नीचे लिखे हुए पहिले घरके अन्दर पिण्डकी "व्यान वायु" और ब्रह्माण्डकी "नाग वायु"—यह दोनों मिलके जीवकी सत्तासे "लार" की उत्पत्ति हुई। इसी तरह सबोंकी उत्पत्ति जान लीजियेगा ! ॥

संख्या । पिण्डकी वायु । ब्रह्माण्डकी वायु । जल तत्त्वकी प्रकृति ।
१ व्यान, नाग, लार । २ समान, नाग, रक्त । ३ प्राण, नाग, पसीना । ४ उदान, नाग, मूत्र । ५ अपान, नाग, मल (वीर्य) ।

नीचे लिखे हुए पहिले घरके अन्दर पिण्डकी "व्यान वायु" और ब्रह्माण्डकी "देवदत्त वायु"—यह दोनों मिलके जीवकी सत्तासे "रोम" की उत्पत्ति हुई ! इसी तरह सबोंकी उत्पत्ति जान लीजियेगा ! ॥

संख्या । पिण्डकी वायु । ब्रह्माण्डकी वायु । पृथ्वी तत्त्वकी प्रकृति ।
१ व्यान, देवदत्त, रोम । २ समान, देवदत्त, नाड़ी । ३ प्राण, देवदत्त, त्वचा (चर्म) । ४ उदान, देवदत्त, मांस । ५ अपान, देवदत्त, अस्थि (हड्डी) ।

॥❀॥ इति इन्द्रियादि और प्रकृत्यादिकी उत्पत्ति वर्णन प्रकरणम् समाप्तम् ॥❀॥

॥ ❀ ॥ निर्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन सद्ग्रन्थ शोधकका परिचय साखी ॥ ❀॥

साखीः—"ग्रन्थ सकलो शोध डारे, बोध हेतक जीवके ॥
परख स्वरूपी सन्त निर्मल, "लाल" कहते शोधके ॥"

चौपाईः—"वेदादि वाणीका कर्त्ता, मानुष ही तो है भाई ! ॥
पारखी गुरुसे परिचय नाहीं, पारखपद कैसे पाई ! ॥